॥ ओ३म् ॥

भूमिका

काव्य के दो प्रधान रूप

मूलरूप से काव्य के दो प्रमुखरूपों को स्वीकार किया गया है (१) श्रव्यकाव्य (२) दृश्यकाव्य। इनमें से श्रव्यकाव्य तो किसी अन्य के मुख द्वारा श्रवण किये जाने योग्य अथवा स्वयं पढ़े जाने योग्य हुआ करते हैं। इसमें श्रोत्रेन्द्रिय अथवा नेत्रेन्द्रिय द्वारा बुद्धि एवं हृदय का सम्पर्क काव्य के साथ स्थापित कर श्रोताओं अथवा पाठकों के हृदए में रस का संचार किया जाता है। दूसरा दृश्यकाव्य प्रमुखरूप से देखने की वस्तु है, वैसे इसमें भी पात्रों के संलापों में श्रव्यत्व तो रहा ही करता है। इन संलापों के अतिरिक्त पात्रों की वेश-भूषा, उनकी आकृति और भावभंगी तथा क्रियाओं के अनुकरण तथा भावों के अभिनय द्वारा दर्शकों अथवा सामाजिकों के हृदयों में रसोद्बोध उत्पन्न किया जाता है। यद्यपि ये दृश्यकाव्य भी पढ़े अथवा सुने जा सकते हैं किन्तु उनके पूर्ण आनन्द की अनुभूति पाठकों अथवा श्रोताओं को उस समय तक नहीं हुआ करती है कि जब तक रंगमंच पर उनका अभिनय नहीं कर दिया जाता है। अतएव दृश्यकाव्य प्रधान रूप से रंगमंच की वस्तु कहे जाते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि श्रव्यकाव्य श्रवणों के माध्यम द्वारा तथा दृश्यकाव्य नेत्रों के माध्यम द्वारा मानव-हृदय में रसानन्द की अनुभूति कराया करते हैं। माध्यम सम्बन्धी उक्त भिन्नता के कारण ही काव्य के उपर्युक्त दो रूप सिद्ध होते हैं।

इसको सभी लोग एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि श्रोत्रों द्वारा श्रवण की गयी वस्तु की अपेक्षा नेत्रों द्वारा देखी गयी वस्तु विशेषरूप से रुचिकर तथा हृदयाकर्षक हुआ करती है। अतः श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य का अधिक रुचिकर, अधिक मनोहर तथा मनोज्ञ होना स्वयं ही स्पष्ट है। यह दृश्यकाव्य ही सामान्यरूप से 'रूपक' कहलाता है। नट में राम आदि पात्र का आरोप किये जाने से उन्हें 'रूपक' कहा जाता है। जैसा कि—दशरूपक

१।७ के तृतीय चरण में "रूपकं तत्समारोत् ।" तथा साहित्यदर्पण के ६।१ के चतुर्थ चरण में—"तद्रूपारोपात्तु रूपकम्" । कहकर स्पष्ट भी किया गया है ।

सभी प्रकार के काव्यों में रूपकों की श्रेष्ठता—भारतीय लोक-समीक्षा की परम्परा के आधार पर "काव्येषु नाटकं रम्यम्" अर्थात् सब प्रकार के काव्यों में नाटक अथवा रूपक को रमणीय (अर्थात् सर्वश्रेष्ठ) स्वीकार किया गया है । इसका प्रमुख कारण यही हो सकता है कि अहृदय को सहृदय बनाने की सर्वाङ्गीण क्षमता नाटक (अथवा रूपक) में ही हुआ करती है । उदाहरण के लिये वेणीसंहार की ही प्रारम्भिक घटना को ले लीजिये । इसका प्रारम्भ पाँच गावों की शर्त पर सन्धि कराने लिये हस्ति- कर गये हुये कृष्ण के समाचार तथा दुर्योधन द्वारा किये गये अपमान स्मरण से अत्यन्त क्रोधित भीमसेन के रंगमंच पर प्रवेश से होता है की प्रारम्भिक उक्तियों के ही श्रवणमात्र से सामाजिकों (दर्शकों) समयोचित रस का आस्वादन होने लगा करता है । और फिर द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुये भीम की इस उक्ति का श्रवण कि "वह अवश्य ही दुःशासन के वक्षःस्थल को विदीर्ण कर रक्त पान तथा अपनी फड़कती हुयी भुजाओं से घुमायी गयी भारी गदा के आघात दुर्योधन की जंघाओं को विचूर्णित कर उसके गाढ़े तथा चिकने रक्त से हाथों से द्रौपदी के केशों को सँवारेगा" तब तो दर्शकों के हृदयों में सं- रस परिपाक को प्राप्त होने लगता है । इसमें तनिक भी विलम्ब नहीं है । अतः जीवन की सत्यता की अनुभूति की दृष्टि से, इसके हृदयंगम होने की दृष्टि से यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि के सभी प्रकारों में रूपक अथवा नाटक ही सर्वश्रेष्ठ तथा लोकोपयोगी इसीलिये महाकवि कालिदास की इस उक्ति को पूर्णरूपेण सार्थक ही जा सकता है कि—"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्" (मालविका० १।४।) ।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि का भी कथन यही है कि कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग, अथवा कर्म ऐसा नहीं है कि जिसका दर्शन नाट्य में न होता हो :—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते ॥

भरत-ना०शा० १।११७।५१८॥"

अतः सभी प्रकार के काव्यों में नाटकों अथवा रूपकों को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया जाना उचित ही प्रतीत होता है।

रूपकों के प्रकार—नाट्यशास्त्रकारों ने इन रूपकों के दश भेदों को स्वीकार किया है। वे हैं—(१) नाटक (२) प्रकरण (३) भाण (४) प्रहसन (५) डिम (६) व्यायोग (७) समवकार (८) वीथी (९) अंक तथा (१०) ईहामृग। इन दशों प्रकारों को वस्तु, नेता और रस के आधार माना गया है ("वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः" ॥ दशरूपक १।११ पूर्वार्द्ध ॥ तीनों (वस्तु-नेता-रस) तत्वों पर रूपकों की भिन्नता भी निर्भर है।

उपर्युक्त दश भेदों में नाटक की सर्वश्रेष्ठता—उपरिवर्णित रूपक प्रकारों में "नाटक" ही एक ऐसा प्रकार है जिसमें नाटक के सभी (वस्तु, नेता और रस) तत्वों से सम्बन्धित अङ्गों का समावेश होना आवश्यक हुआ करता है। अन्य प्रकारों में उनका अपेक्षाकृत कुछ न कुछ अभाव अवश्य ही दृष्टिगोचर हुआ करता है। ऐसी स्थिति में नाटक को रूपक का सर्वश्रेष्ठ भेद मान लेना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

नाटक का लक्षण तथा परिभाषा—जिसमें देवताओं, ऋषियों, राजाओं तथा समुन्नत बुद्धिवाले व्यक्तियों के चरित्रों का अनुकरण सभी प्रकार के अङ्ग उपाङ्गों तथा गतियों को क्रमानुसार व्यवस्थित कर अभिनय द्वारा प्रदर्शित किया जाता है अर्थात् सामाजिकों (दर्शकों) तक पहुंचाया जाता है उसे नाटक कहा जाता है। (संस्कृत-लक्षण के लिए देखिए परिशिष्ट सं० १)

नाटक की कथावस्तु (इतिवृत्त) रामायण आदि इतिहास-प्रसिद्ध हुआ करती है। जो कथावस्तु केवल कविकल्पित ही है, इतिहास-प्रसिद्ध नहीं है। उसे नाटक नहीं कहा जा सकता है। नाटक में विलास, ऐश्वर्य आदि गुणों तथा अनेक प्रकार की समृद्धियों का वर्णन होना आवश्यक है। नाटक सुख अथवा दुःख की उत्पत्ति से युक्त होता है। शृंगार अथवा वीर में से किसी एक

रस को प्रधानता इसमें रहा करती है। अन्य सभी रसों का वर्णन अंग रूप में (गौणरूप में) रहा करता है। निर्बहण सन्धि में अद्भुत रस का आना उत्तम हुआ करता है। इसमें ५ से लेकर दस तक अङ्क हुआ करते हैं। पुराण-आदि प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य अथवा दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है। इसमें मुख, प्रतिमुख आदि पांच सन्धियां हुआ करती हैं। (नाटक के नाट्यशास्त्रीय लक्षण के लिए देखिए-परिशिष्ट सं० १)।

कथावस्तु और उसके प्रकार—वस्तु को ही कथा, कथावस्तु, कथानक, नाटकीय आख्यान, इतिवृत्त भी कहा जाता है। इस कथावस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है (१) आधिकारिक (२) प्रासंगिक। मुख्य कथावस्तु को "आधिकारिक" कथावस्तु कहते हैं। फल पर स्वामित्व प्राप्त करना 'अधिकार' कहलाता है तथा उस फल का भोक्ता 'अधिकारी'। फलभोक्ता अथवा अधिकारी से सम्बन्ध रखने वाली कथा 'आधिकारिक' कहलाती है। (देखिए-दशरूपक-१।१२।) आधिकारिक कथावस्तु ही मुख्य कथावस्तु हुआ करती है। जैसे—रामायण में 'राम' की कथा। इस आधिकारिक अथवा मुख्य कथावस्तु के लक्ष्य की पूर्ति में सहायक बनकर अपनापन खोदेने वाली तथा मुख्य कथावस्तु को गति प्रदान करने वाली कथा को "प्रासंगिक" कथा-वस्तु कहा जाता है। (देखिए-दशरूपक १।१३। का पूर्वार्धं) यह कथावस्तु गौण कथावस्तु कही जाती है। जैसे—रामायण में सुग्रीव अथवा शबरी की कथा।

प्रासंगिक कथावस्तु के भी दो प्रकार—प्रासंगिक कथावस्तु भी दो प्रकार की होती है (१) पताका, (२) प्रकरी। जो प्रासंगिक कथावस्तु अनु-बन्ध सहित होती है तथा दूर तक चलती रहती है वह "पताका" कहलाती है पताका नामक प्रासङ्गिक कथावस्तु का नायक पृथक् से होता है जो आधि-कारिक-कथावस्तु के नायक का साथी हुआ करता है तथा गुणों में उसकी अपेक्षा कुछ न्यून होता है। उसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतन्त्र 'फल' नहीं हुआ करता है। जैसे—रामायण में सुग्रीव की कथा। कभी-कभी इस कथानक का प्रसंगतः स्वयं का भी फल हुआ करता है।

जो कथा काव्य अथवा रूपक में कुछ ही कालतक चलकर रुक जाया करती है वह 'प्रकरी, नामक प्रासङ्गिक-कथावस्तु कहलाती है। जैसे—रामायण में शवरी आदि की कथायें।

इस भाँति कथावस्तु के तीन भेद हुये। एक प्रकार आधिकारिक और दो प्रकार का प्रासङ्गिक।

मूल की दृष्टि से कथावस्तु के पुनः तीन प्रकार—यही कथावस्तु मूल की दृष्टि से पुनः तीन प्रकार की होती है (१) प्रख्यात (२) उत्पाद्य (३) मिश्र ["प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रेधाऽपि तत्त्रिधा,; 'दशरूपक १/१५—पूर्वार्धं।]।

(१) **प्रख्यात** नामक कथावस्तु रामायण, महाभारत, पुराण अथवा वृहत्कथा आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर हुआ करती है। (प्रख्यात-मितिहासादे—द० रू० १।१५ उत्तरार्धं का प्रथम चरण)। जैसे—वेणीसंहार की कथा महाभारत पर आधारित है। प्रख्यात नायक कथावस्तु मूलकथा से सम्बद्ध रहा करती है।

(२) **उत्पाद्य**—यह कथावस्तु कवि द्वारा कल्पित हुआ करती है (उत्पाद्यं कविकल्पितम्-द० रू० १।१५-उत्तरार्ध का द्वितीय चरण।)। जैसे—शूद्रक के मृच्छकटिक तथा भवभूति के मालतीमाधव की कथावस्तु।

(३) **मिश्र**—कथावस्तु की पृष्ठभूमि प्रख्यात होती है किन्तु इसमें अधिक अंश कवि-कल्पित ही हुआ करता है (मिश्रं च संकरात्ताभ्या दिव्यमर्त्यादि-भेदतः।द० रू० १।१६—पूर्वार्धं)। अतः प्रख्यात और उत्पाद्य इन दोनों प्रकार की कथावस्तुओं के मिश्रण से 'मिश्र' नामक कथावस्तु बनती है।

विभिन्न प्रकार की स्थितियों की दृष्टि से कथावस्तु को पांच अर्थप्रकृतियों, पंचअर्थावस्थाओं तथा सन्धियों में विभक्त कर लिया जाता है।

पांच अर्थप्रकृतियां—कथावस्तु को प्रमुख-फल की ओर अग्रसर करने वाले चमत्कारपूर्ण अंशों को "अर्थप्रकृति" कहा जाता है। कथावस्तु का फल है त्रिवर्गसिद्धि अर्थात् धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के निमित्त जो उपाय (नाटक आदि में) किये जाते हैं उन्हीं को 'अर्थप्रकृति' कहा जाता है। अथवा प्रयोजन की सिद्धि में जो कारण हो उन्हीं को 'अर्थ-

प्रकृति' कहा जाता है। इनके पांच प्रकार हैं (१) बीज, (२) विन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी और (५) कार्य। ये अर्थ प्रकृतियां आधिकारिक कथावस्तु के निर्वाह में पूर्णतया सहायक होती हैं।

(१) **बीज**—वह तत्व है कि जो प्रारम्भ में वृक्ष की ही भांति सूक्ष्मरूप में निर्दिष्ट किया जाता है किन्तु जैसे-जैसे व्यापक शृंखला आगे बढ़ती जाती है वसे ही वैसे इसका भी विस्तार होता जाता है। यह नायक के मुख्य फल का प्रमुख कारण होता है। (दशरू० १।१७ साहित्यदर्पण ६-६५, ६६)

(२) **विन्दु**--अवान्तर कथा द्वारा मूल-कथा के टूट जाने पर जो उसे जोड़ता है आगे बढ़ाता है उसे 'विन्दु' कहते हैं। (दशरू० १।१७ तथा सा० द० ६-६६)।

(३) **पताका**—यह वह प्रासंगिक कथा हुआ करती है कि जो मुख्य (आधिकारिक) कथा के साथ दूर तक चला करती है।

(४) **प्रकरी**—यह वह प्रासङ्गिक कथा है कि जो मुख्यकथा के साथ थोड़ी ही दूर तक चला करती है।

इन दोनों प्रकार की प्रासङ्गिक कथाओं के नायकों की समस्त चेष्टाय प्रधान-नायक की फल की सिद्धि करने के लिये ही हुआ करती हैं।

(५) **कार्य**--जिस फल की सिद्धि के लिये सम्पूर्ण साधनादि सामग्री एकत्रित की जाया करती है उसे 'कार्य' कहते हैं।

पांच अर्थावस्थायें अथवा कार्यावस्थायें--फल चाहने वालों के द्वारा प्रारम्भ किये हुये कार्य की पांच अवस्थायें हुआ करती हैं (१) आरम्भ (२) यत्न (३) प्राप्त्याशा (४) नियताप्ति और (५) फलागम (देखिये दशरू० १।१९।। सा० द० ६।७०-७१।)।

(१) **आरम्भ**--मुख्य फल की प्राप्ति के निमित्त नायक में जो उत्कण्ठा हुआ करती है उसे 'आरम्भ' कहते हैं (केवल उत्कण्ठा ही करती है, प्रयत्न नहीं।) देखिये दशरू० १-२०।। सा० द० ६।७१।

(२) **यत्न**—फल-प्राप्ति के निमित्त अतिशीघ्रता के साथ जो व्यापार किया जाता है उसे 'यत्न' कहते हैं (देखिये-दशरू० १।२० तथा सा० द० ६।७२)।

(३) प्राप्त्याशा—जब अनुकूल परिस्थितियों के कारण फल-प्राप्ति की संभावना होती है और विघ्नों के कारण वह असंभव सी दृष्टिगोचर हुआ करती है उस संदिग्ध अवस्था का ही नाम '-प्राप्त्याशा'' है (देखिये-दशरू० १।२१।। तथा सा० द० ६।७२)।

(४) नियताप्ति—जब विघ्नों के अभाव के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित हो जाया करती है तो 'नियताप्ति'' नामक अवस्था हुआ करती है (देखिये-दशरू० १।२१ तथा तथा सा० द० ६'७३)।

(५) फलागम—अभीष्ट फल की पूर्णरूपेण प्राप्ति हो जाना ही 'फलागम' कहलाता है (देखिये-दशरू० १।२२।। सा० द० ६।७३)।

पञ्च-सन्धियां—सन्धि शब्द का अर्थ है "जोड़"। कोई भी वस्तु विना जोड़ों के नहीं हुआ करती है। अनेक जोड़ों को समुचित रीति से मिला देने पर सम्पूर्ण पदार्थ एक विशिष्ट समन्वित रूप में हमारे नेत्रों के समक्ष आया करता है। नाटक भी एक ऐसा ही समन्वित पदार्थ है कि जिसमें पांच सन्धियाँ हुआ करती हैं। ये पांच सन्धियां पांच अर्थप्रकृतियों तथा पांच कार्यावस्थाओं के क्रमिक संयोग से उत्पन्न हुआ करती हैं। ये पांच हैं–(१) मुखसन्धि (२) प्रतिमुखसन्धि (३) गर्भसन्धि (४) अवमर्श अथवा विमर्श सन्धि (५) निर्वहण (अथवा उपसंहार) सन्धि (दशरू० १।२४।। सा० द० ६-७५)।

(१) मुख-सन्धि—बीज तथा आरम्भ को मिलाने वाली सन्धि को, जिसमें नाना प्रकार के रसों की उत्पत्ति भी हुआ करती है, मुख सन्धि कहते हैं। (दशरू० १।२४।)

(२) प्रतिमुख-सन्धि—विन्दु तथा यत्न को मिलाने वाली सन्धि को प्रतिमुखसन्धि कहा जाता है। इस सन्धि में उत्पन्न बीज कभी लक्षित होता है और कभी अलक्षित। (दशरू० १।३०)।

(३) गर्भ-सन्धि—बीज के दृष्टिगोचर हो जाने के पश्चात् जब पुनः बीज नष्ट हो जाता है तो उसका अन्वेषण बार-बार किया जाता है। यही गर्भसन्धि का स्वरूप है। यह प्राप्त्याशा तथा पताका के योग से उत्पन्न होती है। इस सन्धि में पताका की आवश्यकता सर्वत्र नहीं हुआ करती है। कहीं

पर उसकी विद्यमानता रहती है और कहीं पर नहीं। किन्तु प्राप्त्याशा का होना तो निश्चित है। इसमें फल छिपा रहा करता है। इसी कारण इसको गर्भ-सन्धि के नाम से कहा जाता है। (दशरू० १।३६)।

(४) **विमर्श-सन्धि**--जहां पर फल का उपाय तो पहले की अपेक्षा अधिक विकसित होता है किन्तु विघ्नों के आ जाने से उसमें आघात पहुँचता है वहां 'विमर्श-सन्धि' होती है। इस सन्धि में फल-प्राप्ति की पर्यालोचन की जाया करती है। नियताप्ति तथा प्रकरी के योग से इसकी उत्पत्ति हुआ करती है। प्रकरी का होना आवश्यक नहीं है। नियताप्ति का होना तो आवश्यक है। (दशरू० १।४३।*i*)। इस ही सन्धि को अवमर्श-सन्धि भी कहा जाता है।

(५) **निर्वहण-सन्धि**--जहां कार्य तथा फलागम का योग होता है अर्थात् प्रयोजन की पूर्ण सिद्धि हो जाती है वहां निर्वहण-सन्धि' होती है। (दशरू० १।४८)।

सन्धियों के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुख से कार्य का प्रारम्भ होता है, प्रतिमुख में वह वृद्धि को प्राप्त करता है, गर्भ में उत्कर्ष को प्राप्त करता है, विमर्श में वह फल की ओर झुकता है तथा निर्वहण में वह पूर्ण सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है।

कथावस्तु के दो विभाग--रंगमंच पर कथावस्तु के प्रदर्शित करने की दृष्टि से भी कथावस्तु के दो विभाग किये गये हैं (१) सूच्य (२) दृश्यश्रव्य। (१) सूच्य--कुछ वस्तुयें नीरस हुआ करती हैं अथवा रंगमंच पर उनका प्रदर्शन उचित नहीं हुआ करता है। अतः उनकी केवल सूचना ही दे दी जाती है। जिन साधनों के द्वारा सूच्य वस्तुओं की सूचना दी जाया करती है उन्हें "अर्थोपक्षेपक" (अर्थ=वस्तु + उपक्षेपक=सूचक) कहा जाता है। ये पांच होते हैं--विष्कम्भक--बीती हुयी अथवा आगे होने वाली घटनाओं की सूचना मध्यमश्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा संस्कृत होती है। (२) प्रवेशक--इसके द्वारा भी बीती हुयी अथवा आगे होने वाली घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाया करती है। इन पात्रों

की भाषा प्राकृत हुआ करती है। (३) चूलिका-पर्दे के पीछे बैठे हुये पात्रों के द्वारा वस्तु अथवा घटना की सूचना का दिया जाना। जैसे नेपथ्य से किया गया कथन। (४) अङ्कास्य—अंक की समाप्ति के समय गमन करते हुये पात्रों द्वारा आगामी अंक में होने वाली घटना की सूचना देना। (५) अङ्कावतार—अंक की समाप्ति से पूर्व ही आगामी अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।

कथावस्तु के तीन अन्य विभाग—कथावस्तु को सुनाने अथवा न सुनाने की दृष्टि से उसके तीन भाग किये गये हैं (१) **सर्वश्राव्य अथवा प्रकाश**—जो कथन सभी को सुनाये जाने योग्य है। इसी का नाम 'प्रकाश' भी है। (२) **अश्राव्य अथवा स्वगत**—जो बात सुनाने के योग्य न हो तथा जिसे मन ही मन कहा जाय। (३) **नियत श्राव्य**—जो बात कुछ विशिष्ट लोगों को ही सुनाने योग्य होती है। इसके दो प्रकार होते हैं—(i) **जनान्तिक**—हाथ की ओट करके दो पात्रों का परस्पर वार्त्तालाप करना कि जिससे अन्य पात्र उसका श्रवण न कर सकें। (ii) **अपवारित**—मुख को फेरकर किसी अन्य पात्र की गुप्त बात का कथन करना। इनके अतिरिक्त एक अन्य भेद भी है कि जिसे **'आकाशभाषित'** कहा जाता है। ऊपर आकाश की ओर मुख करके स्वयं अकेले ही बात करना।

नेता [नायक]

प्रधान पात्र को ही नेता अथवा नायक कहा जाता है। 'नेता' शब्द का निर्माण 'नी' धातु से होता है जिसका अर्थ है "ले चलना"। जो कथानक फल की ओर ले चलता है—उसी को 'नेता' कहा जाता है। फल का प्राप्ति-कर्त्ता अथवा भोक्ता भी यही हुआ करता है।

नेता के प्रकार—नाट्यशास्त्र के अनुसार इसके चार प्रकार होते हैं (१) धीरललित (२) धीरशान्त (३) धीरोदात्त तथा (४) धीरोद्धत। भरतमुनि के अनुसार देवता धीरोद्धत होते हैं। राजा धीरललित होते हैं। सेनापति एवं अमात्य धीरोदात्त तथा ब्राह्मण और वैश्य धीरशान्त हुआ करते हैं:—

देवा धीरोद्धता ज्ञेयाः स्युर्धीरललितानृपाः ।
सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ ।।
धीरप्रशान्ता विज्ञेया ब्राह्मणा वणिजस्तथा ।।

नाट्यशास्त्र २४।१८-१९'

(१) **धीरललित नायक का लक्षण**—इस श्रेणी का नायक राज-पाट की अथवा अन्यप्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होता है क्योंकि उसके योगक्षेम की चिन्ता उसके मन्त्री आदि के द्वारा की जाया करती है। इस चिन्ता-रहितता के कारण ही वह संगीत, नृत्य, चित्र आदि कलाओं का प्रेमी तथा सांसारिक भोग-विलास आदि में निरन्तर संलग्न रहा करता है। इसी कारण वह रसिकवृत्ति वाला होता है। चूँकि उसमें शृंगाररस की प्रधानता रहा करती है, अतएव वह विनम्र स्वभाववाला तथा सुकुमार आचरण वाला हुआ करता है। इस श्रेणी का नायक प्रायः राजा हुआ करता है। स्वप्नवासवदत्तम्' का नायक 'उदयन' अथवा 'मालविकाग्निमित्र' का नायक 'अग्निमित्र' इस ही श्रेणी के हैं।

"निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।। दशरूपक २।३ ।।"

(२) **धीरशान्तनायक का लक्षण**—नम्रता आदि सामान्य गुणों से युक्त ब्राह्मण, वैश्य अथवा मन्त्रिपुत्र आदि धीरशान्तनायक कहलाते हैं:—

"सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः ।" दशरूपक २।४।।

भवभूतिरचित 'मालतीमाधव' नामक प्रकरण का नायक 'माधव' इसी श्रेणी का नायक है।

(३) **धीरोदात्त नायक का लक्षण**—इस श्रेणी का नायक महासत्व सम्पन्न हुआ करता है। उसका अन्तःकरण क्रोध, शोक आदि विकारों से अभिभूत नहीं हुआ करता है। वह अत्यन्त गम्भीर, सहनशील, अविकत्थन (अपने ही मुख से अपनी ही प्रशंसा करने वाला न होना), स्थितचित्त (अचंचल मन वाला), स्वाभिमानी होने पर भी विनम्रता द्वारा दबे हुए अभिमान वाला, दृढ़व्रत (अर्थात् जिस बात का प्रण कर लिया करता है उसका अन्त तक निर्वाह करने वाला) होता है :—

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।। दशरूपक २।४-५।।"

'नाटक' नामक रूपक का नायक इस ही प्रकृति का हुआ करता है। 'वेणीसंहार' नाटक का नायक भी इस ही श्रेणी में आता है।

(४) धीरोद्धत नायक का लक्षण—इस श्रेणी का नायक अभिमान और ईर्ष्या (डाह) से भरा हुआ, माया (अर्थात् मन्त्रबल के द्वारा असत्य वस्तुओं को प्रकाशित करना) और कपट से परिपूर्ण, घमण्डी, चञ्चलचित्त वाला, क्रोधी तथा स्वयं ही आत्मप्रशंसक हुआ करता है। उसे अपने शौर्य आदि का अभिमान हुआ करता है। उसका चित्त अस्थिर हुआ करता है। इसके अतिरिक्त धीरोद्धत नायक स्वयं ही अपनी डींग मारने वाला हुआ करता है:—

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः ।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः ।। दशरूपक—२।५-६।।"

परशुराम आदि को इसी प्रकार का नायक कहा जा सकता है।

संस्कृत-नाटककारों ने उपर्युक्त चारों प्रकार के नायकों में धीरोदात्त नायक को ही श्रेष्ठ माना है तथा उसी को प्रायः स्वरचित नाटकों में स्थान प्रदान किया है। धीरशान्त अथवा धीरललित श्रेणी के नायक तो यत्र-तत्र ही दृष्टि-गोचर होते हैं। धीरोद्धत नायक का प्रयोग तो संस्कृत-नाटककारों ने प्रायः प्रतिनायक के रूप में ही किया है।

नायिका

"'नाटक' आदि रूपकों में नायक की ही भाँति नायिका का भी महत्व है—विशेषरूप से शृंगार-रस प्रधान नाटकों में। नायक की प्रेयसी अथवा पत्नी ही नायिका कही जाती है। नायक के सामान्य गुणों का नायिका में भी होना आवश्यक है। यह नायिका तीन प्रकार की होती है (१) स्वकीया (अर्थात् अपनी स्त्री) (२) परकीया (अर्थात् पराई स्त्री अथवा कन्या) तथा (३) सामान्या (अर्थात् किसी की भी स्त्री न होना)।

(१) **स्वकीया नायिका**— यह नायिका शील, लज्जा आदि गुणों से युक्त हुआ करती है। वह पतिव्रता, सच्चरित्रा, अकुटिला, लज्जायुक्त तथा पति के प्रति व्यवहार में पूर्णकुशल और पति-सेवा में संलग्न रहने वाली हुआ करती है:—

"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया ॥" सा०द० ३।५७॥

(२) **परकीया-नायिका**—यह दो प्रकार की होती है (१) ऊढा— जिसका विवाह हो चुका हो अर्थात् किसी अन्य की विवाहिता स्त्री। (२) अनूढा—जिसका विवाह न हुआ हो अर्थात् किसी की अविवाहित पुत्री (कन्या):—

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।
यात्रादि निरताऽन्योढा कुलटा गलितत्रपा ॥
कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना ॥ सा०द०३।६६-६७॥

(३) **सामान्या-नायिका**—यह साधारण स्त्री होती है। गणिका अथवा वेश्या की गणना इसमें की जाती है। यह केवल धन की दृष्टि से ही बाह्य प्रेम को ही प्रकट किया करती है :—

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक् ॥ दशरूपक-२।२१

रस

इसकी अभिव्यंजना, दर्शकों के हृदयों में रसोद्रेक की उत्पत्ति करना दृश्य-काव्य का प्रमुख उद्देश्य है। किन्तु इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना परमावश्यक है कि इसका इतना अधिक परिपोष न किया जाय कि जिससे कथावस्तु ही विच्छिन्न हो जाय। नाटक के लिये जितना आवश्यक तत्व "रस" है उतना ही आवश्यक तत्व वस्तु (कथावस्तु) भी है। दोनों ही तत्व एक दूसरे के सहायक हैं। कथावस्तु का सुन्दर तथा आकर्षक प्रतिपादन होना 'रस' के बिना असंभव है। इसी प्रकार जब मुख्य वस्तु ही नहीं होगी तो रसकी अनुभूति किसके आधार पर होगी ? अतः नाटक में वस्तु एवं रस की उपयोगिता समान ही है।

कथावस्तु के दो पक्ष और रस—कथावस्तु के दो पक्ष हुआ करते हैं (१) एक तो व्यवहारपक्ष अर्थात् विश्व में कोई घटना जिस प्रकार घटती है। (२) दूसरा है काव्यपक्ष अर्थात् नाटक के माध्यम से उसी घटना का चित्रण नाटककार किस प्रकार करता है? इन दोनों में प्रथम है लौकिक-पक्ष और दूसरा है अलौकिकपक्ष। इन दोनों ही पक्षों में रस उदित होता हो, ऐसा नहीं है। प्रथम दशा को तो भौतिकदशा ही कहना उपयुक्त है क्योंकि इस स्थिति में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में वस्तुतः रति (प्रेम) नामक एक भाव ही उदित होता है। रस की दशा तो दूसरे पक्ष में हुआ करती है। अर्थात् जब वही घटना कवि की प्रतिभा के बल पर शब्दों के माध्यम द्वारा काव्य अथवा नाटक का रूप धारण कर सामने आती है तब यह एक अलौकिक वस्तु होती है और तभी वह रस की अनुभूति भी कराया करती है।

संसार में रति आदि रूप स्थायीभावों के जो (आलम्बन अथवा उद्दीपन के) कारण, कार्य और सहकारी हुआ करते हैं उनका यदि काव्य अथवा नाटक में प्रयोग किया जाता है तो वे क्रमशः विभाव, अनुभाव और संचारी (अथवा व्यभिचारी) भाव कहलाते हैं। इन विभाव आदि के द्वारा व्यक्त हुआ (रति आदि) स्थायीभाव ही 'रस' शब्द वाच्य होता है।

रस के भेद—भरतमुनि आदि संस्कृत नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने नाट्य में केवल आठ रसों को ही मान्यता प्रदान की है और वे हैं—

(१) शृंगार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) बीभत्स और (८) अद्भुत।

प्रधान (अथवा अङ्गी) रस—सभी प्रकार के काव्यों में (चाहे वे श्रव्य हो अथवा दृश्य) प्रधानता केवल एक ही रस की होना आवश्यक है। प्रधानता की इस दृष्टि से शृंगार तथा वीर दो ही को प्रधान रसों की श्रेणी में रखा गया है। अन्य सभी रस इन ही प्रधान रसों के अंगभूत रसों के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। हाँ, नाटकादि रूपकों में यह बात अवश्य ध्यान रखने योग्य है कि निर्वहण-सन्धि में अद्भुत रस का उपनिबन्धन किया जाना नाट्य-सौन्दर्य की दृष्टि से आवश्यक है :—

एक एव भवेदङ्गी शृंगारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥ सा० द० ६।१०॥

संस्कृत-नाटकों का उद्भव

नाटकों (रूपकों) का उद्भव (उत्पत्ति) कब तथा कैसे हुयी ? यह क विवादपूर्ण प्रश्न है । भारतीय-नाट्यशास्त्र के उद्भव का विवरण प्रस्तुत करते हुये आदि-नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि देवगण एकत्रित होकर ब्रह्मा के समीप गये और उनसे यह प्रार्थना की कि आप हमको एक ऐसी मनोरंजन की वस्तु दीजिये कि जो दृश्य तथा श्रव्य दोनों ही हो तथा सभी वर्णों के मानव समानरूप से अपना सकें । उनकी प्रार्थना के आधार पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग को ग्रहण कर 'नाट्य-वेद' नामक पंचमवेद की रचना की । ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (कथोपकथन, संवाद आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्वों को ग्रहणकर उसकी रचना की:—

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम् ॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

नाट्यशास्त्र १–१६, १७॥

नाटक के निमित्त प्रमुखरूप से जिन चार तत्वों की आवश्यकता हुआ करती है, वे हैं (१) संवाद (२) संगीत (३) अभिनय और (४) रस । ये चारों तत्व वेदों में विद्यमान हैं । इस आधार पर वेदों से नाटकों का उद्भव मानना उचित ही प्रतीत होता है । ऋग्वेद में अनेक संवादसूक्त विद्यमान हैं—(१) पुरूरवा-उर्वशी संवाद (१०।९५), सरमापणि संवाद (१०।१०८), इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद (१०–८६), यम-यमी-सूक्त (१०।१०), अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (१।१७९) इत्यादि-इत्यादि । इन सूक्तों में नाटकोपयोगी 'संवाद' सम्बन्धी तत्व पूर्णतया उपलब्ध है । अग्नि इन्द्र, मरुत्, उषस् आदि देवताओं से सम्बन्धित सूक्तों में नाटकोपयोगी 'पाठ्य पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होता है । सामवेद तो संगीतप्रधान वेद है ही । यजुर्वेद

में यज्ञों से सम्बन्धित क्रियाओं में 'अभिनय' का अंश विद्यमान है। अथर्ववेद में प्रायः सभी रसों की उपलब्धि होती है। ऐसी स्थिति में चारों वेदों से आवश्यक तत्वों को लेकर नाटकों के उद्भव को स्वीकार किये जाने वाला विचार उचित ही प्रतीत होता है।

उपर्युक्त सिद्धान्त के विद्यमान होने पर भी कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने अनुसंधान के आधार पर नाटकों की उत्पत्ति के बारे में अनेक विचारधारायें प्रस्तुत की हैं। साथ ही विभिन्न वादों की भी स्थापना की है। इन वादों में से कुछ का सम्बन्ध तो धार्मिक-भावनाओं से हैं और कुछ का लौकिक-लीलाओं अथवा रीति-रिवाजों से। इन सम्पूर्ण वादों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) परम्परागतवाद (२) धार्मिक-भावनावाद और (३) लौकिकलीलावाद।

(१) परम्परागतवाद

(i) द्युलोकवाद— धर्मप्रधान भारतीयों का विश्वास है कि नाट्यविज्ञान का आविर्भाव देवलोक से हुआ है। इसके आविर्भाव का काल त्रेतायुग माना गया है। सत्ययुग में तो सभी प्राणी सुखी थे। त्रेतायुग के आने पर ही दुःखों का स्पष्टीकरण हुआ। दुःखों के प्रकट होने पर मनोविनोद की भी आवश्यकता अनुभव की गयी। परिणामस्वरूप 'सुर' तथा 'असुर' दोनों ही ब्रह्मा के समीप गये और कहा कि दुःखों से कुछ समय के लिये छुटकारा प्राप्त करने हेतु कोई मनोविनोद का साधन हमको प्रदान कीजिये कि जिससे हम लोग उतने समय के लिये कष्टों को भूल जाया करें। उन्होंने ध्यानावस्थित होकर सांसारिक प्राणियों के हित की दृष्टि से 'नाट्यवेद' को प्रकट किया। उन्होंने ऋग्वेद से नृत्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से 'रस' को लेकर नाट्यकला की रचना की और इसको पंचमवेद का नाम प्रदान किया। इसमें शिव ने ताण्डव-नृत्य, पार्वती ने लास्य-नृत्य तथा विष्णु ने चार प्रकार की वृत्तियों का समावेश करके पूर्ण कलात्मकता उत्पन्न कर दी। स्वर्गलोक स्थित, निर्माणकार्य में दक्ष विश्वकर्मा ने एक सुन्दर रंगमंच का

भी निर्माण कर दिया तथा इस रंगमंच पर नाटकों का अभिनय भी प्रारम्भ हो गया। त्रिपुरदाह तथा समुद्रमन्थन नामक दो नाटक अतिप्राचीन कहे जाते हैं। इन दोनों का अभिनय 'इन्द्रध्वज' पर्व के अवसर पर किया गया था कि जिसमें पुरुषों का अभिनय पुरुषपात्रों द्वारा और स्त्रियों का अभिनय स्त्री-पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया था। नाट्य सम्बन्धी इस कला को इस पृथ्वी लोक पर पहुँचाने का कार्य भरतमुनि को सौंपा गया। इस प्रकार से यह कला द्युलोक (देवलोक) से पृथ्वीलोक पर आई।

उपर्युक्त कथानक में वास्तविकता कितनी है, इस बारे में कुछ भी कहा जा सकना संभव नहीं है। किन्तु इसके आधार पर नाट्यकला सम्बन्धी निम्नलिखित बातों का ज्ञान तो पाठकों को हो ही जाता है:—

(१) नाट्यकला के निर्माण में ऋग्वेद आदि चारों वेदों का कुछ न कुछ योग अवश्य है।

(२) उस काल में सभी नाटक धार्मिक हुआ करते थे कि जिनका अभिनय धार्मिक पर्वों के अवसरों पर हुआ करता था।

(३) उस काल में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही अपना-अपना अभिनय किया करते थे।

(४) वैदिक काल में किसी भी नाटक का निर्माण नहीं हो सका था। इसी कारण देवों तथा दानवों को मिलकर ब्रह्मा से प्रार्थना करनी पड़ी होगी।

(२) धार्मिकभावनावाद

(२) **मृतकपूजावाद**—डा० रिजवे (Dr. Ridgeway) के मतानुसार सम्पूर्ण संसार के नाटकों की उत्पत्ति मृत-आत्माओं को प्रसन्न करने तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने की दृष्टि से हुयी। ग्रीस, भारत आदि सभी प्राचीन देशों में प्राचीनकाल से ही इस भाँति की श्रद्धा को प्रकट करने की परम्परा चली आती है। यह श्रद्धा ही सभी धर्मों का मूल है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नाटकों का अभिनय मृत-आत्माओं को प्रसन्न करने की दृष्टि से ही हुआ करता था। रामलीला तथा कृष्णलीलायें भी इसी

भावना की ही द्योतक हैं। अतः यह स्वीकार करना उचित ही होगा कि मृतकपूजा के कारण ही धीरे-धीरे नृत्य, गान और अभिनय होने लगे।

किन्तु डा० रिजवे का उपर्युक्त मत विद्वानों द्वारा मान्य न हो सका क्यों कि राम तथा कृष्ण आदि की पूजा अथवा उनकी लीलाएँ करने का प्रयोजन उपर्युक्त श्रद्धा-प्रकटन नहीं है, वरन् उनके चरित का स्मरण और श्रवणकर अपने जीवन को तदनुसार निर्माण करना ही उनका लक्ष्य है। साथ ही राम और कृष्ण की स्मृति को चिरस्थायी बनाना भी है।

(३) मे-पोल-वाद—डा० रिजवे का उपर्युक्त मत पाश्चात्य-विद्वानों को अभिमत नहीं हुआ। अतः उन्होंने नाटक की उत्पत्ति मे-पोल (May-Pole) नृत्य से मानी। पाश्चात्य देशों में मई-मास अत्यधिक आनन्द तथा उल्लास का माना जाता है। इसमें लोग हर्षोल्लास के साथ उत्सव मनाया करते हैं, नाचते-कूदते हैं तथा पूर्ण आनन्द का अनुभव किया करते हैं। इतना ही नहीं वे लोग एक लम्बा बांस गाड़कर उसके अधोभाग में एकत्रित होते हैं तथा सभी स्त्री-पुरुष मिलकर नृत्य किया करते हैं। भारतवर्ष में 'इन्द्रध्वज' नामक पर्व भी इसी रूप में मनाया जाता था।

उपर्युक्त कथन ठीक है कि सभी देशों में वसन्तऋतु का उत्सव बड़े आनन्द तथा उल्लास के साथ मनाया जाया करता है। मे-पोल सम्बन्धी उत्सव भी वसन्त में ही हुआ करता है। हां, भारत में इन्द्रध्वज का पर्व अवश्य वर्षा-ऋतु में हुआ करता है। अतः मे-पोल के साथ नाटक के उद्भव का सम्बन्ध जोड़ना पूर्णतया अनुपयुक्त ही प्रतीत होता है।

(४) कृष्णोपासनावाद—इस वाद के अनुसार नाटकों का उद्भाव मात्र कृष्ण की उपासना से ही स्वीकार किया गया है। यह तो सत्य ही है कि कृष्णोपासना के कई अङ्गों का नाट्य सम्बन्धी अभिनय आदि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए—रथयात्रायें, नृत्य, वाद्य, गीत और लीलायें—ये सभी इस प्रकार के साधन हैं कि जो संस्कृत-नाटकों (रूपकों) के निर्माण में सहायक हैं। अतः इसी आधार पर विद्वानों ने संस्कृत-नाटकों का सर्वप्रथम विकास कृष्णोपासना द्वारा ही स्वीकार किया है।

इस वाद में महानतम दोष यही है कि कृष्णसम्बन्धी नाटक ही प्राचीन-तम हैं—इस बारे में कोई पुष्टप्रमाण उपलब्ध ही नहीं होता है। इसके अति-

रिक्त राम, शिव, आदि अन्य देवों की प्रसिद्ध उपासनाओं के द्वारा भी भारतीय-नाटकों के विकास में सहयोग तो अवश्य ही प्राप्त हुआ होगा, किन्तु फिर भी उपर्युक्त मत में इसकी उपेक्षा की गई है।

(३) लौकिकलीलावाद

(५) लोकप्रिय स्वांगवाद—प्रो० हिलेब्राण्ट (Hillebrandt) तथा प्रो० स्टेन कोनो (Sten Konow) के मतानुसार नाटकों का जन्म लोकप्रिय स्वांगों से हुआ। भारत में पहले इस प्रकार के स्वांगों का प्रचार बहुत अधिक था। इन स्वांगों में रामायण तथा महाभारत के कथानकों का सम्मिश्रण कर भारतीय नाटकों की कथावस्तु तैयार की गयी होगी। किन्तु डा० कीथ का उपर्युक्त मत के बारे में यह कथन है कि नाटक के प्रचार से पूर्व स्वांगों के प्रचलित होने के बारे में कोई सुदृढ़ प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। श्री स्टेन कोनो ने जिन प्रमाणों को उद्धृत किया है वे प्रायः सभी महाभाष्य के समकालीन अथवा उसके पश्चात् के प्रतीत होते हैं। अतः उनसे स्वाँगों के प्राचीन होने की बात सिद्ध नहीं होती है। इसकी अपेक्षा प्रो० हिलेब्रैण्ट द्वारा दी गयी युक्तियों में कुछ बल अवश्य प्रतीत होता है। उन्होंने (१) नाटकों में गद्य एवं पद्य दोनों का होना, (२) रंगशालाओं में आडम्बर-शून्यता तथा सादगी का होना, (३) नाटकों में संस्कृत भाषा के साथ प्राकृतभाषा का भी प्रयोग होना तथा (४) विदूषक सदृश जनप्रिय पात्र के आधार पर नाटकों का उद्भव लोकप्रिय स्वाँगों से माना है। इन चारों में प्रथम तीन का समाधान तो किसी प्रकार हो जाता है तथा नाटकों के उद्भव का सम्बन्ध धार्मिक संस्कारों के साथ जुड़ जाता है, किन्तु विदूषक जैसे पात्र का होना सम्भव प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यदि इसे माना भी जाय तो इसकी संभावना महाव्रत संस्कार में प्रयुक्त शूद्रपात्र से की जा सकती है। किन्तु महाव्रत तो एक धार्मिक-संस्कार है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है कि जिसके आधार पर नाटकों में विदूषक सदृश पात्र के रखने का सम्बन्ध किसी लौकिक-लीला के साथ रहा हो।

(६) पुत्तलिकानृत्यवाद—जर्मन विद्वान डा० पिशेल (Dr. Pisehel) ने नाटकों की उत्पत्ति को कठपुतलियों के नृत्य से माना है। नाटकों में प्रयुक्त

हरि शंकर चतुर्वेदी

हरि शंकर चतुर्वेदी

होने वाले 'सूत्रधार तथा स्थापक' आदि शब्द इस मत के अनुमोदक हैं। कथासरित्सागर, महाभारत तथा राजशेखरकृत बालरामायण में इनका उल्लेख प्रायः पुत्तलिका, दारुमयीपुत्रिका आदि नामों द्वारा किया गया है। किन्तु यह मत भी स्वीकरणीय प्रतीत नहीं होता। प्रो० हिलब्रैंट के सिद्धांतानुसार कठपुतलियों के नृत्य सम्बन्धी इतिहास को दृष्टि में रखते यह अवश्य स्वीकार कर लेना पड़ता है कि नाटकों की उत्पत्ति उससे पूर्व ही हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के भावों तथा रसों से युक्त नाटकों की उत्पत्ति साधारण पुत्तलिका-नृत्य से मानना पूर्णतया निराधार तथा असंगत ही प्रतीत होता है।

(७) **छायानाटकवाद**—डा० लूडर्स (Dr. Luders) के मतानुसार नाटकों की उत्पत्ति छाया द्वारा दिखलाये जाने वाले नाटकों से हुयी है। छाया द्वारा नाना प्रकार के खेलों को दिखलाये जाने की प्रथा पूर्वकाल में प्रचलित थी। महाभाष्य में वर्णित शौनिक मूक-अभिनेताओं अथवा छाया-मूर्तियों की चेष्टाओं के व्याख्याकार थे। इस सम्बन्ध में डा० कीथ का कहना है कि डा० लूडर्स का उपर्युक्त कथन महाभाष्य के अशुद्ध-अर्थ पर ही आधारित है। अतः पूर्णतया अस्वीकरणीय है। छायानाटकवाद-सम्बन्धी उक्त मत की सबसे बड़ी त्रुटि तो यही है कि इसके आधार पर नाटकों में गद्य-पद्य-मिश्रण तथा संस्कृत-प्राकृत के प्रयोग का कोई कारण नहीं बतलाया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि अन्य वादी के सदृष इस बाद के स्वीकार करने वाले को भी नाटकों की सत्ता छाया द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले खेलों की उत्पत्ति से पहले ही मान लेनी पड़ती है।

(८) **संवादसूक्तवाद**—ऋग्वेद में ऐसे अनेक संवादसूक्त उपलब्ध होते हैं जिनमें धार्मिक-भावनाओं के अलावा लोकव्यवहार सम्बन्धी संवादों का भी उल्लेख उपलब्ध होता है। (इनका उल्लेख हम इस प्रकरण के प्रारम्भ में भी कर चुके हैं।)। प्रो० मैक्समूलर का ध्यान १८६९ में इन संवाद-सूक्तों की ओर गया और उन्होंने इन्हीं सूक्तों को नाटकों की उत्पत्ति का मूलभूत कारण माना। इसके अनन्तर प्रो० सिलवनलेवी, प्रो० वान श्रोडर तथा डा० हर्टल आदि कुछ अन्य विद्वानों ने भी इसी मत का पूर्णरूपेण

समर्थन किया। नृत्य, गीत और संवाद-नाटकों के प्रमुख साधन हैं। पूर्वकाल में इन संवादों के साथ नृत्य एवं गीत का भी योग रहा होगा। किन्तु अब उनका रूप वहाँ प्राप्त नहीं होता। हां, विवाह-सूक्त के अन्तर्गत ऋग्वेद में नव-दम्पतियों के समक्ष पुरन्घ्रियों द्वारा नृत्य किये जाने का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है। गीत तो ऋग्वेद में अनेक उपलब्ध होते ही हैं। इनके अतिरिक्त उक्त संवाद-सूक्तों में से कुछ में सुन्दर वार्त्तालाप भी विद्यमान है। ऐसी दशा में उक्त संवाद-सूक्तों द्वारा ही नाटकों की उत्पत्ति हुई होगी, ऐसा मान लिया जाना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

(९) **वैदिक-अनुष्ठानवाद**—कुछ अन्य विद्वानों ने इन संवाद-सूक्तों के अतिरिक्त वैदिक-अनुष्ठानों को भी नाटकों की उत्पत्ति का जनक माना है। वैसे तो वैदिक-अनुष्ठानों में नाटकों सम्बन्धी प्रायः सभी उपादानतत्व उपलब्ध हो सकते हैं। ऊपर जिन संवाद-सूक्तों का विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है उनको भी एक प्रकार से वैदिक-अनुष्ठानों का अङ्ग ही कहा जा सकता है। वैदिक-काल में 'महाव्रत' नामक अनुष्ठान का अधिक प्रचलन था। यह अनुष्ठान तो एक प्रकार के नाटक के ही समान था। इसके अनुष्ठान में कुमारियों द्वारा अग्नि के चारों ओर नृत्य किया जाया करता था। प्रकाश की दृष्टि से हुई वैश्य एवं शूद्र की कलह का वर्णन नाटकीय-अभिनय का ही ज्ञापक है। इसके अतिरिक्त यज्ञ-सूत्रों में यज्ञ-मण्डप के अभ्यन्तर स्थित यजमानों तथा याजकों के मनोविनोद हेतु प्रस्तुत वार्तालाप से युक्त सूक्तों से नाटकों के कथोपकथनों का ज्ञान प्राप्त होता है। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि नाटकों के अभ्यन्तर आया हुआ गद्यमय-संवाद, महाव्रत में प्रयुक्त संवाद को देखकर ही रखा गया है। इस बाद के आधार पर यह तो माना ही जा सकता है कि वैदिक-अनुष्ठानों में सभी नाटकीय-उपादान-तत्व उपलब्ध होते हैं।

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त प्रो॰ वेबर (Prof. Weber) तथा प्रो॰ विंडिश (Prof. Windisch) ने भारतीय नाटकों की उत्पत्ति में यूनानी नाट्यकला के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु प्रो॰

सिलवन लेवी आदि कुछ अन्य विद्वानों ने इस मत का पूर्णरूपेण विरोध किया है।

विभिन्नवादों सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचीन नृत्य, गीत और संवादों का विशिष्ट हाथ रहा है। प्रायः सम्पूर्ण जातियों अथवा वर्गों में नृत्य, गीत आदि का प्रचलन अति प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया, वैसे ही वैसे इन नृत्य, गीत आदि का भी विकास होता गया। नृत्य, गीत आदि का यह विकसितरूप ही बाद में 'नाटक' शब्द द्वारा कथित हुआ जिसमें अभिनय ने और भी जीवन डाल दिया। अतः यह कहा जाना अनुपयुक्त न होगा कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारत में ही हुआ।

संस्कृत-नाटकों का क्रमिक-विकास

नाटक के प्रमुख अंग-संवाद, संगीत, नृत्य और अभिनय स्वीकार किये गये हैं। ऋग्वेद में यम-यमी (ऋग्वेद १०।१०), पुरूरवा एवं उर्वशी (ऋग्वेद १०।९५), सरमा और पणि (ऋ० १०।१०८) आदि संवादात्मक सूक्तों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनसे नाटक सम्बन्धी 'संवाद' तत्व का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में नाटक के उपर्युक्त सभी अंगों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान था। अतएव ऐसी संभावना की जा सकती है कि ये वैदिक-संवादात्मक सूक्त ही आगे आने वाले युग में परिमार्जित एवं परिष्कृत होकर नाटकों के रूप में परिणत हो गये होंगे।

ऋग्वेदीय सूक्तों से ज्ञात होता है कि 'सोमविक्रय' के अवसर पर एक प्रकार का अभिनय हुआ करता था जिसका एकमात्र उद्देश्य मनोरंजन ही था। अश्वमेधादि यज्ञों के अवसरों पर तथा उसके अन्तर्गत होने वाले कर्मानुष्ठानों के मध्य प्राप्त होने वाले अवकाश के समय शुनःशेप आदि से सम्बन्धित प्राचीन आख्यानों का कथन किया जाया करता था। इन आधारों पर यह भी सोचा जा सकता है कि उपर्युक्त प्रसङ्गों के समय वैदिक-देवताओं के

चरित्र सम्बन्धी नाटकों का अभिनय भी अवसर के अनुसार अवश्य किया जाता रहा होगा। यह संभव है कि ये नाटक कला की दृष्टि से सर्वाङ्गपूर्ण न रहे हों; किन्तु फिर भी यह तो निस्सन्देह कहा ही जा सकता है कि उनमें संस्कृत-नाट्यकला के बीज (आधार) तो विद्यमान थे ही।

वेदों में विद्यमान संवादात्मक-सूक्तों के आधार पर मैक्समूलर ने भी यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारतीय नाट्यकला की उत्पत्ति वैदिक-युग से हुई है।[1] डा० दासगुप्ता भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि वेदमन्त्रों में नाटकीय तत्वों की विद्यमानता प्रचुरमात्रा में है। और तत्कालीन धार्मिक अवसरों, संगीत-समारोहों तथा नृत्योत्सवों से नाटक का घनिष्ट सम्बन्ध था।[2]

'वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल-यजुर्वेद[3] संहिता तथा 'तैत्तिरीय-ब्राह्मण'[4] में "शैलूष" शब्द उपलब्ध होता है। जिसका अर्थ होता है—'नट'। "कौषीतकि-ब्राह्मण" में नृत्य, गीत तथा संगीत की गणना प्रमुख विद्याओं में की गई है। महाव्रत[5] में वृष्टि के उदय तथा पशुओं की समृद्धि हेतु, अग्नि के चारों ओर कुमारियों द्वारा नृत्य किये जाने का वर्णन आता है। साथ ही विवाह-समाप्ति से पूर्व अग्निदेव के समक्ष स्त्रियों के नृत्य का भी संकेत उपलब्ध होता है। इन विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक तथा ब्राह्मण काल में नटों का तथा नाट्यकला का अस्तित्व विद्यमान था।

---

१. मैक्समूलर-ओरिजिन ऑफ दी ऋग्वेद-वाल्यूम-प्रथम पृष्ठ-१७३।

२. डॉ० एस० एन० दासगुप्ता तथा एस० के० डे०:—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—वाल्यूम—प्रथम पृष्ठ ४४ (संस्क० १९४७)।

३. नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय समाहरं—इत्यादि मन्त्र—यजुर्वेद-३०।६।

४. तैत्तिरीयब्राह्मण—३।४।२।

५. संस्कृत-साहित्य का इतिहास (बलदेव उपाध्याय) पंचम संस्क० पृष्ठ ४५२ पंक्ति ९—११।। "हमारी नाट्यपरम्परा"-(श्रीकृष्णदास) पृष्ठ ३६ पंक्ति ५-८।

रामायण तथा महाभारत काल में नाट्यकला की ओर भारतीय लोगों का ध्यान था, इस बारे में सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं है क्योंकि इन दोनों ही महाकाव्यों[1] में "नट" 'नर्त्तक' तथा 'गायक' आदि का उल्लेख अनेक स्थलों पर आता[2] है। वाल्मीकिरामायण (२।६७।१५) में आता है कि जिस जनपद में राजा नहीं रहा करता है उस जनपद में नट, नर्त्तक आदि प्रसन्न दृष्टिगोचर नहीं रहा करते हैं। वाल्मीकि-रामायण (अयोध्याकाण्ड-६७।१५) में नट तथा नर्त्तकों की गोष्ठी और मनोरञ्जन का वर्णन मिलता है। "व्यामिश्र" शब्द का प्रयोग इस प्रकार[3] के नाटकों के लिए किया गया है कि जिन नाटकों में भाषाओं का मिश्रण रहा करता था।

इस काल में जिन नाटकों का सृजन हुआ था उन पर धर्म का प्रभाव था। धार्मिक उत्सवों के अवशरों पर मनोरंजन के निमित्त राम तथा कृष्ण की लीलाओं का अभिनय किया जाता था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है इस काल में 'नाटक' जनसाधारण के आदर का पात्र बन गया था।

संस्कृत-भाषा-विषयक व्याकरण-निर्माता 'पाणिनि' थे। विद्वानों द्वारा इनका काल ईसापूर्व ७०० वर्ष माना गया है (देखिये—उपाध्याय बलदेव-संस्कृत साहित्य का इतिहास-(पंचम संस्क०) पृष्ठ-१४६ पंक्ति ५-८)। उनके द्वारा रचित अष्टाध्यायी में नट सम्बन्धी सूत्रों का उल्लेख प्राप्त होता[4] है। इन सूत्रों में 'कृशाश्व' तथा 'शिलालि' आदि आचार्यों द्वारा निर्मित नट-सूत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। इस विवरण से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इस

---

१. नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्त्तकाः"-बाल्मीकि रामायण-२।६७।१५।
"आनर्त्ताश्च तथा सर्वे नटनर्त्तकगायकाः।"-महाभा०वनपर्व १५।१३।

२. डॉ० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास—पृष्ठ २६ (द्वितीय संस्क०)।

३. वाल्मीकि रामायण—अयोध्या० १।२७।

४. "पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः॥" अष्टा० ४।३।११० ।
"कर्मन्दकृशाश्वादिनिः" ॥ अष्टा० ४।३।१११ ।

काल तक नाटकों का इतना प्रचार हो गया था कि नटों की शिक्षा के निमित्त स्वतन्त्र सूत्र-ग्रन्थों का निर्माण होने लगा था।

इसके पश्चात् पतंजलि मुनिकृत 'महाभाष्य' उपलब्ध होता है। इस महाभाष्य में कुछ ऐसे स्थल उपलब्ध होते हैं कि जिनके आधार पर नाटकों के रंगभूमि पर प्रयुक्त किये जाने के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। इसमें आये हुये निम्नलिखित वर्णन से—

"ये तावदेते शोभनिका (सौभिका) नामैते, प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्ति इति। ···अतश्च सतः व्यामिश्रा हि दृश्यन्ते; केचित् कंसभक्ताः भवन्ति केचित् वासुदेवभक्ताः। वर्णान्यत्वं खलु पुष्यन्ति। केचिद्रक्तमुखा भवन्ति, केचित् कालमुखाः॥" महाभाष्य—३।२।१११।

यह सिद्ध हो जाता है कि पतंजलि के समय में "कंसवध" और "बलिबन्ध" नामक नाटक दिखलाये गये थे। उपर्युक्त उद्धरण में "कंसं घातयन्ति" और "बलिं बन्धयन्ति" में प्रयुक्त वर्त्तमानकालिक क्रिया का समाधान करते हुये भाष्यकार ने उन नटों (शोभनिकों) का उल्लेख किया है कि प्रत्यक्ष रूप से सभी के समक्ष कंस का हनन करते हैं और बलि को बाँधते हैं।

इस विवरण से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उक्त दोनों नाटक पतंजलि के समय में प्रचलित थे।

इसके अतिरिक्त उन्होंने इन नाटकों के अभिनय-प्रकार का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है कि 'कंसवध' नामक नाटक में कंस के भक्तजन तो काला मुख बनाकर अभिनय करते थे और कृष्ण-भक्त जन मुख को लाल रंगकर अभिनय करते थे। पतञ्जलि के इस कथन द्वारा यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उनके काल तक नाटकों का अभिनय जनसाधारण के मनोरंजन का एक उत्तम तथा लोकप्रिय साधन बन चुका था।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत-नाटकों का क्रमिक-विकास वैदिक-काल से ही प्रारम्भ हो गया था। विकास के उक्त क्रम में इतिहास, पुराणों तथा कुछ लोक-गीतों से यथेष्ट सहायता

प्राप्त हुई। धार्मिक एवं सामाजिक-उत्सवों से भी इस विकास को पूर्ण सहयोग तथा प्रेरणा उपलब्ध हुयी। इस भाँति महर्षि पतञ्जलि के समय तक नाटक ने अपने पूर्ण विकसित स्वरूप को प्राप्त कर लिया था तथा उसका अभिनय भी किया जाने लगा था। इतना अवश्य है कि उनके महाभाष्य में जिन नाटकों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है वे आज हमें उपलब्ध नहीं हैं।

महाकवि भट्टनारायण का जीवनवृत्त

यह कथन नितान्त सत्य है कि अपनी प्रतिभा के आलोक से समस्त विश्व को आलोकित करने वाले संस्कृत-साहित्य के महाकवियों एवं नाटककारों ने अपने देश एवं काल के सम्बन्ध में अपनी रचनाओं में कुछ भी लिखना आवश्यक नहीं समझा। इस साधारण सी बात की ओर उनका ध्यान गया ही नहीं। वस्तुतः वे तो सार्वभौम तथा सार्वकालिक कवि थे। अतः उनकी दृष्टि में अपने देश अथवा काल आदि के सम्बन्ध में लिखा जाना कोई अधिक महत्व की बात न थी।

इसी उपर्युक्त परम्परा का ध्यान रखते हुये 'वेणीसंहार' के रचयिता 'भट्टनारायण' ने भी अपने सम्बन्ध में स्पष्टरूप से कुछ भी नहीं लिखा है। ऐसी स्थिति में उनके जीवन आदि के बारे में विचार करते समय हमें अनुमान का ही आश्रय प्राप्त करना पड़ता है।

जीवन-वृत्त—भट्टनारायण ने 'वेणीसंहार' की प्रस्तावना में अपने आपको "मृगराजलक्ष्मा" ("तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम्"—इत्यादि) कहा है। इससे केवल यही ज्ञात होता है कि इनको 'कवीन्द्र' अथवा 'कविमृगेन्द्र' कहा जाता था। इसके अतिरिक्त यह नाटक अपने रचयिता कवि के बारे में एक-दम मौन है।

हां, उनके सम्बन्ध में राजवंशावलियों से कुछ जानकारी अवश्य उपलब्ध होती है। बंगाल के राजाओं अथवा राजवंशों के सम्बन्ध में 'क्षितीशवंशावली चरित', 'वंगराजघटक', 'राजावली' तथा 'दक्षिणाराधीयघटककारिका' इत्यादि संस्कृत में कुछ ऐतिहासिक लेख [Cronicles] अवश्य देखने को मिलते हैं कि जिनसे यह ज्ञात होता है कि भट्टनारायण कन्नोज निवासी,

शाण्डिल्य गोत्रीय ब्राह्मण थे (कुछ लोगों ने इन्हें सारस्वत ब्राह्मण भी कहा है ।) । बंगाल के सेनवंश के प्रवर्त्तक गौडाधिपति 'आदिसूर' ने कन्नौज (भूतपूर्व कान्यकुब्ज) से पाँच ब्राह्मण परिवारों को वैदिकधर्म के प्रचार हेतु बुलवाया था । इन पाँच में एक भट्टनारायण का परिवार भी था । 'आदिसूर' द्वारा इन्हें वैदिक-अनुष्ठान कराने के निमित्त दक्षिणा में पाँच गाँव प्रदान किये गये थे । धीरे-धीरे इनकी यह राज्य-सम्पत्ति विस्तृत होती गयी और अन्ततोगत्वा वे भी एक राजवंश के प्रवर्त्तक हो गये ।

गौडाधिपति 'आदिसूर' द्वारा भट्टनारायण को बुलाने का उद्देश्य क्या था अथवा वे ही कान्यकुब्ज को छोड़कर बंगाल में जाकर क्यों बस गये ? इन बातों का उत्तर राजवंशावलियों में विभिन्नरूपों में उपलब्ध होता है । "क्षितीशवंशावलीचरित" के आधार पर यह ज्ञात होता है कि 'आदिसूर' एक शूद्र राजा थे । वे कोई वैदिक-अनुष्ठान कराने के इच्छुक थे । वंगदेश-वासी पुरोहितों ने एक शूद्र को उक्त अनुष्ठान आदि कराने से मना कर दिया । परिणामस्वरूप "आदिसूर" ने कन्नौज देश के राजा से ब्रह्मज्ञानी योग्य वैदिक विद्वानों को अपने यहाँ भेजने के निमित्त प्रार्थना की और उसी आधार पर उक्त पांच ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण परिवार उनके यहाँ पहुँचे ।

एक अन्य कथा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि एकबार वंगदेश (वंगाल) में सूखा पड़ गया । अतएव राजा 'आदिसूर' ने अपने देश में वर्षा कराने की दृष्टि से कन्नौज के पाँच ब्राह्मणों को बुलाया था । इन पाँचों में 'भट्टनारायण' प्रमुख थे ।

'वंगराबघटक' के आधार पर राजा 'आदिसूर' एक इस प्रकार के यज्ञ को करने के अभिलाषी थे कि जिससे भगवान् उनसे प्रसन्न हो जायें । उनकी इस अभिलाषा को पूर्ण करने वाला कोई भी ब्राह्मण उनके राज्य में उपलब्ध न हो सका । फलतः उन्होंने उक्त कार्य के निमित्त कन्नौज से पाँच ब्राह्मणों को बुलाया ।

एक दूसरी कथा के आधार पर यह ज्ञात होता है कि वंगदेश पर आने वाली भावी विपत्तियों को ध्यान में रखते हुये 'आदिसूर' ने उनके निवारण हेतु उक्त पाँच ब्राह्मणों को कन्नौज से बुलवाया था ।

उपर्युक्त चार कथानकों के अतिरिक्त एक पाँचवी कथा और उपलब्ध होती है कि जिससे यह ज्ञात होता है कि धार्मिक उत्पीडन के कारण उक्त पाँच ब्राह्मण-परिवार स्वयं ही कन्नौज छोड़कर वंगदेश चले गये थे।

उपर्युक्त सभी मतों में से किसी भी मत की पुष्टि में कोई पुष्ट-प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। हां, श्री ए० बी० गजेन्द्रगडकर महोदय द्वारा उपरि-वर्णित पंचम कथानक को उनके द्वारा सम्पादित 'वेणीसंहार' की भूमिका में अधिक उपयुक्त तथा विश्वसनीय सिद्ध करते हुये यह अवश्य कहा गया है कि उस समय कान्यकुब्ज में बौद्ध-धर्म की ही प्रधानता थी। अतः संभव है कि उस समय कान्यकुब्ज में वैदिकधर्म के प्रति आस्था रखने वाले ब्राह्मणों का धार्मिक-उत्पीडन किया जाता रहा हो तथा भट्टनारायण सदृश वैदिक-ब्राह्मणों को कन्नौज को छोड़कर वंगदेश (बंगाल) चला जाना पड़ा हो। यही भट्टनारायण 'वेणीसंहार' नामक नाटक के रचयिता हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से यही निष्कर्ष निकलता है कि 'वेणीसंहार' नामक नाटक के रचयिता भट्टनारायण वे ही व्यक्ति हैं कि जो कन्नौज त्याग कर बंगाल गये थे तथा जिनकी चर्चा वंगदेशीय "क्षितीशवंशावलीचरित" में उपलब्ध होती है। किन्तु जब हम इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते हैं तब हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उपर्युक्त मत विश्वसनीय तथा मान्य नहीं है। इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित रूप में विचार करते हैं—

प्रथम बात तो यह है कि हम संस्कृत नाटकों का अध्ययनकर यह भली-भांति अनुभव कर चुके हैं कि जो कवि किसी राजा के आश्रित रहा करते थे उनकी रचनायें सर्वप्रथम राजाओं की परिषदों के समक्ष ही अभिनीत हुआ करती थीं। संस्कृत नाटकों की प्रस्तावनाओं में इस प्रकार के उद्धरण प्रायः सर्वत्र ही उपलब्ध होते हैं। किन्तु 'वेणीसंहार' नाटक की प्रस्तावना में इस प्रकार की कोई भी बात दृष्टिगोचर नहीं होती है। इस प्रस्तावना में न तो किसी राजा के ही नाम आदि का उल्लेख किया गया है और न उसकी परि-षद का ही (देखिए—"(समन्तादवलोक्य) तत्रभवतः परिषदग्रेसरान् विज्ञाप्यं नः किञ्चिदस्ति"। तथा—"तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृति

वेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम्" । इत्यादि–इत्यादि) । प्रस्तावना के इन वाक्यों द्वारा यही प्रकट हो रहा है कि उक्त नाटक का अभिनय सामान्य जनता के ही समक्ष किया जा रहा है । प्रस्तावना में आये "परिषद-ग्रेसरान्" में प्रयुक्त बहुवचन की विभक्ति से भी उपर्युक्त बात की ही पुष्टि होती है । यदि गौडाधिपति 'आदिसूर' द्वारा उनको कन्नौज से बुलाया गया होता अथवा वे स्वयं ही कन्नौज का त्याग कर उनके राज्य में आकर बसे होते तो यह निश्चय था कि राजा 'आदिसूर' द्वारा उनका सम्मान अवश्य किया गया होता तथा उन्हें उचित सम्पत्ति आदि देकर सुखी तथा समृद्ध भी बनाया गया होता । ऐसी स्थिति में भट्टनारायण द्वारा अपनी कृति में उनकी चर्चा अवश्य की गयी होती । कवियों के लिए तो कृतज्ञता प्रकाशन का सर्वश्रेष्ठ साधन यही हुआ करता है । किन्तु भट्टनारायण द्वारा राजा 'आदिसूर' की चर्चा कहीं भी नहीं की गयी है । इस युक्ति के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा आदिसूर के साथ वेणीसंहार के रचयिता भट्टनारायण का वस्तुतः कोई सम्बन्ध न था ।

इस सम्बन्ध में यह आशंका अवश्य की जा सकती है कि यह भी संभव है कि बंगाल जाने के पूर्व ही भट्टनारायण द्वारा 'वेणीसंहार' की रचना की जा चुकी हो । फिर ऐसी स्थिति में अपने आश्रयदाता राजा 'आदिसूर' का उल्लेख उसमें कैसे किया जा सकता था ?

इसका समाधान भी स्पष्ट ही है कि यदि ऐसा रहा होता तो वे बौद्धों के उत्पीडन से अपनी मातृभूमि को छोड़ने के लिये उत्पन्न हुयी अपनी विवशता का उल्लेख अपनी कृति में अवश्य करते अथवा बौद्धों के अत्याचार आदि का उल्लेख अथवा उसके खण्डन आदि की चर्चा अपनी कृति में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में तो अवश्य ही करते । यह एक स्वाभाविक बात है कि जब कवि का हृदय किसी कारण अत्यन्त व्यग्र हो जाया करता है तथा उसके परिणाम स्वरूप उसे कुछ निर्णय लेने के लिये बाध्य हो जाना पड़ा करता है तो वह अपनी उस मानसिक व्यथा का उल्लेख अपनी रचना में किसी न किसी रूप में अवश्य किया करता है । उसकी रचना उससे नितान्त

अछूती रही हो ऐसा कहीं भी देखने को नहीं मिलता है। किन्तु 'वेणीसंहार' में ऐसा एक भी स्थल दृष्टिगोचर नहीं होता है कि जिसमें तत्कालीन बौद्ध राजा अथवा बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित किसी बात का उल्लेख किया गया हो।

यदि गौडाधिपति 'आदिसूर' के लिखने पर कान्यकुब्ज के राजा नें उनको 'आदिसूर' के राज्य में भेजा होता तो भी उनके द्वारा इस प्रकार की बात की चर्चा तो अपने ग्रन्थ में अवश्य ही की जा सकती थी किन्तु ऐसा भी कहीं देखने को उपलब्ध नहीं होता है।

अतः उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भट्टनारायण नें अपनी कृति 'वेणीसंहार' की रचना बंगाल जाने के पूर्व कर डाली हो।

उपर्युक्त विवेचन से इस प्रकार के निर्णय की भी सम्भावना की जा सकती है कि कि 'आदिसूर' के यहाँ आये हुये भट्टनारायण तथा 'वेणीसंहार' के रचयिता 'भट्टनारायण' एक ही व्यक्ति न रहे हों। क्योंकि यदि दोनों ही व्यक्ति एक ही रहे होते तो 'क्षितीशवंशावलीचरित' में जहाँ उनका वर्णन आता है वहाँ उनके विशिष्ट गुण कवित्व का भी उल्लेख अवश्य ही किया गया होता। कुछ नहीं तो अतिसूक्ष्म में यही लिखा गया होता कि वे 'कवि' भी थे। किन्तु "क्षितीशवंशावलीचरित" में ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं आया है। ऐसी स्थिति में यह भी कहा जा सकना संभव नहीं है कि दोनों ही भट्ट-नारायण एक ही थे।

किन्तु कुछ आलोचकों ने प्रथम अङ्क के पच्चीसवें श्लोक में "रण-यज्ञ" सम्बन्धी वर्णन का उल्लेख करते हुये यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस यज्ञ वर्णन में 'आदिसूर' द्वारा कराये गये यज्ञ की झलक दृष्टिगोचर होती है। अतः दोनों भट्टनारायण एक ही रहे होंगे। किन्तु इस कथन में भी कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है—

इन विभिन्न विचारों की पृष्ठभूमि से आगे बढ़कर जब हम "वेणीसंहार" के 'भरतवाक्य' कें निम्नलिखित अंश पर ध्यान देते हैं।

"भूपः दयितभुवनः विद्वद्बन्धुः गुणेषु विशेषवित्......भूयात्"।

(अर्थात् राजा जगत को प्यार करने वाला, विद्वानों का बन्धु तथा गुणों में न्यूनाधिक्य का जानने वाला होवे"।) तो हम निम्नलिखित तीन परिणामों पर पहुँचते हैं :—

(१) श्री भट्टनारायण को किसी भी राजा का आश्रय प्राप्त नहीं हुआ होगा।

अथवा

(२) श्री भट्टनाराय को किसी राजा के विद्वद्परिषद् के सदस्य तो रहे होंगे किन्तु उनके गुणों का राजा द्वारा समुचित मूल्याङ्कन नहीं किया गया होगा।

अथवा

(३) जिस राजा के दरबार में यह रहे होंगे उस राजा द्वारा अपने गुणों का समुचित मूल्याङ्कन न किये जाने से उनका मन प्रसन्न न रहा होगा और इसी कारण उन्होंने उस राजा अथवा उसकी परिषद् की कोई चर्चा अपनी कृति में नहीं की होगी (उपर्युक्त भरतवाक्य में राजा के लिये गुणों का सही मूल्याङ्कन कर्त्ता होने सम्बन्धी जो प्रार्थना की गयी है वह इस ही कथन की द्योतक है।)।

इतना सब कुछ होने पर भी उनके सम्बन्ध में जिन प्रसिद्ध किम्बदन्तियों का श्रवण हम करते हैं उनके आधार पर हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि भट्टनारायण 'कान्यकुब्ज' के ही मूलनिवासी तथा एक मान्य विद्वान् नाटककार थे। किन्तु गौड़देशाधिपति 'आदिसूर' के आमन्त्रण पर वंगदेश (वंगाल) में वैदिक-धर्म के संवर्धन हेतु पहुँचने वाले पाँच-ब्राह्मणों में से एक थे। उस समय वंगदेश में वैदिक-धर्म का ह्रास हो रहा था उसी ह्रास की समाप्ति करने तथा वैदिकधर्म के पुनरुत्थान के निमित्त राजा "आदिसूर" ने कान्यकुब्ज देश से पाँच ब्राह्मण परिवारों को बुलाया था। इन पाँचों परिवारों के वंशज आज भी बंगाली-ब्राह्मणों में श्रेष्ठ तथा कुलीन माने जाते हैं। प्रसिद्ध-किम्बदन्तियों के आधार पर उनके आविर्भाव-काल का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

भट्टनारायण का काल

किसी भी कवि अथवा लेखक के काल का निर्धारण करने के दो ही साधन हुआ करते हैं–(१) अन्तः साक्ष्य—अर्थात् कवि अथवा लेखक ने अपनी कृतियों में अपने सम्बन्ध में क्या-क्या लिखा है। और (२) बहिः साक्ष्य—अर्थात् अन्य कवियों और लेखकों आदि के द्वारा उस कवि अथवा लेखक के बारे में क्या-क्या लिखा गया है।

दुर्भाग्य से भट्टनारायण ने अपनी उपलब्ध कृति "वेणीसंहार" नाटक में न तो अपने सम्बन्ध में ही कुछ लिखा है और न अपने समसामयिक किसी राजा अथवा अपने से पूर्ववर्ती किसी कवि अथवा तत्कालीन किसी घटना का ही उल्लेख किया है कि जिसके आधार पर उनके काल के सम्बन्ध में कुछ जाना जा सकता था।

हां, बाह्यसाक्ष्य की दृष्टि से कुछ सामग्री अवश्य उपलब्ध होती है। ११०० ई० में विद्यमान आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ "काव्यप्रकाश" में वेणीसंहार के अनेक उदाहरण उद्धृत किये हैं। १०७० ई० में विद्यमान भोजराज ने भी अपने "सरस्वतीकण्ठाभरण" में वेणीसंहार के कुछ पद्यों को उद्धृत किया है। 'दशरूपक' के रचयिता धनञ्जय ने भी अपनी रचना 'दशरूपक' में वेणीसंहार के अनेक उद्धरणों को प्रस्तुत किया है। इनका काल १० वीं शती का उत्तरभाग माना जाता है। नवमशताब्दी के उत्तरार्ध भाग में विद्यमान आनन्दवर्धन ने अपनी रचना ध्वन्यालोक में वेणीसंहार के "कर्त्ताद्यूतच्छलानाम्" (५।२६) इत्यादि पद्य को ध्वनि के उदाहरणरूप में उद्धृत किया है। वामन ने भी अपने "काव्यालङ्कारसूत्र" नामक ग्रन्थ में वेणीसंहार के "पतितं वेत्स्यसि क्षितौ" वाक्य में 'वेत्स्यसि' की व्याकरणानुकूलता सिद्ध की है। 'वेत्स्यसि' में पद-भंग करने से दो पद बनते हैं—"वेत्सि + असि"। ये दोनों ही शुद्ध प्रयोग हैं। यदि एक पद माना जाय तो उसमें व्याकरण सम्बन्धी त्रुटि का होना निश्चित है। यह पद वेणीसंहार के एक श्लोक का चतुर्थचरण है। वामन द्वारा की गयी उक्त प्रयोग की व्याकरण-संगति के प्रदर्शन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वे भट्टनारायण

को विशेष गौरव तथा सम्मान का पात्र समझते थे। वामन का काल विद्वानों द्वारा ७८० ई० के लगभग स्वीकार किया गया है। सर्वप्रथम वेणीसंहार के उदाहरण में हम वामन की रचना में ही पाते हैं। इससे यह निश्चय तो हो ही जाता है कि भट्टनारायण वामन से पूर्व ही हुये होंगे। भट्टनारायण की इतनी प्रसिद्धि के लिये कम से कम सौ वर्षों का समय तो स्वीकार करना उचित ही होगा। अतः भट्टनारायण का समय ६५० ई० से ६७५ ई० के मध्य स्वीकार करना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त "रूपावतार" की एक टीका की हस्तलिखित प्रति में ऐसा लेख उपलब्ध होता है कि महाकवि बाण की प्रार्थना को मानकर भट्टनारायण किसी बौद्ध-महन्त के शिष्य बन गये थे। और 'रूपावतार' की रचना भट्टनारायण तथा धर्मकीर्ति दोनों ने मिलकर की थी (हँसराज अग्रवाल द्वारा लिखित–संस्कृत साहित्य का इतिहास–पृष्ठ २९५)। अतएव यदि इस आधार पर भट्टनारायण को बाण का समकालीन भी मान लिया जाय तो भी भट्टनारायण का उपर्युक्त समय ही सिद्ध होता है।

अब यहाँ यही शंका उत्पन्न होती है कि महाकवि बाण ने अपने 'हर्ष-चरित' में अनेक कवियों का उल्लेख किया है किन्तु उन्होंने भट्टनारायण की चर्चा कहीं पर भी नहीं की है। अतः उपर्युक्त बात को अधिक प्रामाणिकरूप में स्वीकार किया जाना भी संभव प्रतीत नहीं होता है। बाण महाराज हर्ष-वर्धन के सभापण्डित थे। हर्ष का काल ऐतिहासिकों द्वारा सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। ऐसी स्थिति में यदि भट्टनारायण का काल बाण के पश्चात् भी स्वीकार किया जाय तो भी भट्टनारायण का समय ६५० ई० के पश्चात् ही स्वीकार करना होगा। अतः इससे भी उपर्युक्त समय के साथ कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त यदि हम अनुश्रुतियों अथवा किम्बदन्तियों को ही भट्टनारायण के काल का आधारमान लें तो भी उपर्युक्त समय की ही सिद्धि होती है। अनुश्रुतियों अथवा किम्बदन्तियों के अनुसार सेनवंश के संस्थापक 'आदिसूर' के कन्नौज से जिन पांच ब्राह्मण-परिवारों को बुलाया था उनमें

भट्टनारायण भी एक थे। कनिंघम के अनुसार सेनवंश का राज्यकाल ६५०ई० से ११०८ ई०तक विद्यमान रहा है। "आदिसूर" सेनवंश का संस्थापक माना जाता है। अतः उसका समय ६५०ई० के आसपास मानना ही उचित होगा। इस भाँति भी भट्टनारायण का काल ६५० ई० के आसपास का ही सिद्ध होता है। प्रोफे० स्टेनकोनो ने मगध के राजा माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन तथा आदिसूर को एक ही व्यक्ति स्वीकार किया है। आदित्यसेन का काल ६७१ ई० माना गया है। श्री आर० सी० मजूमदार के अनुसार आदित्यसेन ६७५ ई० में कान्यकुब्ज से स्वतन्त्र हो गया था। तथा उसके पश्चात् उसने अपना स्वतन्त्र राजवंश चलाया था। अतः इस आधार पर भी भट्टनारायण का काल ६७५ ई० के आसपास का ही सिद्ध होता है।

प्रो० विल्सन ने निम्नलिखित श्लोक—

वेदबाणाङ्कशाके तु नृपोऽभूच्चादिशूरकः।
वसुकमङ्किके शाके गौडे विप्राः समागताः॥

के आधार पर यह सिद्ध किया है कि ७३२ ई० (६५४ शकाब्द) में राजा आदिसूर ने बंगाल में कुछ ब्राह्मणों को बुलवाया था। इन्ही ब्राह्मणों में भट्टनारायण भी एक थे। अतः भट्टनारायण का समय ७३२ ई० स्वीकार करना चाहिये। किन्तु प्रोफे० विल्सन के उपर्युक्त श्लोक की प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी है। अतएव इस मत को प्रामाणिक भी नहीं कहा जा सकता है।

भट्टनारायण की जाति

भट्टनारायण की दो उपाधियाँ थीं (१) भट्ट (२) मृगराज। इन दोनों उपाधियों के कारण उनकी जाति के विषय में एक निश्चित निर्णय नहीं हो पाता है। क्योंकि 'भट्ट' शब्द तो उनके ब्राह्मण होने का सूचक है और मृगराज शब्द उनके 'क्षत्रिय' होने का द्योतक है।

प्राचीन काल में ब्राह्मणों के नाम के साथ 'भट्ट' उपाधि जोड़ी जाया करती थी। इस उपाधि का योग किसी ब्राह्मणेतर जाति के व्यक्ति के साथ

जुड़ा हुआ उपलब्ध ही नहीं होता। अतः इस आधार पर भट्टनारायण का ब्राह्मण होना स्पष्ट होता है।

कवि द्वारा वेणीसंहार की प्रस्तावना में प्रयुक्त पद 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणः' उपलब्ध होता है। 'मृगराज' का अर्थ है–'सिंह' तथा 'लक्ष्मणः' का अर्थ है चिन्ह, अथवा उपाधिधारण करने वाला। अतः सम्पूर्णपद का अर्थ हुआ सिंह उपाधिधारी अर्थात् 'क्षत्रिय'। किन्तु प्राचीन काल में क्षत्रियों के नाम के साथ 'सिंह' शब्द का प्रयोग भी नहीं हुआ करता था। इस शब्द का तो प्रयोग पर्याप्त समय के पश्चात् ही हुआ है। अतः 'सिंह' उपाधिधारी अर्थ को लेकर भट्टनारायण को क्षत्रिय सिद्ध करना उचित प्रतीत नहीं होता है।

"कवेर्मृगराजलक्ष्मणः" का अर्थ 'सिंह उपाधिधारी कवि' न कर यदि 'कवि ही सिंह की उपाधि को धारण करने वाला किया जाय' तो अधिक उपयुक्त होगा और इस आधार पर उनका ब्राह्मण होना भी स्पष्ट हो जायगा। वेणीसंहार' नामक नाटक में वस्तुतः वीररस की ही प्रधानता है। साथ ही उसका परिपाक भी अति उत्तम ढंग से हुआ है। ऐसी स्थिति में अभूतपूर्व 'वीररस' की पुष्टि का कर्त्ता होने के कारण यदि उनको 'कविसिंह' कहा गया हो तो इसे उचित ही कहा जायगा। ऐसा अर्थ करने पर 'भट्ट' शब्द की दृष्टि से उनका ब्राह्मण होना ही सिद्ध होता है।

भट्टनारायण की धार्मिकता

'वेणीसंहार' नाटक की प्रस्तावना में क्रमशः विष्णु, कृष्ण तथा शिव की स्तुति की गयी है। साथ ही प्रथमअङ्क के श्लोक संख्या २३ तथा २५ वें में कृष्ण का विष्णुरूप ही वर्णित है। अतएव कवि को प्रधानरूप से वैष्णव कहना ही उपयुक्त है। साथ ही वे शिव के भी भक्त हैं। अतः यदि कवि के धार्मिक-दृष्टिकोण को समन्वयवादी भी कह दिया जाय तो यह भी अनुपयुक्त न होगा।

इसके अतिरिक्त वे लोक एवं परलोक में भी विश्वास रखते थे (देखिये श्लोक सं० ३।१७)। यद्यपि वे भाग्य में भी विश्वास रखते थे किन्तु भाग्य की अपेक्षा 'पुरुषार्थ' पर ही बल दिया करते थे (तृतीय अङ्क के ३७ वें श्लोक की द्वितीय पंक्ति)। लौकिक दृष्टि से उनका विश्वास स्वप्न आदि

में भी था (द्वितीय अङ्क के श्लोक सं० १३ से पूर्व राजा के कथन से लेकर चौदहवें श्लोक तक)। इनके अतिरिक्त वे परम्पराओं के भी पोषक थे।

भट्टनारायण की विद्वत्ता एवं पाण्डित्य

वेणीसंहार के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि का ज्ञान केवल नाट्यशास्त्र तक ही सीमित न था। उन्हें सांख्य, योग तथा वैष्णव-दर्शनों का भी ज्ञान था (वे० सं०—१।२३, ६।४३, ४५-४६)। अर्थशास्त्र, कामशास्त्र तथा नीतिशास्त्र सम्बन्धी भी ज्ञान उन्हें पूर्णरूपेण था (वे० सं०—३।२-३, ५।३,७ इत्यादि)। वैदिक यज्ञ-यागादि से भी वे भलीभाँति परिचित थे (वे० सं० १।२५)। महाभारत पर तो उनका नाटक आधारित ही है। अतएव वे महाभारत का भी पूर्ण ज्ञान रखते थे। उनका नाट्यशास्त्रीय ज्ञान तो इतना अधिक परिपक्व था कि उनके पश्चात् होने वाले सभी नाट्यशास्त्र-कारों ने नाट्य सम्बन्धी अङ्गों के उदाहरणों को या तो वेणीसंहार से लेने का प्रयास किया है अथवा रत्नावली नामक नाटिका से।

भट्टनारायण की कृतियाँ

महाकवि दण्डी द्वारा रचित निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है कि उन्होंने तीन ग्रन्थों की रचना की थी—

व्याप्तुं पदत्रयेणापि यः शक्तो भुवनत्रयम्।
तस्य काव्यत्रयव्याप्तौ चित्रं नारायणस्य किम्॥

किन्तु बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि "वेणीसंहार" के अतिरिक्त इनका कोई अन्यग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। शास्त्रीय-दृष्टि से 'रत्नावली-नाटिका' के पश्चात् इसी नाटक को अत्यधिक महत्व प्राप्त हो सका है। नाट्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने 'वेणीसंहार' को एक आदर्श-ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है।

'वेणीसंहार' नाटक को संस्कृत-साहित्य के वीररस-प्रधान नाटकों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। यह नाटक महाभारत की एक महत्वपूर्ण घटना पर आधारित है। इसका उद्दिष्ट विषय है—द्रौपदी द्वारा वेणी का बाँधा जाना।

दुःशासन द्वारा किये गये घोर अपमान से पीड़ित होकर द्रौपदी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह दुःशासन और दुर्योधन के मारे जाने पर ही अपनी वेणी को बाँधेगी। इसी प्रमुख एवं उद्दिष्ट घटना की पूर्ति में महाभारत का प्रायः सम्पूर्ण कथानक ही बड़े चातुर्य एवं कुशलता के साथ इस नाटक में विन्यस्त किया गया है।

भीम द्वारा द्रौपदी की वेणी को सँवारने अथवा बाँधने के वर्णन से युक्त होने के कारण ही नाटक का नाम भी 'वेणीसंहार' पड़ा है। इस नाटक में द्रौपदी की प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिये भीम द्वारा यह प्रतिज्ञा की गयी है कि वह दुःशासन के वक्षस्थल का रक्त-पान करेगा तथा दुर्योधन की जाँघ तोड़कर अपने रक्तरंजित हाथों से द्रौपदी के केश बाँधेगा। अपनी इन दोनों प्रतिज्ञाओं की पूर्ति होने पर वह द्रौपदी की वेणी को सँवारता अथवा बाँधता है।

वेणीसंहार नाटक की संक्षिप्त कथा

पूर्वकथा—हस्तिनापुर के राजवंश से सम्बद्ध पाण्डव तथा कौरव दोनों ही राजकुमार थे। पाण्डु का देहावसान होने के अनन्तर उनका अन्धा भाई धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर आसीन हुआ था। अतएव उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद के कारण दोनों ही पक्षों के राजकुमारों के मध्य बाल्यकाल से ही स्पर्धा तथा ईर्ष्या का श्रीगणेश हो गया था। कौरवों में दुर्योधन ही ज्येष्ठ था। वह किसी प्रकार पाण्डव राजकुमारों को राजच्युत करना चाहता था। इधर इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों ने अपने नये राज्य की स्थापना कर ली थी। दुर्योधन को यह बात सह्य न थी। अतः उसने अपने मामा शकुनी की सहायता से ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर को द्यूतक्रीड़ा में पराजित कर शेष पाण्डवों को तथा उनकी पत्नी द्रौपदी को अपना दास बना लिया। दुर्योधन ने भरी राजसभा में द्रौपदी के वस्त्र तथा केश खिंचवाकर उसे अपमानित किया और पाण्डवों को १२ वर्ष तक वन में अज्ञातवास में रहने के लिए विवश कर दिया।

पाण्डव वन को चले गये किन्तु उन्होंने चलते समय कौरव राजकुमारों से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। भीम ने तो यह प्रतिज्ञा ही कर डाली कि

वह दुःशासन के वक्षस्थल के रक्त का पान करेगा और दुर्योधन की जंघाओं को तोड़कर उसके रक्त से द्रौपदी की खुली हुई वेणी को बाँधेगा। (इस नाटक के नाम से ही स्पष्ट है कि इसके परिणाम में द्रौपदी की वेणी को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार भीम द्वारा बाँधा गया है।)

वनवास सम्बन्धी सभी शर्तों को पूर्ण कर लेने के अनन्तर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को दूत बनाकर दुर्योधन के समीप सन्धि के निमित्त भेजा। भीम तथा द्रौपदी ने जब यह सुना तो वे अत्यधिक रुष्ट हुए क्योंकि वे दोनों तो अपने अपमान का बदला लेने के इच्छुक थे। इधर भीम को अपनी प्रतिज्ञा भी पूर्ण करनी थी। अतः वे सन्धि नहीं चाहते थे। यहीं से नाटक का प्रारम्भ होता है।

प्रथम-अङ्क—नाटक का प्रारम्भ श्रीकृष्ण के दौत्य से होता है जिसे श्रीकृष्ण ने कुरुराज की सभा में जाकर दोनों पक्षों में सन्धि करा देने की दृष्टि से स्वयं ही स्वीकार किया था। सन्धि सम्बन्धी बात का पता लगने पर भीमसेन का हृदय दुःखी हो उठता है। वे नहीं चाहते कि श्रीकृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जायँ। उनको अपनी भुजाओं के बल पर विश्वास है और साथ ही अभिमान भी। कौरवों द्वारा किये गये अत्याचारों को जब वे स्मरण करते हैं तो उनका रक्त खोलने लगता है और वे कौरवों से बदला लेने हेतु उतावले से होने लगते हैं। अतः वे अपने लघुभ्राता सहदेव से कहते हैं कि जाओ, महाराज युधिष्ठिर से कह दो कि आपके सन्धि-प्रस्ताव को मैं किसी भी दशा में स्वीकार न कर सकूँगा। इस प्रकार दोनों भाइयों में वार्तालाप चल ही रहा था कि द्रौपदी अपने खिन्न एवं उदास मुख के साथ वहाँ आ पहुँची। पूछने पर ज्ञात होता है कि भानुमती ने कहा है—"अरी द्रौपदी! अब तो सन्धि के लिये वार्तालाप चलने लगा है अतः अपने खुले हुये केशों को बाँध ले।" द्रौपदी की दासी ने इसका उत्तर दिया कि "अरी भानुमती! जब तक आपके केश बँधे हैं तब तक द्रौपदी के बाल कैसे बँधेंगे? (उसके कहने का अभिप्राय यह था कि जब वह (भानुमती) विधवा हो जायेगी तब द्रौपदी अपने केश बाँधेगी।)। इस वार्ता को सुनकर

भीम का क्रोध अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। दुर्योधन ने सन्धिप्रस्ताव पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। साथ ही श्रीकृष्ण को वन्दी बनाने का प्रयास भी किया। भीम दुर्योधन की इस मूर्खता पर खीझते हैं। श्रीकृष्ण सम्बन्धी इस समाचार से पाण्डवों के शिविर में खलबली सी मच गयी है। यह सुनकर भीमसेन द्रौपदी को आश्वस्त कर युद्धस्थल की ओर प्रयाण करते हैं। इधर युधिष्ठिर भी दुर्योधन द्वारा किये गये श्रीकृष्ण के अपमान से खिन्नमन हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप युद्ध की दुन्दुभि का घोष उनकी खिन्नता का प्रतीक बनता है।

द्वितीय अङ्क—अभिमन्यु के वध का समाचार सुनाने के निमित्त दुर्योधन स्वयं ही भानुमती के अन्तःपुर में आया है वहाँ भानुमती को न पाकर वह कंचुकी से उसके बारे में पूछता है कि वह कहाँ गयी? कंचुकी मन ही मन यह सोचता हुआ कि "पाण्डुपुत्रों द्वारा भीष्मपितामह को शरशय्या पर सुला देने का दुःख इनको नहीं है तथा बालक अभिमन्यु के मारे जाने से यह अत्यधिक प्रसन्न हैं", भानुमती को खोज लेता है तथा दुर्योधन को वहाँ पहुँचा देता है कि जहां भानुमती अपनी सखियों को अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुना रही थी।

भानुमती ने स्वप्न में सोने का नकुल देखा है तथा उसकी ओर उसकी आसक्ति स्वतः ही हो गयी है। इससे वह अपने पति (दुर्योधन) के भावी अमंगल की आशंका करती है और क्षुब्ध हो जाती है। इस अमंगल की शान्ति हेतु वह सखियों के साथ देवपूजन कर रही है। दुर्योधन वहाँ पहुँच जाता है। वह सखियों को हटाकर स्वयं ही उसे (भानुमती को) पुष्प प्रदान करने लगता है। भानुमती के स्पर्श के कारण दुर्योधन के अन्दर कामवासना जाग्रत हो जाती है। वह उसकी शान्ति के निमित्त भानुमती को तैयार करने का प्रयत्न करता है। इसी बीच भीषण आँधी आ जाती है जिससे दुर्योधन का रथ भग्न हो जाता है। (यह भी अनिष्ट का ही सूचक है।) रानी डर जाती है। दुर्योधन उसे समझाता है। यह प्रसङ्ग चल ही रहा था कि दुर्योधन की बहिन दुःशला वहाँ आकर सूर्यास्त से पूर्व अपने पुत्र जयद्रथ को मार डालने सम्बन्धी अर्जुन की प्रतिज्ञा को

सुनाने वहां आ पहुँचती है और अपने पुत्र की रक्षा के लिये गिड़गिड़ाती है। दुर्योधन उसे आश्वासन देता है तथा अपना अभीष्ट पूर्ण किये विना ही युद्ध-स्थल की ओर चला जाता है।

तृतीय अङ्क—इस अङ्क के प्रवेशक में राक्षस-राक्षसी के पारस्परिक-संवाद द्वारा द्रोण-वध की सूचना दी जाती है। पितृ-वध के शोक से संतप्त अश्वत्थामा को सान्त्वना प्रदान करते हुये कृपाचार्य उसे दुर्योधन के पास ले जाकर द्रोण के स्थान पर अश्वत्थामा को मुख्य सेनापति का पद दिये जाने की संस्तुति करते हैं कि जिससे वह अपने पिता की मृत्यु का बदला शत्रु से ले सके। किन्तु इससे पूर्व ही दुर्योधन कर्ण को सेनापति बनाने का वचन दे चुके थे। यह सुनकर अश्वत्थामा अत्यधिक क्रुद्ध हो जाते हैं। कर्ण और अश्वत्थामा के मध्य वाग्युद्ध होता है। परिणामस्वरूप अश्वत्थामा यह प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि कर्ण के जीवित रहने तक वह शस्त्रास्त्र ग्रहण न करेंगे। इसी बीच नेपथ्य से भीम की यह गर्वोक्ति श्रवणगोचर होती है कि दुःशासन उनके भुजपञ्जर में आबद्ध हो गया है और वह उसके वक्षस्थल के रक्त का पान करने जा रहा है। यदि कोई कौरव उसे बचा सके तो बचाये। दुःशासन की विपद्ग्रस्त इस अवस्था का श्रवणकर अश्वत्थामा शस्त्रग्रहण करना चाहता है किन्तु आकाशवाणी द्वारा अश्वत्थामा को प्रतिज्ञा भङ्ग न करने की सूचना दी जाती है। देवताओं को पूर्णरूप से पाण्डवों का पक्षपाती समझकर अश्वत्थामा खिन्नमन होकर अपने शिविर की ओर चला जाता है।

चतुर्थ-अङ्क—दुर्योधन का सारथि युद्ध में आहत तथा मूर्च्छित दुर्योधन को युद्धस्थल से दूर ले जाकर उसके रथ को एक सघन वटवृक्ष की छाया में खड़ा कर देता है। चेतना प्राप्त होने पर दुर्योधन को दुःशासन के वध का ज्ञान प्राप्त होता है। उसी समय कर्ण का सेवक सुन्दरक दुर्योधन को खोजता हुआ वहां आता है और उसे अर्जुन द्वारा किये गये कर्ण के पुत्र वृषसेन के वध की सूचना देता है। साथ ही वह दुर्योधन को युद्धभूमि की गतिविधि से भी अवगत कराता है और कर्ण के अन्तिम सन्देश को भी दुर्योधन से कहता है। दुर्योधन भी अपने मित्र अङ्गराज कर्ण की सहायता के निमित्त पुनः युद्ध-

स्थल की ओर जाने के लिये प्रस्थान करना चाहता है। इसी बीच संजय के साथ धृतराष्ट्र और गान्धारी वहां आ पहुँचते हैं।

पंचम-अङ्क—अपने पुत्रों के नष्ट हो जाने से व्याकुल धृतराष्ट्र तथा गान्धारी पाण्डवों से सन्धि कर लेने के लिये दुर्योधन को समझाते हैं किन्तु दुर्योधन इसके लिये तैयार नहीं होता है। वह तो अपने भाई दुःशासन के वध का बदला पाण्डवों से लेना चाहता है। इस पर धृतराष्ट्र छल-कपट से युक्त उपाय द्वारा पाण्डवों का वध करने हेतु सुझाव देते हैं किन्तु अभिमानी दुर्योधन इसे भी अस्वीकार कर देता है। इसी बीच दुर्योधन को कर्ण के भी मारे जाने की सूचना प्राप्त होती है। अतएव वह स्वयं युद्ध करने के लिये जाना ही चाहता है कि उसी समय भीम और अर्जुन दुर्योधन को खोजते हुये वहीं आ जाते हैं। भीम धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम करते समय कटूक्तियों का प्रयोग करते हैं। दुर्योधन भीम को फटकारते हैं। अतएव दोनों में वाग्युद्ध होने लगता है। इसी मध्य नेपथ्य से भीम तथा अर्जुन के लिये युधिष्ठिर का आदेश सुनाई देता है कि सूर्यास्त हो गया है (अर्थात युद्ध का समय समाप्त हो गया है।)। अतः सेनाओं को शिविरों में वापिस किया जाय। इस सूचना को सुनकर भीम और अर्जुन वापस लौट पड़ते हैं।

उन दोनों के जाते ही अश्वत्थामा दुर्योधन के समीप आ जाता है। आते ही अश्वत्थामा दुर्योधन के मित्र कर्ण की निन्दा करने लगता है। दुर्योधन उलाहनापूर्ण शब्दों के साथ उनका स्वागत करते हैं। और कहते हैं कि उन्होंने कर्ण के वध की ही प्रतीक्षा क्यों की, उसके भी वध की प्रतीक्षा कर लें क्योंकि दुर्योधन और कर्ण में कोई अन्तर नहीं है। अश्वत्थामा अपने को अपमानित समझकर चला जाता है। किन्तु धृतराष्ट्र और गान्धारी उसके प्रति अपने वात्सल्य का तथा उसके पिता के अपमान का स्मरण दिलाकर भ्रातृशोक से विक्षिप्त मनवाले दुर्योधन की बात का बुरा न मानने का सन्देश संजय द्वारा भेजते हैं। अन्त में धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ शल्य के शिविर की ओर चले जाते हैं।

षष्ठ अङ्क—भीम ने प्रतिज्ञा की है कि वह आज दुर्योधन का वध करके अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को पूर्ण करेगा, अन्यथा वह स्वयं आत्मघात कर लेगा।

किन्तु दुर्योधन कहीं लापता हो गया है। अतः युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित व व्याकुल दिखलायी दे रहे हैं। युधिष्ठिर एक तालाब में छिप गया था। उसका पता लग गया है तथा दुर्योधन और भीम का गदायुद्ध चल रहा है। ऐसी सूचना पाञ्चालक द्वारा युधिष्ठिर को प्राप्त होती है। इसी के द्वारा उन्हें कृष्ण का यह भी सन्देश मिलता है कि युद्ध में भीम का जीतना सुनिश्चित है। अतः राज्याभिषेक की तैय्यारी की जाय। और द्रौपदी भी अपने केशों को संयमित कर ले।

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार युधिष्ठिर राज्याभिषेक की तयारी के लिए पुरोहितों तथा अन्य कर्मचारियों को आदेश दे देते हैं। इसी बीच दुर्योधन का एक मित्र चार्वाक नामक राक्षस मुनि का वेष धारण कर युधिष्ठिर के समीप आता है और कहता है कि वह भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध देखकर आ रहा है। उस मुनि से युधिष्ठिर द्वारा अधिक पूछे जाने पर पता चलता है कि कृष्ण के भाई बलराम द्वारा दुर्योधन को गुप्त संकेत कर दिये जाने पर गदा-युद्ध में भीम मारे गये हैं तथा अब अर्जुन और दुर्योधन का गदायुद्ध हो रहा है। द्रौपदी तथा युधिष्ठिर इन समाचारों को सुनकर शोकाभिभूत हो जाते हैं तथा चिता जलवाकर उसमें स्वयं भी मर जाना चाहते हैं।

इसी बीच दुर्योधन को मारकर उसके रक्त में लथ-पथ भीम भयंकर आकृति के साथ द्रौपदी के केशों का संयमन करने हेतु उसे खोजते हुए वहां आ पहुँचते हैं। युधिष्ठिर उसे देखकर दुर्योधन का आगमन समझते हैं। द्रौपद्री भयभीत होकर छिप जाने का प्रयास करती है। युधिष्ठिर उससे लड़ना चाहते हैं। किन्तु भीम उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान कराते हैं। तत्पश्चात् उनके द्वारा द्रौपदी का केश-संयमन किया जाता है। इतने में अर्जुन के साथ कृष्ण भी वहाँ आ पहुँचते हैं। श्रीकृष्ण विजयी होने के उपलक्ष्य में युधिष्ठिर को बधाई देते हैं। युधिष्ठिर भीम और अर्जुन का आलिङ्गन कर प्रसन्न होते हैं तथा श्रीकृष्ण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति हो जाती है।

वेणीसंहार की कथावस्तु का स्रोत

'वेणीसंहार' की कथावस्तु का मूलस्रोत 'महाभारत' है। भट्टनारायण ने महाभारत के किसी आख्यान-विशेष को न लेकर उसकी मुख्यकथा को ही

अपने नाटक का आधार बनाया है। 'वेणीसंहार' का प्रारम्भ श्रीकृष्ण के सन्धि प्रयत्न से होता है। इसका वर्णन महाभारत के उद्योगपर्व में आता है। नाटक की समाप्ति युधिष्ठिर के राज्याभिषेक पर होती है, इसका वर्णन महाभारत के शान्ति-पर्व में आया है। इस भांति महाभारत के उद्योग वर्व से लेकर शान्ति-पर्व तक की घटनाओं का नाटक की आवश्यकतानुसार भाग त्याग सहित संक्षिप्तीकरण कर परिवर्तित तथा संशोधित रूप वेणीसंहार में प्रस्तुत किया गया है।

महाकवि ने महाभारत के सम्पूर्ण कथानक को अपने नाटक 'वेणीसंहार' में छः अङ्कों में ही पूरी सफलता के साथ समेटने का स्तुत्य प्रयास किया है। भानुमती को छोड़कर शेष सभी प्रमुखपात्र महाभारत से ही लिये हैं। नाटक की प्रायः सभी प्रमुख घटनायें महाभारत की ही हैं। इतना होने पर भी महाकवि द्वारा नाट्यकला की दृष्टि से यत्र-तत्र आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन भी किये गये हैं किन्तु वे परिवर्तन और परिवर्द्धन ऐसे रूप में नहीं हो सके हैं कि जिनसे नाट्यकला को पूर्ण विकास प्राप्त हो पाता। इसका कारण यह है कि महाभारत की कथा इतनी लोक-प्रसिद्ध है कि भट्टनारायण उसमें अपनी इच्छानुसार अथवा नाटक की आवश्यकता के अनुरूप मूलकथा में न तो आवश्यक परिवर्तन और परिवर्धन ही कर सके और न ही वे महाभारत के प्रसिद्ध पात्रों के चरित्र-चित्रण में ही कोई क्रान्तिकारी परिवर्त्तन कर सके। अतएव नाटक के लिए महाभारत की कथा चुनने से जहां एक ओर नाटक के लिए लोकप्रिय होने की आशा की जा सकती थी वहीं दूसरी ओर परिवर्त्तन अथवा परिवर्धन की छूट न होने के कारण एवं विवश होकर अनावश्यक प्रसंगों को भी स्थान देने के कारण नाटक की वस्तुयोजना में शिथिलता का दोष आ ही गया है। हाँ, इतना अवश्य है कि महाभारत की उदात्त कथावस्तु के कारण नाटक को कुछ सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई है।

महाभारत की मूलकथा में किये गये परिवर्त्तन और परिवर्धन

(१) महाभारत की कथा में पाँच गावों की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव संजय के माध्यम से किया गया है। उसके असफल होने पर पुनः श्रीकृष्ण

पाँच गाँवों की शर्त लेकर सन्धि कराने का प्रयास करते हैं। दुर्योधन उनको पकड़ने का षडयन्त्र करता है किन्तु ज्ञात होने पर धृतराष्ट्र उसे डाटते हैं। किन्तु 'वेणीसंहार के प्रथमअङ्क' में पांच गांवों की शर्त्त पर सन्धि का प्रस्ताव लेकर श्रीकृष्ण दुर्योधन के समीप जाते हैं। दुर्योधन उनकी बात को स्वीकार नहीं करता है तथा उल्टे उन्हें पकड़ लेने (गिरफ्तार कर लेने) का प्रयत्न करता है। किन्तु श्रीकृष्ण अपने विश्वरूप को दिखलाकर दुर्योधन को अभिभूत कर देते हैं।

(२) महाभारत में श्रीकृष्ण ने अपने विश्वरूप का प्रदर्शन दुर्योधन को अपनी शक्ति को दिखलाने के लिए किया है। किन्तु 'वेणीसंहार' में दुर्योधन के द्वारा श्रीकृष्ण को पकड़ने के प्रयास को विफल करने के लिए ही उनके द्वारा विश्वरूप का प्रदर्शन किया गया है।

(३) महाभारत में कर्ण और कृपाचार्य के बीच कलह होती है। बाद में अश्वत्थामा उसे अपने ऊपर ले लेता है। यह कलह आचार्य द्रोण की मृत्यु के पूर्व ही होती है। किन्तु 'वेणीसंहार' के तृतीयअङ्क में आचार्य द्रोण की मृत्यु के पश्चात् कर्ण द्वारा आचार्य द्रोण की निन्दा किये जाने पर अश्वत्थामा एवं कर्ण के बीच होती है।

(४) महाभारत में युधिष्ठिर द्वारा हस्तिनापुर में प्रवेश करने के उपरान्त चार्वाक राक्षस ने युधिष्ठिर की सभा में प्रवेश किया है। इस स्थल पर चार्वाक का लक्ष्य युधिष्ठिर की निन्दा करना है। किन्तु 'वेणीसंहार' में मुनि वेषधारी चार्वाक के साथ युधिष्ठिर की भेंट दुर्योधन और भीम के गदायुद्ध के समय ही दिखलायी गयी है। वेणीसहार में चार्वाक की अवतारणा नाटक के घटनाक्रम को एक नवीन मोड़ प्रदान करने को एक नवीन मोड़ देने के लिए की गई है।

(५) महाभारत में जल के अन्दर छिपे हुये दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारने तथा पांचों पाण्डवों में से जिससे दुर्योधन युद्ध करना चाहे उससे युद्ध करने की बात युधिष्ठिर के द्वारा कराई गई है। किन्तु 'वेणीसंहार' में यह दोनों ही कार्य भीमद्वारा ही सम्पन्न कराये गये हैं। युधिष्ठिर तो युद्धस्थल पर विद्यमान भी नहीं है। वे किसी अन्य स्थल पर स्थित हैं।

महाकवि द्वारा इस प्रकार किये गये परिवर्त्तन का उद्देश्य यही है कि नाटक का नायक युधिष्ठिर न होकर भीम ही है। इसका दूसरा कारण चार्वाक को अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये अवसर प्रदान करना भी है। इससे नाटक में एक अनुपम गत्यात्मकता भी आ गई है।

कथावस्तु में कविद्वारा की गई नवीन उद्भावनाएँ

(i) सर्व प्रथम द्रौपदी के 'वेणीसंहार' की घटना जिसके आधार पर नाटक का नामकरण किया गया है, महाकवि की अपनी निजी कल्पना है।

(ii) महाभारत में दुर्योधन की जाँघों को तोड़ने की प्रतिज्ञा भीम ने अवश्य की है किन्तु उसके रुधिर से लिप्त भीम के हाथों द्वारा द्रौपदी के केश-संयमन की प्रतिज्ञा का वर्णन महाभारत में कहीं नहीं आती है। यह कल्पना महाकवि की अपनी कल्पना है।

(iii) प्रथम अङ्क में दुर्योधन की पत्नी भानुमती द्वारा द्रौपदी के केश बांधने के विषय में द्रौपदी से ही किये गये प्रश्न सम्बन्धी घटना भी कवि की अपनी ही उद्भावना है।

(iv) द्वितीयअङ्क, तृतीयअंक का प्रवेशक, सम्पूर्ण पंचमअंक, छठे-अंक में वर्णित भीमसम्बन्धी दुर्योधन को उस ही दिन मार देने की प्रतिज्ञा, चार्वाक् द्वारा मुनि का वेष धारणकर युधिष्ठिर को ठगे जाने की घटना, युधिष्ठिर और द्रौपदी द्वारा किये गये करुण विलाप तथा उसके द्वारा चिता-रोहण की तत्परता आदि सब कवि की अपनी ही उद्भावनायें ही हैं। इन सबका वर्णन महाभारत में कहीं भी नहीं आता है। **"नाटकीय दृष्टि से किये गयें परिवर्त्तनों तथा परिवर्धनों का प्रभाव"** प्रमुख बात तो यह है कि महाकवि भट्टनारायण ने महाभारत के विस्तृत कथानक को छोटे आकार वाले 'वेणीसंहार' जैसे नाटक में समेट लेने का सफल प्रयास किया है। उनके द्वारा जो परिवर्त्तन किये भी गये हैं उनसे भी नाटकीय-व्यापार में गत्यात्मकता तो आई ही है, साथ ही नाटकीय पात्रों के चरित्र भी पूर्ण अभिव्यक्ति को प्राप्त हो सके हैं।

महाभारत में वर्णित संजय और कृष्ण के सन्धि-प्रयत्नों को एक में मिला देने से कथावस्तु में संक्षिप्तता तो आई ही है, साथ ही इससे भीम तथा दुर्योधन के चरित्र को अभिव्यक्त करने का अवसर भी उपलब्ध हुआ है।

प्रथमअङ्क में भानुमती द्वारा उपालम्भ के साथ द्रौपदी के केश बांधने के विषय में कथित घटना ने भी भीम के क्रोध को और भी अधिक उद्दीप्त किया है जो कि आगे चलकर शत्रु के विनाश द्वारा 'वेणीसंहार' रूप फल का बीज ही सिद्ध हुआ है।

द्वितीयअङ्क में भानुमती द्वारा देखा गया स्वप्न तथा भीषण झंझावात द्वारा रथ की ध्वजा का भङ्ग हो जाना भविष्य में होने वाली घटनाओं का सूचक है। इसी अङ्क में बालोद्यान घटना एक ओर तो कठोर परिस्थितियों में कोमलता का सृजन कर दर्शकों की मानसिक स्थिति को परिवर्तित कर रोचकता प्रदान करती है और दूसरी ओर दुर्योधन के चरित्र की निर्बलताओं को प्रकटकर उसकी विलासिता का दिग्दर्शन भी कराती है। पुनः इसी अङ्क में कञ्चुकी द्वारा कथित "भग्नं भग्नम्" आदि वाक्यों से 'पताकास्थानक' नामक नाटकीय योजना का भी प्रादुर्भाव हो गया है।

तृतीयअङ्क के प्रवेशक में रुधिरप्रिय और उसकी पत्नी की अवतारणा करके कवि द्वारा द्रोणाचार्य, भूरिश्रवाः और घटोत्कच आदि वीरों के वध की सूचना प्रदान की गई है। साथ ही भीम द्वारा दुःशासन के रक्तपान जैसे दुष्कृत्य को भीम के अन्तःप्रविष्ट राक्षस द्वारा बतलाकर भीम के अपने उत्कृष्ट चरित्र की रक्षा भी कवि द्वारा की गई है।

द्रोणाचार्य का शिर किसी अनाथव्यक्ति के शिर के सदृश काट लिया गया। इस जघन्य अपराध का प्रतिशोध उनके पुत्र अश्वत्थामा द्वारा क्यों नहीं लिया गया? अश्वत्थामा ने भीम से दुःशासन को क्यों नहीं बचाया? दर्शकों एवं पाठकों की इस प्रकार की जिज्ञासा का समाधान करने हेतु महाकवि ने कर्ण एवं अश्वत्थामा की कलह, दुर्योधन का कर्ण के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार, अश्वत्थामा द्वारा कर्ण के जीवित रहते शस्त्रत्याग तथा आकाशवाणी द्वारा अश्वत्थामा के पुनः शस्त्रग्रहण की अभिलाषा को रोके जाने की बात को

उपस्थित कर अश्वत्थामा के चरित्र को अत्यधिक उदात्त एवं अनुकरणीय बना दिया है। इस भांति महाकवि ने अश्वत्थामा के ब्रह्मतेज तथा स्वामिभक्ति की रक्षा की है।

यद्यपि नाटक का चतुर्थ अङ्क दीर्घ वर्णनात्मक संवादों तथा भाषा सम्बन्धी क्लिष्टता के कारण प्रायः नीरस सा हो गया है किन्तु फिर भी यह तो मानना ही होगा कि महाकवि ने सुन्दरक की अवतारणा करके महाभारत की अति विस्तृत कथा को एक छोटे से अंक में बड़ी ही चतुरता के साथ सीमित कर दिया है। युद्धस्थल से भेजा गया कर्ण का सन्देश और उस पर दुर्योधन द्वारा की गयी प्रतिक्रिया दुर्योधन के चरित्र का पूर्वरूपेण उद्घाटन करती है। अङ्क की समाप्ति पर धृतराष्ट्र एवं गान्धारी का मञ्च पर आना दुर्योधन को कर्ण की सहायता करने से रोक देता है। परिणामस्वरूप पाण्डवों के लिये कर्ण का बध करने समन्धी मार्ग निर्विघ्न हो जाता है।

पञ्चमअङ्क तो महाकवि की अपनी निजी कल्पना है। यह अंक न तो कथानक को ही गति प्रदान करता है और न नाटकीय व्यापार को ही। यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस अंक से नाटकीय व्यापार में गतिरोध उत्पन्न हो गया है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह अंक धृतराष्ट्र एवं गान्धारी की वात्सल्यभावना, दुर्योधन के स्वाभिमान और अपने दिवंगत मित्र कर्ण के प्रति अनुपम प्रेम तथा अश्वत्थामा के आत्माभिमान की अभिव्यक्ति का जीता-जागता एक चित्र है।

अन्तिम अंक में भीम के द्वारा दुर्योधन को ललकारना तथा द्वन्द्वयुद्ध का प्रस्ताव रखा जाना सर्वथा उचित ही है क्योंकि नाटक में नाटकीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र भीम ही है। भीम को युद्ध में फँसाकर तथा दूसरी ओर चार्वाक तथा युधिष्ठिर का पारस्परिक सम्वाद कर कर महाकवि ने एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। इससे एक ओर तो भ्रातृप्रेम की अभिव्यक्ति का उचित अवसर प्राप्त हुआ है और दूसरी ओर भीम को नाटक का निर्विवाद नायक होने का सुयोग भी उपलब्ध हुआ है। वीर रस के वातावरण में करुण रस का यह अप्रत्याशित प्रवाह वस्तुतः महाकवि की एक अनुपम देन ही है जिससे नाटक का महत्त्व और भी अधिक वृद्धि को प्राप्त हुआ है।

सामाजिक का हृदय नाटक का अन्त देखने के लिये अत्यधिक उत्सुक हो उठता है अन्ततोगत्वा नाटक की प्रमुख उपयोगिता भी तो यही है।

"भूमिका के प्रारम्भ में वर्णित नाट्यकला के सिद्धांतों के आधार पर"

वेणीसंहार' का विश्लेषण

दशरूपकों में वेणीसंहार की रूपकता—"वेणीसंहार" की कथावस्तु का स्रोत 'महाभारत' है। चन्द्रवंशी 'भीम' ही इसके धीरोदात्त नायक हैं (इसी भूमिका में आगे आने वाले "वेणीसंहार का नायक" शीर्षक देखिये)। यह रूपक पंचसन्धियों से युक्त है तथा इसकी समाप्ति ६ अङ्कों में हुई है। इसका अङ्गी (प्रधान) रस "वीर" है (इसी भूमिका के आगे के भाग में देखिये शीर्षक—"वेणीसंहार का अङ्गीरस"।)। साथ ही इसमें शृङ्गार, बीभत्स, करुण, आदि रसों की अभिव्यक्ति भी अङ्ग (गौण अथवा सहायक) रसों के रूप में हुई है। निर्वहण-सन्धि में अद्भुत रस का समावेश भी हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेणीसंहार में 'नाटक' नामक रूपक के प्रायः सभी लक्षण विद्यमान हैं। अतएव "वेणीसंहार" को दस प्रकार के रूपकों में 'नाटक' नामक रूपक ही कहा जा सकता है।

वेणीसंहार की मूलकथा का प्रकार—मूल कथा के तीन प्रकारों में से, परीक्षा करने पर 'वेणीसंहार' की कथा को 'प्रख्यात' ही कहा जायगा क्योंकि इसका कथानक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ 'महाभारत' से लिया गया है। अतः इतिहास-प्रसिद्ध होने के कारण यह "प्रख्यात" ही है।

अर्थ प्रकृतियाँ—(१) बीज, (२) विन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी तथा (५) कार्य–इन पाँचों को अर्थप्रकृति कहा जाता है। (१) कार्य का हेतु-भूत जो इतिवृत्त (कथानक) संक्षिप्त रूप में कह दिया जाता है, वह बीज के समान अनेक प्रकार से विस्तार वाला हुआ करता है "बीज" कहलाता है। "वेणीसंहार" नाटक में द्रौपदी के केश संयमन रूप कार्य का हेतु प्रथमअङ्क में उपनिबद्ध भीमसेन के क्रोध से वृद्धि को प्राप्त हुआ युधिष्ठिर का उत्साह ही 'बीज' है (वे० सं० १/२४ में अभिव्यक्त)।

(२) बिन्दु—विच्छिन्न होती हुई कथा को जोड़ने वाले भाग को 'विन्दु' कहा जाता है। वेणीसंहार के द्वितीयअङ्क में दुर्योधन की शृङ्गार सम्बन्धी चेष्टाओं से विच्छिन्न होता हुआ मुख्य कथानक दुःशला और जयद्रथ की माता के प्रवेश से पुनः जुड़ जाता है। जयद्रथ की माता द्वारा अर्जुन द्वारा की गई 'जयद्रथ-वध' सम्बन्धी प्रतिज्ञा का कथन करने से सामाजिक (दर्शक) अथवा पाठक का ध्यान पुनः युद्ध की घटनाओं की ओर आकर्षित हो जाता है। अतः द्वितीयअङ्क मे दुःशला और जयद्रथ की माता के दृश्य को 'विन्दु' कहा जायगा।

(३) पताका—साहित्यदर्पण के अनुसार वेणीसंहार में वर्णित भीमसेन का चरित 'पताका' है। तृतीयअङ्क में वर्णित अश्वत्थामा का शोक तथा विलाप और उनका कर्ण के साथ हुआ कलह-वार्तालाप भी—'पताका' कहा जा सकता है क्योंकि मुख्य-कथानक की प्रगति में उसे प्रासङ्गिक—वृत्त ही कहना उपयुक्त होगा। चतुर्थअङ्क में सुन्दरक द्वारा कथित युद्ध-वर्णन को भी 'पताका' ही कहा जा सकता है।

(४) प्रकरी—पंचमअङ्क में धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को सन्धि के लिए समझाया जाना तथा षष्ठ-अङ्क में चार्वाक सम्बन्धी दृश्य को 'प्रकरी' कहा जा सकता है।

कार्य—षष्ठअङ्क में श्लोक सं० ३७ द्वारा दुर्योधन के वध की सूचना दी गई है। 'वेणीसंहार' नाटक में इसी को 'कार्य' कहा जा सकता है। अथवा भीम द्वारा दुर्योधन का वध करने के उपरान्त उसी के रक्त से लिप्त हाथों से भीम द्वारा द्रौपदी के केशों का संयमन किया जाना ही 'कार्य' है।

अर्थावस्थायें—फलार्थी द्वारा प्रारम्भ किये हुए कार्य की पाँच अवस्थायें हुआ करती हैं (१) आरम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति और (५) फलागम।

(१) आरम्भ—आरम्भ नामक अर्थावस्था द्वारा फलप्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की जाती है। इस आरम्भ नामक अवस्था का ज्ञान दर्शक अथवा पाठक को भीमसेन द्वारा कथित "चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदा............" (१।२१।।) उक्ति से प्राप्त होता है। अतः यही प्रथम अर्थावस्था आरम्भ है।

(२) यत्न—कार्य की द्वितीय अवस्था 'यत्न' है। फल प्राप्ति के निमित्त जो प्रयत्न किया जाता है उसे यत्न या प्रयत्न कहते हैं। द्वितीय अङ्क में जयद्रथ की माता द्वारा वर्णित पाण्डवों विशेषतः अर्जुन का पराक्रम-कार्य की 'यत्न' नामक अवस्था है।

(३) प्राप्त्याशा—यह कार्य की तृतीय अवस्था है जिसमें फल प्राप्ति के उपाय तथा उसमें उपस्थित होने वाले विघ्नों पर विचार करते हुये फल प्राप्ति की ओर बढ़ना होता है। "वेणीसंहार" के तृतीय अंक में "सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवः" (३/४७—अन्तिमपंक्ति)—भीमसेन की यह उक्ति तथा इससे अगले पृष्ठ पर अश्वत्थामा द्वारा कथित—"सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन" यह उक्ति और चतुर्थ अङ्क में श्लोक सं० २, ३, ४ और ९ वे में दुर्योधन की मृत्यु की सम्भावना—कार्य की "प्राप्त्याशा" अवस्था है।

(४) नियताप्ति—विघ्नों के दूर हो जाने पर जब फल-प्राप्ति निश्चित हो जाया करती है तो इसी को कार्य की 'नियताप्ति' अवस्था कहते है। जलाशय में छिपे हुए दुर्योधन का पता लग जाने पर पाञ्चालक द्वारा भेजे गये कृष्ण के सन्देश के आधार पर युधिष्ठिर द्वारा समारम्भ के लिए सज्जा का आदेश—कार्य की 'नियताप्ति' अवस्था को सूचित करते हैं।

(५) फलागम—समग्र-फल की प्राप्ति हो जाना ही कार्य की "फलागम" नामक अवस्था है। द्रौपदी का केश संयमन ही कार्य की फलागम अवस्था है।

पंच-सन्धियाँ—पाँच अर्थ प्रकृतियाँ तथा पाँच अर्थावस्थाओं के क्रमशः योग से पाँच सन्धियाँ उत्पन्न होती हैं। इन सन्धियों की संख्या ५ है। (१) मुख, (२) प्रतिमुख, (३) गर्भ, (४) विमर्श और (५) निर्वहण।

"वेणीसंहार" के प्रथमअङ्क में 'मुख-सन्धि' तथा द्वितीयअङ्क में 'प्रतिमुख सन्धि' है। तृतीय और चतुर्थअंक में गर्भ सन्धि है। पञ्चमअंक में तथा षष्ठअङ्क में दुर्योधन के रक्त से लिप्त हाथों वाले भीम के प्रवेश पर्यन्त 'विमर्श सन्धि' है। इसके अनन्तर नाटक की समाप्ति पर्यन्त 'निर्वहण-सन्धि' है।

वेणीसंहार की घटनाओं का स्थान, समय तथा अवधि

यद्यपि 'वेणी-संहार' नाटक की घटनाओं का प्रसिद्ध स्थान कुरुक्षेत्र है जिसे नाटक में 'समन्तपञ्चक' नाम से कहा गया है किन्तु फिर भी प्रत्येक अंक के व्यापार का स्थल पृथक-पृथक है। कभी-कभी तो एक ही अंक में निबद्ध व्यापार के स्थलों में परिवर्तन भी हुआ है। प्रथमअंक में वर्णित बातें पाण्डवों के शिविर के किसी एक भाग से प्रारम्भ होती है कि जो द्रोपदी की चतुःशाला के समीप ही है। इसके पश्चात् की बातें द्रोपदी की चतुःशाला में ही होती हैं। द्वितीयअंक के व्यापार का केन्द्र दुर्योधन के महल का अन्तःपुर उससे मिला हुआ बालोद्यान तथा दारुप्रासाद है। तृतीयअंक का कार्यकलाप युद्धस्थल के किसी भाग से प्रारम्भ होता है। किन्तु बाद में एक वटवृक्ष की छाया में स्थानान्तरित हो जाता है। चतुर्थअंक में यद्यपि कोई नाट्य व्यापार नहीं है किन्तु इतना अवश्य है कि प्रारम्भ में दृश्य स्थल युद्धक्षेत्र ही है, बाद में यही दृश्य-स्थल वहाँ से कुछ दूर स्थित सघन छायायुक्त वटवृक्ष हो गया है। यह वही वटवृक्ष प्रतीत होता कि जिसका वर्णन तृतीयअंक में आया है। पञ्चमअङ्क में नाट्य-व्यापार का स्थल उक्त वटवृक्ष ही है। छठे अंक का नाट्य-व्यापार युद्ध-स्थल से कुछ दूरी पर स्थित युधिष्ठिर का शिविर है।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाट्य-व्यापार का दृश्य-स्थल युद्ध-भूमि, दुर्योधन का राजमहल तथा उसके समीपवर्ती स्थान हैं। नाट्य-व्यापार के दृश्य-स्थलों में ऐसी कोई दूरी अथवा विषमता दृष्टिगोचर नहीं होती है कि जिसके कारण नाटकीय-प्रभाव में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न हो सके।

वेणीसंहार की कथावस्तु में अठारह दिन चलने वाले महाभारत-युद्ध की घटनाओं का समावेश हुआ है। कथावस्तु का प्रारम्भ कृष्ण द्वारा सन्धि कराने के प्रयत्न से हुआ है। सन्धि सम्बन्धी प्रयास युद्ध प्रारम्भ होने से एक अथवा दो मास पूर्व ही किया गया होगा। महाभारत के अनुसार युद्ध अठारह दिन चला था। अतः नाटक में वर्णित घटनाओं का कुल समय डेढ़ अथवा दो मास रहा होगा किन्तु महाकवि ने डेढ़ अथवा दो मास के इस समय को चार ही दिन की अवधि में सीमित किया है।

प्रथम अंक पाँच गाँवों की शर्त पर सन्धि कराने हेतु दूत बनकर गये हुये श्रीकृष्ण के समाचार तथा दुर्योधन द्वारा किये गये अनेक अपमानों के स्मरण से अत्यधिक क्रोधित भीमसेन के रंगमंच पर प्रवेश से प्रारम्भ होता है और युधिष्ठिर द्वारा की गई युद्ध की घोषणा के साथ समाप्त हो जाता है। इस भाँति प्रथम अङ्क के प्रथम दिन की घटनाओं का उल्लेख मिलता है।

द्वितीय अङ्क सम्बन्धी नाट्य-व्यापार भीष्म तथा अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् से आरम्भ होता है। महाभारत में वर्णित कथानक के आधार पर भीष्म-वध दसवें दिन तथा अभिमन्यु का वध तेरहवें दिन हुआ था। अतः यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्रस्तुत नाटक के द्वितीय अङ्क में महाभारत युद्ध के चौदहवें दिन का वर्णन हुआ है।

तृतीय अंक का नाट्यव्यापार घटोत्कच की मृत्यु के अनन्तर उसदिन प्रारम्भ होता है कि जिस दिन द्रोण का वध हुआ था। महाभारत के अनुसार यह घटना युद्ध के १५ वें दिन हुई थी। इस भाँति द्वितीय एवं तृतीय अङ्कों की घटनायें लगातार एक के पश्चात् दूसरे दिन प्रतीत होती हैं। चतुर्थ और पंचम अंकों में भी उस ही दिन की घटनाओं का समावेश हुआ है।

छठे अंक में वर्णित शल्य, शकुनि और दुर्योधन के वध की घटना महाभारत युद्ध के अठारहवें दिन हुई थीं। अतएव पंचम और षष्ठ अंकों के मध्य दो दिन का अन्तर समझना चाहिये।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेणीसंहार नाटक में पहले, चौदहवें, पन्द्रहवें और अठारहवें दिनों की घटनाओं का ही समावेश किया गया है।

प्रथम अंक की घटना का समय युद्ध के प्रथम दिन पूर्वाह्न है और व्यापार की अवधि प्रायः प्रातः आठ बजे से ११ बजे दिन तक की मानी जा सकती है। द्वितीय अंक की घटना का समय युद्ध के चौदहवें दिन का पूर्वाह्न है और व्यापार की अवधि प्रथम अंक की घटनाओं की अवधि के समान ही प्रतीत होती है। तृतीय अंक की घटना का समय युद्ध के पंद्रहवें दिन का मध्याह्न है और चतुर्थ अङ्क की घटना का समय उस ही दिन का अपराह्न भाग है तथा पंचम अङ्क का समय उसी दिन की सन्ध्या है। छठे

अंक की घटना का समय युद्ध के अन्तिम दिन (१८ वें दिन) का उत्तरार्ध भाग है।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि भट्टनारायण ने महाभारत की घटनाओं को चार दिनों की अवधि में सीमित किया है।

इस उपर्युक्त विवेचन द्वारा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि ने एक अङ्क में एक दिन से अधिक की घटनाओं का समावेश नहीं किया है और इस भाँति उन्होंने 'कालगत अन्विति' (Unit of Time) का पूर्ण रूपेण पालन किया है।

'वेणीसंहार' के प्रमुख-पात्रों का चरित्र-चित्रण

पात्रों का समुचित चरित्र-चित्रण ही नाटक का प्राण हुआ करता है। भट्टनारायण ने अपनी कृति 'वेणीसंहार' में चरित्र-चित्रण की कला का सुन्दर परिचय दिया है। उनके पात्र महाभारत के लोकप्रसिद्ध पात्र ही हैं। अत एव वे किसी भी पात्र के चरित्र को महाभारत से भिन्न प्रकार का चित्रित करने में स्वतन्त्र नहीं थे। इतना होने पर भी उनके चरित्र-चित्रण में सजीवता, विशदता तथा विविधता का दर्शन पाठक अथवा दर्शक को होता ही है। फिर भी इतना तो कहना ही पड़ता है कि भट्टनारायण में चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कला की निपुणता विद्यमान होते हुये भी वे अपने प्रमुख पात्रों के चरित्र का पूर्णरूप से विकास नहीं कर सके हैं।

'वेणीसंहार' नाटक में सभी प्रमुख पात्रों का चरित्र द्वन्द्वरूप में ही प्रस्फुटित हुआ है। भीम और दुर्योधन, द्रौपदी और भानुमती, कर्ण और अश्वत्थामा परस्पर द्वन्द्व के रूप में ही चित्रित हैं।

भीमसेन

'वेणीसंहार' नाटक का प्रमुख प्रयोजन उसके नाम से ही प्रकट हो जाता है और वह है—द्रौपदी के केशों का संयमन। इस प्रयोजन की पूर्ति में मुख्य भूमिका भीमसेन की ही रही है। अतः नाटक की घटनाओं के केन्द्र भीमसेन ही रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन का आदर्श यही बना रखा है:—

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्यथैव भजाम्यहम्" (गीता)

अर्थात् जो व्यक्ति जिस प्रकार का व्यवहार मेरे साथ करेगा, मैं भी उसका प्रतिकार उसी रूप में करूँगा। "किरातार्जुनीयम्" के प्रथम सर्ग में आयी हुई—

"व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः"

इस उक्ति में उनका पूर्ण विश्वास है। उन्होंने अपने जीवन में उपर्युक्त सिद्धांतों को ढालने का सदैव सफल प्रयास किया।

अपने बल तथा पौरुष पर ही पूर्ण विश्वास रखने वाला व्यक्ति विश्व के इतिहास में कोई बिरला ही होगा। वे सागर के सदृश विशाल शत्रुसेना का एकाकी ही मन्थन करने का साहस रखते हैं। शत्रुओं के साथ किये गये वैर के उत्तरदायी वे स्वयं हैं, न कि उनके भाई:—

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि—
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्" १।१०॥

भीम रोष, स्फूर्ति तथा उत्साह के मूर्तरूप हैं। नाटक के प्रारम्भ में वे कोपाविष्ट मुद्रा में ही दर्शकों के समक्ष आते हैं। उनकी दृष्टि में दुर्योधन और उनके भाइयों द्वारा किये गये अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके हैं। दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में आग का लगवाया जाना, विषमिश्रित भोजन दिलवाना, जुए में छल-कपट के साथ हराना तथा द्रौपदी के केश तथा वस्त्रों को खिचवाना, इत्यादि बातें उनके हृदय में कांटे के सदृश चुभी हुयी हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि धृतराष्ट्र के पुत्र उनके जीते जी सकुशल एवं स्वस्थ नहीं रह सकते हैं:—

"स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥ १०८ ॥"

युधिष्ठिर ने सन्धि के प्रस्ताव को लेकर श्रीकृष्ण को दुर्योधन के समीप भेजा है। यह बात भीम के लिए पूर्णरूपेण असह्य है। इस समाचार को सुनते ही उनका क्रोध उद्दीप्त हो उठता है। वे इस पक्ष में नहीं हैं कि सन्धि की जाय। वे प्रत्येक कीमत पर, यहाँ तक कि बड़े भाई युधिष्ठिर के आदेश के उल्लंघनरूप पाप को भी शिरोधार्य करके शत्रु से अपने तथा अपनी प्रिय-

तथा द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध लेना चाहते हैं (प्रथम अङ्क १०–१२ तक)। उनकी दृष्टि में शत्रुओं के प्रति शान्ति की बात क्षत्रिय–धर्म के विपरीत है, नपुंसकता का प्रतीक है (१।१३)। वे कह देते हैं कि कौरवों तथा भीम के मध्य सांप और न्योले का सम्बन्ध है, यह सर्वजन विदित है। युद्ध में कौरवों का विनाश करने के निमित्त, दुःशासन के वक्षस्थल को फाड़कर उसका रक्त पीने के निमित्त तथा गदा के प्रहार से दुर्योधन की जाँघों को तोड़ने के निमित्त वे अत्यन्त अधीर हैं।

प्रथम अंक में ही वे अत्यन्त क्रोधपूर्ण अवस्था में बैठे हैं। द्रौपदी उनके समक्ष आती है। उनकी दयनीय अवस्था को देखकर वे अत्यन्त दुखी हो उठते हैं। वे द्रौपदी को सन्तोष प्रदान करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं। "हे देवि ! अपनी चञ्चल भुजाओं द्वारा घुमायी गयी गदा के प्रहार से तोड़ी गयी जंघाओं वाले दुर्योधन के गाढ़े रक्त से लिप्त अपने हाथों से भीम तुम्हारे केशों को अतिशीघ्र सँवारेगा (१।२१)।" प्रथम अंक में की गयी इस प्रतिज्ञा को उन्होंने जब तक पूरा नहीं कर लिया तब तक वे शान्तिपूर्वक बैठ न सके। उन्होंने अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्णकर द्रौपदी के केशों का संयमन किया (सँवारा)। इसी आधार पर इस नाटक का नामकरण भी किया गया।

युधिष्ठिर के कारण उन्हें महान् से महान् कष्टों का सामना करना पड़ता है किन्तु वे अपने पथ से कभी विचलित नहीं होते हैं। कष्टों को प्रसन्नता एवं धैर्य के साथ सहन करते हैं। जुये में हारने के पश्चात् उन्हें राजा विराट के यहाँ चाकरी करनी पड़ी। उसे भी उन्होंने प्रसन्नता और धैर्य के साथ सहन किया। इसी कारण युधिष्ठिर के शब्दों मे उन्हें 'प्रियसाहस' कहा गया—(भीमेन प्रियसाहसेन–वेणीसंहार ६।१)

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि ने भीम को एक संघर्षशील तथा दर्पोन्मत्त नायक के रूप में चित्रित किया है। सम्पूर्ण नाटक में (केवल द्वितीय अंक को छोड़कर शेष सम्पूर्ण अंकों में) उनकी दर्पोक्तियाँ मञ्च पर अथवा नेपथ्य से श्रवणगोचर होती है। पंचम अंक में धतराष्ट्र एवं गान्धारी को प्रणाम करते समय उनका अभिमानी एवं उद्धत

स्वभाव अवश्य कुछ खटकने वाला प्रतीत होता है। किन्तु इसे भी उनके चरित्र का दोष कहना उपयुक्त न होगा क्योंकि "जैसे को तैसा" कहना अथवा करना तो उनका उनका स्वभाव ही है। इतना होने पर भी उनके चरित्र का यह वैशिष्ट्य श्लाघनीय ही कहा जायगा कि वे क्रोध के क्षणों में भी अपने शिष्टाचार को नहीं त्यागते हैं और अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं:—"न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्"।

अपने भाइयों के प्रति उनके मन में अत्यन्त स्नेह है। अपने बड़े भाई के लिये तो उनके हृदय में अत्यन्त आदर तथा श्रद्धा है। अत्यधिक बलवान तथा पराक्रमी होते हुए भी युधिष्ठिर के प्रति श्रद्धा होने के कारण ही कौरवों की दासता को स्वीकार कर उन्होंने १२ वर्षों तक वनवास और एक वर्ष तक अज्ञातवास का कष्टमय जीवन व्यतीत किया। स्वयं युधिष्ठिर ने ही उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है (देखिए ६।१९ तथा ६।३१)।

श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा है। उन्होंने श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म के रूप में देखा है। उनके हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति आदर एवं श्रद्धा का भाव विद्यमान है (देखिए १।२३)।

उक्त विवरण के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भीमसेन अत्यन्त पराक्रमी, तेजस्वी, शत्रुनिहन्ता, बन्धुप्रिय, अमित साहसी तथा सत्यवादी हैं। वेणीसंहार नाटक के धीरोदात्त नायक हैं।

दुर्योधन

'वेणीसंहार' नाटक का प्रतिनायक दुर्योधन महान् अहंकारी, अद्वितीय विलासी, और स्वार्थी व्यक्ति है। वह कौरव साम्राज्य के अधिपति धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र है। वह स्वभाव से ही ईर्ष्यालु और दम्भी है। अभिमान तो उसकी नस-नस में कूट-कूट कर भरा पड़ा है। वह पाण्डवों की उन्नति को सहन नहीं कर पाता है। पाण्डवों को प्रत्येक सम्भव उपायों से प्रताडित अथवा तिरस्कृत करने में उसने कभी भी भूल नहीं की है।

जिन भीष्म तथा द्रोण जैसे महारथियों के सहायक होने के कारण जिस दुर्योधन ने तीनों लोकों को तुच्छ समझ रखा था, वे दोनों (भीष्म और द्रोण)

मारे जा चुके हैं। दुर्योधन की विशाल सेना को भी भीम और अर्जुन ने मथ डाला है फिर भी दुर्योधन को यह विश्वास है कि वह युद्ध में विजय अवश्य प्राप्त करेगा। भीमसेन ने दुःशासन को पकड़कर धर दबोचा है। कौरवों की सेना किंकर्तव्यविमूढ़ होकर स्तब्ध के सदृश खड़ी है। भीम का छोटा भाई अर्जुन धनुष पर बाण चढ़ाये उसी के समीप खड़ा है ताकि बड़े भाई भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण होने में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा उपस्थित न हो। फिर भी दुर्योधन का कथन है कि "हाथ में शस्त्र लिए मेरे जीवित रहते वायु के पुत्र भीम अथवा किसी अन्य की क्या शक्ति है कि वह मेरे छोटे भाई दुःशासन की छाया भी छू सके: —

"आः, का शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् ?"

किन्तु उसका यह अभिमान नितान्त खोखला है, असत्य है तथा प्रयोजनविहीन है। उसके जीते जी उसके लघुभ्राता दुःशासन का वक्षस्थल जीवित दशा में ही विदीर्ण किया जाता है, और भीम द्वारा रक्त पान किया जाता है किन्तु दुर्योधन भीम का कुछ भी बिगाड़ नहीं पाता है। इसी प्रकार का उसका मिथ्या-अभिमान जयद्रथ-वध की चर्चा के प्रसङ्ग में तथा अन्य स्थलों पर भी देखने को उपलब्ध होता है।

यद्यपि उसमें वीरता है, साहस है किन्तु फिर भी वह भीम तथा अर्जुन से अन्दर ही अन्दर भयभीत रहता है। वह स्त्रैण-स्वभाव का भी है। द्रोणाचार्य और भीष्म जैसे महारथियों तथा अन्य अनेक प्रकृष्ट योद्धाओं के मारे जाने पर भी वह (दुर्योधन) निश्चिन्त है तथा अपनी पत्नी भानुमती के साथ विलास चेष्टायें करता है (देखिये २। ८।) इस भाँति द्वितीय अङ्क में उसके शृङ्गारी रूप का दर्शन जहाँ पाठक या दर्शक को होता है वहीं उसके विपत्ति में भी अत्रस्त तथा अपने बल से गर्वित वीर रूप का भी दर्शन पाठक अथवा दर्शक को होता है। भानुमती द्वारा देखे गये स्वप्न तथा ध्वजा के भङ्ग हो जाने सम्बन्धी अपशकुन से आशङ्कित भानुमती को वह आश्वस्त करते हुये कहता है :—

"त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव" ? (२।१६)

वस्तुतः दुर्योधन वीरों में सिंह सदृश है। वह अपने शत्रु का अपने समक्ष ही अहित करने के लिये उद्यत है। भीम द्वारा यह प्रस्ताव किये जाने पर कि वह शस्त्र धारण कर हम पाँचों पाण्डवों में से किसी से भी द्वन्द युद्ध कर सकता है, वह प्रियसाहस भीमसेन से ही युद्ध करने को उद्यत होता है :—

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम।
अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥६।११॥

दुर्योधन एक सच्चा तथा भावुक मित्र भी है। वह अङ्ग राज कर्ण का अभिन्न मित्र है। वह मित्र की विपत्ति को अपनी ही विपत्ति समझता है। वह कर्ण की मृत्यु हो जाने पर अपने प्रिय अनुज दुःशासन के वध को भूल जाता है तथा अपने मित्र का वध करने वाले व्यक्ति के कुल को ही नष्ट कर देने का निश्चय करता है। (५।१६ ।।)।

स्वार्थ तो उसमें कूट-कूट कर भरा है अपने स्वार्थ को सिद्ध करने हेतु वह समस्त विश्व को भी निस्संकोचरूप से बलिदान कर सकता है। युद्ध-कला के महान् ज्ञानी भीष्म शरशय्या पर सुला दिये गये हैं किन्तु उसे तनिक भी चिन्ता नहीं है। अपनी बाण-विद्या के बल पर तीनों लोकों को अपने वश में करने वाले आचार्य द्रोण भी मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, फिर भी उसका मन तनिक भी चिन्तित नहीं हुआ है। उनके लिये शोक करना तो दूर रहा, उलटे वह उनकी निन्दा और कर रहा है। अपनी छोटी बहिन दुःशला द्वारा यह ज्ञात होने पर, कि उसका युवा पति जयद्रथ कल सूर्यास्त के पूर्व ही अर्जुन द्वारा मार दिया जायगा, ऐसी अर्जुन ने प्रतिज्ञा भी की है, वह विशिष्ट चिन्तित अथवा उसका निराकरण करने हेतु कुछ विशिष्ट तत्पर नहीं दिखलाई देता है।

अन्त में यही कहना अधिक उपयुक्त होगा कि "संसार में अभिमानी व्यक्ति को सदैव नीचा ही देखना पड़ा करता है" इस सिद्धान्त और तथ्य के अनुसार अभिमानी दुर्योधन को भी स्थान २ पर नीचा ही देखना पड़ा है। असफलता ही सदैव उसके हाथ लगी है। वह स्वयं तो नष्ट हुआ ही, साथ

ही अपने इष्ट बन्धु-बान्धवों, मित्रों को भी नष्ट करके ही संसार से विदा हुआ।

युधिष्ठिर

पाचों पाण्डवों में सबसे बड़े युधिष्ठिर ही हैं। वे स्वभाव से अत्यन्त विनम्र, दयालु, परोपकारी, सत्यवक्ता तथा धर्मपरायण हैं। उनके मन में किसी के भी प्रति शत्रु-भावना नहीं है। इसी कारण उन्हें अजातशत्रु कहा जाता है। युद्ध करके वे राज्यप्राप्ति के इच्छुक नहीं हैं। १२ वर्ष के वनवास एवं १ वर्ष के अज्ञातवास की अवधि को व्यतीत कर लेने पर भी यद्यपि वे आधे राज्य को प्राप्त करने के अधिकारी हैं तथापि वे आधा राज्य न चाहकर केवल ५ पाँच गाँवों को ही लेकर दुर्योधन से सन्धि कर लेना चाहते हैं। एतदर्थं वे श्री कृष्ण को दूत बनाकर दुर्योधन के समीप जाते हैं किन्तु वह एक भी बात नहीं सुनता है। वह युद्ध के लिये उद्यत है। विवश होकर युधिष्ठिर को युद्ध की घोषणा करा देनी पड़ती है। इसका विवरण वेणीसंहार के प्रथम अङ्क में उपलब्ध होता है।

इसके अनन्तर वे छठे अंक में ही दर्शकों के समक्ष आते हैं। वे अपने एक भी भाई के विना जीवित नहीं रहना चाहते हैं। षष्ठ अंक में भीम द्वारा अनन्यदिनगामिनी प्रतिज्ञा कर लेने पर उसकी आशंका से तथा चार्वाक द्वारा भीम की मृत्यु हो जाने और अर्जुन के साथ युद्ध प्रारम्भ होने के समाचार को जान लेने पर भ्रातृ-प्रेम के ही कारण उनके चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। वे द्रौपदी को सम्बोधित करते हुये कहते हैं:—

"अयि पाञ्चालराजतनये।··· ··· ···यथा संदीप्यते पावकस्तथा सहितौ एव बन्धुजनं संभावयावः।"

अर्थात् हे पाञ्चालराज की पुत्री द्रौपदी।·········जैसे ही अग्नि प्रज्वलित होती है वैसे ही हम दोनों एक साथ आग में जलकर बन्धुजनों का सफाया करेंगे।

इसके अतिरिक्त नाटक की दृष्टि से उनके चरित्र का कोई अन्य वैशिष्ट्य उपलब्ध नहीं होता है।

टीकाकार शंकर चतुर्वेदी

अर्जुन

अर्जुन युधिष्ठिर के मझले भाई हैं। वे श्रीकृष्ण के अनन्य मित्र हैं। वे अप्रतिम वीर होते हुए सागर के सदृश गम्भीर तथा हिमालय के समान महान् हैं। आचार्य द्रोण के वे सर्वाधिक प्रिय शिष्य हैं।

धनुर्विद्या में उनकी सहायता करने वाला कोई न था। अर्जुन की वीरता केवल पृथ्वीतल पर ही प्रसिद्ध नहीं थी, वे तो स्वर्गलोक में भी अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। स्वयं भगवान शंकर ने भी इनके अमित पराक्रम को देखकर उनकी प्रशंसा की थी तथा उनको पाशुपत नामक अपना दिव्यास्त्र भी दे देना पड़ा था। देवराज इन्द्र ने भी अर्जुन को अस्त्रविद्या की शिक्षा प्रदान कर सम्पूर्ण दिव्यास्त्र भी उन्हें प्रदान किये थे। देवलोक में पहुंचकर अर्जुन ने दैत्यों का संहारकर देवताओं को सन्तुष्ट किया था।

इस प्रकार का त्रिभुवन विजयी होने पर भी वह अत्यन्त विनम्र, शान्त, उदार तथा क्षमाशील है। दुर्योधन द्वारा अपने भाई भीम को बुरा भला कहे जाने पर वह शान्ति के साथ अपने भाई भीम से कहते हैं:—

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा।
हत भ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा॥ ५-३१॥

वे कर्म में अधिक विश्वास करते हैं, कथन में नहीं। वे आत्म प्रशंसक नहीं हैं। अभिमान उनको स्पर्श तक नहीं कर सका है। उनके हृदय में कृष्ण के लिए अत्यधिक अनुराग विद्यमान है। इसी कारण श्रीकृष्ण ने गीतामृत का पान इन्हीं को कराया था, किसी अन्य पांडव को नहीं।

अर्जुन के सम्बन्ध में यही कहा जाना अधिक समीचीन होगा कि वे अतिविनम्र, विनय सम्पन्न, क्षमाशील, धैर्यशाली, सदाचारी तथा अप्रतिम योद्धा तथा भगवद्भक्त थे। उनकी शक्ति तथा उनका बल अथवा पराक्रम लोक संरक्षण के लिए ही था, लोकपीडन के लिए नहीं।

अश्वत्थामा

अश्वत्थामा आचार्य द्रोण का सुयोग्य पुत्र है। वह धनुर्धर पिता का धनुर्धर पुत्र है। आचार्य द्रोण की सम्पूर्ण विद्या उसे प्राप्त थी। वह पितृवत्सल

पुत्र है। उसे पूर्ण विश्वास था कि उसका पिता अतुल पराक्रमी है। संसार की कोई भी शक्ति उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती है। मृत्यु भी उनका अहित कर सकने में सक्षम नहीं है। महाप्रलय के अतिरिक्त अन्य किसी भी भांति उनकी मृत्यु का होना सम्भव नहीं है। (देखिए ३।७-८)।

वह अपने पिता के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रहना चाहता है। वह शरीर त्यागकर अपने पिता से मिलने हेतु स्वर्ग जाने के लिए उद्यत है। (देखिए ३।१७।।)। कृपाचार्य द्वारा उसे समझाया जाता है। उनके समझाने पर वह एकमात्र इसीलिए जीवित रहना चाहता है कि उसे इस भूतल पर अपने पिता के शत्रुओं का विनाश कर देना है। किन्तु दुर्योधन के अविवेक तथा मूर्खता और अपने पिता की निन्दा करने वाले कर्ण के प्रति उसके पक्ष-पात को समझकर वह अस्त्र-शस्त्र त्याग देता है (देखिए ३।१९।।)।

महाकवि ने अश्वत्थामा को पितृवत्सल और स्वाभिमानी वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया है। भीम ने दुःशासन को धर दबोचा है। भीम अब उसके वक्षस्थल को विदीर्ण करना ही चाहते हैं। कौरव पक्ष में ऐसा कोई वीर योद्धा नहीं कि जो अर्जुन के बाणों को निष्फलकर भीम से दुःशासन की रक्षा कर सके। अश्वत्थामा के लिए यह असह्य है। अतः प्रतिज्ञापूर्वक छोड़े गये शस्त्र को वह पुनः उठा लेना चाहता है किन्तु आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोक देती है। उसे इस बात का पश्चात्ताप है कि वह कर्ण के प्रति किये गये क्रोध में की गई अपनी प्रतिज्ञा के फलस्वरूप अपने स्वामी का हित नहीं कर सका।

अश्वत्थामा अत्यन्त कर्मनिष्ठ व्यक्ति है। यद्यपि वह दुर्योधन द्वारा अप-मानित हो चुका है किन्तु फिर भी वह दुर्योधन का हितचिन्तक है। अतः वह पुनः एक बार दुर्योधन के समीप जाता है। धृतराष्ट्र एवं गान्धारी उसे पाकर अतिप्रसन्न होते हैं। किन्तु दुर्योधन उसकी सहायता को स्वीकार नहीं करता है (देखिये ५-३९) यहीं से अश्वत्थामा सदा के लिये किसी अज्ञात-स्थान को चला जाता है।

अश्वत्थामा पूर्ण युवा है। उसके रोम-रोम में शक्ति भरी पड़ी है। उसमें परशुराम सदृश शक्ति विद्यमान थी।

("यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः" ॥३।३३॥) ।

अपनी युवावस्था में ही उसने इतनी शक्ति अर्जित कर ली थी कि लोग उसे भीष्म तथा द्रोण की श्रेणी का समझते थे (३।२६॥) । स्वयं दुर्योधन ने भी उसे अद्वितीय योद्धा कहा था (३।३३ श्लोक के पश्चात् का दुर्योधन का कथन) ।

निस्सन्देह अश्वत्थामा का चरित वेणीसंहार का प्राण है ।

कर्ण

कर्ण एक वीर तथा उत्साही व्यक्ति है । किन्तु अत्यन्त अभिमानी तथा प्रकृत्या अतिदुष्ट व्यक्ति है । वह तृतीय अङ्क में रङ्गमञ्च पर आता है । चतुर्थ अकं में उसके पराक्रम का वर्णन सुन्दरक द्वारा किया गया है । सुन्दरक ने दुर्योधन को उसका सन्देश भी दिया है । 'वेणीसंहार' में चित्रित उसके चरित्र से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि वह केवल वीर पुरुष ही नहीं है अपितु एक तिकड़मी राजनीतिज्ञ भी है । परोत्कर्ष-सहिष्णुता तो उसमें लेश-मात्र भी नहीं है । वस्तुतः दुर्योधन को अनुचित सम्मतियाँ प्रदान कर करके चमकते हुये व्यक्तित्व एवं भाग्य को धूलिसात् करा देने का श्रेय कर्ण को ही अधिक है । दुर्योधन भी उसे अपना अनन्य मित्र, उत्कृष्ट मन्त्री तथा सर्वोत्कृष्ट सहायक मानता था । कर्ण ने ही द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन के मन को द्रोण और अश्वत्थामा की ओर से विषाक्त कर दिया था । परिणाम स्वरूप दुर्योधन ने अश्वत्थामा सदृश सिंह का तिरस्कार कर मृत्यु का वरण किया ।

कर्ण भाग्यवादी होने के साथ ही साथ पुरुषार्थवादी भी है । नीच से नीच कुल में उत्पन्न होने की बात को तो वह भाग्य के आधीन बतलाता है । हाँ, वह पौरुष का महान् समर्थक व्यक्ति है । उसके अन्दर पौरुष को अर्जित करने तथा उसकी वृद्धि करने का विलक्षण साहस था (देखिये ३।३७॥) ।

किन्तु महाबली अर्जुन के साथ युद्ध में उनका बल-पराक्रम कुछ भी काम नहीं करता है । अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा करने पर भी कर्ण को स्वयं ही अर्जुन के हाथों मृत्यु को प्राप्त होना पड़ा था ।

बल-पराक्रम आदि सब कुछ होते हुये होने पर भी इतना तो मानना उचित ही होगा कि कर्ण सदृश व्यक्ति मानवसमाज के लिये हितकर नहीं कहे जा सकते हैं।

द्रौपदी

द्रौपदी पाण्डवों की पत्नी तथा 'वेणीसंहार' नाटक की नायिका है। दुर्योधन द्वारा भरी राजसभा में उसका जो अपमान किया गया था उसे वह भूली नहीं है तथा उसका प्रतिशोध लेने के लिए समय-समय पर पाण्डवों को उकसाती रहती है। उसके अन्दर वे सभी गुण विद्यमान हैं कि जिनका एक वीर क्षत्राणि में होना आवश्यक है। उसे इस बात का महान दुःख है कि एक वीर पुत्री, वीर-भगिनी और वीर पत्नी होते हुए भी उसका तिरस्कार किया गया।

उसकी अवतारणा प्रथम अङ्क में ही होती है। युधिष्ठिर दुर्योधन से पांच गाँवों की शर्त पर ही सन्धि करना चाहते हैं, यह बात उसे सह्य नहीं है। आँखों में अश्रुधारा को भरे हुए वह भीम से अपने असन्तोष को प्रकट करती है। इसको सुनकर भीम का क्रोध और अधिक उद्दीप्त होता है। और वह अपनी प्रतिज्ञा को दुहराता है कि सम्पूर्ण कौरवों का विनाश करेगा, दुःशासन के वक्षस्थल के रक्त का पान करेगा और दुर्योधन की जंघाओं को चूर्ण-२ कर उसके रक्त से लिप्त हाथों से उसके केशों को सँवारेगा। अतएव उसे अपने तिरस्कार के सागर को पार करने में एकमात्र भीम का ही सहारा प्राप्त है। उसने दुर्योधन के रक्त से अपने केशों के सँवारे जाने सम्बन्धी जो प्रतिज्ञा कर रखी थी, उसका पालन उसके द्वारा अन्त तक किया गया है।

एक उच्च श्रेणी की क्षत्राणी की भाँति उसे वीरता ही एकमात्र प्रिय है। यही कारण है कि वह सर्वदा क्रोधोत्साहयुक्त भीम को ही अपना वास्तविक पति समझती है। उन्हीं को 'नाथ' शब्द से सम्बोधित करती है।

चार्वाक द्वारा भीम की मृत्यु का समाचार पाकर वह चिता में जलकर सती हो जाने का निश्चय कर लेती है ताकि शत्रु उसका पुनः अपमान न कर

सके। अन्त में भीम द्वारा आने पर वह उनके दुर्योधन के रक्त से लिप्त हाथों से अपने केशों को सँवरवाती है।

निस्सन्देह वह एक आदर्श क्षत्राणी है। वह अपना अपमान करने वाले का समूलोच्छेद कराकर ही शान्ति का अनुभव करती है।

धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र वस्तुतः एक पुत्रवत्सल पिता है। युद्ध में होती हुई निरन्तर पराजय तथा अपने पुत्रों के विनाश को देखकर एकमात्र अवशिष्ट-पुत्र दुर्योधन को बचा लेने के निमित्त उसे युधिष्ठिर से सन्धि कर लेने की राय देता है। दुर्योधन के जीवित बने रहने की उसे आशा नहीं है। विलाप करता हुआ वह स्वयं ही कहता है:—

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः
शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाऽहम्।
अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे
दुर्योधनेऽपि हि कृतो भवता निराशः॥ ५।१३॥

किन्तु दुर्योधन धृतराष्ट्र द्वारा रखे गये सन्धि-प्रस्ताव से सहमत नहीं होता है। ऐसी स्थिति में धृतराष्ट्र उसे शत्रु के प्रति कपट का अवलम्बन करने का सुझाव देने में भी संकोच नहीं करता है।

गान्धारी

गान्धारी दुर्योधन की माता है। वह एक पुत्रवत्सला स्त्री है। उसके निन्यानवे पुत्र युद्ध में मारे जा चुके हैं। अब मात्र एक पुत्र दुर्योधन ही शेष बचा है। उसे ही वह बचाकर रखना चाहती है। वह कहती है:—

त्वमपि तावदेकोऽस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः।
तच्चिरं जीव। किं मे राज्येन जयेन वा।

(वे० संहार -५।२ के पश्चात् का गान्धारी का कथन)

पुत्र की रक्षा के समक्ष उसके लिये राज्य अथवा विजय भी हेय है।

वह जानती है कि दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ अन्याय किया है। किन्तु दुर्योधन के मोह तथा उसके हठ के कारण वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ

है। वह अत्यन्त पति-परायण है। पति के अन्धे होने के कारण वह जीवन-पर्यन्त अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रहती है।

भानुमती

भानुमती वेणीसंहार नाटक के प्रतिनायक दुर्योधन की पत्नी है। वह न केवल सुन्दरी ही है अपितु एक सद्‌गृहिणी भी है। वेणीसंहार नाटक में उसे एक आदर्श हिन्दू स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। पति की मङ्गल-कामना हेतु वह व्रत, उपवास रखकर देवताओं की आराधना भी करती है। एक धर्मभीरु हिन्दू नारी के सदृश उसका स्वप्नों तथा शकुनों में विश्वास है। नाटक के केवल द्वितीय अङ्क में ही वह दर्शकों के समक्ष आती है।

श्रीकृष्ण

'वेणीसंहार' नाटक में कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। कृष्ण का उल्लेख केवल प्रारम्भिक तथा अन्तिम अंक में उपलब्ध होता है। मञ्च पर प्रवेश तो केवल अन्तिम अंक के अन्त में ही हुआ है। कृष्ण के इस कथन—"तत्कथय महाराज! किमस्मात्परं समीहितं संपादयामि?" से प्रतीत होता है कि कृष्ण नाटक की सम्पूर्ण घटनाओं के संचालक के रूप में विद्यमान रहे।

वेणीसंहार का नायक

'वेणीसंहार' में महाभारत के कई प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण नायक के रूप में किया गया है। महाकवि भट्टनारायण द्वारा किसी एक के चरित्र को इतनी प्रमुखता नहीं दी जा सकी है कि जिससे निस्सन्देह रूप से उसे ही नाटक का नायक स्वीकार किया जा सके। अतः इस नाटक के बारे में यह प्रश्न विवादास्पद हो गया है कि वेणीसंहार का प्रमुख नायक कौन है? विभिन्न आलोचकों के मतानुसार निम्नलिखित तीन व्यक्तियों को नायक की श्रेणी में रखा जा सकता है।

(१) दुर्योधन (२) भीम तथा (३) युधिष्ठिर।

महाकवि द्वारा दुर्योधन का चरित्र एक सुन्दर रूप में चित्रित किया गया है। उसे प्रारम्भ से लेकर अन्तिम अंक तक-सभी अंकों में रङ्गमञ्च पर

उपस्थित किया गया है। स्थान-स्थान पर उसका उल्लेख पाठक अथवा दर्शक को स्पष्टरूप से उपलब्ध होता है। षष्ठ-अङ्क में तो उसका अनेक बार उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त वह कौरवों का मूर्धाभिषिक्त राजा भी है। वह वीर तथा साहसी भी है। इस भांति नाटक में दी गई प्रमुखता के आधार पर उसे ही प्रमुख नायक का स्थान प्रदान किया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने कि जिन्होंने 'वेणीसंहार' नाटक को करुणरसप्रधान दुःखान्त नाटक स्वीकार कर लिया है, दुर्योधन को ही प्रमुख नायक के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु यदि दुर्योधन को प्रमुख नायक के रूप में स्वीकार कर लिया जाय तो यह नाट्यशास्त्र के नियमों के विरुद्ध होगा। क्योंकि इसमें दुर्योधन का वध दिखलाया गया है। दशरूपककार के अनुसार—

नाधिकारिवधं क्वापि। दशरूपक ३।३६
अधिकृतनायकवधं प्रवेशकादिनाऽपि न सूचयेत्। धनिक ॥

अर्थात् अधिकारी नायक का वध कभी भी (प्रवेशक आदि के द्वारा भी) नहीं दिखलाया जाना चाहिये ॥

ऐसी स्थिति में दुर्योधन को इस नाटक का प्रमुख नायक कभी भी नहीं माना जा सकता है। हाँ, उसे प्रतिनायक की श्रेणी में अवश्य रखा जा सकता है।

भीमसेन नाटक के प्रथम, पञ्चम तथा षष्ठ अङ्क में रङ्गमञ्च पर विद्यमान रहते हैं। तृतीय तथा चतुर्थ अंकों में भी नेपथ्य से कथित उसकी गर्वोक्तियों तथा सुन्दरक द्वारा वर्णित उसके पराक्रम से निरन्तर उसकी सत्ता का भान पाठक अथवा दर्शक को बना रहता है। द्वितीय अंक में कञ्चुकी द्वारा कथित "भग्नं भग्नं भीमेन" उक्ति से पाठकों अथवा दर्शकों का ध्यान भीम को आकृष्ट होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भीमसेन नाटक के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सर्वत्र छाया हुआ है। इसके अतिरिक्त द्रौपदी के केशों का संयमन रूप प्रमुख प्रयोजन भी उसके द्वारा सम्पन्न हुआ है। किन्तु नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तानुसार नायक का नायक धीरोदात्त ही

होना चाहिये—"धीरोदात्तः प्रतापवान्"। धीरोदात्त का लक्षण दशरूपककार ने इस प्रकार किया है:—

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥ दशरूपक २।४-५॥

किन्तु धीरोदात्त नायक के ये लक्षण भीमसेन में विद्यमान नहीं है। सम्पूर्ण नाटक तो उनकी गर्वोक्तियों से ही भरा पड़ा है। यहाँ तक कि अपने पुत्रों के वध से दुःखी धृतराष्ट्र और गान्धारी के समक्ष भी वह अपनी असंयमित वाणी का प्रयोग करता है। अहङ्कार, क्रोध तथा उच्छृङ्खलता से परिपूर्ण उनका स्वभाव हैं। वे तो दुःशासन के वक्षस्थल को विदीर्णकर बड़ी क्रूरता के साथ उसके रक्त तक का पान करने से नहीं चूकते हैं। इस भांति हम देखते हैं कि उनका सम्पूर्ण चरित्र धीरोद्धत नायक के लक्षणों से युक्त है। ऐसी स्थिति में भीम को भी इस नाटक का प्रमुख नायक स्वीकार किया जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता है।

अब प्रमुख नायक के अधिकारी पद के लिए केवल युधिष्ठिर ही शेष रह जाते हैं। युधिष्ठिर धीर प्रशान्त तथा अविकत्थन (आत्मप्रशंसक न होना) हैं। महाकवि को भी सम्भवतः युधिष्ठिर को ही प्रमुख नायक बनाना अभीष्ट रहा होगा। संस्कृत नाटकों की यह परम्परा है कि नाटक के उपसंहार में अभिमत फल की कामना, जो प्रायः भरतवाक्य के रूप में हुआ करती है प्रमुख नायक के मुख द्वारा ही कराई जाती है। इस नाटक में इस प्रकार की कामना युधिष्ठिर के मुख से कराई गयी है। इसके अतिरिक्त युद्ध की समाप्ति पर शत्रु-वधरूप कार्य का मुख्य फल "राज्य की प्राप्ति" भी युधिष्ठिर को ही होती है।

सभी पाण्डव युधिष्ठिर के ही आधीन हैं। युधिष्ठिर के आदेश के बिना न तो युद्ध का प्रारम्भ ही किया जा सकता था और न समाप्ति ही। अत्यधिक बल एवं पराक्रमशाली भीम और अर्जुन भी युधिष्ठिर की आज्ञा के बिना एक पग आगे नहीं बढ़ सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वत्र युधिष्ठिर का ही प्रमुत्व है। अतः युधिष्ठिर को ही वेणीसंहार नाटक का 'प्रमुख-नायक' स्वीकार करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

किन्तु युधिष्ठिर को भी प्रमुख नायक मानने में अनेक आपत्तियाँ आती हैं कि जिनके कारण उनको प्रमुख नायक के रूप में स्वीकार करना सम्भव प्रतीत नहीं होता है। ये निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रथम आपत्ति तो यह है कि महाकवि ने युधिष्ठिर के चरित्र के विकास की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। इसी कारण उनके चरित्र का सम्यक् विकास नहीं हो सका है। इससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि महाकवि को युधिष्ठिर को प्रमुख नायक के रूप में स्थापित करना अभीष्ट न रहा होगा। युधिष्ठिर का उल्लेख प्रथम तथा पंचम अंक में अवश्य हुआ है। किन्तु रङ्गमञ्च पर उनका प्रवेश छठे अंक में ही दृष्टिगोचर होता है। यदि कवि को उन्हें ही प्रमुख-नायक के रूप में रखना अभीष्ट होता तो उनके चरित्र का वर्णन उसके द्वारा प्रारम्भ से अन्त तक होना चाहिये था। अतः युधिष्ठिर को प्रमुख नायक नहीं कहा जा सकता।

/ (२) 'वेणीसंहार' नाटक के नाम से ही उसके कार्यभूत फल का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। 'वेणी' का संहार (सँवारा जाना) होना ही नाटक का प्रमुख फल है, राज्य की प्राप्ति नहीं। यह कार्य युधिष्ठिर द्वारा सम्पन्न न होकर भीम द्वारा सम्पन्न हुआ है। अतः युधिष्ठिर को नाटक का प्रमुख नायक स्वीकार करना पूर्णतया असंगत तथा असमीचीन ही प्रतीत होता है।

(३) इनके अतिरिक्त शूरवीरता आदि गुणों का युधिष्ठिर के चरित्र में प्रायः अभाव सा दृष्टिगोचर होता है। कुछ आलोचकों ने तो उनके चरित्र को कायरता पूर्ण ही कह दिया है। जैसा कि छठे अंक में मुनिवेषधारी चार्वाक एवं युधिष्ठिर के वार्तालाप तथा उनके द्वारा चिता में जलकर मर जाने के निश्चय आदि से ज्ञात होता है। अतः नाटक के प्रमुख-नायक की श्रेणी में उनका रखा जाना पूर्णतया असंगत ही है।

ऐसी स्थिति में भीम को ही 'वेणीसंहार' नाटक का प्रमुख नायक स्वीकार करना उपयुक्त होगा। प्रथम बात तो यह है कि किसी भी नाटक का नाम निरपेक्ष न होकर सापेक्ष ही हुआ करता है। उसका सम्बन्ध विशेषरूप से नायक, नायिका तथा कथावस्तु से अवश्य रहा करता है अभिज्ञानशाकुन्तलम्,

मालविकाग्निमित्रम्, मुद्राराक्षसम्, आदि नाटकों के नामों से ही इसकी सत्यता स्पष्ट हो जाती है। इनमें से प्रत्येक नाम का नायक, नायिका अथवा कथावस्तु से सम्बन्ध स्पष्ट ही है। नायक आदि के साथ इन सभी नामों की सार्थकता है। यही बात प्रस्तुत नाटक के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। "वेणीसंहार" का अर्थ ही है—(खुली हुई) चोटी का सँवारना। जिस नाटक में खुली हुई चोटी को सँवारा गया हो—उसी का नाम है—'वेणी-संहारम्"। चोटी सँवारने सम्बन्धी महान् कार्य को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा भीम द्वारा की गई है—(१।२१।।)। अन्त में नाटक की समाप्ति पर भी भीम द्वारा ही युधिष्ठिर से कहा गया है कि :—(भीमसेन :—) "सुमहद-वशिष्टम्। संयच्छामि तावदनेन सुयोधन शोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम्" (६।४०-४१ वें श्लोकों के मध्य।)। अर्थात् अभी महान् कर्त्तव्य शेष है। दुःशासन द्वारा खींचे गये द्रौपदी के केशसमूह को दुर्योधन के रक्त से लिप्त इस हाथ से बाँधना है। उसी ने चोटी को सँवारा है। इस भाँति नाटक के उपर्युक्त अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति भीम द्वारा ही की गई है। अतएव भीम को ही नाटक का नायक कहा जा सकता है।

(२) भीम ही एक ऐसे योद्धा हैं कि जो नाटक के प्रारम्भ से अन्त तक छाये हुये हैं। साथ ही भीम द्वारा नाटक के प्रथम अंक में जो प्रतिज्ञा की गयी है उसी की पूर्ति में सम्पूर्ण नाटक की कथावस्तु वर्णित है। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा में तीन बातें कही थी :—

(१) कौरवों का विनाश (२) दुःशासन के वक्षस्थल को विदीण कर उसका रक्तपान करना तथा (३) अपनी गदा से दुर्योधन की जंघाओं को चूर्ण २ कर उसके रक्त से लिप्त हाथों द्वारा द्रौपदी की खुली हुयी चोटी को सँवारना। इन तीनों की पूर्ति सम्पूर्ण नाटक में भीम द्वारा ही की गयी है।

(३) नाटक का प्रमुख कार्य है द्रौपदी की खुली हुयी चोटी को सँवारना। इस प्रमुख कार्य को भी भीम द्वारा ही संपन्न किया गया है।

(४) नाटक के नायक तथा प्रतिनायक में शत्रुता का होना स्वाभाविक है। वे दोनों परस्पर एक दूसरे का अहित अथवा वध करने के लिये सर्वदा

उद्यत रहा करते हैं। उन दोनों में से कोई किसी को भी सहन करने के लिये कभी भी उद्यत नहीं रहा करता है। कथानक के बीच-बीच में नायक द्वारा प्रतिनायक का अपकार भी किया जाता रहा करता है। अन्त में तो नायक द्वारा प्रतिनायक का वध भी कर दिया जाया करता है। अथवा नायक प्रतिनायक को सर्वदा के लिए वश में कर लिया करता है। इन बातों की दृष्टि से भी विचार करने पर भीम ही नाटक के नायक सिद्ध होते हैं। इन सम्पूर्ण घटनाओं से भीम का नायक होना तथा दुर्योधन का प्रतिनायक होना भी स्वय ही सिद्ध हो जाता है।

(५) नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु से नायक का कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य बना रहा करता है। अभिप्राय यह है कि नायक सम्पूर्ण कथावस्तु पर छाया रहा करता है। या तो वह सदैव दर्शकों के समक्ष वर्त्तमान रहा करता है अथवा उसके कार्य उनके मन में सञ्चरण करते रहा करते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कथावस्तु के साथ नायक का सीधा सम्बन्ध हुआ है। इस आधार पर जब हम विचार करते हैं तो युधिष्ठिर का नायक होना पूर्णतया समाप्त हो जाता है तथा भीम का नायक होना निश्चित हो जाता है।

(६) नाटक में नायक एवं नायिका का परस्पर स्त्री-पुरुष-भाव वाला सम्बन्ध हुआ करता है। पत्नी नायिका होती है और पति नायक। यद्यपि द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों का पत्नी माना गया है किन्तु नायिका का जो नायक के साथ स्त्री-पुरुष-भाव सम्बन्ध हुआ करता है वह तो उसका केवल भीम के साथ ही दृष्टिगोचर होता है। वह उन्हीं को 'नाथ' अथवा 'आर्यपुत्र' कहकर सम्बोधित करती है। (प्रथम और षष्ठ अंक में इसके उदाहरण विद्यमान हैं)। नायिका इन शब्दों द्वारा नायक को ही सम्बोधित किया करती है, अन्यों को नहीं। छठे अङ्क में द्रौपदी तथा युधिष्ठिर का वार्त्तालाप पर्याप्त समय तक चलता है किन्तु द्रौपदी उनको उक्त शब्दों द्वारा एकबार भी सम्बोधित नहीं करती है। नाटक में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक द्रौपदी का भीम के साथ ही घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाई देता है। ऐसी स्थिति में भीम को ही नाटक का नायक समझना उचित है।

(७) 'वेणीसंहार' नाटक वीर-रस प्रधान नाटक है। वीर-रस प्रधान नाटक के नायक तथा प्रतिनायक दोनों ही वीर होने चाहिये। हाँ, इतना अवश्य संभव हो सकता है कि प्रतिनायक की अपेक्षा नायक प्रबल हो। इस दृष्टि से विचार करने पर भी युधिष्ठिर को नायक का प्रमुख-नायक मानना संभव नहीं है। अतः भीम को ही नाटक का नायक मानना होगा। वे ही वीरता की साक्षात् मूर्ति हैं।

(८) प्रथम अंक में ही भीम द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुये दृष्टि गोचर होते हैं। वे द्रौपदी से कहते हैं कि मैं दुर्योधन की जाँघों को तोड़कर उसके रक्त से तुम्हारी चोटी सँवारूँगा। छठे अंक में इस प्रतिज्ञा को पूर्णकर उन्होंने द्रौपदी से कहा भी है— 'स्मरति भवती यन्मयोक्तम्—(चञ्चद्भुज-भ्रमित १।२१ इत्यादि पठति)'। इस भांति भीम आदि से अन्त तक या तो दर्शकों की आंखों के समक्ष, अपने कर्तव्य को पूर्ण करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं अथवा वे दर्शकों के मन में निरन्तर छाये रहते हैं। ऐसी स्थिति में भीम को ही वेणीसंहार नाटक का नायक कहा जायगा।

कुछ विद्वानों ने एकमात्र भरतवाक्य को ही आधार मानकर युधिष्ठिर को नाटक का नायक मानने का प्रयास किया है। किन्तु केवल भरतवाक्य के आधार पर ही नायक का निर्णय कर लेना उचित प्रतीत नहीं होता है। नायक के निर्णय के लिये अन्य अनेक आधार भी नाटक में विद्यमान रहा करते हैं। इसके अतिरिक्त सभी नाटकों में नायक द्वारा ही भरतवाक्य का प्रयोग किया जाता हो, ऐसी बात नहीं है।

नाटककार भट्टनारायण को भी भीम का ही नायक होना अभिमत है। इसी दृष्टि से उन्होंने भीम के चरित को वीरता से मण्डित किया है। नाटककार ने महाभारत की मूलकथा में एक विशिष्ट परिवर्तन यह किया है कि भीम जलाशय में छिपे हुये दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारते हैं। महाभारत में यह कार्य युधिष्ठिर द्वारा सम्पन्न किया गया है। यदि नाटककार को युधिष्ठिर को ही नायक बनाना अभिमत होता तो वे इस प्रकार का परिवर्तन कदापि नहीं करते। अतः नाटककार के अनुसार भी भीम को ही नाटक का नायक मानना उचित है।

उपर्युक्त विवेचन द्वारा 'वेणीसंहार' नाटक का नायक भीम ही है, यह पूर्णरूपेण निश्चित हो जाता है। प्रोफे० ए० बी० गजेन्द्रगडकर भी इसी मत के पोषक हैं।

वेणीसंहार का अङ्गीरस

"एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा" नाट्यशास्त्रीय इस सिद्धान्त के अनुसार शृङ्गार अथवा वीर में से किसी एक रस की प्रधानता का होना आवश्यक है। 'वेणीसंहार' में वीररस की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि इस नाटक में शृङ्गार, बीभत्स तथा करुण आदि अन्य रसों की भी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है किन्तु ये सभी रस अङ्ग रूप में अभिव्यक्त हुये हैं।

प्रो० गजेन्द्रगडकर ने 'वेणीसंहार' नाटक में करुणरस की प्रधानता को स्वीकार किया है। किन्तु परम्परा की दृष्टि से इसे वीर-रस प्रधान नाटक ही स्वीकार किया जाता है। अतः इस नाटक का अङ्गीरस 'वीर' ही है।

'वेणीसंहार' नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक अविच्छिन्न रूप से वीररस की अनुभूति नहीं होती है। प्रथम अङ्क में वीररस की प्रधानता है तो द्वितीय अंक में शृङ्गाररस प्रधान बन गया है। तृतीय अंक में वीर तथा करुणरसों की समान रूप से अनुभूति होती है। चतुर्थ अंक में भी वीर तथा करुण का मिश्रण उपलब्ध होता है। पंचम अंक एवं छठे अंक का पूर्वार्द्ध भी करुण रस की प्रधानता से आविष्ट है। अन्त में अवश्य वीररस की सृष्टि हुई है। यद्यपि उक्त विवरण के अनुसार वीर तथा करुण दोनों ही रसों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है किन्तु फिर भी कुल मिलाकर वीररस का ही प्राचुर्य अनुभूत होता है। अतः वीर को ही अङ्गीरस के रूप में स्वीकार करना उचित तथा युक्तिसंगत होगा। करुण आदि अन्य रसों के अंगीरस 'वीर' का ही अंगभूत रस मानना होगा।

वेणीसंहार में प्रकृतिवर्णन

प्रस्तुत नाटक में प्रकृति सम्बन्धी चित्रण के अनुरूप प्रसंग बहुत ही कम आये हैं। जहाँ इस प्रकार के प्रसंग आये भी हैं वहाँ प्रकृति के सौम्य एवं

मनोहर स्वरूप का चित्रण न होकर रौद्ररूप का ही चित्रण दृष्टिगोचर होता है। किन्तु फिर भी द्वितीय अंक में प्रातःकाल का मनोहर चित्र प्रस्तुत किया ही गया है (२।७-८)। इसी अंक में वात्या (झंझावात-अथवा-आंधी) का वर्णन प्रकृति के कठोर रूप का एक सफल चित्र है (२।१९)।

उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर इतना कहना असगत न होगा कि महाकवि भट्टनारायण द्वारा जो भी प्रकृति-वर्णन प्रस्तुत किया जा सका है उसमें वे सफल रहे हैं। इसके साथ ही यह भी कहा जाना अनुपयुक्त न होगा कि प्रकृति के मनोहर चित्रण की अपेक्षा प्रकृति के कठोर अथवा रौद्र रूप का चित्रण करने में उन्हें अधिक सफलता प्राप्त हुयी है।

वेणीसंहार के संवाद

वेणीसंहार में आये हुये संवादों के बारे में कोई निश्चित मत प्रकट किया जा सकना संभव नहीं है क्योंकि कहीं-कहीं पर उसके संवाद सरल, सरस, उपयुक्त तथा चुस्त हैं किन्तु कहीं-कहीं पर अत्यन्त जटिल, समासबहुल, नीरस एवं अनुपयुक्त संवादों का भी बाहुल्य है। उदाहरण के रूप में दुर्योधन-सुन्दरक सम्वाद, युधिष्ठिर-पाञ्चालक संवाद आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है। दुर्योधन-सुन्दरक सम्वाद तो वस्तुतः अतिविस्तृत तथा नीरस ही प्रतीत होता है। इस सम्वाद के कारण प्रस्तुत नाटक में शिथिलता एवं गतिहीनता भी आ गई है।

जहाँ पर उपयुक्त एवं सरल संवाद आये हैं वहाँ उनकी भाषा में सारल्य की भी अनुभूति होती है। उदाहरण के लिये—दुर्योधन कंचुकी संवाद, अश्वत्थामा तथा कर्ण का संवाद, धृतराष्ट्र-दुर्योधन एवं गान्धारी संवाद तथा युधिष्ठिर-चार्वाक संवाद आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है। महाकवि ने इन संवादों को अपवार्य, जनान्तिकम् तथा स्वगतम् आदि रंगमञ्चीय निर्देश देकर और भी अधिक स्वाभाविक तथा आकर्षक बना दिया है।

वेणी-संहार के संवादों में यह बात सर्वाधिक खटकने योग्य है कि महाकवि ने प्राकृत भाषा-भाषी पात्रों द्वारा भी दीर्घसमासयुक्त भाषा का प्रयोग कराया है जो कि वस्तुतः दोषपूर्ण ही कहा जा सकता है। सुन्दरक तथा पाञ्चालक सम्बन्धी संवाद इसी कोटि में आते हैं।

वेणीसंहार की भाषा-शैली तथा काव्य-सौन्दर्य

'वेणीसंहार' को संस्कृतसाहित्य में कृत्रिम-शैली के युग का नाटक कहा जा सकता है। महाकवि भट्टनारायण अपने युग की प्रवृत्तियों से अपने को अछूता न रख सके। यह एक चिरन्तन नियम भी है कि कोई भी लेखक, कवि अथवा कथाकार अपने युग की प्रवृत्तियों तथा तत्कालीन प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं रख सकता है। ऐसी स्थिति में भट्टनारायण भी इसके अपवाद कैसे बन सकते थे? अतः इन्हें भी कृत्रिम, समासबहुल एवं अलङ्कृत तथा बोझिल शैली का अनुकरण करना ही पड़ा। इतना होने पर भी यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि उन्होंने जहाँ ओजगुणयुक्त समासबहुल गौड़ी रीति को अपनाया है वहीं उन्होंने प्रसादगुणयुक्त समासरहित वैदर्भी एवं अल्पसमास-युक्त पाञ्चाली रीति को भी अपनाया है। इसी कारण इनकी भाषा भाव एवं रस के अनुकूल बन गई है और वे वीर, शृङ्गार, बीभत्स आदि रसों के चित्रण में भी सफलता प्राप्त कर सके हैं।

किन्तु भट्टनारायण को प्रधानतः ओजगुण तथा गौड़ी शैली का ही कवि स्वीकार किया जाता है। ये दोनों ही वीररस की पुष्टि में पूर्ण सहायक हैं। वेणीसंहार में वीररस की प्रधानता है। इसी कारण भीम आदि के कथनों में समास-बहुलता, क्लिष्टता और दुरूहता है (देखिये १।२१-२२)। कहीं-कहीं भीम की उक्तियों में वीर-रस की मनोहर एवं आकर्षक छटा भी दृष्टिगोचर होती है (देखिये १।१५)। इसी भाँति एक स्थल पर दुर्योधन के कथन में भी वीररस का सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है (देखिये ५।३०)। भट्टनारायण के ओजगुण और गौडी रीति की प्रशंसा करते हुये किसी कवि ने लिखा है :—

> ओजः संसूचकैः शब्दैः युद्धोत्साहप्रकाशकैः।
> वेण्यामुज्जृम्भयन् गौड़ीं भट्टनारायणो बभुः॥

वेणीसंहार में ओजगुण के साथ प्रसादगुण का संयोग एक अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि करता है। कर्ण की प्रसादगुणप्रधान उक्ति में कितना स्वाभिमान और तेजस्विता है, दर्शनीय है :—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ।। ३।३७ ।।

अर्थात् सूत अथवा सूतपुत्र अथवा जो कोई मैं होऊँ। किसी कुल में जन्म लेना भाग्य के आधीन हुआ करता है, किन्तु पुरुषार्थ मेरे आधीन है।

आशा के महत्व का कितनी सुन्दरता के साथ प्रसादगुणयुक्त शैली में वर्णन किया गया है, अवलोकनीय है :—

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।
आशा बलवती राजन्, शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।।५।२३।।

भीष्म, द्रोण तथा कर्ण की मृत्यु के अनन्तर शल्य पर ही विजय की आशा लगी हुई है।

ग्रहों के शुभाशुभ फल-प्रदान सम्बन्धी वर्णन में फलित-ज्योतिष के सम्बन्ध में कैसी मीठी चुटकी ली गई है (देखिये २।१५)।

महाकवि द्वारा माधुर्यगुण का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है। भानुमती के प्रति दुर्योधन के कथन में ध्वन्यात्मकता को देखिये (देखिये—२।२१)।

द्वितीय अङ्क के कुछ श्लोकों में शृङ्गाररस की मनोहर अभिव्यञ्जना हुई है। दुर्योधन द्वारा भानुमती से कथित वर्णन को देखिये (देखिये २।१८ आदि)।

वेणीसंहार के कुछ प्रसङ्गों में करुणरस का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। चार्वाक राक्षस के मुख से भीम की मृत्यु का असत्य समाचार सुनकर शोकाभिभूत युधिष्ठिर का कथन देखिये (६।३१ ।।)।

इसी प्रकार शोकाकुल अपनी माँ को समझाते हुये दुर्योधन कहता है कि आप ऐसी दीनताभरी बात क्यों कह रही हो। आप तो एक वीराङ्गना हो। अपने मृत शत-पुत्रों की चिन्ता न करके आप मुझ अयोग्य-पुत्र की चिन्ता कर रही हो (देखिये ५।३)

महाकवि की भाषा इतनी सशक्त है कि वह निर्जीव को भी सजीव तथा कायर को भी वीर बना सकने में समर्थ हैं। वीर, शृङ्गार एवं करुणरस

के वर्णनों में महाकवि का कवि-हृदय जागृत हो जाता है और वह भावों के वाह में बहने लगता है। यहाँ तक उसे यह स्मरण ही नहीं रहता है कि वह नाटक लिख रहा है अथवा काव्य ?

अलङ्कार—यद्यपि 'वेणीसंहार' में रूपक ('चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरिः ॥ १।२५ में), श्लेष ("सत्पक्षा मधुरगिरः··· ···निपतन्ति धार्तराष्ट्राः" ० १।६ ॥ तथा 'निर्वाण वैरदहनाः···समृत्याः १।७ में), विरोधाभास ("तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे "१।४ ॥ में), उपमा, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है, किन्तु अलंकारों की ही दृष्टि से अलंकारों का प्रयोग किया गया हो, ऐसी बात नहीं है।

छन्दोयोजना—महाकवि ने वेणीसंहार में १८ अठारह प्रकार के छन्दों का उपयोग किया है। नाटक के अध्ययन से प्रतीत होता है कि बड़े अथवा लम्बे छन्दों के प्रयोग में महाकवि अधिक दक्ष हैं। वीर-रस सम्बन्धी वर्णनों तथा प्रकृति-वर्णन में बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है। नीति सम्बन्धी वर्णनों, करुण-रस सम्बन्धी वर्णनों तथा सामान्य-वर्णनों में छोटे छन्दों का प्रयोग किया गया है। अनुष्टुप, बसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, शिखरिणी, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, औपच्छन्दसिक, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, प्रहर्षिणी मालिनी, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, हरिणी, मंजुभाषिणी, वियोगिनी (सुन्दरी) तथा आर्या—इन १८ छन्दों का प्रयोग वेणीसंहार में हुआ है।

भट्टनारायण की न्यूनतायें

कुछ भारतीय तथा पाश्चात्य आलोचकों द्वारा भट्टनारायण की कुछ न्यूनताओं का भी उल्लेख किया गया है। उनमें से कुछ विशिष्ट-न्यूनताओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है :—

(१) भट्टनारायण की कृति 'वेणीसंहार' में कुछ स्थलों पर वर्णन इतने लम्बे हो गये हैं कि जिनके कारण नाटकीय-व्यापार ही अवरुद्ध हो गया है (कीथ—'संस्कृत ड्रामा' का हिन्दी अनुवाद 'संस्कृत-नाटक'-पृष्ठ २२४)।

(२) विवरणों की बहुलता नाटक में उलझन पैदा करती है तथा रोचकता को भी नष्ट करती है (देखिये-कीथ-संस्कृत नाटक-पृष्ठ २२४)।

(३) वेणीसंहार में कार्यान्विति का असंतुलन तथा अभाव है।

(४) वेणीसंहार में प्रयुक्त शृङ्गाररस पूर्णतया प्रभाव रहित है।

(५) शास्त्रीय नियमों के पालन करने में भट्टनारायण का अनावश्यक प्रयास रहा है।

(६) द्वितीय अंक में वर्णित दुर्योधन तथा भानुमती की काम-क्रीडा के प्रसंग में 'अकाण्डे प्रथनम्' (अनवसरोचित वर्णन) दोष विद्यमान है।

(७) यद्यपि भट्टनारायण ने नायिका द्रौपदी के चरित्र-चित्रण में अपनी रोचकता दिखलाई है किन्तु फिर भी उसका चरित्र पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो सका है।

(८) कवित्व की प्रधानता के कारण नाटक में अनाटकीयता सम्बन्धी दोष आ गया है। साथ ही नाटकीयप्रवाह भी अवरुद्ध हो गया है।

(९) चतुर्थ अंक में वर्णित सुन्दरक के कथन में आवश्यकता से कहीं अधिक विस्तार दृष्टिगोचर होता है जिसके कारण नाटक की शैली बोझिल हो गई है और उसमें गत्यात्मकता का अभाव-सा आगया है।

(१०) इसी प्रकार छठे अंक में भी राक्षस के कथन में अनुचित विस्तार किया गया है।

(११) कथानक के असंतुलित संगठन के कारण नाटकीयदृष्टि से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम अंक अनावश्यक से प्रतीत होते हैं।

(१२) भट्टनारायण ने श्रमसाध्यशैली को अपनाया है। इसी कारण नाटक में दुरूहता भी आ गई है।

(१३) घटनाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने में भट्टनारायण की अक्षमता भी दृष्टिगोचर होती है।

(१४) वेणीसंहार में नाटकीयता की अपेक्षा काव्यात्मकता का दर्शन अधिक होता है।

(१५) कर्ण तथा अश्वत्थामा के वाग्युद्ध में अनावश्यक विस्तार किया गया है।

संस्कृत-साहित्य में 'वेणीसंहार' नाटक का स्थान

उपरिवर्णित दोषों के विद्यमान रहने पर भी जब हम 'वेणीसंहार' के गुणों की ओर ध्यान देते हैं तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ये सम्पूर्ण दोष नगण्य सदृश हैं। 'वेणीसंहार' वस्तुतः एक वीर-रस प्रधान नाटक है तथा उसमें वीर रस का पूर्णरूपेण परिपाक हुआ है। उसकी भाषा में 'ओज' है, 'शक्ति' है तथा संवेदनात्मकता की क्षमता भी है। यही ऐसा नाटक है जो निर्वीर्य में भी शक्ति-संचार करने की क्षमता रखता है। प्रस्तुत नाटक में जहाँ 'ओज' गुण की सजीवता का दर्शन होता है वही अन्यस्थलों पर प्रसाद और माधुर्य का भी दर्शन उपलब्ध होता है वीर तथा करुण रसों का इतना सुन्दर समन्वय किसी अन्य नाटक में देखने को नहीं मिलता है।

नाटक का नायक भीम एक ऐसा नायक है कि जो दर्शकों को भी आतंकित करने में पूर्णतया समर्थ है इसमें सन्देह नहीं कि नाटक में काव्यात्मकता का दोष अवश्य विद्यमान है किन्तु फिर भी यह नाटक सहृदयों के हृदयों को इतना अधिक आप्लावित कर देता है कि वे उसके दोषों को भूलकर उसके गुणों पर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। इसी कारण नाट्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के उदाहरणों के लिये वेणीसंहार के स्थलों अथवा श्लोकों को ही उद्धृत किया गया है। अतएव यह कहा जाना अनुपयुक्त न होगा कि नाटकीय-तत्त्वों के वर्णन में तो यह अद्वितीय है।

कवि को महाभारत की सम्पूर्ण कथा का किसी न किसी रूप में संयोजन करना था, अतएव कुछ प्रसङ्गों में विस्तार अवश्य हो गया है, किन्तु ये प्रसङ्ग कथा-संयोजन की दृष्टि से अत्यन्त अनिवार्य थे। आलोचकों ने द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम अंकों को हटाने योग्य अथवा अनावश्यक कहा है। किन्तु उनका यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि ऐसा करने से नाटक की आत्मा की ही हत्या हो जायगी।

'वेणीसंहार' में प्रदर्शित चरित्र-चित्रण अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक हैं। संवादों तथा वर्णनों में प्रत्यक्षरूप से सजीवता और यथार्थता का

दर्शन होता है। वेणीसंहार के अर्थानुकूल शब्दविन्यास की सराहना तथा प्रशंसा तो पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भी की गयी है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निस्सन्देह रूप से कहा जा सकता है कि संस्कृत-नाटकों में 'वेणीसंहार' नाटक उच्चश्रेणी के नाटकों में से एक है। यह भट्टनारायण का ही वैशिष्ट्य है कि उन्होंने वीर-रस-प्रधान अपने नाटक वेणीसंहार में शृङ्गार-रस-प्रधान नाटक जैसी रोचकता तथा आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।

ऐसी स्थिति में महाकवि भट्टनारायण को एक सफल नाटककार तथा 'वेणीसंहार' नाटक को एक उत्तमश्रेणी का नाटक कहा जाना सर्वथा उपयुक्त ही होगा।

'वेणीसंहार' नाटक में वर्णित तत्कालीन सामाजिक-दशा का चित्रण

'वेणीसंहार' नाटक की कथावस्तु महाभारत की प्राचीन-कथा पर आधारित है तथा वेणीसंहार नाटक स्वयं ही घटना-प्रधान है। ऐसी स्थिति में महाकवि भट्टनारायण के काल की सामाजिक अवस्थाओं का चित्रण प्रस्तुत नाटक में हुआ ही हो, ऐसी आशा नहीं की जा सकती है। किन्तु फिर भी कवि द्वारा कल्पित कथावस्तु के भागों (द्वितीय तथा षष्ठ अङ्कों में) के आधार पर हम भट्टनारायणकालीन सामाजिक अवस्था का थोड़ा बहुत चित्र प्रस्तुत कर ही सकते हैं। भानुमती सम्बन्धी स्वप्न दर्शन की घटना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में (विशेषतः स्त्रियों में) शकुन और निमित्तों का विचार किया जाता था तथा लोगों का यह विश्वास था कि देवाराधन तथा पूजा-पाठ आदि के द्वारा उनके दुष्प्रभाव को दूर किया जा सकता है। अङ्गों के स्पन्दन (फड़कने) के आधार पर भविष्य में घटने वाली घटनाओं का अनुमान किया जाया करता था। ध्वज-भङ्ग को अपशकुन की श्रेणी में रखा जाता था। मृतकों को जल-तर्पण आदि किया जाता था। ब्राह्मण-वध अनुचित समझा जाता था। कभी-कभी अपने पतियों की मृत्यु के अनन्तर स्त्रियाँ सती भी हो जाया करती थीं।

'वेणीसंहार' नाटक का उत्तरवर्ती नाटकों पर प्रभाव

'वेणीसंहार' नाटक ने नाटयशास्त्र तथा अलंकारशास्त्र के आचार्यों को ही अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया, वरन् उसके परवर्ती कवि तथा अन्य व्याख्याकारों पर भी उसका प्रभाव स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है।

'अमरकोष' के प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामी ने 'वेणीसंहार' से अनेक उद्धरण उद्धृत किये हैं। नवम शताब्दी के प्रसिद्ध कवि राजशेखर द्वारा लिखित नाटक 'बालरामायण' में वेणीसंहार का अनुकरण स्पष्टरूप से परिलक्षित होता है। रावण के मुख द्वारा कहलाई गई—

'अरामलक्ष्मण भुवनमद्य निर्वानिरम्' इत्यादि (अंक ८।५७)

दर्पोक्ति में वेणीसंहार की–

अकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम्' इत्यादि (वे० सं० ३।३४)

उक्तिका अनुकरण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार वेणीसंहार में—

"कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकम्" (वे०सं०३।२४)

अश्वत्थामा द्वारा कथित इस उक्ति की छाप बालरामायण में परशुराम द्वारा कथित—

"यः कर्त्ता हरचापदण्डदलने यश्चानुमन्ता ननु।
द्रष्टा यश्च परीक्षिता च य इह श्रोता च वक्ता च यः"

इस उक्ति में प्रत्यक्षरूप से देखने को मिलती है।

इसी प्रकार के कुछ अन्य उद्धरण भी उपलब्ध होते हैं कि जिसमें वेणी-संहार में वर्णित भावनाओं की छाप उत्तरवर्त्ती नाटकों पर देखने को मिलती है।

वेणीसंहार में प्रयुक्त प्राकृत (भाषा)

मुख्यरूप से वेणीसंहार में शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग हुआ है किन्तु तृतीय अङ्क में वर्णित राक्षस-राक्षसी का जो संवाद है उसमें डॉ० कीथ के अनुसार "मागधी" का प्रयोग किया गया है। उनका कहना है कि इसमें अकारान्त

पुंल्लिग तथा नपुंसक लिङ्ग शब्दों का कर्त्ता कारक एकवचन में एकारान्त रूप है 'र' के लिये 'ल' है तथा अकारान्त शब्दों का सम्बोधन का रूप आकारान्त है। ये सभी मागधी की विशेषताएँ हैं।

ग्रिल के मतानुसार यह मागधी न होकर अर्धमागधी है क्योंकि उक्त वर्णन में 'श' के स्थान पर 'स' का तथा कर्त्ता कारक में 'ए' के स्थान पर 'ओ' 'अं' का प्रयोग उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में डॉ० कीथ का कथन है कि ग्रिल द्वारा बतलाई विशेषताओं का कारण हस्तलिखित प्रतियों के लेखकों का वैभाषिक परिवर्त्तन ही हो सकता है। अतः तृतीय अङ्क में वर्णित राक्षस-राक्षसी के संवाद में राक्षसों की भाषा 'मागधी' ही है।

इस विवेचन के आधार पर यह कहना उपयुक्त ही है कि 'वेणीसंहार' में शौरसेनी तथा मागधी इन दो प्राकृतों का प्रयोग हुआ है।

सुरेन्द्र देव शास्त्री

एम० ए० (संस्कृत तथा हिन्दी), पी-एच० डी०

साहित्याचार्य

रीडर तथा अध्यक्ष

स्नातकोत्तर संस्कृत-विभाग

श्री मु० म० टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

बलिया।

'वेणीसंहार'
नाटक में आये हुये पात्रों का परिचय

नाम पात्र	परिचय
१. युधिष्ठिर	कुन्तीपुत्र—पांडव—(१)
२. भीम	,, ,, (२) नाटक का नायक।
३. अर्जुन	,, ,, (३)
४. नकुल	माद्रीपुत्र ,, (४)
५. सहदेव	,, ,, (५)
६. श्रीकृष्ण	अर्जुन के सारथि और सखा, विष्णु के अवतार।
७. धृतराष्ट्र	दुर्योधन का पिता, पाण्डवों का चाचा।
८. दुर्योधन	कौरवों में ज्येष्ठ, कौरवराज, प्रतिनायक।
९. कर्ण	दुर्योधन का मित्र, अङ्गदेश का राजा।
१०. कृपाचार्य	अश्वत्थामा का मामा, दुर्योधन आदि के गुरु।
११. अश्वत्थामा	द्रोणाचार्य का पुत्र, कृपाचार्य की बहिन का पुत्र।
१२. संजय	धृतराष्ट्र का सारथि, व्यास का शिष्य।
१३. सुन्दरक	अङ्गराज कर्ण का सेवक, कर्ण का सन्देशवाहक।
१४. जयन्धर	युधिष्ठिर का कंचुकी।
१५. विनयन्धर	दुर्योधन का कंचुकी।
१६. चार्वाक	मुनिवेषधारी राक्षस, दुर्योधन का मित्र।
१७. अश्वसेन	द्रोणाचार्य का सारथि।
१८. सूत	दुर्योधन का सारथि।
१९. रुधिरप्रिय	पांडवों का पक्षपाती एक राक्षस।
२०. पांचालक	पाण्डवों का सन्देशवाहक।
२१. जयद्रथ	दुर्योधन का बहनोई।
२२. वृषसेन	कर्ण का पुत्र।

स्त्री-पात्र

२३. द्रौपदी	पाण्डववधू, नायिका।
२४. बुद्धिमतिका	द्रौपदी की सखी।
२५. चेटी	द्रौपदी की दासी
२६. भानुमती	दुर्योधन की पत्नी।
२७. सुवदना	भानुमती की सखी।
२८. तरलिका	भानुमती की दासी।
२९. दुःशला	दुर्योधन की बहन, जयद्रथ की पत्नी।
३०. गान्धारी	दुर्योधन की माँ।
३१. माता	जयद्रथ की माता।
३२. वसागन्धा	पाण्डव पक्षपातिनी राक्षसी, रुधिरप्रिय की पत्नी।
३३. विहङ्गिका	कौरव पक्ष की दासी।
३४. प्रतिहारी	दुर्योधन की परिचारिका।

कुछ अन्य संकेतरूप में आये हुए पात्र

भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु, बलराम, धृष्टद्युम्न, दुःशासन, विदुर, शल्य इत्यादि।

वेणीसंहारम्

प्रथमोऽङ्कः

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः
करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव संभिन्नमुकुलः ।
विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः
प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरियम् ॥१॥

नामकरण—वेणीसंहारम्—दुःशासन द्वारा भरी सभा में द्रौपदी के केशों को खींचे जाने के समय से ही द्रौपदी के केशों का बन्धन नहीं किया जाता था। इन्हीं मुक्त केशों का वेणी के रूप में बन्धन का किया जाना जिस नाटक में वर्णित है उस ही नाटक का नाम "वेणीसंहार" है। इसकी व्युत्पत्ति निम्नलिखित रूपों में की जा सकती है :—

(१) वेण्याः [लोक "चोटी" इति प्रसिद्धायाः केशरचनायाः] संहारः [संयमनम्—बन्धनमित्यर्थः] वर्ण्यते यस्मिन् तत् 'वेणीसंहारम्'।

(२) वेण्याः संहारः वेणीसंहारः तमधिकृत्य कृतं नाटकम्-इति-वेणीसंहारम्।

(३) [द्रौपद्याः मुक्तस्य केशपाशस्य] वेणीरूपेण संहारः बन्धनं यस्मिन् नाटके तत् वेणीसंहारम्।

पदच्छेद—निषिद्धैः। अपि। एभिः। लुलितमकरन्दः। मधुकरैः। करैः। इन्दोः। अन्तः। छुरितः। सम्भिन्नमुकुलः। विधताम्। सिद्धिम्। नः। नयनसुभगाम्। अस्य। सदसः। प्रकीर्णः। पुष्पाणाम्। हरिचरणयोः। अञ्जलिः। इयम्॥

अन्वय—निषिद्धैः अपि एभिः मधुकरैः लुलितमकरन्दः इन्दोः करैः अन्तः छुरितः इव सम्भिन्नमुकुलः हरिचरणयोः प्रकीर्णः अयं पुष्पाणां अञ्जलिः अस्य सदसः नयनसुभगां सिद्धिं नः विधत्ताम्।

संस्कृत-व्याख्या—निषिद्धैः=(बारम्बारम्) निवारितैः, करादिचालनेन दूरीकृतैइत्यर्थः, अपि, एभिः=पुरोवर्तिभिः चतुर्भिः दिग्भिः पतन्तैरित्यभिप्रायः, मधुकरैः=भ्रमरैः, लुलितमकरन्दः=लुलितःइतस्ततः विकीर्णः मकरन्दः पुष्परसः यस्य स तादृशः, इन्दोः=चन्द्रमसः, करैः=किरणैः, अन्तः=अभ्यन्तरे मध्ये वा, छुरितः=व्याप्तः, इव–उत्प्रेक्षाव्यंजकः शब्दः, (अस्मादेव कारणात्) सम्भिन्न-मुकुलः=विकसितकुड्मलः प्रफुल्लकलिकाकः वा, हरिचरणयोः=कृष्णचरणद्वये प्रकीर्णः=विस्तीर्णः (इष्टदेवतापूजोपकरणीभूतः इत्यभिप्रायः)–समर्पितः इति यावत्, अयम्=एषः, पुष्पाणाम्=कुसुमानाम्, अञ्जलिः=हस्तसम्पुट परिमितः समवाय इत्यर्थः (अत्राञ्जलिपदेन लक्षणयाऽञ्जलिस्थपुष्पाणि लक्ष्यन्ते), अस्य =एतस्य–पुरोवर्त्तमानस्येति यावत्, सदसः=सभायाःसदः पदस्य तत्स्थजने लक्षणया समास्थजनस्य–इत्यर्थः, नयनसुभगाम्=नेत्रप्रीतिजननीम् (समास्थ-जनानामपि नेत्रानुरागं विदधात्विति भावः), सिद्धिम्=सफलताम्–अभिनये पूर्णतामिति यावत्. नः=अस्माकम्, विधत्ताम्=विदधातु–करोतु वा ॥ अत्र निषिद्धपदेन मित्रादिना निवारिता अपि सुयोधनादयः स्वकीयाभिमानादगणित-तन्निषेधा युद्धाय एव संलग्ना इति ध्वनितम् । मधुकरपदेन दुर्योधनपरिवारः ध्वनितः । सम्भिन्नमुकुलपदेन युधिष्ठिरादीनां वनवासादिदुःखानन्तरं सुख-प्रकाशो दर्शितः । हरिचरणयोरञ्जलिरितिपदाभ्यां युधिष्ठिरादीनां कृष्ण-शरणप्राप्तिः सूचिता ।

हिन्दी-अनुवाद–(बार-बार) निषिद्धैः अपि=निवारण किये गये अथवा हटाये गये भी, एभिः=इन, मधुकरैः=भ्रमरों के द्वारा, लुलितमकरन्दः=बिखेर दिये गये हुए परागवाली अथवा पी लिए गये मधु से युक्त, इन्दोः=चन्द्रमा की करैः=किरणों द्वारा, अन्तः=मध्यभाग में, छुरितः इव=मानों व्याप्त (इसी कारण) सम्भिन्नमुकुलः=विकसित हुई कलियों से युक्त, हरिचरणयोः=विष्णु (कृष्ण) के चरणों में, प्रकीर्णः=बिखेरी गयी हुई, अयम्=यह, पुष्पाणाम्=फूलों की, अञ्जलि.=अञ्जलि, अस्य सदसः=इस सभा के अर्थात् सभा में उप-स्थित हुये लोगों के, नयनसुभगाम्=नेत्रों की प्रसन्नता प्रदान करने वाली, सिद्धिम्=सफलता को, नः=हमें, विधत्ताम्=प्रदान करे अथवा अभिनय की दृष्टि से हमें सफलता प्रदान करे ।

भावार्थ—हाथ इत्यादि के संकेत द्वारा बार-बार हटाये जाने पर भी इन चञ्चल भ्रमरों ने जिसके पराग को बिखेर डाला है (अथवा जिसके मधु का पान कर डाला है।), तथा चन्द्रमा की किरणें जिसके अभ्यन्तर प्रविष्ट हो गयी हैं, अतएव विकसित हुई कलियों से जो (अञ्जलि) परिपूर्ण है ऐसी विष्णु (कृष्ण) के चरणों में समर्पित की गयी हुई यह पुष्पाञ्जलि सभामण्डप में उपस्थित सामाजिकों अथवा दर्शकों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली होवे तथा अभिनय के कार्य में हम (नटों) को भी सफलता प्रदान करने वाली होवे।

इस श्लोक में 'निषिद्ध' पद के द्वारा यह ध्वनित होता है कि दुर्योधन के के मित्रों द्वारा युद्ध के लिए रोके जाने पर भी उसने अपने अभिमान के कारण उनकी बात पर ध्यान ही नहीं दिया और युद्ध के लिए उद्यत ही रहा। 'मधुकर' पद के द्वारा दुर्योधन के परिवार की ओर संकेत किया गया है। "सम्भिन्नमुकुल" पद के द्वारा युधिष्ठिर आदि का वनवास आदि के दुःख के पश्चात् सुख की प्राप्ति की ओर निर्देश किया गया है। "हरिचरणयोरञ्जलिः" इन पदों के द्वारा उन युधिष्ठिर आदि का कृष्ण के चरणों में प्राप्त हो जाना अर्थात् उनकी शरण को प्राप्त कर लेना सूचित किया गया है।

अलङ्कार—इस श्लोक में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है। लक्षण—"संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना"। उक्त श्लोक में "इन्दोः करैः अन्तः छुरितः इव" में उत्प्रेक्षा स्पष्ट ही है। यहां 'इव' उत्प्रेक्षावाचक है।

छन्द—उक्त श्लोक में "शिखरिणी" छन्द है। लक्षण—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी"।

समास—लुलितमकरन्दः—लुलितः (इतस्ततो विकीर्णः, सम्भ्रमे सम्पतनात् कराणां सञ्चालने पलायनाद् विकीर्णः इत्यर्थः) मकरन्दः यस्य स तादृशः अथवा लुलितः मकरन्दः यस्मात्। सम्भिन्नमुकुलः—सम्भिन्नाःमुकुलाः यस्य यत्र वा सः। हरिचरणयोः—हरेः चरणौ इति हरिचरणौ तयोः।

टिप्पणियां—निषिद्धैः—हाथ इत्यादि के चलाने से दूर हटाये गये हुए। अपि—इसके द्वारा भ्रमरों की दुर्निवारता सूचित होती है। मधुकरैः—भ्रमरों

द्वारा–'मधुकर' पद के प्रयोग से भ्रमरों का रसलोलुप होना भी स्पष्ट हो जाता है। मकरन्दः=पुष्परस ("मकरन्द पुष्परसः" इत्यमरः)। करैः= किरणों से ("किरणोस्नमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः। भानुः करो मरीचिः" इत्यमरः।)। सम्भिन्नमुकुलः=खिली हुई अथवा विकसित हो गयी हैं कलियाँ जिसकी ऐसी 'अञ्जलि'। अञ्जलिः=अञ्जलि, हाथों का संपुट ("अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे"–इति मेदिनी)। सदसः=सभा के-लक्षणा द्वारा 'सभा में स्थित लोगों को' अर्थ होगा। नयनसुभगाम्=नेत्रों में प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाली अथवा नेत्रों को आह्लाद प्रदान करने वाली। सिद्धिम्=सफलता को—अभिनय के पक्ष में–पूर्णता अथवा पूर्ण सफलता को प्रदान करने वाली।

अपि च—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते–
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिताद्दृष्टस्य पुष्णातु वः ॥२॥

अपि च=और भी—

अन्वयः— कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितां, रासे रसं उत्सृज्य गच्छन्तीं, अश्रुकलुषां राधिकां अनुगच्छतः तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य उद्भूतरोमोदगतेः प्रसन्नदयितादृष्टस्य कंसद्विषः अक्षुण्णः अनुनयः वः पुष्णातु।

संस्कृत-व्याख्या–अनेकविधविघ्नशङ्कया तन्नाशार्थं पुनर्मङ्गलमाचरन्नान्दी-निर्वाहार्थमाह–कालिन्द्याः=यमुनायाः, पुलिनेषु=तोयोत्थितदेशेषु–जलमध्यस्था-नेषु इति भावः (अनेन स्थानशैत्यं निर्दिष्टम्), केलिकुपिताम्=क्रीडायामेव क्रोधयुक्तां-क्रुद्धाम् वा, (अतएव), रासे=गोपक्रीडाविशेषे–रासलीलायां वा, रसम्=अनुरागम्, उत्सृज्य=त्यक्त्वा, गच्छन्तीम्=यान्तीम्–अन्यत्रगमनतत्परा-मित्यर्थः, अश्रुकलुषाम्=रुदतीम् (एवं प्रणयकुपिता रासानुरागिणी रुदती चेति

राधायाः अवस्थात्रयं प्रदर्शितम्), राधिकाम्, अनुगच्छतः=पश्चात् व्रजतः–चाटुपद्धत्याऽनुसरतः, तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य=तस्याः प्रेयस्याः राधिकायाः पादौ-चरणौ, तयोः प्रतिमासु-चिह्नेषु, निवेशिते–स्थापिते पदे–चरणौ येन तस्य–राधिकाचरणचिह्नेषुदत्तचरणस्येत्यर्थः, उद्भूतरोमोद्गतेः=उद्भूता–उत्पन्ना रोम्णाम् तनूरुहाणाम् उद्गतिः–ऊर्ध्वावस्थानम् यस्य स तस्य–जातरोमाञ्चस्येत्यर्थः (अनेन अनुरागातिशयः दर्शितः), प्रसन्नदयितादृष्टस्य=प्रसन्ना या दयिता प्रेयसी (राधिका) तया दृष्टस्य अवलोकितस्य–सात्विकभावेन स्वकीयमनुरागभावनां प्रकटय्य कृतप्रसादया प्रेयस्या सकटाक्षमवलोकितस्येत्यभिप्रायः, कंसद्विषः=कंसस्य द्विट् शत्रुः तस्य कंसद्विषः-कृष्णस्येत्यर्थः, अक्षुण्णः=अखण्डितः प्रियाप्रसादात् सफलः इत्यर्थः, अनुनयः=प्रार्थना, वः=युष्मान् अस्मान् अन्यांश्च सर्वानित्यर्थः–व इति "त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्" इत्येकशेषः. पुष्णातु=पुष्यतु–पुष्टान् करोतु–संवर्धयतु । अत्र प्रथमार्धेन द्रौपद्याः कोपरोदने सूचिते । उत्तरार्धेन च दुर्योधनवधानन्तरं भीमकृततदीयानुनयस्याक्षुण्णता तस्याश्च प्रसादवत्त्वं सूचितम् ।

हिन्दी-अनुवाद—कालिन्द्याः=यमुना के, पुलिनेषु=जल से बाहर निकले हुए बालुकामय स्थलों पर, केलिकुपिताम्=(किसी कारणवश) खेल-खेल में क्रोधित हुई, (अतएव रचाये गये), रासे=रासलीला में प्राप्त होने वाले, रसम्=आनन्द को, उत्सृज्य=छोड़कर, गच्छन्तीम्=जाती हुयी, अश्रुकलुषाम्=आँसुओं के कारण मलिन (आँखोंवाली) अर्थात् रोती हुई, राधिकाम्=राधा के, अनुगच्छतः=पीछे-पीछे (इन्हें मनाने के लिए) जाते हुए, तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य=तथा उस (राधा) के चरणचिह्नों पर पड़े हुये पैरों वाले, (अतः) उद्भूतरोमोद्गतेः=उत्पन्न हुये रोमाञ्चों से युक्त, प्रसन्नदयितादृष्टस्य=प्रसन्नता को प्राप्त हुई प्रिया (राधा) द्वारा देखे गये, कंसद्विषः=कंस के शत्रु कृष्ण का, अक्षुण्णः=सफल, अनुनयः=अनुनय, वः=आप सभी (सामाजिकों अथवा दर्शकों) की, पुष्णातु=पुष्टि (अर्थात् वृद्धि) करे ।

भावार्थ—यमुना नदी के किनारे जल के मध्य में स्थित बालुकामय स्थल पर रासलीला हो रही थी । राधा ने देखा कि कृष्ण एक अन्य गोपी के साथ अनन्यमन होकर रासलीला कर रहे हैं । यह देखकर राधा को बहुत ही दुःख

उत्पन्न हुआ। उनके मन में क्रोध का भाव जाग्रत हुआ और वे वहाँ से उठकर चल दीं। कृष्ण ने जब देखा कि राधा जा रही हैं तो वे बहुत दुःखी हुये और राधा को मनाने की दृष्टि से उनके पीछे-पीछे चल दिये। वे मान नहीं रही थीं। अचानक ही राधा के चरणचिह्नों पर कृष्ण के चरण पड़ गये। परिणाम स्वरूप उन्हें रोमाञ्च हो आया। राधा ने जब कृष्ण की इस प्रकार की अवस्था को देखा तो वे समझ गयीं कि कृष्ण का सर्वाधिक स्नेह उन्हीं से है। अतएव उन्होंने प्रेम भरे कटाक्ष के साथ कृष्ण की ओर देखा और इस भाँति उनका मान समाप्त हो गया तथा कृष्ण का मनाना सफल हो गया। इस भाँति कृष्ण द्वारा राधा के प्रति किया गया सफल अनुनय आप सभी दर्शकों अथवा सामाजिकों की वृद्धि करे।

रासे रसमुत्सृज्य गच्छन्तीम्—कृष्ण की प्यारी सखियों में राधा का स्थान सर्वोपरि था। अतएव वे राधा को सर्वाधिक स्नेह करते थे। राधा भी कृष्ण पर अपना पूर्ण अधिकार समझती थीं। रासलीला में राधा ने देखा कि कृष्ण एक अन्य गोपी के साथ अनन्यमन से क्रीडा कर रहे हैं। यह देखकर राधा के हृदय में ईर्ष्या का भाव जाग्रत हुआ। अतः रुदन करती हुयी वे क्रुद्ध रूप में वहाँ से उठकर चल दीं।

तत्पादप्रतिमा……अक्षुण्णः—जब प्रेमी और प्रेमिका का पारस्परिक स्नेह चरम सीमा पर पहुँच जाया करता है तब प्रेमिका की प्रत्येक वस्तु के स्पर्शमात्र से ही प्रेमी को एक अभूतपूर्व आनन्द की अनुभूति हुआ करती है। उसको रोमाञ्च हो आता है। राधा के चले जाने पर कृष्ण भी उन्हें मनाने की दृष्टि से उनके पीछे-पीछे चल पड़े। वह मान नहीं रही थीं। अचानक ही एक स्थल पर राधा के पद-चिह्नों पर कृष्ण के चरण पड़ गये। परिणाम स्वरूप कृष्ण को रोमाञ्च हो आया। राधा ने जब कृष्ण की इस दशा को देखा तो वे समझ गईं कि ये सर्वाधिक स्नेह मुझसे ही करते हैं। अतः वे प्रसन्न हो गईं और स्नेहसिञ्चित कटाक्ष को कृष्ण की ओर फेंका। अब कृष्ण का अनुनय सफल हो गया। राधा का मान भंग हो गया और वे मान गईं।

विशेष—(१) रास एक प्रकार का लीलानृत्य हुआ करता है जिसका अभ्यास कृष्ण तथा गोपिकाएँ मिलकर किया करती थीं।

(२) इस श्लोक के पूर्वार्ध भाग में द्रौपदी का क्रोधित होकर रोना सूचित किया गया है तथा उत्तरार्ध भाग में दुर्योधन के वध के पश्चात् भीम द्वारा द्रौपदी की अनुनय तथा प्रसन्नता सूचित की गयी है।

अलङ्कारः—उक्त पद्य में "प्रेय" नामक अलङ्कार है। लक्षण—जहाँ एक भाव किसी दूसरे पदार्थ का अंग होता है वहाँ उसे अत्यन्त प्रिय होने के कारण 'प्रेयस्' अलङ्कार कहते हैं—"प्रेयः प्रियतराख्यानम्"—दण्डिन्-काव्यादर्श २।२७५ ॥ "प्रकृष्टप्रियत्वात् प्रेयः" ॥ सा० द० पृ० ७८१ ॥

छन्दः—उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" अलङ्कार है। लक्षण—"सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥

समास—केलिकुपिताम्=केल्यां कुपिता इति केलिकुपिता ताम् [सप्तमी तत्पु०]। अश्रुकलुषाम्=अश्रुभिः कलुषाम्—अश्रुकलुषाम्। तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य=तस्याः पादौ (षष्ठी तत्पु०) तत्पादौ, तयोः प्रतिमासु निवेशिते पदे येन तस्य। उद्भूतरोमोद्गतेः=रोम्णां उद्गतिः (षष्ठी त०) रोमोद्गतिः, उद्भूता रोमोद्गतिः यस्य सः, तस्य। प्रसन्नदयितादृष्टस्य=प्रसन्ना या दयिता प्रसन्नदयिता तया दृष्टस्य-इति। कंसद्विषः=कंसस्य द्विट् (षष्ठी त०)—कंसद्विट् तस्य।

टिप्पणियाँ=पुलिनेषु=नदी के जल के बीच जल की परिधि से ऊपर उठे हुये बालुकामय स्थलों पर ["तोयोत्थित तत्पुलिनम् इत्यमरः] रासे=रासलीला में [—गोपों द्वारा खेली जाने वाली विशिष्ट प्रकार की क्रीड़ा में]—"रासो विदग्धगोष्ठ्यां च क्रीडायामपि गोदुहाम्" इति विश्वः। रसम्=राग को, अनुराग को, आनन्द को—"रसः स्वादे जले······रागे "इतिहैमः ॥ गच्छन्तीम्=जाती हुयी—किसी अन्य स्थान पर जाने के लिये उद्यत। अनुगच्छतः=अनुगमन(पीछे-पीछे चलते हुये)करते हुये। तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य=उस राधा के चरणचिन्हों पर अपने चरणों को रखते हुये। उद्भूतरोमोद्गतेः=उत्पन्न हुये रोमाञ्चों से युक्त ("तनूरुहं रोम लोम" इत्यमरः)। उद्भूत=

उत्पन्न। रोमोद्गतेः=रोमों का ऊपर की ओर उठ जाना अर्थात् रोमाञ्च हो जाना। प्रसन्नदयितादृष्टस्य=प्रसन्न हुयी प्रिया राधा के द्वारा देखे जाते हुये। अक्षुण्णः=अखण्डित, सफल—प्रिया राधा के प्रसन्न हो जाने रूप परिणाम के कारण सफल। अनुनयः=प्रार्थना—समाराधन। वः="त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्" से 'वः' यह एक शेष रह गया है। वैसे अर्थ है—"युष्मान् अस्मान् अन्यांश्च सर्वान्" अर्थात् तुम सभी लोगों को, हम सभी लोगों को और अन्य सभी लोगों को। पुष्णातु=पुष्ट करे।

अपि च—

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्संभ्रमाच्चासुरीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन।
आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसंभ्रमैर्दैत्यवीरैः
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥३॥

अन्वयः – मयपुरदहने देव्या सप्रेम दृष्टः, आसुरीभिः इदं किम् इति (उक्त्वा) भयात् च सम्भ्रमात् (दृष्टः), शान्तान्तस्तत्त्वसारैः ऋषिभिः सकरुणं (दृष्टः), विष्णुना सस्मितेन (दृष्टः), उपशमितवधूसम्भ्रमैः सगर्वैः दैत्यवीरैः अस्त्रं आकृष्य (दृष्टः), देवताभिः सानन्दं दृष्टः धूर्जटिः युष्मान् पातु।

संस्कृत-व्याख्या—[कवेः हरिहरनिमग्नमानसत्वेन हरौ स्तुतिं उक्त्वा हरे तामाह—दृष्ट इति] मयपुरदहने=मयनामकेन दानवेन निर्मितानि पुराणि-नगराणि मयपुराणि [मध्यमपदलोपी समासः]—तेषां दहनं दाहः तस्मिन् मयपुरदहने—त्रिपुरासुरदाहकाले, देव्या=वल्लभया पार्वत्या, सप्रेम=सानुरागं यथा-स्यात्तथा, दृष्टः=अवलोकितः, धन्या—अहं यत्प्रियेणायमतिबलो महासुरो निषूदितः इति प्रीतिमत्या भवान्या अवलोकित इति भावः। [पत्युः पराक्रमं दृष्ट्वा प्रियायाः सप्रेम वीक्षणं स्वाभाविकं रतिवृद्धिसूचकञ्च]।, आसुरीभिः=[तदा-एव] दैत्यस्त्रीभिः, इदम्=एतत्, किम् ?=किमापतितम्, इति=एवम् [उक्त्वा] भयात्=त्रासात्, च, सम्भ्रमात्=उद्वेगात्, [दृष्टः] आ कष्टं, कथमीदृशस्याप्य-

सुरराजस्यायं दशापरिपाक इति मत्स्वामिनामप्येवं कदाचित्स्यादिति ताभिः [असुरवधूभिः] भीतिरुद्वेगश्च कृतः इत्यभिप्रायः, शान्तान्तस्तत्वसारैः=शान्तं-उपशमितम् (विषयवासनानिवृत्तमित्यर्थः) अन्तस्तत्वम्=अन्तःकरणं-[मनो-बुद्ध्यहंकाराणां समवायः इत्यर्थः] सारः धनं येषां तैः वीतरागैरिति यावत्, ऋषिभिः=वसिष्ठादिभिः मुनिभिः, सकरुणम्=सदयम्,[दृष्टः] (अहह ! कथमयं वराको हरेण समूलमुन्मूलितः इति तेषां 'दया' ।) । विष्णुना=हरिणा, सस्मितेन=ईषद्धास्यसहितेन (दृष्टः) (हरिणा विचारितम्-यदयमधिकबलोऽसुरराजः हरेण ध्वस्तः तत् दैत्यारेः मम भारलाघवमेव जातमित्युत्साह एव हासकारणम् ।) ।, उपशमितवधूसम्भ्रमैः=उपशमितः-दूरीकृतः वधूनाम्-स्वपत्नीनाम् सम्भ्रमः-उद्वेगः यैस्तादृशैः, सगर्वैः=अहङ्कारयुक्तैः (वस्तुतः सगर्वमिति-शोभनः पाठः) दैत्यवीरैः=असुरशूरैः, अस्त्रम्=आयुधम्, आकृष्य=गृहीत्वा, (दृष्टः), निजवधूमनुद्विग्नमानसां कुर्वाणैः देवताभिः इन्द्रादिभिः देवैः, सानन्दम् =सहर्षम् (दृष्टः) (अत्र प्रबलारातिवध एव आनन्दहेतुः), (एतादृशः) धूर्जटिः=शंकरः, युष्मान्= वः, पातुरक्षतु । सर्वत्र मयपुरदहन इत्यन्वीयते ।

असुरीभिरिवासुरीभिर्दुर्योधनादिवधूभिः भयोद्वेगाभ्यां दृष्टः । कारुणिकैर्नारदादिभिः सदयं दृष्टः । कृष्णेन हसता दृष्टः । दैत्यवीरैः घटोत्कचादिभिः सगर्वं दृष्टः । सानन्दमिन्द्रादिभिश्च दृष्टः इत्यपि कविना कटाक्षितमिति वदन्ति । अतएव इयं नान्दी पत्रावलीरूपा । यथोक्तमपि-"वाचार्थबीजरचिता शंकरादिपदान्विता । संयुक्ता चन्द्रापद्माभ्यां पत्रावल्यभिधीयते ॥"

हिन्दी-अनुवाद—मयपुरदहने=मय (नामक दानव द्वारा निर्मित त्रिपुरासुर) के नगरों को भस्म करते समय, देव्या=देवी (पार्वती) द्वारा, सप्रेम दृष्टः=पूर्व के साथ देखे गये, आसुरीभिः=दानवों की स्त्रियों के द्वारा- इदम्= यह, किम्=क्या (हो गया) ? इति=ऐसा (कहकर), भयात्=भय, च और, सम्भ्रमात्=घबराहट के साथ (दृष्टः=देखे गये), शान्तान्तस्तत्वसारैः=शान्त अन्तःकरण (मन-बुद्धि तथा अहङ्कार) रूप तत्व से परिपूर्ण, ऋषिभिः= ऋषियों के द्वारा, सकरुणम्=दया के साथ (दृष्टः=देखे गये), विष्णुना= विष्णु के द्वारा, सस्मितेन=मन्द मुसकान (मुस्कराहट) के साथ (दृष्टः=देखे-

गये), उपशमितवधूसम्भ्रमैः=शान्त कर दी है अपनी स्त्रियों की घबराहट को जिन्होंने ऐसे, सगर्वैः=अभिमानी, दैत्यवीरैः=दैत्यवीरो द्वारा, अस्त्रम्=अस्त्र, आकृष्य=खींचकर (दृष्टः=देखे गये), देवताभिः=देवताओं द्वारा, सानन्दम्=आनन्द के साथ (दृष्टः=देखे गये), धूर्जटिः=शिव, युष्मान्=आप सभी लोगों की पातु=रक्षा करें।

भावार्थः—मय नामक राक्षस द्वारा निर्माण किये गये हुये त्रिपुरासुर के नगरों को नष्ट करते समय देवी पार्वती के द्वारा अत्यन्त स्नेह के साथ देखे गये, राक्षसों की स्त्रियों के द्वारा 'हाय ! यह क्या हो गया' ऐसा कहकर भय तथा घबराहट के साथ देखे गये, शान्त अर्थात् सांसारिक वासनाओं से निवृत्त कर लिया है अपने अन्तःकरण को जिन्होंने ऐसे ऋषियों के द्वारा दया के साथ देखे गये; विष्णु द्वारा मुस्कराहट के साथ देखे गये [अर्थात् प्रसन्नता के साथ विष्णु द्वारा अवलोकित] जिन्होंने अपनी स्त्रियों की घबराहट को शान्त कर दिया है ऐसे दानववीरों के द्वारा अपने-अपने अस्त्रों को खींचकर देखे जाते हुये, देवताओं द्वारा महती प्रसन्नता के साथ देखे जाते हुये शिव जी आप सभी सामाजिकों (दर्शकों) की रक्षा करें।

विशेष—(१) दानवों का एक अपना शिल्पी था जिसका नाम था "मय"। इसके द्वारा त्रिपुरासुर के लिये तीन इस प्रकार के नगरों का निर्माण किया गया था कि जो आकाश में ही उड़ते रहा करते थे। शिवजी ने इनका विनाश कर दिया था।

(२) महाभारत का युद्ध भी देवी द्रौपदी द्वारा पूर्वोत्पन्न शत्रुता के कारण अति प्रेम से, आसुरी स्वभाव को धारण करने वाली दुर्योधन की पत्नी भानुमती के द्वारा भय तथा घबराहट के साथ, व्यास आदि ऋषियों के द्वारा दया के साथ, घटोत्कच आदि दैत्यों के द्वारा बड़े अभिमान के साथ शस्त्रों को धारण कर, इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा प्रसन्नता के साथ तथा श्री कृष्ण द्वारा मुस्कराहट के साथ देखा गया। यह अर्थ भी उपर्युक्त श्लोक से ध्वनित होता है।

अलंकारः—उक्त श्लोक में शृंगार, भयानक, शान्त एवं युद्धवीर रसों के शिव जी विषयक 'रति' का अङ्ग होने से "रसवत्" अलंकार है।

छन्द—उक्त श्लोक में 'स्रग्धरा' छन्द है। लक्षण—"भ्रम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" ।।

समास—मयपुरदहने=मयनामकेन दानवेन निर्मितानि पुराणि—मयपुराणि (मध्यमपदलोपी समास) तेषां दहनम् तस्मिन्। शान्तान्तस्तत्वसारैः =शान्त अन्तस्तत्वं इति शान्तान्तस्तत्वं, शान्तान्तस्तत्वरूपं सारः येषां तैः। उपशमितवधूसम्भ्रमैः=उपशमितः वधूनां सम्भ्रमः यैस्तैः।

टिप्पणियं—मयपुरदहने=मय नामक दानवों के शिल्पी द्वारा त्रिपुरासुर के लिये बनाये गये तीनों नगरों का शिव जी द्वारा विनाश कर दिये जाने पर। पार्वती जी ने मन में सोचा कि मैं बड़ी धन्य हूँ क्यों कि मेरे पति शिव जी ने महान् बलशाली इस असुर को नष्ट कर दिया है। अतएव उन्होंने प्रेमपरिपूर्ण दृष्टि से अपने पति शिव को देखा। आसुरीभिः=राक्षसिनियों अथवा दानवों की स्त्रियों के द्वारा। सम्भ्रमात्=घबराहट के साथ। राक्षसिनियों ने जब 'मयपुरदहन' को देखा तो वे कहने लगीं—अरे! अरे! यह क्या हो गया?' जब इस प्रकार के महान् शक्तिशाली असुर की इस प्रकार की दशा हुयी तो फिर मेरे पति के साथ भी कहीं ऐसा ही न हो। अतएव वे भयभीत हो गयीं और घबरा गयीं। और इस प्रकार के भय तथा घबराहट के साथ उन्होंने शिव जी को देखा। ऋषिभिः=वसिष्ठ आदि ऋषियों ने। सकरुणम्=बड़ी दया के साथ। ऋषियों के हृदय में यह भाव था कि इस बेचारे असुरराज को शिव जी ने पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया। ऐसा सोचकर उसके हृदय में दया का भाव जाग्रत हो गया था। विष्णुना=विष्णु ने। सस्मितेन=ईषद् हास्य अथवा मुस्कराहट के साथ। विष्णु ने सोचा कि इस असुरराज का विनाशकर शिव जी ने मेरे भार को हल्का कर दिया है। अतएव उनके हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न हुयी और उन्होंने इसी प्रसन्नता के कारण उत्पन्न हुयी मुस्कराहट के साथ शिव जी को देखा। उपशमितवधूसम्भ्रमैः= जिन्होंने अपनी-अपनी पत्नियों के भय और घबराहट को शान्तकर उन्हें सन्तोष प्रदान कर दिया था ऐसे दानववीरों के द्वारा। इन दानववीरों ने अपनी पत्नियों से कहा कि मेरे अस्त्रों का प्रभाव बहुत अधिक है। अतः तुम भयभीत न होओ। इस भाँति समझा-बुझाकर उन दैत्यवीरों ने अपने-अपने अस्त्रों

को खींचकर (तानकर) शिव जी को ओर देखा। **देवताभिः**—देवताओं द्वारा। देवों ने जब यह देखा कि हमारा प्रबलशत्रु नष्ट कर दिया गया है तो उनके हृदय में आनन्द की अनुभूति हुयी और इस आनन्द के साथ उन्होंने शिव जी को देखा। **धूर्जटिः**—शिव, महादेव।" धूर्जटिः......हरः—इत्यमरः।"

नान्द्यन्ते

सूत्रधारः—अलमतिप्रसङ्गेन।

(नान्दी अर्थात् मङ्गलाचरण की समाप्ति कर)

सूत्रधार—अतिप्रसङ्गेन=मङ्गलाचरण सम्बन्धी अत्यधिक प्रसङ्ग से, अलम्=बस (अर्थात् मङ्गलाचरण का ही अत्यधिक विस्तार करने से क्या लाभ ?)।

व्याकरण—नान्दी=नन्द्+घञ्+ङीप्। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि' से धातु 'अ' को वृद्धि। **सूत्रधारः**=सूत्र+धृ+णिच्+अण्।

टिप्पणियाँ—**नान्दी**=नन्दन्ति देवताः अस्याम् अनया वा अथवा नन्दयति आनन्दयति जनान्-इति नान्दी अर्थात् जिसमें अथवा जिसके द्वारा देवगण प्रसन्न होते हैं अथवा जो लोगों को आनन्दित करती है। उसे 'नान्दी' कहते हैं। नाटक आदि ग्रन्थों की निर्विघ्न समाप्ति के निमित्त नान्दी अर्थात् मङ्गलाचरण का पाठ किया जाता है। नाटक का प्रारम्भ होने से पूर्व सूत्रधार जिस आशीर्वादात्मक, नमस्क्रियात्मक तथा काव्य की कथावस्तु के सूचक श्लोक (अथवा श्लोकों) का पाठ किया करता है वह पाठ ही 'नान्दी' कहलाता है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने इसका लक्षण करते हुये लिखा है—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥"साहित्यदर्पण ६।२४॥

अर्थात् देवताओं, ब्राह्मणों अथवा राजा आदि की आशीर्वादयुक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती है, अतः इसे 'नान्दी' कहा जाता है। आचार्य भरतमुनि ने इसका लक्षण इस प्रकार किया है—

आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः।
नान्दीति कथ्यते॥

अर्थात् आशीर्वाद और नमस्कार से युक्त श्लोक, जिसमें काव्य के कथानक का भी सूक्ष्मरूप से संकेत किया गया हो, नान्दी कहलाता है। नान्दी के विस्तार की सीमा भी आचार्यों द्वारा निश्चित कर दी गयी है:—

पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत।"

अर्थात् नान्दी अष्टपदा अथवा द्वादशपदा होती है। कुछ अन्यविद्वानों ने नान्दी को चतुष्पदा और षोडशपदा भी कहा है:—

"तां षोडशपदामेके केचिदाहुश्चतुष्पदाम्।"

यहाँ 'पद' का अर्थ "सुबन्त और तिङन्त पद" पद्य का एक चरण अथवा अवान्तर वाक्य माना जाता है:—

श्लोकपादः पदं केचित् सुप्तिङन्तमथापरे।
परेऽवान्तरवाक्यैकस्वरूपं पदमूचिरे ॥ नाट्यप्रदीप ॥

जिस नान्दी में कथावस्तु का भी निर्देश होता है उसे पत्रावली-नान्दी' कहते हैं:—

यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा ॥ नाट्यदर्पण ॥

उपर्युक्त नान्दी में भी कथावस्तु के बीज का उल्लेख हुआ है जिसका वर्णन यथास्थान किया जा चुका है। अतः उसे भी 'पत्रावली नान्दी' कहा गया है।

सूत्रधार--जो व्यक्ति सर्वप्रथम रंगशाला में उपस्थित होकर नाटकीय कथावस्तु की सूचना दिया करता है तथा नाटक के अभिनय से सम्बन्धित वस्तुओं एवं पात्रों की व्यवस्था करके नाटक के अभिनय को प्रारम्भ कराता है उसे "सूत्रधार" कहा जाता है—"सूत्रंधारयतीति सूत्रधारः" अर्थात् जो सूत्र को धारण करता है वह सूत्रधार कहलाता है। नाट्यशास्त्र में नाट्य के साधनों को 'सूत्र' नाम से कहा गया है। अतः इन साधनों (अथवा सूत्र) का धारण करने वाले व्यक्ति को 'सूत्रधार' कहा जाता है:—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

कुछ विद्वानों के मतानुसार कथासूत्र की प्रथम सूचना देने वाले व्यक्ति को 'सूत्रधार' कहा गया है:—

नाटकीय कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते॥

इस सूत्रधार द्वारा ही नान्दीं पाठ भी किया जाता है:—

सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः॥ भरत॥

इस दृष्टि के आधार पर सूत्रधार का नाम सर्वप्रथम लिखा जाना चाहिये था किन्तु ऐसा होता नहीं है क्योंकि ग्रन्थ के आरम्भ में सर्वप्रथम मंगलाचरण का किया जाना परमावश्यक है। इस कारण यद्यपि सूत्रधार द्वारा ही मंगलाचरण किया जाता है किन्तु फिर भी उसका नाम मंगलाचरण से पूर्व नहीं लिखा जाता है।

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः।
तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे॥४॥

अन्वयः—यः श्रवणाञ्जलिपुटपेयं भारताख्यं अमृतं विरचितवान् अहं तं अरागं अकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे।

संस्कृत-व्याख्या—इदानीं व्यासप्रशंसामाह—यः=महर्षिवेदव्यासः, श्रवणाञ्जलिपुटपेयम्=श्रवणं श्रोत्रं एव अञ्जलिपुटं हस्तसम्पुटं तेन पेयं पातुं योग्यम्—प्रेम्णा श्राव्यमिति यावत्, भारताख्यम्=भारतम्—महाभारतम् इति आख्या संज्ञा यस्य तत् भारताख्यम्—महाभारतसंज्ञकम्, अमृतम्=पीयूषसदृशम्; विरचितवान्=प्रणीतवान्। अहम्=स्थापकःसूत्रधारः, तम्, अरागम्=न विद्यते रागः-विषयासक्तिः यस्य तम्—विषयासक्तिविहीनमित्यर्थः अथवा रागशून्यम्—अथवा रजोगुणरहितम्, अतएव अकृष्णम्=निष्कलुषम्—तमोगुणरहितं वा—अज्ञानरहितं वा=रागाभावे (रजोगुणरहिते) कृष्णत्वाभावे (तमोगुणरहिते) च तस्मिन् सत्वगुणस्यैव प्राधान्यं सूचितमित्यपि बोध्यम्, कृष्णद्वैपायनम्=व्यासम्, वन्दे=नमस्करोमि। तदिह प्रतिपाद्यमहाभारतकथाया आदिकर्त्ता व्यासस्तत्वविच्चेति तत्कीर्तनं शुभकृदेव भवतीति तदेवकृतमिति भावः॥

हिन्दी-अनुवाद—यः=जिस (वेदव्यास) ने, श्रवणाञ्जलिपुटपेयम्=कानरूपी अञ्जलिपुट से पीने योग्य, भारताख्यम्=महाभारत नामक, अमृतम्=अमृत को, विरचितवान्=रचा है—बनाया है। अहम्=मैं (सूत्रधार), तम्=उन, अरागम्=राग-विषयासक्ति से रहित अथवा रजोगुणशून्य, अकृष्णम्=पापरहित अथवा तमोगुणविहीन, कृष्णद्वैपायनम्—वेदव्यास को, वन्दे=प्रणाम करता हूँ—नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिस महर्षि वेदव्यास ने अञ्जलिपुट (अर्थात् बँधी हुयी अंजली) से पान किये जाने योग्य महाभारत नामक महाकाव्य, जो कि साक्षात् अमृततुल्य है अर्थात् मोक्ष प्रदाता है) की रचना की है। उन निस्पृह (विषय-वासना आदि से रहित) अथवा रजोगुणविहीन, पाप अथवा अज्ञान अथवा तमोगुणशून्य महर्षि व्यास को मैं नमस्कार करता हूँ।

अलंकार—इसमें 'परम्परितरूपक' अलङ्कार है।

छन्द—इसमें आर्या छन्द है। **लक्षणः**—यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

समास—**श्रवणाञ्जलिपुटपेयम्**=श्रवणं एव अञ्जलिपुटं, तेन पेयम्। **कृष्णद्वैपायनम्**=द्वीपं अयनं (न्यासस्थानं) यस्य स द्वीपायनः, द्वीपायन एव द्वैपायनः, कृष्णश्चासौ द्वैपायनश्च कृष्णद्वैपायनः, तम् कृष्णद्वैपायनम्।

टिप्पणियाँ—सूत्रधार को यह विदित है कि प्रस्तुत किये जाने वाले नाटक का आधार 'महाभारत' है। अतएव वह महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास को भी नमस्कार करता है। **अञ्जलिपुटम्**=हाथ का सम्पुट, बँधी हुयी (हाथों की) अञ्जलि। "अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे" इति मेदिनी"। **भारताख्यम्**=महाभारत नामक महाकाव्य के। **अरागम्**=रागरहित—विषयासक्ति से रहित, रजोगुणशून्य। **अकृष्णम्**—पापरहित अथवा तमोगुण से रहित। इन दोनों विशेषणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महर्षिव्यास रजोगुण और तमोगुण दोनों ही गुणों के प्रभाव से रहित थे। इससे यही अभिप्राय निकलता है कि उनमें सत्वगुण की ही प्रधानता थी। **कृष्णद्वैपायनम्**—महर्षि वेदव्यास को।

(समन्तादवलोक्य)

तत्रभवतः परिषदग्रेसरान् विज्ञाप्यं नः किञ्चिदस्ति ।

कुसुमाञ्जलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र ।
मधुलिह इव मधुबिन्दून् विरलानपि भजत गुणलेशान् ॥५॥

(चारों ओर देखकर)

पूजनीय सभा-प्रमुखों से हमें कुछ निवेदन करना है।

अन्वयः—अत्र अपरः कुसुमाञ्जलिः इव एषः काव्यबन्धः प्रकीर्यते । मधुबिन्दून् मधुलिहः इव विरलान् अपि (अस्य) गुणलेशान् भजत ।

संस्कृत-व्याख्या—अत्र=अस्यां सभायां विद्यमानानां सभ्यानां समक्षे, अपरः= द्वितीयः, कुसुमाञ्जलिः इव=पुष्पाञ्जलि सदृशः, एषः=अयम्—'प्रयुज्यमानः'— इत्यर्थः, काव्यबन्धः=काव्यमेव कविकृतिरेव बन्धः रचना—इति-काव्यबन्धः— कविकृतप्रबन्धः—वेणीसंहार नाम नाटकमित्यर्थः, प्रकीर्यंते=विस्तार्यंते—प्रयुज्यते इति भावः। मधुबिन्दून्=मधुनः पुष्परसस्य बिन्दून् कणान्, मधुलिहः= मधुकराः, इव=यथा (यथा भ्रमराः पुष्परसकणान् सेवन्ते तथैव) अत्रत्याः सभ्याः अपि, विरलान्=स्वल्पान्, अपि, (अस्य), गुणलेशान्=प्रशस्तताकणान्— काव्यसौन्दर्यगुणानिति यावत्, भजत=गृह्णीत । अनेन यदीये अस्मिन् नाटके स्वल्पाः अपि गुणा गुणिभिः ग्राह्या इत्यौद्धत्यपरिहारः अपि कृतः इति ध्वनितम् ।

हिन्दी-अनुवाद—अत्र=इस परिषद् में उपस्थित सभ्यों के समक्ष, अपरः= दूसरी, कुसुमाञ्जलिः इव=फूलों की अञ्जली के सदृश, एषः=यह, काव्यबन्धः =काव्यरचना–(प्रयोग किया जाने वाला वेणीसंहार नामक नाटक), प्रकीर्यंते =बिखेरी जा रही है—प्रदर्शित की जा रही है (अर्थात् प्रयोग द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है)। मधुबिन्दून=मधु की बूंदों को, मधुलिहः=भ्रमरों के, इव=समान (अर्थात् जैसे भ्रमर मधु की बूँदों का सेवन किया करते हैं, इसी प्रकार आप लोग भी), विरलान्=थोड़े, अपि=भी, गुण लेशान्=गुणों के कणों को (अर्थात् प्रस्तुत नाटक के थोड़े से भी गुणों को), भजत=ग्रहण करें अथवा सेवन करें।

भावार्थ—(प्रथम पुष्पाञ्जलि का वर्णन प्रथम श्लोक में किया जा चुका है कि जिसको विष्णु के चरणों में अर्पित किया गया है। अतएव वेणीसंहार नामक काव्यरचना को द्वितीय पुष्पाञ्जलि के रूप में कवि द्वारा दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।)। सूत्रधार कहता है कि महाकवि भट्टनारायण द्वारा रचित "वेणीसंहार" नामक काव्यरचना को आप सभी सामाजिकों अथवा दर्शकों के समक्ष एक दूसरी पुष्पाञ्जलि के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। हे दर्शको! जिस भाँति भ्रमर पुष्पों में पुष्परस अथवा मधु के कणों का पान किया करता है उसी प्रकार आप लोग भी प्रस्तुत काव्यरचना के गुणों का सेवन कीजिये अर्थात् उसमें जो भी थोड़े-बहुत गुण हों उनका तो आप लोग रसास्वादन अवश्य कीजिये।

अलङ्कार—उक्त पद्य में उत्प्रेक्षा तथा पूर्णोपमा—दोनों अलंकारों का चमत्कार विद्यमान होने से 'संसृष्टि' अलंकार है।

छन्द—इसमें भी 'आर्या' नामक छन्द है।

समास—काव्यबन्धः=निबध्यते इति बन्धः, काव्यमेव बन्धः इति काव्यबन्धः। कुसुमाञ्जलिः=कुसुमानां अञ्जलिः (षष्ठी त०) कुसुमाञ्जलिः। मधुविन्दून्=मधुनः विन्दून् (षष्ठी त०), मधुविन्दून्।

टिप्पणियाँ—काव्यबन्धः=काव्य-कृति, काव्यरचना—'वेणीसंहार' नामक नाटक। प्रकीर्यते=(कुसुमाञ्जलि पक्ष में–) बिखेरी जा रही है, (काव्यरचना पक्ष में–) आप सभी के समक्ष प्रस्तुत अथवा प्रदर्शित की जा रही है। विरलान्=थोड़े से–स्वल्प। गुणलेशान्=(इस नाटक के) लेशमात्र भी गुणों को। भजत=सेवन करें, स्वीकार करें।

तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम्। तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तकथावस्तुगौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये।

[नेपथ्ये]

भाव! त्वर्यतां त्वर्यताम्। एते खल्वार्यविदुराज्ञया पुरुषाः सकलमेव शैलूषजनं व्याहरन्ति–प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासा-

दिका विषयः। प्रवेशकालः किल तत्रभवतः पाराशर्यनारदतुम्बरुजामदग्न्यप्रभृतिभिर्मुनिवृन्दारकैरनुगम्यमानस्य भरतकुलहितकाम्यया स्वयं प्रतिपन्नदौत्यस्य देवकीसूनोश्चक्रपाणेर्महाराजदुर्योधनशिविरसन्निवेशं प्रति प्रस्थातुकामस्य इति।

हिन्दी-अनुवाद—तो हम लोग 'मृगराज' उपाधिधारी भट्टनारायण की रचना इस वेणीसंहार नामक नाटक का प्रयोग (अभिनय) करने के लिये उद्यत हैं। अतः (नाटक के निर्माण में किये गये) कवि के परिश्रम के विचार से अथवा (नाटक की) उत्तम कथावस्तु के गौरव के कारण अथवा नवीन नाटक को देखने की उत्सुकता से आप लोगों द्वारा एकाग्रचित्तता के साथ ध्यान दिये जाने की प्रार्थना करता हूँ।

[नेपथ्य में-अथवा-पर्दे के पीछे]

आदरणीय! शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये। आर्य विदुर की आज्ञा से ये [अधिकारी] पुरुष सभी नटों से कह रहे हैं—(चारों प्रकार के) वाद्यों (बाजों) के बजाने की विधियाँ बिना किसी त्रुटि के प्रारम्भ कर दी जायँ। (क्योंकि अब–) व्यास (पराशर-पुत्र), नारद, तुम्बरु, परशुराम आदि श्रेष्ठ मुनियों द्वारा अनुसरण किये जाते हुये, भरतकुल (कौरवों तथा पाण्डवों के वंश) के हित की इच्छा से स्वयं ही दूत के कार्य को स्वीकार करने वाले, महाराज दुर्योधन के शिविर-स्थान की ओर प्रस्थान करने वाले, देवकी के पुत्र चक्रपाणि—श्री कृष्ण के प्रवेश का समय हो रहा है।

भावार्थ—आप लोग शीघ्रता कीजिये। ये राज-कर्मचारी आर्य विदुर की आज्ञा से सभी नटों को आदेश दे रहे हैं कि वे लोग अपने-अपने बाजों के साथ नृत्य, गान आदि करते रहें क्योंकि देवकी के पुत्र सुदर्शनचक्र को धारण करने वाले भगवान कृष्ण दुर्योधन के शिविर में शीघ्र ही पहुँचना चाहते हैं। उनके पहुँचने का समय हो रहा है। व्यास, नारद, तुम्बरु और परशुराम आदि श्रेष्ठ महर्षि भी उनके साथ में हैं। उन्होंने (कृष्ण ने) भरतवंश के कल्याण की दृष्टि से स्वयं ही दूत बनना स्वीकार कर लिया है।

टिप्पणियाँ—मृगराजलक्ष्मणः—महाकवि भट्टनारायण वीररस प्रधान काव्यों के रचयिता थे। प्रस्तुत (वेणीसंहार) नाटक से पूर्व इन्होंने कुछ अन्य

वीररस प्रधान काव्यों की रचना अवश्य की होगी तथा उसी आधार पर इनको 'मृगराज' (सिंह अथवा कविसिंह) नामक उपाधि से विभूषित भी किया गया होगा ।

शब्दार्थ—'मृगराज' अर्थात् सिंह-अर्थात् कवियों में सिंह के सदृश अथवा कविसिंह' नामक लक्ष्म-चिह्न अथवा उपाधि को धारण करने वाले ।

नेपथ्य—नेपथ्य शब्द 'रङ्गभूमि' तथा 'प्रसाधन-स्थान' दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है । "नेपथ्यं रङ्गभूमौ स्यान्नेपथ्यं तु प्रसाधने" इति विश्वः । इस स्थान पर प्रयुक्त 'नेपथ्य'शब्द 'प्रसाधन' अर्थ में प्रयुक्त है । पर्दे के पिछले भाग में जो स्थान अभिनेताओं के सजने-धजने अथवा वस्त्र-वेशभूषा आदि धारण करने हेतु हुआ करता है—उसे नेपथ्य कहते हैं ।

भाव—मान्य—"मान्यो भावेतिवक्तव्यः" इत्यमरः ।

आतोद्यविन्यासादिकाः—वाद्य-विन्यास आदि । 'आतोद्य' चार प्रकार के बाजों के समूह का नाम है—"चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम्"—इत्यमरः । ये चार प्रकार के वाद्य ये हैं—(१) रगड़कर बजाये जाने वाले वाद्य । (२) चमड़े की डोरी से आनद्ध-वीणा आदि वाद्य (३) पीटकर बजाये जाने वाले- मृदङ्ग आदि वाद्य । (४) परस्पर लड़ाकर बजाये जाने वाले झांझ, मजीरा इत्यादि ।

"ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् ।
वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यं तालादिकं घनम्" ।। इत्यमरः ।

सूत्रधारः—(आकर्ण्य सानन्दम) अहो नु खलु भो, भगवता सकलजगत्प्रभवस्थितिनिरोध प्रभविष्णुना विष्णुनाऽद्याऽनुग्रहीतमिदं भरतकुलं सकलं च राजचक्रमनयोः कुरुपाण्डवराजपुत्रयो राहवकल्पान्तानलप्रशमहेतुना स्वयं सन्धिकारिणा कंसारिणा दूतेन । तत्किमिति पारिपार्श्विक ! नारम्भयसि कुशीलवैः सह सङ्गीतकम् ।

हिन्दी-अनुवाद—सूत्रधार—(सुनकर, बड़े हर्ष के साथ) आ······ हा ! अरे, निश्चय ही, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने में समर्थ, कंस-शत्रु भगवान् विष्णु (कृष्ण) ने इस भरतकुल और एवं समस्त राज-

समूह को अनुगृहीत किया है क्योंकि वे इन कौरव और पाण्डव राजपुत्रों के युद्ध रूपी प्रलयकालीन अग्नि को शान्त करने हेतु स्वयं दूत बनकर, सन्धि कराने का प्रयास कर रहे हैं। अतः, हे पारिपर्श्विक ! नटों के साथ मिलकर (आप भी) गाना-बजाना प्रारम्भ क्यों नहीं करते ?

टिप्पणियाँ—जगत्प्रभवस्थितिनिरोधप्रभविष्णुना=जगत् की (प्रभव) उत्पत्ति, (स्थिति) रक्षण-स्थिति तथा (निरोध) विनाश करने में (प्रभविष्णु) समर्थ। **राजचक्रम्**=दोनों पक्षों का आश्रय प्राप्तकर उपस्थित रहने वाला "राजसमूह"। **आहवकल्पान्तानलप्रशमहेतुना**—आहव=युद्ध रूपी, कल्पान्तानलः=प्रलयाग्नि के, प्रशमहेतुना=शान्ति हेतु। सन्धिकारिणा=शत्रुता को समाप्तकर समुचित मैत्री कराने वाले। **कंसारिणा**=कंस के शत्रु-कृष्ण के द्वारा। **पारिपार्श्विकः**—सूत्रधार का सहायक नट—"सूत्रधारस्य पार्श्वे यः प्रकरोत्यमुना सह। काव्यार्थसूचनालापं स भवेत् पारिपार्श्विकः॥" इति भरतः॥ **कुशीलवैः**=गानविद्याविशारद नटों के द्वारा।

प्रविश्य

पारिपार्श्विकः—भवतु। आरम्भयामि। कतमं (कम्) समयमधिकृत्य गीयताम् ?

सूत्रधारः—नन्वमुमेव तावच्चन्द्रातप-नक्षत्र क्रौञ्च-हंसकुल-सप्तच्छद-कुमुद-पुण्डरीक काशकुसुमपरागधवलितदिङ्मण्डलं स्वादुजलजलाशयं शरत्समयमाश्रित्यप्रवर्त्यतां संगीतकम्। तथाह्यस्यां शरदि-

> सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः।
> निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ॥६॥

हिन्दी-अनुवाद— (प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक—अच्छा, आरम्भ करता हूँ। किस समय (ऋतु) का आश्रय लेकर गाया जाय ? (अर्थात् किस ऋतु से सम्बन्धित गाना गाया जाय ?)

सूत्रधार—इसी चाँदनी, तारे, क्रौञ्च, हंसों के समूहों से युक्त, छतिवन (सप्तपर्ण), कुमुद (कोइनी), श्वेतकमल तथा काश के फूलों के पराग से

दिशाओं के समूह (अर्थात् दिशायें) को श्वेतवर्ण बना देनें वाली, स्वादिष्ट जलों से परिपूर्ण तालाबों से युक्त शरद् ऋतु का आश्रय लेकर (अर्थात् इस ही शरद् ऋतु के बारे में) संगीत आरम्भ किया जाय। क्योंकि इस शरद्-ऋतु में ही।

अन्वयः—सत्पक्षाः मधुरगिरः प्रसाधिताशाः मदोद्धतारम्भाः धार्तराष्ट्राः कालवशात् मेदिनीपृष्ठे निपतन्ति।

संस्कृत व्याख्या—प्रबन्धप्रतिपाद्यं बीजं श्लेषेण सूचयन् शरदं स्तौति–सत्पक्षा इति–सत्पक्षा सन्तः रुचिराः पक्षाः पतत्त्राणि येषान्ते–सत्पक्षाः=श्रेष्ठ-पक्षयुक्ताः, मधुरगिरः=मधुरा श्रवणप्रिया गीः वाणी येषां ते मधुरगिरः–कलालापाः, प्रसाधिताशाः=प्रसाधिता भूषिता आशा दिशा यैस्ते प्रसाधि-ताशाः–विभूषितदिङ्मण्डलाः, मदोद्धतारम्भाः=मदेन हर्षेण उद्धताः अतिशयुक्ताः आरम्भाः व्यापाराः येषां ते मदोद्धतारम्भाः—हर्षतरलितव्यापाराः, धार्त्तराष्ट्राः=सितेतरचञ्चुचरणान्विता हंसविशेषाः ("धार्त्तराष्ट्राः सितेतरैः" इत्यमरः), कालवशात्=कालस्य शरदर्तोः वशात् कारणात्, मेदिनीपृष्ठे=मेदिन्याः पृथिव्याः पृष्ठे तले, निपतन्ति=अवतरन्ति। शरत्काले एव हंसा मानसरोवरात् एतस्मिन् प्रदेशे आगच्छन्तीति ज्ञेयम्।

दुर्योधनादिपक्षे— सत्पक्षाः=सन्-श्रेष्ठः पक्षः सैन्यम् अथवा सन्तः भीष्म-द्रोणादयः सत्पुरुषाः पक्षाः सहायाः वा येषां ते सत्पक्षाः—श्रेष्ठसैन्यवन्तः—भीष्मद्रोणादि सहाययुक्ताः वा, मधुरगिरः=मधुरवाचः, प्रसाधिताशाः=प्रसाधिताः प्रकर्षेण साधिताः जिताः (आयत्तीकृताः इत्यर्थः) आशाः दिशः यैस्तै प्रसाधिताशाः–स्वायत्तीकृतसकलदिग्विभागाः, मदोद्धतारम्भाः=मदेन गर्वेण उद्धताः उद्दण्डतापूर्णाः आरम्भाः कार्याणि येषां ते मदोद्धतारम्भाः–उद्धत-व्यवहाराः धार्त्तराष्टाः=धृतराष्ट्राज्जाताः धार्त्तराष्ट्राः धृतराष्ट्रपुत्राः, कालव-शात्=कालस्य मृत्योः वशात् कारणात् अधिकाराद्वा, मेदिनीपृष्ठे=भूतले, निपतन्ति=मृत्युं प्राप्य पतन्ति–अथवा नितरां पतन्ति–म्रियन्ते-इत्यर्थः।

हिन्दी-अनुवाद—(हंस पक्ष में) सत्पक्षाः=शोभन पांख वाले, मधुरगिरः=मीठी वाणी बोलने वाले, प्रशाधिताशाः=दिशाओं को अलंकृत करने वाले,

मदोद्धतारम्भाः=हर्ष के कारण उद्दाम क्रीडा करने वाले, धार्त्तराष्ट्राः=हंस, कालवशात्=समय (शरद् ऋतु) के प्रभाव से, मेदिनीपृष्ठे=भूतल पर, निपतन्ति=आ रहे हैं।

(दुर्योधन आदि से सम्बन्धित संकेतित अर्थ) सत्पक्षाः=श्रेष्ठ सेना से युक्त अथवा भीष्म-द्रोण आदि सहायकों से युक्त, मधुरगिरः=मधुरभाषी, प्रसाधिताशाः=दिशाओं को वश में करने वाले दशों दिशाओं पर राज्य करने वाले, मदोद्धतारम्भाः=अहङ्कार के कारण धृष्टतापूर्ण कार्य करने वाले, धार्त्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन आदि), कालवशात्=मृत्यु के वश में होने के कारण, मेदिनीतले=पृथ्वीतल पर, निपतन्ति=गिर रहे हैं। (दुर्योधन इत्यादि कालवश मृत्यु को प्राप्त होकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं)।

अलंकार—उक्त छन्द में 'श्लेष' अलंकार है। अथवा श्लेषमिश्रित शब्द शक्तिमूलक वस्तुध्वनि है।

छन्द—इसमें 'आर्या' छन्द है।

समास—चन्द्रातपनक्षत्रक्रौञ्चहंसकुलसप्तच्छदकुमुदपुण्डरीककाश-कुसुमपरागधवलितदिङ्मण्डलम्=चन्द्रस्य चन्द्रमसः आतपेन प्रकाशेन (अत्र आतपशब्दः प्रकाशपरो न तु घर्मार्थः—"प्रकाशो द्योत आतपः"—इत्यमरः) नक्षत्रैः अश्विन्यादिनक्षत्रैः, क्रौञ्चहंसैः क्रुङ्मरालैः ("क्रुङ् क्रौञ्चः"—इत्यमरः) सप्तच्छद-कुमुद-पुण्डरीक-काशकुसुमानां—सप्तपर्ण-कोरवश्वेतकमल-काशपुष्पाणाम्, परागैश्च रजोभिश्च ("परागः सुमनोरजः"—इत्यमरः) धवलितम्—शुभ्रीकृतम्, दिशाम् ककुभाणाम् ("दिशस्तु ककुभः काष्ठाः"—इत्यमरः) मण्डलम् यस्मिन् तम्। इस वाक्य में सर्वत्र द्वन्द्व-समास की छटा दृष्टिगोचर हो रही है। इसमें सभी पदार्थ शुभ्रवर्ण के ही वर्णित हैं। स्वादु-जलजलाशयम्=स्वादु—मधुरम्, जलम्-सलिलं येषां ते तथाभूताः जलाशयाः यस्मिन् तम्। सत्पक्षाः=(हंसपक्ष में) सन्तः पक्षाः येषां ते। (दुर्योधन आदि के पक्ष में) सन् श्रेष्ठः पक्षः सैन्यम् अथवा सन्तः भीष्मद्रोणादयः सत्पुरुषाः पक्षाः सहायाः वा येषां ते। मधुरगिरः=मधुरा गीः येषां ते। प्रसादिताशाः=(हंसपक्ष में) प्रसाधिताः अलंकृताः आशाः दिशः यैस्ते।

(अन्यपक्ष में) प्रकर्षेण साधिताः जिताः (आयत्तीकृताः—इत्यर्थः) आशाः दिशः यैस्ते । **मेदिनीपृष्ठे**=मेदिन्याः पृष्ठे (तत्पुरुष)—मेदिनीपृष्ठे ।

टिप्पणियाँ—शरत्समयमाश्रित्य=शरद् ऋतु चल रही है । अतः इसी का आश्रय लेकर अर्थात् उस ही से सम्बन्धित गाने गाइये । **चन्द्रातपः**—साधारणतया 'आतप' उष्ण ही हुआ करता है । ऐसी स्थिति में शीतल चन्द्रमा के साथ 'आतप' का सम्बन्ध जोड़ना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है । इससे प्रतीत होता है कि इस स्थल पर प्रयुक्त 'आतप' शब्द "प्रकाश" का ही द्योतक है । **कौञ्चहंससप्तच्छद**.........इसमें जितने भी पक्षी एवं वृक्ष और पुष्प आदि का वर्णन किया गया है वे सभी श्वेतवर्ण के होते हैं । ये सभी शरद् ऋतु में प्रायः देखे जाते हैं । **सत्पक्षाः** (हंस पक्ष में) सुन्दर पंखों से युक्त । (दुर्योधन आदि के पक्ष में) श्रेष्ठ सेना से युक्त अथवा भीष्म द्रोण आदि श्रेष्ठ व्यक्तियों की सहायता से युक्त । **प्रसाधिताशाः**=दिशाओं को सुशोभित करने वाले । (पक्ष में) दिशाओं को अपने अधीन करने वाले । **धार्त्तराष्टाः** नामक हंस अथवा धृतराष्ट्र से उत्पन्न, धृतराष्ट्र के पुत्र-दुर्योधन आदि । **कालवशात्**=समय (शरद्-ऋतु) के कारण—अर्थात् शरद् ऋतु के प्रभाव के कारण । (अन्य पक्ष में) कालवश (मृत्यु के वश होने के कारण) मृत्यु को प्राप्त होकर । **निपतन्ति**—(हंस पक्ष में). आ रहे हैं । (अन्य पक्ष में) गिर रहे हैं (पृथ्वीतल पर गिर रहे हैं ।) ।

पारिपार्श्विक-(ससंभ्रमम्)भाव!शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् ।

सूत्रधार—(सवैलक्ष्यस्मितम्) मारिष ! शरत्समयवर्णनाशंसया हंसा 'धार्तराष्टा'इति व्यपदिश्यन्ते । तत्किं शान्तं पापं प्रतिहतममङ्गलम्?

पारिपार्श्विक—भाव ! न खलु न जाने । किन्त्वमंगलाशंसयाऽस्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् ।

सूत्रधार—मारिष ! ननु सर्वमेवेदानीं प्रतिहतममङ्गलं स्वयं प्रतिपन्नदौत्येन सन्धिकारिणा कंसारिणा । तथा हि—

हिन्दी-अनुवाद—पारिपार्श्विक (घबड़ाहट के साथ) आर्य ! पाप शान्त हो, अमङ्गल का नाश हो ।

सूत्रधार—(लज्जा तथा मुस्कराहट के साथ) हे मारिष (हे आर्य—"आर्यस्तु मारिषः" इत्यमरः) शरदऋतु सम्बन्धी वर्णन के अभिप्राय से हंसों को 'धार्त्तराष्ट्र' ऐसा कहा जा रहा है। तब 'पाप शान्त हों', 'अमङ्गल नष्ट हों' यह क्या ? (अर्थात् आप द्वारा 'पाप शान्त हों' 'अमङ्गल नष्ट हों' ऐस क्यों कहा जा रहा है ?)।

पारिपार्श्विक—आर्य ! (मैं आपके अभिप्राय को) नहीं समझ रहा हूँ; ऐसी बात नहीं है। किन्तु फिर भी आपके वचन के अमङ्गलसूचक होने के कारण मेरा हृदय सचमुच कांप सा गया है।

सूत्रधार—हे आर्य ! अब तो दूत के कार्य को स्वयं ही सम्पन्न करने वाले; सन्धि कराने वाले, कंसादि (कृष्ण) के द्वारा सम्पूर्ण अमङ्गल(स्वयं ही) नष्ट कर दिया गया है। क्योंकि—

टिप्पणियां—ससम्भ्रमम्=उद्वेग के साथ। घबराहट के साथ। सवैलक्ष्यम्=लज्जा के साथ। मारिष=आर्य—'किञ्चिन्यूनस्तु मारिषः" इति भरतः। 'आर्यस्तु मारिषः' इत्यमरः। न खलु न जाने 'न जाने' इति न खलु-अर्थात् मैं नहीं जानता हूँ, ऐसी बात नहीं है। अर्थात् मैं तो जानता ही हूँ। आशंसया=संभावना से, आशङ्का से। यत्सत्यम्='यह असम्भव नहीं है,-अर्थात् "यह सत्य है—कि" यह अर्थ है—'यत्सत्यं नाऽसम्भाव्येऽर्थे' इति भरतः। प्रतिपन्नदौत्येन=जिन्होने दूत के कार्य को स्वीकार कर लिया है।

निर्वाणवैरदहना प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥७॥

अन्वयः—अरीणां प्रशमात् निर्वाणवैरदहनाः पाण्डुतनयाः माधवेन सह नन्दन्तु। रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाः कुरुराजसुताः च सभृत्याः स्वस्थाः भवन्तु।

संस्कृत-व्याख्या=अरीणाम्=शत्रूणाम्-दुर्योधनादीनाम्, प्रशमात्=उपशमात्-शान्तत्वात्-अनुकूलभावग्रहणात्, निर्वाणवैरदहनाः-निर्वाणः-निस्तेजीकृतः-शान्तिमापन्नः,वैरम्-शत्रुता एव दहनः अग्निः येषां तादृशाः, निवृत्तद्वेषभावाः-इत्यर्थः, पाण्डुतनयाः=पाण्डवाः युधिष्ठिरादयः, माधवेन=श्रीकृष्णेन; सह=सार्धम्, नन्दन्तु=प्रसीदन्तु आनन्दमनुभवन्तु। रक्तप्रसाधितभुवः=रक्ता अनुरागवतीकृता-प्रसाधिता अधीनीकृता अथवा-रक्तेन अनुरागेण(भावेक्तः) प्रसाधिता पालिता भू पृथिवी यैः ते-(स्नेहवशीकृतलोका-इति भावः) क्षतविग्रहः=क्षतःविनष्टः दूरीभूत इति यावत् विग्रहः कलहः युद्धं वा येषां ते; कुरुराजसुताः=धृतराष्ट्रसुताः- दुर्योधनादयः, च अपि, सभृत्याः=सपरिजनाः, स्वस्थाः=सुस्थिताः-प्रसन्नाः-प्रकृतिस्थाः-सुखिनः वा,भवन्तु=सन्तु-तिष्ठन्तु वा।

कथाबीजसूचनपक्षे—अरीणाम्=शत्रूणाम्-दुर्योधनादीनाम्, प्रशमात्=विनाशात्, निर्वाणवैरदहनाः=अस्तंगतवैराः-शान्तवैराग्नयः, पाण्डुतनयाः=पाण्डुपुत्राः-पाण्डवाः युधिष्ठिरादयः, माधवेन=श्रीकृष्णेन, सह=साकम्, नन्दन्तु=सुखमधिगच्छन्तु। रक्तप्रसाधितभुवः=रक्तेन रुधिरेण प्रसाधिता अलङ्कृता व्याप्तेति यावत् भूः पृथिवी यैस्ते-रुधिरालङ्कृतयुद्धभुवः इत्यर्थः, क्षतविग्रहाः=क्षताः जातव्रणाः विग्रहाः शरीराणि येषां ते-शस्त्राहताः विनष्टदेहाः सन्तः, कुरुराजसुताः=कौरवाः, च=अपि, सभृत्याः=सपरिजनाः, स्वस्थाः=स्वः स्वर्गे तिष्ठन्तीति स्वर्गस्थाः-मृत्युं प्राप्य स्वर्गङ्गता इत्यर्थः, भवन्तु।

हिन्दी-अनुवाद—(१) अरीणाम्=शत्रुओं के, प्रशमात्=शान्त हो जाने के कारण, निर्वाणवैरदहनाः=जिनकी शत्रुता रूपी अग्नि शान्त हो गयी है ऐसे, पाण्डुतनयाः=पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि, माधवेन सह=श्रीकृष्ण के साथ, नन्दन्तु=आनन्द (का अनुभव) करें। रक्तप्रसाधितभुवः=बड़े प्रेम के साथ दे दी है पाण्डवों को भूमि जिन्होंने, ऐसे, क्षतविग्रहाः=जिनका युद्ध समाप्त हो गया है ऐसे, कुरुराजसुताः=दुर्योधन आदि कौरव, च=भी, सभृत्याः=सेवकों आदि समेत, स्वस्थाः=स्वस्थ, भवन्तु=रहें।

(२) **बीज-पक्ष में**—(संकेतित अर्थ)—

अरीणाम्=शत्रुओं के, प्रशमात्=नष्ट हो जाने के कारण, निर्वाणवैरदहनाः=शान्त हो गयी है शत्रुतारूपी अग्नि जिनकी ऐसे, पाण्डुतनयाः=(युधि-

ष्ठिर आदि) पाण्डव, माधवेनसह=श्रीकृष्ण के साथ, नन्दन्तु=आनन्द का अनुभव करें। रक्तप्रसाधितभुवः=अपने रुधिर (खून) से पृथ्वी को सुशोभित करने वाले, क्षतविग्रहाः=क्षण-विक्षत शरीर वाले, कुरुराजसुताः=दुर्योधन आदि कौरव, च=भी, स्वस्थाः=स्वर्गस्थ-स्वर्गवासी, भवन्तु=होवें।

भावार्थ—(१) शत्रुओं के शान्त हो जाने के कारण, शत्रुतारूपी अग्नि को शान्त कर लेने वाले, पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर आदि) कृष्ण के साथ आनन्द का अनुभव करें। बड़े प्रेम के साथ पाण्डवों को भूमि प्रदान करने वाले शान्तयुद्ध वाले कौरव (दुर्योधन आदि) भी सेवकों सहित स्वस्थ हो।

(२) शत्रुओं का नाश हो जाने के कारण, शत्रुतारूपी अग्नि के शान्त हो जाने के कारण पाण्डवलोग श्रीकृष्ण के साथ आनन्द का अनुभव करें। स्वकीय रक्त से पृथिवी को अलङ्कृत करने वाले, क्षत-विक्षत शरीर वाले कौरव (दुर्योधन आदि) भी सेवकों सहित स्वर्गवासी बनें।

अलङ्कारः— उक्त छन्द में 'श्लेष' अलङ्कार है।

विशेषः—(१) श्लेष के द्वारा कथावस्तु की सूचना प्राप्त होने से 'श्लेषगण्ड' नामक नाटक का अङ्ग यहाँ आक्षिप्त किया गया है। जैसा कि भरतमुनि ने कहा भी है:—"द्व्यर्थता यत्र वाक्यानां लेशेनाऽपि प्रतीयते। श्लेषभङ्गीगतो योऽर्थो लेशगण्डः स उच्यते॥

(२) यहाँ 'पताकास्थानक' भी है। जैसाकि साहित्य दर्पण में कहा भी गया है:—वचः सातिशयश्लिष्टं नानाबन्धसमन्वितम्। पताकास्थानकमुद्दिष्टम्'''॥

छन्दः—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" छन्द है। लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौ गः"॥

व्याकरण—स्वस्थाः=स्वः + स्थाः=स्वस्थाः—यहाँ 'स्वः' के विसर्ग का "खर्परेशरिवा विसर्गलोपो वक्तव्यः" इस वार्तिक से लोप हो जाता है।

समास—निर्वाणवैरदहनाः=निर्वाणः वैरमेव दहनः यैः (येषां) ते रक्तप्रसाधितभुवः=रक्तेभ्यः सानुरागेभ्यः प्रसाधिता दत्ता भूः यैः ते। अथ च—रक्तेन रुधिरेण प्रसाधिता अलङ्कृता भूः यैस्ते। क्षतविग्रहाः=क्षतः अन्तं गतः विग्रहः युद्धं येषां ते। पक्षे—क्षता जातव्रणा विग्रहा देहाः येषां ते।

टिप्पणियाँ—प्रशमात्=शान्त हो जाने से, विनष्ट हो जाने से। निर्वाणवैरदहनाः=शान्त हो गयी है शत्रुतारूपी अग्नि जिनकी ऐसे। पक्ष में—बुझ गयी है शत्रुतारूपी अग्नि जिनकी ऐसे। रक्तप्रसाधितभुवः=अपने स्नेह के साथ दे दी है पाण्डवों की भूमि जिन्होंने ऐसे। अथवा—अपने रक्त (खून) से पृथ्वी को सुशोभित किया है जिन्होंने—ऐसे। क्षतविग्रहाः=समाप्त हो गया है युद्ध जिनका ऐसे। अथवा—क्षत—विक्षत हो गये हैं शरीर जिनके, ऐसे। स्वस्थाः=स्वस्थ, प्रसन्नचित्त, सुखी। अथवा—मरने के पश्चात् स्वर्गलोक में स्थित।

(नेपथ्ये साधिक्षेपम्)

आः दुरात्मन् ! वृथामङ्गलपाठक ! शैलूषापसद !

लाक्षागृहाऽनल-विषान्न-सभाप्रवेशैः
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।
आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान्
स्वस्था भवन्ति मयिजीवति धार्तराष्ट्राः ॥८॥

अन्वयः—लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः नः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च प्रहृत्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् आकृष्य धार्त्तराष्ट्राः मयि जीवति स्वस्थाः भवन्ति।

संस्कृत-व्याख्या—लाक्षागृहानलविषान्नसमाप्रवेशैः=लाक्षया रचितं गृहं लाक्षागृहं जतुनिर्मितं भवनम्, विषेण मिश्रितं अन्नं विषान्नम्—गरलमिश्रित भोज्यम्, सभायां प्रवेशः सभाप्रवेशः—समितिप्रवेशः—समितौ कपटद्यूतखेलनमिति यावत्, लाक्षागृहानलश्च विषान्नञ्च सभाप्रवेशश्चेति लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशाः तैः=जतुगृहाग्निविषलड्डुकंकपटद्यूतादिभिः, नः=अस्मान्; प्राणेषु=असुषु (जतुगृहाग्निना विषान्नेन प्राणेषु), (सभाप्रवेशेन च—) वित्तनिचयेषु=नः धनसंचयेषु च, (प्राणावच्छेदेन धनावच्छेदेन चेत्यर्थः); प्रहृत्य=प्रहारं कृत्वा, पाण्डववधूपरिधानकेशान्=(परिधीयते यत् परिधानम्—वस्त्रम्) पाण्डवानां या वधूः तस्याः यत्परिधानञ्च केशाश्च—पाण्डववधूपरि-

धानकेशाः, तान्–पाण्डववधूद्रौपदीपरिधानीयवसनकेशान्, आकृष्य=अभिमृष्य–तेषामाकर्षणं कृत्वा, धार्त्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्रपुत्राः दुर्योधनादयः, मयि=भीमे, जीवति=प्राणान् धारयति सति, स्वस्थाः=सुखिनः, भवन्ति किम्=भविष्यन्ति किम्–नैव भविष्यन्तीत्यर्थः। मयि जीवति तेषां स्वस्थता सुदुर्लभा–इति काक्वा व्यज्यते। दुर्योधनादयः कौरवाः कथमपि स्वस्थाः न भविष्यन्तीति भावः।

हिन्दी-अनुवाद—(पर्दे के पिछले भाग में–तिरस्कारपूर्ण डाट के साथ) ओ दुष्ट ! निरर्थक मङ्गलपाठ करने वाले ! नीच नट ! लाक्षागृहानलविषान्न-सभाप्रवेशैः=लाक्षा (लाख-निर्मित) गृह में आग, विषयुक्त अन्न, सभा में प्रवेश द्वारा, नः=हमारे, प्राणेषु=प्राणों, च=तथा, वित्तनिचयेषु=धन पर प्रहृत्य=प्रहार करके, पाण्डववधूपरिधानकेशान्=पाण्डवों की वधू (द्रौपदी) के वस्त्र तथा केशों को, आकृष्य=खींचकर, धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्र के पुत्र, मयि=मुझ (भीम) के, जीवति=जीवित रहने पर, स्वस्थः=स्वस्थ-सुखी, भवन्ति=होंगे क्या ? कदापि सुखी नहीं हो सकते हैं।

भावार्थ –जिन धृतराष्ट्र के पुत्रों (कौरवों ने) लाक्षागृह में आग लगा कर, जहरमिश्रितलड्डुओ आदि को खिलाकर हमारे प्राणों पर आघात किया है, जिन्होंने जुआ खेलकर हमारी सम्पूर्ण सम्पति को छीन लिया है, जिन्होंने (मुझ) पाण्डवों की स्त्री द्रौपदी के वस्त्र तथा केशों को भरी सभा में खींचा है, वे धृतराष्ट्र के पुत्र क्या मेरे जीवित रहते कभी सुखपूर्वक रह सकते हैं ? अर्थात् मेरे जीवित रहते ये कभी भी सुखी अथवा स्वस्थ नहीं रह सकते हैं।

अलङ्कार—इसमें काकु-वक्रोक्ति अलङ्कार है।

छन्द—इसमें "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः=लाक्षागृहानलश्च विषान्नं च सभाप्रवेशश्चेति लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशाः (द्वन्द्वसमास)—तैः। पाण्डववधूपरिधानकेशान्=पाण्डवानां वधू (तत्पुरुष) पाण्डववधूः, तस्याः परिधानं च केशाश्च (तत्पुरुष)–इति–पाण्डववधूपरिधानकेशाः, तान्।

टिप्पणियाँ—साधिक्षेपम्=तिरस्कार पूर्ण डाट के साथ अथवा तर्जना के साथ। शैलूषापसद=शैलूष अर्थात् नट और उनमें नटों में भी अपसद अर्थात् नीच अधम अथवा नीच नट।

विशेष—भीम ने जब यह सुना कि दुर्योधन आदि कौरव सुखी व स्वस्थ रहें तो उनका हृदय क्रोध और ईर्ष्या की भावनाओं से भर गया और उन्होंने कहा कि ऐसे नीच तथा दुष्ट पुरुष कि जिन्होंने हम लोगों को समाप्त करने के लिए क्या-क्या नहीं किया ? (लाक्षागृह में अग्नि सम्बन्धी षडयन्त्र, विषयुक्त अन्न खिलाने का षडयन्त्र और जुये द्वारा सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण करने सम्बन्धी षडयन्त्र आदि उन लोगों ने रचे। भरी सभा में हम लोगों की स्त्री द्रौपदी के वस्त्र तथा केशों को खिचवाया गया आदि-आदि) तब ऐसे कुकृत्यों को करने वाले व्यक्ति मेरे जीते रहते स्वस्थ अथवा सुखी कैसे रह सकते हैं। भीम के कहने का तात्पर्य यह है कि हम पाण्डवों के जीवित रहते कौरवों का सुखी अथवा स्वस्थ रहना किसी भी दशा में संभव नहीं है।

(सूत्रधारपारिपार्श्विकावाकर्णयतः)

पारिपार्श्विकः—भाव ! कुत एतत् ?

सूत्रधारः—(पृष्ठतो विलोक्य) अये ! कथमयं वासुदेवगमनात्कुरुसन्धानममृष्यमाणः पृथुललाटतटघटितविकटभ्रकुटिना दृष्टिपातेनाऽऽपिबन्निव नः सर्वान् सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेन इत एवाभिवर्तते। तन्न युक्तमस्य पुरतः स्थातुम्। तदित आवामन्यत्र गच्छावः।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति प्रस्तावना ॥

(सूत्रधार और पारिपार्श्विक दोनों सुनते हैं।)

पारिपार्श्विक—श्रीमन् ! यह ध्वनि कहाँ से आ रही है ?

सूत्रधार—(पीछे की ओर देखकर) अरे, भगवान् कृष्ण के जाने से कौरवों के साथ होने वाली सन्धि को सहन न करते हुए, सहदेव से अनुगमन किए जाते हुए, यह क्रुद्ध भीमसेन, विशाल मस्तक पर तनी हुई भयंकर भृकुटि वाले दृष्टिपात से हम सभी को पीते हुए से इधर ही आ रहे हैं। अतः इनके समक्ष खड़ा होना ठीक नहीं है। तो हम दोनों यहाँ से कहीं अन्यत्र चलें।

(ऐसा कहकर दोनों चले जाते हैं ।)

।। प्रस्तावना समाप्त हुई ।।

टिप्पणियां—वासुदेवगमनात्=कृष्ण के जाने से । कुरुसन्धानम्=कुरुभिः कौरवैः सह सन्धानम्—सन्धिन् कौरवों के साथ सन्धि को । अमृष्यमाणः=सहन न करते हुए । पृथुललाटतटघटितविकटभ्रकुटिना=पृथुविस्तृतं यत् ललाटतटम्—मस्तकम् तत्रघटिता रचिता या विकटा-कुटिला भृकुटिः भ्रूभागः यस्मिन् तेन । अर्थात् ("श्रीकृष्ण दूत बनकर सन्धि करते हेतु कौरवों के पास गये हैं" यह ज्ञातकर) अप्रसन्न होकर अपनी भौओं को मस्तक के कोने तक चढ़ाते हुए । दृष्टिपातेन=दृष्टिपात से । नः सर्वान्=हम सभी को । आपिबन्निव=पीते हुए से—भाव यह है कि क्रोधित भीमसेन भीषण मुख बनाकर हम लोगों की ओर इस भाँति घूर रहे हैं कि मानो हम सभी को खा जाना चाहते हैं । अभिवर्तते=आ रहे हैं । इतः=इस स्थान से । अन्यत्र=किसी अन्य स्थान पर ।

प्रस्तावना—प्रस्तावना को ही दूसरे शब्दों में 'आमुख' भी कहा जाता है । प्रस्तावना द्वारा दर्शकों को नाटककार तथा नाटक के नाम आदि से परिचित कराया जाता है । इसके साथ ही पात्रों को रङ्गमञ्च पर लाना भी प्रस्तावना का उद्देश्य हुआ करता है । नाट्यशास्त्र में इसका लक्षण इस प्रकार किया गया है:—

सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ।
नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
आमुखं नाम तस्यैव सैव प्रस्तावना मता ।।

(ततः प्रविशति सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेनः)

भीमसेनः—'आः दुरात्मन् ! वृथामङ्गलपाठक ! शैलूषापसद !
("लाक्षागृहानल·······(श्लोक सं० ८) पुनः पठति) ।

सहदेवः—(सानुनयम्) आर्य ! मर्षय मर्षय । अनुमतमेव नो भरतपुत्रस्यास्यवचनम् । पश्य—(निर्वाणवैरदहना श्लो० सं० ७) इति पठित्वाऽन्यथाऽभिनयति) ।

भीमसेनः—(सोपालम्भम्) न ललु न खल्वमङ्गलानि चिन्तयितुमर्हन्ति भवन्तः कौरवाणाम्। सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम्।

सहदेवः—(सरोषम्) आर्य!

धृतराष्ट्रस्य तनयान्कृतवैरान्पदे पदे।
राजा न चेन्निषेद्धा स्यात्कः क्षमेत तवानुजः ॥९॥

(तदनन्तर 'सहदेव जिनका अनुगमन कर रहे हैं' ऐसे क्रोधित भीमसेन प्रवेश करते हैं।)

भीमसेन—आह, दुष्ट! निरर्थक मङ्गलपाठ करने वाले! नीच नट! ("लाक्षगृहानल"—इत्यादि श्लोक (१।८) पुनः पढ़ते हैं।)

सहदेव—(नम्रतापूर्वक मनाते हुए) आर्य! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये! इस नट का वचन हमारे अनुकूल ही है। देखिये—("निर्वाणवैरदहना," इत्यादि १।७ श्लोक को पढ़कर दूसरे ही प्रकार का अभिनय करते हैं कि जिससे दूसरे ही प्रकार के अर्थ की प्रतीति होती है।)

भीमसेन—(उलाहना देते हुए) नहीं, नहीं, आप लोग कोरवों का अमङ्गल नहीं सोच सकते हैं। आपके वे (दुर्योधन आदि) भाई सन्धि करने के योग्य हैं।

सहदेव—(बड़े क्रोध के साथ) आर्य!

अन्वयः—चेत, राजा निषेद्धा न स्यात्, (तदा) पदे पदे कृतवैरान् धृतराष्ट्रस्य तनयान् कः तवानुजः क्षमेत।

संस्कृत-व्याख्या—चेत्=यदि, राजा=महाराजो युधिष्ठिरः, निषेद्धा=निषेधकः, न स्यात् न=भवेत्, (तदा), पदे-पदे=प्रतिस्थानम्, कृतवैरान्=कृतं वैरं विद्वेषः यैस्ते—तान्—अस्मासु प्रदर्शितविरोधानित्यर्थः, धृतराष्ट्रस्य=कुरुराजस्य, तनयान्=पुत्रान् दुर्योधनादीन्, कः, तव=भवतः, अनुजः=कनिष्ठो भ्राता, क्षमेत=सहेत, 'न कोऽपिसहेत'=इत्यर्थः। युधिष्ठिरेणाऽननुमता एवं वयं शत्रुकृतानपराधान्सहामहे, न तु तदनुरागादित्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद— चेत्=यदि, राजा=महाराज युधिष्ठिर, निषेद्धा=रोकने वाले, न स्यात्=न हों, (तदा=तो), पदे-पदे=पग-पग पर, कृतवैरान्=शत्रुता करने वाले, धृतराष्ट्रस्य=धृतराष्ट्र के, तनयान्=पुत्रों को, कः=कौन, तव-अनुजः=आपका छोटा भाई, क्षमेत=सहन करे-अर्थात् कोई भी सहन नहीं करेगा।

भावार्थ—यदि महाराज युधिष्ठिर रोकने वाले न हों तो (अर्थात् यदि बड़े भाई युधिष्ठिर न रोकें तो) पग-पग पर शत्रुता करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्रों को कौनसा आपका छोटा भाई क्षमा करे, अर्थात् कोई भी उन्हें क्षमा नहीं कर सकता है।

अलङ्कारः—उक्त छन्द में "काव्यलिङ्ग" नामक अलङ्कार है।

छन्दः—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है। लक्षण:—"युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्"।

समासः—कृतवैरान्=कृतं वैरं यैः ते कृतवैराः तान्। अनुजः=अनु पश्चात् जायते-इति-अनुजः।

टिप्पणियाँ—आर्य! छोटे व्यक्ति अपने से बड़ों अथवा पूज्य-जनों को 'आर्य' कहा करते हैं। भरतपुत्र=भरतमुनि नाटकों के प्रवर्त्तक हैं। इसी कारण नाटक का अभिनय करने वाले 'भरतपुत्र' कहे गये हैं। निषेद्धा=रोकने वाले-मना करने वाले। पदे-पदे=स्थान-स्थान पर, पग-पग पर। कः तव अनुजः क्षमेत्=कोई आपका लघुभ्राता सहन नहीं करे। तात्पर्य यह है कि यदि राजा युधिष्ठिर (हमारे सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर) द्वारा हम लोगों को रोका न गया होता तो धृतराष्ट्र के पुत्रों को, कि जिन्होंने पग-पग पर सर्वदा हमारा विरोध किया है, आपके छोटे भाई कभी भी क्षमा नहीं कर सकते थे।

भीमसेनः—(सरोषम्) एवमिदम्। अतएव अहमद्यप्रभृति भिन्नो भवद्भ्यः। पश्य—

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्।

जरासन्धस्योरःस्थलमिव विरूढं पुनरपि
क्रुद्धा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत ॥१०॥

भीमसेन—(क्रोध के साथ) यह ऐसा ही है (कि जैसा तुम करते हो)। इसीलिए मैं आज से आप लोगों से अलग होता हूँ। देखो—

अन्वयः—ममशिशोः एव कुरुभिः यत् वैरं खलु प्रवृद्धम् तत्र आर्यः हेतुः न भवति, किरीटी (न भवति), युवां च (न भवतः)। जरा सन्धस्य उरः स्थलं इव पुनः अपि विरुद्धं सन्धिं भीमः क्रुधा विघटयति, यूयं घटयत।

संस्कृत व्याख्या—मम=भीमसेनस्य, शिशोः एव=बाल्यकालादेव. यत्, वैरम्=विरोधः शत्रुत्वं वा, खलु=निश्चयेन, प्रवृद्धम्=प्ररूढम्—वृद्धिगतम्, तत्र=तस्मिन् प्ररूढे वैरे, आर्यः=मान्यो ज्येष्ठभ्राता युधिष्ठिरः, हेतुः=कारणम्, न भवति=न जायते, किरीटी=अर्जुनः (हेतुः), न भवति, च, युवाम्=नकुल-सहदेवावपि (हेतू, न भवतः। (स्वपौरुषबलेन एव एतद् वैरं मया कृतं न तु युष्माकं बलेन—इत्यभिप्रायः)। जरासन्धस्य=पुराणप्रसिद्धस्य मगधराजस्य जरासन्धस्य, उरःस्थलमिव=वक्षस्थलमिव, पुनः अपि=मुहुः अपि, विरूढम्=दृढीभूतम्—जातञ्च, सन्धिम्=सन्धानम्—मैत्रीं वा सन्धिबन्धनं वा भीमः=अहमितिभावः (अत्र भीमपदोपादानेनाहङ्कारो प्रकटितः), क्रुधा=क्रोधेन, विघटयति—विलुम्पति—विनाशयति, यूयम्=युधिष्ठिरादयः, घटयत=योजयत—तैः सह सन्धिं कुरुत। (जन्मसमये जरासन्धस्य शरीरं द्विधा विभक्तमासीत्। जरा नाम्न्या राक्षस्या तत् पुनर्युक्तं कृतम्। युद्धकाले कृष्णेनेङ्गितमासाद्य भीमः तदेव सन्धिस्थलं भङ्क्त्या तं जघानेति पुराणप्रसिद्धिः)।

हिन्दी-अनुवाद—मम=मुझ भीमसेन का, शिशोः एव=बाल्यकाल से ही, यत्=जो, वैरम्=वैर, खलु=निश्चित रूप से, प्रवृद्धम्=बढ़ा हुआ है, तत्र=उसमें, आर्यः=आर्य युधिष्ठिर, हेतुः=कारण, न=नहीं, भवति=होते हैं, किरीटी=अर्जुन भी (कारण) न=नहीं हैं, च=और, युवाम्=तुम दोनों (नकुल और सहदेव) भी, (कारण), न=नहीं हो (भीमसेन के कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने अपने ही पौरुष के बल पर कौरवों के साथ वैर ठाना है, आप लोगों के बल

पर नहीं ।) । जरासन्धस्य=जरासन्ध नामक राजा के, उरःस्थलम्=वक्षस्थल के, इव=समान, पुनः अपि=फिर से, विरूढम्=जुड़ी हुयी, सन्धिम्=सन्धि को, भीमः=भीम, क्रुधा=क्रोध के साथ, विघटयति=तोड़ रहा है । यूयम्=तुम लोग, घटयत=जोड़ो ।

भावार्थ—मुझ भीम की बाल्यावस्था से ही मेरा कौरवों के साथ जो वैर बढ़ता रहा है, निश्चय ही उस(वैर)में न तो महाराज युधिष्ठिर ही कारण है और न अर्जुन ही कारण हैं और न तुम दोनों (नकुल, सहदेव)ही कारण हो। (भीम के कहने का अभिप्राय यह है कि बचपन से ही कौरवों के साथ मैंने जिस शत्रुता को बढ़ाया है, वह मैंने अपनी शक्ति के बल पर ही किया है—आप लोगों के बल पर नहीं) । राजा जरासन्ध के वक्षस्थल के समान फिर से जुड़ी हुई सन्धि को भीम क्रोध के साथ तोड़ रहा है, तुम लोग जोड़ो । (कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे मैंने जरासन्ध की छाती की सन्धि को चीरकर पुनः दो भागों में विभक्त कर दिया था उसी प्रकार क्रोध से मैं श्री कृष्ण द्वारा की गयी इस सन्धि को भी तोड़ दूंगा । तुम लोग चाहे सन्धि करते रहो) ।

अलङ्कारः—इस छन्द में 'उपमा' अलङ्कार है ।

छन्दः—उक्त पद्य में—'शिखरिणी' नामक छन्द है । लक्षणः—"रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी" ।

टिप्पणियाँः—अद्यप्रभृति=आज से । यहाँ 'प्रभृति' शब्द 'आरम्भ' का ही पर्यायवाचक है । भिन्नः=पृथक । तत्र=उस (शत्रुता) में । आर्यः=आर्य युधिष्ठिर । हेतुः=कारण । युवाम्=माद्री के पुत्र तुम दोनों (नकुल-और सहदेव । जरासन्धस्य=राजा जरासन्ध के । उरःस्थलम्=वक्षस्थल (के समान) । जरासन्ध नामक राजा जन्म के समय सिर से पैर तक दो भागों में विभक्त था । उसकी इस दशा को देखकर 'जरा' नाम की एक राक्षसी ने उसकी सन्धियों को जोड़ दिया था । इस ही कारण उसका नाम 'जरासन्ध' पड़ गया था । इस राजा के साथ भीम का भीषण संग्राम हुआ था । युद्ध में भीम इसको पराजित नहीं कर पा रहे थे । यह समझकर श्रीकृष्ण ने भीम को संकेत द्वारा कहा कि इसके पैर पकड़कर बीचो-बीच से इसे फाड़ कर दो

भागों में विभक्त कर दो। भीम ने वैसा ही किया भी। इस भाँति भीम ने उसकी सन्धि (शरीर के जोड़ों को कि जिनको जरा नामक राक्षसी ने जोड़कर एक कर दिया था) को चीरकर पुनः दो भागों में उसे विभक्त कर-मारा था। भीम का कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे मैंने जरा नामक राक्षसी द्वारा जोड़ी गयी राजा जरासन्ध की सन्धि [जोड़] को तोड़कर उसे मारा था वैसे ही मैं श्रीकृष्ण द्वारा कौरवों के साथ की गयी सन्धि को पुनः भग्न कर दूंगा। तदनन्तर युद्ध कर उनको मारूँगा। **सन्धिं घटयत**=[आपलोग कौरवों के साथ] सन्धि को जोड़िये अर्थात् सन्धि कीजिये। मैं उसे भंग कर दूंगा।

सहदेवः—(सानुनयम्) आर्य! एवमतिसम्भृतक्रोधेषु युष्मासु कदाचित्खिद्यते गुरुः।

भीमसेनः—किं नाम कदाचित् खिद्यते गुरुः? गुरुः खेदमपि जानाति? पश्य—

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां
वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः।
विराटस्याऽऽवासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं
गुरुः खेदं, खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥११॥

सहदेव—(अनुनय-विनयपूर्वक) आर्य! आप द्वारा इस प्रकार अत्यधिक क्रुद्ध होने पर बड़े भाई (युधिष्ठिर) कहीं दुखी न होवें।

भीमसेन—क्या बड़े भाई दुखी होते हैं? क्या बड़े भाई को दुखी (क्रोध के साथ खेद युक्त होता) होना भी आता है?

अन्वयः—नृपसदसि तथाभूतां पाञ्चालतनयां दृष्ट्वा, वल्कलधरैः (अस्माभिः) व्याधैः सार्धं वने सुचिरं उषितं (दृष्ट्वा), विराटस्य आवासे अनुचितारम्भनिभृतं स्थितं (दृष्ट्वा), मयि खिन्ने (सति) अद्य अपि गुरुः कुरुषु खेदं न भजति (अथवा-अद्य अपि गुरुः खिन्ने मयि खेदं भजति, कुरुषु (खेदं) न भजति।

संस्कृत-व्याख्या—नृपसदसि=राजसभायाम्, तथाभूताम्=तादृशीम्—कृतकेशवस्त्राकर्षणाम्—ऋतुमतीम्, नग्नप्रायाञ्च, पाञ्चालतनयाम्=द्रौपदीम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, वल्कलधरैः=वृक्षत्वग्धरैः (अस्माभिः), व्याधैः=मृगयुभिः, सार्धम्=साकम्, वने=कानने, सुचिरम्=चिरकालपर्यन्तम्—यावद्द्वादशवर्षाणीत्यर्थः, उषितम्=निवासम्, (दृष्ट्वा=अवलोक्य), विराटस्य=तन्नाम्नः राज्ञः, आवासे=भवने, अनुचितारम्भनिभृतम्=अनुचितैः—अयोग्यैः (द्यूतसाहाय्यपाचकाद्यनुष्ठानैरित्यर्थः=कङ्केति नाम्ना युधिष्ठिरो द्यूतसाहाय्यम्, सूदेति नाम्ना भीमः पाचनम्, बृहन्नलेति नाम्नाऽर्जुनः गीतादिशिक्षणम्, ग्रन्थिकेति संज्ञया नकुलोऽश्वपालनम्, अरिष्टनेमीति नाम्ना सहदेवो गोरक्षणं तथा सैरन्ध्रीति संज्ञया द्रौपदी विराटपत्न्याः सुदेष्णायाः सेवनं चाकरोदिति निर्देशः) आरम्भैः कार्यैः निभृतं गुप्तं यथा स्यात्तथा—एवं निकृष्टकर्मभिः आत्मानं गोपयित्वा, स्थितम्=निवसनम् दृष्ट्वा, च, मयि=स्वानुजे भीमे, खिन्ने=क्रुद्धे सति, अद्यापि=इदानीमपि, गुरुः=ज्येष्ठः भ्राता युधिष्ठिरः, कुरुषु=कौरवेषु=खेदम्=दुःखम्—क्रोधं वा, न भजति=न करोति। अनेन ज्ञायते यत्स खेदमपि न जानाति। अथवा—अद्यापि गुरुः खिन्ने मयि खेदं भजति, न तु कुरुषु—इति काकुः। "मयि, न योग्यः खेदः, कुरुषु तु योग्यः"—इति काक्वा ध्वन्यते।

हिन्दी-अनुवाद—नृपसदसि=राजसभा में, तथाभूताम्=उस प्रकार की हुयी [दुर्दशा में पड़ी हुयी], पाञ्चालतनयाम्=पाञ्चाल देश के राजा की पुत्री द्रौपदी को, दृष्ट्वा=देखकर, वल्कलधरैः=वल्कल (पेड़ की छाल के) वस्त्र को धारण किये हुये, (अस्माभिः=हम लोगों के द्वारा), व्याधैः=बहेलियों के, सार्धम्=साथ, वने=वन में, सुचिरम्=बहुत दिनों तक, उषितम्=किये गये निवास को, दृष्ट्वा=देखकर, (तथा), विराटस्य=राजा विराट के, आवासे=भवन में, अनुचितारम्भनिभृतम्=अनुचित कार्यों के द्वारा चुपचाप (अर्थात् अपने को छिपाकर), स्थितम्=किये गये निवास को, दृष्ट्वा=देखकर, मयि=मुझ भीम के, खिन्नेसति=क्रोधित होने पर, अद्य=आज, अपि=भी, गुरु=बड़े भ्राता युधिष्ठिर,कुरुषु=कौरवों पर, खेदम्=क्रोध, न भजति=नहीं कर रहे हैं। (अथवा—अद्य=आज, अपि=भी, गुरुः=बड़े भ्राता युधिष्ठिर, खिन्ने=क्रुद्ध,

मयि=मेरे ऊपर, खेदम्=क्रोध, भजति=कर रहे हैं, न तु कुरुषु=न कि कौरवों पर। कहने का अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त अपमानजनक अनुभूतियों के कारण बड़े भाई युधिष्ठिर को कौरवों पर क्रोधित होना चाहिये था, न कि मुझ पर।

भावार्थ--दुर्योधन की राजसभा में जब ऋतुमती द्रौपदी के केश खींचे गयें, उसके वस्त्रों को खींचकर उसे नंगा करने का प्रयास किया गया, तब इस दृश्य को देखकर बड़े भाई युधिष्ठिर को न तो क्रोध ही आया और न वे दुःखी ही हुये। पुनः जब हम लोग वल्कल वस्त्र धारणकर वन में १२ वर्षों तक बहेलियों के साथ निवास कर रहे थे तब भी युधिष्ठिर को कौरवों पर क्रोध अथवा दुःख नहीं हुआ। इसी भाँति जब हम लोग राजा विराट के महल में नृत्य तथा गान करने, रोटी बनाने, गौ चराने आदि निकृष्ट कर्मों के करते हुये किसी भाँति लुक-छिपकर अपने दिन व्यतीत कर रहे थे तो उसे देखकर युधिष्ठिर को कौरवों पर न तो कभी क्रोध ही आया और न दुःख ही हुआ। किन्तु आज दुखी मुझ भीम पर उनको खेद हो रहा है, यह बड़ी ही दुःखद बात है। उन्हें कम से कम आज तो कौरवों पर खेद तथा क्रोध प्रकट करना चाहिये था न कि दुःखी मुझ पर।

अलङ्कार—उक्त पद्य में "समुच्चय" नामक अलङ्कार है।

छन्द—उक्त पद्य में "शिखरिणी" छन्द है।

समास—पाञ्चालतनयाम्=पञ्चालानां राजा पाञ्चालः, तस्य तनयाम् (ष० तत्पु०)। अनुचितारम्भनिभृतम्=अनुचितैः आरम्भैः निभृतम् इति।

व्याकरण—उषितम्=वस्+क्त ("नपुंसके भावेक्तः" से 'क्त' प्रत्यय होता है)।

टिप्पणियां--नृपसदसि=(दुर्योधन की) राजसभा में। तथाभूताम्=भरी राजसभा में दुर्योधन के आदेश से दुःशासन द्वारा द्रौपदी के वस्त्र तथा केश खींचे गये थे। "तथाभूताम्" पद द्वारा द्रौपदी के इस ही अपमान की ओर संकेत किया गया है। वने सुचिरं उषितम्=जुए में पराजित होने के उपरान्त पाण्डवों ने १२ वर्ष तक मुनियों के समान निवास किया था।

विराटस्य आवासे स्थितम्—जुए में यह शर्त तय की गयी थी कि जो पार्टी जुये में पराजित होगी वह १२ वर्ष तक वन में निवास करेगी तथा तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास करेगी। अपने इस अज्ञातवास के समय युधिष्ठिर आदि सभी पाण्डव तथा द्रौपदी को क्रमशः जुए में सहायक, रसोइया, नृत्य-गीतादि शिक्षक, अश्वपालक तथा चरवाहा और सेविका आदि के रूप में कार्य करना पड़ा था। यहाँ इन्हीं बातों की ओर संकेत किया गया है। पाँचों पाण्डवों के नाम क्रमशः ये थे—कङ्क, सूद, वृहन्नला, ग्रन्थिक तथा अरिष्टनेमि। द्रौपदी का नाम सैरन्ध्री था।

तत्सहदेव निवर्तस्व। एवं चाऽतिचिरप्रवृद्धामर्षोद्दीपितस्य भीमस्य वचनाद्विज्ञापय राजानम्।

सहदेवः—आर्य ! किमिति ?

भीमसेनः—एवं विज्ञापय—

युष्मच्छासनलङ्घनांहसि मया मग्नेन नाम स्थितं,
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि।
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥१२॥

अतएव सहदेव ! तुम लौट जाओ और बहुत दिनों से बढ़े हुये क्रोध से उद्दीप्त भीमसेन के वचन के अनुसार (अर्थात मेरे कथनानुसार) महाराज (युधिष्ठिर) से ऐसा कहो।

सहदेव—आर्य ! क्या (कहूँ) ?

भीमसेन—ऐसा कहो—

अन्वयः—मया युष्मत् शासनलङ्घनांहसि मग्नेन स्थितं नाम, स्थितिमतां अनुजानां अपि मध्ये विगर्हणा प्राप्ता नाम, क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य कौरवान् उच्छिन्दतः मम (त्वम्) अद्य एकं दिवसं गुरुः न असि, अहं तव विधेयः न (अस्मि)।

संस्कृत-व्याख्या—कौरवाणां विनाशं प्रति स्वकीयां दृढां प्रतिज्ञां सन्दिशन्नाह—मया=भीमेन, युष्मत्-शासनलङ्घनांहसि=युष्काकं—भवतां-शासनं-आज्ञा तस्य यत् लङ्घनम्-अतिक्रमणम् तदेव अंहः—पापं तस्मिन् युष्मच्छासन-लङ्घनांहसि=भवदाज्ञोल्लङ्घनमहापातके, मग्नेन=निमग्नेन, स्थितम्=अवस्थितम् नाम=इति घोषणायाम्, किञ्च, स्थितिमताम्=स्थितिः—मर्यादा ('कर्त्तव्य-पालनरूपा मर्यादा'—इत्यर्थः) अस्ति येषां ते स्थितिमन्तः तेषाम्—स्थितिमताम् मर्यादापालकानाम्—धैर्यशालिनाम्—विनीतानाम्, अनुजानाम्=लघुभ्रातॄणाम्, अपि, मध्ये, विगर्हणा=निन्दा, प्राप्ता=लब्धा, नामेति घोषणे—सम्भावनायां वा ("नाम—प्राकाश्यसम्भाव्योपगमे कुत्सने तथा" इतिविश्वः), क्रोधोल्लासित-शोणिताऽरुणगदस्य=क्रोधेन-कोपेन (अपमानजनितेन कोपेन) उल्लासिता कौरवान् प्रहर्त्तुमिच्छता शोणितेन—रक्तेन अरुणा—रक्तवर्णा च गदा येन स तस्य—रक्तदिग्धां गदांश्च भयतः—इत्यर्थः, कौरवान्=कुरुपुत्रान् दुर्योधिनादीन्, उच्छिन्दतः=विनाशयतः, मम भीमस्य (त्वमितिशेषः), अद्य=सम्प्रति—अस्मिन्नहनि, एकं दिवसम्=एकं दिनम्, गुरुः=ज्येष्ठो भ्राता, न असि=न भवसि, अहम्=अहमपि च, तव=भवतः, विधेयः=अनुशासनीयः, न अस्मि=नैव भवामि। एकं दिनं यावत् आवयोर्न कोऽपि सम्बन्धः, यथेच्छमहं भवदाज्ञा-मयाद्दस्य शुत्रुरक्तारुणां गदां चालयन् कौरवान् निहन्मि—इत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद—मया=मैं, युष्मच्छासनलङ्घनांहसि=आपकी आज्ञा के उल्लंघन रूप पाप में, मग्नेन स्थितं नाम=भले ही डूब गया हूँ। स्थितिमताम्=मर्यादा का पालन करने वाले, अनुजानाम्=छोटे भाइयों के, अपि=भी, मध्ये=मध्य में, विगर्हणा=निन्दा, प्राप्ता नाम=भलेही प्राप्त कर ली है, क्रोधोल्लसित-शोणितारुणगदस्य—क्रोध के साथ उठाई गयी तथा रक्त से लाल गदा वाले, कौरवान्=कौरवों को, उच्छिन्दतः=उखाड़ फेंकने वाले, मम=मेरे (त्वम्=आप), अद्य=आज, एकम्=एक, दिवसम्=दिन के लिए, गुरुः=बड़े भाई, न=नहीं, असि=हो,। और, अहम्=मैं, तव=आपका, विधेयः=आज्ञाकारी, न अस्मि=नहीं हूँ।

भावार्थ—मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने के पापरूप जल में डूब रहा हूँ। बड़े भाई की आज्ञा का पालन करने वाले सब भाइयों में मध्य भी

मैं अविनय के कारण निन्दित हो रहा हूँ। किन्तु मैं एक ही दिन के अन्दर क्रोध के साथ उठाई गयी एवं रक्त से लाल वर्ण की अपनी गदा से कौरवों का नाश कर दूंगा। केवल इस एक दिन के लिए आप मेरे बड़े भाई नहीं हैं और मैं आपका आज्ञाकारी छोटा भाई नहीं। भीम के कहने का तात्पर्य यह है कि आप सदैव मेरे अविनय के लिए मुझे क्षमा प्रदान करते रहे हैं। आज एक दिन के लिये पुनः जो मेरे द्वारा धृष्टता की जा रही है, उसके लिए भी आप मुझे क्षमा करें। मैं एक ही दिन में कौरवों का नाश कर दूँगा। ऐसा करने से सभी के सम्पूर्ण क्लेश ही नष्ट हो जावंगे तथा हम सभी सुख और शान्ति की अनुभूति करेंगे।

(इत्युद्धतं परिक्रामति।)

(ऐसा कहकर (भीमसेन) बड़ी अकड़ के साथ चलता है।)

विशेष—यहाँ 'परिकर' नामक सन्धि स्थान है। जैसा कि नाट्यशास्त्र में वर्णित भी हैः—"कार्याऽकार्यस्य हेतूनामुक्तिः परिकरो मतः"। यहाँ कौरव विनाश रूप कार्य का हेतु गदा का उठाना है और निन्दाप्राप्तिरूप अकार्य का कारण (हेतु) आज्ञा का उल्लंघन होना है। अतः कार्य एवं अकार्य के हेतुओं का कथन किये जाने से यहाँ 'परिकर' नामक सन्धि स्थान है।

छन्दः—उक्त पद में ',शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है। लक्षणः— "सूर्याश्वैयदि यः सजौसततगाः शार्दूलविक्रीडितम्"।

समासः—युष्मच्छासनलङ्घनांहसि=युष्माकं शासनम्—इति युष्मच्छासनम्—युष्मच्छासनमेव अंहः—तस्मिन्। स्थितिमताम्=स्थितिः (मर्यादा-कर्तव्य-पालनरूपा मर्यादा) अस्ति येषां ते स्थितिमन्तः तेषाम्। क्रोधोल्लासित—क्रोधेन (अपमानजनितेन कोपेनेत्यर्थः) उल्लासिता, शोणितेन अरुणा च गदा यस्य सः तस्य।

टिप्पणियां—युष्मच्छासनलङ्घनांहसि—आपकी आज्ञा का उल्लंघन किये जाने रूप पाप में। मग्नेन स्थितं नाम—भले ही डूब जाऊँ। भीमसेन के कथन का अभिप्राय यह है कि मैं भले ही आपकी आज्ञा का पालन न कर सकने के कारण पाप का भागी बनूं। स्थितिमताम्—स्थिति अर्थात् मर्यादा

का पालन करने वाले। विगर्हणा=निन्दा। प्राप्तानाम=भले ही प्राप्त होऊँ (भीमसेन के कहने का तात्पर्य यह है कि छोटे भाइयों द्वारा भले ही मुझे धिक्कारा जाय।)। उच्छिन्दतः=विनाश करते हुए। अथवा=उखाड़ फेंकते हुए। क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य=क्रोध के साथ जिस गदा को उठाया गया है तथा जो गदा रक्त के लगने के कारण रक्तरंजित भी हो रही है ऐसी गदा को धारण करने वाले—मुझ भीम के। यह विशेषण है। विधेयः=आज्ञाकारी।

सहदेवः—[तमेवानुगच्छन्नात्मगतम्] अये कथमार्यः पाञ्चाल्याश्चतुःशालं प्रति प्रस्थितः। भवतु, तावदहमत्रैव तिष्ठामि। (इति स्थितः)।

भीमसेनः—(प्रतिनिवृत्यावलोक्य च) सहदेव! गच्छ त्वं गुरुमनुवर्त्तस्व। अहमप्यायुधागारं प्रविश्यायुधसहायो भवामि।

सहदेवः—आर्य! नेदमायुधागारम्, पाञ्चाल्याश्चतुःशालमिदम्।

भीमसेनः—(सवितर्कम्) किं नाम नेदमायुधागारं पाञ्चाल्याश्चतुःशालमिदम्। (किंचिद्विहस्य सहर्षम्) आमन्त्रयितव्या मया पाञ्चाली। (सप्रणयं सहदेवं हस्ते गृहीत्वा) वत्स! आगम्यताम्। यदार्यः कुरुभिः सन्धानमिच्छन्नस्मान्पीडयति, तद्भवानपि पश्यतु।

(उभौ प्रवेशं नाटयतः, भीमसेनः सक्रोधं भूमावुपविशति।)

सहदेवः—आर्य! इदमासनमास्तीर्णम्। अत्रोपविश्य प्रतिपालयत्वार्यः कृष्णाऽऽगमनम्।

भीमसेनः—(उपविश्य) वत्स! कृष्णागमनमित्यनेनोपोद्घातेनस्मृतम्। अथ भगवान् कृष्णः केन पणेन सन्धिं कर्त्तुं सुयोधनं प्रति प्रहितः।

सहदेवः—आर्य! पञ्चभिर्ग्रामैः।

भीमसेनः—(कर्णौ पिधाय) अहह! हन्त, देवस्याऽजातशत्रोरप्ययमीदृशस्तेजोऽपकर्ष इति यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम्। (परिवर्त्य स्थित्वा तद्वत्स!। न त्वया कथितं, न च मया श्रुतम्।

यत्तदूर्जितमत्युग्रं चात्रं तेजोऽस्य भूपतेः ।
दीव्यताऽक्षैस्तदाऽनेन नूनं तदपि हारितम् ॥१३॥

सहदेव—[उन्हीं (भीमसेन) के पीछे-पीछे गमन करते हुए अपने मन में] अरे, यह क्या ? आर्य तो द्रौपदी के चौसाल (चार कमरे वाला भीतरी घर) में चले गये । अच्छा, तब तक मैं यहीं रुक जाता हूँ ।

भीमसेन—(मुड़कर और देखकर) सहदेव ! तुम जाओ और बड़े भाई युधिष्ठिर का अनुवर्त्तन (आज्ञापालन) करो । मैं भी शस्त्रागार (शस्त्रगृह) में जाकर शस्त्रों से सज्जित होता हूँ ।

सहदेव—आर्य ! यह शस्त्रागार नहीं है । यह तो द्रौपदी की चौसाल है ।

भीमसेन—(सोच-विचार कर) क्या यह शस्त्रागार नहीं है ? क्या यह द्रौपदी की चौसाल है ? (कुछ हँसकर, हर्ष के साथ) मुझे द्रौपदी से भी विदा ले लेनी चाहिये । (प्रेम के साथ सहदेव का हाथ पकड़कर) प्रिय । आओ । कौरवों के साथ सन्धि की इच्छा रखने वाले आर्य (युधिष्ठिर) हमें जो पीड़ा दे रहे हैं उसे आप भी देखें ।

(दोनों अन्दर जाते हैं । भीमसेन क्रोध के साथ भूमि पर बैठते हैं ।)

सहदेव—आर्य ! यह आसन बिछा है । यहाँ बैठकर आप द्रौपदी के आने की प्रतीक्षा करें ।

भीमसेन—(बैठकर) हे वत्स ! 'कृष्णा का आगमन' इस कथन से प्रसङ्गवश यह बात भी स्मरण हो आई है । भगवान् कृष्ण किस शर्त पर सन्धि करने के लिए दुर्योधन के समीप भेजे गये हैं ।

सहदेव—आर्य ! पाँच ग्रामों (की शर्त) के साथ । (अर्थात् केवल पाँच गाँव वापिस देने की शर्त पर) ।

भीमसेन—(कानों को ढककर अर्थात् कानों पर हाथ रखकर) अहह ! महान् कष्ट है, महाराज अजातशत्रु (युधिष्ठिर) का भी इस प्रकार का तेज क्षय (हो गया है) । इस बात को ज्ञातकर वस्तुतः मेरा हृदय काँप सा गया है । (मुख दूसरी ओर कर, खड़े होकर) तो वत्स ! (इस बात को समझ लो कि–) वह न तुमने कहा है और न मैंने सुना ।

अन्वयः—अस्य भूपतेः यत् तत् ऊर्जितं अत्युग्रं क्षात्रं तेजः (आसीत्) तत् अपि अनेन तदा द्यूतसमये अक्षैः दीव्यता नूनं हारितम् ।

संस्कृत-व्याख्या—अस्य=पंचभिः ग्रामैः सन्धिं कुर्वाणस्य चर्चाविषयभूतस्य युधिष्ठिरस्य–इत्यर्थः, भूपतेः=राज्ञः, यत् तत्=यत् जगद्विहितम्, ऊर्जितम्=बलवत्, अत्युग्रम्=अतिभयानकम्, क्षात्रम्=क्षत्रस्य सम्बंधि–क्षत्रियस्येति यावत्. तेजः=प्रतापः, आसीदितिशेषः, तप् अपि=तत् क्षात्रं तेजः अपि, अनेन=अनेन राज्ञा युधिष्ठिरेण, तदा=तस्मिन् काले, द्यूतसमये=द्यूतक्रीडनसमये, अक्षैः=पाशकैः, दीव्यता=क्रीडता, नूनम्=निश्चयेन, हारितम्=द्यूते विनाशितम् । अन्यथा कथमेवं तेजोभङ्ग–इत्यभिप्रायः ।

हिन्दी-अनुवाद—अस्य=इस, भूपतेः=राजा (युधिष्ठिर) का, यत्=जो, तत्=वह (जगत्-प्रसिद्ध), ऊर्जितम्=शक्तिशाली अत्युग्रम्=अतिप्रचण्ड, क्षात्रम् =क्षत्रिय सम्बन्धि, तेजः=प्रताप अथवा पराक्रम, आसीत्=था, तत्=वह क्षात्र तेज, अपि=भी, अनेन=इन (युधिष्ठिर) के द्वारा, तदा द्यूतसमये=तब जुआ खेलते समय, अक्षैः=पाशों से, दीव्यता=खेलते हुये, नूनम्=निश्चितरूप से, हारितम्=गँवा दिया गया ।

भावार्थ—इस राजा युधिष्ठिर का जो वह जगत्-प्रसिद्ध, शक्तिशाली, अतिप्रचण्ड, क्षात्र-तेज (बल, पराक्रम) था । उस क्षात्र तेज को भी इस राजा युधिष्ठिर ने उस जुआ खेलने के समय में ही पाशों के साथ खेलते हुये ही गँवा दिया, अथवा नष्ट कर दिया ।

छन्द—"इसमें" पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है । लक्षणः—"युजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्" ।

समास—कृष्णागमनम्=इसके दो प्रकार से समास किये जा सकते हैं तथा उनके आधार पर दो ही प्रकार के अर्थ भी किये जा सकते हैं—(१) कृष्णायाः द्रौपद्याः आगमनम्–इति-कृष्णागमनम्–अर्थात् द्रौपदी का आना (२) कृष्णस्य हरेः आगमनम्–कृष्णागमनम्–अर्थात् कृष्ण का (दुर्योधन के यहाँ से वापिस) आना । इस द्वितीय अर्थ के आधार पर ही भीम का आगे का कथन सङ्गत बैठता है । आयुधागारम्=आयुधानाम् आगारम्,

(ष० तत्पु०) **पाञ्चाल्याः**=पञ्चालस्य अपत्यं स्त्री पाञ्चाली तस्याः। **चतुःशालम्**=चतसृणाम् शालानाम् समाहारः चतुःशालम्। **सवितर्कम्**=वितर्केण चिन्तनेन सहितं सवितर्कम्। **अजातशत्रोः**=अजातः शत्रुः यस्य स तस्य। **तेजोपकर्षः**=तेजसः अपकर्षः (हीनता) (ष० तत्पु०)।

टिप्पणियाँ—**गुरुम्**=बड़े भाई युधिष्ठिर को। **आयुधसहायः**=आयुध अर्थात् शस्त्र-अस्त्र आदि ही हैं सहायक जिसके। **आयुधागारम्**=शस्त्रागार-शस्त्र-गृह। **सवितर्कम्**=चिन्तन अथवा सोच-विचार पूर्वक। **सन्धानम्**=सन्धि को। **आस्तीर्णम्**=विस्तृत, विस्तीर्ण—भूमि पर बिछा हुआ। **प्रतिपालयतु**=प्रतीक्षा करें। **उपोद्घातेन**=कथन से, प्रसङ्ग से। "उपोद्घातः उदाहारः" इत्यमरः। **पणेन**=मूल्य पर शर्त पर। "पणो वराटमाने स्यान्मूल्ये कार्षापणे ग्रहे" इति विश्वमेदिन्यौ। **प्रहितः**=भेजा गया है। **अजातशत्रोः**=जिसका कोई शत्रु ही नहीं है अर्थात् युधिष्ठिर के। **तेजोपकर्षः**=प्रताप की हीनता। 'पाँच गाँव हो प्राप्त ही जाय" इस आधार पर युधिष्ठिर की तत्परता को सुनकर उसके प्रताप के अपकर्ष का अनुमान करता है। **ऊर्जितम्**=शक्तिशाली। **क्षात्रं तेजः**=क्षत्रिय सम्बन्धी प्रताप। **अक्षैः**=पासों के साथ—"अक्षोज्ञानात्मशकटव्यवहारेषु पाशके"—इत्यमरटीका। **दीव्यता**=खेलते हुए। **हारितम्**=गवां दिया गया—नष्ट कर दिया गया।

(नेपथ्ये)

समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी। (समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणो।

सहदेवः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्यात्मगतम्) **अये! कथं याज्ञसेनी मुहुरुपचीयमानवाष्पपटलस्थगितनयना आर्यसमीपमुपसर्पति। तत्कष्टतरमापतितम्।**

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य सम्भृतम्।
तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्द्धयिष्यति॥१४॥

(नेपथ्य पर्दे के पिछले भाग में)

स्वामिनी, धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें।

सहदेव—(नेपथ्य (पर्दे) की ओर देखकर अपने आप) अरे ! क्या बार बार बढ़ते हुए अश्रुसमूह से (अर्थात् जिसके आँसू बारंबार पोंछे जा रहे हैं किन्तु फिर भी जिसकी आँखे अश्रुधारा से डबडबाई हुयी हैं ऐसी) परिपूर्ण नेत्रों वाली द्रौपदी आर्य (भीमसेन) के समीप ही आ रही है। तब तो महान् अनर्थ ही आ उपस्थित हुआ।

अन्वयः—क्रुद्धे आर्ये अद्य यत् वैद्युतमिव ज्योतिः संभृतम् तदियं कृष्णा प्रावृड् इव नूनं संवर्धयिष्यति।

संस्कृत-व्याख्या—क्रुद्धे=कुपिते, आर्ये=पूज्ये भीमे, अद्य=सम्प्रति, यत्, वैद्युतम्=विद्युत=प्रभवम्, इव=सदृशम्, ज्योतिः=तेजः, संभृतम्=समुत्पन्नम्, तत्=तज्ज्योतिः, इयम्=एषा, कृष्णा=द्रौपदी, प्रावृड्=वर्षाकालः, इव, नूनम्=निश्चयेन, संवर्द्धयिष्यति=एधयिष्यति। यथा वर्षाकालः मेघे संचितं वैद्युतं तेजो वर्धयति तथैव वाष्पपूर्णनयना द्रौपदी अपि भीमे समुत्पन्नं क्रोधरूपं तेजः वर्धयिष्यति—इत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद—क्रुद्धे=क्रोधित, आर्ये=आर्य (भीम) में, अद्य=आज, यत्=जो, वैद्युतम्=बिजली के, इव=जैसा, ज्योतिः=तेज, सम्भृतम्=सञ्चित अथवा समुत्पन्न हुआ है, तत्=उस (तेज) को, इयम्=यह, कृष्णा=द्रौपदी, प्रावृड्=वर्षाकाल के इव=समान, नूनम्=निश्चित रूप से, संवर्द्धयिष्यति=और अधिक बढ़ा देगी अथवा भड़का देगी। जैसे वर्षाऋतु मेघ में एकत्रित हुयी विद्युत सम्बन्धी तेज को और अधिक बढ़ा दिया करती है, उसी प्रकार अश्रुधारा से परिपूर्ण नेत्रोंवाली द्रौपदी भी भीमसेन के अभ्यन्तर उत्पन्न हुयी क्रोधाग्नि को और भी अधिक उद्दीप्तकर देगी अथवा भड़का देगी।

भावार्थ—क्रोधित हुये भीमसेन में आज जो बिजली जैसा तेज सञ्चित हुआ है उसको वर्षासदृश यह द्रौपदी निश्चित रूप से और भी अधिक बढ़ा देगी। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्षा के आ जाने से जैसे बादलों में संचित हुयी बिजली और भी अधिक भड़क उठती है उसी भाँति दुःखित तथा अश्रुधारा को वर्षाती हुयी इस द्रौपदी के यहाँ आ जाने से भीमसेन का समुत्पन्न क्रोध और भी अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जायेगा।

अलंकार—उक्त पद्य में "उपमा" अलंकार है।

छन्द—इसमें 'पथ्यावक्त्र' नामक छन्द है। लक्षण-पूर्ववत्।

समास—याज्ञसेनी-यज्ञसेनस्य द्रुपदस्य अपत्यं स्त्री याज्ञसेनी-द्रौपदी। उपचीयमानवाष्पपटलस्थगितनयना=उपचीयमानं-वर्द्धमानम्, यद्वाष्पस्य-अश्रुणः, पटलं-समूहः, तेन स्थगिते-आच्छादिते, नयने यस्याः सा।

टिप्पणियाँ—भट्टिनी=स्वामिनी, रानी। याज्ञसेनी=राजा यज्ञसेन-द्रुपद की पुत्री द्रौपदी। उपचीयमानवाष्पपटलस्थगितनयना=उपचीयमान-वृद्धि को प्राप्त हुये, वाष्पपटलेन-अश्रुसमूह से, स्थगिते-आच्छादित, नयने-नेत्रों वाली। सम्भृतम्=संचित हुआ है। प्रावृड्=वर्षा अथवा वर्षाऋतु।

विशेष—कष्टतरं आपतितम्=यह तो महान् अनर्थ ही आ पड़ा। सहदेव द्वारा कथित इस वाक्य का अभिप्राय यह है कि एक तो भीमसेन इस समय स्वयं ही अत्यन्त क्रुद्ध हैं। परिणामस्वरूप वे अपने बड़े भाई के आदेश को ही भङ्ग करने पर उद्यत हैं। दूसरे यह कि इसी समय जब वे द्रौपदी को रोती हुई तथा लटों को छिटकायी हुयी स्थिति में देखेंगे तब तो उनका क्रोध पूर्णरूपेण चरम अवस्था को ही पहुँच जायेगा। परिणामस्वरूप वे न जाने क्या-क्या कर बैठेंगे?

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी चेटी च।)

(द्रौपदी सास्रं निश्वसिति।)

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी। अपनेष्यति ते मन्युं नित्यानुबद्धकुरुवैरः कुमारो भीमसेनः (समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी। अवणइस्सदि दे मण्णुं णिच्चाणुबद्धकुरुवेरो कुमालो भीमसेणो)।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमतिके! भवत्येतद्यदि महाराजः प्रतिकूलो न भवेत्। तन्नाथं प्रेक्षितुं त्वरते मे हृदयम्। तदादेशय मे नाथस्य वासभवनम्। (हञ्जे! बुद्धिमदिए! होदि एदं जइ महाराओ पडिऊलो ण भवे। ता णाहं पेक्खिदुं तुवरदि मे हिअअं! आदेसेहि मे णाहस्स वासभवणम्।)

(इति परिक्रामतः)

चेटी—एत्वेतु भट्टिनी। एतद्वासभवनम्। अत्र प्रविशतु भट्टिनी। (एदु एदु भट्टिणी। एदं वासभवणम्। एत्थ प्रविसदु भट्टिणी)।

द्रौपदी—हञ्जे! कथय नाथस्य ममागमनम्। (हञ्जे कहे हि णाहस्य मह आगमणम्)।

चेटी—यद्देव्याज्ञापयति (इति परिक्रम्योपसृत्य च) जयतु जयतु कुमारः। (जं देवो आणवेदि।.........। जअदु जअदु कुमालो)।

(भीमसेनोऽशृण्वन् यत्तदूर्जितम् (१३) इति पुनः पठति।)

चेटी (परिवृत्य) भट्टिनि। प्रियं ते निवेदयामि। परिकुपित इव कुमारो लक्ष्यते। (भट्टिणी, पिअ दे णिवेदेमि। परिकुविदो विअ कुमालो लक्खीअदि)।

द्रौपदी—हञ्जे! यद्येवं तदवधीरणाप्येषा मामाश्वसयत्येव। तदेकान्त उपविष्टा भूत्वा शृणोमि तावन्नाथस्य व्यवसितम्। (हञ्जे! जइ एव्वं ता अवहीरणावि एसा मं आसासअदि ता एत्थ उवविट्ठा भविअ सुणोमि दाव णाहस्स ववसिदं)।

(उभे तथा कुरुतः।)

(तदनन्तर पूर्ववर्णित अवस्था में विद्यमान द्रौपदी तथा दासी प्रवेश करती है।)

द्रौपदी अश्रु बहाती हुयी वेग के साथ उच्छ्वास लेती है।)

चेटी—स्वामिनी! आश्वस्त हों, आश्वस्त हों। सर्वदा कौरवों के साथ वैर-भाव को रखने वाले कुमार भीमसेन आपके शोक को अवश्य दूर करेंगे।

द्रौपदी—अरी बुद्धिमतिके! यह (ऐसा ही) होता यदि महाराज (युधिष्ठिर) प्रतिकूल न होते। तो स्वामी (भीमसेन) को देखने के लिए मेरा मन शीघ्रता कर रहा है। अतः उनके वास-स्थान का मार्ग मुझे दिखलाओ।

(दोनों चलती हैं।)

चेटी—स्वामिनी! आइये, चली आइये। यही भीमसेन का निवास भवन है। स्वामिनी इसमें प्रवेश करें।

द्रौपदी—हे सखि ! मेरे आने की सूचना स्वामी को दो।

चेटी—जैसी महारानी की आज्ञा। (ऐसा कहकर, चलकर, भीमसेन के समीप पहुँचकर) कुमार की जय हो कुमार (युवराज) की जय हो।

(भीमसेन उसकी बात न सुनते हुए "यत्तदूर्जितम्" इस (१३ वें) श्लोक को पुनः पढ़ते हैं।)

चेटी—(घूमकर) स्वामिनी ! आपको शुभ समाचार सुनाती हूँ। क्रोधित हुए से कुमार दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

द्रौपदी—चेटी ! यदि ऐसी बात है तो यह तिरस्कार भी मुझे सान्त्वना ही प्रदान करता है। तो एकान्त में बैठकर स्वामी के निश्चय को सुनती हूँ।

(दोनों वैसा ही करती हैं।)।

टिप्पणियाँ—चेटी=दासी। सास्रम=अश्रुधारा के साथ। निश्वसिति=दीर्घ उच्छवास लेती है। भट्टिनी=स्वामिनी। अपनेष्यति=दूर करेगा। मन्युम्=शोक को। अनुबद्धः=हृदयमें स्थापित। कुमारः=राजपुत्र-युवराज। हञ्जे=हे चेटि। "हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वाने नीचां चेटी सखीं प्रती" त्यमरः। प्रतिकूलः=विरुद्ध। आदेशय=बतलाओ। वासभवनम्=निवास गृह। अवधीरणा=तिरस्कार-अपमान। द्रौपदी के भीमसेन के समीप में पहुँचने पर भीम ने न तो उनकी ओर देखा ही और न विठाया ही। यही द्रौपदी का अपमान है। किन्तु यह अपमान भी द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान कर रहा है क्योंकि भीम उनके शत्रु कौरवों पर क्रोधित हैं। व्यवसितम्=निश्चय-अध्यवसाय।

भीमसेनः—(सक्रोधं, सहदेवमधिकृत्य) किं नाम पञ्चभिर्ग्रामैः सन्धिः ?

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥१५॥

भीमसेन—(क्रोध के साथ, सहदेव की ओर लक्ष्य करके) क्या कहा ? पाँच गावों पर सन्धि ?

अन्वयः—(अहम्) समरे कोपात् कौरवशतं न मथ्नामि ? दुःशासनस्य उरस्तः रुधिरं न पिबामि ? गदया सुयोधनोरू न सञ्चूर्णयामि ? भवतां नृपतिः पणेन सन्धिं करोतु ।

संस्कृत-व्याख्या—काक्वा स्वकीयं सामर्थ्यं प्रकटयन् भीमसेनः प्राह—अहमिति शेषः, समरे=युद्धे, कोपात्=क्रोधात्, कौरवशतम्=कौरवाणां दुर्योधनादीनां शतं शतसंख्याकं समवायम्, न मथ्नामि=न विमर्दयिष्यामि ? अत्र काक्वा न मथ्नामि इति न, अपितु मथिष्याम्येव—इत्यर्थो लभ्यते । दुःशासनस्य=दुःखेन शासितुं योग्यः—तस्य—द्रौपदीवस्त्राहर्तुः दुर्योधनानुजस्येत्यर्थः, उरस्तः=वक्षस्थलात्—('उरो विदार्य"—इत्यभिप्रायः), रुधिरम्=रक्तम्, न पिबामि=न पास्यामि ? अपितु पास्याम्येव—इत्यत्राऽपि अयमेवार्थः लभ्यते । गदया=स्वकीयगदाघातेन, सुयोधनोरू=दुर्योधनसक्थिनी, न सञ्चूर्णयामि=न त्रोटयिष्यामि, अपितु त्रोटयिष्याम्येव—इत्यर्थो लभ्यते । एतादृशे मदीये सामर्थ्ये विद्यमानेऽपि यदि, भवताम्=युष्माकम् (न तु ममेति ध्वनिः), नृपतिः=राजा (युधिष्ठिरः), पणेन=पञ्चग्रामीपणेन (पञ्चग्राममूल्येनेत्यर्थः), सन्धिम्=सन्धानम्, अभिलषति तर्हि—इति शेषः, करोतु=विदधातु । कौरवान् विनाशयितुं तु अहमेकाक्येव समर्थः, तथापि यदि भवतां राजा युधिष्ठिरः भयवशात्सन्धिमेवाभिलषति तर्हि करोतु सन्धिः ।

हिन्दी-अनुवाद—क्या (अहम्=मैं) समरे=युद्ध में, कोपात्=क्रोध से, कौरवशतम्=सौ कौरवों को, न मथ्नामि=नहीं मथ डालूंगा अथवा नष्ट कर डालूंगा अथवा मार डालूंगा ? क्या मैं, दुःशासनस्य=दुःशासन के, उरस्तः=हृदय से, रुधिरम्=रक्त को, न पिबामि=नहीं पी जाऊँगा ? और क्या मैं, गदया अपनी गदा से, सुयोधनोरू=दुर्योधन की दोनों जंघाओं को, न=नहीं, सञ्चूर्णयामि=तोड़ डालूंगा ? भवताम्=आपका, नृपतिः=राजा (युधिष्ठिर), पणेन=पाँच ग्रामों की प्राप्ति रूप शर्त के साथ, सन्धिम्=सन्धि को, करोतु=करे ।

भावार्थ—भीमसेन को अपनी निजी सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास है। इसी आधार से वे कह रहे हैं कि कौरवों को पूर्णरूप से नष्ट कर डालूंगा। दुःशासन की छाती फाड़कर उसका रक्त-पान भी अवश्य ही करूँगा। अपनी गदा के प्रहार से मैं दुर्योधन की जंघाओं को अवश्य तोड़ डालूँगा। इतना सब होने पर भी यदि आपके राजा युधिष्ठिर सन्धि करने पर ही उतारू हैं तो वे सन्धि करें।

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" नामक छन्द है। लक्षण:—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौग:।"

व्याकरण—मथ्नामि, पिबामि तथा संचूर्णयामि=इन सभी क्रियाओं में "वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा" के अनुसार भविष्यत्-अर्थ में ही लट् लकार का प्रयोग हुआ। अतएव इन सभी का अर्थ होगा मथिष्यामि, पास्यामि और सञ्चूर्णयिष्यामि। उरस्तः=यहाँ पंचमी में 'तसि' होकर यह रूप बना है।

समास—कौरवशतम्—कौरवाणां शतम्—इति कौरवशतम्। दुःशासनस्य=दुःखेन शासितुं योग्यः—दुशासनः, तस्य। सुयोधनोरू=सुष्ठ योधयतीति सुयोधनः—तस्य, सुयोधनस्य ऊरू (जङ्घे) इति सुयोधनोरू (ष० तत्पु०)।

टिप्पणियाँ—कौरवशतम्=सौ कौरवों को। मथ्नामि=मथ डालूँगा—मार डालूँगा। उरस्तः=वक्षस्थल से छाती से। अर्थात् छाती को चीर करके। ऊरू=दोनों जंघाओं को।

विशेष—इस स्थल पर प्रतिमुख-सन्धि की प्रतीति हो रही है। जैसा कि लक्षणरूप में कहा भी गया है—"आनुषङ्गिककार्येण क्रियते यत्प्रकाशनम्। नष्टस्येवेह बीजस्य तद्धि प्रतिमुखं मतम्॥" अथवा व्यवसायनामक वचन सन्धि भी इसे कहा गया है। लक्षण—'प्रतिज्ञाहेतुसंयुक्तं व्यवसायो वचो मतः।'

द्रौपदी—(सहर्षम्। जनान्तिकम्) नाथ! अश्रुतपूर्वं खलु ते ईदृशं वचनम्। तत् पुनः पुनस्तावद्भण। (णाह! अस्सुदपुव्वं क्खु दे एदिसं वअण। ता पुणो पुणो दाव भणाहि)।

(भीमसेनोऽशृण्वन्नेव, 'मथ्नामि कौरवशतम्' (१५) इति पुनःपठति)।

सहदेवः—आर्य ! किं महाराजस्य सन्देशोऽव्युत्पन्न इव गृहीतः ?
भीमसेनः—का पुनरत्र व्युत्पत्तिः ?
सहदेवः—आर्य ! एवं गुरुणा सन्दिष्टम् ।
भीमसेनः—कस्य ?
सहदेवः—सुयोधनस्य ।
भीमसेनः—किमिति ?
सहदेवः—

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थ जयन्तं वारणावतम् ।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान् कञ्चिदेकं तु पञ्चमम् ॥१६॥

द्रौपदी—(बड़े हर्ष के साथ । एक ओर को होकर चुपके से) स्वामी ! ऐसा वचन तो आपके मुख से पहले कभी नहीं सुना । अतः इसे बार-बार कहिये ।

(भीमसेन बिना सुने हुये ही "मथ्नामिकौरवशतम् ॥१।१५॥ इस श्लोक को पुनः पढ़ता है) ।

सहदेव—आर्य ! क्या (आपने) महाराज के (सन्धि के निमित्त भेजे गये) सन्देश के गूढ़तत्व को नहीं समझा है ?

भीमसेन - इसमें गूढ़तत्व क्या है ?

सहदेव—आर्य ! बड़े भाई (युधिष्ठिर) द्वारा इस प्रकार का सन्देश भेजा गया है ।

भीमसेन—किसे (भेजा गया है) ?

सहदेव – दुर्योधन के लिये ।

भीमसेन—क्या (सन्देश भेजा गया है) ?

सहदेव—

अन्वयः—इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् (इति) चतुरः ग्रामान् च पंचमं कञ्चित् एकं (ग्रामम्) प्रयच्छ ।

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्रप्रस्थादिग्रामैः तत्र तत्र भवतानपकारान् निर्दिशति—इन्द्रप्रस्थम्=खाण्डवप्रस्थम् एतेन हस्तिनापुरान्निर्वासनानन्तरं युधिष्ठिरेण स्व-

निवासार्थं निर्मितादिन्द्रप्रस्थनगरादपि स्वकीयं निर्वासनं निर्दिष्टम् । (एवं इन्द्रप्रस्थमिति कथनेन निर्वासनरूपोऽपकारः प्रदर्शितः). वृकप्रस्थम्=वृकप्रस्थेति नाम्ना दुर्योधनेन तत्र भीमाय विहितं विषदानं स्मारितम् (एतेन विषदान-रूपोऽपकारः सूचितः ।), जयन्तम्=‘जयन्त’ इति नाम्ना कपटद्यूतस्य निर्देशः कृतः । अत्रैव दुर्योधनः छद्मेन द्यूतं कृत्वा युधिष्ठिरस्य राज्यं जहार । अनेन राज्यापहरणरूपोऽपकारः सूचितः । वरणावतम्=इत्यनेन लाक्षागृहं-दाह-स्थानं निर्दिष्टम् । लाक्षागृहे युधिष्ठिरे निवसति सति दुर्योधनाज्ञया पुरोचनः तत्राग्निदाहं चकार । एतेन प्राणापहारचेष्टरूपोऽपकारः प्रदर्शितः, (इति=इत्थम्-एतानिति वा), चतुरः=उक्त नाम निर्दिष्टान् चतुः संख्यकान्, ग्रामान्) च, पंचमम्, कञ्चित्=स्वेच्छानुरूपमित्यर्थः, एकम्-ग्राममिति शेषः, प्रयच्छ=देहि ।

हिन्दी-अनुवाद—इन्द्रप्रस्थम्=इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थम्=वृकप्रस्थ, जयन्तम्=जयन्त, तथा वारणावतम्=वारणावत (इस भाँति इन), चतुरः=चार ग्रामान्=ग्रामों को, च=और, पंचमम्=पाँचवें, कञ्चित्=किसी, एकम्=एक (ग्रामम्=गाँव को), प्रयच्छ=दो ।

भावार्थ—युधिष्ठिर ने यह सन्देश दुर्योधन के समीप भेजा है कि हमें निम्नलिखित ४ ग्रामों को (हमारी इच्छानुसार) तथा किसी एक ग्राम को अपनी इच्छानुसार प्रदान कर दो । ये चार ग्राम हैं:—

(१) इन्द्रप्रस्थ—यह स्थान आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है । युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर को छोड़ देने के पश्चात् अपने निवास के निमित्त इसका निर्माण कराया था किन्तु दुर्योधन के आदेशानुसार उन्हें इस स्थान का भी त्याग करना पड़ा । अतएव दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर आदि के साथ किये गये इस उपकार की सूचना ‘इन्द्रप्रस्थ’ नामक नगर के नाम से ध्वनित होती है ।

(२) वृकप्रस्थ—यह ‘बाघपत’ नाम का स्थान है कि जो जयपुर राज्य के अन्तर्गत “खण्डेला” नाम से प्रसिद्ध है । यह वह स्थल है कि जहाँ पर दुर्योधन द्वारा भीम के लिए विष देने सम्बन्धी प्रयोग को किया जाना था । इस नगर के माँगने के द्वारा उसके विषदान रूप अपकार को सूचित किया गया है ।

(३) जयन्त—यह 'जींद स्टेट नाम से प्रसिद्ध स्थान है। यह वह स्थान है कि जहाँ पर कपट के साथ जुआ खेलकर दुर्योधन ने युधिष्ठिर के सम्पूर्ण राज्य को ही अपहरण कर लिया था। इस नगर के नाम से कपट द्वारा राज्य के अपहरण रूप अपकार को सूचित किया गया है।

वारणावत—यह 'वारणावा' नामक स्थान मेरठ जनपद में स्थित है। इस नगर म ही निर्माण कराये गये लाक्षागृह में युधिष्ठिर के निवास करते रहने पर दुर्योधन की आज्ञा से पुरोचन द्वारा अग्नि लगाई गयी थी। अतएव इस नगर के नाम से दुर्योधन द्वारा किए गए प्राणों को अपहरण करने वाले कृत्य रूप अपकार को सूचित किया गया है।

छन्द—इस पद्य में "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

टिप्पणियां—जनान्तिकम्="अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्"। इति भरतः। अथवा=दशरूपक में—"त्रिपताककरेणान्यामपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्जनान्ते तज्जनान्तिकम्"॥ अर्थात् जब एक पात्र अपने हाथ की तीन अँगुलियों को ऊपर उठाकर तथा अनामिका नामक अँगुली को टेढ़ा किए हुए अन्य लोगों को बचाकर किसी पात्र से कुछ कहता है तो उसे 'जनान्तिक' कहा जाता है। अश्रुतपूर्वम्—जिसको पहले कभी न सुना गया हो। अव्युत्पन्नः=सारहीन, तत्वहीन। व्युत्पत्तिः=तत्व, गूढ़तत्व। प्रयच्छ=दो, प्रदान कर दो।

भीमसेनः—ततः किम्?

सहदेवः—तदेवमनया प्रतिनामग्रामप्रार्थनया पञ्चमस्य चाऽकीर्तनाद्विषभोजन-जतुगृहदाहद्यूतसभाद्यपकारस्थानोद्घाटनमेवेदं मन्ये।

भीमसेनः—(साटोपम्) वत्स! एवं कृते किं कृतं भवति?

सहदेवः—आर्य! एवं कृते लोके तावत्स्वगोत्रक्षयाशङ्कि हृदयमाविष्कृतं भवति, कुरुराजस्यासन्धेयता च दर्शिता भवति।

भीमसेनः—सर्वमप्येतदनर्थकम्। कुरुराजस्य तावदसन्धेयता तदैव प्रतिपादिता यदैवास्माभिरितो वनं गच्छद्भिः सर्वैरेव कुरुकुलस्य

निधनं प्रतिज्ञातम् । लोकेऽपि च धार्त्तराष्ट्रकुलक्षयः किं लज्जाकरो भवताम् । अपि च रे मूर्ख !

युष्मान्ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ।
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ॥१७॥

भीमसेन—उससे क्या ? (इसमें क्या गूढ़ रहस्य है ?) ।

सहदेव—तो इस प्रकार प्रत्येक ग्राम का नाम लेकर याचना करने से तथा पंचम ग्राम का नाम न लेने से विषमिश्रित भोजन, लाक्षागृहदाह, द्यूत-सभा आदि अपकार के स्थानों का उद्‌घाटन ही इसे समझता हूँ ।

भीमसेन—(घमण्ड के साथ) वत्स ! ऐसा करने से क्या होगा ?

सहदेव—आर्य ! ऐसा करने से लोक में (आर्य का) अपने कुल के नाश से आशङ्कायुक्त हृदय प्रकट हो जाता है : तथा कुरुराज (दुर्योधन) के साथ सन्धि न करने की इच्छा भी प्रदर्शित हो जाती है ।

भीमसेन—यह सब व्यर्थ है । कुरुराज (दुर्योधन) के साथ सन्धि न करने की भावना तो तभी प्रदर्शित कर दी गयी थी कि जब यहाँ से वन जाते हुये हम सभी के द्वारा कुरुवंश के विनाश की प्रतिज्ञा की गयी थी । क्या धृतराष्ट्र के कुल का विनाश भी आप लोगों के लिए संसार में लज्जाजनक है ? और भी हे मूर्ख !

अन्वयः—क्रोधात् शत्रुकुलक्षयः लोके युष्मान् ह्रेपयति, (किन्तु) सभायां दाराणां केशकर्षणं न लज्जयति ।

संस्कृत-व्याख्या—क्रोधात्=द्रौपदीकेशाकर्षणादिसमुद्भूतात्कोपात्, शत्रु-कुलक्षयः=रिपुवंशविनाशः, लोके=संसारे, युष्मान्=भवतः सर्वान्, ह्रेपयति=लज्जामावहति-त्रपयति वा । किन्तु, सभायाम्=सदसि, दाराणाम्=भार्यायाः द्रौपद्याः, (इह यद्यपि एकैव द्रौपदी बह्वर्थवाचिदारशब्देनायोग्यतया प्रतिपाद-यितुं न शक्यते तथापि लक्षणया तदपि शक्यते इत्यदोषः ।), केशाकर्षणम्=केशेन-केशं गृहीत्वा-इत्यर्थः कर्षणम्=आकर्षणम्, कर्तृ, न लज्जयति=न

त्रपयति। लज्जास्थाने भवतां लज्जाऽभावप्रदर्शनं, लज्जाऽभावस्थाने च लज्जा-प्रदर्शनमेव मूर्खता ज्ञेया–इत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवादः—क्रोधात्=भरी सभा में द्रौपदी के केश आदि के खींचे जाने से उत्पन्न हुए क्रोध से, शत्रुकुलक्षयः=शत्रुवंश का नाश करना, लोके=लोक में, युष्मान्=आप सभी को, ह्रेपयति=लज्जित करता है। किन्तु, सभायाम्=सभा में, दाराणाम्=अपनी वधू के, केशकर्षणम्=केशों का खींचा जाना, न=नहीं, लज्जयति=लज्जित करता है। आप लोगों को जहाँ पर लज्जित होना चाहिये था वहाँ (अर्थात् भरी सभा में तुम्हारी पत्नी के केश खींचे गये, साड़ी खींची गयी, तब ऐसे लज्जा के स्थान पर) आप लोगों को लज्जा नहीं आयी किन्तु क्रोध के साथ शत्रुवंश का विनाश करने में आप लोगों को लज्जा आ रही है। यही मूर्खता की बात है।

भावार्थ—क्रोध के साथ शत्रुकुल का नाश करने में तो आप लोगों को लज्जा आती है किन्तु अपनी स्त्री (द्रौपदी) के केशों को पकड़कर भरी सभा में निरादृत किये जाने से आप लोगों को लज्जा की अनुभूति नहीं होती है अथवा नहीं हुयी थी।

छन्दः—इसमें 'पथ्यावक्त्र' नामक छन्द है।

समासः–प्रतिनामग्रामप्रार्थनया=नाम्ना नाम्ना प्रतिनाम(नाम गृहीत्वा-इत्यर्थः) ग्रामणां प्रार्थनयायाचनया (ष० तत्पु०)। स्वगोत्रक्षयाशङ्कि–स्व-गोत्रस्य-कुलस्य, क्षय-विनाशम् (ष० तत्पु०) इति स्वगोत्रक्षयम्, स्वगोत्रक्षयं आशङ्कते इति, तादृशम्। धार्तराष्ट्रकुलक्षयः–धृतराष्ट्रस्य अपत्यानि धार्त-राष्ट्राः, (दुर्योधनादयः) धार्तराष्ट्राणां कुलं–धार्तराष्ट्रकुलम्–तस्य क्षयः (ष० तत्पु०)। शत्रुकुलक्षयः=शत्रुकुलस्य क्षयः–इति शत्रुकुलक्षयः (ष० तत्पु०)। केशकर्षणम्=केशैः कर्षणम् इति केशकर्षणम्।

टिप्पणियाँ—एवं कृते······भवति–युधिष्ठिर द्वारा जिन ग्रामों की माँग की गयी है उनमें चारो ऐसे ग्राम हैं कि जहाँ दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर आदि का महान् अपकार किया गया था। इन ग्रामों के माँगने से दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम तो यह कि युधिष्ठिर युद्ध करके अपने वंश का नाश करने के इच्छुक

नहीं हैं तथा वे शान्ति चाहते हैं और द्वितीय बात यह है कि इसमें दुर्योधन के साथ सन्धि न करने की इच्छा भी प्रदर्शित हो जाती है। इससे यह भाव भी ध्वनित हो सकता है कि हम अब तक भी तुम्हारे अपकारों को भूले नहीं हैं। तुमसे बदला लेना अभी शेष ही है।

अनर्थकम्=निष्प्रयोजन-व्यर्थ। निधनम्=विनाश। ह्रेपयति=लज्जित करता है। दाराणाम्=स्त्री-द्रौपदी का। यहाँ दारा शब्द बहुवचन में प्रयुक्त है किन्तु फिर भी लक्षणा द्वारा 'एक द्रौपदी' का ही अर्थ यहाँ सम्भव है।

द्रौपदी—(जनान्तिकम्) नाथ! न लज्जन्त एते। त्वमपि तावन्मा विस्मार्षीः। (णाह ण लज्जन्ति एदे। तुमं वि दाव मा विसुमरेहि)।

भीमसेनः—(सस्मरणम्) वत्स! कथं चिरयति पाञ्चाली?

सहदेवः—आर्य! का खलु वेला तत्र भवत्याः प्राप्तायाः। किं तु रोषावेगवशाद् आगताप्यार्येण नोपलक्षिता।

भीमसेनः—(दृष्ट्वा सादरम्) देवि! समुद्धतामर्षैरस्माभिरागतापि भवती नोपलक्षिता। अतो न मन्युं कर्तुमर्हसि।

द्रौपदी—नाथ! उदासीनेषु युष्मासु मन्युर्न पुनः कुपितेषु। (णाह उदासीणेसु तुह्मेसु मण्णुं ण उण कुविदेसु)।

भीमसेनः—यद्येवमपगतपरिभवमात्मानं समर्थयस्व। (हस्ते गृहीत्वा पार्श्वे समुपवेश्य मुखमलोक्य) किं पुनरत्र भवतीमुद्विग्नामिवोपलक्षयामि?

द्रौपदी—नाथ! किमुद्वेगकारणं युष्मासु सन्निहितेषु? (णाह किं उव्वेअकालणं तुह्मेसु सण्णिहिदेसु)।

भीमसेनः—किमिति नावेदयसि। (केशानवलोक्य) अथवा किमावेदितेन।

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु दूरमप्रोषितेषु च।
पाञ्चालराजतनया वहते यदिमां दशाम् ॥१८॥

द्रौपदी—(जनान्तिक) हे नाथ ! इन लोगों को तो लज्जा नहीं आती है किन्तु आप तो न भूल जाइयेगा।

भीमसेन—(स्मरणपूर्वक अर्थात् स्मरण करने जैसा अभिनय करते हुये) वत्स ! द्रौपदी क्यों देर कर रही है ?

सहदेव—आर्य ! पूजनीया (द्रौपदी को आये हुये कितना समय बीत गया ? किन्तु क्रोध के आवेग के कारण आर्य ने आयी हुयी भी नहीं देखी।

भीमसेन—(देखकर, आदर के साथ) हे देवि ! प्रबल क्रोध के कारण आयी हुयी भी आपको मैंने नहीं देखा। अतः आपको क्रोधित नहीं होना चाहिये।

द्रौपदी—हे नाथ ! आपके उदासीन होने पर हमें दुःख होता है, कुपित होने पर नहीं।

भीमसेन—यदि ऐसा है तो अपने निरादर को समाप्त ही समझो। (हाथों को पकडकर, पास में बिठाकर, मुख की ओर देखकर) किन्तु आप व्याकुल सी क्यों दिखलाई पड़ रही हैं ?

द्रौपदी—हे नाथ ! आप लोगों के समीप में विद्यमान होने पर व्याकुलता कैसी ? (अर्थात् आप लोगों के रहते व्याकुलता होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।)।

भीमसेन—क्यों नहीं बतला रही हो ? (केशों की ओर देखकर) अथवा कहकर ही क्या होगा ?

अन्वयः—यत् पाण्डुपुत्रेषु जीवत्सु च दूरं अप्रोषितेषु (अपि) पाञ्चाल-राजतनया इमां दशां वहते।

संस्कृत-व्याख्या-यत्=यस्मात्, पाण्डुपुत्रेषु=अस्मासु युधिष्ठिरादिष्वित्यर्थः, जीवत्सु=प्राणान् धारयत्सु, च, दूरम्=असमीपम्, अप्रोषितेषु=अन्यदेशवासिषु—परदेशेऽवसत्सु वा, (अपि) पाञ्चालराजतनया=द्रौपदी, इमाम्=ईदृशी (अबद्ध-केशाम्—इत्यभिप्रायः), दशाम्=दुर्दशाम्, वहते=धत्ते। अतः उद्वेगकारणं तु स्पष्टमेव, कोऽवसरः ईदृशस्य प्रश्नस्य ?

हिन्दी-अनुवाद—यत्=जो कि, पाण्डुपुत्रेषु=पाण्डु के पुत्रों के अर्थात् हम सभी पाण्डवों के, जीवत्सु=जीवित रहते हुये, च=और दूरम्=दूर, अप्रोषितेषु=परदेश जाने पर (अपि=भी): पाञ्चालराजतनया=पाञ्चालदेशाधिपति की पुत्री अर्थात् द्रौपदी, इमाम्=इस, दशाम्=दुर्दशा को, वहते=धारण कर रही है।

भावार्थः—भीमसेन के कहने का अभिप्राय यह है कि हम सभी पाण्डु-पुत्रों के समक्ष हे द्रौपदी ! तुम्हारी इस प्रकार की दशा हुयी (भरी सभा में केश खींचे गये, वस्त्र खींचे गये)। ऐसे हम सभी अभी तक जीवित हैं तथा कहीं परदेश आदि भी नहीं गये हैं—इस प्रकार की स्थिति होने पर भी तुम इस प्रकार की (केशों का न बाँधना आदि) दुर्दशा को धारण कर रही हो। अतः व्याकुलता का कारण पूछने से क्या लाभ ?

छन्द—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समासः—रोषवेगवशात्=रोषस्य आवेगः—रोषावेगः (ष० तत्पु०), तस्य वशात् (आधीन्यात्)। समुद्धतामर्षैः=समुद्धतः—वृद्धिप्राप्तः अमर्षः—क्रोधः येषां तैः। अपगतपरिभवम्=अपगतः—दूरीभूतः परिभवः—तिरस्कारः यस्य तम्। पाञ्चालराजतनया=पाञ्चालराजस्य तनया—इति (ष० त०)।

टिप्पणियाँ—प्राप्तायाः=आई हुयी। रोषावेगवशात्=क्रोध के प्रवाह के आधीन होने के कारण। उपलक्षिता=देखी गयी। समुद्धतामर्ष=वृद्धि को प्राप्त हुये क्रोध से परिपूर्ण आर्थात् प्रबल क्रोध युक्त। मन्युम्=क्रोध अथवा शोक। "मन्युःपुमान् क्रुधि। दैन्ये शोके च" इति मेदिनी। उदासीनेषु=तटस्थ अथवा उदासीन होने पर। अपगतपरिभवम्=दूर हो गया है अपमान जिसका, ऐसा। समर्थयस्व=जानो, समझो। उद्विग्नाम्=चिन्तित, व्याकुल (जिसे हार्दिक चोट पहुँची है ऐसी)। उपलक्षयामि=देख रहा हूँ। अप्रोषितेषु=परदेश न जाने पर। पाञ्चालराजतनया=पाञ्चालदेश के राजा की पुत्री-द्रौपदी ! पाञ्चालराज इस शब्द के कथन किये जाने से द्रौपदी की उत्कृष्टता, सुकोमलता का ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसी उत्कृष्ट, कोमल राजपुत्री के लिये केश, वस्त्र आदि का खींचा जाना नितान्त अनुपयुक्त था—यह अर्थ भी ध्वनित होता है। वहते=धारण कर रहा है।

द्रौपदी— हञ्जे बुद्धिमतिके। निवेदय तावन्नाथस्य। कोऽन्यो मम परिभवेन खिद्यते ? (हञ्जे बुद्धिमदिए, णिवेदेहि दाव णासस्स। को अण्णो मह परिहवेण खिज्जइ ?)

चेटी—यद्देव्याज्ञापयति। (भीममुपसृत्य, अञ्जलिं बद्ध्वा) कुमार, इतोप्यधिकतरमद्यमन्युकारणमासीद्देव्याः (ज देवी आणवेदी) कुमाल, इदोवि अहिअदरं अज्ज मण्णुकालणा आसी देवीए)।

भीमसेनः– किं नामास्मादप्यधिकतरम् ? तत्कथय कथय।

कौरव्यवंशदावेऽस्मिन् क एष शलभायते।
मुक्तवेणीं स्पृशन्नेनां कृष्णां धूमशिखामिव ॥१६॥

द्रौपदी —चेटी बुद्धिमतिके ! स्वामी (भीम) से निवेदन कर दो। अन्य कौन मेरे (प्रति किये गये) अपमान से दुःखी होगा। (अर्थात् यही एक ऐसे हैं कि जिन्हें मेरे अपमान से दुःख हुआ करता है। अतः यदि इनको वह भानुमती वाली घटना नहीं सुनाई जायेगी तो किसे सुनायी जायगी। अत तुम इस नवीन घटना को इन्हें बतला दो)।

चेटी—जैसी देवी की आज्ञा। (भीम के पास जाकर, हाथ जोड़कर) हे कुमार। इस (केशाकर्षण) से भी अधिक देवी के दुःख व शोक का एक और भी कारण आज घटित हुआ है।

भीमसेन—क्या कह रही हो इससे भी अधिक ? तो (तुरन्त ही) उसे बतलाओ-बतलाओ।

अन्वयः—एषः कः मुक्तवेणीं एनां कृष्णां कृष्णां धूमशिखां इव स्पृशन् अस्मिन कौरव्यवंशदावे शलभायते।

संस्कृत-व्याख्या—एषः=द्रौपदीमन्युहेतुरित्यर्थः, कः=को जनः, मुक्तवेणीम्=उन्मुक्तकेशपाशाम्=एनाम्=एतां पुरोवर्तिनीम्, कृष्णाम्=द्रौपदीम्, कृष्णाम्=कृष्णवर्णाम्, धूमशिखाम्=धूमस्यशिखा वेणीम्, इव यथा, स्पृशन्=संस्पृशन् —स्पर्शं कर्त्तुमिच्छन्, अस्मिन्=एतस्मिन्, कौरव्यवंशदावे=

प्रज्वलितेदुरुवंशदावाग्नौ उद्दीप्ते वंशतुल्य कुरुकुलवनवह्नौ, शलभायते= पतङ्गवत् आचरति। द्रौपदीं क्लेशयन् को जनः एतत् (मम) क्रोधाग्नौ पतङ्गवत् मर्त्तुमिच्छति। अथवा द्रौपद्याः अनिष्टं कुर्वन् को जनः मम गदाप्रहारेण मर्त्तुं उद्यतः इत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद—एषः=यह, कः=कौन व्यक्ति, मुक्तवेणीम्=खुली हुयी चोटी वाली, एनाम्=इस, कृष्णाम्=द्रौपदी को, कृष्णाम्=कृष्णवर्ण की अथवा काली-काली, धूमशिखाम्=धुयें की शिखा के, इव=समान, स्पृशन्= स्पर्श करता हुआ, अस्मिन्=इस, कौरव्यवंशदावे=कौरवों के कुल को जलाने वाली क्रोधरूपी वनाग्नि में, शलभायते=पतङ्गे की तरह जलना चाहता है?

भावार्थ—यह कौन व्यक्ति है कि जो धूमशिखा के समान खुली हुयी चोटी वाली द्रौपदी को छूकर इस कौरवकुल की (विनाशक) वनाग्नि में पतङ्गे के सदृश अपने को नष्ट करना चाहता है।

अलङ्कार—उक्त पद्य में "धूमशिखामिव" में उपमा अलंकार है। तथा "कौरव्यवंशदावे" में "रूपक" है।

छन्द—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समास—धूमशिखाम्=धूमस्य शिखा धूमशिखा, ताम्। मुक्तवेणीम्= मुक्ता वेणी यस्याः ताम्। कौरव्यवंशदावे=कुरोरपत्यं कुरूणां राजा वा कौरव्यः, कौरव्ये साधवः—कौरव्याः तेषां वंशः, अथवा ते वंशाः वेणवः इवेति (उपमित समास)—कौरव्यवंशः तस्य तेषां वा दावे--वनवह्नौ, दाहके— विनाशके वेत्यर्थः।

व्याकरण—शलभायते=शलभवत् आचरतीति शलभायते (यहाँ आचार अर्थ में "क्यङ्" होता है।)।

टिप्पणियाँ-परिभवेन=तिरस्कार अथवा अपमान से। मन्युकारणम्= शोक अथवा क्रोध का कारण अस्मिन्। कौरव्यवंशदावे=इस जलती हुयी कुरुवंशरूपी दावानल में अथवा इस प्रज्वलित बाँसों के सदृश कुरुवंश रूपी वन की अग्नि में। 'अस्मिन्' इस शब्द का प्रयोग करते हुये भीमसेन हाथ द्वारा अपनी ओर संकेत करते हैं। इस भाँति वे अपने आपको कौरवों के

वंश रूपी बाँस के लिये वनाग्नि बतला रहे हैं। शलभायते=वर्षा ऋतु में पतङ्गे जानबूझकर आग में कूदा करते हैं। इससे आग का तो कुछ न बनता ही है और न बिगड़ता ही। किन्तु वे स्वय भी आग में गिरकर नष्ट हो जाया करते हैं अर्थात् मर जाते हैं। ठीक यही बात द्रौपदी को छेड़ने वाले व्यक्ति की भी होती है। भीमसेन के कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे व्यक्ति का विनाश निश्चित रूप से मेरे ही हाथों द्वारा होगा। 'शलभायते' का अर्थ ही है कि पतङ्गे के समान आचरण कर रहा है।

चेटी—शृणोतु कुमारः अद्य खलु देवी अम्बासहिता सुभद्राप्रमुखेन सपत्नीवर्गेण परिवृताऽऽर्याया गान्धार्याः पादवन्दनं कर्तुं गतासीत्। (सुणादु कुमालो। अज्जक्खु देवो अम्बासहिदा सुभद्दाप्पमुहेण सवत्ति-वग्गेण परिवुदा अज्जाए गन्धालीए पादवन्दणं कादुं गदा आसी)।

भीमसेनः—युक्तमेतत्। वन्द्याः खलु गुरवः। ततस्ततः?

चेटी—ततः प्रतिनिवर्तमाना भानुमत्या देवी दृष्टा। (तदो पडिणि-वुत्तमाणा भाणुमदीए देवी दिट्ठा)।

भीमसेनः—(सक्रोधम्) आः शत्रोर्भार्यया दृष्टा। हन्त! स्थानं क्रोधस्य देव्याः। ततस्ततः?

चेटी—ततस्तया देवीं प्रेक्ष्य सखीजनदत्तदृष्ट्या सगर्वमीषद् विहस्य भणितम्। (तदो ताए देवीं पेक्खिअ सहीजणदिण्णदिट्ठिए सगव्वं ईसि विहसिअ भणिदं)।

भीमसेनः—न केवलं दृष्टा उक्ता च। अहो किं कुर्मः। ततस्ततः?

चेटी—अयियाज्ञसेनि। पञ्चग्रामाः प्रार्थ्यन्ते इति श्रूयते। तत्कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते। (अई जण्णसेणि, पञ्च गामा पत्थीअन्ति त्ति सुणीअदि। ता कीस दाणीं वि दे केसा ण संजमीअन्ति)।

भीमसेनः—सहदेव! श्रुतम्?

सहदेव—किमिहोच्यते ? दुर्योधनकलत्रं कलत्रं हि सा। पश्य,

स्त्रीणां हि साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि ।
मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥२०॥

चेटी—कुमार सुनिये। आज सुभद्रा आदि सपत्नी-समुदाय (सौत-समूह) से घिरी हुयी (यह) देवी (द्रौपदी) माँ (कुन्ती) के साथ आर्या गान्धारी को चरणवन्दना करने के लिये गयी थी।

भीमसेन—यह ठीक ही है। निश्चित रूप से गुरुजन वन्दनीय होते हैं। तदनन्तर क्या हुआ ?

चेटी—वहाँ से लौटती हुयी देवी (द्रौपदी) को भानुमती ने देख लिया।

भीमसेन—(क्रोध के साथ) ओह, शत्रु की पत्नी ने देख लिया। आह ! (तब तो) देवी के क्रोध का स्थान ही था अर्थात् तब तो देवी का क्रोध उचित ही था। तत्पश्चात् क्या हुआ ?

चेटी—तब महारानी द्रौपदी को देखकर अपनी सखी के मुख की ओर दृष्टिपात करते हुये उसने गर्व के साथ मुस्कराते हुये कहा।

भीमसेन—(भानुमती ने द्रौपदी को) केवल देखा ही नहीं अपितु कुछ कहा भी। आह, क्या करें ? उसके पश्चात् ?

चेटी—अयि द्रौपदी, सुना है कि (तुम्हारे पतिजनों द्वारा) पाँच गाँव मांगे जा रहे हैं। तो फिर अब भी तुम्हारे केश क्यों नहीं बांधे जा रहे हैं ?

भीमसेन—सहदेव, सुन लिया ?

सहदेव—आर्य ! इस विषय में क्या कहा जाय ? क्योंकि वह तो दुर्योधन की पत्नी है। देखिये—

अन्वयः—हि साहचर्यात् स्त्रीणां चेतांसि भर्तृसदृशानि भवन्ति। हि विषविटपिसमाश्रिता मधुरा अपि वल्ली मूर्च्छयते।

संस्कृत-व्याख्या—हि=निश्चयेन, साहचर्यात्=(भर्तुः) सहवासात्, स्त्रीणाम्=नारीणाम्, चेतांसि=मनांसि (चित्तप्रवृत्तयः इत्यर्थः), भर्तृसद्--

शानि=भर्तु: पत्युः चेतसः सदृशानि तुल्यानि, भवन्ति=जायन्ते। हि=यथा विषविटपिसमाश्रिता=विषात्मकः विटपी वृक्षः, तं समाश्रिता-अवलम्बिता (सती), मधुरा=मधुरगुणयुक्ता; अपि, वल्ली=लता, मूर्च्छयते=जनं मोहयति मूच्छितं करोतीत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद — हि=निश्चय ही, साहचर्यात्=[पति के] साथ में रहने के कारण, स्त्रीणाम्=स्त्रियों के, चेतांसि=मन अथवा उनकी मानसिक चित्तवृत्तियाँ, भर्तृ सदृशानि=पति के ही समान, भवन्ति-हो जाया करती हैं। हि=जैसे कि, विषविटपिसमाश्रिता=विषैले वृक्ष पर आश्रित [उसी पर आधारित], मधुरा अपि=मीठी भी, वल्ली=लता, मूर्च्छयते=मूर्च्छाकारी गुणों से युक्त हो जाया करती है। अर्थात् अन्य व्यक्तियों को मूच्छित कर देने वाली हो जाया करती है। इसी प्रकार पति के साथ रहने के कारण पत्नियों के स्वभाव आदि भी पतियों के ही समान हो जाया करते हैं।

भावार्थ—पति के साथ रहते-रहते स्त्रियों की चित्तवृत्तियाँ भी पति ही जैसी हो जाया करती हैं। जैसे कि मधुर-गुण से युक्त लता यदि विषवृक्ष के आश्रित होकर उसके ऊपर चढ़ जाया करती है तो उस लता का सेवन किया जाना भी विष के गुणों जैसा ही हो जाया करता है।

छन्द—उक्त पद्य में 'आर्या' छन्द है।

समास—अम्बासहिता=अम्बा माता कुन्ती तया सहिता (अथवा-अम्बया सहिता इति अम्बा सहिता)। सुभद्राप्रमुखेन=सुभद्रा अर्जुनपत्नी प्रमुखे प्रधाने स्थाने यस्य तेन। सपत्नीवर्गेण=सपत्नीनां समानभार्याणां वर्गः तेन। सखीजनदत्तदृष्टया=सखीजने दत्ता दृष्टिः यया सा तादृश्याः। विषविटपिसमाश्रिता=विषात्मकः विटपी (वृक्षः) (मध्यमपदलोपी समास) इति विषविटपी, तं समाश्रिता इति विषविटपिसमाश्रिता।

टिप्पणियाँ—अम्बा=माता कुन्ती। सपत्नीवर्गेण=सपत्नीसमूह से। गान्धार्याः=दुर्योधन की माता के। सखीजनदत्तदृष्टया=सखी की ओर देखती हुयी। ईषत्=कुछ-कुछ। साहचार्यात्=साथ-साथ रहने के कारण।" संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति" इस न्याय की दृष्टि से स्त्रियों की चित्तवृत्तियाँ

भी पति की वृत्तियों के अनुरूप ही हो जाया करती हैं। यह अभिप्राय है। **विषविटपिसमाश्रिता**=विष-वृक्ष पर आधारित। ऐसा नियम है—"आधार-गुणेनाऽऽधेयोऽपि अलंकृतो जायते" अर्थात् आधार के गुणों द्वारा आधेय भी अलंकृत हो जाया करते हैं। मधुर गुणों वाली लता भी यदि विष-वृक्ष का आश्रय प्राप्त कर लिया करती है तो उस लता में भी विष के गुण आ जाया करते हैं। परिणाम यह होता है कि जो लता लोगों को जीवन प्रदान किया करती थी वही लता अब लोगों के प्राणों का अपहरण करने वाली हो जाती है। **मूर्च्छयते**=लोगों को मूर्च्छित कर दिया करती है। **वल्ली**=लता।

भीमसेनः—बुद्धिमतिके! ततो देव्या किमभिहितम्?

चेटी—कुमार! यदि परिजनहीना भवेत्तदा देवी भणति। (कुमाल, जई परिजणहीणा भवे तदो देवी भणादि।

भीमसेनः—किं पुनरभिहितं भवत्या?

चेटी—मयैवं भणितम्। अयि भानुमति! युष्माकममुक्तेषुकेशेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति। (मए एव्वं भणिदं। अइ भाणुमदि, तुम्हाणं अमुक्केसु केसेसु कथं अह्माणं देवीए केसा संजमी-अन्ति त्ति)।

भीमसेनः—(सपरितोषम्) साधु, बुद्धिमतिके! साधु। तदभिहितं यदस्मत्परिजनोचितम्। (स्वाभरणानि बुद्धिमतिकायै प्रयच्छति। अथोरमासनादुदतिष्ठन्) अत्रभवति पाञ्चालराजतनये। श्रूयताम्। अचिरेणैव कालेन—

> चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात—
> सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
> स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि—
> रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः॥२१॥

भीमसेन—बुद्धिमतिके ! तब देवी ने क्या कहा ?

चेटी—कुमार ! यदि देवी सेवकों से शून्य होतीं, तब कहतीं।

भीमसेन—तो फिर आपने क्या कहा ?

चेटी—मैंने इस प्रकार कहा—अयि भानुमति ! आप लोगों के केशों के बिना खुले ही हमारी स्वामिनी के केश किस भाँति बांधे जा सकते हैं ?

भीमसेन—(पूर्ण प्रसन्नता के साथ) ठीक, बुद्धिमतिके ! ठीक। तुमने वही कहा कि जो हमारे सेवक के लिये उचित था। (अपने आभूषणों को बुद्धिमतिका को दे देता है, अधीरतापूर्वक आसन से उठते हुये) आदर के योग्य है पाञ्चालराज कुमारी (द्रौपदी) ! सुनिये। थोड़े ही समय में—

अन्वयः—हे देवि ! चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य, सुयोधनस्य, स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिः, भीमः तव कचान् उत्तंसयिष्यति।

संस्कृत-व्याख्या—हे देवि ! =हे द्रौपदि !, चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य=चञ्चन्तौ-परिस्फुरन्तौ यौ भुजौ-बाहू-चञ्चद्भुजौ ताभ्यां भ्रमिता-प्रेरिता या चण्डा-भीमा गदा तस्याः अभिघातेन-प्रहारेण सञ्चूर्णितं भग्नं उरुयुगलं जङ्घाद्वयं यस्य स, तस्य प्रचलद्बाहुभ्रमितप्रचण्डगदाघातसञ्चूर्णितजङ्घाद्वयस्य, सुयोधनस्य=दुर्योधनस्य, स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिः=स्त्यानं स्तिमितं अवनद्धं-संसक्तम् [अपविद्धम् (इति पाठे)—क्षिप्तम्] घनं निरन्तरं निबिडं वा यत् शोणितं रक्तं तेन शोणः लोहितः पाणिः-करः यस्य स—तादृशः, भीमः=भीमसेनः—(अहमिति भावः), तव=भवत्याः, कचान्=केशान्, उत्तंसयिष्यति=भूषयिष्यति-अलङ्करिष्यति (उत्तम्भयिष्यति'—इति पाठे—बन्धयिष्यतीत्यर्थः)।

हिन्दी-अनुवाद—हे देवि=हे महारानी द्रौपदी !, चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य=फड़कती हुयी बाहों द्वारा घुमायी गयी गदा के प्रहार से चूर-चूर हुयी दोनों जांघो वाले, सुयोधनस्य=दुर्योधन के, स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिः=चिकने तथा चिपके हुये और गाढ़े रक्त से लाल हाथों वाला, भीमः=भीम, तव=तुम्हारे, कचान्=केशों को, उत्तंसयिष्यति=अलङ्कृत करेगा।

भावार्थ—हे द्रौपदी ! शीघ्र ही मैं अपनी फड़कती हुयी भुजाओं द्वारा घुमाये भयंकर (अपनी) गदा के प्रहार से दुर्योधन की दोनों जंघाओं को चूर्ण-चूर्ण कर डालूँगा और तदनन्तर उनसे निकले हुये गाढ़े रक्त से लथ-पथ अपने हाथों से तुम्हारे केशों को सँभालूँगा अथवा संवारूंगा । भीम के कहने का अभिप्राय यह है कि मैं शीघ्र ही अपने शत्रु दुर्योधन का विनाशकर तुम्हारे शोक एवं दुःख को दूर करूँगा ।

अलंकारः—उक्त पद्य में 'छेकानुप्रास' अलङ्कार है ।

रस—इसमें वीर रस है तथा उसकी प्रतीति भी स्पष्ट ही है ।

छन्दः—इस पद्य में "वसन्ततिलका" नामक छन्द है ।

समास—चञ्चद्भुजभ्रमित चण्डगदाभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य =चञ्चन्तौ भुजो-चञ्चद्भुजौ, ताभ्यां भ्रमिता-इति चञ्चद्भुजभ्रमिता; चण्डा गदा-चण्डगदा, चञ्चद्भुजभ्रमिता या चण्डागदा-इति चञ्चद्भुजभ्र-मितचण्डगदा, तस्याः अभिघातः-चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातः, तेन सञ्चूर्णित ऊरुयुगलं यस्य तस्य । स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि= स्त्यानञ्च अनवद्धञ्च यत् घनशोणितं तेन शोणः पाणिः यस्य सः ।

टिप्पणियाँ—परिजनहीना=सेविकारहित । चेटी के कहने का अभिप्राय यह है कि मुझ दासी के विद्यमान रहने पर स्वामिनी (द्रौपदी) को उत्तर देने की क्या आवश्यकता थी ? अतः मैंने ही उत्तर दिया । अमुक्तेषु=आज भी तुम्हारे पति के वध के न हो जाने के कारण (जो केश) इस समय भी खुले हुये हैं । संयम्यन्ते=बाँधे जाते हैं । चेटी के कहने का तात्पर्य यह है कि जब तुम लोगों के केश उन्मुक्त हो जावेंगे तभी मेरी स्वामिनी (द्रौपदी) के केश बँध सकेंगे । सपरितोषम्=पूर्ण सन्तोष, अथवा प्रसन्नता के साथ । साधु=ठीक-उचित ही किया । अस्मत्परिजनोचितम्=हमारे सेवक के योग्य । अचिरेण=थोड़े से ही । शोणितशोणपाणि=रक्त से लाल २ वर्ण के हाथों वाले । भीमः=भीमसेन—मैं (अपने को) इस 'भीम पद के प्रयोग से भीमसेन का अहङ्कार ही सूचित होता है । उत्तंसयिष्यति=अलङ्कृत करेगा । सँवारेगा । बांधेगा ॥२१॥

द्रौपदी—किं नाथ ! दुष्करं त्वया परिकुपितेन। अनुगृह्णन्तु एवं व्यवसितं ते भ्रातरः। (किं णाह दुक्करं तुए परिकुविदेण । सव्वहा अणुगेह्णन्तु एदं ववसिदं दे भादरो।) ।

सहदेवः—अनुगृहीतमेतदस्माभिः ।

(नेपथ्ये महान् कलकलः । सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति ।)

भीमसेनः–

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्ड ।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताड्यतेऽयम् ।२२।

द्रौपदी—स्वामिन् ! क्रोधित हुये आपके लिये क्या करना कठिन है ? (कहने का अभिप्राय यह है कि क्रुद्ध होने पर आप सब कुछ कर सकते हैं।) आपके इस प्रकार के निश्चय का आपके भ्रातृगण पूर्णरूप से समर्थन करें।

सहदेव—हम इसका समर्थन करते हैं।

(पर्दे के पीछे तीव्र स्वर में कलकल ध्वनि होती है। सभी लोग आश्चर्य के साथ सुनते हैं।)

भीमसेन

अन्वयः—मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः, कोणाघातेषु, गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः, कृष्णाक्रोधाग्रदूतः, कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः अयं दुन्दुभिः केन ताड्यते ?

संस्कृत-व्याख्या :—मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः— मन्थेन-मन्थनदण्डेन मथनेन वा आयस्तः क्षुब्धः यः अर्णवः सागरः, तस्य यद् अम्भः जलम्, तेन प्लुतानि-व्याप्तानि, कुहराणि-गह्वराणि यस्य, तथा भूतश्च चलन्-वलन् भ्रमन्नित्यर्थः, च यः मन्दरः मन्दराचलः; तस्य ध्वान इव ध्वनिरिव धीरः-गम्भीरः (अथवा-मन्थो मन्थनदण्डः तेन आयस्तः क्षिप्तः

यः अर्णवः समुद्रः, तदम्भसा जलेन प्लुतं यत्कुहरं मध्यभागं तेन चलन् यः मन्दरनामा शैलः तस्य ध्वान इव धीरः तच्छब्दवद्गम्भीरः), कोणाघातेषु= कोणेन-दण्डेन ये आघाताः तेषु—अथवा—ढक्कानां लक्षेषु भेरीणां दशसहस्रेषु च एककालमेव कृतेषु प्रहारेषु (यथा चोक्तं भरतेन—"ढक्काशतसहस्राणि भेरी शतशतानि च। एकदा यत्र हन्यन्ते कोणाघातः स उच्यते ॥) अथवा-कोणः वादनदण्डः, तस्य आघातेषु ताडनेषु सत्सु, गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः=गर्जन्त्यः शब्दायमानाः, प्रलयघनानाम्—प्रलयकालीनमेघानाम्, घटाः पंक्तयः, तासां अन्योन्यम्—परस्परम्, संघट्टः—संघर्षणम्, तद्वत् चण्डः—भीषणः; कृष्णाक्रोधाग्रदूतः=कृष्णायाः—द्रोपद्याः, क्रोधस्य—कोपस्य, अग्रदूतः—प्रथमसूचकः, कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः=कुरुकुलस्य—कौरववंशस्य यत् निधनं मरणं तस्य सूचकः उत्पातरूपः अशुभसूचकः यः निर्घातवातः प्रचण्डपवनः, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः=अस्माकं पाण्डवानां यः सिंहनादः सिंहगर्जनम्; तस्य यत् प्रतिरसितम्—प्रतिध्वनिः तस्य सखा मित्रम्—तत्सदृशः इत्यभिप्रायः—अस्मत्सिंहनादसदृशः—इतिभावः, अयम्=एषः, दुन्दुभिः=भेरी, केन=केन जनेन; ताड्यते=आहन्यते।

हिन्दी-अनुवाद—मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः=मन्थन से क्षुब्ध समुद्र के जल से व्याप्त (भरी हुई) गुफाओं वाले और घूमते हुये मन्दराचल(पर्वत)की ध्वनि के सदृश गम्भीर, कोणाघातेषु=वादनदण्डों अथवा लाखों डमरुओं तथा दशसहस्र नगाड़ों पर एक साथ प्रहार होने पर, गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः=गरजती हुयी प्रलयकालीन मेघों की घटाओं की परस्पर टक्कर के सदृश भीषण, कृष्णाक्रोधाग्रदूत=द्रौपदी के क्रोध के सूचक, कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः=कुरुवंश के नाश के अपशकुनभूत प्रचण्ड वायु (झंझावात) के समान, अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः=(और) हम पाण्डवों के सिंहनाद की प्रतिध्वनि के सदृश, अयम्=यह, दुन्दुभिः=भेरी, केन=किसके द्वारा, ताड्यते=ताड़ित की जा रही है—अर्थात् बजाई जा रही है ?

भावार्थः—मन्थन किये जाने से क्षुब्ध समुद्र के जल से परिपूर्ण गुफाओं वाले तथा घूमते हुए (चक्कर लगाते हुये) मन्दराचल की ध्वनि के सदृश गम्भीर, वादनदण्डों अथवा डमरुओं तथा एकसाथ दस हजार नगाड़ों पर

प्रहार होने पर गर्जन करती हुयी प्रलयकालीन मेघों की घटाओं की परस्पर टकराहट के समान भयङ्कर, द्रौपदी के क्रोध का सूचक, कुरुवंश के विनाश के अपशकुनरूप प्रचण्ड आँधी के सदृश, हम पाण्डवों द्वारा किये गये सिंह-गर्जन की प्रतिध्वनि के समान यह भेरी कौन बजा रहा है? (तात्पर्य यह है कि दिल को दहला देने वाला नगाड़ा कौन बजा रहा है।)।

अलङ्कारः—उक्त पद्य में "उत्प्रेक्षा" अलंकार है।

छन्द—इसमें "स्रग्धरा" नामक वृत्त है; लक्षण—"म्रम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्"।

समास—मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः=मन्थो मन्थनदण्डः तेन आयस्तः क्षिप्तः यः अर्णवः समुद्रः तदम्भसा प्लुतं यत्कुहरं तेन चलन् (अथवा—मन्थेन मन्थनदण्डेन मथ्नेन वा आयस्तं यदर्णवाम्भः तस्य प्लुतेन यत्कुहरं तत्र चलन्—अम्भसा प्लुतानि व्याप्तानि कुहराणि यस्य स चासौ चलन—इति वा) यः मन्दरनामा शैलः तस्य ध्वान इव धीरः। कोणाघातेषु=कोणेन दण्डेन ये आघाताः तेषु। गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्य-सङ्घट्टचण्डः=गर्जन्त्यः प्रलयघटानां घटाः, तासां अन्योन्यसंघट्टः, तद्वत् चण्डः। कृष्णाक्रोधाग्रदूतः=कृष्णायाः क्रोधस्य अग्रदूतः। कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः=कुरुकुलस्य निधनमिति कुरुकुलनिधनम्, तस्य उत्पातभूतः यः निर्घातवातः। अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः=अस्माकं सिंहनादस्य प्रतिरसितं—प्रतिरवः, तस्य सखा तत्सदृशः।

टिप्पणियाँ—त्वया किं दुष्करम्=आपके लिये क्या कठिन है? व्यवसितम्=निश्चय। मन्दरध्वानघोरः=प्राचीनकाल में देवों तथा दानवों में एक साथ मिलकर 'अमृत' की प्राप्ति के निमित्त समुद्र का मन्थन किया था। उस मन्थन में मन्दराचल नामक पर्वत को मथानी (रई) तथा 'वासुकि' नाग को उस मथानी की रस्सी बनाया गया था। मन्थन कार्य में आवाज़ हुआ ही करती है। मन्दराचलरूपी मथानी द्वारा किये गये मन्थन कार्य में जो अतितीव्र तथा गम्भीर ध्वनि निकल रही थी उसी के समान पर्दे के पीछे जो ध्वनि हो रही थी उसमें भी उसी प्रकार की गम्भीरता थी। कोणाघातेष

=कोण-वादन दण्डों के आघातों के होने पर अथवा लाखों डमरुओं तथा दस हजार नगाड़ों पर एक साथ प्रहार किये जाने पर। भरतमुनि ने 'कोणाघात' को स्पष्ट करते हुये लिखा है—'ढक्काशतसहस्राणि भेरीशतशतानि च। एकदा यत्र हन्यन्ते 'कोणाघातः' स उच्यते ॥'' गर्जत्प्रलयघनघटाऽन्योन्यसङ्घट्ट-चण्डः=गर्जन शब्द करते हुये प्रलयकालीन मेघों के परस्पर रगड़ने से अत्यन्त भयंकर। तात्पर्य है कि जैसे प्रलयकालीन मेघ परस्पर टकराया करते हैं। और उनमें से अत्यन्त भीषण शब्द निकला करता है उस ही भीषण शब्द के समान भयंकर ध्वनि नेपथ्य से भी सुनाई पड़ रही थी। निधन=मरण। उत्पातनिर्घातवातः=अशुभ सूचक झंझावात (आँधी) के सदृश। प्रतिरसित =प्रतिध्वनि। सखा=मित्र अर्थात् उसके समान। दुन्दुभिः=भेरी-नगाड़ा— "भेर्यानक दुन्दुभिः" इत्यमरः। ताड्यते=ताड़ित किया जा रहा है अर्थात् बजाया जा रहा है।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

कञ्चुकी—कुमार ! एष खलु भगवान्वासुदेवः।

(सर्वे कृताञ्जलयः समुत्तिष्ठन्ति।)

भीमसेनः—(ससंभ्रमम्) क्वासौ भगवान् ?

कञ्चुकी—पाण्डवपक्षपातामर्षितेन सुयोधनेन संयमितुमारब्धः।

(सर्वे सम्भ्रमं नाटयन्ति।)

भीमसेनः—किं संयतः ?

कञ्चुकी—नहि नहि संयमितुमारब्धः।

भीमसेनः—किं कृतं देवेन ?

कञ्चुकी—ततः स महात्मा दर्शितविश्वरूपतेजःसंपातमूर्छितमवधूय कुरुकुलमस्मच्छिविरसन्निवेशमनुप्राप्तः कुमारमविलम्बितं द्रष्टु-मिच्छति।

भीमसेनः—(सोपहासम्) किं नाम दुरात्मा सुयोधनो भगवन्तं संयमितुमिच्छति ? (आकाशे दत्तदृष्टिः) आः दुरात्मन् कुरुकुलपांसुल, एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम्।

सहदेवः—आर्य ! किमसौ दुरात्मा सुयोधनहतको वासुदेवमपि भगवन्तं स्वरूपेण न जानाति ?

भीमसेनः—वत्स ! मूढः खल्वयं दुरात्मा कथं जानातु । पश्य—

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ॥२३॥

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—कुमार ! इन भगवान् वासुदेव (कृष्ण) को........

(सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं ।)

भीमसेन—(घबराहट के साथ) कहाँ हैं वह भगवान् ?

कञ्चुकी—(श्रीकृष्ण द्वारा दिखलाये गये) पाण्डवों के प्रति पक्षपात को सहन न करने वाले दुर्योधन के द्वारा उन्हें बांध लेने का प्रयास किया जा रहा था (अर्थात् दुर्योधन उनको बांध लेना चाह रहा था ।) ।

(सभी घबराहट का अभिनय करते हैं ।)

भीमसेन—क्या बाँध लिये गये ?

कञ्चुकी—नहीं नहीं, बांधने का प्रयत्न किया गया ।

भीमसेन—(उस दशा में) भगवान् ने क्या किया ?

कञ्चुकी—तदनन्तर वह महात्मा (अपने द्वारा) प्रकट किये गये विश्व-रूप के तेज के प्रहार से मूच्छित हुये कुरु-वंश को अपमानित करके हमारी छावनी में आ गये हैं और अविलम्ब आपको देखना चाहते हैं ।

भीमसेन—(उपहास के साथ) क्या दुष्ट दुर्योधन भगवान् को बांधना चाहता है ? (आकाश की ओर देखते हुये) आह ! दुष्ट, कुरुवंश को कलङ्कित करने वाले, इस प्रकार तेरे मर्यादा का अतिक्रमण (उल्लंघन)

करने वाला होने पर (तुम्हारे विनाश के निमित्त) पाण्डवों का क्रोध तो केवल निमित्तमात्र ही होगा (अर्थात् तुझे तो अपने द्वारा किये गये पाप के परिणामस्वरूप मरना ही है, हम लोगों का क्रोध तो केवल निमित्तमात्र ही होगा)।

सहदेव—आर्य! क्या यह दुष्ट दुर्योधन भगवान् के यथार्थस्वरूप को भी नहीं जानता है?

भीमसेन—वत्स! मूर्ख, दुरात्मा यह (दुर्योधन) क्या जाने? देखो—

अन्वयः—आत्मारामाः, निर्विकल्पे समाधौ विहितरतयः, ज्ञानोद्रेकात् विघटिततमोग्रन्थयः, सत्त्वनिष्ठाः, तमसां वा ज्योतिषां परस्तात् यं कमपि वीक्षन्ते, तं अमुं पुराणं देवं मोहान्धः अयं कथं वेत्तु?

संस्कृत-व्याख्या—कृष्णस्य ब्रह्मरूपत्वं प्रतिपादयन्नाह—आत्मारामाः= आत्मनि आ-समन्तात् रमन्ते-विचरन्तीति आत्मारामाः-आत्मनि विहरणशीलाः त्यक्तेतरसङ्गा इत्यर्थः वा—आ-सम्यक् रमन्ते अस्मिन्निति आरामः-रमणस्थलम्, आत्मा एव आरामः रमणस्थलं वनं वा येषां ते तथोक्ताः। आत्मवनयोः तुल्यत्वे-नात्यन्तमौदास्यमाविष्कृतम्, निर्विकल्पे=ज्ञाताज्ञान-ज्ञेय—भेदशून्ये, समाधौ= नियमविशेषे, विहितरतयः=विहिताः कृताः रतिः तल्लीनता यैस्ते। ('विहित-धृतयः' इत्यपि पाठः। तत्र—विहिता धृतिः धारणा यैस्ते। इदं तु अत्यन्ताभ्या-सवैराग्याभ्यां भवति—उक्तं च गीतायाम्—"असंशयं महाबाहो! मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते"॥ अथवा—आत्मनीव आरामेऽपि आ-समन्तात् विहितरतयः—कृतानुरागाः। यद्वा आत्मा एव आरामो वनं, तत्र आ-समन्ताद्भावेन विहितरतयः॥ 'विहितमतयः' इत्यपि पाठः विहितमतयः=समाहितचित्ताः।), ज्ञानोद्रेकात्=ज्ञानस्य-तत्वज्ञानस्य उद्रेकात् माहात्म्यात् आधिक्याद्वा, विघटिततमोग्रन्थयः=विघटिताः=विनाशिताः तमसः-मिथ्या ज्ञानस्य ग्रन्थयः—बन्धनानि यैस्ते, सत्त्वनिष्ठाः=सत्वे सत्वगुणे सात्विके भावे वा निष्ठा रतिः येषान्ते—सात्विकभावापन्नाः मुनयः इत्यर्थः, तमसाम् =अन्धकाराणां—मिथ्याज्ञानानाम्; वा, ज्योतिषाम्=तेजसाम्—तत्वज्ञानानाम्; परस्तात्=परम् (ताभ्यामपि अगम्यमित्यर्थः); यम्=यादृशम्; कमपि=

अनिर्वचनीयमित्यर्थः, वीक्षन्ते=पश्यन्ति—साक्षात्कुर्वन्ति, तम्=तादृशम्, अमुम्=एतम्, पुराणम्=सनातनम्—अनादिसिद्धम् – देवम्=परमात्मानम्, मोहान्धः=मोहेन-अज्ञानेन अन्धः विमूढः, अयम्=एषः–दुर्योधनः इत्यर्थः,–कथम्=केनप्रकारेण, वेतु=जानातु । न कथमपीत्यर्थः । पवित्रान्तःकरणवृत्तिभिः मुनिभिः ज्ञातुं योग्यः ब्रह्मस्वरूपः श्रीकृष्णः दुरात्मना दुर्योधनेन कथं ज्ञातुं शक्यः ? न कथमपीति भावः ।

हिन्दी-अनुवाद—आत्मारामाः=आत्मा में ही पूर्णरूपेण रमण करने वाले, निर्विकल्पे=निर्विकल्पक, समाधौ=समाधि में, विहितरतयः=तल्लीन रहने वाले ('विहितमतयः' पाठ में—अपने मन (चित्त) को लगाये हुये), ज्ञानोद्रेकात्=ज्ञान के उद्रेक–आधिक्य से अर्थात् तत्वज्ञान के हो जाने से; विघटिततमोग्रन्थयः=नष्ट हुयी अज्ञानग्रन्थि वाले, सत्वनिष्ठाः=ब्रह्मनिष्ठ योगीजन, तमसाम्=अन्धकार अथवा अज्ञान, वा, अथवा, ज्योतिषाम्=प्रकाश–ज्ञान के, परस्तात्=परे, यम्=जिस, कमपि=अनिर्वचनीय ब्रह्म को, वीक्षन्ते=देखा करते हैं—साक्षात्कार किया करते हैं, तम्=उस, अमुम्=इस, पुराणम्=चिरन्तन, देवम्=देव को—परमात्मा को—परमात्मरूप श्रीकृष्ण को, मोहान्धः=अज्ञान के अन्धकार से आवृत अथवा अज्ञानी, अयम्=यह–दुर्योधन, कथम्=कैसे, वेत्तु=जाने । अर्थात् तत्वज्ञान से पवित्र अन्तःकरण वाले मुनि लोगों द्वारा साक्षात्कार किये जाने योग्य ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण को यह दुष्ट, अज्ञानी दुर्योधन कैसे समझ सकता है ? अर्थात् किसी भी दशा में वह श्रीकृष्ण को जानने योग्य नहीं है ।

भावार्थ—आत्मा में ही पूर्णरूप से रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में ही निरत रहने वाले, तत्वज्ञान के प्रभाव से अपने अज्ञान को नष्ट कर देने वाले, सत्वगुण में ही निष्ठा रखने वाले—सात्विक योगीजन अन्धकार अथवा अज्ञान और प्रकाश अथवा ज्ञान—दोनों से परे जिस परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किया करते हैं, ऐसे उस चिरन्तन (श्रीकृष्ण रूप में स्थित) परमात्मा को यह महान् अज्ञानी तथा नीच आचरणवाला दुर्योधन किस भाँति जान सकने में समर्थ हो सकता है ? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं ।

छन्द—उक्त पद्य में "मन्दाक्रान्ता" नामक छन्द है। लक्षण–'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ ग युग्मम्"।

समास—दर्शितविश्वरूपतेजःसंपातमूर्छितम्=दर्शितम् यत् विश्वरूपम् (विश्वम्भरमूर्तिः) तस्य तेजः (प्रकाशः) इति दर्शितविश्वरूपतेजः, तस्य सम्पातः (समूहः) (षष्ठी तत्पु०) इति दर्शितविश्वरूपतेजसंपातः तेन मूर्छितम्। **अस्मच्छिबिरसन्निवेशम्**=अस्माकं शिविरस्य सन्निवेशम् (स्थानम्) इति अस्मच्छिबिरसन्निवेशम्। **कुरुकुलपांसुल**=कुरुकुलस्य कुरुकुले वा पांसुलः (पापकर्त्ता) (तत्पु०) इति कुरुकुलपांसुलः तत्सत्वुद्धौ। **अतिक्रान्तमर्यादे**=अतिक्रान्ताउल्लङ्घिता मर्यादा-स्थितिः तेन तस्मिन्। **आत्मारामाः**=आ-समन्तात् सम्यक् वा रमन्ते अस्मिन्निति आरामः, आत्मा आरामः येषां ते आत्मारामाः। **ज्ञानोद्रेकात्**=ज्ञानस्य उद्रेकः (ष०तत्पु०) ज्ञानोद्रेकः तस्मात्। **विघटिततमोग्रन्थयः**=विघटिताः तमसः ग्रन्थयः यैः ते। **सत्त्वनिष्ठाः**=सत्त्वगुणे सात्त्विके भावे वा निष्ठा (रतिः) येषां ते। **मोहान्धः**=मोहेन अन्धः, इति मोहान्धः।

टिप्पणियाँ—पाण्डवपक्षपातामर्षितेन=पाण्डवों के प्रति दिखलाये गये प्रेम-प्रदर्शन के कारण क्रोधित। **दर्शितविश्वरूपतेजःसम्पातमूर्च्छतम्**=प्रकट किये गये विश्वरूप के तेज के प्रहार से मूर्च्छित हुये। विश्वरूप उस स्वरूप को कहते हैं कि जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड चलता-फिरता दृष्टिगोचर होता हो। श्रीकृष्ण ने मोह से युक्त अर्जुन को भी यही स्वरूप दिखलाया था, जिसे वे अपने बाह्य चक्षुओं से नहीं देख सके थे। **कुरुकुलम्**=कौरवों का वंश। **अस्मच्छिबिरसन्निवेशम्**=हमारे पड़ाव अथवा छावनी में। **कुरुकुल-पांसुल**–कुरुवंश के लिये पापस्वरूप। **अनुप्राप्तः**=आगये हैं। **अविलम्बितम्**=बिना विलम्ब के अर्थात् अतिशीघ्र ही। **अतिक्रान्तमर्यादे**=मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले। **आत्मारामाः**=अपनी आत्मा में ही विहार करने वाले अथवा आत्मा ही है रमण करने का स्थान जिनका। **निर्विकल्पे**=समाधि के दो प्रकार माने गये हैं (१) सविकल्पक-समाधि (२) निर्विकल्पक-समाधि। समाधि की प्रथम-अवस्था का नाम सविकल्पक तथा दूसरी अर्थात्

परिपक्व अवस्था का नाम निर्विकल्पक है। कहने का अभिप्राय यह है कि सविकल्पक-समाधि में ज्ञाता, (अर्थात् स्वकीय-अपना), ज्ञान और ज्ञेय (परमात्मा आदि) का अन्तर ज्ञात रहा करता है किन्तु निर्विकल्पकसमाधि में इन (ज्ञाता आदि) तीनों का भेद समाप्त हो जाया करता है तथा सब कुछ ज्ञेय-स्वरूप अथवा तद्‌रूप ही हो जाया करता है। **विहितरतयः**=हो गया है अनुराग जिनको अर्थात् तल्लीन रहने वाले। **ज्ञानोद्रेकात्**=तत्वज्ञान के आधिक्य से। अथवा परिपक्व ज्ञान से। **विघटिततमोग्रन्थयः**=जिनके अज्ञान के बन्धन नष्ट हो गये हैं ऐसे। **सत्त्वनिष्ठाः**=सत्वगुण अथवा सात्विक भावों में ही स्थित रहने वाले। **तमसाम्**=अन्धकारों अथवा मिथ्याज्ञानों के। **तेजसाम्**=प्रकाशों अथवा ज्ञानों से। अथवा तमस् शब्द से तमोगुण सम्बन्धी कार्यों तथा तेजस् शब्द से रजोगुणसम्बन्धी तथा सतोगुण सम्बन्धीकार्यों के। **परस्तात्**=(इन सभी के) परे। **कमपि**=किसी अनिर्वचनीय को। **वी..न्ते**=देखते हैं अर्थात् साक्षात्कार किया करते हैं। **पुराणम्**=चिरन्तन। त्रिगुणातीत ब्रह्म के स्वरूप को। **देवम्**=दिव्यगुणों से युक्त उस परब्रह्म परमात्मा को। **मोहान्धः**=अज्ञान के कारण अन्धा अर्थात् अज्ञानी। **कथम्**=किस भाँति। **वेत्तु**=जानें समझे। अर्थात् अज्ञानी दुर्योधन भगवान् कृष्ण के वास्तविक स्वरूप को कैसे जान वा समझ सकता है अर्थात् किसी भी प्रकार से वह उनको नहीं समझ सकता है।

आर्य जयन्धर ! किमिदानीमध्यवस्यति गुरुः ?

कञ्चुकी--स्वयमेव गत्वा महाराजस्याध्यवसितं ज्ञास्यति कुमारः (इति निष्क्रान्तः।)।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो ! द्रुपदविराटवृष्ण्यन्धकसहदेवप्रभृतयोऽस्मदक्षौहिणी-पतयः, कौरवचमूप्रधानयोधाश्च ! शृण्वन्तु भवन्तः !,

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता।

तद्द्यूतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥२४॥

आर्य जयन्धर ! अब बड़े भाई (युधिष्ठिर) क्या निश्चय कर रहे हैं ?

कञ्चुकी—आप स्वयं ही जाकर महाराज के निश्चय को जान लेंगे । (ऐसा कहकर कञ्चुकी चला जाता है ।)

[नेपथ्य (अर्थात् पर्दे के पीछे) में कोलाहल के पश्चात्]

हे हे द्रुपद, विराट, वृष्णि, अन्धक सहदेव आदि हमारी सेना के सेनापतियों ! और कौरवों की सेना के प्रधान वीरो ! आप लोग सुनें—

अन्वयः—सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा (युधिष्ठरेण) यत् यत्नेन मन्दीकृतम्, कुलस्य शान्ति इच्छता शमवता (तेन) यत् विस्मर्तुं अपि ईहितम्, द्यूतारणिसम्भृतं तत् यौधिष्ठिरं क्रोधज्योतिः नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः महत् (सत्) इदं कुरुवने जृम्भते ।

संस्कृत-व्याख्याः—सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा=सत्यं एव व्रतं सत्यव्रतम्, तस्य भङ्गः—विच्छेदः, तस्मात् भीरु-भयशीलम् मनः यस्य तेन, (युधिष्ठिरेण), यत्—क्रोधाग्निरित्यर्थः, यत्नेन=प्रयासेन, मन्दीकृतम्=अल्पीकृतम्, कुलस्य=वंशस्य, शान्तिम्=कल्याणम्, इच्छता=अभिलषता, शमवता=शान्तेन, शान्तस्वभावेन तेन युधिष्ठिरेण—इति शेषः), विस्मर्तुंम्=विस्मृतिं कर्त्तुंम्, अपि, ईहितम्=चेष्टितम्, द्यूतारणिसम्भृतम्=द्यूतमेव कैतवमेव (द्यूतोऽस्त्रियामक्षवती कैतवं पण इत्यपि" इत्यमरः) अरणिः—निर्मन्थ्यदारु तेन सम्भृतम्-उद्भूतम्—द्यूतारणिसम्भृतम्-द्यूतारणिकाष्ठोद्भूतम्, तत्=बहोः कालाद्धूमायितमित्यर्थः, यौधिष्ठिरम्—युधिष्ठिरस्य सम्बन्धि इदं यौधिष्ठिरम्—युधिष्ठिरे समुत्पन्नम्. क्रोधज्योतिः=क्रोधात्मकं ज्योतिः—क्रोधज्योतिः—क्रोधाग्निः, नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः=नृपस्य-राज्ञः द्रुपदस्य सुता-पुत्री (ष० तत्पु०)—इति नृपसुता द्रौपदी तस्याः केशाः—कचाः च अम्बराणि-वस्त्राणि च, तेषामकर्षणैः—आहरणैः, महत्=प्रवृद्धम् (सत्), इदम्=तदिदम्, कुरुवने=कुरुकुलाख्ये वने, जृम्भते=प्रवर्द्धते । कुरुवंशदाहाय इदानीं प्रवर्द्धते । युद्धघोषणेयम् ।

हिन्दी-अनुवाद—सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा=सत्यरूपी अपने व्रत के भङ्ग होने से भयभीत मन वाले, (युधिष्ठिरेण=युधिष्ठिर ने), यत्=जिस (अपने क्रोध को,, यत्नेन=यत्नपूर्वक, मन्दीकृतम्=मन्द कर रखा था अर्थात् रोक रखा था, कुलस्य=कुलकी, शान्तिम्=शान्ति को, इच्छता=चाहने वाले, शमवता=शान्ति को धारण करने वाले (युधिष्ठिर ने) यत्=जिसको, विस्मर्तुम्=भुला देने की, अपि=भी: ईहितम्=चेष्टा की थी, द्यूतारणिसम्भृतम्=जुए रूपी अरणि से उत्पन्न, तत्=वह, यौधिष्ठिरम्=युधिष्ठिर की, क्रोधज्योतिः=क्रोधरूपी अग्नि की चिनगारी, नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः=द्रौपदी के केश और वस्त्रों के खींचे जाने से, महत्=विशालता को प्राप्त (सत्=होती हुयी) इदम्=इस समय, कुरुवने=कुरु वंश रूपी वन में, जृम्भते=भड़क उठी है।

भावार्थ—जिस क्रोध को अपने सत्यरूपी व्रत के भंग हो जाने के भय से महाराज युधिष्ठिर ने महान् प्रयत्नपूर्वक रोका था तथा अपने वंश की शान्ति की अभिलाषा से (जिस क्रोध को) उन्होंने भूलने का भी प्रयास किया था, द्रौपदी के केश तथा वस्त्रों को खींचे जाने से जुआ रूपी अरणि से निकली हुयी युधिष्ठिर की वह क्रोधरूपी अग्नि कुरुवंशरूपी वन को भस्म कर देने की दृष्टि से अब प्रचण्ड रूप को धारण कर रही है।

कहने का तात्पर्य यह है कि युधिष्ठिर का क्रोध अब पुनः पूर्णवेग के साथ उद्दीप्त हो रहा है और उसके उद्दीप्त होने का परिणाम यह होगा कि कुरुवंश नष्ट हो जायगा। एक प्रकार से इस भाँति युद्ध की घोषणा ही की जा रही है।

अलंकारः—उक्त पद्य में 'लुप्तोपमा' अलंकार है। साथ ही इसमें 'काव्यलिङ्ग" नामक अलंकार की प्रतीति भी होती है।

छन्दः—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समासः—सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा=सत्यं एव व्रतं तस्य भङ्ग (ष०त०) इति सत्यव्रतभङ्गः, तस्मात्—सत्यव्रतभङ्गात् भीरु मनः यस्य, तेन। द्यूतारणिसम्भृतम्=द्यूतमेव अरणिः,—द्यूतारणि, तेन सम्भृतम्—इति। यौधिष्ठिरम् =युधिष्ठिरस्य इदं—यौधिष्ठिरम्। नृपसुताकेशाम्बरकर्षणैः=नृपस्य सुता

(ष० त०) नृपसुता, केशाश्च अम्बराणि च—केशाम्बराणि (द्वन्द्व), नृपसुतायाः केशाम्बराणि (ष०त०)—नृपसुताकेशाम्बराणि, तेषां आकर्षणैः—इति।

टिप्पणियां—जयन्धर !=जयन्धर नामक कञ्चुकी। अध्यवस्यति=निश्चय किया है। अध्यवसितम्=विचार अथवा निर्णय। कलकलः=कोलाहल-शोर ("कोलाहलःकलकलः" इत्यमरः)। यत्नेन=बड़े प्रयत्न के साथ। मन्दीकृतम्=किसी प्रकार से मन्दवेगता को प्राप्त कराया—अर्थात् रोका था। शान्तिम्=कल्याण। शमवता=शान्तस्वभाव वाले युधिष्ठिर के द्वारा। द्यूतारणिसम्भृतम्=द्यूतरूपी अरणि (काष्ठविशेष) से उत्पन्न। पलाश (ढाक) अथवा शमीवृक्ष की सूखी हुयी लकड़ी को लेकर उसमें छोटा सा गड्ढा बना दिया जाता है। साथ ही एक दूसरी लकड़ी लेकर उसे नुकीला बनाकर गड्ढे वाली लकड़ी को नीचे पृथ्वी पर रखकर नुकीली लकड़ी को उसी गड्ढे में डालकर मथानी की भाँति चलाया जाता है। गरम हो जाने के पश्चात् उसमें से आग निकलने लगा करती है। इन्हीं दोनों काष्ठों का नाम अरणि है। प्राचीनकाल में इसी अरणि से उत्पन्न अग्नि से यज्ञ आदि किये जाया करते थे। महत्=अत्यधिक अथवा वृद्धि को प्राप्त हुयी। जृम्भते=बढ़ रही है, प्रकाशित हो रही है, भड़क उठी है।

भीमसेनः—(आकर्ण्य, सहर्षम्) जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहतप्रसरमार्यस्य क्रोधज्योतिः।

द्रौपदी—नाथ ! किमिदानीमेष प्रलयजलधरस्तनितमांसलः क्षणे क्षणे समरदुन्दुभिस्ताड्यते। (णाह, किं दाणीं एसो पलअजलहरत्थणिदमंसलो क्खणे क्खणे समरदुन्दुही ताडीअदि।)

भीमसेनः—देवि। किमन्यत्। यज्ञः प्रवर्तते।

द्रौपदी—(सविस्मयम्) क एष यज्ञः ? (को एसो जण्णो।)

भीमसेनः—रणयज्ञः। तथा हि—

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः
संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।

कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुंदुभिः ॥२५॥

भीमसेन—(सुनकर, हर्ष के साथ) बढ़े, आर्य (युधिष्ठिर) की क्रोधाग्नि बिना किसी रोक-टोक के बढ़े ।

द्रौपदी—स्वामिन्! प्रलयकालीन मेघ के गर्जन के सदृश गम्भीर यह युद्ध का नगाड़ा क्षण-क्षण में क्यों बजाया जा रहा है ?

भीमसेन—देवि ! दूसरा क्या ? यज्ञ प्रारम्भ हो रहा है ।

द्रौपदी—(आश्चर्य के साथ) यह कौन सा यज्ञ है ?

भीमसेन—(यह) युद्धरूपी यज्ञ है । क्योंकि—

अन्वयः—वयं चत्वारः ऋत्विजः, सभगवान् हरिः कर्मोपदेष्टा, नरपतिः संग्रामाध्वरदीक्षितः, पत्नी गृहीतव्रता, कौरव्याः पशवः, प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलम्, यशोदुन्दुभिः राजन्योपनिमन्त्रणाय स्फीतं रसति ।

संस्कृत-व्याख्या—वयम्=भीमादयः, चत्वारः=चतुःसंख्याकाः भ्रातरः—भीमार्जुनसहदेवनकुलः—इत्यर्थः, ऋत्विजः=ब्रह्मोद्गातृहोत्रध्वर्युरूपाः ज्ञयकर्त्तारः-रणयज्ञप्रवर्त्तकाः होतारः—इत्यर्थः, सः=सन्धानाय प्रयतमान इत्यर्थः, भगवान्=ऐश्वर्यसम्पन्नः, हरिः=श्रीकृष्णः, कर्मोपदेष्टा=कर्मणः—कर्तव्यस्य उपदेष्टा निर्देष्टा—आचार्य इत्यर्थः, नरपतिः=राजा युधिष्ठरः, संग्रामाध्वरदीक्षितः=संग्रामः—युद्धम् एव अध्वरः यज्ञः तत्र दीक्षितः दीक्षां प्रापितः—प्रधानो यजमानः इत्यर्थः, पत्नी=स्त्री त्वमितिभावः, गृहीतव्रता=गृहीतं स्वीकृतं व्रतं नियमः यया सा—कृतनियमेति यावत्—यजमानपत्नी-इत्यर्थः (व्रतमत्र कौरवनिधने केशान्संहरिष्यामीति नियमरूपम्।),कौरव्याः=कुरुकुलजाताः दुर्योधनादयः, पशवः=यज्ञे(रणयज्ञे) घातनीयाः पशव इत्यर्थः, प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः=प्रियायाः प्रेयस्याः तवेत्यर्थः परिभवः तिरस्कारः (वस्त्राद्याकर्षणरूपः तिरस्कारः) तज्जनितः क्लेशः दुःखम् तस्य उपशान्तिः उपशमः, एव, फलम्=परिणामः, यशोदुन्दुभिः=यशविस्तारकः पटहः ("पटहो ढक्का

भेर्यानकदुन्दुभिः," इत्यमरः) यशोभेरी वा, रणभेरी-इत्यर्थः, राजन्योप निमन्त्रणाय-राजन्यानां-क्षत्रियाणां राजसमूहानां वा उपनिमन्त्रणम्-आह्वानं तस्मै, स्फीतम्-प्रवृद्धं यथा स्यात्तथा, रसति-धीरं ध्वनतिशब्दं करोति वा। युद्धार्थमाह्वानाय भेरी ताड्यते इत्यभिप्रायः ॥२५॥

हिन्दी-अनुवाद—वयम्=हम, चत्वारः=चारों (भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) भाई, ऋत्विजः=ऋत्विक् हैं। सः=वे, भगवान्=ऐश्वर्यशाली, हरिः=श्री कृष्ण ही, कर्मोपदेष्टा=कर्म का उपदेश देने वाले आचार्य हैं। नरपतिः=राजा युधिष्ठिर, संग्रामाध्वरदीक्षितः=संग्रामरूपी यज्ञ में दीक्षा लिये हुये (अर्थात् यजमान) हैं। पत्नी=स्त्री अर्थात् तुम, गृहीतव्रता=व्रतधारण की हुयी (कौरवों के विनाश के पश्चात् ही केशों को बांधूँगी इस व्रत के धारण किये हुये) हो। कौरव्याः=कौरव लोग (बलि किये जाने वाले), पशवः=पशु हैं। प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः=प्रिया के (अर्थात् तुम्हारे) अपमान से उत्पन्न क्लेश की शान्ति ही (इस रणयज्ञ का), फलम्=फल है। यशोदुन्दुभिः—कीर्तिका विस्तार करने वाली यह रणभेरी, राजन्योपनिमन्त्रणाय=युद्धवीर राजसमूह अथवा युद्धवीर क्षत्रियों को आमन्त्रित करने के लिये, स्फीतम्=जोर से, रसति=बज रही है ॥२५॥

भावार्थ— (इस रणरूपी यज्ञ में) हम चारों (भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) भाई "पुरोहित" हैं। वे भगवान् श्रीकृष्ण ही कर्त्तव्यकर्मों का उपदेश देने वाले 'आचार्य' हैं। राजा युधिष्ठिर इस संग्राम रूपी यज्ञ की दीक्षा लिये हुये 'यजमान' हैं। (कौरवों के विनाश के पश्चात् ही मेरे केशों का संयमन होगा अर्थात् मेरी वेणी बँधेगी इस प्रकार के) व्रत को धारण करने वाली द्रौपदी ही (यजमान की) 'पत्नी' है। दुर्योधन आदि कौरव लोग ही बलि होने वाले पशु हैं। प्रिया द्रौपदी के अपमान का बदला ले लेना ही इस यज्ञ का 'फल' है। अतएव इस रणयज्ञ में राजसमूह अथवा युद्धवीर क्षत्रियों का आह्वान करने के लिये ही यह यशोदुन्दुभि (भेरी अथवा नगाड़ा) गम्भीर ध्वनि के साथ बज रही है।

अलंकार—उक्त पद्य में "रूपक" अलंकार है।

छन्दः—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समासः—प्रलयजलधरस्तनितमांसलः=प्रलयस्य-जगद्विनाशस्य ये जलधराः-मेघाः, तेषां स्तनितम्-गर्जनमिव मांसलम्-गम्भीरम्। कर्मोपदेष्टा =कर्मस्य कर्मणां वा (ष० त०) उपदेष्टा-इति। संग्रामाध्वरदीक्षितः= संग्राम एव अध्वरः, तत्र दीक्षितः। ध्वर्यते हन्यतेऽस्मिन्निति ध्वरः-हिंसा, न विद्यतेऽध्वरः अस्मिन्निति अध्वरः-यज्ञः। प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः= प्रियायाः परिभवः-प्रियापरिभवः, प्रियापरिभवः एव क्लेशः प्रियापरिभव-क्लेशः, तस्य उपशान्तिः। राजन्योपनिमन्त्रणाय=राजन्यानाम् उपनिमन्त्रणाय-इति।

टिप्पणियाँ—अप्रतिहतप्रसरम्=जिसके वेग को रोका नहीं जा सकता अर्थात् बिना किसी रुकावट के अथवा बेरोक-टोक। प्रलयजलधरस्तनितमांसलः=प्रलयकालीन मेघ के सदृश गम्भीर। समरदुन्दुभिः=युद्धभेरी-युद्ध की घोषणा करने वाला नगाड़ा। ताड्यते=ताड़ित किया जा रहा है—बजाया जा रहा है। प्रवर्त्तते=प्रारम्भ किया जा रहा है। ऋत्विजः=युद्ध रूपी यज्ञ के प्रवर्त्तक होतागण। संग्रामाध्वरदीक्षितः=युद्ध रूपी यज्ञ में जिन्होंने दीक्षा ली है ऐसे। गृहीतव्रता=जिसने व्रत को धारण कर रखा है ऐसी—द्रौपदी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जबतक कौरव वंश का विनाश नहीं हो जावेगा तब तक वह अपनी चोटी नहीं बाँधेगी। यही उसका 'व्रत' है। पशवः=यज्ञ में बलि दिये जाने वाले पशु। प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः= प्रिया—द्रौपदी के वस्त्र, केश आदि के खींचे जाने से उत्पन्न अपमान का बदला। राजन्योपनिमन्त्रणाय=राजसमूह का अथवा युद्ध-वीर क्षत्रियों का आह्वान करने के लिये। स्फीतम्=महान् नाद से युक्त-प्रवृद्ध—अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हुआ। रसति=बज रहा है।

सहदेवः—आर्य! गच्छामो वयमिदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्रमानुरूपमाचरितुम्।

भीमसेनः—वत्स! एते वयमुद्यता एवार्यस्यानुज्ञामनुष्ठातुम्। (उत्थाय) देवि! गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलक्षयाय।

द्रौपदी—(वाष्पं वारयन्ती) नाथ ! असुरसमराभिमुखस्य हरेरिव मङ्गलं युष्माकं भवतु। (णाह, असुरसमराहिमुहस्स हरिणो विअ मङ्गलं तुह्माणं होदु।)

उभौ—प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनमस्माभिः।

द्रौपदी—अन्यच्च नाथ! पुनरपि युष्माभिः समरादागत्याहं समाश्वासयितव्या! (अण्णं च णाह, पुणोवि तुह्मेहिं समरादो आअच्छिय अहं समास्सासइदव्वा।)

भीमसेनः—ननु पाञ्चालराजतनये! किमद्याप्यलीकाश्वासनया।

भूयः परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्।
अनिःशेषितकौरव्यं नपश्यसि वृकोदरम् ॥२६॥

सहदेव—आर्य! (अपने से) बड़े जनों से अनुमति पाये हुये हम लोग अपने-अपने पराक्रम के योग्य आचरण करने के लिये चलें।

भीमसेन—वत्स! आर्य (युधिष्ठिर) की आज्ञा का पालन करने के लिये हम तैयार ही हैं। (उठकर) देवि! अब हम कौरवों के वंश के विनाश के लिये गमन करते हैं।

द्रौपदी—(आँखों में आँसू भरे हुये) असुरों के साथ युद्ध करने के लिये जाने वाले विष्णु के सदृश आप लोगों का मङ्गल होवे।

दोनों–हमलोगों द्वारा (आपका यह) मङ्गलवचन ग्रहण कर लिया गया।

द्रौपदी—और भी, स्वामिन्! युद्ध से लौटकर मुझे फिर भी आश्वस्त (सान्त्वना-प्रदान) कीजियेगा। (द्रौपदी के कहने का अभिप्राय यह है कि आप लोग सकुशल युद्ध से लौटकर आवें तथा मुझे सान्त्वना प्रदान करें।)

भीमसेन—हे पाञ्चालदेश के राजा की पुत्री! अब भी झूठे आश्वासन से क्या (प्रयोजन)?

अन्वयः—अनिःशेषितकौरव्यं, परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननं वृकोदरं भूयः न पश्यसि।

संस्कृत-व्याख्या—अनिःशेषितकौरव्यम्=अनिःशेषिताः न विनाशिताः कौरव्याः कुरुपुत्राः दुर्योधनादयः येन तादृशम्, परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्=परिभवेन-अपमानेन या क्लान्तिः लज्जा (परिभवक्षान्तिरिति पाठे परिभवस्य क्षान्तिः क्षमा-सहनशीलता वा) तया विधुरितं म्लानं उदस्तं वा आननं मुखं यस्य तम् (एतादृशम्); वृकोदरम्=भीमम्, न पश्यसि=द्रक्ष्यसि ('पश्यसि' इति पाठे भविष्यति लट्) ॥२६॥

हिन्दी-अनुवाद—अनिःशेषितकौरव्यम्=नहीं समाप्त कर दिया है दुर्योधन आदि कौरवों को जिसने, ऐसे (अर्थात् कौरवों का विनाश न किये हुये), परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्=अपमान के कारण होने वाली ग्लानि तथा लज्जा से दीन मुख वाले, वृकोदरम्=भीम को (तुम), भूयः=फिर से; न पश्यसि=नहीं देखोगी। (भीम के कहने का अभिप्राय यह है कि मैं कौरव का विनाश किये बिना अपना मुख तुम्हें न दिखलाऊँगा।)।

भावार्थ—अपमान के कारण उत्पन्न हुये दुःख तथा लज्जा से अवनत मुख से युक्त तथा कौरवों का मूल सहित विनाश न करने वाले भीमसेन को अब तुम पुनः नहीं देखोगी। अर्थात् सभी कौरवों को नष्ट करने के उपरान्त ही मैं तुम्हारे पास आऊँगा।

अलङ्कारः—इसमें "काव्यलिङ्ग" अलङ्कार है।

छन्दः—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है। वस्तुतः यह अनुष्टुप् छन्द का ही एक भेद है। जब इसी छन्द के द्वितीय और चतुर्थ चरण में चतुर्थ अक्षर के पश्चात् जगण आता है तो 'पथ्यावक्त्र' छन्द होता है।

समासः—गुरुजनानुज्ञाताः=गुरुजनैः (युधिष्ठरादिभिरित्यर्थः) अनुज्ञाताः इति गुरुजनानुज्ञाताः विक्रमानुरूपम्=विक्रमस्य (स्वस्वपराक्रमस्य) अनुरूपम् योग्यम्। पाञ्चालराजतनये=पाञ्चालराजस्य तनया इति पाञ्चालराजतनया तत्सम्बुद्धौ। अलीकाश्वासनया=अलीकं-व्यर्थं, आश्वासना इति अलीकाश्वासना, तया। अनिःशेषितकौरव्यम्=अनिःशेषिताः कौरव्याः येन तादृशम्। परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्=परिभवस्य क्लान्त्या, परिभवक्लान्त्या विधुरितं आननं यस्य, तम्।

टिप्पणियाँ—गुरुजनानुज्ञाताः—अपने से बड़े युधिष्ठिर आदि से अनुमति प्राप्त। वयम्=हम सभी भाई। विक्रमानुरूपम्=अपने-अपने पराक्रम के सदृश (योग्य)। असुरसमराभिमुखस्य—दैत्यों से युद्ध करने के लिये गमन करने वाले। हरेः=विष्णु के। प्रतिगृहीतम्=स्वीकार अथवा ग्रहण कर लिया गया। समाश्वासयितव्याः—आश्वस्त किया जाना चाहिये। अलीकाश्वासनया—झूठे आश्वासन से। परिभवक्लान्तिलज्जाविधुरिताननम्=तिरस्कारजन्य शिथिलता तथा लज्जा से अवनत अथवा दीन मुख वाला। अनिःशेषितकौरव्यम्=सभी कौरवों का नाश बिना किये हुये। वृकोदरम्=भीम को। पश्यसि=यहाँ भविष्यत् अर्थ में 'लट्' लकार का प्रयोग हुआ है। देखोगे ॥२६॥

द्रौपदी—नाथ ! मा खलु मा खलु याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानला अनपे (वे) क्षितशरीराः सञ्चरिष्यथ। यतोऽप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते ! (णाह, मा क्खु मा क्खु जण्णसेणीपरिहवुद्दीविदकोवाणला अणवेक्खिदसरीरा संचरिस्सध। जदो अप्पमत्तसंचरणिज्जाइं रिउबलाइं सुणीअन्ति।

भीमसेनः—अयि सुक्षत्रिये !

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के
मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ।
स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे
सङ्ग्रामैकार्णवान्तःपयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

द्रौपदी—नाथ ! नहीं, आपलोग याज्ञसेनी अर्थात् द्रौपदी के अपमान से अत्यधिक उद्दीप्त क्रोध वाले होकर अपने शरीर की परवाह बिना किये हुये (युद्ध में) विचरण न करें क्योंकि ऐसा सुना जाता है कि शत्रु की सेना

सावधानी के साथ विचरण किये जाने योग्य हुआ करती है। (अभिप्राय यह है कि शत्रु-सेना में सावधानी के साथ ही विचरण करना उचित है।)

भीमसेनः—अयि श्रेष्ठ क्षत्रिये !

अन्वयः—अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्क पङ्के, मग्नानां स्यन्दनानां उपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवा-तूर्यनृत्यत्कबन्धे, संग्रामैकार्णवान्तः पयसि विचरितुं पाण्डुपुत्राः पण्डिताः।

संस्कृत-व्याख्या—अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के= अन्योन्यं परस्परं यः आस्फालः सङ्घर्षः तेन भिन्नाः विघटितदेहाः ये द्विपाः गजाः तेषां यानि रुधिरवसामांसमस्तिष्कानि तान्येव पङ्कं कर्दमम्, तस्मिन्, मग्नानाम्=पतितानां त्रुडितानाम् वा, स्यन्दनानां=रथानाम्, उपरिकृतपदन्यास-विक्रान्तपत्तौ=उपरिकृताः उपरिविहिताः पदन्यासाः चरणविन्यासाः यैः तथा-भूताः विक्रान्ताः दर्शितपराक्रमाः पत्तयः पदातयः यत्र तस्मिन्, स्फीतासृक्पान-गोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे=स्फीतम्—समृद्धम् यदसृक्—रुधिरं तस्य पानगोष्ठीषु पानसभासु (मिलितेषु समाजेषु-इत्यर्थः) रसन्त्यः नदन्त्यः शब्दा-यमानाः अशिवाः अमङ्गलरूपाः याः शिवाः शृगाल्यः ता एव तूर्याणि मर्दलानि (लोके 'तुरही' इति नाम्ना प्रसिद्धानि) तैः नृत्यन्तः—नर्तनं कुर्वन्तः कवन्धाः छिन्नमस्तकाः शवाः यस्मिन् तादृशे, संग्रामैकार्णवान्तः पयसि= संग्रामः युद्धं एव एकः—प्रधानः अर्णवः सागरः तस्य अन्तःपयसि मध्यजले, विचरितुम्=सञ्चरितुम्, पाण्डुपुत्राः=पाण्डुतनयाः—युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः—इत्यर्थः, पण्डिताः=कुशलाः=प्रवीणाः वा, सन्तीति शेषः। अतिभीषणेऽपि समरे वयं योद्धुं कुशलाः स्म। अतो न शङ्काकार्या—इत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद—अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के= परस्पर टकराने से घायल हुये हाथियों के रक्त, चर्बी, मांस और मस्तिष्क से उत्पन्न कीचड़ में, मग्नानाम्=डूबे हुये, स्यन्दनानाम्=रथों के, उपरि= ऊपर, कृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ=पैरों को रखकर पराक्रम दिखलाने वाली पैदल सेना है जिसमें ऐसे, स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे= अत्यधिक रक्त की पानगोष्ठियों में शब्द करती हुयीं अथवा चिल्लाती हुयीं

अमङ्गलकारी सियारिन् रूपी तुरही (वाद्यविशेष) पर नृत्य कर रहे हैं (शिर रहित शरीर के) धड़-भाग जिसमें ऐसे, संग्रामैकार्णवान्तःपयसि=युद्धरूपी अद्वितीय समुद्र के मध्य जल में, विचरितुम्=विचरण करने अथवा घूमने में, पाण्डुपुत्राः=पाण्डु के पुत्र अर्थात् युधिष्ठिर आदि पाण्डव, पण्डिताः=चतुर, सन्ति=हैं। भीम के कहने का अभिप्राय यह है कि हम सभी पाण्डव अतिभीषण युद्ध में भी लड़ने में कुशल हैं। अतः तुमको किसी भी प्रकार की आशंका नहीं करना चाहिये ॥२७॥

भावार्थ—परस्पर (आपस) में टक्कर खाने से जिनके मस्तक फट गये हैं। ऐसे हाथियों के रक्त, चर्बी, मांस और मस्तिष्क आदि के कीचड़ में डूबे हुये रथों के ऊपर अपने पैरों को रखकर अपना पराक्रम प्रदर्शित करने वाले वीर पैदल सैनिक जिस युद्ध में विद्यमान हैं तथा अत्यधिक रक्त का पान करने वाली गोष्ठियों में चीखती हुयी अमंगलकारीध्वनि से युक्त गीदड़ियों रूपी तुरहियों पर जहाँ कबन्ध (शिररहित शरीर के भाग अर्थात् धड़) नृत्य कर रहे हैं ऐसे संग्राम (युद्ध) रूपी अद्वितीय समुद्र के मध्यभागीय जल में विचरण करने में पाण्डु के पुत्र (अर्थात् हमलोग) पूर्णतया कुशल (चतुर) हैं। अतएव तुमको हम लोगों के बारे में किसी भी प्रकार की चिन्ता, आशंका आदि नहीं करनी चाहिये।

अलङ्कारः—इस पद्य में 'उपमा' तथा 'रूपक' अलङ्कार हैं।

छन्दः—इसमें 'स्रग्धरा' नामक छन्द हैं। लक्षण—"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्" ॥

समासः—याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानला=याज्ञसेन्याः (द्रौपद्याः) परिभवः-इति याज्ञसेनीपरिभवः, याज्ञसेनीपरिभवेन उद्दीपितः कोपानलः येषां ते। अनपेक्षितशरीराः=अनपेक्षितं (अचिन्तितम्) शरीरं यैः ते। अप्रमत्तसञ्चरणीयानि=न प्रमत्तं यस्मिन् कर्मणि यथा तथा सञ्चरणीयानि। उपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ=उपरिकृताः पदन्यासाः यैः तादृशाः विक्रान्ताः पत्तयः यस्मिन् तस्मिन्। संग्रामैकार्णवान्तःपयसि=संग्राम एव एकः (मुख्यः) अर्णवः-संग्रामैकार्णवः, तस्य अन्तःपयसि।

टिप्पणियाँ—याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानला=द्रौपदी के अपमान के कारण उद्दीप्त हो गई है क्रोधाग्नि जिनकी ऐसे। मा खलु=निश्चितरूप से नहीं।, अनपेक्षितशरीरा:=अपने शरीर की चिन्ता न करते हुये अर्थात् अत्यधिक साहस का आचरण करते हुये। अप्रमत्तसञ्चरणीयानि=(अप्रमत्त अर्थात् सावधान) सावधानता के साथ विचरण करने योग्य। रिपुबलानि=शत्रु की सेनाएँ। अन्योन्यम्=परस्पर-आपस में। आस्फालः=संघर्ष-टकराने से। भिन्नाः=विदीर्ण हुये—फट गये हुये। पङ्के=कीचड़ में। मग्नानाम्=डूबे हुये। स्यन्दनानाम्=रथों के। न्यासः=रखना। विक्रान्ताः=पराक्रम प्रदर्शित करने वाले अथवा पराक्रम प्रदर्शित कर दिया है जिन्होने ऐसे। पत्तिः=पैदलसेना। स्फीतम्=समृद्ध अथवा—अत्यधिक। असृक्=रक्त (खून)। रसत्=शब्द करते हुये। अशिवाः=अमङ्गल स्वरूप—अकल्याण-कारी। शिवाः=शृगालियाँ, सियारिनें। ("स्त्रियां शिवा भूरिमाय गोमायु-मृगधूर्तकाः" इत्यमरः)। तूर्यः=तुरही नाम का बाजा। कबन्धः=शिर रहित शरीर का भाग अर्थात् धड़। ("कबन्धोऽस्त्रीक्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्" इत्यमरः।)। एकः=मुख्य—प्रधान। अर्णवः=समुद्र—(उदन्वान् उदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः "इत्यमरः"।)। अन्तःपयसि=मध्यजल में—जल के मध्यभाग में। विहरितुम्=विचरण करने में—घूमने में। पण्डिताः=चतुर, कुशल, दक्ष।

(सभी निकल जाते हैं।)

॥ इस प्रकार 'वेणीसंहार' नाटक का प्रथम अङ्क समाप्त हुआ ॥

॥ इत्याचार्यसुरेन्द्रदेवशास्त्रिकृतायां वेणीसंहारस्य 'आशुबोधिनी' व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ॥

———

द्वितीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति कञ्चुकी]

कञ्चुकी—आदिष्टोऽस्मि महाराजदुर्योधनेन–विनयन्धर, सत्वरं गच्छ त्वम् । अन्विष्यतां देवी भानुमती । अपि निवृत्ता अम्बायाः पादवन्दनसमयान्न वेति । यतस्तां विलोक्य निहिताभिमन्यवो राधेयजयद्रथप्रभृतयोऽस्मत्सेनापतयः समरभूमिं गत्वा सभाजयितव्या इति । तन्मया द्रुततरं गन्तव्यम् । अहो ! प्रभविष्णुता महाराजस्य यन्मम जरसाभिभूतस्य मर्यादामात्रमेवावरोधव्यापारः । अथवा किमिति जरामुपालभेय, यतः सर्वान्तःपुरचारिणामयमेव व्यावहारिको वेषश्चेष्टा च । तथा हि—

नोच्चैः सत्यपि चक्षुषीक्षितमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं
शक्तेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समालम्बिता ।
सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा यातं मया नोद्धतं
सेवान्धीकृतजीवितस्य जरसा किं नामयन्मे कृतम् ॥१॥

[तदनन्तर कञ्चुकी प्रवेश करता है ।]

कञ्चुकी—महाराज दुर्योधन के द्वारा मुझे यह आज्ञा दी गयी है कि हे विनयन्धर ! तुम शीघ्र जाओ । महारानी भानुमती का पता लगाओ । माता (गान्धारी) की चरणवन्दना करके वे लौट आईं अथवा नहीं ? क्योंकि उन्हें देखने के पश्चात् अभिमन्यु का बध करने वाले कर्ण, जयद्रथ आदि अपने सेनापतियों को युद्धस्थल पर जाकर सम्मानित करता है । तो मुझे अतिशीघ्र चलना चाहिये । अहो, महाराज का प्रभाव भी कितना आश्चर्यजनक है कि वृद्धावस्था ग्रसित मेरा अन्तःपुर (रनिवास) में निवास करना केवल मर्यादा पालन हेतु ही रह गया है । अथवा वृद्धावस्था को क्या उलाहना

दूं ? क्योंकि अन्तःपुर में नियुक्त सभी लोगो का यही आचारानुरूप (व्यावहारिक) वेष तथा चेष्टा हैं। जैसे कि—

अन्वयः—चक्षुषि सति अपि उच्चैः ईक्षितुं अलं न श्रुत्वा अपि न आकर्णितम्, शक्तेन अपि अधिकारः इति (हेतोः) अधिकृता यष्टिः समालम्बिता, सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा मया उद्धतं न यातम्, सेवाऽन्धीकृतजीवितस्य मे जरसा यत् कृतम् (तत्) किं नाम ?

संस्कृत-व्याख्या—चक्षुषि=नेत्रे (जातावेकवचनम्), सति=वर्त्तमाने, अपि, उच्चैः ऊर्ध्वम् उपरि वा ईक्षितुम्=यथावद्द्रष्टुम्, अलं न= (अहम्) समर्थः न (सत्यपि लोचने अहं द्रष्टुमशक्तोऽस्मि इति भावः), श्रुत्वा=आकर्ण्य, अपि, न आकर्णितम्=न श्रुतम् (श्रुतमप्यश्रुतं भवतीत्यभिप्रायः), शक्तेन=समर्थेन, अपि, अधिकारः=मम कञ्चुकिनोऽधिकारोयम्, इति हेतोः, अधिकृता=गृहीता, (स्वाधिकारोचिता, राजाधिकारचिह्नभूता) यष्टिः=वेत्रयष्टिः यष्टिका वा, समालम्बिता=आदत्ता। सर्वत्र=सर्वकार्येषु, स्खलितेषु=व्यापारप्रच्यवेषु-स्खलनेषु वा, दत्तमनसा=दत्तचित्तेनसर्वदा सावधानेन, मया=कञ्चुकिना, उद्धतम्=साभिमानं यथा स्यात्तथा, न यातम्=(सत्वरम्) गमनं न भवति। सेवान्धीकृतजीवितस्य=सेवया-परिचर्यया अन्धीकृतम्=निष्फलीकृतम् (विवेकशून्यमित्यर्थः) जीवितम् जीवनं यस्य, तस्य, मे=मम कञ्चुकिनः, जरसा=वार्धक्येन, यत्=यदवस्थान्तरमित्यर्थः, कृतम्=विहितम् (तत्), किं नाम=न किमपीत्यर्थः। सेवानिमित्तमेव ममान्ध्यादिकं न तु जराकृतमिति भावः।

हिन्दी-अनुवाद - चक्षुषि=(दोनों) आखों के, सति=विद्यमान होने पर, अपि=भी, उच्चैः=ऊपर की ओर, ईक्षितुम्=यथावत् रूप में देखे जाने में, मैं, अलं न=समर्थ नहीं हूँ। श्रुत्वा=सुनकर, अपि=भी, न आकर्णितम्=सुना जाता है। शक्तेन=समर्थ होकर, अपि=भीः अधिकारः=मुझ कञ्चुकी का यह अधिकार है, इति हेतोः=इस कारण, अधिकृता=धारण की गयी हुई, यष्टिः=छड़ी का, समालम्बिता=सहारा लिया करता हूँ। सर्वत्र=सभी स्थानों अथवा कार्यों में, स्खलितेषु=त्रुटियों का दत्तमनसा=ध्यान रखते हुये, मया=

मेरे द्वारा, उद्धतम्=(कभी) अकड़कर, न यातम्=गमन नहीं किया गया। सेवान्धीकृतजीवितस्य=सेवा के निमित्त विवेकशून्य जीवन वाले, मे=मेरा, जरसा=वृद्धावस्था ने, यत्=जो कुछ, कृतम्=किया है (तत्=वह), किं नाम =क्या किया जा चुका है। अर्थात् कुछ नहीं किया। 'वृद्धावस्था के द्वारा जो कुछ भी किया जाया करता है वह सब तो पहले ही राजसेवा द्वारा किया ही जा चुका है। अतः वृद्धावस्था ने तो मेरे साथ कोई नई बात नहीं की है"—यह भाव है। "सेवाकृतजीवितस्य"-ऐसा पाठ होने पर अर्थ होगा-सेवा के निमित्त ही जीवन धारण करने वाले मुझ में ऐसी कोई बात नहीं है कि जिसे वृद्धावस्था ने उत्पन्न किया हो।

भावार्थ—अन्तःपुर से सम्बन्धित इस नौकरी में नेत्रों के विद्यमान रहते हुये भी मैं ऊपर की ओर अपनी दृष्टि को उठाकर देख नहीं सकता हूँ। यहाँ मैं बातों का श्रवण करने पर भी अनसुने व्यक्ति की भाँति रहता हूँ। चलने-फिरने में भलीभाँति समर्थ होते हुये भी मुझे छड़ी (अधिकार सूचक राजचिह्न) लेकर ही चलना है क्योंकि नियम ही इस प्रकार का है। कहीं मुझसे कोई त्रुटि (भूल-चूक, गलती) न हो जाय, इस भय से बहुत सोच-विचार के साथ ही चलना पड़ा करता है। तीव्रगति से चल सकना संभव नहीं है। इस भाँति वृद्धावस्था में जो-जो बातें स्वाभाविकरूप से हुआ करती हैं वे सब तो इस नौकरी में भी विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति में वृद्धावस्था को दोष देना निरर्थक है। क्योंकि ऐसी कोई नई बात वृद्धावस्था में दृष्टिगोचर नहीं होती है कि जो इस नौकरी में न हो। (कंचुकी के कहने का अभिप्राय यह है कि नौकरी तो वृद्धावस्था से भी बुरी है कि जिसमें असमय में ही वृद्ध हो जाना पड़ा करता है।)।

अलंकार—उक्त पद्य में "विशेषोक्ति" अलंकार है।

छन्द—इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' नामक छन्द है।

समास—पादवन्दनसमयात्=पादयोः वन्दनम्-पादवन्दनम्, तदेव समयः-आचारः, तस्मात्। निहताभिमन्यवः=निहतः अभिमन्युः यैस्ते। अवरोधव्यापारः=अवरुध्यन्ते प्रमदाः अत्र-इति अवरोधः, तत्र अवरोधं,

(अन्तःपुरे) निवासरूपाः (परिचर्यार्थं वासरूपः), यः व्यापारः। **दत्तमनसा** –दत्तं मनः यस्य, तेन। **सेवान्धीकृतजीवितस्य**–सेवया अन्धीकृतं जीवितं यस्य, तस्य।

टिप्पणियाँ—**आदिष्टः**–आज्ञापित-आदेश प्राप्त किया हुआ। **अम्बायाः** –माताका–"अम्बा माता" इत्यमरः। **समयः**–नियम, आचार। "समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः" इत्यमरः। **निहताऽभिमन्यवः**–जिन्होंने अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का वध कर डाला है ऐसे। **राधेयः**–कर्ण। **सभाजयितव्याः**–पारितोषिक आदि देकर सम्मानित करना है। **प्रभविष्णुता**=प्रभावशालिता। **अभिभूतस्य**–तिरस्कृत, दबा हुआ। **मर्यादामात्रम्**=आचारमात्र–राजकुल में परम्परा से चली आती हुयी परिपाटी का पालन करना। **अवरोधव्यापारः**=अवरोध अर्थात् अन्तःपुर में निवासरूप व्यापार का किया जाना। **व्यावहारिकः**=व्यवहार अथवा आचार के अनुरूप। **अलम्**=समर्थ। **शक्तेन**=समर्थ होन पर भी। **अधिकृता**=धारण की गयी हुई। **यष्टिः**= छड़ी। **दत्तमनसा**–सर्वदा सावधान रहते हुये। **सेवान्धीकृतजीवितस्य**= राजसेवा ने जिसके जीवन को विवेकहीन कर दिया है ऐसे–अर्थात्-जो अपने विवेक से कुछ भी कार्य करने में असमर्थ है। **जरसा**–वृद्धावस्था ने। **किं नाम कृतम्**–क्या किया ? अर्थात् कुछ भी नहीं किया। **जरसा किं नाम यन्मे-कृतम्**=राजसेवा में नियुक्त कोई भी कर्मचारी अपनी इच्छानुसार आँख उठाकर स्वामी के मुख की ओर देख नहीं सकता है। डाँट-फटकार सुनकर भी वह अनसुने के सदृश रहा करता है। उसे अपने हाथ में छड़ी को भी धारण करना पड़ा करता है।" कहीं उससे त्रुटि न हो जाय"—इस दृष्टि से उसे सदैव सतर्क रहना पड़ा करता है। वह अपने विवेक के आधार पर किसी भी कार्य को कर नहीं सकता है (इसी कारण उसे अन्धा-अर्थात् विवेक का अन्धा' कहा गया है।)। वृद्धावस्था के आ जाने पर भी यही सब कृत्य हुआ करते हैं। कञ्चुकी कहता है कि यह सब तो मैं राजसेवा में करता ही हूँ। फिर वृद्धावस्था ने ही मेरे साथ यह सब कुछ कर दिया हो, ऐसी कोई बात नहीं है।

(परिक्रम्य दृष्ट्वा आकाशे) विहङ्गिके ! अपि श्वश्रूजनपादवन्दनं कृत्वा प्रतिनिवृत्ता भानुमती ? (कर्णं दत्त्वा) किं कथयसि—आर्य ! एषा भानुमती देवी पत्युः समरविजयाऽऽशंसया निर्वर्तितगुरुदेवपादवन्दना अद्यप्रभृत्यारब्धनियमा देवगृहे बालोद्याने तिष्ठतीति । तद्भद्रे ! गच्छ त्वमात्मव्यापाराय । यावदहमप्यवस्थां देव्यै महाराजस्य निवेदयामि । (इति परिक्रम्य) साधु प्रतिव्रते ! साधु । स्त्रीभावेऽपि वर्तमाना वरं भवती न पुनर्महाराजः, योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु, अथवा किं बलवत्सु वा वासुदेवसहायेषु पाण्डुपुत्रेष्वरिष्वद्याप्यन्तःपुरविहारमनुभवति । (विचिन्त्य) इदमपरमयथातथं स्वामिनश्चेष्टितम् । कुतः—

आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने
स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मःशरैः शायितः ।
प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो
बालस्याऽयमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात् ॥२॥

(घूमकर, आकाश की ओर देखकर) विहङ्गिके ! क्या अपनी सास के चरणों की वन्दना करके (अर्थात् पैर छूकर) भानुमती लौट आई हैं । (कान लगाकर) क्या कह रही हो ? आर्य ! यह महारानी भानुमती पति की युद्ध में विजय की आकांक्षा से बड़े-बूढ़ों की चरण-वन्दना कर तथा देवपूजनकर आज से ही (ब्रह्मचर्य आदि) नियमों को धारणकर बालोद्यान में स्थित हैं । तो हे भद्रे ! जाओ तुम अपने कार्य के लिये । जबतक मैं भी "महारानी (भानुमती) यहाँ स्थित हैं" (इस सूचना को महाराज (दुर्योधन) से निवेदन करता हूँ । (ऐसा कहकर) वाह, पतिव्रते ! (भानुमती) वाह ! स्त्री होते हुये भी आप (महाराज की अपेक्षा) कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं, महाराज नहीं । जो यह, बलवान् अथवा बलहीन किन्तु वासुदेव (कृष्ण) की सहायता से युक्त; शत्रु—पाण्डुपुत्रों के (युद्ध के निमित्त) तैयार हो जाने पर आज भी

अन्तःपुर के विहार का अनुभव कर रहे हैं। (सोचकर) यह स्वामी का दूसरा अनुचित कार्य है। क्योंकि—

अन्वयः—आ शस्त्रग्रहणात् अकुण्ठपरशोः तस्य मुनेः अपि जेता अयं भीष्मः पाण्डुसूनुभिः शरैः शायितः, (तत्) अस्य तापाय न, किन्तु प्रौढानेक-धनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य एकाकिनः च अरातिलूनधनुषः बालस्य अभिमन्योः बधात् अयं प्रीतः (अस्ति)।

संस्कृत-व्याख्या—आ शस्त्रग्रहणात्=शस्त्रग्रहणमारभ्य, अकुण्ठपरशोः=अकुण्ठः अप्रतिहतः (अपराजितः सफलो वा) परशुः कुठारः यस्यासौ तस्य, अपराजितशस्त्रस्य—इत्यर्थः, तस्य=जगद्विदितस्य—इत्यर्थः, मुनेः=परशुरामस्य—इत्यर्थः, अपि, जेता=विजेता, अयम्=एषः, भीष्मः=भीष्मपितामहः पाण्डुसूनुभिः=पाण्डुपुत्रैः—पाण्डवैः, शरैः=बाणैः, शायितः=स्वापितः, (तत्=भीष्मशरशयनम्), अस्य=राज्ञः दुर्योधनस्य, तापाय=दुःखाय, न=न जातम्। (किन्तु), प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य=प्रौढाः—विख्याताः—प्राप्तवयस्काः—इत्यर्थं ये अनेके—बहवः धनुर्धराः—धनुर्धारिणः ते च ते अरयः—शत्रवश्च तेषां विजयेन—जयेन श्रान्तस्य, एकाकिनः=एकस्य—असहायस्येत्यर्थः, च अरातिलून-धनुषः=अरातिभिः—शत्रुभिः लूनं छिन्नं धनुः यस्यासौ तस्य—शस्त्ररहितस्येभि-प्रायः, बालस्य=बालकस्य अप्राप्तयौवनस्येत्यर्थः, अभिमन्योः=अर्जुनसूनोः, बधात्=विनाशात्, अयम्, प्रीतः=प्रसन्नः, अस्तीतिशेषः। भीष्मे हते क्षीणे च स्वपक्षे एष दुर्योधनः नानुशोचति, किन्तु शत्रुपक्षस्य बालके अभिमन्यौ हते सति प्रसन्नतामनुभवतीति; प्रसन्नतास्थाने शोकस्य शोकस्थाने च प्रसन्नताया अनुभवादस्य दुर्योधनस्यानौचित्यं वर्तते एव—इत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद—आशस्त्रग्रहणात्=शस्त्रग्रहण करने (के समय) से लेकर अकुण्ठपरशोः=कभी असफल न हुये कुठार वाले, तस्य=उस जगत्-प्रसिद्ध; मुनेः=मुनि (परशुराम) को, अपि=भी, जेता=जीतने वाले; अयम्=यह, भीष्मः=भीष्मपितामह, पाण्डुसूनुभिः=पाण्डुपुत्रों—पाण्डवों द्वारा, शरैः=बाणों से, शायितः=सुला दिये गये, (तत्=वह); अस्य=इस दुर्योधन के तापाय=दुःख के लिये, न=न हुआ, किन्तु, प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य=बड़े-बड़े

अनेक धनुषधारी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के कारण थके हुये; एकाकिन:=अकेले, च=और, अरातिलूनधनुष:=शत्रु द्वारा काट दिये गये धनुष वाले, बालकस्य=बालक, अभिमन्योः=अभिमन्यु के, वधात्=वध से,(अयम्=यह दुर्योधन), प्रीतः=प्रसन्न हो रहा है। भीष्म के मारे जाने पर अपने पक्ष के क्षीण हो जाने पर यह दुर्योधन शोक नहीं कर रहे हैं किन्तु शत्रुपक्ष के एक बच्चे के मार दिये पर यह अत्यधिक हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। इस भाँति दुर्योधन द्वारा हर्ष के स्थान पर शोक और शोक के स्थान पर हर्ष का अनुभव किया जाना ही अनौचित्य है। कञ्चुकी के सोचने का अभिप्राय यही है।

भावार्थ—जिस भीष्मपितामह ने दिग्विजयी तथा जन्म से ही कभी पराजित न होने वाले वीर मुनि परशुराम पर भी विजय प्राप्त करली थी ऐसे उन भीष्म को पाण्डवों द्वारा शरशय्या पर सुलादिया गया, इस बात की तो दुर्योधन को न तो तनिक भी चिन्ता ही है और न शोक अथवा दुःख ही। किन्तु बड़े-बड़े महान् वीर महारथियों द्वारा, थके हुये, एवं अकेले तथा जिसका धनुष शत्रुओं द्वारा भग्न किया जा चुका है ऐसे बालक अभिमन्यु के मार दिये जाने से ये दुर्योधन महती प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं, यह बड़े ही दुःख की बात है।

अलंकार—उक्त पद्य में विशेषोक्ति तथा विभावना नामक अलंकारों का सङ्कर है।

छन्द—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है।

समासः—श्वश्रूजनपादवन्दनम्=श्वश्रूजनानां पादवन्दनम्–इति (ष० तत्पु०)। समरविजयाशंसया=समरे विजयः इति समरविजयः तस्य या आशंसा-अभिलाषा-तया। निर्वर्तितगुरुदेवपादवन्दना=निर्वर्तितम् गुरुणाम्–वृद्धानाम्, देवानां पादवन्दनम् यया सा। आत्मव्यापाराय=आत्मनः–(स्वस्य) व्यापाराय–इति। वासुदेवसहायेषु=वासुदेवः सहायः येषां तेषु। अकुण्ठपरशोः=अकुण्ठः परशुः यस्य सः, तस्य। प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य=प्रौढाश्च ते अनेके धनुर्धराश्च, त एव अरयः, तेषां विजयेन श्रान्तस्य। अरातिलूनधनुषः=अरातिभिः लूनं धनुः यस्य सः, तस्य।

टिप्पणियाँ—आकाशे=आकाश की ओर देखकर। "दूरस्थाऽऽभाषणं यत्स्यादशरीरं निवेदनम्। परोक्षान्तरितं वाक्यं तदाकाशं निगद्यते" इति भरतः। स्वयं ही जो कहे और पुनः उत्तर भी स्वयं ही दे ऐसी उक्ति और प्रत्युक्ति को ही 'आकाशे' कहा जाता है। विहङ्गिका=भानुमती की सखी अथवा चेटी। श्वश्रूजनपादवन्दनम्=गान्धारी आदि सासों के चरणों की वन्दना अर्थात् चरणस्पर्श किया जाना। अपि=यहाँ यह प्रश्नवाचक अव्यय है। कर्णं दत्त्वा=कानों को उस ओर लगाकर। विजयाशंसया=विजय की इच्छा से। निर्वर्तितगुरुदेवपादवन्दना=जिसने गुरुओं अर्थात् अपने बड़े-बूढ़ों के तथा देवताओं के चरणों में प्रणाम कर लिया है ऐसी। आरब्धनियमा=जिसने ब्रह्मचर्य आदि व्रत को धारण कर लिया है ऐसी (भानुमती)। बालोद्याने=नवीन बगीचे में। आत्मव्यापाराय=अपने कार्य को करनेके लिये। स्त्रीभावेऽपि=स्वभाव से ही काम सम्बन्धी उपभोगों में चतुर स्त्री होने पर भी। वासुदेवसहायेषु=श्रीकृष्ण हैं सहायक जिनके ऐसे पाण्डवों के होने पर। अद्यापि=इस समय भी। उपस्थित युद्ध के समय के होने पर भी। अयथाप्रथम्=जो समीचीन हो अर्थात् अनुचित। आ=से लेकर। अकुण्ठ-परशोः=कभी कुण्ठित न हुये फरसे को धारण करने वाले। "कुठारः······ ······परशुश्च परश्वधः"—इत्यमरः। अथवा जिनका शस्त्र (कुठार) कभी असफल नहीं हुआ है ऐसे। मुनेः=मुनि परशुराम के। शायितः=सुला दिया है। प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य=महान् अनेक धनुषधारी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के कारण थके हुये। यह अभिमन्यु का विशेषण है। एकाकिनः=अकेले-अर्थात् युद्ध में जिसका अन्य कोई सहायक न था ऐसे। अरातिलूनधनुषः=शत्रुओं द्वारा जिसका धनुष भग्न कर दिया गया था। यह भी अभिमन्यु का विशेषण है। प्रीतः=प्रसन्न है।

सर्वथा दैवं नः स्वस्ति करिष्यति। तद्यावदत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामि। (इति निष्क्रान्ताः)।

॥ विष्कम्भकः ॥

दैव (भाग्य) ही सब प्रकार से हमारा कल्याण करेगा। तो अब यहाँ वर्तमान महारानी (भानुमती) के बारे में महाराज (दुर्योधन) से निवेदन कर दूँ (अर्थात् बतला दूँ)। (ऐसा कहकर बाहर चला जाता है।)।

॥ विष्कम्भक समाप्त हुआ ॥

टिप्पणियाँ—दैवम्=भाग्य। सर्वथा=सब प्रकार से। स्वस्ति=कल्याण। अत्रस्थाम्=यहाँ पर स्थित। निवेदयामि=निवेदन कर दूँ। बतला दूँ। विष्कम्भकः—विष्कम्भक—यह अतीत तथा भविष्य में होने वाली कथा के अंशों का सूचक हुआ करता है। इसमें एक अथवा दो मध्यम-पात्रों का प्रयोग होता है। इसकी भाषा संस्कृत तथा शौरसेनी प्राकृत होती है। इसका प्रयोग प्रथम अंक के प्रारम्भ में अथवा दो अंकों के बीच में किया जाता है।

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥ दशरूपक १।५९।

(ततः प्रविशत्यासनस्था देवी भानुमती सखी चेटी च।)

सखी—सखि भानुमति! कस्मादिदानीं त्वं स्वप्नदर्शनमात्रस्य कृते अभिमानिनो महाराज दुर्योधनस्य महिषी भूत्वैवं विगलितधीरभावा-तिमात्रं संतप्यसे? (सहि भाणुमदि! कीस दाणीं तुमं सिविणअदंसणमेत्तस्स किदे अहिमाणिणो महाराअदुज्जोहणस्स महिसी भविअ एव्वं विअलिअधीरभावा अदिमेत्तं संतप्पसि।)।

चेटी—भट्टिनि! शोभनं भणति सुवदना। स्वप्नजनः किं न खलु प्रलपति। (भट्टिणि, सोहणं भणादि सुअवणा। सिविणअन्तो जणो किं ण क्खु प्पलवदि।)।

भानुमती—हञ्जे! एवमेतत्। किन्त्वयं स्वप्नोऽतिमात्रमकुशल-दर्शनो मे प्रतिभाति। (हञ्जे! एव्वं णेदम्। किदु एदं सिविणअं अदिमेत्तं अकुसलदंसणं मे पडिभादि।)।

सखी—प्रियसखि! यद्येवं तत्कथय स्वप्नं येनावामपि प्रतिष्ठापयन्त्यौ धर्मप्रशंसया देवतासंकीर्तनेन दूर्वादिपरिग्रहेण च परिहरिष्यावः। (पिअसहि! जइ एव्वं ता कहेहि सिविणअं जेण अह्मे विपडिट्ठावअन्तीओ धम्मप्पसंसाए देवदासंकित्तणेण दुव्वादिपडिग्गहेण अ पडिहडिस्सामो।)।

चेटी—शोभनं खलु भणति सुवदना । अकुशलदर्शनाः स्वप्ना देवतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्तीति श्रूयते । [सोहणं खु भणादि सुवअणा । अकुसलदंसणा सिविणआ देवदाणं पसंसाए कुसल परिणामा होन्ति त्ति सुणीअदि ।] ।

भानुमती —यद्येवं तत्कथयिष्ये । अवहिता तावद्भव । [जइ एव्वं ता कहइस्सं अवहिदा दाव होहि ।] ।

सखी—अवहिताऽस्मि । कथयतु प्रियसखी । (अवहिदह्मि । कहेदु पिअसही ।) ।

भानुमती—हला ! भयेन विस्मृतास्मि । तत्तिष्ठ यावत्सर्वं स्मृत्वा कथयिष्यामि । (हला ! भएण विसुमरिदह्मि ता चिट्ठ जाव सव्वं सुमरिअ कहइस्सं ।) (इति चिन्तां नाटयति) ।

(ततः प्रविशति दुर्योधन कञ्चुकी च ।)

दुर्योधनः—सूक्तमिदं कस्यचित् --

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः ।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥३॥

येनाद्य द्रोणकर्णजयद्रथादिभिर्हतमभिमन्युमुपश्रुत्य समुच्छ्वसितमिव नश्चेतसा ।

(तदनन्तर आसन पर विराजमान महारानी भानुमती, सखी और चेटी प्रवेश करती हैं ।)

सखी—हे सखी भानुमती ! अभिमानी महाराज दुर्योधन की महारानी होकर (भी) स्वप्न के देखने मात्र से ही इस प्रकार धैर्यहीन होकर अब तुम अत्यधिक दुःखी क्यों हो रही हो ?

चेटी —हे स्वामिनी ! सुवदना ठीक ही कह रही है । सोती हुई दशा में व्यक्ति क्या-क्या नहीं कहा करता है ?

भानुमती —हञ्जे ! यह ऐसा ही है । किन्तु यह स्वप्न मुझे अत्यधिक अमङ्गल (अकुशल अथवा अशुभ) सूचक ही प्रतीत हो रहा है ।

सखी—प्रिय सखी ! यदि ऐसा है तो (उस स्वप्न को) हमें भी बतला दो; जिससे हम दोनों भी उसे मङ्गलजनक बनाती हुई, धर्मकथा, देवताओं के (नाम का) कीर्तन तथा दूर्वा आदि का धारण करने के द्वारा (उस अमङ्गल को) दूर करने का उपाय करें।

चेटी—सुवदना ठीक (ही) कह रही है। ऐसा सुना जाता है कि अशुभ स्वप्न भी देवताओं की स्तुति से शुभ फलवाले हो जाया करते हैं।

भानुमती—यदि ऐसा है, तो कहती हूँ। सावधान हो जाओ।

सखी—मैं सावधान हूँ, प्रिय सखी कहें।

भानुमती—सखि ! भय के कारण मैं भूल रही हूँ। तनिक ठहरो, पूरा (स्वप्न) याद करके कहती हूँ। (ऐसा कहकर सोचने का अभिनय करती है)।

(तदनन्तर दुर्योधन तथा कंचुकी प्रवेश करते हैं।)

दुर्योधन—किसी का यह कथन ठीक ही है कि—

अन्वयः—अपकारिणां गुप्त्या वा साक्षात्, महान् (वा) अल्पः, स्वयं (वा) अन्येन कृतः अपकारः महतीं प्रीतिं करोति।

संस्कृत-व्याख्या—अपकारिणाम्=शत्रूणाम्, गुप्त्या=निभृतम्, वा=अथवा, साक्षात्=प्रत्यक्षम्, महान्=बृहत्, वा=अथवा, अल्पः=ईषत्, स्वयम्=निजेन=स्वकरेणैवेत्यर्थः, वा=अथवा, अन्येन=परेण-इतरेण वा जनेन, कृतः=सम्पादितः विहितः, महतीं प्रीतिम्=महान्तं हर्षम्, करोति=जनयति।

हिन्दी-अनुवाद—अपकारिणाम्=शत्रुओं का, गुप्त्या=छिपकर किया गया, वा=अथवा, साक्षात्=प्रत्यक्षरूप से किया गया, महान्=अधिक हो, वा=अथवा, अल्पः=थोड़ा हो, स्वयम्=अपने द्वारा, वा=अथवा, अन्येन=किसी दूसरे के द्वारा, कृतः=किया गया हुआ, अपकारः=अपकार अथवा अनिष्ट, महतीम्=अत्यधिक, प्रीतिम्=प्रसन्नता को, करोति=उत्पन्न किया करता है।

भावार्थ—शत्रुओं का अपकार अथवा अनिष्ट, वह चाहे गुप्तरूप से (अर्थात् छिपकर) किया गया हो अथवा प्रकट रूप से, अत्यधिक रूप में

किया गया हो अथवा स्वप्नरूप में, स्वयं किया गया हो अथवा किसी अन्य द्वारा किया गया हो, अत्यधिक प्रसन्नता का ही उत्पादक हुआ करता है।

जिससे कि आज द्रोण, कर्ण तथा जयद्रथ आदि के द्वारा मारे गये अभिमन्यु के बारे में सुनकर हमारे चित्त ने साँस सी ली है (अर्थात् मेरे मन ने शान्ति अथवा राहत का अनुभव किया है!)।

छन्द—उक्त पद्य में 'अनुष्टुप्' अथवा 'पथ्यावक्त्र' छन्द है।

समास—विगलितधीरभावा=विगलितः धीरभावो यस्याः सा। अकुशलदर्शनः=अकुशलं-अमङ्गलं दर्शयितीति अकुशलदर्शनः (अशुभसूचकः)। कुशलपरिणामाः=कुशलं (मङ्गलकारकमित्यर्थः) परिणामः—फलम् येषां ते।

टिप्पणियाँ—चेटी=यह महारानी की दासी हुआ करती है। यह नीच जाति की स्त्री होती है। हञ्जे=इसका प्रयोग नीच जाति की दासी का आह्वान करने में किया जाता है—"हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति" इत्यमरः। सुवदना=यह सखी का नाम है। किं न खलु प्रलपति ?=उचित अथवा अनुचित, क्या नहीं बड़बड़ाया करती है? अर्थात् सब कुछ बड़बड़ाया करती है। स्वप्नदर्शनमात्रस्यकृते=केवल स्वप्न के देखने मात्र से ही। गलितधीरभावा=जिसका धैर्य समाप्त हो चुका है ऐसी अथवा व्याकुलता के धारण किये हुये। संतप्यसे=दुःखी हो रही हो। शोभनम्-सुन्दर ठीक। स्वपन्=सोता हुआ। जनः=व्यक्ति। अकुशलदर्शनः=अमङ्गल अथवा अशुभसूचक। प्रतिभाति=प्रतीत होता है। प्रतिष्ठापयन्त्यो=अशुभ स्वप्न को शुभ सम्पादित करते हुये। धर्मप्रशंसया=धार्मिक कथा आदि का प्रशंसन अर्थात् कथन करने से। अथवा धार्मिक स्तुतियों के द्वारा। दूर्वादिप्रतिग्रहेण=दूर्वा आदि माङ्गलिक वस्तुओं के धारण अथवा स्पर्श करने से। परिहरिष्यावः=(अमङ्गल) को दूर कर देंगी। कुशलपरिणामाः=मङ्गलजनक ही है फल जिनका ऐसे। अवहिता=सावधान। भयेन=देखे गये हुये स्वप्न के कारण उत्पन्न हुये भय से। सूक्तम्=सुभाषित-सुन्दर अथवा श्रेष्ठ वचन। अपकारिणाम्=अनिष्ट करने में ही संलग्न शत्रुओं के। गुप्त्या=छिपकर। साक्षात्=प्रत्यक्षरूप से। स्वयम्=अपने द्वारा। कृतः

—किया गया हुआ। अपकारः—अनिष्ट। प्रीतिम्—प्रसन्नता अथवा हर्ष को। करोति—उत्पन्न किया करता है। उच्छ्वसितमेव नः चेतसा—अर्थात् हमारे चित्त ने सुखपूर्वक श्वास ली है। दुर्योधन के इस कथन का अभिप्राय यह है कि "शत्रुओं के प्रति किया गया थोड़ा सा भी अपकार हर्ष का ही जनक हुआ करता है" इस सुभाषित के अनुसार अभिमन्यु के मारे जाने का समाचार पाकर मुझे अत्यधिक हर्ष हुआ है।

कञ्चुकी—देव ! नेदमतिदुष्करमाचार्यशस्त्र प्रभावाणाम्। कर्णजयद्रथयोर्वा का नामात्र श्लाघा ?

राजा—विनयन्धर ! किमाह भवान् ? एको बहुभिर्बालो लून शरासनश्च निहत इत्यत्र का श्लाघा कुरुपुङ्गवानामिति। मूढ ! पश्य—

हते जरति गाङ्गेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति ॥४॥

कञ्चुकी—महाराज ! आचार्य (द्रोण) के शस्त्रों की सामर्थ्य के लिये यह कोई अति कठिन कार्य नहीं था। फिर कर्ण और जयद्रथ के लिये इसमें प्रशंसा की क्या बात है ?

राजा—विनयन्धर ! क्या कहा आपने ? कि 'असहाय बालक और (उस पर भी) कटे हुये धनुषवाला (अभिमन्यु) अनेकों के द्वारा मारा गया है। अतः इसमें कुरुश्रेष्ठों की प्रशंसा की कौन सी बात है ? मूर्ख ! देखो—

अन्वयः—शिखण्डिनं पुरस्कृत्य जरति गाङ्गेये हते पाण्डुपुत्राणां या श्लाघा (आसीत्) सा एव अस्माकं भविष्यति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—शिखण्डिनम्—शिखण्डिनामानं द्रुपदपुत्रम्, पुरस्कृत्य—संग्रामस्थले अग्रतः कृत्वा, जरति—वृद्धे, गाङ्गेये—गङ्गातनये भीष्मे, हते—घातिते सति; पाण्डुपुत्राणाम्—पाण्डवानां—युधिष्ठिरादीनाम्, या—यादृशी, श्लाघा—प्रशंसा आसीदिति क्रियाशेषः, सा—तादृशी (प्रशंसा), एव, अस्माकम्—कुरुपुङ्गवानां—धार्त्तराष्ट्राणाम्, (अपि) भविष्यति। शिखण्डी जन्मना स्त्री,

तपस्यया पुरुषः आसीत् । भीष्मः तं सर्वदैव स्त्रीबुद्धयाऽपश्यत् । अतः भीष्मः तस्योपरि बाणमोक्षणं न चकार । एतस्मिन् काले एव अर्जुनः भीष्मं शरैः जघान । यदि एतत् श्लाघ्यमस्ति तर्हि इदमपि श्लाघ्यमेव, यदि तत् श्लाघ्यं न तर्हि अभिमन्युवधमपि न श्लाघ्यमस्तीति भावः ।

हिन्दी-अनुवाद—शिखण्डिनम्=शिखण्डी को, पुरस्कृत्य=आगे करके, जरति=वृद्ध, गाङ्गेये=भीष्म के, हते सति=मारे जाने पर, पाण्डुपुत्राणाम्=युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को, या=जो, श्लाघा=प्रशंसा (आसीत्=थी), सा=वह (प्रशंसा), एव=ही, अस्माकम्=हम धृतराष्ट्र के पुत्रों को भी, भविष्यति=होगी ।

भावार्थ—शिखण्डी की आड लेकर पाण्डवों द्वारा वृद्ध भीष्मपितामह के मारे जाने से जो प्रशंसा उनकी हुयी है वही बालक अभिमन्यु के मारे जाने से हमारी भी होगी । (शिखण्डी द्रुपद का पुत्र था तथा मूलरूप से वह लड़की के रूप में उत्पन्न हुआ था । तपस्या द्वारा उसने पुरुषत्व को प्राप्त कर लिया था । किन्तु फिर भी भीष्म उसे स्त्री रूप में ही देखा करते थे । जब पाण्डवों ने इस शिखण्डी को बीच में कर दिया तो भीष्म ने स्त्री होने की दृष्टि से उस पर बाणों का प्रहार नहीं किया । इसी बीच अर्जुन ने भीष्म को मार दिया अर्थात् शरशय्या पर लिटा दिया । यदि पाण्डवों का यह कार्य प्रशंसनीय है तो अभिमन्यु का मारा जाना भी हम लोगों के लिये प्रशंसनीय ही है । यदि वह कार्य प्रशंसनीय नहीं था तो यह भी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता है ।)

छन्द—श्लोक सं० तीन के ही समान ।

समास—आचार्यशस्त्रप्रभावाणाम्=आचार्यस्य द्रोणस्य शस्त्राणां प्रभावाः इति–आचार्यशस्त्रप्रभावाः, तेषाम् ।

टिप्पणियां—अतिदुष्करम्=अतिकठिन । का नाम=अर्थात् कुछ भी नहीं । श्लाघा=प्रशंसा । लूनशरासनः=कटे हुये धनुष वाला । कुरुपुङ्गवानाम्=कौरवों में श्रेष्ठों अथवा धृतराष्ट्र के पुत्रों की । शिखण्डिनम्=शिखण्डी एक नपुंसक था । नपुंसक पर प्रहार करना उचित नहीं था । किन्तु भीष्म

तो उसे स्त्रीरूप में ही देखा करते थे। स्त्री पर प्रहार करना तो सर्वथा अनुचित ही है" इस दृष्टि से भीष्म ने उस पर बाणों का प्रहार नहीं किया था। गाङ्गेये=गंगा के पुत्र भीष्म पर।

कञ्चुकी—(सवैलक्ष्यम्) देव! न ममायं संकल्पः। किं तु भवत्पौरुष-प्रतीघातोऽस्माभिनविलोकित पूर्वं इत्यत एवं विज्ञापयामि।

राजा—एवमिदम्।

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम्।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनः ॥५॥

कञ्चुकी—(लज्जा के साथ अर्थात् लज्जा का अभिनय करते हुये) महाराज! मेरा यह मन्तव्य न था। परन्तु आपके पराक्रम की विफलता हम लोगों के द्वारा पहले कभी भी नहीं देखी गयी थी, इसी कारण मैंने ऐसा कहा है।

राजा—यह ऐसा है।

अन्वयः—पाण्डुसुतः संयुगे स्वबलेन न चिरात् सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं सहानुजं ससुतं सुयोधनं निहन्ति।

संस्कृत-व्याख्या—पाण्डुसुतः=पाण्डवः भीमः इत्यर्थः, संयुगे=युद्धे, स्वबलेन=स्वपराक्रमेण, न चिरात्=शीघ्रमेव, सहभृत्यगणम्=सेवकवर्गेण सहितम्, सबान्धवम्=बन्धुभिः सहितम्, सहमित्रम्=सुहृज्जनसहितम्, सहानु-जम्=लघुभिः भ्रातृभिः सहितम्, ससुतम्=सपुत्रम्, सुयोधनम्=दुर्योधनम्, निहन्ति=हनिष्यन्ति ॥५॥

हिन्दी-अनुवाद—पाण्डुसुतः=पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, संयुगे=युद्ध में, स्वबलेन=अपने पराक्रम से, न चिरात्=शीघ्र ही, सहभृत्यगणम्=सेवकसमूह सहित, सबान्धवम्=भाइयों सहित, सहमित्रम्=मित्रों सहित, सहानुजम्=छोटे भाइयों सहित, ससुतम्=पुत्रों सहित, सुयोधनम्=दुर्योधन को, निहन्ति=मार डालेगा।

भावार्थ—शीघ्र ही पाण्डु का पुत्र अपने पराक्रम के बल से युद्ध में भृत्यसमूह, बन्धु-बान्धव, मित्र, अनुजों तथा पुत्रों सहित दुर्योधन को मार

डालेगा। (यहाँ दुर्योधन को यह कहना था कि "दुर्योधन मार डालेगा" किन्तु होनहारवश वह उलटा ही कह गया है।)।

छन्द—उक्त पद्य में "ललिता" छन्द है। लक्षण—"ससजा विषमे यदा गुरुः सभरा स्याल्ललिता समे लगौ"।

समास—सवैलक्ष्यम्=विलक्षस्य भावः वैलक्ष्यम्, तेन सहितं यथा तथा। भवत्पौरुषप्रतीघातः=भवतां पौरुषस्य प्रतिघातः।

टिप्पणियाँ—सवैलक्ष्यम्=लज्जा के साथ। संकल्पः=इच्छा, अभिप्राय। भवत्पौरुषप्रतीघातः=आपके पुरुषार्थ की विफलता। विज्ञापयामि=निवेदन करता हूँ। निहन्ति=मारेगा अथवा मार डालेगा। यहाँ वर्त्तमान की समीपता के कारण 'लट्' लकार प्रयुक्त हुआ है।

कञ्चुकी—(कर्णौ पिधाय सभयम्) शान्तं पापम्। प्रतिहतमम‍ङ्गलम्।

राजा—विनयन्धर! किं मयोक्तम्?

कञ्चुकी—

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम्।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतं सुयोधनः ॥६॥

(इति पठति)। एतद्विपरीतमभिहितं देवेन।

कञ्चुकी—(कानों पर हाथ रखकर, भय के साथ) पाप शान्त हो। अमङ्गल का नाश हो।

राजा—विनयन्धर। मैंने क्या कहा है?

कञ्चुकी—"दुर्योधन संग्राम में अपने बल से भृत्यों बन्धुओं, मित्रों, अनुजों तथा पुत्रों सहित पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर) को मार डालेगा। (इस भाँति अर्थात् दुर्योधन द्वारा कहे गये गलत वाक्य को सही करके पढ़ता है।) महाराज ने इसके विपरीत ही कह दिया था।

टिप्पणियाँ—पापम्= अमङ्गल का कारणभूत पाप। प्रतिहतम्=नष्ट हो। विपरीतमभिहतम्—मेरे द्वारा पठित श्लोक के विपरीत ही आपने

"पाण्डुसुतः सुयोधनम्" ऐसा पढ़ा था। कञ्चुकी के कहने का भाव यह है कि आपने "पाण्डुसुतं सुयोधनः" के स्थान पर "पाण्डुसुतः सुयोधनम्" ऐसा कहा था। जिसका अर्थ ही विपरीत (उलटा) हो जाता है। अर्थात्" दुर्योधन पाण्डुपुत्र को मारेगा" के स्थान पर "पाण्डुपुत्र ही दुर्योधन को मारेगा" ऐसा उलटा अर्थ हो गया था। मैंने उसे ठीक करके दुबारा पढ़ दिया है।

राजा—विनयन्धर ! अद्य खलु भानुमती यथापूर्वं मामनामन्त्र्य वासभवनात्प्रातरेव निष्क्रान्तेति व्याक्षिप्तं मे मनः, तदादेशय तमुद्देशं यत्रस्था भानुमती।

कञ्चुकी—इत इतो देवः।

(उभौ परिक्रामतः।)

कञ्चुकी—(पुरोऽवलोक्य। समन्ततो गन्धमाघ्राय।) देव ! पश्य पश्य। एतत्तुहिनकणशिशिरसमीरणोद्वेलितबन्धनच्युतशेफालिकाविरचितकुसुमप्रकरम्, ईषदालोहितमुग्धवधूकपोलपाटललोध्रप्रसूनविजितश्यामलतासौभाग्यम्, उन्मीलितबकुलकुन्दकुसुमसुरभिशीतलं, प्रभातकालरमणीयमग्रतस्ते बालोद्यानम्। तदवलोकयतु देवः। तथा हि—

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः
पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः।
अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध—
संसूचितानि कमलान्यलयः पतन्ति ॥७॥

राजा—विनयन्धर ! आज भानुमती पहले के समान (अर्थात् पहले तो मुझसे पूछकर ही कहीं जाया करती थी) मुझसे विना पूछे ही वासभवन से प्रातःकाल ही बाहर चली गईं। अतः मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है (इसी कारण मैं उलटा-पलटा बोल गया हूँ।) अतः वह स्थान मुझे बतलाओ जहाँ भानुमती स्थित हैं।

कञ्चुकी—महाराज ! इधर से, इधर से।

(दोनों घूमते हैं ।)

कञ्चुकी—(सामने देखकर, चारों ओर गन्ध सूँघकर) महाराज ! देखिये, देखिये । ओस के कणों से शीतल-वायु के झकोरों के द्वारा हिलाये गये (अतएव) बन्धन (वृन्त) से गिरी हुयी शेफालिका (निर्गुण्डी) के पुष्पों ने पुष्पों की राशि (ढेर) लगा दी है जिसमें ऐसा, भोली-भाली दुलहन (वधू) के कपोलों (गालों) के समान गुलाबीपन को लिये हुये कुछ-कुछ लाल लोध के द्वारा जीत लिया गया है श्यामलता का सौन्दर्य जिसमें ऐसा, खिले हुये वकुल (मौलश्री) और कुन्द के पुष्पों की सुगन्धि से शीतल, प्रातःकाल के समय अतिरमणीय (सुन्दर) प्रतीत होने वाला यह अन्तःपुर का बालोद्यान (बगीचा) आपके सामने आ गया है । तो महाराज इसे देखें । जैसे कि—

अन्वयः—रजनीप्रबुद्धैः, प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः पुष्पैः समं निपतिताः अलयः अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध संसूचितानि, कमलानि पतन्ति ।

संस्कृत-व्याख्या—रजनीप्रबुद्धैः=रजन्यां-रात्रौ प्रबुद्धानि विकसितानि तैः, प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः=प्रालेयेन-तुषारेण मिश्रः-मिलितः यः मकरन्दः पुष्परसः तेन करालाः-नतोन्नताः कोशाः मध्यभागाः येषां तैः, पुष्पैः=कुसुमैः, समम् साधंम्, (एव), निपतिताः=पतिताः, अलयः=भ्रमराः, अर्कांशुभिन्न-मुकुलोदरसान्द्रगन्धसंसूचितानि=अर्कस्य-सूर्यस्य अंशुभिः-किरणैः, भिन्नानि-विकसितानि यानि मुकुलानि-कलिकाः तेषां उदरेषु-मध्यभागेषु ये सान्द्राः-निबिड़ाः (तीव्राः इति यावत्) गन्धाः-सुरभयः तैः संसूचितानि-सम्यग् ज्ञातानि, कमलानि=सरोरुहाणि, पतन्ति=गच्छन्ति (पततेः गत्यर्थत्वात्सकर्मकत्वम्) ।

हिन्दी-अनुवाद—रजनीप्रबुद्धैः=रात्रि में खिले हुये, प्रालेयमिश्रमकरन्द-करालकोशैः हिमकणों (ओस) से मिश्रित पुष्परस से एक ओर झुके हुये मध्यभाग वाले (अधखिली कलियों वाले), पुष्पैः=फूलों के, समम्=साथ, निपतिताः=गिरे हुये, अलयः=भौंरे, अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्धसंसूचि-तानि=सूर्य की किरणों से खिली हुयी कलियों के मध्यभाग तीव्र गन्ध, गन्ध से सूचित होने वाले, कमलानि=कमलों पर, पतन्ति=गिर रहे हैं ।

भावार्थ—रात्रि के समय विकसित होने वाले कुमुद आदि पुष्प सङ्कुचित हो मुरझा गये और उनके साथ ही भ्रमर भी उनमें बन्द हो गये। किन्तु उन पुष्पों में ओस के कणों से मिश्रित पुष्परस इतना अधिक हो गया था कि उसके कारण कलियाँ कुछ-कुछ खुली हुई ही रह गईं। अतएव प्रातः काल होते-होते उन कलियों में से किसी प्रकार निकलकर प्रातःकाल के समय खिलते हुये कमलों की सुगन्धि से आकृष्ट होकर ये भौंरे उन कमलपुष्पों के समीप पहुँच गये हैं।

अलङ्कार:—उक्त पद्य में "पर्याय" नामक अलङ्कार है। लक्षण—"पर्यायश्चेदनेकत्र स्यादेकस्य समन्वयः"।

छन्द—इसमें 'वसन्ततिलका' छन्द है। लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः"।

समास—तुहिनकण······कुसुमप्रकरम्=तुहिनस्य–हिमस्य कणैः–बिन्दुभिः शिशिरः–शीतलः यः समीरणः वायुः तेन उद्वेलितम्–भृशं कम्पितम् यद्वृत्तम्–प्रसवबन्धनं तस्मात् च्युताः=पतिताः याः शेफालिकाः–शेफालिका कुसुमानि इत्यर्थः, ताभिः विरचितः कुसुमानां प्रकरः–समूहः यस्मिन् तत्। ईषद्रालो······सौभाग्यम्=ईषत्–किंचित् आलोहिता आरक्ताः ये मुग्ध-वधूनाम्–सलज्जसुन्दरीणाम् कपोलाः–गण्डस्थलानि, तद्वत् पाटलानि–श्वेत-रक्तानि यानि लोध्रप्रसूनानि–लोध्रपुष्पाणि, तैः विजितम् श्यामलतानां–प्रियङ्गुलतानां सौभाग्यं सौन्दर्यं यत्र तत्। उन्मीलित······शीतलम्=उन्मी-लितानी–विकसितानि यानि बकुलानां कुन्दानाञ्च कुसुमानि तैः सुरभि–सुगन्धि च शीतलं च सुखावहमित्यर्थः। प्रभातकालरमणीयम्=प्रभातकाले रमणीयम् मनोहरम्। रजनीप्रबुद्धैः=रजन्यां प्रबुद्धानि विकसितानि–रजनी-प्रबुद्धानि तैः। प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः=प्रालेयेन–तुषारेण मिश्रः यः मकरन्दः तेन करालः दन्तुरः निम्नोन्नत इति यावत्, कोशो मध्यभागो येषां तैः। अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्धसंसूचितानि=अर्कस्य अंशुभिः भिन्नानां मुकुलानां यानि उदराणि, तेषां यः सान्द्रः गन्धः तैः संसूचितानि।

टिप्पणियाँ—अनामन्त्र्य=बिना पूछे। वासभवनात्=निवासगृह से, महल से। व्याक्षिप्तम्=व्याकुल। चञ्चल। उद्देशम्=स्थान। उद्वेलिताः=

अत्यधिक कम्पित-हिलाये-डुलायेहुये। वृन्तम्=बन्धन। च्युत=भ्रष्ट-गिरे हुये। शेफालिका=निर्गुण्डीलता। प्रकरम्=समूह-ढेर। पाटलम्=सफेद-लाल वर्ण के। श्यामलता=प्रियङ्गुलता। सौभाग्यम्=सौन्दर्य। उन्मीलितम्=विकसित। बकुल=मौलश्री। बालोद्यानम्=नवीन बगीचा-(बाग-उद्यान)। रजनीप्रबुद्धः=रात्रि में विकसित-खिले हुये। प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशः=ओस के कणों से मिश्रित पुष्परस के कारण एक ओर झुके हुये अधखिली कलियों वाले। सान्द्रः-घनी-तीव्र। संसूचितानि=दूर से ही प्रतीत होने वाले। पतन्ति=गिर रहे हैं-पहुँच रहे हैं।

राजा—(समन्तादवलोक्य) विनयन्धर! इदमपरमसुष्मिन्नुषसि रमणीयतरम्। पश्य—

जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै—
हस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः।
स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा
मुञ्चन्त्येते विकचनलिनोगर्भशय्यां द्विरेफाः॥८॥

राजा—(चारों ओर देखकर) इस प्रातःकाल की वेला में यह दूसरा (दृश्य) अत्यधिक सुन्दर है। देखो—

अन्वयः—जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैः भानो हस्तैः स्पृश्यमानाः (अतएव) विबुद्धाः नृपतयः इव, (विबुद्धाः), घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः एते द्विरेफा स्त्रीभिः सार्धं विकचनलिनीगर्भशय्यां मुञ्चन्ति॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैः=जृम्भणं-जृम्भः विकाशः, तस्यारम्भः उपक्रमः, तेन प्रविततानि-विस्तृतानि यानि दलानि-पत्राणि, तेषां उपान्ताः-समीपस्थभागाः, ते एव जालानि-गवाक्षाः, तैः प्रविष्टाः, भानोः=सूर्यस्य, हस्तैः=करैः किरणैरिति यावत्, स्पृश्यमानाः=संस्पृश्यमानाः, (अतएव), विबुद्धाः=उद्बुद्धाः-त्यक्तनिद्राः, नृपतय इव=राजान इव, (विबुद्धाः=त्यक्तनिद्राः),घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः=घनः-सान्द्रः यः

परिमलः—सम्भोगः, रात्रिविहार इति यावत् ("संभोगःस्यात्परिमले"। इति वैजयन्ती), केन स्तोकमेव—स्वल्पमेव, लक्ष्यः=दृश्यः, अङ्गरागः—विलेपनं येषां ते-(सम्भोग समये संघर्षणात् विलेपनस्य वैरल्ये जाते तज्ज्ञानं गन्धेन एव शक्यते—इत्यभिप्रायः), एते=इमे 'द्विरेफाः=भ्रमराः' स्त्रीभिः=वनिताभिः भ्रमरीभिः,सार्धम्=सह, विकचनलिनीगर्भशय्याम्=विकचायाः—विकसितायाः, नलिन्याः—कमलिन्याः, गर्भः—मध्यभागः एव शय्या—पर्यङ्कः, ताम् मुञ्चन्ति=त्यजन्ति। यथा भूपतयः स्वसेवककरैः संस्पृष्टाः सन्तः स्वकीयां निद्रां जहति तथैवेमे भ्रमराः अपि सूर्यकिरणैरामृष्टाः सन्तः निद्रां त्यजन्तीत्यभिप्रायः। अथवा—यथा राजानः गवाक्षप्रविष्ट सूर्यरश्मिभिः स्पृश्यमानाः देवीभिः सह प्रातः शय्यां मुञ्चन्ति तथैव भ्रमरा अपि सूर्यरश्मिभिः स्पृश्यमानाः सन्तः भ्रमरीभिः सह प्रातः विकसितकमलिनीकोशाभ्यन्तरशय्यां त्यजन्तीति भावः।

हिन्दी-अनुवाद—जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैः=विकसित होना प्रारम्भ होने पर फैली हुयी पंखुड़ियों के किनारे अथवा छोर रूपी झरोखों से अभ्यन्तर प्रविष्ट हुई, भानोः=सूर्य की, हस्तैः=किरणों के द्वारा, स्पृश्यमानाः=स्पर्श किये जाते हुये, (अतएव), विबुद्धाः=जगे हुये, नृपतयः इव=राजाओं के सदृश, (विबुद्धाः=निद्रात्यागकर जगे हुये अथवा त्याग दी है निद्रा जिन्होंने ऐसे), घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः=अत्यधिक रात्रि-विहार (स्त्रीसम्भोग) के कारण स्वल्परूप से प्रतीत होने वाले सुगन्धित लेप अथवा उबटन से युक्त, एते=ये, भ्रमराः=भौंरे, स्त्रीभिः=अपनी भ्रमरियों के, सार्धम् =साथ, विकचनलिनीगर्भशय्याम्=खिली हुई कमलिनियों के मध्यभागरूपी शय्या को, मुञ्चन्ति=छोड़ रहे हैं।

भावार्थ—जिस भाँति थोड़े-थोड़े रूप में विकसित होते हुये पुष्पों की पंखुड़ियों के किनारे रूपी झरोखों से अन्दर प्रविष्ट हुयी सूर्य की किरणों के कोमल स्पर्श से जगाये जाते हुये राजा लोग अपनी पत्नियों के साथ अपनी शय्या को छोड़ा करते हैं उसी प्रकार निद्रा का त्याग किये हुए ये भ्रमर भी अपनी भ्रमरियों के साथ सूर्य की किरणों के स्पर्श से विकसित होने वाले कमलों के अभ्यन्तर विद्यमान शय्या का त्याग कर रहे हैं। अथवा अपनी पत्नियों

के साथ सोते हुये राजा लोग प्रातःकाल होने पर जिस प्रकार सेवा में नियुक्त अपनी दासियों के हाथों के द्वारा जगाये जाया करते हैं उस ही प्रकार (सूर्यास्त हो जाने पर अपनी पत्नियों (भ्रमरियों) के साथ कमलों में ही बन्द अथवा सोते हुये) ये भ्रमर भी सूर्य की किरणों रूपी सेविकाओं के द्वारा जगाये जाने पर कुछ-कुछ खिलते हुये कमलों के कोश के अभ्यन्तर विद्यमान अपनी शय्या का त्याग कर रहे हैं।

अलङ्कारः—उक्त पद्य में 'उपमा' अलंकार है।

छन्द—इसमें 'मन्दाक्रान्ता' छन्द है। लक्षण—"मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसन-गैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्"।

समास—जृम्भारम्भप्रवितलदलोपान्तजालप्रविष्टैः=जृम्भारम्भेण प्रवितता ये दलानां उपान्ताः ते एव जालानि तैः प्रविष्टाः, तैः। घनपरिमल-स्तोकलक्ष्याङ्गरागाः=घनपरिमलेन स्तोकं लक्ष्योऽङ्गरागो येषां ते। विकच-नलिनीगर्भशय्याम्=विकचनलिनी गर्भ एव शय्या, ताम्।

टिप्पणियां—अपरम्=दूसरा। रमणीयतरम्=अधिक सुन्दर। जृम्भः=विकास-खिलना। विबुद्धाः=निद्रा का त्याग कर दिया जिन्होंने ऐसे—अथवा जगे हुये। द्विरेफाः=भौंरे। विकचनलिनीगर्भशय्याम्=विकसित होते हुये अथवा खिले हुये कमलों के अभ्यन्तर विद्यमान शय्या को।

कञ्चुकी—देव! नन्वेषा देवी भानुमती सुवदनया तरलिकया च पर्युपास्यमाना तिष्ठति। तदुपसर्पतु देवः।

राजा—(दृष्ट्वा) आर्य विनयन्धर! गच्छ त्वं साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पयितुम्। अहमप्येष देवीं दृष्ट्वाऽनुपदमागत एव।

कञ्चुकी—एष कृतो देवादेशः। (इति निष्क्रान्तः)

सखी—प्रियसखि! अपि स्मृतं त्वया? (पिअसहि, अवि सुमरिदं तुए)।

भानुमती—सखि! स्मृतम्। अद्य किल प्रमदवन आसीनाया ममाग्रतः केनाप्यतिशयितदिव्यरूपिणा नकुलेनाहिशतं व्यापादितम् (सहि!

सुमिरिदम्। अज्ज किल पमदवणे आसीणाए मम अग्गदो केणावि अतिसइददिव्वरूविणा णउलेण अहिसदं वावादिदम्)।

उभे—(अपवार्य। आत्मगतम्। शान्तं पापम्। प्रतिहतममङ्गलम्। (प्रकाशम्) ततस्ततः। (सन्तं पावम्। पडिहदं अमंगलम्। तदो तदो)।

भानुमती—अतिसंतापोद्विग्नहृदयया विस्मृतं मया। तत्पुनरपि स्मृत्वा कथयिष्ये। (अदिसंदावोविग्गहिअआए मए विसुमरिदं। ता पुणो वि सुमरिअ कहइस्सम्)।

राजा—अहो! देवी भानुमती सुवदनातरलिकाभ्यां सह किमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति। भवतु, अनेन लताजालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विश्रब्धालापम्। (इति तथा स्थितः)।

सखी—सखि! अलं सन्तापेन। कथयतु प्रियसखी। (सहि! अलंसंदावेण। कहेदु पिअसही)।

राजा—किं नु खल्वस्याः सन्तापकारणम्। अथवानामन्त्र्य मामियमद्य वासभवनान्निष्क्रान्तेति समर्थित एवास्या मया कोपः। अयि भानुमति! अविषयः खलु दुर्योधनो भवत्याः कोपस्य—

किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखं नाद्यासि संभाविता।
अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो
दोषं पश्यसि कं? प्रिये! परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ॥९॥

कञ्चुकी—महाराज! सुवदना और तरलिका द्वारा सेवा की जाती हुई यह महारानी भानुमती बैठी है। महाराज उनके पास चलें।

राजा—(देखकर) आदरणीय विनयन्धर! युद्ध सम्बन्धी मेरे रथको तैयार करने के लिये तुम जाओ। मैं भी महारानी से मिलकर यह पीछे-पीछे आ ही गया।

कञ्चुकी—महाराज का यह आदेश कर ही दिया गया (अर्थात् आपकी आज्ञा का तुरन्त ही पालन करता हूँ। (ऐसा कहकर चला जाता है)।

सखी—प्रियसखि! क्या आपको स्मरण आया?

भानुमती—सखि! स्मरण आ गया। आज प्रमदवन में बैठे हुये मेरे समक्ष स्वर्ग के रूप से भी अधिक सुन्दर रूप धारी एक न्योले ने सौ सर्पों को मार डाला।

दोनों -(दूसरी ओर मुँह फेरकर। अपने मन में।) पाप शान्त हो। अमङ्गल का विनाश हो। (प्रकट रूप से) उसके पश्चात्—

भानुमती—अत्यधिक सन्ताप के कारण व्याकुल हृदयवाली मैं पुनः भूल गई। अतः फिर से स्मरण करके कहूँगी।

राजा—आहा! देवी भानुमती, सुवदना और तरलिका के साथ वार्त्तालाप करती हुई स्थित है। अच्छा, इस लता की झाड़ी से छुपकर इनके विश्वस्त-आलाप को सुनता हूँ। (ऐसा सोचकर उसी (कथित) रूप में स्थित हो जाता है)।

सखी—सखि! सन्ताप करना व्यर्थ है। प्रियसखी (आगे) कहें।

राजा—इसके सन्ताप का कारण क्या हो सकता है? अथवा वह मुझसे बिना पूछे ही वास-भवन से निकल आई है। इससे (अपने ऊपर) इसके कोप को मैं समझ गया। अरी भानुमती, दुर्योधन आपके क्रोध का पात्र नहीं है।

अन्वयः—प्रमादात् मया कण्ठे भुजलतापाशः शिथिलीकृतः किम्? अद्य निद्राच्छेदविवर्त्तनेषु अभिमुखं न सम्भाविता असि (किम्), स्वप्ने त्वया अहं अन्यस्त्रीजनसंकथालघु लक्षितः किम्? हे प्रिये! परिजनोपालम्भयोग्ये मयि कं दोषं पश्यसि?

संस्कृत-व्याख्या—प्रमादात्=अनवधानतया ("प्रमादोः नवधानता" इत्यमरः), मया=दुर्योधनेनेत्यर्थः, कण्ठे=गले, (त्वत्कृतः) भुजलतापाशः=भुजबन्धनम्, शिथिलीकृतः=श्लथीकृतः, किमिति प्रश्ने—अर्थात् ऐतादृशी त्रुटिः मया कदाचिदपि न कृत—इत्यभिप्रायः। अद्य=विगतायां रात्राविसर्थः, निद्राच्छेदविवर्त्तनेषु=निद्रायाः छेदाः—भङ्गाः, तेषु विवर्त्तनानिपार्श्वपरिवर्त्तनानि,

तेषु–निद्राभङ्गकालिकपार्श्वपरिवर्त्तनेषु–इत्यर्थः, अभिमुखम्=अभिमुखं स्थिता–यत्संमुखंवर्त्तमाना त्वम्, न सम्भाविता असि=प्रीतिमधुरालापादिभिः न सत्कृता असि किम् ? निद्राकालेऽपि मया तव तिरस्कारः न कृतः–इति भावः। स्वप्ने=स्वप्नदशायाम्, त्वया=भवत्या, अहम्=दुर्योधनः–इत्यर्थः, अन्यस्त्रीजनसंकथालघुः=अन्येन अपरेण-त्वदतिरिक्तेन स्त्रीजनेन संकथा–तल्लीनतया संभाषणम्, तेन कारणेन लघुः–क्षुद्रतां प्राप्तः, लक्षितः=दृष्टः किम् ? हे प्रिये !=हे दयिते। भानुमति ! परिजनोपालम्भयोग्ये=परिजनवत्-स्वसेवकवत् उपालम्भस्य-भर्त्सनस्य योग्ये–सेवकसदृशपरिभाषणार्हे-इत्यर्थः, मयि=दुर्योधने, कम्, दोषम्=अपराधम्, पश्यसि=विलोकयसि?" कथय, केनापराधेन मयि कुपिता असि ? इत्याशयः ॥९॥

हिन्दी-अनुवाद—प्रमादात्=असावधानी के कारण, मया=मेरे द्वारा, कण्ठे=गले में, भुजलतापाशः=तुम्हारी बाहुरूपी लताओं का पाश, शिथिलीकृतः=शिथिल किया गया है. किम्=क्या ? अद्य=आज (विगतरात्रि में), निद्राच्छेदविवर्तनेषु=नींद के टूटने पर करवटें बदलने में, अभिमुखम्=तुम्हारी ओर मुख करके, न सम्भाविता=तुम्हारा आदर नहीं किया है क्या ? स्वप्ने=स्वप्न में, त्वया=तुम्हारे द्वारा, अहम्=मैं, अन्यस्त्रीजनसंकथालघु=दूसरी स्त्री के साथ बातचीत में तल्लीन होने के कारण लघु-ओछा अर्थात् तिरस्करणीय, लक्षितः=समझ लिया गया (किम् ?=क्या ?), हे प्रिये !=हे प्रियतमे !, परिजनोपालम्भयोग्ये=सेवक के समान भर्त्सना के योग्य, मयि=मुझमें, कम्=किस, दोषम्=दोष को, पश्यसि=देख रही हो ?

भावार्थ—क्या असावधानी (लापरवाही) के कारण तुम्हारे द्वारा मेरे गले में डाली गई बाहों का पाश मेरे द्वारा कभी ढीला किया गया है ? विगत रात्रि में बीच-बीच में नींद के टूटने पर करवटें बदलने के समय तुम्हारे मुख के समक्ष अपने मुख को करके क्या मेरे द्वारा तुमको आदृत नहीं किया गया है ? (कहने का अभिप्राय यह है कि निद्रा में भी मैंने कभी तुमको तिरस्कृत नहीं किया है) किसी अन्य स्त्री के साथ वार्त्तालाप करने में संलग्न मुझे क्या तुमने कभी स्वप्न में भी देखा है ? हे प्रिये ! मैं तो सेवक के सदृश

तुम्हारा अनुगत हूँ फिर तुमने मेरे कौन से दोष को देखा है कि जिसके कारण तुम मुझसे रुष्ट होकर यहाँ चली आई हो ?

छन्द—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है। लक्षण—"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्"।

समास—साङ्ग्रामिकम्=सङ्ग्रामे साधुः साङ्ग्रामिकः तम्। अनुपदम्=पदस्य पश्चात्-अनुपदम्। अतिशयितदिव्यरूपिणा=अतिशयितं-प्रतिक्रान्तं दिव्यम्-स्वर्गोद्भवम् रूपम्-आकारः येन, तेन। अतिसन्तापोद्विग्नहृदयया=अतिसन्तापेन-अत्यधिकमानसिकदुःखेन उद्विग्नं हृदयं यस्याः सा तया। निद्राच्छेदविवर्तनेषु=निद्रायाः छेदाः—निद्राच्छेदाः तेषु विवर्तनानि, तेषु। अन्यस्त्रीजनसंकथालघु=अन्यस्त्रीभिः सह या संकथा-आलापः तत्र लघु। परिजनोपालम्भयोग्ये=परिजनवत् उपालम्भस्य योग्ये-इति।

टिप्पणियाँ—साङ्ग्रामिकम्=युद्ध सम्बन्धी अथवा युद्ध सम्बन्धी कार्य में उत्तम। उपकल्पयितुम्=तैयार करने के लिये। अनुपदम्=पीछे-पीछे ही अर्थात् अतिशीघ्र ही। प्रमदवने=प्रमदोद्यान में। आसीनायाः—बैठी हुयी। अग्रतः=सामने—समक्ष। अतिशयितदिव्यरूपिणा=जिसने अपने सौन्दर्य से स्वर्ग के सौन्दर्य को भी नीचा दिखला दिया था ऐसे। नकुलेन—'नेउर' तथा न्योला के द्वारा—अभिप्राय होगा—पाण्डव के द्वारा। अहिशतम्=सौसर्पों को। सौ शत्रुओं को। व्यापादितम्=मार डाला। अतिसन्तापोद्विग्नहृदयया=मानसिकदुःख के अत्यधिक होने के कारण दुःखी है हृदय जिसका ऐसी। अनामन्त्र्य—बिना कहे अथवा बिना पूछे ही। समर्थितः—पहले से ही ज्ञात। अविषयः—विषय अथवा पात्र नहीं। प्रमादात्=लापरवाही के कारण। भुजलतापाशः=लतासदृश कोमल भुजाओं के बन्धन को। शिथिलीकृतः=ढीला किया है। अद्य=आज—यहाँ विगतरात्रि से अभिप्राय है। विवर्त्तनानि=करवटें लेना या बदलना। संकथा=वार्तालाप-बातचीत। लघुः=क्षुद्रता को प्राप्त। लक्षितः=देखा गया। प्रियजनोपालम्भयोग्ये—अपने सेवक के समान भर्त्सना किये जाने योग्य। दोषम्=अपराध को।

(विचिन्त्य) अथवा—

इयमस्मदुपाश्रयैकचित्ता मनसा प्रेमनिबद्धमत्सरेण ।
नियतं कुपितातिवल्लभत्वात्स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम् ॥१०॥

तथापि शृणुमस्तावत्किं वक्ष्यतीति ?

(सोचकर) अथवा—

अन्वयः—अस्मदुपाश्रयैकचित्ता इयं प्रेमनिबद्धमत्सरेण मनसा अतिवल्लभत्वात् मम अपराधलेशं स्वयं उत्प्रेक्ष्य नियतं कुपिता ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्मदुपाश्रयैकचित्ता=वयमुपाश्रयः—अवलम्बनं यस्य तत्तथाभूतं एकं—अविभक्तं—अनन्यविषयमित्यर्थः चित्तं यस्याः सा अस्मदुपाश्रयैकचित्ता—मद्गतप्राणा, इयम्=एषा भानुमती, प्रेमनिबद्धमत्सरेण=प्रेम्णा—रत्या निबद्धः—जनितः मत्सरः—कोपः यस्मिन् तादृशेन, मनसा=चित्तेन, अतिवल्लभत्वात् मम=दुर्योधनस्य, अपराधलेशम्=अपराधलवम्-अतिस्वल्पमपराधमित्यर्थं स्वयम्=आत्मनैव, उत्प्रेक्ष्य=संभाव्य, नियतम्=नूनम्, कुपिता=क्रुद्धा संजाता ॥१०॥

हिन्दी-अनुवाद—अस्मदुपाश्रयैकचित्ता=एकमात्र मेरी ओर ही अपने मन को लगाने वाली, इयम्=यह (भानुमती) प्रेमनिबद्धमत्सरेण=प्रेम से उद्भूत हुये क्रोध वाले, मनसा=मन से, अतिवल्लभत्वात्=अत्यधिक प्रेम के कारण, मम=मेरे, अपराधलेशम्=मेरे किसी तनिक से अपराध को, स्वयम्=स्वयं ही, उत्प्रेक्ष्य=सम्भावना करके, नियतम्=निश्चितरुप से, कुपिता=क्रोधित अथवा रुष्ट हो गई है ।

भावार्थ—इस भानुमाती का मुझ से अनन्य प्रेम है। इसीलिये इसके मन में मेरे प्रति प्रगाढ़ प्रेम है। मुझको भी यह अत्यन्त प्रिय है। इसी कारण मेरे किसी छोटे से अपराध की स्वयं ही संभावना करके यह मुझ से रूठ गई है मुझे भी ऐसा प्रतीत हो रहा है ।

छन्दः—उक्त पद्य में "औपच्छन्दसिक" नामक छन्द है। लक्षण—"षड्विमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समेस्युर्नोनिरन्तराः। न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः ॥ तत्रैवान्तेऽधिके गुरौ स्यादौपच्छन्दसिकं कवीन्द्रहृद्यमिति ॥

समासः—अस्मदुपाश्रयैकचित्ता=वयमुपाश्रयः यस्य तत्तथाभूतं एकं चित्तं यस्याः सा। प्रेमनिबद्धमत्सरेण=प्रेम्णा निबद्धः मत्सरः यस्मिन् तादृशेन। अपराधलेशम्=अपराधस्य लेशम्।

टिप्पणियाँ—विचिन्त्य=गम्भीरता के साथ विचार करके। उपाश्रयः=अवलम्बन आधार। एकम्=अनन्य। अतिवल्लभात्=अत्यधिक प्रेम होने के कारण। अपराधलेशम्=तनिक से अपराध को। उत्प्रेक्ष्य=संभावना करके ॥१०॥

फिर भी हम सुनें कि यह क्या कहती है?

भानुमती—हला! अहं ततस्तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता। (हला अहं तदो तस्स अदिसइददिव्वरूविणो णउलस्स दंसणेण उच्छुआ जादा।

राजा—(सवैलक्ष्यम्) किं नामातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता? तत्किमनया पापया माद्रीसुतानुरक्तया वयमेवं विप्रलब्धाः? (सोत्प्रेक्षम्) (इयमस्मद् (२।१०)–इति पठित्वा) मूढ़ दुर्योधन! कुलटाविप्रलभ्यमानमात्मानं बहुमन्यमानोऽधुना किं वक्ष्यसि? (किं कण्ठे (२।६) इत्यादि पठित्वा। दिशोऽवलोक्य) अहो! एतदर्थमेवास्याः प्रातरेव विविक्तस्थानाभिलाषः सखीजनसंकथासु च पक्षपातः। दुर्योधनस्तु मोहादविज्ञातवन्ध्यकीहृदयसारः क्वापि परिभ्रान्तः। आः पापे! मत्परिग्रहपांसुले—

तद्भीरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि
श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः।
तच्चौदार्यं मयि जडमतौ चापले कोऽपि पन्थाः
ख्याते तस्मिन्वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत् ॥११॥

भानुमती—सखि! तदनन्तर देवताओं के रूप से भी अधिक रूपवान् उस नकुल के दर्शन से मैं उत्कण्ठित हो गई।

राजा—(लज्जित सा होकर अथवा खिसियाकर) क्या कहा ? देवों से भी अधिक रूपवान् नकुल के दर्शन से उत्कण्ठित (कामपीड़ित) हो गई। तब क्या माद्री के पुत्र (नकुल) पर आसक्त हुई इस पापिनी ने हमको इस प्रकार धोखा दिया है ? (सोचते हुये—"इयमस्मद्"–इत्यादि २।१० का पुनः पाठ करके) मूर्ख दुर्योधन ! कुलटा (छिनार स्त्री) के द्वारा वञ्चित भी अपने आपको बहुत मानने वाला तू अब क्या कहेगा ? ("किं कण्ठे"–इत्यादि २।९ को पढ़कर। दिशाओं की ओर अथवा चारों ओर देखकर) ओह ! इसीलिये प्रातःकाल ही इसकी एकान्त स्थान के सेवन की इच्छा तथा सखियों के साथ स्वच्छन्दरूप से वार्तालाप करने की अभिलाषा हुई है। दुर्योधन तो अज्ञान के कारण कुलटा (व्यभिचारिणी) के हृदय की वास्तविकता को न जानने के कारण कहीं और ही भटका हुआ था। ओ पापिनी ! मेरे कुल को कलङ्कित करने वाली !—

अन्वयः—मम पुरः तव तत् भीरुत्वम् (तथा, अधुना) ईदृशानि साहसानि, अस्मद्वपुषि सा श्लाघा (इदानीं च) विनयव्युत्क्रमे अपि एषः रागः; जडमतौ मयि च तत् औदार्यम् (सम्प्रति च) चापले कोऽपि पन्थाः, तस्मिन् वितमसि कुले जन्म (पुनश्च, इत्थम्) एतत् कौलीनम् ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—मम=मे, पुरः=अग्रे, तव=भवत्याः–भानुमत्याः–इत्यर्थः, तत्=तथा दर्शितम्–प्रशंसनीयमिति यावत्, भीरुत्वम्=भीरुता (त्वया मत्समक्षे तु भीरुता मुहुः प्रकटीकृता-इत्यर्थः), (तथा-अधुना) ईदृशानि=एतादृशानि-परपुरुषासक्तिरूपाणिएकान्ते स्थित्वा परपुरुषानुरागसङ्कथापक्षपातादिरूपाणि वा, साहसानि=दुष्करकर्माणि, अस्मद्वपुषि=अस्माकं शरीरे, सा=तादृशी अतिविशिष्टेति यावत्, श्लाघा=प्रशंसाप्रशंसया प्रेमातिशयश्च सूचितः, (च इदानीम्), विनयव्युत्क्रमे=पातिव्रत्यभङ्गे, अपि, एषः=अयम्-दृश्यमान इति यावत्, रागः=अनुरागः, जडमतौ=जडा मूढा मतिः बुद्धिः यस्य तस्मिन्, मयि=दुर्योधने, च, तत्=पूर्वमनुभूतम्, औदार्यम्=तव उदारता दाक्षिण्यं वा, (सम्प्रति च), चापले=चाञ्चल्ये-शीलविलोपे-इत्यर्थः, कोऽपि=परैरतर्कितः–कोऽप्यभिनवः, पन्थाः=मार्गः, तस्मिन्=तादृशे ख्याते, वितमसि=कलङ्करहिते,

कुले=वंशेक्षत्रियाणां विशुद्धे महति वंशे, जन्म=तव उत्पत्तिः, (पुनश्च, इत्थम्), एतत्=इदम्–ईदृशम्–परपुरुषसङ्गमरूपमित्यर्थः, कौलीनम्=अपवादः। उभयं तवैतत् न संघटते—इत्याशयः ॥११॥

हिन्दी-अनुवाद—मम=मेरे, पुरः=समक्ष, तव=तुम्हारी, तत्=वह, भीरुत्वम्=भीरुता (तथा=और, अधुना=अब), ईदृशानि=इस प्रकार के (तुम्हारे), साहसानि=साहसपूर्ण अनुचित कार्य। अस्मद्वपुषि=(कहाँ) तो हमारे शरीर के विषय में तुम्हारे द्वारा की गयी, सा=वह, श्लाघा=प्रशंसा; (इदानीं च=और इस समय), विनयव्युत्क्रमे=विनय अर्थात् पातिव्रत्यरूप मर्यादा का उल्लंघन करने में अपि=भी, एषः=यह रागः=अनुराग। जडमतौ=मन्दबुद्धि, मयि=मेरे प्रति (कहाँ तो तुम्हारी) तत्=वह, औदार्यम्=उदारता (और कहाँ),चापले=चञ्चलता में किया गया, कोऽपि=कोई (अर्थात् अपूर्व), पन्थाः=(यह) मार्ग। तस्मिन्=(कहाँ तो)उस (विश्व प्रसिद्ध), वितमसि=निर्मल अर्थात् पवित्र, कुले=वंश में, जन्म=(तुम्हारी) उत्पत्ति का होना, (और कहाँ) एतत्=यह, कौलीनम् अपवाद अर्थात् निन्दनीय कार्य ॥११॥

भावार्थ—हे भानुमती-कहाँ तो तू मेरे समक्ष इतनी डरपोक और भोली भाली बनती थी और कहाँ ये तुम्हारे द्वारा किये जा रहे तुम्हारे अनुचित कार्य? कहाँ तो तू मेरे सौन्दर्य की अत्यधिक प्रशंसा करने वाली थी और कहाँ यह तुम्हारे द्वारा किया जा रहा है पातिव्रत्यरूप मर्यादा का उल्लंघन! कहाँ तो मुझ मूर्ख के समक्ष प्रकट की जाने वाली तुम्हारी वह उदारता और कहाँ तेरा यह चपलता (व्यभिचार–परायणता) का यह मार्ग! कहाँ तो तेरा एक अति-प्रसिद्ध एवं निष्कलङ्क कुल में जन्म का लेना और कहाँ तुम्हारे द्वारा किया जा रहा यह निन्दनीय अथवा कलङ्कपूर्ण कार्य! दुर्योधन के कहने का अभि-प्राय यह है कि तुम्हारे द्वारा किया जा रहा यह कार्य तुम्हारे कुल तथा तुम्हारी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है।

अलंकार—उक्त पद्य में "विषम" नामक अलङ्कार है। लक्षण—

छन्द—इसमें "मन्द्राक्रान्ता" नामक छन्द है।

समास-**अतिशयितदिव्यरूपिण:**=अतिशयितं अतिक्रान्तं दिव्यरूपम्-स्वर्गसौन्दर्यम्, तदस्यास्तीति-तथाभूतस्य। **दर्शनोत्सुका**=दर्शनेन उत्सुका-इति। **माद्रीसुतानुरक्तया**=माद्रीसुते-नकुलनामपाण्डवे अनुरक्ता इति माद्रीसुतानुरक्ता तया। **कुलटाविप्रलभ्यमानम्**=कुलटया-व्यभिचारिण्या विप्रलभ्यमानम्-इति। **विविक्तस्थानाभिलाष:**=विविक्तेनिर्जने स्थाने अभिलाष:। **सखीजनसंकथासु**=सखीजनै: सह संकथासु-वार्तासु। **अविज्ञातबन्धकीहृदयसार:**=अविज्ञात: बन्धक्या: कुलटाया: हृदयस्य सार:-तत्त्वं येन स:। **मत्परिग्रहपांसुले**=मम परिग्रह: इति मत्परिग्रह:, मत्परिग्रहश्चासौ पांसुला=मत्परिग्रहपांसुला, तत्सम्बुद्धौ। **विनयव्युत्क्रमे**=विनयस्य व्युत्क्रम: इति विनयव्युत्क्रम:, तस्मिन्।

व्याकरण:-**रूपिण:**=यहाँ मत्वर्थ में 'इनि' प्रत्यय होकर यह रूप बना है।

टिप्पणियाँ— **अतिशयितदिव्यरूपिण:**=अनुपमसौन्दर्य से युक्त। **उत्सुका**=उत्कण्ठित। **सवैलक्ष्यम्**=लज्जा के साथ। **माद्रीसुतानुरक्तया**=माद्री के पुत्र "नकुल" के प्रति आसक्त। भानुमती द्वारा कथित 'नकुल' शब्द से नेवले (न्यौले) का कथन किया गया है किन्तु दुर्भाग्य से दुर्योधन 'नकुल' का अर्थ माद्री के पुत्र 'नकुल' नामक पाण्डव से कर रहे हैं। निस्सन्देह 'नकुल' अत्यन्त सुन्दर थे। नकुल शब्द की द्व्यर्थकता के कारण ही यहाँ दुर्योधन को भ्रम अथवा सन्देह हो रहा है। **विप्रलब्धा:**=ठगे गये। **कुलटाविप्रलभ्यमानम्**=व्यभिचारिणी स्त्री के द्वारा ठगे जाते (अथवा धोखा दिये जाते) हुये। **विविक्तस्थानाभिलाष:**=एकान्त अथवा निर्जन स्थान में बैठने की इच्छा। 'विविक्तौ पूतविजनौ" इत्यमर:। **अविज्ञातबन्धकीहृदयसार:**=अज्ञान के कारण (इस) व्यभिचारिणी (भानुमती) के हृदय के तत्त्व को न समझ सकने वाला। "कुलटा बन्धकीत्वरी"-इत्यमर:। **मत्परिग्रहपांसुले**=मेरी व्यभिचारिणी पत्नी—"पत्नी परिजनादानमूलशापा: परिग्रहा:"—इत्यमर:। **विनयव्युत्क्रमे**=शील के खण्डित होने अथवा पातिव्रतधर्म के नष्ट होने में। **औदार्यम्**-उदारता-अनुकूलता अथवा स्नेहातिशय का दिखाना। **वितमसि**=विशुद्ध-पवित्र निष्कलङ्क। **कौलीनम्**-अपवाद, लोकवाद

"कौलीनं पशुभियुद्धे कुलीनत्वापवादयोः" इतिविश्वः। "स्यात्कौलीनं लोकवादः" इत्यमरः। लोकनिन्दा अथवा कलङ्क॥

सखी—ततस्ततः? (तदो तदो)

भानुमती—तत उज्झित्वा तदासनस्थानं लतामण्डपं प्रविष्टा। ततः सोऽपि मामनुसरन्नेव लतामण्डपं प्रविष्टः। (ततो उज्झिअ तं आसणट्ठाणं लदामण्डवं पविट्ठा। तदो सोवि मं अणुसरन्तो एव्व लदामण्डवं पविट्ठो।

राजा—अहो! कुलटोचितमस्याः पापाया अशालीनत्वम्।

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरबद्धभाव—
मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः।
तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती
ह्रीणासि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन्॥१२॥

सखी—(तो फिर) उसके पश्चात् (क्या हुआ)?

भानुमती—तत्पश्चात् बैठने के उस स्थान को छोड़कर मैं लतामण्डप में चली गई। तब वह भी मेरा अनुसरण करता हुआ ही (उस) लतामण्डप में ही प्रविष्ट हुआ।

राजा—ओह, इस पापिनी की निर्लज्जता भी व्यभिचारिणी के अनुरूप ही है।

अन्वयः—हे पापहृदये! यस्मिन् सखीजने (त्वया) रहसि मत्सुरतोपभोगः चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावं आवेदितः तत्र एव अस्मिन् अद्य दुश्चरितं निवेदयन्ती न ह्रीणासि?

संस्कृत-व्याख्या—हे पापहृदये!=पापम्-पापपूर्णं हृदयं यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ-हे पापमानसे!-हे पापिनि!, यस्मिन्, सखीजने=सखीसमूहे-सखीवृन्दे वा, (त्वया), रहसि=एकान्ते, मत्सुरतोपभोगः=मम-स्वपत्युः दुर्योधनस्येत्यर्थः सुरतोपभोगः-कामक्रीडाव्यापारः, चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम्=चिरम्-

चिरकालम्-बहोः कालादित्यर्थः यः प्रणयः-प्रीतिः तेन निर्भरम्-भृशम्-सम्पूर्णमित्यर्थः, बद्धः-रचितः-प्रकटितः इति यावत्, भावः-स्वहृदयाभिप्रायः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, आवेदितः-कथितः, तत्र एव-तस्मिन्नेव, अस्मिन् अद्य-इदानीम्, दुश्चरितम्-परपुरुषप्रसङ्गरूपदुराचारम्, निवेदयन्ती-कथयन्ती, त्वमितिशेष, न, ह्रीणासि-लज्जिता असि किमिति शेषः।

हिन्दी-अनुवाद—हे पापहृदये-हे पापपूर्ण हृदयवाली !, यस्मिन्-जिस, सखीजने-सखियों के समूह में (त्वया-तुम्हारे द्वारा), रहसि-एकान्त में, मत्सुरतोपभोगः-मेरे द्वारा की गयी कामक्रीडा के व्यापार के सम्बन्ध में, चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम्-बहुत समय से चले आते हुये प्रेम के कारण अत्यधिक चाव से, आवेदितः-कहा गया है, तत्र-उस, एव-ही, अस्मिन्-इस सखी-समूह में, अद्य-आज, दुश्चरितम्-अपने दुराचार को, निवेदयन्ती-कहती हुई तुम, न-नहीं, ह्रीणासि-लज्जित हो रही हो क्या ?

भावार्थ—हे पापपूर्ण हृदयवाली भानुमति ! तुमने अपनी जिन सखियों से चिरकाल से प्रबद्ध मेरे प्रेम तथा मेरी कामक्रीडा की बातें की थीं, आज उन्हीं सखियों से अपने परपुरुष-प्रसङ्ग की बातें करते हुये तुमको तनिक भी लज्जा नहीं आती ?

अलङ्कार—उक्त पद्य में 'पर्याय' नामक अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'वसन्ततिलका' छन्द है।

टिप्पणियाँ—आसनस्थानम्-विश्रामस्थल। पापायाः-पापिनी का, कुलटा का। अशालीनत्वम्-निर्लज्जता। सखीजने-सखियों के समूह में निर्भरम्-अत्यधिक। भावः-अनुराग। मत्सुरतोपभोगः-मेरा सम्भोग सम्बन्धी व्यापार। चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम्-अधिक समय से चले आते हुये प्रेम के कारण अत्यधिक चाव अथवा प्रेम के साथ। आवेदितः-कहा गया है। ह्रीणासि-लज्जित हो रही हो ॥१२॥

उभे—ततस्ततः (तदो तदो)।

भानुमती—ततस्तेन सगर्वं प्रसारितकरेणापहृतं मेस्तनांशुकम्। (तदो तेण सगव्वं पसारिअकरेण अवगहिदं मे त्थणंसुअम्।)।

राजा—(विचिन्त्य) सगर्वं प्रसारितकरेणापहृतं मे स्तनांशुकम्। (सक्रोधम्) अलमतः परं श्रुत्वा। भवतु तावत्तस्य परवनितास्कन्दन-प्रगल्भस्य माद्रीसुतहतकस्य जीवितमपहरामि। (किंचिद् गत्वा। विचिन्त्य) अथवा इयमेव तावत्पापशीला प्रथममनुशासनीया। (इति निवर्तते)।

उभे—ततस्ततः (तदो तदो)।

भानुमती—ततोऽहमार्यपुत्रस्य प्रभातमङ्गलतूर्यरवमिश्रेण वारविला-सिनीसंगीतशब्देन प्रतिबोधिताऽस्मि। (तदो अहं अज्जउत्तस्य पभाद-मङ्गलतूररवमिस्सेण वार विलासिणीसङ्गीदसद्देण पडिबोधिदह्मि।

राजा—(सवितर्कम्) किं नु प्रतिबोधितास्मीति स्वप्नदर्शनमनया वर्णितं भवेत् (विचिन्त्य) भवतु सखीवचनाद्व्यक्तिर्भविष्यति।

(उभे सविषादमन्योन्यं पश्यतः।)

दोनों—उसके पश्चात् ?

भानुमती—तब उसने धृष्टता के साथ हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली।

राजा—(सोचकर) गर्व से हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली ? (क्रोध के साथ) इसके आगे सुनना व्यर्थ है। अच्छा, तो मैं दूसरे की स्त्री को दूषित करने में ढीठ अभागे माद्री के पुत्र (नकुल) के ही प्राण लिये लेता हूं। (कुछ दूर जाकर, सोचकर) अथवा पहले इस पापिनी को ही दण्ड देना चाहिये। (ऐसा विचार कर लौट पड़ता है।) ।

दोनों—उसके बाद (क्या हुआ ?) ।

भानुमती—उसके पश्चात् आर्यपुत्र (दुर्योधन) के (जगाने के लिये बजाये जाते हुये) प्रातःकालीन माङ्गलिक वाजों की ध्वनि से मिले हुये वेश्याजनों की संगीत-ध्वनि से मैं जगा दी गई हूं।

राजा—(तर्क करता हुआ) "जगा दी गई हूं" इसके इस कथन से प्रतीत होता है कि इसके द्वारा देखे गये स्वप्न का ही वर्णन इसने किया है।

(सोचकर) अच्छा, सखी के वचन से स्पष्ट हो जायगा (कि यह स्वप्न का वर्णन है अथवा वास्तविक कथन ?)

(दोनों दुःख के साथ एक दूसरे की ओर देखती हैं।)

समास—**प्रसारितकरेण**=प्रसारितः करः येन, तेन। **स्तनांशुकम्**=स्तनयोः कुचयोः अंशुकम्-वस्त्रम्। **परवनितास्कन्दनप्रगल्भस्य**=परस्य-अन्यस्य वनिता-पत्नी-परवनिता, परवनितायाः स्कन्दने-प्रधर्षणे प्रगल्भस्यधृष्टस्य, अथवा-परवनितासु यदास्कन्दनं-बलात्कारेण प्रवृत्तिः, तत्र प्रगल्भस्य। **माद्रीसुतहतकस्य**=माद्रीसुतश्चासौ हतकः—इति-माद्रीसुतहतकः, तस्य। **पापशीला**=पापं पापपूर्णं शीलं यस्याः सः। **प्रभातमङ्गलतूर्यरवेण**=प्रभाते मङ्गलानि-माङ्गलिकानि यानि तूर्याणि-वाद्यानि, तेषां रवेण मिश्रः, तेन। **वारविलासिनीजनसङ्गीतशब्देन**=वारविलासिनी-जन-वेश्याजनः तेषां संगीतस्य शब्देन (ध्वनिता)।

टिप्पणियाँ—**सगर्वम्**=धृष्टता के साथ। **स्तनांशुकम्**=स्तनों को ढकने वाला वस्त्र-कञ्चुकी-चोली। **अलम्**=बस, पर्याप्त, व्यर्थ। **परवनितास्कन्दनप्रगल्भस्य**=दूसरों की स्त्रियों को दूषित करने में धृष्ट (ढीठ)। **माद्रीसुतहतकस्य**=दुष्ट अथवा नीच माद्री के पुत्र 'नकुल' के। **जीवितम्**=जीवन। **पापशीला**=पापयुक्त स्वभाव वाली। **अनुशासनीया**=दण्डनीया। **आर्यपुत्र**=नाट्यशास्त्र के अनुसार स्त्रियाँ अपने पतिको "आर्यपुत्र" कहकर ही सम्बोधित किया करती थीं। **प्रभातमङ्गलतूर्यरवमिश्रेण**=प्रातःकालीन माङ्गलिक वाद्यों के शब्द से मिश्रित। **वारविलासिनीजनसङ्गीतशब्देन**=वेश्याओं के संगीत की ध्वनि के द्वारा। **प्रतिबोधिता**=जगादी गयी अथवा जगा दिया। **वर्णितम्**=कथन किया गया हो। **सखी-संलापात्**=सखी अथवा सखियों के वाक्य से। **व्यक्तिः**=स्पष्ट।

सुवदना—यत्किमप्यत्राऽस्त्याहितं तद्भागीरथीप्रमुखाणां नदीना सलिलेनापह्रियताम्। भगवतां ब्राह्मणानामथाशिषा आहुतिहुतेन प्रज्वलितेन भगवता हुताशनेन च नश्यतु (जं किं वि एत्थ अच्चाहिदं तं भाईरहीप्पमुहाणं णईणं सलिलेण अवहारीअदु। भअवदाणं ब्रह्म-

णाणं वि आसीसाए आहुदिहुदेण पज्जलिदेण भअवदा हुदासणेण अ णस्सदु ।) ।

राजा—अलं विकल्पेन । स्वप्नदर्शनमेवैतदनया वर्णितम् । मया पुनर्मन्दधियाऽन्यथैव संभावितम् ।

दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो
दिष्ट्या नो परुषं रुषाऽर्धकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम् ।
मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता
मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत्॥१३॥

सुवदना—इस (स्वप्नदर्शन) में जो कुछ भी अनिष्ट है उसे गंगा आदि नदियों के जल से दूर कर दिया जाय। ऐश्वर्यशाली ब्राह्मणों के आशीर्वचन तथा आहुति दिये गये एवं प्रज्वलित अग्नि देव द्वारा नष्ट कर दिया जाय।

राजा—(अब) तर्क-वितर्क अथवा सन्देह करना व्यर्थ है। इसके द्वारा स्वप्नदर्शन का ही वर्णन किया गया है। किन्तु मुझ मूर्ख द्वारा इसे दूसरे ही रूप में समझ लिया गया।

अन्वय—दिष्ट्या अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात् अहं नो गतः, दिष्ट्या अर्धकथने रुषा मया किञ्चित् परुषं नो व्याहृतम्, दिष्ट्या विमूढहृदयं मां प्रत्याययितुं कथा अन्तं गता, दिष्ट्या मिथ्यादूषितया अनया विरहितं जगत् न जातम् ।

संस्कृत-व्याख्या—दिष्ट्या=भाग्येन, अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात्=अर्धेन-असम्पूर्णेन श्रुतेन-श्रवणेन यः विप्रलम्भः-भ्रान्तिः तेन जनितः यः क्रोधः तस्मात्-तमवलम्ब्येत्यर्थः, अहम्=दुर्योधनः (भानुमत्याः समीपम्), नो गतः=न यातः, दिष्ट्या=सौभाग्येनैव, अर्धकथने=भानुमत्या अर्द्धभाषणे एव, रुषा=क्रोधेन, मया=दुर्योधनेन, किञ्चित्=किमपि, परुषम्=कठोरम्, नो व्याहृतम्=नोक्तम्—"दिष्ट्या मया क्रूरवचनानि नोक्तानीत्यर्थः"। दिष्ट्या=भाग्येन, विमूढहृदयम्=विमूढम्=विवेचने असमर्थं हृदयं चेतः यस्य तम्-भ्रान्तचित्तम्-

इत्यर्थः, माम्=दुर्योधनम्, प्रत्याययितुम्=विश्वासयितुम्, कथा=स्वप्नवृतान्तः, अन्तम्=समाप्तिम्, गता=प्राप्ता। दिष्ट्या=सौभाग्येनैव च, मिथ्यादूषितया=मिथ्यैवकलङ्कितया, अनया=एतया भानुमत्या, विरहितम्=शून्यम्, जगत्=संसारः-इदं भूतलं वा, न जातम्=नैव जातम्। क्रोधावेगात् प्रहृत्य मया परलोकं न प्रेषिता-इति तु मदीयमेव सौभाग्यमित्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद—दिष्ट्या=भाग्य से, अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात्=(मेरे द्वारा) आधी ही सुनी गई हुई बात से उत्पन्न भ्रान्ति के कारण उत्पन्न हुये क्रोध के साथ, अहम्=मैं दुर्योधन (भानुमती के पास), नो गतः=नहीं चला गया। दिष्ट्या=भाग्य से ही, अर्धकथने=(भानुमती द्वारा) आधा ही कहे जाने पर ही, रूषा=क्रोधित, मया=मेरे द्वारा, किञ्चित्=कुछ भी, परुषम्=कठोर अथवा क्रूर, नो व्याहृतम् नहीं कह डाला गया। दिष्ट्या=भाग्य से ही, विमूढहृदयम्=मूर्खहृदयवाले, माम्=मुझको, प्रत्याययितुम्=विश्वास दिलाने के लिये, कथा=(भानुमती द्वारा कहा जाता हुआ) स्वप्न का वृत्तान्त, अन्तम्=समाप्ति को, गता=प्राप्त हो गया। दिष्ट्या=भाग्य से ही, मिथ्यादूषितया=असत्य रूप से दोष लगाई गयी, अनया=इस भानुमती से, विरहितम्=विहीन, रहित अथवा शून्य यह जगत्=संसार, न जातम्=नहीं हुआ ॥१३॥

भावार्थः—यह मेरे सौभाग्य की ही बात है कि मैं आधी ही बातें सुन कर भ्रमवश क्रोधित होकर भानुमती के पास नहीं चला गया सौभाग्य से ही आधी ही बातों को सुनकर क्रोधित होकर मैने उस भानुमती से कठोर अथवा क्रूरवचनों को नहीं कहा। भाग्य से ही भ्रम में पड़े हुये मुझ दुर्योधन की भ्रान्ति को दूर करने के लिये स्वप्न का वृतान्त भी समाप्ति को प्राप्त हो गया। यह भी हर्ष का ही विशय है कि मेरे द्वारा लगाने गये असत्य कलङ्क के आरोप के कारण इस भानुमती द्वारा अपने प्राणों का त्यागकर संसार शून्य नहीं कर दिया गया अथवा मैने ही क्रोध के आवेश में आकर थसे संसार से विदा नही कर दिया।

छन्द—उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीड़ित" नाम छन्द है।

समास—मन्दधिया=मन्दा जडा धीः—बुद्धिः यस्य तेन। अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात्=अर्धश्रुतेन यः विप्रलम्भः तेन जनितः यः क्रोधः तस्मात्। विमूढहृदयम्=विमूढं हृदयं यस्य तम्। मिथ्यादूषितया=मिथ्या दूषिता; तया।

टिप्पणियां—अत्याहितम्=अनिष्ट, महान् भय। "अत्याहितं महद्भयम्"—इत्यमरः। हुताशनेन=अग्नि से अथवा अग्नि के द्वारा। अलम्=यहाँ पर यह निषेध अर्थ में प्रयुक्त है। विकल्पेन=संशय से अथवा तर्क वितर्क से। मन्दधिया=मूर्ख अथवा जड़ बुद्धि वाले। अन्यथैव=विपरीत ही। सम्भावितम्=सोचा-विचारा अथवा संभावना कर ली। दिष्ट्या=भाग्य से। "दिष्ट्या शमुपजोषं चेत्यानन्दे" इत्यमरः। यह एक अव्यय है। हर्ष अथवा आनन्दार्थक है। विप्रलम्भः=भ्रम—भ्रांति। "विप्रलम्भो विसंवादः"—इत्यमरः। परुषम्=कठोर वचन अथवा क्रूरवचन। विमूढहृदयम्=निर्णय करने में असमर्थ हृदय वाले। प्रत्याययितुम्=विश्वास दिलाने के लिये। कथा=यहां स्वप्नसम्बन्धी वृत्तान्त से अभिप्राय है। अन्तम्=समाप्ति को। मिथ्यादूषितया=असत्य रूप से ही कलङ्कित। विरहितम्=शून्य, रहित, विहीन ॥१३॥

भानुमती—हला! कथय किमत्र शुभसूचकम्? हला, कहेहि किं एत्थ सुहसूअअम्?)।

सखी चेटी च—(अन्योन्यमवलोक्य, अपवार्य) अत्र नास्ति स्तोकमपि शुभसूचकम्। यद्यत्रालीकं कथयिष्ये तत्प्रियसख्या अपराधिनी भविष्यामि। स एव स्निग्धो जनो यः पृष्टः परुषमपि हितं भणति। (प्रकाशम्) सखि! सर्वमेवैतदशुभनिवेदनम्। तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिजनप्रतिग्रहेण चान्तर्यताम्। न खलु दंष्ट्रिणो नकुलस्य वा दर्शनमहिशतवधं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विचक्षणाः। (एत्थ णत्थि त्थोअं विसुहसूअअम् जइ एत्थ अलोअं कहइस्सं ता पिअसहीए अवराहिणी भविस्सम्। सो एव्व सिणिद्धो जणो जो पुच्छिदो परुसं वि हिदं भणादि। सही सव्वं एव्व एदं असुहणिवेदणम्। ता देवदाणं पणामेण दुजादि

जणपडिग्गहेण अ अन्तरीअदु। ण हु दाढिणो णउलस्स वा दंसणं अहिसदवहं असिविणए पसंसन्ति विअक्खणाओ।)

राजा—अवितथमाह सुवदन्यानकुलेन पन्नगशतवधः स्तनांशुकापहरणं च नियतमनिष्टोदर्कं तर्कयामि।

पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः।
शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम् ॥१४॥

भानुमती—सखि ! कहो, इसमें क्या शुभसूचक है।

सखी और चेटी (दोनों)—(परस्पर एक दूसरे को देखकर, एक ओर को) इस (स्वप्न) में तनिक भी शुभसूचक बात नहीं है। यदि इस विषय में कुछ भी असत्य कहूँगी तो प्रियसखी की अपराधिनी हो जाऊँगी। वस्तुतः प्रेमीजन उसे ही कहा जा सकता है कि जो पूछे जाने पर कठोर होते हुये भी हितकर बात को ही कहे। (प्रकटरूप में) सखि ! यह पूरा ही (स्वप्न) अशुभसूचक है। अतः देवताओं को प्रणाम करके और ब्राह्मणों को दान देकर (इस अनिष्ट को) दूर किया जाय। बुद्धिमान् लोग स्वप्न में जंगली सुअर अथवा न्योले (नेवले) के दर्शन और (एक साथ) सौ सांपों के वध को अच्छा नहीं समझते हैं।

राजा—सुवदना ने सत्य ही कहा है। नकुल के द्वारा सौ सांपों का वध और चोली का खींचा जाना निश्चितरूप से परिणाम में अनिष्ट को लाने वाला है—(ऐसा मैं) सोच रहा हूं।

अन्वयः—हि शुभाशुभाः स्वप्नाः पर्यायेण कामं दृश्यन्ते। पुनः इयं शतसंख्या सानुजं मां स्पृशति इव ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हि=निश्चयेन, शुभाशुभाः=शुभाश्च अशुभाश्चेति शुभाशुभाः—कदाचित् शुभफलोत्पादकाः कदाचित्तदशुभपरिणामाः—इत्यर्थः, स्वप्नाः=स्वपनानि, पर्यायेण=क्रमेण, यदा,यदा—इत्यर्थः, कामम्=यथेच्छम्, दृश्यन्ते=अवलोक्यन्ते। लोकैरितिशेषः। पुनः=किन्तु, इयम्=भानुमत्युक्ता एषा, शतसंख्या,

सानुजम्=भ्रातृशतान्वितम्, माम्=दुर्योधनम्, स्पृशति इव=विषयी करोति इव। इवेत्युत्प्रेक्षा ॥१४॥

हिन्दी-अनुवाद—हि=निश्चय ही, शुभाशुभाः=कभी शुभफल को उत्पन्न करने वाले और कभी अशुभफल को उत्पन्न करने वाले, स्वप्नाः=स्वप्न; पर्यायेण=क्रम से, कामम्=कभी इच्छा के साथ और कभी इच्छा के न होते हुये भी, दृश्यन्ते=(लोगों द्वारा) देखे जाया करते हैं। पुनः=किन्तु, इयम्=भानुमती द्वारा कथित यह, शतसंख्या=सौ की संख्या,, सानुजम्=सौ भाइयों सहित, माम्=मुझको ही, स्पृशति इव=स्पर्श करती सी है अर्थात् लक्ष्य सा कर रही है ॥१४॥

भावार्थ—यद्यपि कभी शुभ और कभी अशुभ स्वप्न तो लोगों द्वारा यों देखे जाया करते हैं। किन्तु भानुमती द्वारा देखे गये इस स्वप्न में जो यह सौ की संख्या है वह तो मुझ पर तथा मेरे भाइयों पर घटती हुयी सी प्रतीत होती है।

अलंकार—उक्त पद्य में 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

छन्दः—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समासः—अशुभनिवेदनम्=अशुभस्य-अमङ्गलस्य निवेदनम्-निवेदकम्। द्विजातिजनप्रतिग्रहेण=द्विजातीनां जनः-समूहः इति द्विजातीजनः, तस्मै प्रतिग्रहः—दानम्, तेन। अनिष्टोदर्कम्=अनिष्टः-अप्रियः-अनभीष्टो वा, उदर्कः-परिणामः यस्य तम्।

टिप्पणियाँ—स्तोकम्=स्वल्प, थोड़ा। अलीकम्=असत्य-झूठ। "अलीकं त्वप्रियेऽनृते" इत्यमरः। स्निग्धः=प्रेमपूर्ण-स्नेह से युक्त। परुषम्=कठोर। हितम्=हितकर वचन। अशुभनिवेदनम्= अकल्याण अथवा अमङ्गल का सूचक। द्विजातिजनप्रतिग्रहेण=ब्राह्मणों को दिये गये दान के द्वारा—"प्रतिग्रहः स्वीकरणे.............योग्येभ्यो विधिवद्द्ये" इति मेदिनी। अन्तर्यताम्=दूर किया जाना चाहिये अथवा दूर किया जाय। शान्त किया जाय। विचक्षणाः=विद्वान् पुरुष। अवितथम=जो वितथ अर्थात् असत्य न हो—सत्य—वितथं त्वनृतं वचः' इत्यमरः, अनिष्टोदर्कम्='अनचाहे परिणाम

से युक्त। विपत्तियों से परिपूर्ण। उदर्कः—परिणाम। "उदर्कः उत्तरे काले यच्च स्यात्फलमुत्तरम्" इति वैजयन्ती। तर्कयामि=तर्कना करता हूँ, अनुमान करता हूँ, समझता हूँ। कामम्=यथेच्छ—"अकामानुमतौ कामम्"—इत्यमरः। शुभाशुभाः—कभी तो शुभफल के उत्पादक और कभी अशुभपरिणाम-दायक। पर्यायेण:—पर्याय अर्थात् क्रम से। सानुजम्=छोटे सौ भाइयों सहित। स्पृशति-इव=स्पर्श सा कर रही है अर्थात् मुझे ही लक्ष्य बना रही है। दुर्योधन सौ भाइयों से युक्त था। सौ साँपों को मारे जाने की बात को सोचकर दुर्योधन स्वयं अपने को ही लक्ष्य समझता है। साथ ही उसकी पत्नी भानुमती भी यही सोच सोचकर चिन्तित हो रही है ॥१४॥

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः! ममापि नाम दुर्योधनस्या-निमित्तानि हृदय क्षोभमावेदयन्ति। (सावष्टम्भम्) अथवा भीरुजन-हृदय प्रकम्पनेषु का गणना दुर्योधनस्यैवंविधेषु ?

गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा—

ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम्।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति ॥१५॥

(बाईं आँख का फड़कना सूचित करके—अर्थात् बाईं आँख के फड़कने का अभिनय करके) अरे, (यह) अपशकुन मुझ दुर्योधन के भी हृदय, को व्याकुल कर रहे हैं। (गर्व के साथ) अथवा डरपोक लोगों के हृदयों, को कम्पित कर देने वाले इस प्रकार के (अपशकुन आदि के) विषय में दुर्योधन को क्या चिन्ता अथवा परवाह हो सकती है ? (अर्थात् दुर्योधन इस प्रकार के स्वप्नों अथवा अपशकुनों की तनिक भी चिन्ता नहीं करता है।) अङ्गिरा द्वारा भी यही भाव छन्दोबद्ध किया गया है—

अन्वयः—ग्रहाणां चरितं स्वप्नः अनिमित्तानि उपयाचितम् (च) काक-तालीयं फलन्ति। तेभ्यः प्राज्ञाः न बिभ्यति।

संस्कृत-व्याख्या—ग्रहाणाम्=सूर्यादीनां नक्षत्राणाम्, चरितम्=सञ्चरणं गमनं वा, राशिपरिवर्त्तनमिति यावत्, स्वप्नः—सुषुप्तिदृष्टोदृश्यविशेषः, अनि-

मित्तानि=अपशकुनानि अक्षिस्पन्दनादीनि, उपयाचितम्=दिव्यदोहदम्, (च) काकतालीयम्=काक इव तालमिव च काकतालम्, काकतालमिव काकतालीयम् –काकगमनमिव ततस्तत्र तालफलपतनमिवेत्यर्थः, फलन्ति=फलदायकाः भवन्ति–काचित्कमेव फलन्तीत्यर्थः। अतः, तेभ्यः=स्वप्नादिभ्यः प्राज्ञाः= विद्वांसः पण्डिताः वा, न, बिभ्यति=भयं न कुर्वन्तीत्यर्थः। "अनिमित्तोत्पातिकं तथेति पाठे तु अनिमित्तानि च औत्पातिकञ्चेति–तेषां समाहारः अनिमित्तौत्पातिकम्–निर्हेतुकमाकस्मिकमौत्पातिकम्–अपशकुनं तथा आकस्मिकध्वजभङ्गच्छत्रपतनोल्कापातमहावाय्वादिकमित्यर्थः।

हिन्दी-अनुवाद—ग्रहाणाम्=सूर्य आदि ग्रहों की, चरितम्=गति (एक राशि से दूसरी राशि पर जाना), स्वप्नः=स्वप्न, अनिमित्तानि=अपशकुन उपयाचितम्=मनौती (अनिमित्तोत्पादिकम् पाठ में–अपशकुन तथा उत्पात) काकतालीयम्=संयोग से, फलन्ति=फल देते हैं। तेभ्यः=उनसे, प्राज्ञाः=बुद्धिमान पुरुष, न बिभ्यति=भयभीत नहीं हुआ करते हैं।

भावार्थः—ग्रहों की दशा, स्वप्न, अपशकुन, मनौती आदि कभी कदाचित् ही फल प्रदान करने वाले हुआ करते हैं, सर्वदा नहीं। अतएव विद्वान् पुरुष इनसे कभी भी भयभीत नहीं हुआ करते हैं।

अलङ्कार—ऊपर प्रसंग में आये हुये स्वप्न का तथा प्रसंग में न आये हुए अन्य स्वप्नादिकों का एक 'फल, में सम्बन्ध प्रदर्शित किये जाने से यहाँ 'दीपक नामक अलंकार है। लक्षण—"प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे दीपकं मतम्।"

छन्द—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

टिप्पणियाँ—अनिमित्तानि=अपशकुन। सावष्टम्भम्=दर्प अथवा अभिमान के साथ। "दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भः"—इत्यमरः। भीरुजनहृदयप्रकम्पनेषु=कायर जनों के मनों को विक्षुब्ध कर देने वाले। ग्रहाणां चरितम् –मङ्गल, शनि आदि ग्रह जिस राशि पर पहुँचा करते हैं, उस राशि सम्बन्धी व्यक्तियों को कष्ट प्राप्त हुआ करता है। किन्तु बृहस्पति, बुध तथा शुक्र आदि ग्रह जिस राशि पर पहुँचा करते हैं. उस राशि से सम्बन्धित व्यक्तियों का ये कल्याण किया करते हैं। इस प्रकार की ज्योतिष-शास्त्र की मान्यता है।

किन्तु दुर्योधन इस मान्यता में विश्वास नहीं करता है। अनिमित्तानि=आंख का फड़कना आदि अपशकुन। उपयाचितम्=मनौती। काकतालीयम्=संयोगवश जो बात एकाएक ही अप्रत्याशित रूप से हो–उसे 'काकतालीयन्याय' से हुआ माना जाता है। जैसे—तीव्रगति से उड़ता हुआ एक चालाक कौआ ताड़ के वृक्ष के नीचे होकर उड़ा जा रहा था। उसी समय अचानक ही एक ताड़ का फल टूट कर गिरा तथा वह कौआ उससे आहत होकर मर गया। वैसे इस प्रकार का होना अति स्वल्प ही हुआ करता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि संयोगवश कोई कार्य अचानक ही घटित हो जाया करता है। अतः ऐसे कार्य को अचानक घटित कार्य कहा गया है। इसी को "काकतालीय" कहा जाता है। फलन्ति=फलते हैं, सिद्ध होते हैं। प्राज्ञाः=बुद्धिमान् अथवा चतुर पुरुष। बिभ्यति=भयभीत होते हैं।

तद्भानुमत्याः स्त्रीस्वभावसुलभमलीकाशङ्कामपनयामि।

भानुमती—हला सुवदने! पश्य तावदुदयगिरिशिखरान्तरितविमुक्तरथवरो विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलो जातो भगवान् दिवसनाथः। (हला सुवअणे। पेक्ख दाव उदअगिरिसिहरन्तरिदविमुक्करहवरो विअलिअसञ्झाराअप्पसण्णदुरालोअमण्डलो जादो भअवं दिवसणाहो।

सखी—सखि! रोसानितकनकपत्रसदृशेन लताजालान्तरोपहितकिरणनिवहेन पिञ्जरतोद्यानभूमिभागो दुःप्रेक्षणीयो भगवान् सहस्ररश्मिः संवृत्तः। तत्समयस्ते लोहितचन्दनकुसुमगर्भेणाऽर्घ्येणपर्युपस्थातुम् (सहि, रोसाणिदकणअपत्तसरिसेण लदाजालन्तरापडिदकिरणणिवहेण पिञ्जरिदोज्जाणभूमिभाओ दुप्पेक्खणिज्जो भअवं सहस्सरस्सी संवुत्तो। ता समओ दे लोहिदचन्दणकुसुमगब्भेण अग्घेण पज्जुवट्ठादुम्।)

भानुमती—हञ्जे तरलिके! उपनय मेऽर्घ्यभाजनं यावद्भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्यां निवर्तयामि। (हञ्जे तरलिए, उवणेहि मे अग्घभाअणं जाव भअवदो सहस्सरस्सिणो सवरिअं णिव्वट्ठेमि।)

चेटी—यद्देव्याज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता ।) (जं देवी आणवेदी ।)

राजा—अयमेव साधुतरोऽवसरः प्रियासमीपमुपगन्तुम् ।

(इत्युपसर्पति ।)

तो (अब) भानुमती की स्त्रियों के स्वभाव में सरलता से उत्पन्न हो जाने वाली इस असत्य (अमाङ्गलिक) आशङ्का को दूर करता हूँ ।

भानुमती—सखि सुवदने ! देखो तो—उदयाचल (उदय-पर्वत) की शिखरों से छिपकर निकले हुये रथवाला भगवान् सूर्य (दिन का स्वामी) (प्रातःकालीन) संध्या (अर्थात् उषा) की लालिमा के दूर हो जाने से स्वच्छ एवं दुर्लक्ष्य बिम्ब से युक्त हो गया है ?

सखी - सखि ! शान पर खरादे गये (अतएव निर्मल) सोने के पत्र के समान, लताओं के मध्यभाग में पड़े हुये किरण समूह से उद्यान के भूमिभाग को पीला कर देने वाला भगवान् सूर्य दुष्प्रेक्षणीय हो गया है । अतएव रक्त (लाल) चन्दन और पुष्पों से मिश्रित अर्घ्य (अर्घ्यपात्र) से आप द्वारा पूजा किये जाने का समय हो गया है ।

भानुमती—अरी तरलिके ! पूजा की सामग्री का पात्र मुझे लाकर दे जिससे कि मैं भगवान् सूर्य की पूजा कर सकूँ ।

चेटी-जैसी महारानी की आज्ञा (ऐसा कहकर बाहर निकल जाती है ।)

राजा—प्रिया (भानुमती) के समीप चलने का यही अच्छा अवसर है ।

(ऐसा कहकर समीप में जाता है ।)

समास—स्त्रीस्वभावसुलभाम्=स्त्रीणां स्वभावे सुलभाम्—इति । अलीकाशङ्काम्=अलीका चासौ आशंका च–इति–ताम् । उदयगिरिशिखरान्तरितविमुक्तरथवरः=उदयगिरेः शिखरैः आदौ अन्तरितः (निह्नुतः) पश्चात् विमुक्तः रथवरः यस्य तथा भूतः । विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलः—विगलितः (नष्टः) यः सन्ध्यायाः रागः (लौहित्यम्) तेन

प्रसन्नं (निर्मलम्) अतएव दुरालोकं मण्डलं यस्य तथाभूतः **रोसानितकनकपत्रसदृशेन**=रोसने-निकषग्रावणि-इति यावत्, घृष्टमित्यर्थः यत् कनकपत्रं तेन सदृशः, तेन। **लताजालान्तरोपहितकिरणनिवहेन**=लतानां जालस्य (समूहस्य) अन्तरैः उपहितः (आपतितः) यः किरणानां निवहः (समूहः); तेन, **पिञ्जरितोद्यानभूमिभागः**=पिञ्जरितः (कपिशीकृतः) उद्यानस्य भूमिभागः येन तथाभूतः। **लोहितचन्दनकुसुमगर्भेण**=लोहितं चन्दनं-इति लोहितचन्दनम् लोहित चन्दनञ्च कुसुमानि च गर्भे (मध्ये) यस्य तेन।

टिप्पणियाँ—स्त्रीस्वभावसुलभाम्=स्त्रियों के स्वभाव में सरलतापूर्वक आ जाने योग्य। **अलीकाशङ्काम्**=अलीक अर्थात् असत्य (झूठी) आशंका को। **अपनयामि**=दूर करता हूँ। **उदयगिरिशिखरान्तरितविमुक्तरथवरः**=उदय नामक पर्वत की चोटियों से छिपकर निकले हुये श्रेष्ठ रथ से युक्त। जो रथ पहले उदयाचल की चोटियों के द्वारा पहले छिपा लिया गया था तथा बाद में छोड़ दिया गया था। **भगवान्**=ऐश्वर्यशाली। **दिवसनाथः**=सूर्य। **विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलः**=प्रातःकालीन संध्या की लालिमा (अर्थात् उषाकालीन रक्तिमा) के नष्ट अथवा दूर हो जाने से देदीप्यमान एवं कठिनता से देखे जाने योग्य मण्डल से युक्त। **विगलितः**—नष्ट हो जाने से। **सन्ध्याराग**—प्रातःकालीन संध्या (अर्थात् उषाकालीन) की लालिमा। **प्रसन्नम्**—निर्मल। **दुरालोकम्**=कठिनता से देखे जाने योग्य। **जातः**—हो गया है। अर्थात् सूर्य को निकले हुये कुछ समय व्यतीत हो चुका है। **रोसानितकनकपत्रसदृशेन**=रोसन अर्थात् कसौटी पर घिसे गये स्वर्ण पत्र के समान। यह सूर्य का विशेषण है। **लताजालान्तरोपहितकिरणनिवहेन**=लतासमूह के अन्तर काल में (मध्यभाग में) पड़ी हुई किरणों के समूह से। **पिञ्जरितोद्यानभूमिभागः**=उद्यान की भूमि को पीला कर देने वाला। **जाल**—समूह। **उपहितः**—पड़ा हुआ अथवा पड़ी हुई। **निवहः**—समूह। **पिञ्जरितः**—पीला कर देने वाला। **संवृत्तः**=हो गया। **लोहितचन्दनकुसुमगर्भेण**=लालचन्दन और पुष्पों से युक्त। **गर्भ**—मध्यभाग। **पर्युपस्थातुम्**=पूजा करने के लिये। **अर्घ्यभाजनम्**=पूजा का पात्र। **सपर्याम्**=पूजा को। **निवर्तयामि**=सम्पन्न करूँ। **उपगन्तुम्**=समीप में जाने के लिये।

(प्रविश्य)

चेटी—भट्टिनि ! इदमर्घ्यभाजनम् । तन्निर्वर्त्यतां भगवतः सहस्र-रश्मेः सपर्या । (भट्टिणि । एदं अग्घभाअणम् ता णिव्वट्टीअदु भअवदो सहस्सरस्सिणो सवरिआ ।) ।

सखी—(विलोक्यात्मगतम्) कथं महाराज आगतः । हन्त, जातोऽस्या नियमभङ्गः । (कहं महाराओ आअदो । हन्त जादो से णिअमभङ्गो) ।

(राजा उपसृत्य संज्ञया परिजनमुत्सार्य स्वयमेवार्घ्यपात्रं गृहीत्वा ददाति ।)

भानुमती—(दिनकराभिमुखी भूत्वा) भगवन् । अम्बरमहासर-एकसहस्रपत्र ! पूर्वदिशावधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक ! सकलभुवनै-करत्नप्रदीप ! यदत्र स्वप्नदर्शने किमप्यत्याहितं तद्भगवतः प्रणामेन सभ्रातृकस्यार्यपुत्रस्य कुशलपरिणामि भवतु । (अर्घ्यं दत्त्वा) हञ्जे तरलिके ! उपनय मे कुसुमानि । अपरासामपि देवतानां सपर्यां निर्वर्तयामि । (हस्तौ प्रसारयति) (भअवं, अम्बरमहासरेक्कसहस्स-पत्त, पुव्वदिसाबहूमुहमण्डलकुङ्कुमविसेसअ, सअलभुवणेक्करअणप्प-दीव, जं एत्थ सिविणअदंसणे किं वि अच्चाहिदं तं भअवदो पणामेण सभादुअस्स अज्जउत्तस्य कुसलपरिणामि होदु । हञ्जे तरलिके । उवणेहि मे कुसमाइं । अवराणं वि देवदाणं सवरिअं णिव्वट्टेमि ।)

(राजा पुष्पाण्युपनयति । स्पर्शसुखमभिनीय च कुसुमानि भूमौ पातयति ।)

भानुमती—(सरोषम्) अहो प्रमादः परिजनस्य । (परिवृत्य दृष्ट्वा ससंभ्रमम्) कथमार्यपुत्रः । (अहो पमादो परिअणस्य । कथं अज्जउत्तो ।)

राजा—देवि ! अनिपुणः परिजनोऽयमेवंविधे सेवावकाशे । तत्प्र-भवत्यत्रानुशासने देवी ।

(भानुमती लज्जां नाटयति ।)

राजा—अयि प्रिये !

विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पिचक्षुः
परिजनपथवर्तिन्यत्र किं संभ्रमेण ।
स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः
प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥१६॥

(प्रवेश करके)

चेटी—हे स्वामिनी ! यह पूजा-पात्र है। तो (अब) भगवान् सूर्य की पूजा की जाय।

सखी—(देखकर, अपने मन में) महाराज कैसे आ गये ? ओहो ! (बस अब) इनका व्रत भङ्ग हो गया।

(राजा समीप में आकर इशारे से सेविकाओं को हटाकर स्वयं ही पूजा-पात्र को लेकर (भानुमती को) देता है।)

भानुमती—(सूर्य की ओर मुख करके) आकाशरूपी विशाल जलाशय के अद्वितीय कमल ! पूर्व दिशा रूपी वहू (दुलहन) के मुखमण्डल के कुङ्कुम-तिलक ! सम्पूर्ण भुवन के अद्वितीय मणि-दीपक ! भगवन् ! इस स्वप्न दर्शन में जो भी अनिष्ट हो, वह आपको (किये गये मेरे) प्रणाम से भाइयों सहित आर्यपुत्र के लिये शुभ फल वाला हो जाय। (अर्घ्य देकर) अरी तरलिके ! मुझे फूल दो (जिससे कि मैं) अन्य देवताओं की भी पूजा कर सकूँ। (दोनों हाथ फैलाती है।)

(राजा फूलों को देता है और स्पर्श सुख का अभिनय कर फूलों को पृथ्वी पर गिरा देता है।)

भानुमती—(क्रोध के साथ) सेवकों की असावधानता आश्चर्यजनक है। (घूमकर और देखकर घबराहट के साथ) क्या आर्यपुत्र हैं ?

राजा—देवि ! यह सेवक इस प्रकार की सेवा के अवसर के लिये पूर्णरूप से चतुर नहीं है। तो देवी इसके लिये दण्ड देने में समर्थ हैं।

(भानुमती लज्जा का अभिनय करती है।)

राजा—अयि प्रिये !

अन्वयः—परिजनपथवर्तिनि अत्र धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः विकिर, संभ्रमेण किम् ? हे देवि ! स्मितमधुरं उदारं उच्चैः माम् आलप। मम पाण्योः अञ्जलिः त्वां सेवितुं प्रभवति।

संस्कृत-व्याख्या—परिजनपथवर्तिनि=परिजनस्य-सेवकस्य पन्थाः-मार्गः इति परिजनपथः तस्मिन् वर्तितु शीलम्-स्वभावः यस्य स तस्मिन्, अत्र=मयि दुर्योधने, धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि=धवल-शुभ्रम् दीर्घं च यत् अपाङ्गम्-नेत्रप्रान्तः तत् संसर्पितु शीलं यस्य तत् तादृशम्-स्निग्धस्वच्छविस्तृतनेत्रप्रान्तप्रसरणशीलं, कोपचञ्चलमित्यर्थः, चक्षुः=नेत्रम्, विकिर=विक्षिप, संभ्रमेण=उद्वेगेन, किम्=किं प्रयोजनम् ? न किमपीत्यर्थः। स्मितमधुरम्=स्मितेन-मृदुहास्येन मधुरम्-श्रवणसुखदम्, उदारम्=मनोहरम् यथा स्यात्तथा, उच्चैः=स्पष्टम्, माम्=सेवकपथवर्तिनम् माम्-दुर्योधनम्, आलप=ब्रूहि-वार्तां कुरु। मम=दुर्योधनस्य, पाण्योः=हस्तयोः, अञ्जलिः=सम्पुटः, त्वाम्=भवतीम्, सेवितुम्, प्रभवति=समर्थो भवति। "सर्वदा उद्यतोऽस्मि" इत्यभिप्रायः॥ "प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिस्त्वं स्पृशास्मान्" इति जगद्धरपाठः॥१६॥

हिन्दी-अनुवाद—परिजनपथवर्तिनि=सेवक के मार्ग पर चलने वाले, अत्र=मुझ दुर्योधन पर, धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि=श्वेत तथा विस्तृत नेत्र-कोण तक व्याप्त, चक्षुः=नेत्र को (दृष्टि को), विकिर=डालो, संभ्रमेण=घबराहट से, किम्=क्या लाभ ? स्मितमधुरम्=मन्दमुसकान से मधुर, तथा उदारम्=उदारतापूर्वक, उच्चैः=जोर से, माम्=मुझ दुर्योधन से, आलप=वार्तालाप करो। मम=मेरे (दुर्योधन के), पाण्योः=हाथों की, (यह), अञ्जलिः=अंजलि, त्वाम्=आपको, सेवितुम्=सेवित करने के लिये (अर्थात् आपकी सेवा करने के लिये) प्रभवति=समर्थ है। अर्थात् सर्वदा उद्यत है ॥१६॥

अलंकारः—उक्त पद्य में "दीपक" अलङ्कार है।

छन्दः—इसमें 'मालिनी' नामक छन्द है। लक्षण—"न न म य य यतेय मालिनी भोगिलोकैः"।

समास—अम्बरमहासरएकसहस्रपत्र=अम्बरमेव महासरः तस्मिन् एकम्-अद्वितीयम् सहस्रपत्रम्, इति, तत्सम्बोधने। पूर्वदिशावधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक=पूर्वदिशा एव वधू (नवपरिणीता स्त्री), तस्याः मुखमण्डलस्य कुङ्कुमविशेषकः, तत्सम्बुद्धौ। सकलभुवनैकरत्नप्रदीप=सकलभुवनस्य एकः (अद्वितीयः) रत्नप्रदीपः तत्सम्बुद्धौ। कुशलपरिणामि=कुशलश्चासौ परिणामश्च, स अस्ति अस्य परिजनपथवर्तिनि=परिजनस्य पन्थाः परिजनपथः, तत्र वर्तितुं शीलमस्य, तस्मिन्। धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि=धवलश्चासौ-दीर्घश्च यः अपाङ्गः तेन संसर्पतीति। स्मितमधुरम्=स्मितेन मधुरम्-इति।

टिप्पणियाँ—अम्बरमहासरएकसहस्रपत्र=आकाशरूपी विशाल जलाशय (झील) के अद्वितीय कमल। एक-अद्वितीय। सहस्रपत्र—कमल। कुङ्कुमविशेषक=कुङ्कुम अर्थात् केसर रचित तिलक। अत्याहितम्=महान् भय-अमङ्गल। कुशलपरिणामि=शुभ परिणाम अथवा फल वाला। मङ्गल फल को देने वाला। उपनय=दो। सपर्याम्=पूजा को। अहो=यहाँ आश्चर्य अर्थ में प्रयुक्त अव्यय। प्रमादः=प्रमाद-असावधानता। परिजनस्य=सेवक को। अनिपुणः= चतुर नहीं। एवंविधे=इस प्रकार के। सेवावकाशे=सेवा के अवसर पर। अनुशासने=दण्ड देने में। प्रभवति=समर्थ हैं। परिजनपथवर्तिनि=सेवक के मार्ग पर चलने वाले-सेवन के स्थान पर विद्यमान। धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि=श्वेत तथा विस्तृत नेत्र-कोण तक फैली हुयी। चक्षुः=नेत्र-अर्थात् अपनी दृष्टि को। विकिर=डालो-मेरे ऊपर डालो अर्थात् मेरी ओर देखो। सम्भ्रमेण=उद्वेग अथवा घबराहट से। किम्=क्या (लाभ) है? उच्चैः=ऊँचे स्वर के साथ अर्थात् कुछ जोर से। सेवितुम्=सेवा करने के लिये। दुर्योधन के कहने का यही अभिप्राय है कि "मैं तुम्हारी सेवा करने के लिये सर्वदा सन्नद्ध हूँ" ॥१६॥

भानुमती—आर्यपुत्र! अभ्यनुज्ञातायास्त्वयाऽस्ति मे कस्मिन्नपि नियमेऽभिलाषः। (अज्जउत्त, अब्भणुण्णादाए तुए अत्थि मे कस्सिं वि णिअमे अहिलासो।)

राजा—श्रुतविस्तर एवास्मि भवत्याः स्वप्नवृत्तान्तं प्रति। तदलमेवं प्रकृतिसुकुमारमात्मानं खेदयितुम्।

भानुमती—आर्यपुत्र! अतिमात्रं मां शङ्का बाधते। तदनुमन्यतां मामार्यपुत्रः। (अज्जउत्त, अदिमेत्तं मे सङ्का बाहेदि। ता अणुमण्णदु मं अज्जउत्तो।)

राजा—(सगर्वम्) देवि! अलमनया शङ्कया। पश्य—

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं
किं द्रोणेन, किमङ्गराजविशिखैरेवं यदि क्लाम्यसि।
भीरु! भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायासुखोपस्थिता
त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी, शङ्कास्पदं किं तव ॥१७॥

भानुमती—आर्यपुत्र! आपसे अनुमति प्राप्त की हुयी मेरी (आज) एक व्रत के विषय में अभिलाषा है।

राजा—आपके स्वप्न के समाचार के बारे में मैंने विस्तार के साथ सुन लिया है। अतः स्वभाव से ही कोमल अपने (शरीर) को इस प्रकार के कष्ट को देने से बस करो।

भानुमती—आर्यपुत्र! मुझे शङ्का अत्यधिक सता रही है। अतः आर्यपुत्र मुझे (व्रत पूर्ण करने हेतु) अनुमति प्रदान करें।

राजा—(घमण्ड के साथ) देवि! इस आशङ्का से बस (अर्थात् तुम्हारी यह आशङ्का व्यर्थ है।) देखो—

अन्वयः—यदि (त्वम्) एवं (क्लाम्यसि (तर्हि) व्याप्त दिशां प्रकम्पितभुवां नः अक्षौहिणीनां किं फलम्? द्रोणेन किम्? अङ्गराजविशिखैः किम्? हे भीरु! त्वं मे भ्रातृशतस्य भुजवनच्छायासुखोपस्थिता दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी (असि), तव किं शङ्कास्पदम्?

संस्कृत-व्याख्या—यदि=चेत्, त्वम्, एवम्=अनेन प्रकारेण, क्लाम्यसि=ग्लायसि, (तर्हि), व्याप्तदिशाम्=व्याप्ताः आच्छादिताः दिशाः याभिः तासाम्,

प्रकम्पितभुवाम्=प्रकम्पिता भूः धरा याभिः तासाम्, नः=अस्माकम्, अक्षौहिणीनाम्=चतुरङ्गिणीनां सेनानाम्, किम्, फलम्=परिणामः-न किमपीत्यर्थः। द्रोणेन=द्रोणाचार्यस्य पराक्रमेणेत्यर्थः वा किम्=किं फलम् ?-किं प्रयोजनम् ?, अङ्गराजस्य= अङ्गदेशाधिपस्य-कर्णस्य विशिखैः=बाणैः किं फलम्-कोऽर्थः ?, हे भीरु !=हे भययुक्ते ! त्वम्=भवती-आशङ्कावशात् व्रतं स्वीकृत्यात्र स्थिता मम भार्येत्यर्थः, मे=मम: भ्रातृशतस्य=सहोदरशतस्य, भुजवनच्छायासुखोपस्थिता=भुजाः बाहवः एव वनं तस्य छायायां सुखं-सुखपूर्वकं यथा उपस्थिता वर्त्तमाना, दुर्योधन केसरीन्द्रगृहिणी=दुर्योधनः एव केसरीन्द्रः सिंहाधिपः तस्य गृहिणी-गृहस्वामिनी (असि), तव=एतादृशायाः भवत्याः, किम्=किं नाम, शङ्कास्पदम्=शङ्कायाः आशङ्कायाः स्थानम् ? नैव कोऽपि शङ्कायाः अवसर इत्यर्थः ॥१७॥

हिन्दी-अनुवाद—यदि=यदि, त्वम्=आप, एवम्=इस प्रकार, क्लाम्यसि=दुःखी अथवा परेशान होओगी, तर्हि=तो, व्याप्तदिशाम्=दिशाओं को आच्छादित करने वाली, प्रकम्पितभुवाम्=पृथिवी को कँपा देने वाली, नः=हमारी, अक्षौहिणीनाम्=अक्षौहिणी सेनाओं का. किं फलम्=क्या फल होगा ? द्रोणेन=द्रोणाचार्य के पराक्रम से, किम्=क्या लाभ ? अङ्गराजविशिखैः=अङ्गदेश के राजा कर्ण के बाणों से, किम्=क्या लाभ ? हे भीरु !=हे भययुक्तहृदयवाली भानुमति !, त्वम्=तुम, मे=मेरे, भ्रातृशतस्य=सौ भाइयों के, भुजवनच्छायासुखोपस्थिता=भुजाओं रूपी वन की छाया (आश्रय) में सुखपूर्वक बैठी हुई, दुर्योधन केसरीन्द्रगृहिणी=दुर्योधनरूपी सिंहराज की पत्नी, (असि=हो)। तव=(ऐसी स्थिति में वर्त्तमान) आपके लिये, किम् शङ्कास्पदम्=भय का कारण क्या हो सकता है ? दुर्योधन के कहने का अभिप्राय यह है कि सब प्रकार से अतिशक्तिशाली हमलोगों के होते हुये तुमको तनिक भी किसी भी प्रकार की आशङ्का नहीं करनी चाहिये ।।१७।

भावार्थ-यदि तुम इस भाँति अपने शरीर को कष्ट दोगी तो फिर समस्त विश्व में दिशो दिशाओं में फैली हुई, पृथ्वी को कँपा देने वाली हमारी इन अक्षौहिणी सेनाओं से क्या लाभ ? आचार्य द्रोण के विद्यमान रहने से तथा

कर्ण के वाणों का भी क्या फल होगा ? (कहने का अभिप्राय यह है यदि तुम ही को इस प्रकार से व्रत आदि कर कष्ट सहन करना पड़ा तो फिर यह सेना तथा ये महारथी कब काम आवेंगे ?) हे भीरु ! तुम तो मेरे सौ भाइयों की भुजाओं के वन की छाया में सुखपूर्वक निवास करने वाली, महाराज दुर्योधन सदृश सिंहराज की पत्नी हो, फिर तुमको तो किसी भी प्रकार की आशंका कभी भी नहीं करनी चाहिये।

अलङ्कार—इस पद्य में 'रूपक' अलंकार है।

छन्द—इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

समास—श्रुतविस्तरः= श्रुतः–आकर्णितः विस्तरः–विस्तारः येन सः। प्रकृतिसुकुमारम्=प्रकृत्या सुकुमारम्–इति। व्याप्तदिशाम्=व्याप्ताः दिशो याभिस्तासाम्। प्रकम्पितभुवाम्=प्रकम्पिता भूः याभिस्तासाम्। अङ्गराजविशिखैः=अङ्गानां राजा अङ्गराजः–कर्णः तस्य विशिखैः। भुजवनछाया-सुखोपस्थिता=भुजाः एव वनं—इति भुजवनम्, तस्य छायायां सुखेन उपस्थिता। दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी=दुर्योधनः एव केसरीन्द्रः–सिंहाधिराजः तस्य गृहिणी–इति। शङ्कास्पदम्=शङ्कायाः आस्पदम्–इति।

टिप्पणियां—अभ्यनुज्ञातायाः=प्राप्त कर ली है आज्ञा जिसने, ऐसी। नियमे=व्रत में। भानुमती के कहने का अभिप्राय यह है कि आज वह एक व्रत करने की अभिलाषा कर रही है। उसके पति दुर्योधन उसे पूर्ण करने की आज्ञा प्रदान करें और वे उस व्रत में किसी भी प्रकार का विघ्न उपस्थित न करें। श्रुतविस्तरः=(जिस स्वप्न को) विस्तार के साथ सुना जा चुका है। अलम्=यह अव्यय यहाँ पर निषेध अर्थ का वाचक है। एवम्=इस प्रकार के व्रत आदि के द्वारा। प्रकृतिसुकुमारम्=स्वभाव से ही कोमल। खेदयितुम्=कष्ट देने के लिये। क्लाम्यसि=दुःखी होती है। व्याप्तदिशाम्=दिशाओं को व्याप्त करलेने वाली अर्थात् सभी दिशाओं में आच्छादित हो जाने वाली। प्रकम्पितभुवाम्=सम्पूर्ण पृथिवी को कंपा देने में सशक्त। अक्षौहिणीनाम्=अक्षौहिणी सेनाओं का। पूरी चतुरङ्गिणी सेना को "अक्षौहिणी" कहा जाता था जिसमें २१८७० रथ, २१८७० हाथी, १५६१०

घोड़े तथा १०९३५० पैदल सिपाही रहा करते थे। "अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः। संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः॥ शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्चसप्ततिः। (२१८७०) गजानां च परिमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्॥ ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु। नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः। पंचषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च। दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया॥ महाभारत आदिपर्व—अ० २-श्लो०२३-२६॥ अङ्गराजविशिखैः=अङ्गदेश के राजा कर्ण के बाणों से। किं फलम्=क्या प्रयोजन? भ्रातृशतस्य=सहोदर सौ भाइयों की। भुजवनच्छायासुखोपस्थिता=भुजाओं (बाहों) रूपी वन की छाया में सुखपूर्वक वर्तमान। दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी=दुर्योधन जैसे सिंहराज की पत्नी तुम। शङ्कास्पदम्=आशंका का स्थान।

भानुमती—आर्य! न खलु किमपि मे शङ्काकारणं युष्मासु सन्निहितेषु। किन्त्वार्यपुत्रस्यैव मनोरथसंपत्तिमभिनन्दामि। (अज्जउत्ता ण हु किं वि मे सङ्काकालणं तुह्मेषु सण्णिहिदेसु। किं तु अज्जउत्तस्स एव्व मणोरहसंपत्तिं अहिणन्दामि।)

राजा—अयि सुन्दरि! एतावन्त एव मनोरथा यदहं दयितया सङ्गतः स्वेच्छया विहरामीति। पश्य—

प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा
पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य॥१८॥

भानुमती—आर्यपुत्र! आप लोगों के समीप में विद्यमान रहने पर मेरे लिये कोई भी भय का कारण नहीं है। किन्तु मैं तो आर्यपुत्र की ही मनोरथ-सिद्धि की कामना कर रही हूँ।

राजा—अयि सुन्दरी! मेरा तो केवल यही मनोरथ है कि प्रिया के साथ मिलकर इच्छानुसार विहार अथवा आमोद-प्रमोद करूँ। देखो—

अन्वयः—प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं लज्जायोगात् अविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा ते वक्त्रेन्दुं पातुं (एव) मे वाञ्छा (वर्तते), (अतः) परं दुर्योधनस्य किं नु असुलभं (अस्ति)।

संस्कृत-व्याख्या—प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभम्=प्रेम्णा=स्नेहेन (मद्विषयकेनानुरागेणेत्यर्थः) आबद्धे-संबद्धे अतएव स्तिमिते-निश्चले ये नयने-नेत्रे ताभ्यां आपीयमाना-अधरीक्रियमाणा अब्जस्य-पङ्कजस्य शोभा येन तम्, लज्जायोगात्=व्रीडासम्बन्धात्, अविशदकथम्=अविशदा-अस्पष्टा कथा-आलापः यस्मिन् तम्, मन्दमन्दस्मितम्=ईषद्धास्ययुक्तम्, वा, नियममुषितालक्तकाग्राधरम्=नियमेन-व्रतेन मुषितम्—दूरीकृतम्—अपहृतं वा अलक्तकम् लाक्षा (ओष्ठरञ्जनद्रव्यमितिभावः) यत्र तादृशः अग्राधरः—अधराग्रभागः यत्र तादृशम्, वेति पादपूर्तौ, ते=तव, वक्त्रेन्दुम्=वदनचन्द्रं मुखचन्द्रं वा, पातुम्=पानं कर्त्तुम्, चुम्बितुमित्यभिप्रायः, एव मे=मम, वाञ्छा=इच्छा वर्तते। (अतः=अस्मात्), परम्=अधिकम्, दुर्योधनस्य=मम, किम्=किं वस्तु, नु-इति प्रश्ने, असुलभम्=दुर्लभम्—दुष्प्राप्यं वा, अस्ति? अन्यानि तु सर्वाणि वस्तूनि सुलभान्येव। केवलं तवाधरामृतपानमेव दुष्प्राप्यं प्रतिभाति मे—इत्यभिप्रायः ॥१८॥

हिन्दी-अनुवाद—प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभाम्=प्रेम से परिपूर्ण अतएव निश्चलनेत्रों के सौन्दर्य से कमल की शोभा को भी चुराने वाले, लज्जयोगात्=लज्जा के कारण, अविशदकथम्=अस्पष्ट वचनों से युक्त, मन्दमन्दस्मितम्=ईषद् हास्य अथवा हल्की मुस्कराहट से युक्त, वा=और, नियममुषितालक्तकाग्राधरम्=व्रत के कारण ओष्ठ के अग्रभाग से दूर हुये अलक्तक (अथवा ओष्ठों में लगाई जाने वाली लाली) से रहित, ते=तुम्हारे, वक्त्रेन्दुम्=मुखचन्द्र को, पातुम्=पीने की, अर्थात् चुम्बन करने की, एव=ही, मे=मेरी, वाञ्छा=इच्छा, वर्तते=है। अन्य कोई इच्छा नहीं क्योंकि, अतः परम्=इससे अधिक, दुर्योधनस्य=दुर्योधन को, किं नु=कौन सी वस्तु, असुलभम्=दुर्लभ्? अर्थात् सभी कुछ सुलभ है ॥१८॥

भावार्थ—प्रेम के कारण निश्चल हुये नेत्रों के द्वारा जिस (मुख) ने कमल के सौन्दर्य पर विजय प्राप्त कर ली है तथा लज्जा के कारण जिस

(मुख) से स्पष्ट बात भी नहीं निकल रही है, और व्रत के कारण ओष्ठ पर लगी हुयी लाली भी जिस मुख से दूर हो गयी है, इसी प्रकार के तेरे मुख-रूपी चन्द्र का पान करने की ही मेरी अभिलाषा है। इसके अतिरिक्त दुर्योधन के समीप कमी ही किस बात की है? अतः मैं तो केवल तुम्हारे अवरोष्ठ का ही पान करने का इच्छुक हूं। और मेरी इस इच्छा की पूर्ति तुम्हीं पर आधारित है। उसके लिये व्रत करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अलंकार—उक्त पद्य में 'उपमा' अलंकार है।

छन्द—इसमें "मन्द्राक्रान्ता छन्द" है।

समास—**मनोरथसम्पत्तिम्**=मनोरथस्य सम्पत्तिम्–इति। **प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभम्**=प्रेम्णा आबद्धे (अतएव) स्तिमिते ये नयने, ताभ्यां आपीयमाना अब्जस्य शोभा येन तम्। **लज्जायोगात्**=लज्जायाः योगात्–इति। **अविशदकथम्**=अविशदा कथा यत्र तम्। **मन्दमन्दस्मितम्**=मन्दमन्दं स्मितम्–इति। **नियममुषितालक्तकाग्राधरम्**=नियमेन मुषितं अलक्तकं यत्र तादृशः अग्राधरः यत्र तादृशम्।

टिप्पणियां—**सन्निहितेषु**=समीप में वर्त्तमान होने पर। **मनोरथसम्पत्तिम्**=मनोरथ की समृद्धि को अर्थात् अभीष्ट सिद्धि को। **अभिनन्दामि**=कामना करती हूं–चाहती हूं। भानुमती के कहने का अभिप्राय यह है कि–"आपके ही कल्याण के निमित्त मैं व्रत का आचरण कर रही हूं।" **एतावन्तः**=इतना (सीमित) ही-अर्थात् इससे अधिक नहीं। **दयितया**=प्रिया (आपके) साथ। **सङ्गतः**=सहित। **स्वेच्छया**=अपनी इच्छानुसार। **प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभम्**=प्रेम के कारण निश्चलता को प्राप्त हुये नेत्रों द्वारा जीत ली गयी है कमलों की शोभा को जिसने (ऐसा तुम्हारा मुख)। **लज्जायोगात्**=लज्जा के सम्बन्ध से-अथवा-लज्जा के कारण। **अविशदकथम्**=जिससे बात स्पष्ट रूप से नहीं निकल रही है–ऐसा मुख। **मन्दमन्दस्मितम्**=मन्द मुसकान से युक्त। **नियममुषितालक्तकाग्राधरम्**=व्रत के कारण छूट गयी है लाक्षा (लाली) की लालिमा जिस ओष्ठ से ऐसे ओष्ठ से युक्त मुख। व्रत में प्रसाधन (शृंगार अथवा सजाने वाली वस्तुओं का उपयोग)

का निषेध रहा करता है। इसी कारण भानुमती के ओष्ठों पर लाली नहीं लगी हुयी है। वक्त्रेन्दुम्=चन्द्रमा के सदृश मुख का। पातुम्=पान करने के लिये अर्थात् चुम्बन करने के लिये। असुलभम्=अप्राप्य अथवा दुष्प्राप्य—दुर्योधन के समीप तो विश्व की प्रायः सम्पूर्ण वस्तुयें विद्यमान हैं। अतः उसकी किसी भी ऐसी वस्तु की कामना नहीं है कि जो उसके लिये अप्राप्य हो। उसकी तो एकमात्र यही अभिलाषा है कि वह भानुमती के अधरोष्ठ का पान ही करता रहे॥१८॥

(नेपथ्ये महान् कलकलः। सर्वे आकर्णयन्ति)

भानुमती—(सभयं राजानं परिष्वज्य) परित्रायतां परित्रायतामार्यपुत्रः। परित्ताअदु परित्ताअदु अज्जउत्तो।

राजा—(समन्तादवलोक्य) प्रिये! अलं संभ्रमेण। पश्य—

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांशुदण्डोऽन्तरिक्षे
झाङ्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः।
प्रसादानां निकुञ्जेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीर धीर-
श्चण्डारम्भः समीप वहति परिदिशं भीरु! किं संभ्रमेण॥१९॥

(पर्दे के पृष्ठभाग में अत्यधिक कोलाहल (शोर) होता है। सभी लोग सुनते हैं।)

भानुमती—(भय के साथ राजा का आलिङ्गन करके) बचाइये, आर्य पुत्र बचाइये।

राजा—(चारों ओर देखकर) प्रिये! घबराने से बस (अर्थात् घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है।) देखो—

अन्वयः—हे भीरु! सम्भ्रमेण किम्? (यतो हि—एषः तु) दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः, अन्तरिक्षे तृणजटिलचलत्पांशुदण्डः, झाङ्कारी, पथिषु शर्करालः विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः, प्रसादानां निकुञ्जेषु अभिनवजलदोद्गारगम्भीर-धीरः चण्डारम्भः समीरः परिदिशं वहति।

संस्कृत-व्याख्या—हे भीरु ! =हे भयशीले ! ; सम्भ्रमेण=भयेन, किम्=किम्प्रयोजनम् । त्वया भीतिर्न कर्त्तव्या=इत्यभिप्रायः । (यतो हि–एषः तु–) दिक्षु=दिशासु, व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः=व्यूढानि इतस्ततः प्रक्षिप्तानि अङ्घ्रिपाणां-वृक्षाणां अङ्गानि शाखादयः येन तादृशः, अन्तरिक्षे=व्योम्नि, तृणजटिलचलत्पांशुदण्डः=तृणैः जटिलः—व्याप्तश्चासौ चलंश्च पांशूनांधूलीनां दण्डः (दण्डाकारो धूलिः—इत्यर्थः) यस्मात् सः, झाङ्कारी=झाङ्कारवान्–अव्यक्त-शब्दयुक्तः, पथिषु=मार्गेषु, शर्करालः=शर्कराः सन्ति अस्य-शर्करालः–'वालुका-परिव्याप्तः'–इत्यर्थः, विटपिनाम्=तरूणाम्, स्कन्धकाषैः=स्कन्धानां शाखानां काषैः अन्योन्यघर्षणैः, सधूमः=धूमयुक्तः, प्रसादानाम्=धवलगृहाणां, हर्म्याणां, देवमन्दिराणाञ्च, निकुञ्जेषु=कुञ्जेषु–निविडस्थलेषु-इत्यर्थः, अभिनवजलोद्गारगम्भीरधीरः=अभिनवः—नूतनः यः जलदः—मेघः तस्य यः उद्गारः–गर्जनम्-तद्वत् गम्भीरः—गभीरः धीरश्च—नूतनमेघसदृशगम्भीररवः–इत्यर्थः, चण्डारम्भः=चण्डः–भीषणः आरम्भः यस्य सः–भीमवेगः–इत्यर्थः एतादृशः, समीरः=वायुः, परिदिशम्=दिशि दिशि इति प्रतिदिशम्–सर्वासु दिक्षु-इत्यर्थः, वहति=वाति, प्रचलति वा ।

हिन्दी-अनुवाद—हे भीरु !=हे भयशीले ! (अर्थात्–हे डरपोक स्वभाव-वाली !); सम्भ्रमेण=डरने अथवा भयभीत होने से, किम्=क्या लाभ (अर्थात् भयभीत होकर घबराने से क्या लाभ है ? घबराना व्यर्थ ही है क्योंकि यह तो–) दिक्षु=सम्पूर्ण दिशाओं में (अर्थात्–चारों ओर); व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः=वृक्षों की शाखाओं को बिखेर देने वाला, अन्तरिक्षे=आकाश में, तृणजटिलचलत्पांशुदण्डः=तृणों से व्याप्त धूलि के गोलाकार अथवा दण्डाकार बवण्डर को चलाले वाला, झाङ्कारी=झाँय-झाँय शब्द को करने वाला, पथिषु=मार्गों में, शर्करालः=छोटी-छोटी कंकड़ियों से युक्त, विटपिनाम्=वृक्षों की पारस्परिक, स्कन्धकाषैः=रगड़ के कारण, सधूमः=धुयें से युक्त, प्रसादानाम्=महलों के, निकुञ्जेषु=कुञ्जों में, अभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीरः=नवीन जल से भरे मेघों के गर्जन के सदृश्य गम्भीर और धीर ध्वनि वाला, चण्डारम्भः=भीषण अथवा तीव्रवेगगामी, समीरः=वायु; परिदिशम्=सम्पूर्ण दिशाओं में (अथवा चारों ही ओर); वहति=वह रहा है ।

भावार्थ—हे भयपूर्ण स्वभाव वाली भानुमति ! तुमको तनिक भी भयभीत नहीं होना चाहिये क्योंकि सभी दिशाओं में—जिसने वृक्षों की शाखाओं को इधर-उधर बिखेर दिया है, आकाश में—जो तृणसमूह से व्याप्त गोलाकार रूप में घूमने वाले बवण्डरों से युक्त हैं, रास्तों में—जो झाँय-झाँय शब्द करता हुआ तथा बालू अथवा छोटी-छोटी कङ्कणियों से युक्त होकर भरा हुआ है, महलों अथवा बगीचों में—जो वृक्षों की शाखाओं के आपस में टकराने अथवा रगड़ खाने के कारण उत्पन्न हुई अग्नि के कारण धुयें से व्याप्त हो रहा है और जो नवीन मेघों की गर्जना के सदृश गम्भीर और धीर ध्वनि को भी उत्पन्न कर रहा है, ऐसा यह भयंकर वायु (आँधी) बड़े तीव्र वेग के साथ बह रहा है। इस प्रकार की आँधी आदि तो प्रायः आती ही रहा करती हैं। अतः इनसे घबराने की कौन सी बात है ?

छन्द—उक्त पद्य में "स्रग्धरा" नामक छन्द है। लक्षण—"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्"।

समास—व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः=व्यूढानि अङ्घ्रिपाणां अङ्गानि येन सः। तृणजटिलचलत्पांशुदण्डः=तृणैः जटिलः चलंश्च पांशूनां दण्डः यस्मिन् सः। झाङ्कारी=झाङ्कारः (अव्यक्तशब्दः) अस्यास्तीति झाङ्कारी। शर्करालः= शर्कराः सन्ति अस्य—शर्करालः। अभिनवजलदोद्गागम्भीरधीरः=अभिनवः यः जलदः तस्य उद्गारः (गर्जितम्) इव गंभीरः धीरश्च। चण्डारम्भः= चण्डः आरम्भः यस्य सः।

टिप्पणियाँ—दिक्षु=सभी दिशाओं में। व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः=चारों ओर बिखेर दिया है। वृक्षों को डालियों को जिसने ऐसा वायु। तृणजटिलचलत्पांशुदण्डः=धूलि एवं तृणसमूह से व्याप्त, गोलाकार तथा लम्बे एवं ऊँचें आकार के वायु के बवण्डर को धारण करने वाला यह वायु का विशेषण है। झाङ्कारी=झांय-झांय शब्द को करने वाला। शर्करालः=बालू अथवा छोटी-छोटी कङ्कणियों से युक्त। विटपिनां स्कन्धकाषै=वृक्षों की शाखाओं के आपस में रगड़ खाने से। सधूमः=धूम से युक्त। वनों में जब वृक्षों की शाखायें आपस में रगड़ खाती रहा करती हैं तो उनकी पारस्परिक रगड़ से

उनमें धुंआ निकलने लगा करता हैं तथा कभी-कभी तो अग्नि भी उत्पन्न हो जाया करती है। इसी कारण कभी-कभी वनों में अग्नि भी लग जाया करती है। प्रासादानाम्=महलों के अथवा बगीचों के। निकुञ्जेषु=कुञ्जों में अर्थात् घने स्थलों पर। "निकुञ्जकुञ्जो" इत्यमरः। अभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीरः=नवीन अथवा जल से परिपूर्ण मेघों की गर्जन के सदृश गम्भीर तथा धीर ध्वनि से युक्त। उद्गारः=गर्जन। चण्डारम्भः=भयंकर है प्रारम्भ जिसका ऐसा वायु। उपर्युक्त सभी वायु के विशेषण हैं। परिदिशम् =सभी दिशाओं में--चारों ओर। वर्हति=बह रही है।

सखी—महाराज: प्रविशत्विमं दारुपर्वतप्रासादम्। उद्वेगकारी खल्वयमुत्थितपरुषरजः कलुषीकृतनयन उन्मीलिततरुवरशब्दवित्रस्तमन्दुरापरिभ्रष्टवल्लभतुरङ्गमपर्याकुलीकृतजनपद्धतिर्भीषणः समीरणासारः। (महाराओ पविसदु एवं दारुपव्वअप्पासादम्। उव्वेअकारी क्खु अग्रं। उत्थिदपरुसरअकलुसीकिदणअणो उन्मीलिदतरुवरसद्दवित्तत्थमन्दुरापरिबभट्टवल्लहतुलङ्गमपज्जाउलीकिदजणपद्धई भीसणो समीरणासारो।)

राजा—(सहर्षम्) उपकारि खल्विदं वात्याचक्रं सुयोधनस्य, यस्य प्रसादादयत्नपरित्यक्तनियमया देव्या सम्पादितोऽस्मन्मनोरथः कथमिति—

न्यस्ता न भ्रुकुटिर्नवाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने
नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन्वारितः।
तन्व्या मग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं
भङ्क्ताऽस्या नियमस्य भीषणमरुन्नायं वयस्यो मम॥२०॥

सखी—महाराज! आप इस दारुपर्वत नामक महल में प्रवेश कीजिये। यह हवा का तूफान अत्यन्त भीषण तथा उद्वेगजनक है जिससे उठी हुई कर्कश धूलि से नेत्र व्याकुल हो रहे हैं तथा जिससे उखड़े हुये बड़े-बड़े पेड़ों के

शब्दों से भयभीत होकर घुड़साल से छुटे हुये (भागे हुये) उत्तम घोड़ों के कारण मनुष्यों का आना जाना भी अस्तव्यस्त हो गया है।

राजा—(प्रसन्नता के साथ) यह तूफान दुर्योधन का उपकारक ही है जिसकी कृपा से विना किसी प्रयत्न के ही व्रत छोड़ देने वाली देवी भानुमती ने हमारी इच्छा को पूर्ण कर दिया है (अर्थात् व्रत के नियम का त्यागकर भानुमती द्वारा मेरा आलिङ्गन किया गया है।) क्योंकि—

अन्वयः—तन्व्या भयवशात् भृकुटिः न न्यस्ता, लोचने वाष्पसलिलैः न आच्छादिते, आननं अन्यतः न नीतम्, स्पृशन् अहं सशपथं न वारितः, (किन्तु) मग्नपयोधरं (मां) आलिङ्गित आबद्धम्। (अतः) अस्याः नियमस्य भङ्क्ता अयं भीषणमरुत् न (अपितु) मम वयस्यः (एव)।

संस्कृत व्याख्या—तन्व्या=कृशाङ्ग्या भानुमत्या, भयवशात्=भीतिकारणात्, भृकुटि=भ्रूभङ्गः, न न्यस्ता=न रचिता—("क्रोधेन भ्रूभङ्गः न कृतः" इत्यभिप्रायः।), लोचने=नेत्रे, वाष्पसलिलैः=अश्रुभिः, न आच्छादिते=नावृते, आननम्=स्वकीयं मुखम्, अन्यतः=अन्यस्यां दिशि न नीतम्=न कृतम्, स्पृशन्=हठात् स्पर्शं कुर्वन्, अहम्=दुर्योधनः, सशपथम्=शपथपूर्वकम्, न वारितः=न निवारितः ("यदि मां स्पृशसि तर्हि मम प्राणानां ते शपथ" इत्यादिभिर्वाक्यैः सनिर्बन्धं नाहं निवारित इत्यर्थः), (किन्तु) मग्नपयोधरम्=मग्नो त्रुडितौ पयोधरौ कुचौ यस्मिन् कर्मणि यथा तथा, (माम्), आलिङ्गितम्=आलिङ्गनम्, आबद्धम्=कृतम् (अत्र-आबद्धमित्यनेन गाढ़ालिङ्गनं सूचितम्), (अतः) अस्याः=भानुमत्याः, नियमस्य=व्रतस्य, भङ्क्ता=भञ्जकः, अयम्=एषः, भीषणमरुत्=भयङ्करः वायुः—झंझावातः—इत्यर्थः, न=नास्ति, (अपितु) मम=दुर्योधनस्य, वयस्यः=मित्रमेव—"सहायकः"—एवेत्यर्थः ॥२०॥

हिन्दी-अनुवाद—तन्व्या=कृशाङ्गी भानुमती के द्वारा, भयवशात्=भय के कारण, भृकुटिः=भौंह को, न न्यस्ता=टेढ़ा नहीं किया गया। लोचने=दोनों नेत्र, वाष्पसलिलैः=अश्रुओं से, न आच्छादिते=नहीं ढके गये। आननम्=मुख, अन्यतः=दूसरी ओर, न नीतम्=नहीं फेरा गया। स्पृशन्=(मेरे द्वारा)

स्पर्श किये जाने पर, अहम्=मैं, सशपथम्=शपथपूर्वक, न वारितः =नहीं रोका गया। किन्तु, मग्नपयोधरम्=स्तन गढ़ाकर, आलिङ्गितम्=आलिङ्गन, आबद्धम्=बाँधा गया–किया गया। (अतः) अस्याः=इसके, नियमस्य=व्रत का, भङ्क्ता=भंग करने वाला, अयम्=यह, भीषणमरुत्=भयंकर वायु (न) नहीं है। (अपितु=किन्तु), मम=मेरा, वयस्यः=मित्र है। २०॥

भावार्थ—इस भानुमती ने न तो क्रोध के साथ भ्रकुटी ही चढ़ाई, न आंसुओं से अपनी आंखों को ही भरा, इसने न तो अपने मुख को ही मेरी ओर से हटाकर दूसरी ओर किया तथा न आलिङ्गन करते हुये मुझको ही शपथ दिलाकर वैसा करने से रोका। किन्तु इसने भय के कारण बड़ी दृढ़ता के साथ स्वयं ही अपनी छाती से मेरा गाढ़ आलिङ्गन किया। इस भाँति भानुमती के व्रत सम्बन्धी नियम का भङ्ग करने वाला यह भीषण वायु नहीं है। यह तो मेरा परम सहायक मित्र ही है।

अलङ्कारः—उक्त पद्य में "काव्यलिङ्ग" अलंकार है। लक्षण—स्यात् काव्यलिङ्गं वागर्थो नूतनार्थसमर्पकः"।

छन्द—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है।

समास—दारुपर्वतप्रासादम्=दारुपर्वते (काष्ठनिर्मिते कृत्रिमे विलासपर्वते) निर्मितं प्रासादम्–इति। उत्थितरजःकलुषीकृतनयनः=उत्थितैः रजोभिः कलुषीकृतानि (व्याकुलीकृतानि) नयनानि येन सः। उन्मीलिततरुवरशब्दवित्रस्तमन्दुरापरिभ्रष्टवल्लभतुरङ्गमपर्याकुलीकृतजनपद्धतिः =उन्मूलिताः ये तरुवराः इति–उन्मूलिततरुवराः, तेषां पतता शब्देन वित्रस्ताः (भयविह्वलाः), अतएव मन्दुरायाः (बाजिशालायाः) परिभ्रष्टाः (उन्मुक्ताः) ये वल्लभाः श्रेष्ठाः ये तुरङ्गमाः (अश्वाः) तैः पर्याकुलीकृताः जनपद्धतयः (लोकमार्गाः) येनासीतथाभूतः। समीरणासारः=समीरणस्य आसारः (वेगः)। वात्याचक्रम्=वातानां (वायूनाम्) समूहः वात्या, तस्याः चक्रम् (मण्डलाकारेव भ्रमणम्)। अयत्नपरित्यक्तनियमया=अप्रयत्नेन परित्यक्तः नियमः यया सा, तया। मग्नपरोधरम्=मग्नौ परोधरौ यस्मिन् कर्मणि तत् यथास्यात्तथा।

टिप्पणियाँ—**दारुपर्वतप्रासादम्**=काष्ठनिर्मित कृत्रिम विलासपर्वत पर निर्मित राजभवन। **उत्थितः**=उठा हुआ। **कलुषीकृतनयनः**=व्याकुल कर दिया है नेत्रों को जिसने। ऐसा यह झंझावात। **उन्मूलिताः**=उखाड़े गये हुये। **वित्रस्ताः**=भय के कारण विह्वल। **मन्दुरा**=घुड़साल। **परिभ्रष्टाः**=छुटे हुये, छूटकर निकले अथवा भागते हुये। **वल्लभाः**=श्रेष्ठ। **पद्धतयः**=मार्ग-रास्ते। **समीरणासारः**=वायु का वेग। आसार—वेग। **वात्याचक्रम्**=वायु का गोलाकार रूप में घूमना। **प्रसादात्**=अनुग्रह से, कृपा से। **अयत्न-परित्यक्तनियमया**=बिना किसी प्रयत्न के ही छोड़ दिया है व्रत जिसने ऐसी भानुमती। **सम्पादितः**=सम्पादित किया, सिद्ध किया। **अस्मन्मनोरथः**=आलिङ्गन सम्बन्धी मेरी इच्छा। **भ्रुकुटिः**=भौंहों की भंगिमा—टेढ़ा होना। **न्यस्ता**=न बनाई गयीं—की गईं। **वाष्पसलिलैः**=नेत्रों के जल अर्थात् आंसुओं से। **आच्छादिते**=ढकलिये गये। **अन्यतः**—दूसरी ओर। **सशपथम्**=शपथ अथवा सौगन्ध के साथ। **वारितः**=रोका गया। **मग्नपयोधरम्**=स्तनों को गढ़ाकर। **आबद्धम्**=बांधागया, किया गया। **भङ्क्ता**=तोड़ने वाला, भंग करने वाला। **वयस्यः**=मित्र, सखा। भानुमती तो व्रत धारण कर चुकी थीं। दुर्योधन उसका आलिङ्गन करना चाहता था व्रत की स्थिति में यह संभव न था। यदि वह बलात् ऐसा करता तो भानुमती उससे क्रोधित हो सकती थी अथवा उसको ऐसा न करने के लिये शपथ (सौगन्ध) दिला सकती थी किन्तु ऐसे ही समय पर भीषण आँधी आ गई। इस आँधी के भयंकर शब्द को सुनकर भानुमती डर गई तथा वह स्वयं ही दुर्योधन के समीप पहुँचकर उसके शरीर में लिपट गई। दुर्योधन की इच्छा पूर्ण हो गई। इसी कारण दुर्योधन इस आँधी को भीषण वायु न कहकर उसे अपना 'मित्र' ही बतला रहा है ॥२०॥

तत्संपूर्णमनोरथस्य मे कामचारः संप्रति विहारेषु। तदितो दारु-पर्वतप्रासादमेव गच्छामः।

(सर्वे वात्याबाधां रूपयन्तो यत्नतः परिक्रामन्ति।)

राजा—

कुरु घनोरु ! पदानि शनैः शनै-
रयि ! विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् ।
सुतनु ! बाहुलतोपरिबन्धनं
मम निपीडय गाढमुरस्थलम् ॥२१॥

अतः पूर्ण हुई इच्छा वाला मैं अब (अपनी) इच्छानुसार विहार (रति-क्रीडा) कर सकता हूँ। तो यहाँ से (हम लोग) काष्ठ (द्वारा बने कृत्रिम) पर्वत पर विद्यमान महल में ही चलें।

(सभी लोग आँधी के कष्ट का अभिनय करते हुये कठिनता के साथ चल पड़ते हैं।)

अन्वयः—हे घनोरु ! शनैः शनैः पदानि कुरु। अयि ! परिवेपिनीं गतिं विमुञ्च। हे सुतनु ! बाहुलतोपरिबन्धनं मम उरःस्थलं गाढं निपीडय।

संस्कृत-व्याख्या—हे घनोरु !=घनौ-निबिडतरौ उरु-जङ्घे जघनस्थले वा यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, शनैः शनैः=मन्दं मन्दम्, पदानि=पादविन्यासम्, कुरु=विधेहि। अयि !=अयि प्रिये:, परिवेपिनीम्=परिवेपः-कम्पः विद्यते अस्याः सा परिवेपिनी, ताम्—कम्पवतीम्, गतिम्=गमनम्, विमुञ्च=त्यज। हे सुतनु=सुष्ठु-शोभनं तनु शरीरं यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ—हे सुन्दरी ! हे तन्वि ! वा, बाहुलतोपरिबन्धनम्=स्वकीयाभ्यां बाहुलताभ्यां लतासदृशाभ्यां भुजाभ्यां उपरि-कण्ठे इत्यर्थः बन्धनं-बलाद् ग्रहणम् यस्मिन् कर्मणि तत्तथा, मम=दुर्योधनस्य, उरःस्थलम्=वक्षस्थलम्, गाढम्=दृढम्, निपीडय=आलिङ्ग-परिष्वजस्व। सुखपूर्वकं मां गाढमालिङ्गयेत्यभिप्रायः ॥२१॥

हिन्दी-अनुवाद—हे घनोरु !—हे परस्पर सटी हुई जंघाओं वाली !, शनैः शनैः=धीरे-धीरे, पदानि=(अपने) चरणों को, कुरु=रक्खो। अयि !=अयि प्रिये !, परिवेपिनीम्=कम्पनयुक्त अथवा लड़खड़ाती हुई, गतिम्=चाल को, विमुञ्च= छोड़ो। हे सुतनु—हे शोभन शरीर वाली ! बाहुलतापरिबन्धनम्=लतासदृश अपनी बाहों का ऊपर (गले में) बन्धन डालकर, मम=मेरे,

उरःस्थलम्=वक्षस्थल को, गाढम्=दृढ़ता के साथ अथवा जोर से, निपीडय=दबाओ ॥२१॥

भावार्थ—हे परस्पर मिली हुई जंघाओं से युक्त भानुमति ! धीरे-धीरे चलो। अपनी लड़खड़ाती हुई गति (चाल) को छोड़ दो। हे सुन्दरि ! अपनी दोनों बाहों को मेरे गले में डालकर अपनी छाती से मेरी छाती को जोर से दबाओ। अर्थात् प्रेमपूर्वक मेरा गाढ़ालिङ्गन करो।

अलङ्कार—उक्त पद्य में "उपमा" अलंकार है।

छन्द— इसमें "द्रुतविलम्बित" नामक छन्द है। लक्षण—"द्रुतविलम्बित-माह नभो भरौ"।

समास–सम्पूर्णमनोरथस्य=सम्पूर्णः मनोरथः यस्य तस्य। कामचारः=कामेन-स्वेच्छया चारः—आचरणम्। बाहुलतोपरिबन्धनम्=बाहुलताभ्यां उपरि बन्धनं यस्मिन् तत्।

टिप्पणियाँ—सम्पूर्णमनोरथस्य=जिसकी इच्छा पूरी हो गई है ऐसे। कामचारः=स्वेच्छाचार–अपनी इच्छा के अनुसार आचरण का किया जाना। विहारेषु=रति अथवा कामसम्बन्धी क्रीडाओं में। इतः=यहाँ से। यत्नतः=बड़े प्रयत्न से–बड़ी कठिनाई से जिस किसी प्रकार से। परिक्रामन्ति=चलते हैं। परिवेपिनीम=कम्पनयुक्त–लड़खड़ाती हुई। गतिम्=चालको। बाहुलतोपरिबन्धनम्=मेरे गले में अपनी दोनों बाहों का बन्धन डालकर। निपीडय=निःशेष रूप से दबाओ अर्थात् मेरा गाढ़ालिङ्गन करो ॥२१॥

(प्रवेशं रूपयित्वा) प्रिये ! अलब्धावकाशः समीरणः संवृतत्वाद् गर्भगृहस्य। विस्रब्धमुन्मीलयचक्षुरुन्मृष्टरेणुनिकरम्।

भानुमती—(सहर्षम्) दिष्ट्येह तावदुत्पातसमीरणो न बाधते। (दिट्ठिया इह दाव उत्पादसमीरणो णवाधेइ।)

सखी—महाराज ! आरोहणसंभ्रमनिःसहं प्रियसख्या उरुयुगलम्। तत्कस्मादिदानीं महाराज आसनवेदीं न भूषयति। (महाराअ !

आरोहणसंभमणिस्सहं पिअसहीए उरुजुअलम् । ता कीस दाणीं महाराओ आसणवेदीं ण भूसेदि)।

राजा—(देवीमवलोक्य) भवति ! अनल्पमेवापकृतं वात्यासंभ्रमेण । तथा हि—

रेणुर्बाधां विधत्ते तनुरपि महतीं नेत्रयोरायतत्वा-
दुत्कम्पोऽल्पोऽपि पीनस्तनभरितमुरः क्षिप्तहारं दुनोति ।
ऊर्वोर्मन्देऽपि याते पृथुजघनभराद्वेपथुर्वर्धतेऽस्या
वात्या खेदं मृगाक्ष्याः सुचिरमवयवैर्दत्तहस्ता करोति ॥२२॥

(प्रवेश का अभिनय करके) प्रिये ! इस गर्भ-गृह (महल के बीच में स्थित कमरा) के चारों ओर से घिरे होने के कारण इसमें आँधी का प्रवेश असंभव है । अतः जिनके ऊपर से धूलि के कण पोंछ दिये गये हैं ऐसे (अपने) नेत्रों को खोलो ।

भानुमती—(हर्ष के साथ) भाग्य से यहाँ उत्पातवायु (आँधी) नहीं सता रही है ।

सखी—महाराज ! प्रियसखी (भानुमती) की दोनों जाँघे ऊपर चढ़ने की शीघ्रता के कारण अशक्त हो गई हैं । तो अब महाराज आसनवेदिका (बैठने के चबूतरे) को क्यों नहीं सुशोभित करते ? (अर्थात् आप अपने बैठने योग्य चबूतरे पर क्यों नहीं बैठते ?)

राजा—(महारानी भानुमती की ओर देखकर, सखी से) श्रीमती जी ! आंधी के इस उत्थान ने इनका अत्यधिक अपकार किया है । क्योंकि—

अन्वयः—नेत्रयोः आयतत्वात् तनुः अपि रेणुः (अस्याः) महतीं बाधां विधत्ते । अल्पः अपि उत्कम्पः पीनस्तनभरितं क्षिप्तहारं (च) उरः दुनोति । मन्दे याते अपि पृथुजघनभरात् अस्याः उर्वोः वेपथुः वर्धते । मृगाक्ष्याः अवयवैः दत्तहस्ता वात्या (अस्याः) सुचिरं खेदं करोति ।

संस्कृत-व्याख्या—नेत्रयोः=नयनयोः, आयतत्वात्=विस्तृतत्वात् दैर्घ्याद् वा तनुः=स्वल्पः, अपि, रेणुः=वातोत्थिता धूलिः, (अस्याः=भानुमत्याः);

महतीम्=विपुलाम्, बाधाम्=पीडाम्, विधत्तो=करोति। अल्पः=स्वल्पः, अपि, उत्कम्पः=प्रकम्पः, पीनस्तनभरितम्=पीनाभ्याम्-स्थूलाभ्याम्, स्तनाभ्याम्-कुचाभ्याम्, भरितम्-भाराक्रान्तम, क्षिप्तहारम्=क्षिप्तः-निक्षिप्तः हारः यस्मात् तत्, उरः=वक्षस्थलम्, दुनोति=पीडयति। मन्दे=शिथिले, याते=गमने सति, अपि, पृथुजघनभरात्=पृथुन-स्थूलस्य जघनस्य-स्त्रीश्रोणिपुरोभागस्य भरात्-भारात्, अस्याः=भानुमत्याः, उर्वोः=सक्थ्नोः, वेपथुः=कम्पः, वर्धते=समेधते। मृगाक्ष्याः=हरिणलोचनायाः, अवयवैः=शरीरस्याङ्गैः, दत्तहस्ता=दत्तः—समर्पितः हस्तः साहाय्यमित्यर्थः यस्याः सा तादृशी, वात्या=वातसङ्घातः, (अस्याः=भानुमत्याः), सुचिरम्=बहुकालपर्यन्तम्, खेदम्=क्लेशम, पीडाम्, आयासम्, करोति=विधत्ते। "उभाभ्यामङ्गवात्याभ्यामेव पीडा देयाः"—इत्यभिप्रायः ॥२२॥

हिन्दी-अनुवाद—नेत्रयोः=नेत्रों के, आयतत्वात्=विशालता के कारण, स्वल्पः=थोड़ी सी, अपि=भी रेणुः=धूलि (अर्थात् थोड़े से भी धूलि के कण), (अस्याः=इस भानुमती को): महतीम्=अत्यधिक, बाधाम्=पीड़ा अथवा व्यथा, विधत्ते=प्रदान कर रहे हैं। अल्पः=थोड़ा सा, अपि=भी, उत्कम्पः=शरीर का कम्पन (कँपकँपी), पीनस्तनभरितम्=मोटे-मोटे स्तनों के भार से युक्त, च=और, क्षिप्तहारम्=उछलने वाले हार से युक्त, उरः=वक्षस्थल को, दुनोति=पीड़ित-कर रहा है। मन्दे=मन्द गति से, याते=चलने पर, अपि=भी पृथुजघनभरात् स्थूल जघन (कटि) के भार के कारण, अस्याः=इस भानुमती की, उर्वोः=जंघाओं में, वेपथुः=कम्पन, वर्धते=बढ़ रहा है। (इस प्रकार इस) मृगाक्ष्याः=मृगनयनी भानुमती के, अवयवैः=शरीर के अङ्गों के द्वारा, दत्तहस्ता=सहारा प्राप्त की हुयी, वात्या=(यह) आंधी, (अस्याः=इस भानुमती को) सुचिरम्=बहुत देर तक, खेदम्=कष्ट, करोति=दे रही है। अर्थात् इसके नेत्र आदि अङ्ग तथा आंधी दोनों ही इसे कष्ट पहुंचा रहे हैं ॥२२॥

भावार्थ—इस भानुमती को-इसके ही नेत्रों की विशालता के कारण थोड़े से ही धूलि के कण अत्यधिक व्यथा को प्रदान कर रहे हैं। इस आंधी

के कारण उत्पन्न हुआ थोड़ा सा भी शरीर का कम्पन मोटे एवं स्थूलस्तनों से युक्त और उछलते हुये हार से युक्त वक्षस्थल को पीड़ित कर रहा है। मन्दगति से चलने पर भी स्थूल कटिप्रदेश के भार के कारण दोनों जंघाओं में कम्पन भी वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। इस भाँति इसके अपने ही अङ्गों के द्वारा सहायता प्राप्त की हुयी आँधी इस भानुमती को अत्यन्त कष्ट दे रही है।

अलङ्कार—उक्त पद्य में "काव्यलिङ्ग" अलंकार है।

छन्द—इसमें "स्रग्धरा" छन्द है।

समास—**अलब्धावकाशः**=अलब्धः अवकाशः (स्थानम्) येन तादृशः। **उन्मृष्टरेणुनिकरम्**=उन्मृष्टः (दूरीकृतः) रेणुनिकरः (धूलिसमूहः) यस्मात् तत्। **आरोहणसम्भ्रमनिःसहम्**=आरोहणे (प्रासादारोहणे) यः सम्भ्रमः (वेगः) तेन निःसहम् (निश्चलम्-असमर्थं वा)। **आसनवेदीम्**=आसनार्थं-उपवेशनार्थं कृता वेदी (चत्वरम्), ताम्। **पीनस्तनभरितम्**=पीनाभ्यां स्तनाभ्यां भरितम्। **क्षिप्तहारम्**=क्षिप्तः हारः—इति क्षिप्तहारः तम्। **पृथुजघनभरात्**=पृथुनः जघनस्य यः भरः, तस्मात्। **दत्तहस्ता**=दत्तः हस्तः यस्याः सा।

टिप्पणियाँ—**रूपयित्वा**=अभिनय करके। **अलब्धावकाशः**=जिसे प्रवेश प्राप्त नहीं हो सका है ऐसा। **संवृतत्वात्**=घिरे हुये होने से। **विस्रब्धम्**=निर्भयता के साथ-अथवा-विश्वस्तता के साथ। **गर्भगृहस्य**=अन्तर्गृह। **उन्मृष्टः**=पोंछ दिया गया-अथवा-दूर कर दिया गया। **उन्मीलय**=खोलो। **दिष्ट्या**=सौभाग्य से। **आरोहणसम्भ्रमनिःसहम्**=दारुपर्वत पर स्थित महल तक चढ़ने में की गई शीघ्रता के कारण अशक्तता को प्राप्त हुये। **उरुयुगलम्**=दोनों जँघायें। **आसनवेदीम्**=बैठने के लिये निर्मित चबूतरे को। **भूषयति**=सुशोभित करते। **अनल्पम्**=अत्यधिक। **अपकृतम्**=अपकार किया। **वात्यासम्भ्रमेण**=गोलाकार वायु के चक्र के भय से। **आयतत्वात्**=दीर्घ, लम्बे अथवा विशाल होने के कारण। **पीनस्तनभरितम्**=स्थूल (मोटे) स्तनों के भार से युक्त। **क्षिप्तहारम्**=उछलते हुये हार से युक्त।

पृथुजघनभरात्=स्थूल जघन (कटि) के भार के कारण। उर्वोः=दोनों जंघाओं का। वेपथुः=कम्पन, कँपकँपी। अवयवैः=शारीरिक अंगों द्वारा। दत्तहस्ता=सहारा को प्राप्त हुआ। वात्या=झंझावात-आंधी ॥२२॥

(सर्वे उपविशन्ति)

राजा—तत्किमित्यनास्तीर्णं कठिनं शिलातलमध्यास्ते देवी।

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तं
त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य।
अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य
पर्याप्तमेव करभोरु! ममोरुयुग्मम् ॥२३॥

(सभी शिलाखण्ड पर बैठ जाते हैं)

राजा-तो क्या बिछावन से रहित पत्थर की इस कठोर चट्टान (शिलातल) पर महारानी बैठेंगी ?

अन्वयः—हे करभोरु! पवनाकुलितांशुकान्तम्, त्वद्दृष्टिहारि मम उरुयुग्मं लोलांशुकस्य मम लोचनबान्धवस्य तव जघनस्थलस्य चिरं अध्यासितुं पर्याप्त एव ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे करभोरु !=करभस्य उरू यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, हे करभोरु-हे सुवृत्तपीवरोरु !, पवनाकुलितांशुकान्तम्=पवनेन-वायुना आकुलितः स्वस्थानात् व्यस्तः अंशुकस्य वस्त्रस्य अन्तः प्रान्तभागः यस्य तत्, त्वद्दृष्टिहारि=तव-भवत्याः दृष्टिम्-लोचनम् हर्तुं वशीकर्तुं शीलं यस्य तादृशम्, मम=दुर्योधनस्य, उरुयुग्मम्=उर्वोः-जघयोः युग्मम्-द्वन्द्वम्, लोलांशुकस्य=लोल-चञ्चलं (वायुना चञ्चलमित्यर्थः) अंशुकम्-वस्त्रम्-('शाटिका' इति यावत्) यस्य तादृशस्य, मम=दुर्योधनस्य, लोचनबान्धवस्य=लोचनयोः-नेत्रयोः बध्नाति-आकर्षति इति बन्धुः आकर्षकः, स एव बान्धवः, तस्य, तव=भवत्याः (भानुमत्याः-इत्यर्थं), जघनस्थलस्य=जघनम्-कटिपश्चाद्भागः स्थलमिव-पट्टमिव, तस्य-विशालस्य कटिपश्चाद्भागस्येत्यर्थः, चिरम्=चिरकाल-

पर्यन्तम्, अध्यासितुम्=उपवेशनाय–जघनस्थलस्याऽश्रयणायेत्यर्थः, पर्याप्तम्=समर्थम्-समुचितम्, एव–इति दृढ़तायाम्–'तदन्यत्र भवत्या उपवेशनं उचितं न" इत्यभिप्रायः। इतः यथेच्छविहारप्रारम्भः ॥२३॥

हिन्दी-अनुवाद—हे करभोरु !=हे करभ (हाथ की कलाई से लेकर अँगुलियों के बीच का भाग) के सदृश जङ्घाओं वाली !, पावनाकुलितांशुकान्तम्=वायु के कारण चंचल वस्त्र के छोर वाली, त्वद्दृष्टहारि=तुम्हारी दृष्टि को हरण करने वाली, मम=मेरी, उरुयुग्मम्=दोनों जंघायें, लोलांशुकस्य=लहराते हुये वस्त्र से युक्त, मम=मेरे, लोचनबान्धवस्य=नेत्रों को प्रिय, तव=तुम्हारे, जघनस्थलस्य=जघनस्थल (विस्तृत चूतड़) के, चिरम्=चिरकाल तक, अध्यासितुम्=बैठने के लिये, पर्याप्तम्=पर्याप्त, एव=ही है।

भावार्थः—हे करभोरु ! वायु से जिस जघनस्थल का वस्त्र हिलडुल रहा है तथा जो मेरे नेत्रों को आनन्द देने वाला है, इस प्रकार के आपके जघनस्थल (चौड़े चूतड़) के लिये तो मेरी दोनों जंघाओं का स्थल–जिसका वस्त्र भी वायु के कारण हट सा रहा है तथा जो आपके नेत्रों को भी आनन्द प्रदान करने वाला है—हाँ पर्याप्त समय तक समुचितरूप से बैठने का स्थान है। (दुर्योधन के कहने का अभिप्राय यह है कि तुमको तो मेरी गोद में ही बैठना उचित है।) ।

अलङ्कार—उक्त पद्य में "सम" अलंकार है। लक्षण—"सममौचित्यतोऽनेकवस्तुसम्बन्धवर्णनम्" ॥

छन्द—इसमें 'वसन्ततिलका' नामक छन्द है।

समास—पवनाकुलितांशुकान्तम्=पवनेन आकुलितः अंशुकस्य अन्तः यस्य तत्। त्वद्दृष्टिहारि=तव दृष्टिं हर्तुं शीलं यस्य तत्। लोचनबान्धवस्य=लोचनयोः बान्धवस्य। जघनस्थलस्=जघनं स्थलमिव-इति जघनस्थलम्, तस्य।" उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे" "अष्टा० २।१।५६॥ से यहां समास हुआ है।

टिप्पणियाँ—इति=इस प्रकार के। अनास्तीर्णम्=बिछौने से रहित। कठिनम्=कठोर। शिलातलम्=शिलाखण्ड। करभोरु=हाथ की हथेली

के नीचे की कलाई के भाग से लेकर छोटी अँगुली तक का भाग 'करभ' कहलाता है। "मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः इत्यमरः। इस करभ के सदृश गोल जंघाओं वाली को 'करभोरू' कहा जाता है। आकुलितः=चंचल, हिलता-डुलता हुआ। अन्तः=प्रान्तभाग—छोर। दृष्टिहारि=दृष्टि को भी अपनी ओर खींचने वाला। ऊरुयुग्मम्=दोनों जंघाओं का स्थल। लोलांशुकम्=वायु के कारण चंचल वस्त्र अर्थात् साड़ी से युक्त। लोचनबाधवस्य=नेत्रों को प्रिय लगने वाला। जघनस्थलस्य=जघनस्थल-(चूतड़ का निचलाभाग) "पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याःक्लीवे तु जघनं पुरः" इत्यमरः। चिरम्=बहुतसमय तक। अध्यासितुम्=बैठने के लिये। एव=यहां दृढ़ता का वाचक है।

(प्रविश्य पटाक्षेपेण सम्भ्रान्तः)

कञ्चुकी—देव ! भग्नं भग्नम्।

(सर्वे सातङ्कं पश्यन्ति।)

राजा—किं नाम ?

कञ्चुकी—भग्नं भीमेन।

राजा—आः किं प्रलपसि ?

भानुमती-आर्य ! किमनर्थं मन्त्रयसे (अज्ज किं अणत्थं मन्तेसि)।

कञ्चुकी—(सभयम्) ननु भग्नं भीमेन भवतः।

राजा—धिक् प्रलापिन ! वृद्धापसद ! कोयमद्य ते व्यामोहः ?

कञ्चुकी—देव ! न खलु कश्चिद् व्यामोहः। सत्यमेव ब्रवीमि—

भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम्।
पतितं किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दमिव क्षितौ ॥२४॥

(पर्दा हटाकर प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—महाराज ! टूट गया, टूट गया।

(सभी लोग भय के साथ देखते हैं।)

राजा—क्या (टूट गया) ?

कञ्चुकी—भीम ने तोड़ दिया।

राजा—अरे, क्या बक रहे हो ?

भानुमती—आर्य क्यों अनर्थ (अमङ्गल-वचन) मुख से निकाल रहे हैं ?

(उपर्युक्त श्लोक सं० २३ में जैसे ही दुर्योधन द्वारा "उरुयुगमम्" कहा गया वैसे ही प्रवेश करके कञ्चुकी ने यह कहना प्रारम्भ किया कि—"टूट गया, टूटगया" (देव ! भग्नं भग्नम्)। इसी कारण भानुमती कञ्चुकी के कथन को अमङ्गल सूचक समझ रही है। इसके अतिरिक्त कवि ने भी पूर्वोक्त रूप से पूर्व श्लोक के साथ कञ्चुकी के वाक्य का सम्बन्ध जोड़कर भावी अमङ्गल को सूचित किया है)।

कञ्चुकी—(भय के साथ) निश्चय ही भीम के द्वारा आपका तोड़ दिया गया।

राजा—धिक्कार ! व्यर्थ का बकवास करने वाले, अधम वृद्ध ! आज तुझको यह कैसा मति-भ्रम हो गया है ?

कञ्चुकी—महाराज ! मुझे कोई मतिभ्रम नहीं हुआ है। बिलकुल सत्य कह रहा हूँ—

अन्वयः—भीमेन मरुता भवतः रथकेतनं भग्नम् (च तत्) किङ्किणी-क्वाणबद्धाक्रन्दं इव क्षितौ पतितम् ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या—भीमेन=भयङ्करेण भीमसेनेन वा, मरुता=वायुना, वायुपुत्रेण—("मरुता"-इत्यत्रआत्मा वै"जायते पुत्रः"इत्यभेदोपचाराद्वा, तद्धित-लोपाद्वा साधुता—इत्यवधेयम्), भवतः=तव, रथकेतनम्=रथपताका-रथध्वजः, भग्नम्=छिन्नम्, (च, तत्=केतनम्) किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दम्=किङ्किणीनां-क्षुद्रघंटिकानां, क्वाणेन-शब्देन बद्धः-प्रारब्धः आक्रन्दः-विलपनं येन तथा-भूतम्, इव, शब्दायमानमिवेत्यर्थः, क्षितौ=पृथिव्याम्, पतितम्=निपति-तम् ॥२४॥

हिन्दी-अनुवाद—भीमेन=भीषण, मरुता=वायु केद्वारा (अथवा-मरुता= वायु के पुत्र, भीमेन=भीमसेन के द्वारा), भवतः=आपके, रथकेतनम्=रथ की ध्वजा, भग्नम्=तोड़ डाली गई है। (च=और, तत् केतनम्=वह ध्वजा),

किङ्किणीकाणबद्धाक्रन्द्रम्=घुंघरुओं से निकलने वाले शब्द के बहाने से विलाप करती हुई, इव=के सदृश, क्षितौ—पृथिवी पर, पतितम्=गिर पड़ी ।।२४।।

भावार्थ—भीषण वायु के द्वारा (अथवा वायुपुत्र भीमसेन के द्वारा) आपके रथ की पताका तोड़ दी गई है तथा उसमें संलग्न घुँघुरुओं के शब्द के बहाने से (वह ध्वजा या पताका) विलाप करती हुई सी भूतल पर गिर गई है। अथवा आपके रथ की ध्वजा को भीषण-वायु (अथवा वायुपुत्र भीमसेन) के द्वारा तोड़ डाला गया है तथा उसमें बँधे घुँघुरुओं के शब्द के बहाने से रुदन करती हुयी (वह ध्वजा) भूमि पर गिर गई है ।।२४।।

अलङ्कार—इस पद्य में "उत्प्रेक्षा" नामक अलंकार है।

छन्द—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समास—रथकेतनम्=रथस्य केतनम्-इति। किङ्किणीकाणबद्धाक्रन्दम्=किङ्किणीनां काणेन बद्धः आक्रन्दः येन तत्।

टिप्पणियाँ—पटाक्षेपेण=साधारणतया जब कोई पात्र नेपथ्यगृह (साज-सज्जागृह) से जब रंगमञ्च पर आता है तब पर्दा उठा दिया जाया करता है किन्तु जब किसी पात्र को घबराई हुयी दशा में रङ्गमञ्च पर लाया जाता है तब बिना पर्दा उठाये तथा विना किसी पूर्वसूचना के ही वह पर्दे के किनारे के भाग की ओर से थोड़ा सा पर्दा हटाकर प्रविष्ट हो जाया करता है। इसी को 'पटाक्षेप' कहा जाता है। किं नाम=अर्थात् वह क्या है? शीघ्र ही स्पष्ट करो। भीमेन=भयंकर तथा भीमसेन दोनों ही अर्थ होते हैं। प्रलपसि=असम्बद्ध बोलते हो या बकवास करते हो। अनर्थम्=अनर्थ-अमङ्गल रूप अनर्थ। मन्त्रयसे=बोलते हो या कहते हो। अपसद=नीच, अधम। व्यामोहः=मतिभ्रम। चित्त का विक्षेप। किङ्किणीकाणबद्धाक्रन्दम्=किङ्किणियों अर्थात् घुंघुरुओं के, काण अर्थात् शब्द से ("किङ्किणीक्षुद्रघण्टिका" इत्यमरः) विलाप करती हुई सी। मानों वह पताका घुंघुरुओं से निकलने वाले शब्द के रूप में ही रो रही हो। क्षितौ=भूमिपर। पतितम्=गिर पड़ी है। इस श्लोक में वर्णित विषय के द्वारा

भीम द्वारा भविष्य में किये जाने वाले दुर्योधन के उरुभङ्ग की सूचना दी गई है ॥२४॥

राजा—बलवत्समीरणवेगात्कम्पिते भुवने भग्नः स्यन्दनकेतुः। तत्किमित्युद्धतं प्रलपसि भग्नं भग्नमिति ?

कञ्चुकी—देव ! न किंचित्। किन्तु शमनार्थमस्यानिमित्तस्य विज्ञापयितव्यो देव इति स्वामिभक्तिर्मां मुखरयति।

भानुमती—आर्यपुत्र ! परिहार्यतामेतदनिमित्तं प्रसन्नब्राह्मणवेदानुघोषेन होमेन च। (अज्जउत्त, पडिहरीअदु एदं अणिमित्त पसण्णब्रह्मणवेआणुघोसेण होमेण अ।)।

राजा —(सावज्ञम्) ननु गच्छ। पुरोहितसुमित्राय निवेदय।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः)।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—(सोद्वेगमुपसृत्य) जयतु जयतु महाराजः। महाराज ! एषा खलु जामातुः सिन्धुराजस्य माता दुःशला च प्रतीहारभूमौ तिष्ठति। (जअदु जअदु महाराओ। महाराअ, एसा क्खु जामादुणो सिन्धुराअस्स मादा दुस्सला अ पडिहारभूमीए चिट्ठदि।)

राजा—(किञ्चिद्विचिन्त्यात्मगतम्) किं जयद्रथमाता दुःशला चेति। कञ्चिदभिमन्युवधामर्षितैः पाण्डुपुत्रैर्न किंचिदत्पाहितमाचेष्टितं भवेत्। (प्रकाशम्) गच्छ, प्रवेशय शीघ्रम्।

प्रतीहारी—यन्महाराज आज्ञापयति। (इति निष्क्रान्ता)। (जं महाराओ आणवेदि।)

राजा—प्रबल वायु के वेग से संसार के कम्पित हो जाने पर रथ की ध्वजा टूट गई। तो क्यों इस प्रकार उद्दण्डता के साथ प्रलाप कर रहे हो—तोड़ दिया, तोड़ दिया।

कञ्चुकी -महाराज ! कुछ भी नहीं। किन्तु इस अपशकुन (अनिष्ट) के शमन के लिये महाराज को सूचना दे देनी चाहिये, यह स्वामि-भक्ति ही मुझे ऐसा कहने के लिये प्रेरित कर रही है।

भानुमती—आर्यपुत्र ! (दक्षिणा आदि के प्राप्त किये जाने से) प्रसन्नता को प्राप्त हुये ब्राह्मणों के वेद-पाठ और यज्ञ से इस अपशकुन का निवारण करा दीजिये ।

राजा—(तिरस्कारपूर्वक) अच्छा, जाओ । पुरोहित सुमित्र से निवेदन कर दो ।

कञ्चुकी - जैसी महाराज की आज्ञा । (ऐसा कहकर बाहर चला जाता है ।)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी--(घबराहट के साथ पास में आकर) जय हो, महाराज की जय हो । महाराज! दामाद (जयद्रथ) सिन्धुराज की माता तथा दुःशला द्वारभूमि पर उपस्थित है ।

राजा--(कुछ सोचकर-अपने मन ही मन) क्या ? जयद्रथ की माता और दुःशला ? कहीं अभिमन्यु के वध से क्रुद्ध पाण्डवों के द्वारा कुछ अनर्थ तो नहीं कर दिया गया ? (प्रकट रूप से) जाओ, शीघ्र ही अन्दर लिवा लाओ ।

प्रतीहारी--जैसी महाराज की आज्ञा । (यह कहकर बाहर चली जाती है ।) ।

समास—बलवत्समीरणवेगात=बलवान् प्रबलः यः समीरणस्य–पवनस्य वेगः तस्मात् । स्यन्दनकेतुः=स्यन्दनस्य–रथस्य केतुः–पताका । अभिमन्यु-वधामर्षितैः=अभिमन्योः वधेन अमर्षितः–क्रुद्धैः ।

टिप्पणियाँ— बलवत्समीरणवेगात्=वायु के प्रबल वेग से । स्यन्दन-केतुः=रथ की ध्वजा । प्रलपसि=प्रलाप (बकवास) करते हो-जोर जोर से चिल्लाकर कहते हो । नकिञ्चित्=कोई अपूर्व बात नहीं । शमनार्थम्=शमन (शान्त) करने के लिये । अनिमित्तस्य=अपशकुन की । विज्ञापयितव्यः=निवेदन करना चाहिये । मुखरयति=वाचाल कर रहा है-कहने के लिये प्रेरित कर रहा है । प्रसन्नब्राह्मणवेदानुघोषेण=दक्षिणा, दान आदि के दिये जाने से प्रसन्न हुये ब्राह्मणों के वेद-पाठ से । सिन्धुराजः–जयद्रथ । दुर्योधन की बहिन का पति । दुःशला=दुर्योधन की बहिनी । प्रतीहारभूमौ=

दरवाजे पर। अभिमन्युवधामर्षितैः=अभिमन्यु के वध के कारण क्रोधित। अभिमन्यु अर्जुन का पुत्र था। अत्याहितम्=महान् भय-अनर्थ। "अत्याहितं महद्भयम्"-इत्यमरः ॥ आचेष्टितम्=कर दिया गया।

(ततः प्रविशति संभ्रान्ता जयद्रथमाता दुःशला च।)

(उभे सास्रं दुर्योधनस्य पादयोः पततः।)

माता--परित्रायतां परित्रायतां कुमारः। (परित्ताअदु परित्ताअदु कुमालो।)

(दुःशला रोदिति।)

राजा—(ससंभ्रममुत्थाप्य) अम्ब समाश्वसिहि समाश्वसिहि। किमत्याहितम्? अपिकुशलं समराङ्गणेष्वप्रतिरथस्य जयद्रथस्य?

माता--जात! कुतः कुशलम्।

राजा-कथमिव?

माता--(साशङ्कम्) अद्य खलु पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन गाण्डीविना अनस्तमिते दिवसनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः। (अज्ज क्खु पुत्तवहामरिसुद्दीविदेण गाण्डीविणा अणत्थमिदे दिवहणाहे तस्स वहो पडिण्णादो।

राजा—(सस्मितम्) इदं तदश्रुकारणमम्बाया दुःशलायाश्च। पुत्रशोकादुन्मत्तस्य किरीटिनः प्रलापैरेवमवस्था। अहो। मुग्धत्वमबलानाम्। अम्ब! कृतं विषादेन। वत्से दुःशले! अलमश्रुपातेन। कुतश्चाय तस्य धनञ्जयस्य प्रभावो दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य महाराजजयद्रथस्य विपत्तिमुत्पादयितुम्।

माता---जात! ते हि पुत्रबन्धुवधामर्षोद्दीपितकोपानला अनपेक्षितशरीरा वीराः परिक्रामन्ति। (जाद, दे हि पुत्तबन्धुवहामरिसुद्दीविदकोवाणला अणपेक्खिदसरीरा वीरा परिक्कामन्ति।

राजा--(सोपहासम्) एवमेतत्। सर्वजनप्रसिद्धैवामर्षिता पाण्डवानाम्। पश्य--

हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना दुःशासनेनाज्ञया
पाञ्चाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरिति व्याहृता ।
तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत्पृथानन्दनो
यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत् ॥२५॥

(तदनन्तर घबराई हुई जयद्रथ की माँ तथा दुःशला प्रवेश करती है ।)

(दोनों आँसू भरकर दुर्योधन के पैरों पर पड़ती है ।)

माता—बचाइये, कुमार बचाइये ।

(दुःशला रोती है ।)

राजा—(घबराते हुये, उठाकर) माँ ! धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये । क्या महान् अनर्थ (आ पड़ा) है । अप्रतिम योद्धा जयद्रथ का युद्ध-स्थल में कुशल तो है ?

माता—बेटे ! कुशल कहां से ?

राजा—क्यों, क्या हुआ ?

माता—(आशंका के साथ) आज पुत्र के वध से उत्पन्न क्रोध से भड़के हुये गाण्डीव (नामक धनुष) को धारण करने वाले अर्जुन के द्वारा सूर्यास्त से पूर्व ही उसके वध की प्रतिज्ञा की गई है ।

राजा—(मुस्कराहट के साथ) तो माता जी एवं दुःशला के आंसुओं का यह कारण है । (मारे गये) पुत्र के शोक से पागल हुये अर्जुन के प्रलाप से ऐसी दशा है ? ओह ! स्त्रियों में ! कितना भोलापन हुआ करता है । माँ, दुःख करना व्यर्थ है । प्रिय दुःशले ! आंसू न गिराओ । मुझ दुर्योधन की बांह रूपी अर्गला से रक्षा किये गये महारथी जयद्रथ के लिये विपत्ति पैदा करने का सामर्थ्य भला उस अर्जुन में कहां है ?

माता—बेटे ! पुत्र तथा बन्धुओं के वध को सहन न करने से प्रज्वलित क्रोधाग्नि वाले वे (पाण्डव) वीर लोग (अपने) शरीर की चिन्ता न करते हुये चारों ओर घूम रहे हैं ।

राजा—(उपहास के साथ) यह ऐसा ही है। पाण्डवों की असहनशीलता सब लोगों में प्रसिद्ध ही है। देखो—

अन्वयः—मम आज्ञया दुःशासनेन हस्तावकृष्टविलोलकेशवसना पाञ्चाली राजचक्रपुरतः "गोः गोः" इति व्याहृताः तस्मिन् एव (काले) सः गाण्डिवधरः पृथानन्दनः किं नु न आसीत्? क्षत्रिय वंशजस्य कृतिनः यूनः तत् क्रोधास्पदं किम् न? ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या—मम=राज्ञः दुर्योधनस्य आज्ञया=आदेशेन, दुःशासनेन=मदीयानुजेन, हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना=हस्तेन—करेण आकृष्टमतएव विलोलं चञ्चलं केशाश्च वसनञ्चेति केशवसनम्—केशवस्त्रं यस्याः सा, पाञ्चाली=पाञ्चालराजपुत्री-द्रौपदी, राजचक्रपुरतः=राज्ञाम्-विभिन्नदेशादागतानां नृपाणां चक्र—समूहः तस्य पुरतः—समक्षन्, गोः गोः=गोः अस्मि, गोः अस्मि, गौरिव रक्षणीया अस्मीति भावः, इति=इत्थम्, व्याहृता=व्याहारिता, तस्मिन्=तादृशे विपत्तिपूर्णे इत्यर्थः, एव, (काले=समये), सः=त्वद्भयकारणभूतः, गाण्डिवधरः='गाण्डीव' नाम धनुष्धारी, पृथानन्दनः=पृथायाः—कुन्त्याः नन्दनः—सुतः 'अर्जुन' इतिभावः, किन्नु, न आसीत्?—अपितु—आसीदेवेत्यर्थः। क्षत्रियवंशजस्य=क्षत्रियकुलोत्पन्नस्य, कृतिनः=प्रवीणस्य, यूनः=यौवनशालिनः—युवकस्य, तत्=तद्दृश्यं व्याहरणं वा, क्रोधास्पदम्=क्रोधस्य—कोपस्य आस्पदम्-स्थानम्-कारणमित्यर्थं, किम् न आसीत्? अपितु आसीदेव। किन्तु सः किञ्चिदपि कर्तुं नाशक्नोत्। अतः तस्मात्—अर्जुनात् भीतिः न कर्त्तव्या ॥२५॥

हिन्दी-अनुवाद—मम=मेरी, आज्ञया=आज्ञा से, दुःशासनेन=दुःशासन के द्वारा, हस्तावकृष्टविलोलकेशवसना=हाथ से खींचे गये (अतएव) चञ्चल केश तथा वस्त्र वाली, पाञ्चाली=द्रौपदी, राजचक्रपुरतः=राजसमूह के समक्ष, गौ गोः=गाय (हूँ), गाय हूं, इति=इस प्रकार से, व्याहृता=चिल्लायी थी, तस्मिन्=उस, एव=ही, (काले=समय पर, सः=वह, गाण्डिवधरः=गाण्डीव (नामक धनुष) को धारण करने वाला, पृथानन्दनः=कुन्तीपुत्र अर्जुन, किन्तु क्या, न नहीं, आसीत्=था? अपितु विद्यमान था ही। क्षत्रियवंशजस्य=क्षत्रियकुल में उत्पन्न, कृतिनः=शस्त्रचलाने में दक्ष, यूनः=युवक के

लिये तत्=वह, क्रोधास्पदम्=क्रोध करने का स्थान, किं न=क्या नहीं था ? अपितु था ही ॥२१॥

भावार्थ—जब राजाओं से भरी सभा में मेरी आज्ञा से दुःशासन ने जिस द्रौपदी के केश तथा वस्त्रों को खींचा था और जो "मैं आपकी गाय हूँ, मैं आपकी गाय हूं" इस भांति कहकर चिल्लायी थी तब उस समय क्या वह गाण्डीवधारी अर्जुन वहाँ विद्यमान नहीं था ? अथवा इस युवा, शूरवीर, युद्ध करने में दक्ष क्षत्रिय वीर के लिये यह बात अपमानजनक अथवा क्रोधोत्पादक नहीं थी क्या ? अवश्य थी। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि पाण्डवों में क्रोध तो है ही नहीं, न उसमें कुछ शक्ति ही है। अतः उनसे भय नहीं करना चाहिये ॥२५॥

छन्द—उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है।

समास—**अप्रतिरथस्य**=न विद्यते प्रतिरथः यस्य सः, तस्य। **पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन**=पुत्रस्य (अभिमन्योः) वधेन यः अमर्षः (क्रोधः) तेन उद्दीपितेन-क्रुद्धेन। **गाण्डीविना**=गाण्डीवनामकं धनुः अस्ति अस्य—इति गाण्डीवी, तेन। **दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य**=दुर्योधनस्य बाहुः परिघः (अर्गला) इव—इति दुर्योधनबाहुपरिघः, तेन रक्षितस्य। **अनपेक्षितशरीराः**=अनपेक्षितं (अगणितम्) शरीरं यैस्तादृशाः **हस्तावकृष्टविलोलकेशवसना**=हस्ताभ्यां अवकृष्टानि अतएव विलोलानि (चञ्चलानि) (केशाश्च वसनं च) केशवसनानि यस्याः सा। **राजचक्रपुरतः**=राज्ञां चक्रम् (समूहः) राजचक्रम्, तस्य पुरतः (समक्षम्)। **पृथानन्दनः**=पृथायाः नन्दनः। **क्रोधास्पदम्**=क्रोधस्य आस्पदम्—इति।

टिप्पणियाँ—**परित्रायताम्**=रक्षा कीजिये, बचाइये। **समाश्वसिहि**=धैर्य धारण कीजिये। **समराङ्गणेषु**=युद्ध भूमि में। "अङ्गणं चत्वराजिरे"—इत्यमरः। **अप्रतिरथस्य**=जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी योद्धा नहीं है—अर्थात् अद्वितीय वीर। प्रतिरथः—शत्रु का रथ—भाव है—शत्रुयोद्धा। **जात**=पुत्र। **अमर्षोद्दीपितेन**=क्रोध के कारण उद्दीप्त-प्रज्वलित। **गाण्डीविना**='गाण्डीव' नामक धनुष को धारण करने वाले-अर्जुन ने। **अनस्तमिते**=अस्त न होने

से। दिवसनाथे=सूर्य के। तस्य=उस (जयद्रथ) का। इदं तत्=यह ही है वह। उन्मत्तस्य—पागल-अत्यधिक सन्तप्त। किरीटिनः=अर्जुन के। प्रलापैः=निरर्थक बचनों से "प्रलापोऽनर्थकं वचः" इत्यमरः। कृतम्=बस। मुग्धत्वम्=अज्ञानता। अबलानाम्=स्त्रियों की। विषादेन=दुःख से। धनञ्जयस्य=अर्जुन का। दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य=दुर्योधन की बांह अर्गला से रक्षित। महारथजयद्रथस्य=महारथी जयद्रथ की। "एकोदसहस्राणि यो योधयति धन्विनाम्। शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स विज्ञेयो महारथः।" अर्थात्—दस हजार धनुषधारियों से जो अकेला ही युद्ध किया करता है तथा जो शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या दोनों में ही प्रवीण हुआ करता है, उसे महारथ कहा जाया करता है।। विपत्तिम्=विपत्ति। मृत्यु। अनपेक्षितशरीराः=जिन्हें अपने शरीर की चिन्ता नहीं है ऐसे। परिक्रामन्ति=युद्धस्थल में सर्वत्र विचर रहे हैं। अमर्षित्वम्=असहनशीलता। अवकृष्टम्=खींचे गये। बिलोलम्=चञ्चल, अस्तव्यस्त। चक्रम्=समूह। पुरतः=समक्ष, सामने। व्याहृता=कहा गया। पृथानन्दनः=पृथा अर्थात् कुन्ती का पुत्र। अर्जुन। यूनः=युवक। तरुण। कृतिनः=कुशल, चतुर, दक्ष अर्जुन का। आस्पदम्=स्थान ।।२५।।

माता—असमाप्तप्रतिज्ञाभरस्यात्मवधोऽस्य प्रतिज्ञातः। (असमत्तपडिण्णाभारस्स आप्पवहो से पडिण्णादो।)

राजा—यद्येवमलमानन्दस्थानेऽपि ते विषादेन। ननु वक्तव्यमुत्सन्नः सानुजो युधिष्ठिर इति। अन्यच्च मातः, का शक्तिरस्ति धनञ्जयस्यान्यस्य वा कुरुशत परिवारवर्धितमहिम्नः कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादिमहारथ द्विगुणीकृतनिरावरणविक्रमस्य नामापि ग्रहीतुं ते तनयस्य। अयि सुतपराक्रमानभिज्ञे!

धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति
मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन।
एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं
कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः? ।।२६।।

माता— (जयद्रथ के वधरूपी) प्रतिज्ञा के भार को न समाप्त करने पर उस (अर्जुन) ने अपने वध की प्रतिज्ञा की है। (माता के कहने का अभिप्राय यह है कि अर्जुन की इस प्रतिज्ञा को साधारण नहीं समझना चाहिये)।

राजा—यदि ऐसा है तब तो आपको हर्ष के स्थान पर दुःख नहीं करना चाहिये। तब तो कहना चाहिये कि छोटे भाइयों सहित युधिष्ठिर नष्ट हो गया। इसके अलावा दूसरी बात यह भी है माँ, कि अर्जुन अथवा किसी अन्य की क्या शक्ति है कि जो सौ कौरवों के समूह से बढ़ी हुई महिमा वाले, कृपाचार्य, कर्ण, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा आदि महारथियों के द्वारा जिनका जगद्विदित पराक्रम दूना कर दिया गया है ऐसे तुम्हारे पुत्र (जयद्रथ) का नाम भी ले सके। अरी, अपने पुत्र के पराक्रम से अपरिचित !

अन्वयः—धर्मात्मजं च यमौ प्रति कथा एव न अस्ति। वृकोदरकिरीटभृतोः मध्ये एकः अपि कः विस्फुरितमण्डलचापचक्रम् सिन्धुराजं बलेन अभिषेणयितुं समर्थः ?

संस्कृत-व्याख्या— धर्मात्मजम्=धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् प्रति, च=तथा, यमौ=माद्रीसुतौ नकुलसहदेवौ, प्रति, कथा=कथनम्, एव, न=नहि, अस्ति=वर्त्तते—तेषां अल्पबलत्वादिति भावः। वृकोदरकिरीटभृतोः=भीमार्जुनयोः, मध्ये, एकः=एकाकी, अपि, कः=कतरः इत्यर्थः, (एतादृशः अस्ति यः), विस्फुरितमण्डलचापचक्रम्=विस्फुरितं=चञ्चलं मण्डलम्=मण्डलाकारं—इति विस्फुरितमण्डलम, चापः चक्रमिव—इति चापचक्रम्, विस्फुरितमण्डलं चापचक्रम्—धनुश्चक्रम् यस्य तम्, सिन्धुराजम्=सिन्धुदेशाधिपम्—जयपथमित्यर्थः, बलेन=पराक्रमेण, अभिषेणयितुम्=सेनयाऽभियातुम्—अभियोद्धुं वा, समर्थः=शक्तः। न कोऽपीत्यर्थः। अतः न चिन्ता कार्येति भावः ॥२६॥

हिन्दी-अनुवाद—धर्मात्मजम्=युधिष्ठिर, च=और, यमौ=नकुल और सहदेव के, प्रति=बारे में तो, कथा=कहना, एव=ही, नास्ति=नहीं है। वृकोदरकिरीटभृतोः=भीम तथा अर्जुन के, मध्ये=बीच में, एकः=अकेला अपि=भी, कः=कौन है कि जो, विस्फुरितमण्डलचापचक्रम्=चमकते हुये गोलाकार

धनुर्मण्डल वाले, सिन्धुराजम्=सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ पर, बलेन=बल अर्थात् सेना के साथ अथवा अपने पराक्रम से ही, अभिषेणयितुम्=आक्रमण करने में, समर्थः=समर्थ हो। (अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं है। अतः तुमको जयद्रथ के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिये।) ॥२६॥

भावार्थ—धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा नकुल और सहदेव की तो बात ही कुछ नहीं है अर्थात् इन लोगों में तो इतना बल ही नहीं है कि जो ये तुम्हारे पुत्र पर आक्रमण कर सकें। अब रहे भीम और अर्जुन। इन दोनों में भी अकेला कोई भी तुम्हारे पुत्र के सदृश बलवान् नहीं है कि जो चमकते हुये बड़े वेग के साथ बाणों को चलाने के कारण गोलाकार धनुष वाले तुम्हारे पुत्र सिन्धुराज जयद्रथ पर आक्रमण करने में समर्थ हो ॥२६॥

छन्द—उपर्युक्त पद्य में "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—**असमाप्तप्रतिज्ञाभारस्य**=असमाप्तः प्रतिज्ञायाः (प्रणस्य) भारः येन तस्य। **कुरुशतपरिवारवर्धितमहिम्नः**=कुरूणां शतम्—इति कुरुशतम्, स एव परिवारः—बान्धवः, तेन वर्धितः, महिमा यस्य सः, तस्य। **कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादिमहारथद्विगुणीकृतनिरावरणविक्रमस्य**=कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादिभिः महारथैः द्विगुणीकृतः निरावरणः—आवरणशून्यः जगद्विदित इत्यर्थः, विक्रमः यस्य स, तस्य। **सुतपराक्रमानभिज्ञे**=सुतस्य पराक्रमः—सुतपराक्रमः, सुतपराक्रमस्य अनभिज्ञा—इति तत्सम्बुद्धौ। **विस्फुरितमण्डलचापचक्रम्**=विस्फुरितं मण्डालाकारं चापचक्रं यस्य तम्।

टिप्पणियाँ—**असमाप्तप्रतिज्ञाभारस्य**=अपनी प्रतिज्ञा के भार को न समाप्त करने वाले (अर्जुन) का। **अस्य**=इस (अर्जुन) का। **आत्मवधः**=अपना मरण। **आनन्दस्थाने**=हर्ष के स्थान पर। अर्जुन के वध से तो हर्ष होना ही है। अर्जुन के मारे जाने से युधिष्ठिर आदि सभी भाइयों का मर जाना ही स्वयं ही निश्चित है। अतः यह तो महान् हर्ष का विषय है, शोक या दुःख का नहीं। **विषादेन**=दुःख से। **उत्सन्नः**=विनष्ट। **कुरुशतपरिवारवर्धितमहिम्नः**=सौ कौरवों के समूह से वृद्धि को प्राप्त हुई महिमा वाले। **निरावरणः**=आवरणरहित अर्थात् विश्वविदित। **विक्रमः**=पराक्रम

बल। नामाग्रहीतुम=अन्य (जयद्रथ का) बध आदि तो दूर की बात है। जयद्रथ का नाम लेना भी भीम अथवा अर्जुन आदि के लिये संभव नहीं है। अनभिज्ञे=अपरिचित। विस्फुरितमण्डलचापचक्रम्=चमकते हुये गोलाकार धनुर्मण्डल वाले। बलेन=पराक्रम के साथ, बलपूर्वक अथवा सेना के साथ। अभिषेणयितुम्=आक्रमण करने के लिये ॥२६

भानुमती—आर्यपुत्र ! यद्यप्येव तथापि गुरुकृतप्रतिज्ञाभारो धनञ्जयः स्थानं खलु शङ्कायाः। (अज्जउत्त, जइवि एव्वं तहवि गुरुकिदपडिण्णाभारो धनजओ ट्ठाणं क्खु संकाए।)।

माता—जाते ! साधुकालोचितं त्वया मंत्रितम्। (जादे ! साहु कालोइदं तुए मन्तिदं।)

राजा—आः ! ममापि नाम दुर्योधनस्य शङ्कास्थानं पाण्डवाः। पश्य—

कोदण्डज्याकिणाङ्कैरगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः
शिलष्टाऽन्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः।
रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदमिलतादन्तुराणां बलाना—
माक्रान्ता भ्रातृभिर्मे दिशिदिशिसमरे कोटयः संपतन्ति॥२७॥

भानुमती—आर्यपुत्र ! यद्यपि बात सही है किन्तु फिर भी की गई प्रतिज्ञा के भारी भार वाला अर्जुन शङ्का का कारण हो सकता है। (तात्पर्य यह है कि यद्यपि आपका कथन सत्य है। फिर भी अर्जुन ने जो भीषण प्रतिज्ञा की है, वह शंका का कारण तो है ही।)।

माता—बेटी ! तुमने ठीक (तथा) समयोचित (बात) कही है।

राजा—आह, क्या मुझ दुर्योधन के लिये भी पाण्डवगण शङ्का के स्थान हो सकते हैं ? देखो—

अन्वयः—कोदण्डज्याकिणाङ्कैः अगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः श्लिष्टाऽन्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिं उत्पादयद्भिः मे भ्रातृभिः रेणुग्रस्तार्कभासां

प्रचलिदसिलतादन्तुराणां बलानां कोटयः आक्रान्ताः दिशि दिशि समरे सम्पतन्ति ॥२७॥

संस्कृत-व्याख्या:—कोदण्डज्याकिणाङ्कैः=कोदण्डस्य-धनुषः, ज्यायाः—प्रत्यञ्चायाः, आघातेन यः किणः—घर्षणजन्यचिह्नं, तस्य अंकः-चिह्नं येषां तैः—चापमौर्व्याघातरूढव्रणाङ्कितशरीरैः, अगणितरिपुभिः=न गणिताः न चिन्तिताः रिपवः शत्रवः यैः, तैः—अनाकलितशत्रुभिः, कङ्कटोन्मुक्तदेहैः=कंकटेन=कवचेन उन्मुक्ताः-विरहिताः देहाः—शरीराणि येषां तैः, श्लिष्टाऽन्योन्यातपत्रैः=श्लिष्टानि-परस्परं मिलितानि अन्योन्यानि आतपत्राणि-छत्राणि येषां तैः, सितकमलवनभ्रान्तिम्=सितानां-श्वेतानां कमलानां यत् वनं तस्य भ्रान्तिं-भ्रमं-आशंका वा, उत्पादयद्भिः=जनयद्भिः, मे=मम, भ्रातृभिः=अनुजैः, रेणुग्रस्तार्कभासाम्=रेणुभिः-वेगेन चलनादुत्पतितैः धूलिभिः ग्रस्ता-आच्छादिता अर्कस्य-सूर्यस्य भाः-प्रामा यैः, तेषाम्, प्रचलिदसिलतादन्तुराणाम्=प्रचलन्त्यः—प्रसर्पन्त्यः या असिलताः—खण्डवल्लर्यः, ताभिः दन्तुराणि-निम्नोन्नतानि भीषणानि—इति यावत् तेषाम्, बलानाम्=सैन्यानाम्-चमूनाम् वा, कोटयः=कोटिसंख्याः, आक्रान्ताः= अधिष्ठिताः—सञ्चालिता इति यावत्, सत्यः, दिशिदिशि=प्रतिदिशम्, समरे=संग्रामे, सम्पतन्ति=शत्रुसैन्येषु आक्रमणं कुर्वन्ति ॥२७॥

हिन्दी-अनुवाद—कोदण्डज्याकिणांकैः=धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) की रगड़ से पड़ने वाले गड्ढों (चिह्नों) से युक्त, अगणितरिपुभिः=शत्रुओं की गणना (परवाह) न करने वाले, कंकटोन्मुक्तदेहैः=कवच से रहित शरीर वाले, श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः=आपस में सटे हुये राजच्छत्रों से, सितकमलवनभ्रान्तिम्=श्वेत कमलों के वन की भ्रान्ति (भ्रम) को, उत्पादयद्भिः=उत्पन्न करने वाले, मे=मुझ दुर्योधन के, भ्रातृभिः=भाइयों से युक्त, रेणुग्रस्तार्कभासाम्=वेग से चलने के कारण ऊपर उड़ती हुयी धूलि से सूर्य को भी ढक लेने वालीं, प्रचलिदसिलतादन्तुराणाम्=चलती हुयी खड्गरूपी लताओं से विकराल (भयंकर), बलानाम्=सेनाओं की, कोटयः=कोटि-कोटि संख्यायें, आक्रान्ताः सत्यः=अधिष्ठित अथवा सञ्चालित होकर, समरे=युद्ध में, दिशि-दिशि=

प्रत्येक दिशा में, सम्पतन्ति=(शत्रु सेनाओं पर) टूट रही हैं अर्थात् आक्रमण कर रही हैं ।।२७।।

भावार्थ—(दुर्योधन द्वारा अपने पराक्रम का वर्णन किया जा रहा है—) धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) की चोट से जिनके हाथों में गड्ढे (चिह्न) पड़ गये हैं, जो शत्रुओं की तनिक भी चिन्ता (परवाह) नहीं करते हैं, (और इसी कारण) जिनके शरीर कवचों से रहित हैं, युद्ध-यात्रा के समय आपस में सटे हुये जिनके सफेद छत्र श्वेत-कमलों के वन की भ्रान्ति को उत्पन्न करते हैं ऐसे अत्यधिक बलसम्पन्न मेरे भाइयों से युक्त, वेग से चलने के कारण पैरों से उड़ी हुयी धूलि से सूर्य को भी ढक लेने वाली तथा जो सब प्रकार से तलवार आदि शस्त्रास्त्रों से समन्वित हैं ऐसी मेरी करोड़ों सेनायें (सैनिकगण) युद्ध-क्षेत्र में चारों ओर से टिड्डीदल के सदृश शत्रु-सेनाओं पर टूट रहीं हैं ।।२७।।

छन्द—उक्त पद्य में स्रग्धरा छन्द है ।

समास—गुरुकृतप्रतिज्ञाभारः=गुरुः (महान्) कृतः प्रतिज्ञायाः भारः येन सः । कोदण्डज्याकिणाङ्कैः=कोदण्डस्यधनुषाः ज्यायाः-प्रत्यञ्चायाः आघातेन यः किणः तेनांकः—चिह्नं येषां तैः । अगणितरिपुभिः=न गणिता रिपवः यैस्तैः । कङ्कटोन्मुक्तदेहैः=कंकटेन-कवचेन उन्मुक्ताः-विरहिताः देहाः येषां तैः । श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः=श्लिष्टानि-परस्परं मिलितानि, अन्योन्यानि आतपत्राणि येषां तैः । सितकमलवनभ्रान्तिम्=सितकमलानां यद्वनं, तस्य भ्रान्तिम् । रेणुग्रस्तार्कभासाम्=रेणुभिः ग्रस्ता अर्कस्य भाः यैः तानि, तेषाम् । प्रचलिदसिलतादन्तुराणाम्=प्रचलन्त्यश्च ता असिलताश्च-इति प्रचलिदसिलताः, ताभिः दन्तुराणि—इति-तेषाम् ।

टिप्पणियां—एवम्=ऐसी बात है अथवा यदि यह सही है । गुरुकृतप्रतिज्ञाभारः=की गई महती प्रतिज्ञा के भार से युक्त । स्थानम्=कारण अथवा स्थल । कालोचितम्=समयोचित अथवा अवसरोचित । मन्त्रितम्=कहा है । शङ्कास्थानम्=शंका का स्थल । कोदण्डज्याकिणाङ्कैः=धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) के चढ़ाये जाते समय लगे हुये आघात से जिनके हाथों में

गड्ढे अथवा घावों के चिह्न पड़ गये हैं ऐसे। "मे भ्रातृभिः" का विशेषण है। अगणितरिपुभिः=जो कभी शत्रुओं की चिन्ता (परवाह) नहीं किया करते हैं ऐसे। कंकटोन्मुक्तदेहैः=जिनके शरीर कवचों से रहित हैं ऐसे— "उरश्छदः कंकटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियामित्यमरः।" श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः=परस्पर सटे हुये छत्रों से युक्त। सितकमलवनभ्रान्तिम्=सफेद-कमलों के वन की भ्रान्ति को—उत्पादयद्भिः=उत्पन्न करने वाले। ये सभी "मे भ्रातृभिः" के विशेषण है। रेणुग्रस्तार्कभासाम्=वेग से चलने के कारण जिनके पैरों से उड़ी हुयी धूलि से सूर्य की क्रान्ति भी दब गयी है अथवा धूलि से सूर्य भी अच्छादित हो गया है ऐसी सेनायें। प्रचलिदसिलतादन्तुराणाम्=चलती हुयीं अथवा घुमायी जाती हुयी तलवार रूपी लताओं से विकराल। ये दोनों 'बलानाम्' के विशेषण हैं। बलानाम्=सेनाओं के। कोटयः=करोड़ों। अर्थात् करोड़ों सेनाएँ अथवा करोड़ों सैनिकों से युक्त सेनाएँ। आक्रान्ताः=समन्वित अथवा संचालित। दिशि दिशि=प्रत्येक दिशा में अथवा चारों ओर। समरे=युद्ध में। सम्पतन्ति=टूट पड़ती हैं। अर्थात् शत्रुओं की सेनाओं पर टूट पड़ती हैं अथवा आक्रमण करती हैं।

अपि च भानुमति! विज्ञातपाण्डवप्रभावे! किं त्वमप्येवमाशङ्कसे। पश्य—

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने
दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे।
तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां
ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥२८॥

और भी—पाण्डवों के प्रभाव को जानने वाली हे भानुमति! तुम भी इस प्रकार की आशङ्का करती हो? (अर्थात् पाण्डव जैसे पराक्रमी हैं—वह तो तुम जानती ही हो। फिर तुमको तो किसी भी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिये) देखो—

अन्वयः—यथा दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने, (यथा) च गदया दुर्योधनस्य ऊरुभङ्गे (पाण्डवानां प्रतिज्ञा निष्फलाजाता) तथा (एव) समरमूर्धनि जयद्रथवधे अपि तेजस्विनां पाण्डवानां प्रतिज्ञा ज्ञेया।

संस्कृत-व्याख्या—यथा=यादृशी, दुःशासनस्य=एतन्नाम्नः द्रौपदीकेशवस्त्राकर्षकस्य ममानुजस्य, हृदयक्षतजाम्बुपाने=हृदयस्य क्षतजम्—क्षतात् निसृतं रक्तं एव अम्बु जल तस्य पाने, (यथा) च=यादृशी च, गदया=शस्त्रविशेषण, दुर्योधनस्य=ममेत्यर्थः, ऊरुभङ्गे=ऊर्वोः जङ्घयोः भङ्गे भङ्गविषये (पाण्डवानां प्रतिज्ञा निष्फलाजाता), तथाएव=तेनैव प्रकारेण, समरमूर्धनि=रणशिरसि समराङ्गणे वा, जयद्रथवधे, अपि तेजस्विनाम्=पराक्रमिणाम्, पाण्डवानाम्=पाण्डुपुत्राणाम्, प्रतिज्ञा=प्रणः, ज्ञेया=बोध्या। यथा भीमेन दुःशासनस्य हृदय रक्तपाने तथा ममोरुभङ्गविषये च कृता प्रतिज्ञा निष्फला अस्ति तथैव एषा जयद्रथवधसम्बन्धि प्रतिज्ञा अपि निष्फला एव ज्ञेया—इत्यभिप्रायः ॥२८॥

हिन्दी-अनुवाद—यथा=जैसी, दुःशासन के, हृदयक्षतजाम्बुपाने=वक्षस्थल को विदीर्ण करके उसके निकले हुये रक्त का पान करने के विषय में, यथा च=और जैसी, गदया=गदा के द्वारा, दुर्योधनस्य=मुझ दुर्योधन के ऊरुभङ्गे=जाँघों को तोड़े जाने के सम्बन्ध में (पाण्डवानां=पाण्डवों की, प्रतिज्ञा=प्रतिज्ञा, निष्फला जाता=निष्फल सिद्ध हुयी है।) तथैव=उस ही प्रकार से, समरमूर्धनि=युद्ध भूमि में, जयद्रधवधे=जयद्रथ के वध के बारे में अपि=भी तेजस्विनाम्=पराक्रमी, पाण्डवानाम्=पाण्डवों की (इस), प्रतिज्ञा=प्रतिज्ञा को भी, ज्ञेया=समझना चाहिये ॥२८॥

भावार्थ—जैसे युद्ध में दुःशासन के हृदय को चीरकर रक्तपान करने के सम्बन्ध में तथा मुझ दुर्योधन की जाँघों को गदा द्वारा तोड़ने के सम्बन्ध में की गयी भीम की प्रतिज्ञाएँ निरर्थक सिद्ध हुई हैं। वैसी ही तेजस्वी पाण्डव अर्जुन द्वारा की गई जयद्रथ-वध सम्बन्धी इस प्रतिज्ञा को भी निरर्थक ही समझना चाहिये। दुर्योधन के कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे भीम द्वारा की गयी दोनों प्रतिज्ञायें आज तक पूरी नहीं हो सकी हैं। उसी प्रकार से अर्जुन द्वारा की गई जयद्रथ-वध सम्बन्धी इस प्रतिज्ञा को अपूर्ण ही समझना चाहिये ॥२८॥

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" छन्द है।

समास—हृदयक्षतजाम्बुपाने=हृदयस्य यत्क्षतजं तदेव अम्बुजलं तस्य यत्पानं. तस्मिन्। ऊरुभङ्गे=ऊर्वोः यत् भङ्गः तस्मिन्। जयद्रथवधे=जयद्रथस्य वधः इति जयद्रथवधः तस्मिन्।

टिप्पणियाँ—विज्ञातपाण्डवप्रभावे=ज्ञात है पाण्डवों का प्रभाव जिसको ऐसी हे भानुमति। दुर्योधन भानुमती से यही कह रहा है कि तुम तो यह भलीभाँति जानती हो कि पाण्डवों की कोई भी प्रतिज्ञा आज तक भी पूरी नहीं हुई है। फिर अर्जुन की इस निरर्थक प्रतिज्ञा को भी तुम समझ ही सकती हो। फिर तुम आशंका क्यों करती हो? क्षतजाम्बु=क्षतात्—विदीर्णकर उत्पन्न हुये घाव से, जातम्=निकले हुये रक्त रूपी, अम्बु-जल का। ऊरुभङ्गे=जंघाओं को तोड़ने में। तेजस्विनाम्=पराक्रमशील। यह शब्द यहाँ व्यङ्ग्यार्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः दुर्योधन का कहने का अभिप्राय यही होगा कि—तेज से रहित—तेजःशून्य। समरमूर्धनि=युद्धस्थल में ॥२८॥

कः कोऽत्र भो। जैत्रं मे रथमुपकल्पय तावत्। यावदहमपि तस्य प्रगल्भपाण्डवस्य जयद्रथपरिरक्षणेनैव मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितमशस्त्रपूतं मरणमुपदिशामि।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—देव !

उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः
प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः।
सज्जोऽयं नियमितवल्गिताकुलाश्वः
शत्रूणां क्षपितमनोरथो रथस्ते ॥२९॥

अरे यहाँ कोई है क्या? शीघ्र ही मेरे विजयी रथ को तैयार करो। अब मैं भी केवल जयद्रथ की रक्षामात्र से उस धृष्ट पाण्डव की झूठी प्रतिज्ञा से उत्पन्न हुयी लज्जा से किये गये (अतएव) शस्त्र के (प्रहार) से पवित्र न हुये मरण का उपदेश देता हूँ।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज !

अन्वयः—उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः नियमितवल्गिताकुलाश्वः शत्रूणां क्षपितमनोरथः ते अयं रथः सज्जः (अस्ति)।

संस्कृत-व्याख्या—उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः=उद्घातैः—आघातैः क्वणिताः—शब्दायमानाः विलोलाः चञ्चलाः हेम्नः—सुवर्णस्य घण्टाः—क्षुद्रघण्टिकाः यत्रासौ तथाभूतः—शब्दायमानस्वर्णकिंकिणीविभूषितः—इत्यर्थः, प्रालम्बद्विगुणित—चामरप्रहासः=प्रालम्बो—लम्बितो हारः तेन द्विगुणितः-द्विगुणीकृतः—वृद्धिं प्रापितः—इत्यर्थः, चामराणां प्रकीर्णकानाम् प्रहासः—धवलिमा यत्रासौ तथाभूतः (प्रालम्बस्य-लम्बमानस्य द्विगुणितस्य—द्विधाबद्धस्य चामरस्य प्रकीर्णकस्य प्रहासः प्रकाशः यत्रासौ तथाभूतः—'उभयतोबद्धचामरशोभितः—इत्यर्थ—इति केचित्।), नियमितवल्गिताकुलाश्वः=नियमिताः नियन्त्रिताः अतएव वल्गितेन—गतिविशेषेण आकुलाः=अचिचञ्चलाः, अश्वाः हयाः, यत्रासौ तथाभूतः, शत्रूणाम्=रिपूणाम्, क्षपितमनोरथः=क्षपिताः—विध्वंसिताः अभिलाषाः येन तादृशः, ते=तव, अयम्=एषः, रथः=स्यन्दनम् सज्जः=सन्नद्धः, अस्तीति शेषः।

हिन्दी-अनुवाद—उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः=चलते समय के आघात के कारण शब्द करती हुयी चंचल सुवर्ण की घण्टियों से युक्त, प्रालम्बद्विगुणित चामरप्रहासः=दोनों ओर लटकती हुई पुष्पों की मालाओं से दुगुने किये गये चामरों की धवलिमा से युक्त अथवा दोनों ओर झले जाते हुये चामरों (चँवरों) से सुशोभित, नियमितवल्गिताकुलाश्वः=गति के नियन्त्रित होने के कारण चंचलता युक्त घोड़ों वाला, शत्रूणाम्=शत्रुओं की, क्षपितमनोरथः=इच्छाओं को निष्फल कर देने वाला, ते=तुम्हारा (आपका), अयम्=यह, रथः=रथ, सज्जः=तैयार (अस्ति=है।)।

भावार्थ—जिस (रथ) में चलते समय के आघात से स्वर्ण निर्मित घण्टियां शब्द कर रही हैं, जो दोनों ओर डुलाये जाते हुये चामरों से द्विगुणित शोभा को प्राप्त कर रहा है, जिसमें जुते हुये अति तीव्र वेगगामी घोड़े लगाम

के खींचने से मुख के ऊपर करके तथा आगे की ओर अपने पिछले आधे शरीर को सङ्कुचित करके अति तीव्र गति से गमन करने के लिये व्याकुल हो रहे है तथा जो शत्रुओ की अभिलाषाओं को नष्ट करने में प्रसिद्ध हैं ऐसा यह आप का विजयरथ तैयार है।

छन्द—उक्त पद्य में "प्रहर्षिणी" नामक छन्द है। लक्षण—"त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्"।

राजा—देवि! प्रविश त्वमभ्यन्तरमेव। ("यावदहमपितस्य प्रगल्भपाण्डवस्य" इत्यादि पठन् परिक्रामति)।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

राजा—महारानी! तुम अन्दर जाओ। (जब तक मैं भी उस धृष्ट पाण्डव के" इत्यादि पढ़ता हुआ घूमता है।)।

(इसके पश्चात् सभी निकल जाते हैं।)

समासः—**मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितम्**=मिथ्या—विफलीकृता या प्रतिज्ञा तया जनितं यत् वैलक्ष्यं (लज्जा) तेन सम्पादितम्। **अशस्त्रपूतम्**=शस्त्रेण पूतम्—शस्त्रपूतम्, न शस्त्रपूतम्—इति अशस्त्रपूतम्। **उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः**=उद्घातैः क्वणिताः विलोलाः हेमघण्टाः यस्य सः। **प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहास**=प्रालम्बेन द्विगुणितः चामरस्य प्रहासः (धवलिमा) यत्र सः **अथवा** प्रालम्बं द्विगुणितं द्विपार्श्वे द्विधाबद्धं यच्चामरं तस्य प्रहासः (प्रकाशः) यत्र तादृशः। **नियमितवल्गिताकुलाश्वः**=नियमिता अतएव वल्गितेनाकुला अश्वाः यस्य सः। **अथवा**—नियमितं वल्गितं येषां तथाभूता अतएव आकुला अश्वाः यस्य स। **क्षपितमनोरथाः**=क्षपिताः मनोरथाः येन स ॥२६॥

टिप्पणियाँ—**अत्र**=इस द्वार भूमि पर। **जैत्रम्**=विजयी। **उपकल्पय**=तैयार करो। **मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितम्**=झूठी प्रतिज्ञा के कारण उत्पन्न होने वाली लज्जा से किये गये। **अशस्त्रपूतम्**=शस्त्र द्वारा पवित्र न

किये गये। दुर्योधन के कहने का अभिप्राय यह है कि मेरे रथ को शीघ्र तैयार कर दो ताकि मैं भी उस अधिक डींग हाँकने वाले पाण्डुपुत्र अर्जुन की प्रतिज्ञा को जयद्रथ की रक्षा कर असत्य सिद्ध कर दूं। परिणाम स्वरूप अपनी प्रतिज्ञा के असत्य हो जाने से लज्जित होकर वह अर्जुन विना शस्त्र के ही स्वयं ही प्राण त्याग देगा। क्षत्रिय का युद्ध में शस्त्र द्वारा मरण होना सबसे अधिक पवित्र माना गया है। शस्त्र के प्रहार से मारे गये वीर क्षत्रिय को स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है। यही उसके मरण का पूतत्व है। अर्जुन तो विना शस्त्र के ही मर जायगा तो उसके अशस्त्रपूत होने से उसे स्वर्ग की भी प्राप्ति न होगी। क्षत्रिय वीर के लिये इस प्रकार की मृत्यु का प्राप्त किया जाना अत्यन्त लज्जाजनक हुआ करता है। उपदिशामि=उपदेश देता हूं।

उद्धातक्वणितविलोलहेमघण्टः=यह रथ का विशेषण है। चलते समय आघातों के कारण (क्वणित-) शब्दायमान अथवा बजती हुयी (विलोल-) चञ्चल (हेमघण्टः-) स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घटियों से युक्त। **प्रहासः**= धवलिमा अथवा प्रकाश। **नियमितवल्गिताकुलाश्वः**=(वल्गित-) गति के (नियमित-) नियन्त्रित हो जाने के कारण व्याकुल घोड़ों से युक्त—इस प्रकार का रथ। **क्षपितमनोरथाः**=अभिलाषाओं-(शत्रुओं की इच्छाओं को) को नष्ट कर देने वाला-रथ। सज्जः=तय्यार है ॥२९॥

"इति निष्क्रान्ताः सर्वे"—के द्वारा सभी पात्रों का रंगमञ्च से चला जाना-अंकसमाप्ति का सूचक हुआ करता है॥

॥ इस प्रकार "वेणीसंहार" नाटक का द्वितीय अङ्क समाप्त हुआ ॥

॥ इत्याचार्य सुरेन्द्रदेवशास्त्रिकृताया वेणीसंहारस्य

"आशुबोधिनी" व्याख्यायां

द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ॥

———

तृतीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति विकृतवेषा राक्षसी ।]

राक्षसी—[विकृतं विहस्य । सपरितोषम्]

हतमानुषमांसभारके कुम्भसहस्रवसाभिः संचिते ।
अनिशं च पिबामि शोणितं वर्षशतं समरो भवतु ॥१॥

[हदमाणुशमंशभालए कुम्भशहश्शवशाहिं शंचिए ।
अणिशं अ पिवामि शोणिअं वलिशशदं शमले हुवीअदु॥१॥]

(नृत्यन्ती सपरितोषम्) यदि सिन्धुराजवधदिवस इव दिवसे-दिवसे समरकर्म प्रतिपद्यतेऽर्जुनस्ततः पर्याप्तभरितकोष्ठागारं मांस शोणितैर्मे गृहं भविष्यति । (परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य) अथ क्व नु खलु रुधिरप्रियो भविष्यति । तद्यावदेतस्मिन् समरे प्रियभर्तारं रुधिरप्रियमन्वेषयामि । (परिक्रम्य) भवतु, शब्दायिष्ये तावत् । अरे रुधिरप्रिय ! रुधिरप्रिय ! इत एहि, इत एहि ।

जइ शिन्धुलाअवहदिअहे विअ दिअहे दिअहे शमलकम्म पडिवज्जइ अज्जुण तदो पज्जत्तभलिदकोट्ठागाले मंशशोणिएहिं मे गेहे हुवीअदि । अह कहिं णु क्खु लुहिलप्पिए हुवीअदि । ता जाव इमशिंश शमले पिअभत्तालं लुहिलप्पिअं अण्णेशामि । होदु । शद्दावइश्शं दाव । अले लुहिलप्पिआ लुहिलप्पआ इदो एहि इदो एहि ।)

(तत्पश्चात् वीभत्स वेष वाली राक्षसी प्रवेश करती है)

राक्षसी—(भयंकर हँसी हँसकर । पूर्ण सन्तोष के साथ)

अन्वयः—हतमानुषमांसभारके कुम्भसहस्रवसाभिः संचिते अनिशं शोणितं पिबामि । समरः वर्षशतं भवतु ।

संस्कृत-व्याख्या—हतमानुषमांसभारके=हताः मारिताः ये मानुषाः नराः तेषां मांसस्य भारः–विशालः समवायः–एव भारकः तस्मिन्, कुम्भसहस्र-

साभिः=कुम्भानां घटानां सहस्रं इति कुम्भसहस्रम् तेन परिच्छिन्नाभिः वसाभिः सह, संचिते सति, अनिशम्=अहोरात्रम्–निरन्तरं वा, शोणितम्=रुधिरम् पिबामि=पानं करोमि, समरः=युद्धम्, वर्षशतम्=शतवर्षपर्यन्तम्,भवतु=चलतु। अनेन प्रतीयतेयत् जयद्रथवधदिवसे भीषणः सङ्ग्रामः सञ्जातः ॥१॥

हिन्दी-अनुवाद—हतमानुषमांसभारके=(युद्ध में) मारे गये मानवों के मांस के ढेर के, कुम्भसहस्रवसाभिः=हजारों घड़े चर्बी के साथ, संचिते सति=एकत्रित हो जाने पर मैं, अनिशम्=रातदिन, शोणितम्=रक्त, पिबामि=पी रही हूँ। यह, समर=युद्ध, वर्षशतम्=सौवर्षों तक, भवतु=चलता रहे। इस विवरण से प्रतीत होता है कि जयद्रथवध के दिन अतिभीषण युद्ध हुआ होगा ॥१॥

भावार्थ—युद्ध में मारे गये मनुष्यों के मांस के ढेरों से हजारों घड़े चर्बी के भर लिये हैं। रातदिन (निरन्तर) रक्तपान कर रही हूँ। भगवान् करे कि यह युद्ध सौवर्षों तक चलता रहे।

(नृत्य करती हुई, सन्तोष के साथ) यदि सिन्धुराज (जयद्रथ) के वध के दिन के समान ही प्रतिदिन अर्जुन संग्राम करते रहें तो मेरा घर मांस और रक्त से पूरे भरे हुये कमरों वाला हो जायेगा। (घूमकर तथा चारों ओर देखकर) न जाने रुधिरप्रिय कहाँ होगा ? तो इस युद्ध-क्षेत्र में अपने प्रिय-पति रुधिरप्रिय का पता लगाऊँ। (घूमकर) अच्छा, पुकारती हूँ। अरे। रुधिरप्रिय ! रुधिरप्रिय ! इधर आओ, इधर आओ।

टिप्पणियाँ—विकृतवेषा=राक्षसोचित बीभत्स तथा भीषण वेष को धारण किये हुये। शब्दायिष्ये=पुकारूँगी। पुकारती हूँ। हतमानुषमांस-भारके=युद्ध क्षेत्र में मारे गये हुये मनुष्यों के मांस के ढेरों से। कुम्भसह-स्रवसाभिः=चर्बी के हजारों घड़े। सञ्चिते=सञ्चित अथवा इकट्ठा हो जाने पर। अनिशम्=निरन्तर, रातदिन। वर्षशतम्=सौवर्ष पर्यन्त ॥१॥

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः।)

राक्षस—(श्रमं नाटयन्)

प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत ।
तदेष मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्येत् ॥२॥
[पच्चग्गहदाणं मंशए जइ उण्हे लुहिले अ लब्भइ ।
ता एशो मह पलिश्शमे क्खणमेत्तं एव्व लहुणश्शइ ॥२॥]

(तत्पश्चात् उस ही प्रकार का राक्षस प्रवेश करता है ।)

राक्षस—(थकान का अभिनय करता हुआ)

अन्वयः—यदि प्रत्यग्रहतानां मांसं च उष्णं रुधिरं लभ्येत, तदा मम एषः परिश्रमः क्षणमात्रं एव लघु नश्येत् ।

संस्कृत व्याख्या—यदि=चेत्, प्रत्यग्रहतानाम्=प्रत्यग्रम्-सद्यः हतानाम्-मारितानाम्, मांसम्=पिशितम्, च, उष्णम्=ईषदुष्णम्, रुधिरम्=रक्तम्, लभ्येत=प्राप्येत, तदा, मम=रुधिरप्रियस्य, एषः=अयम्, परिश्रमः=खेदः, क्षणमात्रम्=झटिति, एव, लघु=क्षिप्रं-द्राक्, नश्येत्=क्षयमियात् ॥२॥

हिन्दी-अनुवाद—यदि=यदि, प्रत्यग्रहतानाम्=तुरन्त ही मारे गये लोगों का, मांसम्=मांस, च=और, उष्णम्=गर्मागर्म, रुधिरम्=रक्त, लभ्येत=(पीने को) प्राप्त हो जाय, तदा=तब तो, मम=मेरी, एषः=यह, परिश्रमः=थकावट, क्षणमात्रम्=क्षणमात्र में, एव-ही, लघु=तुरन्त, नश्येत्=नष्ट हो जाय ॥२॥

भावार्थ—यदि तत्काल ही मरे हुये मनुष्यों का गर्मागर्म रक्त पीने को मिल जाय तो मेरी इधर-उधर घूमने के कारण उत्पन्न हुई थकान तुरन्त ही दूर हो जाय ।

टिप्पणियाँ—तथाविधः=उसी प्रकार के-अर्थात्-भीषण वेष को ही धारण किये हुये । श्रमम्=थकान, थकावट । प्रत्यग्रहतानाम्=जिन्हें तुरन्त ही मार दिया गया है ऐसे व्यक्तियों का । उष्णम्=हल्का गरम अथवा गर्मागर्म । लघु=तुरन्त ही ॥२॥

(राक्षसी पुनर्व्याहरति ।)

राक्षसः—(आकर्ण्य) अरे कैषा मां शब्दायते । (विलोक्य) कथं प्रिया मे वसागन्धा । (उपसृत्य) वसागन्धे ! कस्मान्मां शब्दायसे ?

(अले के एशे मं शद्दावेदि। कहं पिआ मे वसागन्धा। वशागन्धे कीश मं शद्दा वेशि ?)।

रुधिरासवपानमत्तिके रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके।
शब्दायसे कस्मान्मां प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयसे॥३॥

(लुहिलाशवपाणमत्तिए लणहिण्डन्तखलन्तगत्तिए।
शद्दाअशि कीश मं पिए पुलिवशशहश्श हदं शुणीअदि॥३॥)

(राक्षसी पुनः पुकारती है)

राक्षस—(सुनकर) अरे, यह कौन मुझे पुकार रही है ? (देखकर) क्या मेरी प्रिया वसागन्धा है ? (समीप जाकर) वसागन्धा ! मुझे क्यों पुकार रही हो ?

अन्वयः—रुधिरासवपानमत्तिके ! रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके ! हे प्रिये ! मां कस्मात् शब्दायसि ? पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते।

संस्कृत-व्याख्या—रुधिरासवपानमत्तिके=रुधिरमेव-रक्तमेव आसवः-मद्यम् तस्य पाने न मत्ता-उन्मत्ता-एव मत्तिका तत्सम्बुद्धौ, रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके=रणे-युद्धभूमौ हिण्डनेन-इतस्ततः सञ्चरणेन स्खलन्ति-श्लथानीत्यर्थः गात्राणि-देहावयवाः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, हे प्रिये !, माम्=रुधिरप्रियम्, कस्मात्=केन हेतुना, शब्दायसे=आह्वयसि ? पुरुषसहस्रम्=सहस्रसंख्याकमनुष्याः, (युद्धे) हतम्, श्रूयते=आकर्ण्यते।

हिन्दी-अनुवाद—रुधिरासवपानमत्तिके ! (युद्ध-स्थल में मारे गये लोगों के) रक्तरूपी मदिरा का पान करने से मदमस्त !, रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके=रणभूमि में विचरण करने के कारण शिथिल अङ्गोंवाली !, हे प्रिये ! =हे प्रियतमे, माम्=मुझको, कस्मात्=किसलिये, शब्दायसे=बुला रही हो ? पुरुषसहस्रम्=हजारों पुरुष, हतम्=मारे गये, श्रूयते=सुने जाते हैं॥३॥

भावार्थ—अरी, रक्तपान कर मस्त हुई, युद्धस्थल में भ्रमण करने के कारण थकी हुई हे प्रियतमे ! मुझे क्यों बुला रही हो ? आज युद्ध में हजारों व्यक्ति मारे गये हैं, ऐसा सुना जाता है।

टिप्पणियां—व्याहरति=पुकारती है, बुलाती है। शब्दायसे=बुला रही हो। मत्तिके=उन्मत्त, मदमस्त। रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके=युद्धभूमि में विचरण करने के कारण थके हुये अङ्गों से युक्त। हिण्डन-घूमना-विचरण करना। पुरुषसहस्रम्=पुरुषाणां सहस्रम्-इति-पुरुषसहस्रम्=हजारों पुरुष। अथवा हजारपुरुषों का समूह ॥३॥

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, इदं खलु मया तव कारणात्प्रत्यग्रहतस्य कस्यापि राजर्षेः प्रभूतवसास्नेहचिक्कणं कोष्णं नवरुधिरमग्रमांसं चानीतम्। तत्पिबैतत्। (अले! लुहिलप्पिआ एदं क्खु मए तु कालणादो पच्चग्गहदश्श कश्शवि लाएशिणो प्पहूदवशाशिणेहचिक्कणं कोण्हं णवलुहिलं अग्गमंशं अ आणीदम्। ता पिवाहि णम्।)।

राक्षसः—(सपरितोषम्) साधु वसागन्धे! साधु। शोभनं त्वया कृतम्। बलवदस्मि पिपासितः। तदुपनय (शाहु वशागन्धे शाहु। शोहणं तु ए किदम्। बलिअह्मि पिवाशिए। ता उवणेहि।)।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, ईदृशे हतनरगजतुरङ्गमशोणितवसा-समुद्रदुःसंचरे-समराङ्गणे परिभ्रमंस्त्वं पिपासितोऽसीत्याश्चर्यमाश्चर्यम। (अले लुहिलप्पिआ, एदिशे हदणलगअतुलङ्गमशोणिअवशा-शमुद्दुश्शंचलेशमलङ्गणे पडिब्भमन्त तुमं पिवाशिएशि त्ति अच्चलिअं अच्चलिअम्।

राक्षसः—अयि सुस्थिते, ननु पुत्रशोकसंतप्त हृदयां स्वामिनीं हिडिम्बादेवीं प्रेक्षितुं गतोऽस्मि (अइ शुत्थिदे, णं पुत्तशोअशन्तत्ताहिअअं शामिणीं हिडिम्बादेवीं पेक्खिदुं गदह्मि।)।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्कच-शोको नोपशाम्यति। (लुहिलप्पिआ, अज्जवि शामिणीए हिडिम्बा-देवीए घडुक्कअशोए ण उपशमइ।)।

राक्षसः—वसागन्धे। कुतोऽस्याः उपशमः? केवलमभिमन्युवध-शोकसमानदुःखया सुभद्रादेव्या याज्ञसेन्या च कथं कथमपि समाश्वास्ते।

(वशागन्धे, कुदो शे उवशमे । केवलं अहिमण्णुवहशोअशमाणदुक्खाए शुभद्दादेवीए जण्णशेणीए अ कध कधं वि शमाश्शाशीअदि ।) ।

राक्षसी—अरे, रुधिरप्रिय ! यह मैं तुम्हारे लिये तुरन्त मारे गये हुये किसी राजर्षि के अत्यधिक चर्बी की चिकनाई से चिकने हलके गरम ताजे रक्त तथा श्रेष्ठ मांस को लाई हूँ । तो इसे पी लो ।

राक्षस – (सन्तोष के साथ) वाह, वसागन्धे ! वाह ! तूने बड़ा अच्छा किया । मैं अत्यधिक प्यासा हूँ । तो लाओ ।

राक्षसी—अरे रुधिर प्रिय ! मारे गये हुये मनुष्य, हाथियों तथा घोड़ों के रक्त तथा चर्बी के समुद्र (अधिकता) के कारण दुर्गम रणभूमि में घूमते हुये होने पर भी तुम प्यासे हो, यह आश्चर्य है, आश्चर्य है ।

राक्षस - अरी निश्चिन्त बैठी हुई, मैं तो पुत्र के शोक से व्याकुल हृदय-वाली स्वामिनी हिडिम्बादेवी को देखने के लिये गया था ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, क्या आज तक भी स्वामिनी हिडिम्बादेवी का (अपने पुत्र) घटोत्कच की मृत्यु से उत्पन्न शोक शान्त नहीं हो रहा है ?

राक्षस - वसागन्धे ! इसकी शान्ति कहाँ से होगी ? अभिमन्यु के वध के शोक के कारण समान दुःख वाली महारानी सुभद्रा तथा द्रौपदी के द्वारा किसी-प्रकार केवल सान्त्वना ही दी जा रही है ।

समास—हतनरगजतुरङ्गमशोणितवसासमुद्रदुःसंचरे=हतानां नरग-जतुरङ्गमाणां शोणितवसयोः समुद्रेण (आधिक्येनेति–अभिप्रायः) दुःसञ्चरे (दुर्गमे) । पुत्रशोकसंतप्तहृदयाम्=पुत्रस्य शोकेन सन्तप्तम् हृदयं यस्याः सा ताम् । अभिमन्युवधशोकसमानदुःखया=अभिमन्योः वधेन यः शोकः तेन समानं दुःखं यस्याः सा तया ।

टिप्पणियाँ—तवकारणात्=तुम्हारे लिये । प्रत्यग्रहतस्य=तुरन्त ही मारे गये । प्रभूतम्=अत्यधिक । कोष्णम्=हलका-गरम । अग्रमांसम्=बुक्कामांस–"बुक्काग्रमांसम्"–इत्यमरः । हृदय का मांस–कलेजी । अथवा-श्रेष्ठ मांस । हतनरगजतुरङ्गमशोणितवसासमुद्रदुःसंचरे=युद्ध में मारे गये

पुरुषों, हाथियों और घोड़ों के रक्त और चर्वी के समुद्र अर्थात् आधिक्य के कारण कठिनता से विचरण किये जाने योग्य। **हिडिम्बादेव्या घटोत्कचशोकः**=हिडिम्बा नाम की एक बलवान्, बुद्धिमती तथा विदुषी राक्षसी थी। भीम ने इससे विवाह कर लिया था। इस राक्षसी से भीम को एक पुत्र की प्राप्ति हुई थी जिसका नाम घटोत्कच था। इसका वध कर्ण द्वारा किया गया था। श्रीकृष्ण ने एक ऐसा कुचक्र रचा था कि जिससे प्रभावित होकर युद्ध में कर्ण द्वारा अपनी अमोघ तथा केवल एकबार ही चलने वाली शक्ति का प्रयोग इस घटोत्कच पर किया गया था। **अभिमन्युवधशोकसमानदुःखया**=अर्जुनपुत्र 'अभिमन्यु' के वध से उत्पन्न शोक के समान ही-दुःख से दुःखी। **उपशाम्यति**=शान्त होता है। **उपशमः**=शान्ति। **सुभद्रावती**=अभिमन्यु की माता, अर्जुन की पत्नी। **याज्ञसेन्या**=द्रौपदी के द्वारा। **कथंकथमपि**=अत्यधिक प्रयत्न से। **समाश्वास्यते**=सान्त्वना प्रदान की जाती है।

राक्षसी—रुधिरप्रिय! गृहाणैतद्धस्तिशिरःकपालसंचितमग्रमांसोपदंशम् पिबशोणितासवम्। लुहिलप्पिआ, गेण्ह एदं हत्थिशिलक्कवालशंचिअं अग्गमंशोवदंशम्। पिवाहि शोणिआशवम्)।

राक्षसः—(तथा कृत्वा) वसागन्धे! अथ कियत्प्रभूतं त्वया संचितं रुधिरमग्रमांसं च। (वसागन्धे, अह किअप्पहूदं तुए शंचिअं लुहिलं अग्गमंशं अ।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, पूर्वसंचितं जानास्येव त्वम्। नवसंचितं शृणु तावत्। भगदत्तशोणितकुम्भः सिन्धुराजवसाकुम्भौ द्वौ द्रुपदमत्स्याधिपभूरिश्रवः—सोमदत्तबाल्हीकप्रमुखाणां नरेन्द्राणामन्येषामपि प्राकृतपुरुषाणां रुधिरवसामांसस्य घटा अपिनद्धमुखाः सहस्रसंख्याः सन्ति मे गेहे।

(अले लुहिलप्पिआ, पुव्वशंचिअं जाणाशि जेव्व तुमं। णवशंचिअं शिणु दाव। भअदत्तशोणिअकुम्भे शिन्धुलाअवशाकुम्भे दुवे दुवदमच्छाहिवभूलिश्शवशोमदत्तवल्हीअप्पमुहाणं णलिन्दाणं अण्णाणं

विप्पाकिदपुलिशाणं लुहिलवशामंशश्श घडा अपिणद्धमुहा शहश्शशङ्खा शन्ति मे गेहे)।

राक्षसः—(सपरितोषमालिङ्ग्य) साधु सुगृहिणी साधु। अनेन ते सुगृहिणीत्वेनाद्य पुनः स्वामिन्याः हिडिम्बादेव्याः संविधानेन च प्रनष्टं मे जन्मदारिद्रचम्।

(शाहु गुग्घलिणीए शाहु। इमिणा दे शुग्घलिणित्तणेण अज्ज उण शामिणीए हिडिम्बादेवीए शंविहाणेण अ प्पणट्टं मे जम्मदालिद्दम्)।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, कीदृशं स्वामिन्या संविधानं कृतम्? (लुहिलप्पिआ, केशिशे शामिणीए शंविहाणए किदे ?)।

राक्षसः—वसागन्धे! अद्य खल्वहं स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या सबहुमानं शब्दाय्याऽऽज्ञप्तः—यथा रुधिरप्रिय, अद्यप्रभृति त्वया आर्यपुत्रस्य भीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठं समरे आहिण्डितव्यमिति। तत्तस्यानुमार्गगामिनो हतमानुषशोणितनदीदर्शनप्रनष्टबुभुक्षापिपासस्येहैव मे स्वर्गलोको भविष्यति। त्वमपि विस्रब्धा भूत्वा रुधिरवसाभिः कुम्भसहस्रं संचिनु। (वशागन्धे, अज्ज क्खु हगे शामिणिए हिडिम्बादेवीए शबहुमाणं शद्दाविअ आणत्तो जह लुहिलप्पिआ अजप्पहुदि तुए अज्जउत्तस्स भीमशेणश्श पिट्ठदोणुपिट्ठं शमले आहिण्डिदव्वं त्ति। ता तश्श अनुमग्गगामिणो हअमाणुशशोणिअणइदंशणप्पणट्ठबुभुक्खापिवाशश्श इह एव्व मे शग्गलोओ हुवीअदि। तुमं वि वीशद्धा भविअ लुहिलवशाहिं कुम्भशहस्सं शंचेहि)।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, हाथी के शिर के कपाल में रखे हुये श्रेष्ठमांस रूपी इस व्यंजन (स्वादिष्ट भोजन) को ग्रहण करो। रक्तरूपी मदिरा का पान करो।

राक्षस—(वैसा ही करके) वसागन्धे! अच्छा, तुमने कितनी अधिक मात्रा में रक्त तथा श्रेष्ठ मांस एकत्रित कर लिया है?

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, पहले के एकत्रित किये गये को तो तुम जानते ही हो। नये एकत्रित किये गये (रक्त, मांस) के बारे में सुनो। भगदत्त के

रक्त का एकघड़ा, सिन्धुराज (जयद्रथ) की चर्बी के दो घड़े तथा द्रुपद और मत्स्य देश के राजा भूरिश्रवा, सोमदत्त, वाल्हीक प्रमुख राजाओं और दूसरे साधारण पुरुषों के रक्त, चर्बी और मांस के बन्द किये गये मुख वाले एक हजार घोड़े मेरे घर में हैं।

राक्षस—(अतिसन्तोष के साथ आलिङ्गन करके) ठीक, चतुरगृहिणी, ठीक। तुम्हारे उत्तमगृहिणी होने से और हिडिम्बा देवी की व्यवस्था से आज मेरी जीवन भर की दरिद्रता दूर हो गई।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, स्वामिनी ने कैसी व्यवस्था की है ?

राक्षस—वसगन्धे ! आज मुझे स्वामिनी हिडिम्बादेवी के द्वारा आदर के साथ बुलाकर आदेश दिया गया है कि—'रुधिरप्रिय, आज से तुम रणक्षेत्र में आर्यपुत्र भीमसेन के पीछे-पीछे घूमना'। अतः उनके पीछे-पीछे चलने से, मारे गये पुरुषों के रक्त की नदी के दर्शन से नष्ट हुई भूख-प्यास वाले मेरे लिये यहीं (इसी पृथ्वी पर) स्वर्गलोक हो जायेगा। तुम भी निश्चिन्त होकर रक्त और चर्बी से भरे हजारों घड़े एकत्रित कर लो।

समास—हस्तिशिरःकपालसञ्चितम्=हस्तिनः शिरसः (मस्तकस्य) कपाले सञ्चितम्। अग्रमांसोपदंशम्=अग्रमांसं एव उपदंशम् (व्यञ्जनम्) इति।

टिप्पणियाँ—सिन्धुराजः=दुर्योधन की बहिन का पति (जयद्रथ)। मत्स्याधिपः=मत्स्यदेश का राजाविराट। प्राकृतपुरुषाः=सामान्य-क्षत्रिय। संविधानम्=कार्य में लगाना। विस्रब्धा=विश्वस्त।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! किं निमित्तं कुमारभीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठमाहिण्ड्यते ? (लुहिलप्पिआ, किं णिमित्तं कुमालभीशंणश्श पिट्ठदोणुपिट्ठं आहिण्डीअदि।)

राक्षसः—वसागन्धे ! तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुःशासनस्य रुधिरं पातुं प्रतिज्ञातम्। तच्चास्माभीराक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यमिति। (वशागन्धे, तेण हि शामिणा विओदलेण दुश्शाशणश्श लुहिलं पादुं पडिण्णादम्। तं च अह्मेहिं लक्खशेहिं अणुप्पविशिअ पादव्वंत्ति)।

राक्षसी—(सहर्षम्) साधु स्वामिनि, साधु। सुसंविधानो मे भर्त्ता त्वयाकृतः। (साहु शामिणोए शाहु। शुशंविहाणे मे भत्ता तुए किदे।

(नेपथ्ये महान् कलकलः उभावाकर्णयतः)

राक्षसी—(आकर्ण्य ससंभ्रमम्) अरे रुधिरप्रिय, किं नु खल्वेष महान्कलकलः श्रूयते (अले लुहिलप्पिआ, किं णु क्खु एशे महन्ते कलअले शुणीअदि)।

राक्षसः—(दृष्ट्वा) वसागन्धे ! एष खलु धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते। (वशागन्धे, एशे क्खु धिट्टज्जुण्णेण दोणे केशेशु आकड्ढिअ अशिवत्तेण वावादीअदि)।

राक्षसी—(सहर्षम्) रुधिरप्रिय, एहि। गत्वा द्रोणस्य रुधिरं पिबावः। (लुहिलप्पिआ, एहि। गच्छिअ दोणश्श लुहिलं पिवह्म)।

राक्षसः—(सभयम्) वसागन्धे ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद्। गलं दहद्दहत्प्रविशति। तत्किमेतेन ? (वशागन्धे, ब्राह्मणशोणिअं क्खु एदं। गलअं दहन्ते दहन्ते पविशदि। ता किं एदिणा ?)

(नेपथ्ये पुनः कलकलः)

रासीक्षः—रुधिरप्रिय, पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते। (लुहिलप्पिआ, पुणोवि एशे महन्ते कलअले शुणीअदि।)

राक्षस—(नेपथ्याभिखमवलोक्य) वसागन्धे, एष खलवश्वत्थामा आकृष्टासिपत्र इत एवागच्छति। कदाचिद् द्रुपदसुतरोषेणाऽऽवामपि व्यापादयिष्यति। तदेहि। अतिक्रमावः। (वशागन्धे, एशं क्खु अश्शत्थामे आकड्ढिदाशिवत्ते इदो एव्व आअच्छदि। कदावि दुवदशुदलोशेण अह्मेवि वावादइश्शदू। ताएहि। अतिकमह्म)।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति प्रवेशकः ॥

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे किस कारण घूमता है ?

राक्षस—वसागन्धे ! उन स्वामी वृकोदर (भीमसेन) ने दुःशासन के हृदय के रक्त को पीने की प्रतिज्ञा कर रखी है। वह (रक्त कुमार भीमसेन के शरीर में) प्रविष्ट होकर हम राक्षसों को ही पीना है।

राक्षसी—(बड़े हर्ष के साथ) धन्य हो, स्वामिनी धन्य हो। आपके द्वारा मेरा पति सुन्दर व्यवस्था में लगा दिया गया है।

[पर्दे के पीछे तीव्र कलकल ध्वनि होती है। दोनों सुनते हैं।]

राक्षसी—(सुनकर, घबराहट के साथ) अरे, रुधिरप्रिय यह कैसा तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है।

राक्षस—(देखकर) वसागन्धे ! यह द्रोण धृष्टद्युम्न द्वारा केश खींचकर तलवार से मारा जा रहा है।

राक्षसी—(हर्ष के साथ) रुधिरप्रिय ! आओ, चलकर द्रोण के रक्त को (हम दोनों) पियें।

राक्षस—(भय के साथ) वसागन्धे ! यह तो ब्राह्मण का रक्त है। गले को जलाता हुआ अन्दर जाता है। तो इससे क्या ?

(पर्दे के पीछे पुनः शोर होता है।)

राक्षसी -रुधिरप्रिय ! फिर यह महान् कोलाहल सुनाई पड़ रहा है।

राक्षस—(पर्दे की ओर देखकर) वसागन्धे ! यह तो अश्वत्थामा हाथ में तलवार लिये हुये इस ओर ही चले आ रहे हैं। सम्भवतः द्रुपद के पुत्र (धृष्टद्युम्न) पर आये हुये क्रोध से हम दोनों को भी मार डालेगा। तो आओ। निकल चलें।

(दोनों निकल जाते हैं।)

("प्रवेशक" समाप्त होता है)।

टिप्पणियां—आकृष्टासिपत्रः-तलवार को खींचे हुये। व्यापादयिष्यति=मार डालेगा। प्रवेशकः=दो नीच पात्रों द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत न की गई हुई अथवा प्रस्तुत न किये जाने योग्य (भूत, वर्तमान तथा भविष्य में घटने वाली) घटना की सूचना दिये जाने को 'प्रवेशक' कहा जाता है। जैसा कि भरतमुनि द्वारा लिखा भी गया है:—

"हीनाभ्यामेव पत्राभ्यामङ्कादौ यत्प्रवर्तते ।
प्रवेशकः स विज्ञेयः शौरसेन्यादिभाषया ॥"

इसका प्रयोग दो अङ्कों के बीच में—अङ्क के आदि में किया जाया करता है ।

(ततः प्रविशत्युत्खातखड्गः कलकलमाकर्णयन्नश्वत्थामा ।)

अश्वत्थामा—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः ।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥४॥ 88

(तत्पश्चात् तलवार ताने हुये, कोलाहल श्रवण करते हुये
अश्वत्थामा प्रवेश करता है ।)

अश्वत्थामा—

अन्वयः—अद्यपुरः महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्त्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः अभूतपूर्वः अयं रवः समरोदधेः मुहुः कुतः (उद्भवति) ।

संस्कृत-व्याख्या—अद्य=सम्प्रति, पुरः=अग्रे—ममेतिशेषः महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी=महाप्रलये—कल्पान्ते यः मारुतः—वायुः तेन क्षुभितौ-विक्षुब्धौ पुष्करावर्तकनामानौ मेघौ, तयोः प्रचण्डं-भीषणं यत् घनगर्जितं—गम्भीरघनगर्जनम् (अथवा प्रचण्डं घनम्—अनवरतं च यत् गर्जितम्) तस्य प्रतिरवः प्रतिशब्दः (प्रतिध्वनिः) तस्यानुकरोतीति तत्सदृशं—इत्यर्थः, अत एव श्रवणभैरवः=श्रवणयोः—श्रोत्रयोः, श्रवणे—आकर्णने वा भैरवः—भयङ्करः कर्णकटुः—इत्यर्थः स्थगितरोदसीकन्दरः—स्थगितं-पिहितं व्याप्तं वा रोदस्योः-द्यावापृथिव्योः कन्दरं-गह्वरं मध्यभागं वा येन, तथाभूतः, अभूतपूर्वः=न पूर्वं भूतः—अश्रुतपूर्वः; अयम्=श्रूयमाणः,

रवः=शब्दः, समरोदधेः=समरं-सग्राममेव उदधिः-समुद्रःतस्मात्, मुहुः=बारम्बारम्, कुतः=कस्मात् हेतोः, उद्भवति=जायते इति शेषः ॥४॥

हिन्दी-अनुवाद— अद्य=आज, पुरः=सामने, महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जिप्रतिरवानुकारी=महाप्रलय के समय वायु द्वारा (अथवा प्रलयकालीन झंझावात द्वारा) क्षुब्ध पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के भयंकर एवं गम्भीरगर्जन की प्रतिध्वनि का अनुकरण करने वाला, अतएव, श्रवणभैरवः=कर्णकटु, स्थगितरोदसीकन्दरः=पृथ्वी तथा आकाश के मध्यवर्त्तमान अन्तराल (अन्तरिक्ष) रूपी गुहा को ढक लेने वाला, अभूतपूर्वः=अपूर्व, अयम्=सुनाजाता हुआ, रवः=शब्द (कोलाहल), समरोदधेः=युद्धरूपी सागर से, मुहुः=बार-बार, कुतः=क्यों, उद्भवति=उत्पन्न हो रहा है अथवा उठ रहा है ॥४॥

भावार्थ—प्रलयकालीन वायु से विक्षुब्ध हुये पुष्कर तथा आवर्तक नामक मेघों के भयंकर गर्जन-शब्द के सदृश, कर्णकटु तथा पृथ्वी और आकाश के बीच विद्यमान अन्तराल (अन्तरिक्ष) भाग रूपी गुफा को भर देने वाला यह अभूतपूर्व शब्द सामने युद्धभूमि में कहाँ से सुनाई दे रहा है ?

अलंकार—उक्त पद्य में "उपमा" अलङ्कार है ।

छन्द—इसमें पृथ्वी" छन्द है । लक्षण—"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः" ।

समास—महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी=महाप्रलये यः मारुतः तेन क्षुभितौ पुष्करावर्तक नामानौ मेघौ, तयोः यत् प्रचण्डघनगर्जितं तस्य प्रतिरवः, तस्यानुकरोतीति । श्रवणभैरवः=श्रवणे भैरवः—इति । स्थगितरोदसीकन्दरः=स्थगितं रोदस्योः कन्दरं येन । अभूतपूर्व=पूर्वं भूतः—भूतपूर्वः, न भूतपूर्वः—अभूतपूर्वः । समरोदधेः=समरं एव उदधिः—इति समरोदधिः, तस्य ।

टिप्पणियाँ—उत्खातखड्गः=कोश से निकालकर तान ली है तलवार जिसने । क्षुभितौ=क्षुब्ध हुये—आन्दोलित अथवा चलायमान । पुष्करावर्तक=पुष्कर तथा आवर्तक—ये दोनों मेघों की श्रेष्ठ जातियाँ हैं । प्रलय के

समय ये गरजा तथा बरसा करते हैं। प्रतिरवः=प्रतिशब्द अथवा प्रतिध्वनि। अनुकारी=अनुकरण करने वाला। श्रवणभैरवः=सुनने में भयंकर। स्थगित-रोदसीकन्दरः=स्थगित-व्याप्त कर लिया है। रोदसी-द्यावापृथिवी—("द्यावापृथिव्यौ रोदस्यौ द्यावाभूमी च रोदसी-" इत्यमरः॥" रोदश्च रोदसी चैव दिविभूमौ पृथक्-पृथक्"—इति कोशः॥)। कन्दरः=कन्दरा-गुफा-गुहा—("दरी तु कन्दरो वाऽस्त्री"—इत्यमरः)। अभूतपूर्वः=अपूर्व-जिसे पहले कभी सुना ही न हो-अश्रुतपूर्व। रवः=शब्द अथवा कोलाहल। समरोदधेः=युद्धरूपी सागर से॥४॥

(विचिन्त्य) ध्रुवं गाण्डीविना सात्यकिना वृकोदरेण वा यौवन-दर्पादतिक्रान्तमर्यादेन परिकोपितस्तातः समुल्लङ्घ्य शिष्यप्रियतामा-त्मप्रभावसदृशमाचेष्टते। तथा हि—

यद् दुर्योधनपक्षपातसदृशं युक्तं यदस्त्रग्रहे
रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य यत्साम्प्रतम्।
लोके सर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूपं रुषः
प्रारब्धं रिपुघस्मरेण नियतं तत्कर्म तातेन मे॥५॥

(सोचकर) निश्चय ही यौवन के मद के कारण मर्यादा का उल्लंघन कर देने वाले अर्जुन अथवा सात्यकि अथवा भीमसेन द्वारा क्रोधित किये गये (मेरे) पिता (द्रोणाचार्य) शिष्य-प्रेम का त्यागकर अपने प्रभाव के सदृश ही आचरण कर रहे हैं (अर्थात् अपने पराक्रम के अनुरूप ही कर्म कर रहे हैं।) जैसे कि—

अन्वयः—यत् दुर्योधनपक्षपातसदृशम्, अस्त्रग्रहे यत् युक्तम्, यत् रामात् लब्धसमस्तहेतिगुरुणः वीर्यस्य साम्प्रतम् च यत् लोके सर्वधनुष्मतां अधिपतेः रुषः अनुरूपम्, तत् कर्म रिपुघस्मरेण मे तातेन नियतं प्रारब्धम्।

संस्कृत-व्याख्या—यत्=कर्म-अग्रे सर्वत्र यच्छब्देन वक्ष्यमाणं कर्माभि-धीयते। दुर्योधनपक्षपातसदृशम्=दुर्योधनस्य-कुरुपतेः पक्षपातः-पक्षग्रहणम्, तस्य तुल्यम्-सदृशम्-अनुरूपं वा वर्तते, अस्त्रग्रहे=अस्त्रे गृहीते सति, यत्=

कर्म, युक्तम्=उचितम्, यत्, रामात्=परशुरामात्, लब्धसमस्तहेतिगुरुणः-लब्धाभिः-अधिगताभिः समस्ताभिः-सम्पूर्णाभि हेतिभिः-शस्त्रैः गुरुः-महान् तस्य, वीर्यस्य=पराक्रमस्य, साम्प्रपम्=योग्यम्, च, यत्, लोके=जगति, सर्व-धनुष्मताम्=सर्वेषां-अखिलानां धनुष्मताम्-धनुर्धारिणाम्, अधिपतेः=स्वामिनः, रुषः=क्रोधस्य, अनुरूपम्=योग्यम्, तत्=तादृशम्, कर्म=कार्यम्पौरुषमित्य-भिप्रायः, रिपुघस्मरेण=रिपूणां-शत्रूणां घस्मरः=भक्षकः, तेन, मे=मम, तातेन पित्रा द्रोणेन, नियतम्=नूनम्, प्रारब्धम्=प्रवर्तितम्। इदानीं मम पिता (द्रोणः) शत्रुविनाशने नियतं प्रवृत्तः इत्यभिप्रायः ॥५॥

हिन्दी-अनुवाद—यत्=जो (कर्म), दुर्योधनपक्षपातसदृशम्=दुर्योधन के गौरव अथवा प्रेम के सदृश है, अस्त्रग्रहे=शस्त्र उठा लेने पर, यत्=जिस कर्म का किया जाना, युक्तम्=उचित है, यत्=जो (कर्म); रामात्=परशुराम से, लब्धसमस्तहेतिगुरुणः=प्राप्त हुये सम्पूर्ण आयुधों के कारण महान्, वीर्यस्य=पराक्रम के, साम्प्रतम्=योग्य है, च=और, यत्=जो कर्म, लोके=लोक में, सर्वधनुष्मताम्=सम्पूर्ण धनुर्धारियों के, अधिपतेः=अधिपति के, रुषः=क्रोध के, अनुरूपम्=अनुरूप है, तत्=वह, कर्म=पौरुषरूप कर्म, रिपुघस्मरेण=शत्रुविना-शक, मे=मेरे, तातेन=पिता (द्रोणाचार्य) के द्वारा, नियतम्=निश्चितरूप से, प्रारब्धम्-प्रारम्भ कर दिया गया है ॥५॥

भावार्थ—जो कर्म दुर्योधन के पक्ष में रहने के अनुरूप है, जो (कर्म) शस्त्र उठालेने पर उचित ही है, जो (कर्म) परशुराम से प्राप्त दिव्य-अस्त्रों के गौरवपूर्ण अपने पराक्रम के योग्य है तथा जो कर्म विश्व के समस्त धनुर्धा-रियों के सम्राट के अनुरूप है वह कर्म (पाण्डवों की सेना का विनाश) शत्रुओं के लिये कालाग्नि के सदृश मेरे पिता (द्रोण) ने करना प्रारम्भकर दिया है।

अलंकारः—उक्त पद्य में "उत्प्रेक्षा" अलंकार है।

छन्दः—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समास—यौवनदर्पात्=यौवनस्य दर्पात्-इति। अतिक्रान्तमर्यादेन=अतिक्रान्ता मर्यादा येन, तेन। आत्मप्रभावसदृशम्=आत्मनः प्रभावेन सदृशम्। दुर्योधनपक्षपातसदृशम्=दुर्योधनस्य पक्षपातः इति दुर्योधनपक्ष-

पातः, तस्य सदृशम् । लब्धसमस्तहेतिगुरुणः=लब्धाः समस्ताः हेतयः, ताभिः गुरुः, तस्य । रिपुघस्मरेण=रिपूणां घस्मरः इति रिपुघस्मरः, तेन ॥

टिप्पणियाँ—गाण्डीविना=अर्जुन ने । वृकोदरेण=भीम ने । यौवनदर्पात्=युवावस्था के अभिमान के कारण। अतिक्रान्तमर्यादेन=जिसने मर्यादा का उल्लंघन कर दिया है ऐसे । शिष्यप्रियताम्=शिष्य-प्रेम का । समुल्लङ्घ्य=उल्लंघन कर त्याग कर । आत्मप्रभावसदृशम्=अपने प्रभाव अथवा पराक्रम के अनुरूप । आचेष्टते=कर रहे हैं । दुर्योधनपक्षपातसदृशम्=दुर्योधन के प्रति प्रेम के अनुरूप । रामात्=परशुराम से—"द्रोणाचार्य ने परशुराम से शास्त्रों को ग्रहण किया" ऐसा पुराणों में वर्णित है । लब्धसमस्तहेतिगुरुणः=प्राप्त हुये सम्पूर्ण शस्त्रों के कारण महान् । हेतयः=शस्त्र—"रवेर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः" इत्यमरः । साम्प्रतम्=युक्त अनुरूप । "युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने" इत्यमरः । रिपुघस्मरेण=शत्रुओं के भक्षक अर्थात् विनाशक । "भक्षको घस्मरोऽद्मरः"—इत्यमरः ॥५॥

(पृष्ठतो विलोक्य) तत्कोऽत्र । रथमुपनयतु । अथवाऽलमिदानीं मम रथप्रतीक्षया । सशस्त्र एवास्मि सजलजलधर प्रभाभासुरेण सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणाऽमुना खड्गेन । यावत्समरभुवमवतरामि । (परिक्रम्य वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः कथं ममापि नामाश्वत्थाम्नः समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्याऽनिमित्तानि समरगमनविघ्नमुत्पादयन्ति । भवतु, गच्छामि । (सावष्टम्भं परिक्राम्याग्रतो विलोक्य) कथमवधीरितक्षात्रधर्माणामुज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानां विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसां द्विरदतुरङ्गमचरणचारिणमगणितकुलयशः सदृशपराक्रमव्रतानां रणभूमेः समन्तादपक्रामतामयं महान्नादो बलानाम् (निरूप्य) हा धिक्कष्टम् । कथमेते महारथाः कर्णादयोऽपि समरात्पराङ्मुखा भवन्ति । कथं नु तताधिष्ठितानामपि बलानामियमवस्था भवेत् । भवतु, संस्तम्भयामि । भोः भोः कौरवसेनासमुद्रवेलापरिपालनमहामहीधरा नरपतयः, कृतं कृतममुना समरपरित्यागसाहसेन ।

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥६॥

(पीछे की ओर देखकर) यहाँ कौन है ? रथ लाओ । अथवा अब मुझे रथ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये । जल से परिपूर्ण मेघ की कान्ति के सदृश चमकीले (तथा) अच्छी प्रकार पकड़ने योग्य और निर्मल सुवर्ण निर्मित मूठ वाले इस तलवार से सशस्त्र हूँ ही । तब तो युद्ध-क्षेत्र में उतरता हूँ । (घूमकर, बाईं आँख की फडकन को सूचित करके) ओह ! युद्ध रूपी महोत्सव के महान् हर्ष से परिपूर्ण, पिता के पराक्रम को देखने की अभिलाषा से युक्त मुझ अश्वत्थामा के लिये भी युद्धक्षेत्र में जाने में ये अपशकुन विघ्न उत्पन्न कर रहे हैं। अच्छा, चलता हूँ । (अकड़ के साथ घूमकर तथा सामने देखकर) क्षात्रधर्म की उपेक्षा करने वाली, सज्जनोचित लज्जा के आवरण (घूँघट) को त्याग देने वाली, स्वामी के द्वारा किये गये सत्कार को भुला देने के कारण क्षुद्र चित्त वाली, (अपने) कुल तथा कीर्ति के अनुरूप पराक्रम रूप व्रत की चिन्ता न करने वाली, युद्ध-क्षेत्र से चारों ओर भाग खड़ी होने वाली, हाथी, घोड़े तथा पैदल सेनाओं का यह महान् कोलाहल क्यों है ? (देखकर) हाय ! धिक्कार है, बड़ा कष्ट है । ये कर्ण आदि महारथी भी संग्राम से भाग क्यों रहे हैं ? क्या पिता (द्रोण) जी द्वारा संचालित सेना की भी यही दशा होगी ? अच्छा, (इन्हें) रोकता हूँ । हे कौरवसेनारूपी समुद्र के तट की रक्षा के कार्य में विशालपर्वतों के समान राजा-लोगों, युद्ध-परित्याग रूपी साहस से बस-बस (अर्थात् युद्ध से भागने रूपी दुष्कृत्य को बन्द करो) ।

अन्वयः—समरं अपास्य मृत्योः भयं न अस्ति इति यदि (तर्हि) इतः अन्यतः प्रयातुं युक्तम् । अथ जन्तोः मरणं अवश्यं एव किं इति मुधा यशः मलिनं कुरुध्वे ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—समरम्=युद्धम्, अपास्य=त्यक्त्वा, मृत्योः=मरणात्, भयम्=भीतिः, नास्ति=न वर्तते, इति=इत्थम्, यदि=चेत् (तर्हि), इतः=

युद्धभुवः, अन्यतः=अन्यत्र, प्रयातुम्=पलाय्य गन्तुम्, युक्तम्=उचितम् । अथ=यदि, जन्तोः=प्राणिनः, मरणम्=मृत्युः, अवश्यमेव=अवश्यंभावी (एवेति निश्चये दाढ्र्यद्योतनार्थम्, किम्=कस्मात्, इति=इत्यम्, मुधा=व्यर्थम्, यशः=कीर्तिम्, मलिनम्=मलीमसम् कलङ्कितम्, कुरुध्वे=कुरुथ ॥६॥

हिन्दी-अनुवाद—समरम्=युद्ध को, अपास्य=त्याग करके, मृत्योः=मृत्यु का, भयम्=भय, नास्ति=नहीं है, इति=ऐसी बात, यदि=यदि है (तर्हि=तब तो), इतः=यहाँ से (इस युद्धक्षेत्र से), अन्यतः=अन्यत्र, प्रयातुम्=चला जाना (भाग जाना) युक्तम्=उचित ही है । अथ=यदि, जन्तोः=प्राणी का, मरणम्=मरना, अवश्यम्=निश्चित, एव=ही है, तो, किम्=क्यों, इति=इस प्रकार, मुधा=व्यर्थ में, यशः=(अपनी) कीर्ति को, मलिनम्=मलिन अथवा कलङ्कित, कुरुध्वे=कर रहे हो ?

भावार्थ—यदि युद्ध भूमि को छोड़कर किसी अन्य स्थल पर भाग जाने से कभी मृत्यु की आशंका न हो तब तो युद्ध क्षेत्र को छोड़कर भाग जाना उचित ही है। किन्तु यदि प्राणी का मरना अवश्यम्भावी है। (अर्थात् कहीं भी रहें, मरना तो एक दिन है ही) तब तो युद्ध से भागकर व्यर्थ में ही अपनी कीर्ति को कलङ्कित करने से क्या लाभ ?

छन्द—उपर्युक्त पद्य में "पुष्पिताग्रा" नामक छन्द है। लक्षण—अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा"।

समास—सजलजलधर प्रभाभासुरेण=सजलः यः जलधरः तस्य इव प्रभा तया भासुरेण। सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणा=सुप्रग्रहः विमलं यत्कलधौतं=सुवर्णं तेन निर्मितः त्सरुः=खड्गमुष्टिः यस्य तेन। समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य=समरः एव महोत्सवः समरमहोत्सवः, समरमहोत्सवस्य यः प्रमोदः तेन निर्भरस्य। तातविक्रमदर्शनलालसस्य=तातस्य-पितुः यः विक्रमः तस्य दर्शनं तस्मिन् लालसा यस्य तस्य। समरगमनविघ्नम्=समरे यत् गमनं तत्र विघ्नम्। अवधीरितक्षात्रधर्माणाम्=अवधीरितः-तिरस्कृतः क्षात्रधर्मः क्षत्रियमर्यादा यैः तेषाम्। उज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानाम्=उज्झितंपरित्यक्तम् सत्पुरुषोचिता लज्जा एव अवगुण्ठनं-आवरणं यैः तेषाम्।

विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसाम्=विस्मृतः यः स्वामिनः सत्कारः, तेन लघु-क्षुद्रं चेतो येषां तेषाम्। **अगणितकुलयशःसदृशपराक्रमव्रतानाम्**=अगणितं कुलयशःसदृशं पराक्रमरूपव्रतं येषाँ तेषाम्। **कौरवसेनासमुद्रवेलापरिपालनमहामहीध्रराः**=कौरवसेना एव समुद्रः तस्याः परिपालने-संरक्षणे महामहीधराः। **समरपरित्यागसाहसेन**=समरस्य परित्यागः एव साहसं, तेन।

टिप्पणियाँ—**सजलजलधरप्रभाभासुरेण**=जल से भरे हुये कृष्णवर्ण के मेघों की कान्ति के समान कान्ति को धारण करने वाला। यह खड्ग (तलवार) का विशेषण है। **सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणा**=सुप्रग्रह अर्थात् सुखपूर्वक अथवा सरलता से पकड़े जाने योग्य, एवं निर्मल (कलधौत=) सुवर्ण-निर्मित (त्सरुः=) मूठ से युक्त। यह भी तलवार का विशेषण है। "त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यात्"—इत्यमरः।" **यावत्**=सर्वथा। अतः "यावत्तावच्च साकल्य"—इत्यमरः। **निर्मरस्य**=पूर्ण, परिपूर्ण। **अनिमित्तानि**=अपशकुन। **उत्पादयन्ति**=उत्पन्न करते हैं। **सावष्टम्भम्**=दर्प अथवा अभिमान के साथ अकड़ के साथ। "दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भः"—इत्यमरः। **अवधीरितक्षात्रधर्माणाम्**=तिरस्कृत कर दिया है क्षत्रियों के (युद्ध-क्षेत्र से कभी भी न भागना, शूरवीरता आदि) धर्मों को जिन्होने ऐसे सैनिकों से युक्त सेनाओं का! **उज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनाम्**=सज्जन पुरुषों के योग्य लज्जा के आवरण (घूँघट) को भी छोड़ देने वाली-सेनाओं। **विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसाम्**=स्वामी द्वारा किये गये सत्कार को भी भुला देने के कारण क्षुद्रमानसिकवृत्तियों से युक्त-सेनाओं। **अगणितकुलयशःसदृशपराक्रमव्रतानाम्**=अपने वंश और अपनी कीर्ति के (सदृश=) अनुरूप पराक्रमरूपीव्रत का (अगणित=अविचारित) भी विचार न करने वाली-सेनाओं का। **अपक्रामताम्**=पलायन करने वाली अथवा युद्धक्षेत्र को छोड़कर भागने वाली। **बलानाम्**=सेनाओं का। **निरूप्य**=भलीभाँति देखकर। **संस्तम्भयामि**=रोकता हूँ। **कौरवसेनासमुद्रवेलापरिपालनमहामहीधराः**=कौरव-सेना रूपी समुद्र के तट की रक्षा करने सम्बन्धी कार्य में महान् पर्वतों के सदृश। **हे नरपतयः**=हे राजालोगों! **कृतंकृतम्**=

(अलमलम्-) बस-बस। "कृतं युगेऽलमर्थे स्याद्विहिते हिंसिते त्रिषु" इति मेदिनी। साहसेन=बिना विचारे सहसा ही किये गये कार्य से। अपास्य= छोड़कर। अन्यतः=अन्यत्र। इतः=इस युद्धभूमि से। प्रयातुम्=भाग जाने के लिये। युक्तम्=उचित, अनुरूप। अथ=यदि। मुधा=व्यर्थ में ही। मलिनम्=कलङ्कित ॥६॥

अपि च—

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम्।
कर्णाऽलं संभ्रमेण व्रज कृप समरं मुञ्च हार्दिक्यशङ्कां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्यावकाशः ॥७॥

और भी—

अन्वयः—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः अन्तः औवयिमाणे, सर्वधन्वीश्वराणां गुरौ मम पितरि अस्मिन् (समरे) सेनानाथे (सति) हे कर्ण! सम्भ्रमेण अलम्. हे कृप! समरं व्रज, हे हार्दिक्य! शङ्कां मुञ्च। रणधुरां वहति चापद्वितीये ताते (सति) भयस्य कः अवकाशः?

संस्कृत-व्याख्या—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः=अस्त्राणि एव ज्वाला अस्त्रज्वाला' तया अवलीढः व्याप्तः—आक्रान्तः-वा, (प्रतिबलम्-शत्रुसैन्यम् जलधिः-सागर इव-इति) प्रतिबलजलधिः-पाण्डवसैन्यसमुद्रः तस्य, अन्तः= मध्ये, औवयिमाणे=औवः-बडवानलः इव आचरन्—औवयिमाणः, तस्मिन्-पाण्डवसैन्योत्साहविनाशके-इत्यभिप्रायः, सर्वधन्वीश्वराणाम्=निखिलधनुर्धराणाम्, गुरौ=उपदेष्टरि-आचार्ये-श्रेष्ठे, मम=अश्वत्थाम्नः, पितरि=जनके, अस्मिन्, युद्धे इति शेषः, सेनानाथे=सेनाध्यक्षे, स्थिते=विद्यमाने सति, हे कर्ण=हे राधेय, सम्भ्रमेण=उद्वेगेन भयेन वा, अलम्=न प्रयोजनम्, हेकृप! —हे कृपाचार्य, समरम्=युद्धाङ्गणम्, व्रज=गच्छ, हे हार्दिक्य=हे हृदिकपुत्र कृतवर्मन्!, शङ्काम्=आशङ्काम्-हृदयजातसन्देहम्, मुञ्च=त्यज। रणधुराम्= रणस्य-युद्धस्य धुरम्-भारम्, वहति=दधाने सति चापद्वितीये=चापः-धनुः

द्वितीयः सहायकः यस्य तस्मिन्–'धृतधनुषि'–इत्यर्थः, ताते=पितरि, (विद्यमाने सति), भयस्य=भीतेः, कः अवकाशः=का सम्भावना ? न कापीत्यर्थः ॥७॥

हिन्दी-अनुवाद—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः=दिव्य-अस्त्रों की ज्वालाओं से व्याप्त शत्रु-सेना रूपी समुद्र के, अन्तः=मध्य, और्वायमाणे=वडवानल के समान जलने वाले, सर्वधन्वीश्वराणाम्=समस्तधनुर्धारियों के, गुरौ=गुरु, मम=मुझे अश्वत्थामा के, पितरि=पिता (द्रोणाचार्य के, सेनानाथे=सेनाध्यक्ष पद पर, स्थिते सति=रहते हुये, हे कर्ण !, सम्भ्रमेण=घबराहट से, अलम्=बस करो, हे कृपाचार्य !, समरम्=युद्ध भूमि में, व्रज=जाओ, हे हार्दिक्य !=हे कृतवर्मन् !, शङ्काम्=भय, मुञ्च=त्याग दो। रणधुराम्=सेनापतित्व को, वहति=धारण किये हुये, चाप द्वितीये=धनुष को धारण किये हुये, ताते=पिता 'द्रोण' के विद्यमान रहने पर, भयस्य=भय का, कः अवकाशः=अवसर कहाँ है ? (किसी भी प्रकार के भय की संभावना का किया जाना उचित नहीं है।) ॥७॥

भावार्थः—दिव्य-अस्त्रों की ज्वालाओं से परिपूर्ण शत्रु-सेना रूपी समुद्र के बीच वडवाग्नि के सदृश देदीप्यमान, सम्पूर्ण धनुर्धारियों के गुरु, मेरे पूज्य पिता द्रोणाचार्य इस समय भी सेनापति पद पर आसीन हैं। अतः उनके विद्यमान रहते हुये हे कर्ण ! तनिक भी घबराने की आवश्यकता नहीं है, हे कृपाचार्य ! आप पुनः युद्धस्थल पर चले जाइये, हे कृतवर्मा ! आप भी भयरहित हो जाइये। जब मेरे पिता (द्रोणाचार्य) हाथ में धनुष धारण किये हुये, रणकी धुरी को वहन करते हुये शत्रु-सेनाओं के मध्य विचरण कर रहे हैं तब फिर आप लोगों के लिये भय की बात ही क्या हो सकती है ? अर्थात् भय की कोई भी बात होना संभव नहीं है ॥७॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "उपमा" अलंकार है।

छन्द—इसमें "स्रग्धरा" नामक छन्द है।

समास—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः=अस्त्राणि एव ज्वालाः, ताभिः अवलीढं प्रतिबलं जलधिः, तस्य। सेनानाथे=सेनायाः नाथ–सेनानाथः, तस्मिन्। चापद्वितीये=चापः द्वितीयः (सहायकः) यस्य, तस्मिन्।

टिप्पणियाँ—अवलीढम्=व्याप्त। प्रतिबलम्=शत्रुसेना। सर्वधन्वीश्वराणाम्=सम्पूर्ण धनुर्धारियों के। गुरौ=गुरु-आचार्य। सेनानाथे सति=सेनापति होने पर। सम्भ्रमेण=घबराहट से। अलम्=बस। हे हार्दिक्य !=हे हृदिक पुत्र कृतवर्मा। शङ्काम्=आशङ्का अथवा भय। चापद्वितीये=धनुष ही जिनका सहायक है—ऐसे मेरे पिता द्रोण के होते हुये। रणधुराम्=युद्ध का संचालन करने सम्बन्धी भार को। वहति=धारण किये होने पर। अवकाशः=अवसर, स्थान।

(नेपथ्ये)

कुतोऽद्यापि ते तातः।

अश्वत्थामा—(श्रुत्वा) किं ब्रूथ—कुतोऽद्यापि ते तातः इति। (सरोषम्) आः क्षुद्राः समरभीरवः कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया ?

दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का
वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्तभिन्नाः।
छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः
पापं पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मे ॥८॥

(पर्दे के पीछे से)

अब तुम्हारे पिता कहाँ हैं ?

अश्वत्थामा—(सुनकर) क्या कह रहे हो ? कहाँ हैं आज भी तुम्हारे पिता ? (क्रोध के साथ) ओह, नीच युद्ध-भीरुओ। इस जिह्वा से इस प्रकार की वाणी निकालते हुये तुम्हारी जिह्वा टूक-टूक होकर क्यों नही गिर जाती ?

अन्वयः—दहनकिरणैः विश्वं दग्धुं द्वादश अर्काः न उदिताः, वा दिशि-दिशि सप्तधा भिन्नाः सप्तवाता न वाताः, पुष्करावर्तकाद्यैः मेघैः गगनतलं न छन्नम्, हे पापाः ! शौर्यराशेः मे पितुः पापं कथं कथयत ?

संस्कृत-व्याख्या—दहनकिरणैः=दहनात्मकाः किरणाः दहनकिरणाः तैः दहनकिरणैः—दाहकमयूखैः, विश्वम्=जगत्, दग्धुम्=भस्मीकर्तुम्, द्वादश=द्वादशसंख्याकाः, अर्काः=सूर्याः, न उदिताः=सहैव न समुदिताः, दिशि-दिशि=सर्वदिक्षु, सप्तधा=सप्तप्रकारेण, भिन्नाः=गुणिताः, सप्त, वाताः=वायव—सप्तगुणिताः सप्त (७ × ७) ऊनपञ्चाशनसङ्ख्याकाः वायवः—इत्यर्थः, न वाताः=न प्रचलिताः, पुष्करावर्तकाद्यैः=पुष्करावर्तकसंवर्तद्रोणाभिधैः, मेघैः—प्रलयकालीनजलधरैः, गगनतलम्=आकाशमण्डलम्, न छन्नम्=सहैव न आच्छादितम्, हे पापाः ! हे पापिष्टाः !, शौर्यराशेः=शौर्यस्य-पराक्रमस्य राशिः—आकरः तस्य, मे=मम, पितुः=तातस्यद्रोणस्य, पापम्=पापपूर्णकथनम् मृत्युघोषणामित्यर्थः, कथम्=कस्मात्, कथयत=ब्रूत ? प्रलयकालं विना जगज्जन्मा कोऽपि नरः मम पितरं युद्धे विनाशयितुं नार्हतीत्यभिप्रायः ॥८॥

हिन्दी-अनुवाद—दहनकिरणैः=अपनी ज्वलनशील किरणों से, विश्वम्=संसार को, दग्धुम्=जलाडालने अथवा भस्म कर डालने के लिये, द्वादश=बारह, अर्काः=सूर्य, न उदिताः=उदित नहीं हुये हैं, (ये बारह सूर्य प्रलय काल में ही उदित हुआ करते हैं।), वा=अथवा, दिशि-दिशि=सम्पूर्ण दिशाओं में, सप्तधा=सात प्रकार से,भिन्नाः=गुणित, सप्त=सात (७ × ७=४९) अर्थात् उनच्चास प्रकार की वाताः=वायुयें, न वाताः=नहीं वही हैं, पुष्करावर्तकाद्यैः पुष्कर तथा आवर्तक आदि, मेघैः=प्रलयकालीन मेघों के द्वारा, गगनतलम्=आकाश को, न छन्नम्=आच्छादित नहीं किया गया है, (फिर भी) हे पापाः !=हे पापियो !, शौर्यराशेः=पराक्रम की राशि—अर्थात् अतिपराक्रमी, मे=मेरे, पितुः=पिता के सम्बन्ध में, पापम्=अनिष्टकारी बात—(अर्थात् मरण की बात) को, कथम्=क्यों, कथयत=कह रहे हो ? "संसार का कोई भी मानव प्रलयकाल के बिना उपस्थित हुये मेरे पिता को युद्ध में नष्ट कर देने में समर्थ नहीं है"—यह अभिप्राय है ॥८॥

भावार्थ—हे पापियो ! समस्त विश्व को भस्म कर देने में समर्थ प्रलयकालीन बारहो प्रकार के सूर्य तो अभी तक उदित हुये ही नहीं हैं. प्रलयकाल में बहने वाली ४९ प्रकार की हवायें तो अभी तक बही ही नहीं हैं. प्रलयकालीन पुष्कर एवं आवर्तक नामक मेघों से आकाश भी आच्छादित नहीं हो

सका है। फिर ऐसी स्थिति में अतिपराक्रमी मेरे पिता जी की मृत्यु के बारे में यह घोषणा क्यों की जा रही हैं? कहने का अभिप्राय यह है कि प्रलय-कालीन स्थिति उत्पन्न होने पर ही मेरे पिता की मृत्यु संभव हो सकती है, अन्यथा नहीं ॥८॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "विभावना" नामक अलङ्कार है।

छन्द—इसमें "मन्दाक्रान्ता" नामक छन्द है ॥

समासः–दहनकिरणैः=दहनाश्च ते किरणाः, तैः।

टिप्पणियाँ—आः=इसका प्रयोग क्रोध अथवा निन्दा अर्थ में ही किया जाता है। क्षुद्राः=नीच, कायर। प्रलपताम्=प्रलाप अथवा बकवास करने वाले। दीर्णम्=विदीर्ण टूँक-टूक हो जाना। दहनकिरणैः=ज्वलनशील किरणों से। दग्धुम्=भस्म कर डालने के लिये। द्वादश=बारह प्रकार के, अर्काः=सूर्य। बारह प्रकार के सूर्य अथवा आदित्य ये हैं:—

"धातामित्रोऽर्यमा रुद्रो वरुणः सूर्य एव च।
भगो विवस्वान्पूषा च सविता दशमः स्मृतः ॥
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते ॥"

ये बारह प्रकार के आदित्य(सूर्य)प्रलयकाल में ही संसार को भस्म करने के लिये एक साथ उदित हुआ करते हैं। वा=अथवा। दिशि-दिशि=सम्पूर्ण दिशाओं में। सप्तधा भिन्नाः सप्त=सात प्रकार से भिन्न सात अर्थात्—७ × ७=४९ प्रकार की। वाताः=हवायें। ये उनचास प्रकार की हवायें भी प्रलय काल में ही एक साथ बहा करती हैं। ये हैं:–(१) श्वसन (२) स्पर्शन (३) वायु (४) मातरिश्वा (५) सदागति (६) महाबल (७) बलवर्धन (८) पृषदश्व (९) गन्धवह (१०) गन्धवाहका (११) अनिल (१२) आशुग (१३) सुमुख (१४) कर्कर (१५) समीक्षण (१६) समीरणा (१७) अनुत्तम (१८) मारुत (१९) नागयोनिज (२०) जगत्प्राण (२१) पावक (२२) वात (२३) प्रभञ्जन (२४) पवमान (२५) नभस्व (२६) दतिबल (२७) तरस्वि (२८) द्रावण (२९) देवपक्षक (३०) पात्रवाहक (३१)

रथवाड (३२) ध्वदृग (३३) गतिरोधन (३४) पाणिक (३५) साधक (३६) विश्वपूरक (३७) जगदाश्रय (३८) विश्वातिरेकि (३९) प्रजागर (४०) विश्वोदरा (४१) अग्रग (४२) तीव्रका (४३) असुरह (४४) विश्व-वर्द्धन (४५) मद्रजव (४६) पुष्करजा (४७) अब्जिनीपति (४८) व्यक्तमूर्ति विश्वग । ["हेमाद्रि" में पठित] । पुष्कारवर्तकाद्यैः=पुष्कर, आवर्तक, संवर्त तथा द्रोण नामक मेघों से । गगनतलम्=आकाश मण्डल । नच्छन्नम् एक साथ आच्छादित नहीं किया गया । शौर्यराशेः=पराक्रम की राशि अर्थात् अतिपराक्रमी । पापम्=पापरूप-अनिष्ट अर्थात् मरण । कथम्=क्यों । कथयत=कह रहे हो ॥८॥

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः सप्रहारः)

सूतः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः । (इति पादयोः पतति ।)

अश्वत्थामा—(विलोक्य) अये, कथं तातस्य सारथिरश्वसेनः । आर्य ! त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य सारथिरसि । किं मत्तः परित्राण-मिच्छसि ?

सूतः—(उत्थाय सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तातः ।

अश्वत्थामा—(सावेगम्) किं तात एव नास्ति ?

सूतः—अथ किम् ।

अश्वत्थामा—हा तात ! (इति मोहमुपगतः ।)

सूतः—कुमार ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अश्वत्थामा—(लब्धसंज्ञः सास्रम्) हा तात ! हा सुतवत्सल ! हा लोकत्रयैकधनुर्धर ! हा जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन् ! क्वासि ? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

सूतः—कुमार ! अलमत्यन्तशोकावेगेन । वीरपुरुषोचितां विपत्ति-मुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैववीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव ।

अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमुच्य) आर्य ! कथय कथय कथं तादृग्भुजवीर्यसागरस्तातोऽपि नामाऽस्तमुपगतः ? किं भीमाद्गुरु दक्षिणां गुरुगदां भीमप्रियः प्राप्तवान् ?

सूतः—शान्तं पापम् । शान्तं पापम् ।

अश्वत्थामा—अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना ।

सूतः—कथमेवं भविष्यति ?

अश्वत्थामा—गोविन्देन सुदर्शनस्यनियतं धारापथं प्रापितः

सूतः—एतदपि नास्ति ।

अश्वत्थामा—शङ्क नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्भ्यादहम् ॥६॥

(घायल तथा घबराया हुआ सूत प्रविष्ट होकर)

सूत—बचाइये कुमार ! बचाइये (ऐसा कहकर पैरों पर गिर पड़ता है ।)

अश्वत्थामा—(देखकर) अरे ! क्या पिता जी का सारथी अश्वसेन ? आर्य ! तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ (मेरे पिता के आप) सारथी हो । फिर) मुझसे क्यों रक्षा चाहते हो ?

सूत—(उठकर, करुणा के साथ) अब तुम्हारे पिता कहाँ ?

अश्वत्थामा—(घबराहट के साथ) क्या पिता जी ही नहीं रहे ?

सूत—और क्या ?

अश्वत्थामा—हाय पिता जी ! (ऐसा कहकर मूच्छित हो जाता है ।)

सूत—कुमार ! धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये ।

अश्वत्थामा—(चेतना प्राप्त कर, आँखों में आँसू भरकर) हा तात ! हा पुत्र को प्यार करने वाले ! हा तीनों लोकों के अद्वितीय धनुर्धर ! हा परशुराम के अस्त्ररूपीधन ग्रहण करने में प्रेम रखने वाले ! कहाँ हो ? मुझे प्रत्युत्तर दीजिये ।

सूत—कुमार । अत्यधिक शोक के आवेग से बस करो । पिता (द्रोणाचार्य) के वीर पुरुष के योग्य मृत्यु को प्राप्त करने पर तुम भी उनके समान ही पराक्रम से शोकसागर को पार कर सुखी होओ ।

अश्वत्थामा—(अश्रुधारा बहाकर) आर्य ! कहिये, कहिये—ऐसे महापराक्रम के समुद्र पिता जी भी किस भाँति मृत्यु को प्राप्त हुये ? भीम से प्रेम

करने वाले (मेरे पिता जी ने) भीम से गुरुदक्षिणा के रूप में विशाल गदा को प्राप्त कर लिया है क्या ! तात्पर्य यह है कि क्या मेरे पिता (द्रोण) की मृत्यु भीम की विशाल गदा से हुयी है ?)।

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। (अर्थात् इस अनुचित बात का सोचना ठीक नहीं है।)

अश्वत्थामा—(तब क्या) प्रियशिष्य अर्जुन के प्रति दयालु (मेरे पिता को) मर्यादा का परित्याग करके विजेता अर्जुन ने इस दशा को पहुँचा दिया है ? (अर्थात् मृत्यु को प्राप्त करा दिया है ?) ।

सूत – ऐसा कैसे होगा ?

अश्वत्थामा—(तब तो) यही निश्चित है कि श्री कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र की तीक्ष्णधार के पथ को (उन्हें) प्राप्त करा दिया है (अर्थात् मार दिया है।) ।

सूत—यह (बात) भी नहीं है।

अश्वत्थामा—इनके अतिरिक्त (किसी) चतुर्थ से मैं पिता जी की मृत्यु की आशङ्का नहीं करता हूँ।

अन्वयः—भीमप्रियः भीमात् गुरुगदां गुरुदक्षिणां प्राप्तवान् किम् ? अन्तेवासिदयालुः उज्झितनयेन जिष्णुना आसादितः (किम्) ? गोविन्देन सुदर्शनस्य निशितं धारापथं प्रापितः (किम्) ? एभ्यः अन्यतः चतुर्थात् गुरोः आपदं अहं खलु न शङ्के ।

संस्कृत-व्याख्या—भीमप्रियः=भीमः प्रियः यस्य सः—द्रोणाचार्यः, भीमात्=स्वशिष्यात्-वृकोदरात्, गुरु-गदाम्=गुर्वी-महती चासौ गदा, ताम्, गुरुदक्षिणाम्=गुरुदक्षिणारूपाम्, प्राप्तवान्=आसादितवान्, किम्=इति प्रश्ने ? (भीमगदया मे पिता हतः किम् ?—इत्यभिप्रायः) । अन्तेवासिदयालुः=अन्तेवासिनः-शिष्याः तेषु दयालुः कृपालुः—'शिष्यप्रियः' इत्यर्थः, असौ, उज्झितनयेन=उज्झितः त्यक्तः नयः—नीतिः (मर्यादेत्यर्थः) येन स तादृशेन, जिष्णुना=अर्जुनेन, आसादितः=मृत्युं प्रापितः किम् ? गोविन्देन=श्री कृष्णेन, सुदर्शनस्य=सुदर्शननामचक्रस्य, निशितम्=तीक्ष्णम्, धारापथम्=चक्रस्याग्रभागम्;

हरि शंकर चतुर्वेदी

प्रापितः=गमितः किम् ? एभ्यः=एतेभ्यः गोविन्दभीमार्जुनेभ्यः, अन्यतः=अन्यस्मात्, चतुर्थात्=तृतीयातिरिक्तादित्यभिप्रायः, गुरोः=पितुः, आपदम्=विपत्तिम्–मृत्युमित्यर्थः, अहम्=अश्वत्थामा, न खलु=नैव, शङ्के=आशङ्कां करोमि–इत्यर्थः ।।९।।

हिन्दी-अनुवाद—भीमप्रियः=भीमसेन को प्यार करने वाले मेरे पिता ने, भीमात्=(अपने शिष्य) भीम से, गुरुगदाम्=विशाल गदा के प्रहार को गुरुदक्षिणाम्= गुरुदक्षिणा के रूप में, प्राप्तवान्=प्राप्त किया है, किम्=क्या ? अन्तेवासिदयालुः=शिष्य पर दया करने वाले (वे मेरे पिता), उज्झितनयेन=मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, जिष्णुना=अर्जुन के द्वारा, आसादितः=अभिभूत हुये हैं क्या ? अर्थात् क्या उन पर अर्जुन द्वारा आक्रमण किया गया है ? गोविन्देन= अथवा श्री कृष्ण के द्वारा, सुदर्शनस्य=सुदर्शन-चक्र की, निशितम्=तीक्ष्ण, धारापथम्=धार के मार्ग को, प्रापितः=प्राप्त करा दिया गया है क्या ? एभ्यः=इन लोगों के अतिरिक्त, अन्यतः=किसी अन्य, चतुर्थात्=चतुर्थ व्यक्ति से, गुरोः=पिता की, आपदम्=आपत्ति अर्थात् मृत्यु को, अहम्=मैं खलु=निश्चय ही, न शङ्के=आशङ्का नहीं करता हूं ।९।।

भावार्थ—अश्वत्थामा के कहने का अभिप्राय यह है कि अपने शिष्य भीमसेन से प्रेम करने वाले मेरे पिता द्रोणाचार्य का वध भीम की ही भयंकर गदा के द्वारा किया गया है क्या ? तो क्या उनके प्रिय शिष्य अर्जुन ने मर्यादा का अतिक्रमणकर अपने गुरु (द्रोण) को इस स्थिति में पहुँचा दिया है ? श्री कृष्ण ने ही अपने तीक्ष्णधार से युक्त सुदर्शनचक्र की धार का उनको निशाना बनाया है क्या ? तो इन तीनों से अतिरिक्त संसार में कोई भी ऐसा चौथा व्यक्ति नहीं है कि जिससे पिता जी के बारे में इस प्रकार के वध की शङ्का की जा सके ।।९।।

छन्द—इस पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समास—त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य=त्रैलोक्यस्य त्राणे क्षमः (समर्थः) इति त्रैलोक्यत्राणक्षमः, तस्य। सुतवत्सल=पुत्रे वत्सल (स्नेहपूर्णः) इति सुतवत्सलः तत्सम्बुद्धौ। लोकत्रयैकधनुर्धर=लोकत्रये एकः धनुर्धरः—इति

लोकत्रयैकधनुर्धरः तत्सम्बुद्धौ। जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन्=जामदग्न्यस्य (परशुरामस्य) अस्त्राणि (आयुधानि) एव सर्वस्वं तस्य प्रतिग्रहे (स्वीकारे) प्रणयः विद्यते अस्येति जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयी, तत्सम्बुद्धौ। उज्झितनयेन=उज्झितः नयः येन सः, तादृशेन।

टिप्पणियाँ—सप्रहारः=शस्त्रों के आघातों से घायल शरीरवाला। सूतः=द्रोण का सारथि-रथ का संचालक। परित्रायताम्=रक्षा करें। लब्धसंज्ञः=चेतना प्राप्तकर। त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य=तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ। परित्राणम्=रक्षा का किया जाना। प्रतिग्रहः=स्वीकार करना-ग्रहण करना। प्रतिवचनम्=प्रत्युत्तर। वीरपुरुषोचिताम्=पराक्रमी पुरुषों के योग्य। विपत्तिम्=मृत्यु को। उपगते=प्राप्त करने पर। वीर्येण=पराक्रम से। तादृग्=उस प्रकार के। अस्तम्=विनाश को-मृत्यु को। अन्तेवासी=शिष्य। उज्झितनयेन=छोड़ दिया है नीति (मर्यादा) को जिसने, ऐसे। जिष्णुना=अर्जुन ने। आसादितः=पहुँचा दिया-मार दिया। नियतम्=निश्चित। सुदर्शनस्य=सुदर्शन-चक्र के। "चक्रं सुदर्शनम्" इत्यमरः। निशितम्=तीक्ष्ण। धारापथम्=धार के मार्ग को। प्रापितः=प्राप्त करा दिया। खलु=निश्चयार्थक अव्यय। अन्यतः=अन्य से। आपदम्=आपत्ति को-मृत्यु को ॥९॥

सूतः—कुमार !

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये।
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं
त्यक्तं तदाऽस्य विहितं रिपुणाऽतिघोरम् ॥१०॥

सूत—कुमार !

अन्वयः—संख्ये धूर्जटेः इव महास्त्रपाणेः कुपितस्य तस्य एते अपि किम् तुलां उपयान्ति ? तु यदा शोकोपरुद्धहृदयेन शस्त्रं त्यक्तं तदा रिपुणा अस्य अतिघोरं विहितम् ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—संख्ये=युद्धे, धूर्जटेः=शिवस्य, इव, महास्त्रपाणेः=महत्-विशालं अस्त्रं-प्रहरणं पाणौ-हस्ते यस्य तस्य, कुपितस्य=क्रुद्धस्य, तस्य=त्वत्तातस्य द्रोणाचार्यस्य, एते=भीमार्जुनकृष्णाः, अपि, किम्, तुलाम्=सादृश्यम्-साम्यम्, उपयान्ति=गच्छन्ति ? नैवेत्यर्थः। तु=किन्तु, यदा=यस्मिन् समये, शोकोपरुद्धहृदयेन=शोकेन उपरुद्धम्-व्याप्तं हृदयम्-चेतः यस्य तेन; (तेन=आचार्यद्रोणेन), शस्त्रम्=आयुधम्, त्यक्तम्=परित्यक्तम्, तदा=तस्मिन्काले, रिपुणा=शत्रुणा, धृष्टद्युम्नेन इत्यर्थः, अस्य=तव पितुः—द्रोणाचार्यस्य, अतिघोरम्=नितरां दारुणं-शिरश्छेदनरूपं कर्म—विनाशः, विहितम्=कृतम् ॥१०॥

हिन्दी-अनुवाद—संख्ये=युद्ध में, धूर्जटेः=भगवान् शंकर के, इव=समान; महास्त्रपाणेः—महान् अस्त्र को धारण करने वाले, कुपितस्य=क्रोधित, तस्य=तुम्हारे पिता द्रोणाचार्य की, एते=ये—भीम, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण तीनों; अपि=भी, किम्—क्या, तुलाम्=तुलना अथवा समानता को, उपयान्ति=प्राप्त कर सकते हैं ? अर्थात् कभी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तु=किन्तु, यदा=जब; शोकोपरुद्धहृदयेन=शोक से आक्रान्तहृदयवाले तुम्हारे पिता द्रोण ने, शस्त्रम्=शस्त्र को, त्यक्तम्=त्याग दिया, तदा—तब, रिपुणा—शत्रु-धृष्टद्युम्न के द्वारा; अस्य=आचार्य द्रोण का, अतिघोरम्=अत्यन्त दारुण (शिर काट देने वाला) कार्य, विहितम्=किया गया ॥१०॥

भावार्थ—युद्ध में शिव जी के सदृश महान् अस्त्र को धारण करने वाले; क्रोधित हुये आपके पिता जी की समानता तो ये तीनों (भीम, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण) कभी भी नहीं कर सकते थे। किन्तु जब उन्होंने शोक-संतप्त होकर अस्त्र अथवा शस्त्र का परित्याग कर दिया तो उस समय अवसर पाकर शत्रु (धृष्टद्युम्न) ने उनका वध कर दिया।

अलंकार—"धूर्जटेः इव" में 'उपमा' अलङ्कार है।

छन्दः—इसमें "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—महास्त्रपाणेः=महत् अस्त्रं पाणौ यस्य तस्य। शोकोपरुद्धहृदयेन=शोकेन उपरुद्धं हृदयं यस्य तेन।

टिप्पणियाँ—उक्त श्लोक में आचार्य द्रोण के महान् पराक्रमशाली एवं महान् शक्तिशाली होने का वर्णन किया गया है। एते=ये (भीम, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण) तीनों। महास्त्रपाणेः=महान् अस्त्र को धारण वाले। धूर्जटेः=शिव जी के। तुलाम्=तुलना या समानता को। उपयान्ति=प्राप्त होते हैं। शोकोपरुद्धहृदयेन=शोक से व्याप्त (अथवा संतप्त) चित्त वाले तुम्हारे पिता द्रोणाचार्य ने। अतिघोरम्=अत्यधिक भीषण कर्म–शिर को काट लेने रूपी कार्य को। विहितम्=किया ॥१०॥

अश्वत्थामा—किं पुनः कारण शोकस्याऽस्त्रपरित्यागस्य वा ?

सूतः—ननु कुमार एव कारणम्।

अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ?

सूतः—श्रूयताम् (अश्रूणि विमुच्य)—

> अश्वत्थामाहतं इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा
> स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा।
> तच्छ्रुत्वाऽसौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः
> शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ॥११॥

अश्वत्थामा—शोक अथवा शस्त्रत्याग का कारण क्या था ?

सूत—बस, कुमार ही कारण थे।

अश्वत्थामा—मैं ही कैसे ?

सूत—सुनिये (आँसुओं को बहाकर)—

अन्वयः—सत्यवाचा पृथासूनुना 'अश्वत्थामा हतः' इति स्पष्टं उक्त्वा शेषे गज इति स्वैरं व्याहृतम् किल, तत् श्रुत्वा तस्य राज्ञः प्रत्ययात् दयित-तनयः असौ आजौ शस्त्राणि च नयनसलिलं अपि तुल्यं मुमोच ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—सत्यवाचा=सत्यम् अवितथम् वाक्–वाणी यस्यासौ तेन, पृथासूसुना=पृथायाः–कुन्त्याः सूनुः–पुत्रः इति पृथासूनुः तेन–युधिष्ठिरेण, 'अश्वत्थामा=द्रोणाचार्यपुत्रः, हतः=घातितः', इति=एवम्, स्पष्टम्=उच्चैः स्वरेण–सुस्पष्टं यथास्यात्तथा, उक्त्वा=युद्धस्थले द्रोणान्तिके अभिधाय, शेषे=

वचमसमाप्तौ च, 'गजः=हस्ती,' इति=एतत्, स्वैरम्=मन्दम् अस्पष्टमित्यर्थः), व्याहृतम्=उक्तम् किलेति पादपूर्तौ, तत्=‘अश्वत्थामा हतः’ इति वाक्यांशम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, तस्य=सत्यवाचः, राज्ञः=युधिष्ठिरस्य, प्रत्ययात्=विश्वासात्, दयिततनयः=दयितः-प्रियः तनयः-पुत्रः यस्य सः, असौ=सः द्रोणः, आजौ=युद्धे संग्रामे वा शस्त्राणि=आयुधानि, च, नयनसलिलम्=नयनयोः-नेत्रयोः सलिलम्-जलम्-अश्रु इत्यर्थः, अपि, तुल्यम्=सममेव-समकालमेवेत्यर्थः, मुमोच=तत्याज ।। इहाभूताहरणरूपः गर्भसन्धिः । यदाह-“अभूताहरणंछद्म” ।। दशरूपक-१।३८ में ।।११।।

हिन्दी-अनुवाद — सत्यवाचा=सत्यवादी, पृथासूनुना=कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने, ‘अश्वत्थामा, हतः=मारा गया,’ इति=ऐसा, स्पष्टम्=स्पष्टरूप से अथवा उच्चस्वर में, उक्त्वा=कहकर, शेषे=वाक्य के शेष अंश को गजः=हाथी,’ इति=यह, स्वैरम्=धीरे से, व्याहृतम्=कहा । किल=इसका प्रयोग पादपूर्ति की दृष्टि से किया गया है । तत्=‘अश्वत्थामा मारा गया’ वाक्य के इस पूर्व भाग को, श्रुत्वा=सुनकर, तस्य=उस, राज्ञः=राजा (युधिष्ठिर) के, प्रत्ययात्=विश्वास से, दयिततनयः=पुत्र (अश्वत्थामा) से प्रेम करने वाले; असौ=इस द्रोण ने, आजौ=युद्ध में, शस्त्राणि=शस्त्रों को, च=और, नयनसलिलम्=अश्रुधारा को, अपि=भी, तुल्यम्=एक साथ ही, मुमोच=छोड़ा ।।११।।

भावार्थ—जब सत्यवादी युधिष्ठिर ने आचार्य द्रोण के समक्ष पहुंचकर उच्चस्वर में “अश्वत्थामा मारा गया” ऐसा कहकर अन्त में धीरे से ‘हाथी’ ऐसा कहा तब सत्यवादी राजा युधिष्ठिर के मुख से अपने पुत्र के विषय में ऐसी अमङ्गल सूचक बात को सुनकर तथा उस पर विश्वासकर उन्होंने अपनी आँखों से आँसुओं और अपने हाथों से शस्त्रों-दोनों को ही एक साथ युद्धस्थल में छोड़ा ।।११।।

छन्दः—“उक्त पद्य में “मन्द्राक्रान्ता” नामक छन्द है ।

टिप्पणियां—सत्यवाचा=सत्य बोलना ही जिसका व्रत है ऐसे सत्यवक्ता । पृथा=कुन्ती । स्पष्टम्=स्पष्टरूप से अर्थात् उच्च स्वर से । उक्त्वा=(युद्ध स्थल में आचार्य द्रोण के समीप स्थित होकर)-कहकर । शेषे=वाक्य के

शेष भाग 'गजः' को। स्वैरम्=धीमे स्वर में। व्याहृतम्=कहा। दयित-तनयः=पुत्रवत्सल। प्रत्ययात्=विश्वास से। तुल्यम्=एक साथ ही। मुमोच=छोड़े ॥११॥

अश्वत्थामा - हा तात ! हा पुत्रवत्सल ! हा वृथामदर्थपरित्यक्त जीवित ! हा शौर्यराशे ! हा शिष्यप्रिय ! हा युधिष्ठिरपक्षपातिन् ! (इति रोदिति)।

सूतः—कुमार ! अलमत्यन्तपरिदेवनकार्पण्येन।

अश्वत्थामा —

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन
तात ! त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः।
जीवाम्यहं पुनरयं भवता वियुक्तः
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः ॥१२॥

(इति मोहमुपगतः।)

अश्वत्थामा—हा पिता जी ! हा पुत्रप्रेमी ! हा व्यर्थ में ही मेरे लिये प्राणों का त्याग करने वाले ! हा पराक्रम की राशि ! हा शिष्य के प्रति प्रेम रखने वाले ! हा युधिष्ठिर का पक्षपात करने वाले ! (ऐसा कहकर रोता है।)।

सूतः – कुमार ! अत्यधिक विलाप और कातरता से बस (करो)।

अश्वत्थामा—

अन्वयः—हे तात ! मम मृषा वधं श्रुत्वा सुतवत्सलेन त्वया शरैः सह असवः विमुक्ताः। पुनः अयं अहं भवतावियुक्तः जीवामि। तत् क्रूरे मयि तव मुधा पक्षपातः ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे तात् !=हे पितः !, मम=अश्वत्थाम्नः, मृषा=मिथ्यैव, वधम्=हननम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, सुतवत्सलेन=सुते-पुत्रे, मयीत्यर्थः, वत्सलः-स्नेहप्रवणः, इति सुतवत्सलः, तेन, त्वया=भवता, शरैः=बाणैः, सह=

सार्धम्, असवः=प्राणाः, अपि, विमुक्ताः=परित्यक्ताः। पुनः=किन्तु, अयम्=एषः, अहम्=तव पुत्रः अश्वत्थामा, भवता=त्वया, वियुक्तः=विरहितः, अपि; जीवामि=प्राणिमि। तत्=तस्मात्, क्रूरे=निष्ठुरे, मयि=अश्वत्थाम्नि, तव=भवतः, मुधा=वृथैव, पक्षपातः=स्नेहभावः वात्सल्यं वा, आसीदिति शेषः॥१२॥

हिन्दी-अनुवाद—हे तात !=हे पिता जी !, मम=मेरा, मृषा=असत्य, वधम्=वध, श्रुत्वा=सुनकर, सुतवत्सलेन=(मुझ) पुत्र से स्नेह करने वाले, त्वया=आपने, शरैः=वाणों के, सह=साथ, असवः=प्राणों को, विमुक्ताः=छोड़ दिया। पुनः=किन्तु, अयम्=यह, अहम्=मैं, भवता=आपके द्वारा, वियुक्तः=बिछुड़ा हुआ होने पर भी, जीवामि=जी रहा हूँ। तत्=ऐसी स्थिति में, क्रूरे=निर्दयी, मयि=मेरे प्रति, तव=आपका, मुधा=व्यर्थ ही, पक्षपातः=स्नेह का भाव था॥१२॥

भावार्थ—हे पिता जी ! आपने मेरे मरण का असत्य वृत्तान्त सुनकर पुत्रप्रेम के कारण अपने बाण तथा प्राण दोनों का एक साथ ही त्याग कर दिया। किन्तु आपका सत्य मरणवृतान्त सुनकर भी मैं जीवित हूँ। ऐसे मुझको धिक्कार है। मुझ जैसे निष्ठुर हृदय वाले पुत्र पर आपका उस प्रकार का स्नेह वस्तुतः निरर्थक ही था॥१२॥

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाता है।)

अलंकार—उक्त पद्य में "सहोक्ति" अलंकार है।

लक्षण—"सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जनरञ्जनः"।

छन्द—इसमें "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित !=वृथा एव मदर्थं परित्यक्तं जीवितम् येन स तत्सम्बुद्धौ। अत्यन्तपरिदेवनकार्पण्येन=अत्यन्तं परिदेवनं (विलापः) एव कार्पण्यम् तेन॥

टिप्पणियाँ—वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित ! व्यर्थ ही मेरे कारण जीवन अथवा प्राणों का त्याग करने वाले ! परिदेवनम्=शोक अथवा विलाप—"विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः। कार्पण्यम्=कातरता। मृषा=असत्य, मिथ्या। असवः=प्राणों को। वियुक्ताः=छोड़ दिया। जीवामि=जीवित हूँ

अर्थात् प्राणों को धारण किये हुये हूँ। क्रूरे=निष्ठुर अथवा निर्दयी हृदय वाले। पक्षपातः=पक्षपातवात्सल्य अथवा स्नेह का भाव। मोहम्=मूर्च्छा को। उपगतः=प्राप्त हो गया॥

सूत—समाश्वसितु समाश्वसितु कुमारः।

(ततः प्रविशति कृपः।)

कृपः—(सोद्वेगं निश्वस्य)

धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग् भूपतीन् विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान्।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः॥१३॥

सूतः—कुमार! धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये।

(तदनन्तर कृपाचार्य प्रवेश करते हैं।)

कृपः—(उद्वेग के साथ गहरा श्वास लेकर)—

अन्वयः—सानुजं कुरुपतिं धिक्, अजातशत्रुं धिक्, विफलशस्त्रभृतः भूपतीन् धिक्, अस्मान् धिक्। खलु यैः तदा द्रुपदात्मजायाः च अद्य द्रोणस्य केशग्रहः लिखितैः इव वीक्षितः॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—सानुजम्=अनुजैः भ्रातृभिः सहितम्—सानुजम् सभ्रातरम् कुरुपतिम्=कुरुनाथं दुर्योधनम्, धिक्=धिक्कारः, अस्तीति सर्वत्र वाक्य समाप्तौ योज्यम्, अजातशत्रुम्=न जातः शत्रुः यस्य तम्-युधिष्ठिरमित्यर्थः, धिक्=धिक्कारः, अस्ति, विफलशस्त्रभृतः=विफलं-निष्फलं शस्त्रं आयुधं बिभ्रति धारयन्तीति तान् विफलशस्त्रभृतः—वृथाशस्त्रधारिणः, भूपतीन् राज्ञः, धिक् अस्तीति शेषः, अस्मान्=कृपादीन्=महाभारतवीरान्, धिक्, अस्ति। खलु, इति निश्चये, यैः=एतैः योद्धृभिः, तदा=पूर्वम्—"द्यूतकाले" इत्यर्थः, द्रुपदात्मजायाः=द्रौपद्याः, च, अद्य=अस्मिन्=दिवसे, द्रोणस्य=भगिनीपतेः द्रोणाचार्यस्य, केशग्रहः=कचाकर्षणम्, लिखितैः इव=चित्रस्थैः इव, वीक्षितः=अवलोकितः—दृष्टः॥१३॥

हिन्दी-अनुवाद—सानुजम्=भाइयों सहित, कुरुपतिम्=कुरुराज दुर्योधन को; धिक्=धिक्कार है। अजातशत्रुम्=युधिष्ठिर को, धिक्=धिक्कार है। विफलशस्त्रभृतः=निरर्थक ही शस्त्रों को धारण करने वाले, भूपतीन्=राजाओं को, धिक्=धिक्कार है। अस्मान्=हम सभी को धिक्=धिक्कार है। खलु=निश्चय ही, यैः=जिन्होंने, तदा=उस समय, द्रुपदात्मजायाः=द्रौपदी के, च=और, अद्य=आज, द्रोणस्य=द्रोणाचार्य के, केशग्रहः=केशों के पकड़े तथा खींचे जानेको, लिखितैः=चित्र में स्थित हुये के, इव=समान (अर्थात् चुपचाप), वीक्षितः=देखा है ॥१३॥

भावार्थः—दुःशासन आदि भाइयों सहित कौरव-नरेश दुर्योधन को धिक्कार है। अजातशत्रु युधिष्ठिर को धिक्कार है। निरर्थक ही शस्त्रों को धारण करने वाले राजाओं को धिक्कार है, हम सभी को धिक्कार है कि जिन्होने पहले चित्रलिखित के सदृश चुपचाप बैठे रहकर द्रौपदी के केशग्रह (बाल पकड़कर घसीटा जाना) को देखा था तथा आज द्रोणाचार्य के केशग्रह को चुपचाप देखा है ॥१३॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "काव्यलिङ्ग" नामक अलंकार है।

छन्द—इसमें 'वसन्ततिलका' नामक छन्द है।

समास—अजातशत्रुम्=न जातः शत्रुः यस्य तम्। विफलशस्त्रभृतः=विफलानि शस्त्राणि बिभ्रतीति, तान्॥

टिप्पणियाँ—सोद्वेगम्=उद्वेग अथवा कष्ट के साथ। निःश्वस्य=दीर्घ श्वास लेकर। अजातशत्रुम्=जिसका आज तक कोई भी शत्रु नहीं ऐसे युधिष्ठिर को। विफलशस्त्रभृतः=निरर्थक ही शस्त्रों को धारण करने वाले। केशग्रहः=केशों का पकड़ा जाना। लिखितैः इव=चित्र में विद्यमान लोगों के समान चुपचाप बैठे हुये। जिस समय द्रौपदी के केशों तथा वस्त्र को खींचा जा रहा था उस समय दुर्योधन की सभा में अनन्य वीर गण भी उपस्थित थे। किन्तु उस समय किसी भी वीर ने उस दुष्कृत्य को रोकने के लिये एक शब्द तक न कहा और न कोई हिला-डुला ही। आज आचार्य द्रोण के केशग्रह के समय भी ऐसा ही हुआ (अर्थात् धृष्टद्युम्न ने उनके केशों को

खींचकर उनके सिर को काट लिया।)। किन्तु आज भी किसी ने टस से मस न की। इसी दृष्टि से कृपाचार्य द्वारा उन लोगों को "चित्र में चित्रित हुये के सदृश" कहा जा रहा है। वीक्षितः=देखा ।।१३।।

तत्कथं न खलु वत्सं द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम्। अथवा हिमवत्सार-गुरुचेतसि ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशङ्के। किं तु पितुः परिभवमदृशमुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति।
अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते।
केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन्नूनं निःशेषिताः प्रजाः ।।१४।।

तो फिर आज पुत्र अश्वत्थामा को किस भाँति देख सकूँगा? अथवा हिमालय के समान सुदृढ़ बली तथा उदारचेता और लोकमर्यादा को जानने वाले उस अश्वत्थामा में मुझे शोक के आवेग की आशङ्का नहीं करनी चाहिये। किन्तु पिता (द्रोण) के अनुचित अपमान को सुनकर न जाने वह क्या कर बैठेगा? यह मैं नहीं जानता। अथवा—

अन्वयः—एकस्य अयं दारुणः पाकः तावत् भुवि वर्तते, द्वितीये अस्मिन् केशग्रहे (सति) प्रजाः नूनं निःशेषिताः ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या—एकस्य=पूर्वं कृतस्य द्रौपद्याः केशग्रहस्य, अयम्=एषः युद्धरूपः, दारुणः=भयंकारः, पाकः=परिणामः, तावत्=सम्प्रति, भुवि=पृथिव्याम्, वर्तते=प्रवर्त्तते, द्वितीये, अस्मिन्=एतस्मिन् द्रोणसम्बन्धिनीत्यर्थः, केशग्रहे=केशापकर्षणे सति, प्रजाः=जनाः, नूनम्=निश्चयेन, निःशेषिताः=विनष्टाः भविष्यन्तीति शेषः ।।१४।।

हिन्दी-अनुवाद—एकस्य=एकद्रौपदी के केशों को खींचे जाने का, अयम्=यह, दारुणः==भयंकर, पाकः=परिणाम, तावत्=सम्प्रति, भुवि=पृथ्वी पर, वर्तते=प्रवृत्त हुआ है। द्वितीये=दूसरे, अस्मिन्=इस द्रोणसम्बन्धी, केशग्रहे=केशग्रहण के, सति=होने पर, प्रजाः=प्रजाएँ, नूनम्=निश्चय ही, निःशेषिताः=नष्ट हो जायेंगी ।।१४।।

भावार्थ—एक द्रौपद्री के केशों के खींचे जाने का भयंकर परिणाम तो यह(महाभारत) युद्ध सामने है ही। अब यह द्वितीय, आचार्य द्रोण के केशग्रह से तो मानों विश्व में प्रलय ही मच जायगी। परिणामस्वरूप सभी नष्ट हो जावेंगे ॥१४॥

छन्द—इस पद्य में "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समास—हिमवत्सारगुरुचेतसि=हिमवतः (हिमालयस्य) यत्सारम्-दाढर्यम् बलं वा तद्वद् गुरु दृढं चेतः यस्य तस्मिन्। ज्ञातलोकस्थितौ=ज्ञाता लोकस्य स्थितिः येन तस्मिन्।

टिप्पणियाँ—कथम्=किस प्रकार से। हिमवत्सारगुरुचेतसि=हिमालय के सदृश बली अथवा दृढ़ तथा विशालचित्तवाले। तस्मिन्=उस (अश्वत्थामा) में। ज्ञातलोकस्थितौ=संसार की स्थिति को भलीभाँति समझने वाले अथवा लोकमर्यादा अथवा लोक-व्यवहार से भली भाँति परिचित। शोकावेगम्=शोक का आवेश। असदृशम्=अनुचित। केशाकर्षणरूप। व्यवस्यति=करेगा, कर डालेगा। एकस्य=पहले किये गये द्रौपदी के (भरी सभा में) खींचें गये केशों का। अयम्=यह महाभारत रूप युद्ध। द्वितीये=दूसरे—इस (आचार्य द्रोण से सम्बन्धित) केशों के खींचे जाने का। प्रजाः=सम्पूर्ण लोग—प्रजाएँ। निःशेषिताः=विनष्ट हो जायेंगी॥

(विलोक्य) तदयं वत्सस्तिष्ठति। यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य ससंभ्रमम्) वत्स! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

अश्वत्थामा—(संज्ञां लब्ध्वा सास्रम्) हा तात! हा सकलभुवनैकगुरो! (आकाशे) युधिष्ठिर! युधिष्ठिर!

आजन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषा—
त्सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥१५॥

(देखकर) तो यह वत्स (अश्वत्थामा) खड़ा है। तब तक मैं इसके समीप जाता हूँ। (समीप में जाकर, घबराहट के साथ) हे वत्स ! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

अश्वत्थामा—(चेतना को प्राप्त कर, अश्रुओं के साथ) हा पिता जी ! हा समस्त संसार के एकमात्र श्रेष्ठ गुरु ! (आकाश की ओर देखकर) युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर !

अन्वयः—भवता आजन्मनः वितथं न उक्तम् किल, यत् जनं न द्वेक्षि; अतः त्वम् अजातशत्रुः, तत् सर्वं मम भाग्यदोषात् द्विजवरे गुरौ ताते एक पदे एव कथं निरस्तम् ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—भवता=त्वया-युधिष्ठिरेण, आजन्मनः=जननादारभ्य; वितथम्=असत्यम्, न उक्तम्=न भाषितम्, किलेति प्रसिद्धौ, यत्=यस्मात्, जनम्=कमपि लोकम्, न, द्वेक्षि=द्वेषविषयं करोषि,अतः=अस्मात्कारणात्,त्वम्; अजातशत्रुः=न जातः-नोत्पन्नः शत्रुः यस्य तादृशः असि-(अथवा-अजातशत्रुः इत्युच्यसे इत्यभिप्रायः), किन्तु, तत्=मिथ्यावचनाभावादि, सर्वम्= निखिलम्, मम=अश्वत्थाम्नः भाग्यदोषात्=भाग्यस्य-अदृष्टस्य, दोषात् (प्रथमं तु-) द्विजवरे=ब्राह्मणश्रेष्ठे, (तत्रापि-) गुरौ=आचार्ये, (तत्रापि-) ताते= मम पितरि, एकपदे=सहसैव-अकस्मादेव, कथम्=कस्माद्धेतोः, निरस्तम्= परित्यक्तम् ? केन कारणेन भवता मिथ्याभाषणं कृतमित्यभिप्रायः ॥१५॥

हिन्दी-अनुवाद—भवता=आपने, आजन्मनः=जन्म से ही लेकर, वितथम्=असत्य भाषण न उक्तम्=नहीं किया, किल=ऐसा प्रसिद्ध है। यत्=क्योंकि, जनम्=किसी भी व्यक्ति से आप, न द्वेक्षि=द्वेष नहीं रखते हो, अतः=इसीकारण, त्वम्=आप, अजातशत्रुः=अजातशत्रु कहे जाते हो। किन्तु, तत्=वह, सर्वम्=सब, मम=मुझ अश्वत्थामा के, भाग्यदोषात्=भाग्य के दोष से, द्विजवरे=ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, गुरौ=आचार्य, ताते=मेरे पिता के सम्बन्ध में, एकपदे एव=एक साथ ही, कथम्=कैसे, निरस्तम्=छोड़ दिया गया॥ "मेरे पिता के समक्ष आप द्वारा असत्य भाषण का किया जाना सर्वथा अनुचित ही था" यह अभिप्राय है॥१५।

भावार्थ—आप जन्म से ही कभी झूठ नहीं बोले। आप किसी से द्वेष भी नहीं करते है, इसी कारण आपको 'अजातशत्रु' नाम से भी कहा जाता है। किन्तु मेरे दुर्भाग्य से मेरे पिता कि जो जगत् के गुरु थे, श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, उसके लिये आपने अपनी सत्यवादिता तथा अजातशत्रुता आदि का परित्याग एकाएक ही कैसे कर दिया ?

अलङ्कार—उक्त पद्य में 'परिकर' नामक अलंकार है। लक्षण—"अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे"।

छन्द—इसमें "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

टिप्पणियाँ—संज्ञाम्—चेतना को। सास्रम्—अश्रुधारा के साथ। सकलभुवनैकगुरो=सम्पूर्ण लोकों में सर्वश्रेष्ठ—अथवा समस्त विश्व के एकमात्र आचार्य। आजन्मनः=जन्म के समय से ही लेकर। एकपदेएव=एकसाथ ही-सहसाही—अकस्मात् ही। कथम्=किस कारण से। निरस्तम्=छोड़ दिया ॥१५॥

सूतः—एष ते मातुलः शारद्वतः पार्श्वे तिष्ठति।

अश्वत्थामा—(पार्श्वे विलोक्य सबाष्पम्) मातुल ! मातुल !

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना
यः एकः शूराणां गुरुसमरकण्डूनिकषणः।
परीहासाश्चित्राः सततमभवन्येन भवतः
स्वसुःश्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल गतः॥१६॥

सूतः–कुमार ! यह आपके मामा शारद्वात (कृपाचार्य) पास में खड़े हैं।

अश्वत्थामा–(इधर-उधर देखकर, अश्रुधारा के साथ) मामा ! मामा !

अन्वयः—येन सैन्यपतिना सह अद्य त्वं रणभुवं गतः, यः एकः शूराणां गुरुसमरकण्डूनिकषणः, येन भवतः चित्राः परीहासाः सततं अभवन्, हे मातुल ! ते सः श्लाघ्यः स्वसुः भर्ता क्व नु खलु गतः ? ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—येन, सैन्यपतिना=सेनानायकेन, सह=सार्धम्, अद्य, त्वम्=भवान्, रणभुवम्=युद्धभूमिम्, गतः=यातः असि, यः=यो वै, एकः=एकाकी, शूराणाम्=वीराणाम्, गुरुसमरकण्डूनिकषणः=गुरुः-विशालः समरः संग्रामः एव कण्डूः-कण्डूतिः तस्याः निकषणः-निवारकः आसीदिति शेषः, येन=येन च सह, भवतः=श्री मतस्तव, चित्राः=अनेकरूपाः, परीहासाः=मनोविनोदादयः उपहास विलासाः, सततम्=निरन्तरम्, अभवन्=भवन्तिस्म; हे मातुल !=हे मातुर्भ्रातः, ते=तव, सः=जगद्विदितः, श्लाघ्यः=प्रशंसनीयः, स्वसुः=भगिन्याः, भर्ता=पतिः, क्व=कुत्र, नु खलु-इति प्रश्ने, गतः=प्रयातः ?

हिन्दी-अनुवाद—येन=जिस, सैन्यपतिना=सेनानायक के, सह=साथ, अद्य=आज, त्वम्=आप, रणभुवम्=युद्धस्थल में, गतः=गये थे, येन=जो, एकः=अकेला ही, शूराणाम्=योद्धाओं की, गुरुसमरकण्डूनिकषणः=भारी युद्ध रूपी खुजली को मिटा देने में समर्थ थे, येन=और जिसके साथ, भवतः=आपके, चित्राः=अनेक प्रकार के, परीहासाः=मनोविनोद (हँसी-मजाक) आदि, सततम्=निरन्तर, अभवन्=हुआ करते थे। हे मातुल !=हे मामा, ते=आपके, सः=जगतप्रसिद्ध, श्लाघ्यः=प्रशंसनीय, स्वसुः=बहन के, भर्ता=पति, क्व नु खलु=कहाँ, गतः=चले गये ?

भावार्थ—जिन सेनापति के साथ आज आप युद्ध में गये थे, जो अकेले ही शूरवीरों की बढ़ी हुयी युद्ध की खुजलाहट को दूर करने वाले थे। जिनके साथ आपकी नित्य ही नाना प्रकार की हँसी-मजाक हुआ करती थी वे आप के भगिनीपति (मेरे पिता आचार्य द्रोण) कहाँ चले गये ?

अलंकार—यहाँ एक ही द्रोण का अनेक प्रकार से उल्लेख किये जाने से "उल्लेख" नामक अलंकार है।

छन्द—इसमें "शिखरिणी" छन्द है।

समास—गुरुसमरकण्डूनिकषणः=गुर्वी या समरस्यकण्डूः—इति—गुरुसमरकण्डूः—तस्याः निकषणः।

टिप्पणियाँ—शारद्वतः=कृपाचार्य। ये 'शरद्वत्' नामक मुनि के पुत्र थे। इसी कारण उन्हें शारद्वत् कहा गया है। गुरुसमरकण्डूनिकषणः—(वीरों की)

युद्धरूपी खुजलाहट को दूर करदेने वाले। अथवा-युद्ध सम्बन्धी महान् खुजलाहट को दूर करदेने में समर्थ। परीहासाः=हँसी-मज़ाक, मनोविनोद आदि। चित्राः=नाना प्रकार के।

कृपः—परिगतपरिगन्तव्य एव भवान्। तदलमत्यन्तशोकावेगेन।

अश्वत्थामा—मातुल! परित्यक्तमेव मया परिदेवनम्। एषोऽहं सुतवत्सलं तातमेवानुगच्छामि।

कृपः—वत्स! अनुपपन्नं भवद्विधानामिदम्।

सूतः—अलमतिसाहसेन।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत!

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः।
करोमि विरहं तस्य वत्सलस्य कथं पितुः ॥१७॥

कृप—आप जानने योग्य सभी बातों से परिचित ही हैं। अतः अत्यन्त शोक के आवेग से बस कीजिये।

अश्वत्थामा—मामा! मैंने विलाप करना छोड़ ही दिया है। अब मैं भी पुत्र-प्रेमी पिता का ही अनुगमन करता हूँ।

कृप—पुत्र! आप जैसों के लिये यह उचित नहीं है।

सूत—कुमार! अत्यधिक साहस करने से बस (अर्थात् दुःसाहस न करो)।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत!

अन्वयः—तातः मद्वियोगभयात् इतः परलोकं गतः। तस्य वत्सलस्य पितुः सदा अविरहं करोमि ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—तातः=पिता, मद्वियोगभयात्=मम-अश्वत्थाम्नः वियोगात्-विरहात् भयम् तस्मात्, इतः=अस्मात् लोकात्, परलोकम्=स्वर्गमित्यर्थः, गतः=प्राप्तः, तस्य=तादृशस्य, वत्सलस्य=स्नेहशीलस्य, पितुः=द्रोणस्य, सदा=सर्वदा, अविरहम् अवियोगम्-वियोगाभावं वा, करोमि स्वकीयान् प्राणान् त्यक्त्वा पितुः समीपमेव गच्छामीति भावः ॥१७॥

हिन्दी-अनुवाद—तातः=(मेरे) पिता, मद्वियोगभयात्=मेरे वियोग के भय से, इतः=इस संसार से, परलोकम्=परलोक को, गतः=चले गये। तस्य=उन, वात्सलस्य=पुत्रप्रेमी, पितुः=पिता (द्रोण) का, सदा=जीवनपर्यन्त, अविरहम्=अवियोग, करोमि=करता हूँ १७।।

भावार्थ—मेरे वियोग के कारण पिताजी ने अपने प्राणों का त्याग कर दिया। ऐसे पुत्रप्रेमी पिता को मेरा वियोग न सताए, ऐसा काम मैं करता हूँ ।।१७।।

अलङ्कार—उक्त पद्य में "काव्यलिङ्ग" अलंकार है।

छन्द—इसमें "पथ्यावक्त्र" छन्द है।

समास—परिगतपरिगन्तव्यः=परिगतः (परिज्ञातः) परिगन्तव्यः (ज्ञातव्यः विषयः) येनासौ तथा। मद्वियोगभयात्=मम वियोगः—मद्वियोगः, ममवियोगाद्भयम्—इति।

टिप्पणियाँ—परिगतपरिगन्तव्यः=जान लिया है सम्पूर्ण जानने योग्य वृत्तान्त को जिसने ऐसे (आप)। परिदेवनम्=विलाप। अनुगच्छामि=अनुसरण करता हूँ। सुतवत्सलम्=पुत्रप्रिय। अनुपपन्नम्=उचित नहीं, अनुचित। भवद्विधानाम्=आप जैसों के लिये। मद्वियोगभयात्=मेरे वियोग के हो जाने के भय के कारण। वत्सलस्य=स्नेही-प्रेमी। इतः=इस लोक से। अविरहम्=अवियोग-साथ (अर्थात् मैं स्वयं ही अपने प्राणों का त्याग कर सदैव के लिये उन्हीं के पास जा रहा हूँ।)।

कृपः—वत्स ! यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति। पश्य—

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ।।१८।।

कृप—जब तक यह संसार विद्यमान है तब तक यह लोक-व्यवहार प्रसिद्ध ही है कि—पुत्रों के द्वारा दोनों लोकों में (अर्थात् इस और परलोक

दोनों में) अपने पिता का अनुवर्त्तन (आज्ञापालन तथा हितसाधन) किया जाना चाहिये । देखो—

अन्वयः—निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः तस्य उपकारे त्वं किम् जीवन् शक्तः किम् उत अन्यथा शक्तः ? ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—निवापाञ्जलिदानेन=निवापः—पितृदानं तस्य अञ्जलिः जलाञ्जलिरित्यर्थः (पितृतर्पणमिति यावत्) तस्य दानं—उद्दिश्य समर्पणम् (तस्य तर्पणादिषुजलाञ्जलिप्रदानेन—इति भावः), केतनैः=गृहैः—तन्निर्माणैर्वा—पितृस्मारकदेवगृहपाठशालादिभिरितियावत्—अथवा —तमुद्दिश्यगृहदानादिभिः—श्राद्धाङ्गभूतैः ब्राह्मणभोजनादिभिरित्यर्थः, श्राद्धकर्मभिः= श्राद्धाणि—पिण्डदानानि एव कर्माणि कृत्यानि तैः, तस्य=मृतस्य स्व पितुरित्यर्थः, उपकारे=कल्याणे, त्वम्=तत्पुत्रः—अश्वत्थामा, किम्, जीवन्=प्राणान् धारयन्, शक्तः=समर्थः, किम्, उत=अथवा, अन्यथा=अन्यप्रकारेण—प्राणान् त्यक्त्वा शक्तः=समर्थः ? जीवन् एव तस्योपकर्तुं शक्नोषि न तु मरणेनेत्यभिप्रायः ॥१८॥

हिन्दी-अनुवाद—निवापाञ्जलिदानेन=पितरों को दी जाने वाली जल की अञ्जलि के दान से, केतनैः=ब्राह्मण-भोजन अथवा उनकी स्मृति में दिये गये गृह दान आदि—अथवा—पिता की स्मृति में मन्दिर, पाठशाला आदि का निर्माण आदि कराने, और श्राद्धकर्मभिः=पिण्डदानादि श्राद्ध-कर्मों के द्वारा, तस्य=उन दिवंगत पिता का, उपकारे=उपकार करने में, त्वम्=तुम, किं जीवन् शक्तः=क्या जीवित रहते हुये समर्थ हो सकते हो, उत=अथवा, अन्यथा शक्तः=दूसरे रूप में (अर्थात् मरकर) समर्थ हो सकते हो ?

भावार्थ—जलाञ्जलि देना, तर्पण करना, ब्राह्मणों को खिलाना, श्राद्ध करना आदि क्रियाओं के द्वारा तुम इस लोक में रहते हुये ही अपने पिता का उपकार कर सकते हो । यदि मरकर उनके समीप पहुँच भी गये तो उससे उनका क्या उपकार कर सकोगे ? अतः तुम्हारे लिये जीवित रहना ही श्रेयस्कर है ।

छन्द—उक्त पद्य में "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समासः—निवापाञ्जलिदानेन=निवापस्यअञ्जलिः निवापाञ्जलिः तस्य दानम्—इति निवापाञ्जलिदानम्—तेन। श्राद्धकर्मभिः=श्राद्धानि एव कर्माणि—इति तैः।

टिप्पणियाँ—लोकयात्रा=लोकव्यवहार। लोकद्वये=इस लोक तथा परलोक दोनों में। अनुवर्त्तनीयः=पिता के जीवित रहते हुये इस लोक में आज्ञापालन आदि के द्वारा आचरण करना चाहिये तथा पिता के परलोक चले जाने पर जलाञ्जलिप्रदान आदि के द्वारा उनका हितसाधन करना चाहिये। यही पुत्र का कर्त्तव्य है। निवापाञ्जलिः=जलाञ्जलि आदि तर्पण कार्य (पितृतर्पण)—"पितृदानं निवापः स्यात्"—इत्यमरः। केतनैः=घरों, देवमन्दिरों, पाठशालाओं आदि का पिता की स्मृति में निर्माण कराने आदि के द्वारा। शक्तः=समर्थ ॥१८॥

सूतः—आयुष्मन्! यथैव मातुलस्ते शारद्वतः कथयति तत्तथा।

अश्वत्थामा—आर्य! सत्यमेवेदम्। किंत्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम्। तद्गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तथाविधमपि पितरं द्रक्ष्यामि। (उत्तिष्ठन् खड्गमवलोक्य विचिन्त्य) कृतमद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया। भगवन् शस्त्र!

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि
प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः।
परित्यक्तं तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भया—
द्विमोचे शस्त्र त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते ॥१९॥

(इति उत्सृजति।)

सूत—आयुष्मन्! तुम्हारे मामा शारद्वत जैसा कह रहे हैं, वह वैसा ही हैं (अर्थात् वह ठीक ही है।)।

अश्वत्थामा—आर्य! यह सच ही है। किन्तु शोक-भार के अत्यधिक असह्य होने के कारण पिता से वियुक्त हुआ मैं एक क्षण के लिये भी मैं प्राण

धारण करने में समर्थ नहीं हूं। अतः मैं उस ही स्थान पर जाता हूँ कि जहाँ उस दशा में पड़े हुये (अर्थात् मृत) पिता को देखूँगा। (उठते हुये तलवार की ओर देखकर तथा कुछ सोचकर) अब शस्त्रग्रहण करने के उपहास से बस (अर्थात् अब इस शस्त्र के ग्रहण करने से क्या प्रयोजन ?)। हे भगवन् शस्त्र !

अन्वयः—येन परिभवभयात् नोचितं अपि गृहीतं आसीः, यस्य प्रभावात् तव कश्चित् विषयः न (इति) न खलु अभूत्, तेन त्वं सुतशोकात् परित्यक्तं असि, न तु भयात्। (अतः) हे शस्त्र अहं अपि त्वां विमोक्ष्ये, यतः भवते स्वस्ति अस्तु ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या—येन=मत्तातेन द्रोणाचार्येण, परिभवभयात्=परिभवो-विमानना तस्य भयात्—द्रुपदकृतपरिभवखेदात्—शत्रुकृततिरस्कारभीत्याऽऽपद्धर्म-तया, नोचितम्='ब्राह्मणस्य शस्त्रग्रहणं नोचितं, क्षत्रियधर्मत्वात्' इत्यनया दृष्ट्या—अनुचितम्, अपि त्वमितिशेषः, गृहीतम्=धृतम् आत्तं वा, आसीः= अभूः। यस्य=आचार्यद्रोणस्य—एकवीरस्य मम पितुरित्यर्थः, प्रभावात्= सामर्थ्यात्, तव=भवतः, कश्चित्=कोऽपि, विषयः=लक्ष्यः, न=नहि, (इति =एतत्), खलु=इति निश्चये, न अभूत्=न आसीत्, (सर्वोऽपि तव विषय एवासीदिति भावः)। तेन=तादृशेन मम पित्रा, त्वम्=भवान्, सुतशोकात्= पुत्रमरणजन्यदुःखात्, परित्यक्तम्=विसृष्टम्, असि, न तु, भयात्=शत्रुभीतेरि-त्यर्थः। अतः=अस्मात् कारणात्, हे शस्त्र ! =रे आयुध !, अहम्=तत्पुत्रोऽश्व-त्थामा, अपि, त्वाम्=भवन्तम्—शस्त्रमित्यर्थः विमोक्ष्ये=त्यजामि, यतः=तस्मात् भवते=श्रीमते—शस्त्राय, स्वस्ति=कल्याणम्, अस्तु=भवतु ॥१९॥

हिन्दी-अनुवाद—येन=जिस (द्रोणाचार्य) के द्वारा, परिभवभयात्=अपने तिरस्कार की आशंका से, अनुचितमपि="ब्राह्मण के लिये शस्त्र का ग्रहण किया जाना उचित नहीं है क्योंकि यह क्षत्रिय का धर्म है" इस दृष्टि से ब्राह्मण होने के कारण उचित न होने पर भी, गृहीतम्=(जिस शस्त्र को) धारण किया गया, आसीः=था, यस्य=जिस (द्रोणाचार्य) के, प्रभावात्=साम-

र्थ्य से, तव=तुम्हारा, कश्चित्=कोई भी, विषयः=लक्ष्य, न=नहीं था, (इति=ऐसा), न खलु आसीत्=निश्चय ही नहीं था (अर्थात् सभी लक्ष्य बन सकते थे,) तेन=उन द्रोणाचार्य के द्वारा, त्वम=तुम, सुतशोकात्=मुझ पुत्र के (असत्य) मरण सम्बन्धी दुःख के कारण, परित्यक्तम्=छोड़ दिये गये, असि=हो, न तु =न कि, भयात्=भय से। अतः=अतएव, हे शस्त्र!=हे आयुध! अहमपि=मैं भी, त्वाम्=तुमको, विमोक्ष्ये=छोड़ रहा हूं। यतः=जिससे कि, भवते=आपका, स्वस्ति=कल्याण, अस्तु=हो ॥१६॥

भावार्थ—जिन (मेरे पिता) द्रोणाचार्य ने अपने अपमान के कारण क्रोधित होकर (ब्राह्मण के लिये शस्त्र का ग्रहण किया जाना) अनुचित होने पर भी (तुझ शस्त्र को) ग्रहण किया था। जिन (आचार्य द्रोण) की सामर्थ्य से (हे शस्त्र!) तुम सर्वत्र (देवताओं, दैत्यों और मानवों में—सभी में) अकुण्ठित-गति वाले थे। ऐसे मेरे पिता (आचार्य द्रोण) ने (असत्य रूप से कथित) मुझ पुत्र के मरण के समाचार को ज्ञात कर तुम्हारा त्याग कर दिया था, किसी के भय के कारण तुम्हारा त्याग नहीं किया था। अतः हे शस्त्र! मैं भी तुम्हारा त्याग करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो ॥१९॥

अलङ्कार—इसमें "परिसंख्या" नामक अलंकार है।

छन्द— इसमें—"शिखरिणी" छन्द है।

टिप्पणियाँ—अतिदुर्वहत्वात्=किसी प्रकार भी सहन किये जाने में समर्थ न होने के कारण। उद्देशम्=युद्धभूमि अथवा युद्धस्थान पर। तथाविधम्=उस प्रकार के—अर्थात्—मृत (पिता) को। शस्त्रग्रहणविडम्बना=शस्त्रधारण करने का ढोंग। नोचितम्=अनुचित। आचार्य द्रोण ब्राह्मण थे। अस्त्र ग्रहण करना क्षत्रियों के लिये ही उचित है, ब्राह्मणों के लिये नहीं। अतः उनके लिये शस्त्र का ग्रहण किया जाना अनुचित होने पर भी। परिभवभयात्=तिरस्कार अथवा अपमान के भय से। प्रभावात्=सामर्थ्य से, प्रभाव से। विषयः=लक्ष्य। विमोक्ष्ये=छोड़ रहा हूँ ॥१९॥

(इति उत्सृजति।)

(नेपथ्ये)

भो भो राजानः ! कथमिह भवन्तः सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवममुना नृशंसेन प्रयुक्तमुपेक्षन्ते ।

अश्वत्थामा—(आकर्ण्य शनैः वस्त्रं स्पृशन्) किं गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्—
द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य ।
मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं
धृष्टद्युम्नः स्वशिविरमयं याति सर्वे सहध्वम् ॥२०॥

[ऐसा कहकर (अस्त्र) छोड़ देता है]

[नेपथ्य (पर्दे के पीछे) में]

हे हे राजा लोगों ! यहाँ खड़े हुये आप लोग इस क्रूर द्वारा किये गये आचार्य भारद्वाज (द्रोण) के अपमान की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं ?

अश्वत्थामा—(सुनकर, धीरे-धीरे शस्त्र का स्पर्श करते हुए) क्या गुरु भारद्वाज का अपमान ?

(फिर पर्दे के पीछे)

अन्वयः—आजौ शोकात् न्यस्तशस्त्रस्य त्रिभुवनगुरोः नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य आचार्यस्य द्रोणस्य पलितधवले मौलौ पाणिं न्यस्य नृशंसं कृत्वा अयं धृष्टद्युम्नः स्वशिविरं याति । (तत्) सर्वे सहध्वम् ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या—आजौ=संग्रामे, शोकात्=पुत्रमरणमुपश्रुत्य उत्पन्नात्; शोकात्, न्यस्तशस्त्रस्य= न्यस्तं-त्यक्तं शस्त्रं येन तस्य, त्रिभुवनगुरोः=त्रिभुवनस्य-त्रिलोक्याः गुरोः—आचार्यस्य, नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य=नयनसलिलैः—अश्रुभिः क्षालितं-धौतं—अतएव आर्द्रम्—क्लिन्नम् आननं—मुखं यस्य तस्य आचार्यस्य=धनुर्विद्याविशारदस्यगुरोरित्यर्थः, द्रोणस्य=द्रोणाचार्यस्य, पलितधवले=जराकृतशौक्ल्येन श्वेते, मौलौ=मस्तके, पाणिम्=हस्तम्, न्यस्य=निधाय;

नृशंसम्=क्रूरं कर्म-वधं हननं वेत्यर्थः, कृत्वा=विधाय, अयम्=एषः, धृष्टद्युम्नः =पाञ्चालराजद्रुपदतनयः, स्वशिविरम्=स्वसेनासन्निवेशम्, याति=गच्छति, तत्, सर्वे=निखिल-यूयमितिशेषः, सहध्वम्=मर्षयत-स्वगुरुतिरस्कारं सहध्वमिति भावः ॥ सर्वाननादृत्याऽयं धृष्टद्युम्नः स्वशिविरं प्रयाति, पश्यतेति, यावत् ॥२०॥

हिन्दी-अनुवाद—आजौ=युद्ध में, शोकात्=पुत्र (अश्वत्थामा) विषयक मरण के समाचार को सुनकर उत्पन्न हुये शोक के कारण, न्यस्तशस्त्रस्य=शस्त्र का त्याग किये हुये, त्रिभुवनगुरोः=तीनों लोकों के गुरु, नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य=आंसुओं से धुले (अतएव) गीले मुख वाले, आचार्यस्य द्रोणस्य=आचार्य द्रोण के, पलितधवले=वृद्धावस्था में पके हुये बालों के कारण श्वेत, मौलौ-मस्तक पर, पाणिम्=हाथ को, न्यस्य=रखकर, नृशंसम्=क्रूर कर्म(वध), कृत्वा=करके, अयम्=यह, धृष्टद्युम्नः=यह धृष्टद्युम्न, स्वशिविरम्=अपने शिविर को, याति=जा रहा है। तत्=उसे, सर्वे=आप सभीलोग, सहध्वम्=सहन कर रहे हो ॥२०॥

भावार्थ—तीनों भुवनों के गुरु आचार्य द्रोण ने जब पुत्रशोक के कारण शस्त्र का त्याग कर दिया था तथा आँखों से बहते हुये आंसुओं से जिनका मुख भी गीला हो गया था, ऐसे वृद्धावस्था के कारण सफेद केशों से युक्त मस्तक वाले आचार्य द्रोण के शिर पर हाथ रखकर क्रूरतापूर्ण अत्याचार कर (उनका शिर काटकर) यह धृष्टद्युम्न अपने शिविर को चला जा रहा है और आप सभी लोग यह देखकर भी सहन कर रहे हो ॥२०॥

छन्द- उक्त पद्य में "मन्द्राक्रान्ता" छन्द है।

समास—त्रिभुवनगुरोः=त्रिभुवनस्य गुरुः इति त्रिभुवनगुरुः, तस्य। न्यस्तशस्त्रस्य=न्यस्तं शस्त्रं येन तस्य। नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य=नयनसलिलैः क्षालितं अतएव आर्द्रं आननं यस्य तस्य। पलितधवले=पलितेन धवले, इति ॥

टिप्पणियाँ—भारद्वाजस्य=द्रोणाचार्य का। परिभवम्=तिरस्कार-वध। अथवा केशों को पकड़कर खींचा जाना। नृशंसेन=क्रूर ने। "नृशंसो

घातुकः क्रूरः" इत्यमरः । प्रयुक्तम्=किया हुआ । न्यस्तशस्त्रस्य=जिन्होंने अपने शस्त्र का त्याग कर दिया है ऐसे । नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य= नेत्रों के जल अर्थात् अश्रुधारा से धुले हुये अतएव गीले मुख वाले । आचार्यस्य=धनुर्विद्या में प्रवीण गुरु के । पलितधवले=वृद्धावस्था के कारण श्वेतता को प्राप्त हुये । नृशंसम्=विनाश, वध, क्रूरकर्म-"विनाशेऽपि नृशंसः स्यादिति हारावली । धृष्टद्युम्नः=पाञ्चाल राज द्रुपद का पुत्र । स्वशिबिरम्=अपनी सेना के निवासस्थान को । याति=चला जा रहा है । सहध्वम् =सहन करें ॥२०॥

(सक्रोधं सकम्पं च कृपसूतौ दृष्ट्वा) किं नामेदम् ?

प्रत्यक्षमात्तधनुषां मनुजेश्वराणां
प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य ।
तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे
व्यापारितं शिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणेः ॥२१॥

(क्रोध एवं कम्पन के साथ कृपाचार्य और सारथी की ओर देखकर) यह क्या बात है ? (अर्थात् क्या यह बात सत्य है कि—)

अन्वयः—आत्तधनुषां मनुजेश्वराणां प्रत्यक्षं प्रायोपवेशसदृशं व्रतं आस्थितस्य अशस्त्रपाणेः मे तातस्य पलितमौलिनिरस्तकाशे शिरसि शस्त्रं व्यापारितम् ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—आत्तधनुषाम्=आत्तम्-गृहीतम् धनुः कोदण्डम् यैस्तेषाम्, मनुजेश्वराणाम्=नृपाणाम्, प्रत्यक्षम्=समक्षं सन्मुखं वा, प्रायोपवेशसदृशम्=प्रायोपवेशः आमरणं उपवासार्थमुपवेशनम् तत्सदृशम्-तत्तुल्यम्-तत्राऽपि निष्क्रियेणोपविश्यते, इहापि तथेतिभावः, व्रतम्=नियमम्, आस्थितस्य= वर्तमानस्य-गृहीतस्येत्यर्थः, अशस्त्रपाणेः=शस्त्रशून्यहस्तस्यत्यक्तशस्त्रस्येत्यर्थः, मे=मम-अश्वत्थाम्नः. तातस्य=पितुः, पलितमौलिनिरस्तकाशे=पलितः जराशुक्लः यः मौलिः धम्मिल्लः तेन निरस्तः जितः काशः काशपुष्पं येन तस्मिन्; शिरसि=मूर्धनि, शस्त्रम्=खड्गम्, व्यापारितम्=प्रयुक्तम् । सशस्त्राणां नृपाणां

समक्षं शस्त्ररहिते मम पितुः शिरसि खड्ग प्रयोगं न समीचीनमासीदित्यमिप्रायः ॥२१॥

हिन्दी-अनुवाद-आत्तधनुषाम्=धनुष धारण करने वाले, मनुजेश्वराणाम्=राजाओं के, प्रत्यक्षम्=समक्ष, प्रायोपवेशसदृशम्=आमरण उपवास (अनशन) के लिये बैठने के समान, व्रतम्=व्रत में, आस्थितस्य=बैठे हुये अथवा स्थिति, अशस्त्रपाणेः=शस्त्ररहित हाथ वाले, मे=मेरे, तातस्य=पिता के, पलितमौलिनिरस्तकाशे=अपने श्वेत केशों से काश-कुसुमों को तिरस्कृत करने वाले, शिरसि=शिर पर, शस्त्रम्=शस्त्र, व्यापारितम्=चलाया ॥२१॥

भावार्थ—क्या यह सत्य है कि धृष्टद्युम्न ने सब शास्त्रधारी राजाओं की ओर देखते हुये शस्त्ररहित हाथों वाले तथा अनशन अथवा उपवास के समान व्रत को धारण करने वाले मेरे वृद्ध पिता के काश पुष्प की श्वेतिमा के सदृश श्वेतकेशों को पकड़ कर उनका शिर काट लिया ? ॥२१॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में 'उपमा' अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'वसन्ततिलका' नामक छन्द है।

समास—**आत्तधनुषाम्**=आत्तं धनुः यैस्तेषाम्। **मनुजेश्वराणाम्**=मनुजानां ईश्वरः इति मनुजेश्वरः तेषाम्। **प्रायोपवेशसदृशम्**=प्रायोपवेशः-उपवासार्थमुपवेशनम्, तत्सदृशम्। **अशस्त्रपाणेः**=शस्त्रं पाणौ यस्य स शस्त्रपाणिः, न शस्त्रपाणिः-इति अशस्त्रपाणिः, तस्य। **पलितमौलिनिरस्तकाशे**=पलितः मौलिः इति पलितमौलिः, पलितमौलिना निरस्ताः काशाः येन तस्मिन्।

टिप्पणियाँ—**आत्तधनुषाम्**=धनुर्धारी। **प्रायोपवेशसदृशम्**=आमरण अनशन अथवा उपवास के समान। **आस्थितस्य**=धारण किये हुये, लिये हुये। **पलितमौलिनिरस्तकाशे**=श्वेतवर्ण के केशों से काश-पुष्पों की श्वेतिमा (सफेदी) को भी नीचा दिखला देने वाले—अर्थात्=काश-पुष्पों की सफेदी से भी अधिक सफेदी को धारण करने वाले अति श्वेत केशों से युक्त। **व्यापारितम्**=प्रहार किया अथवा चलाया ॥२१॥

कृपः—वत्स ! एवं किल जनः कथयति।

अश्वत्थामा—किं तातस्य दुरात्मना परिमृष्टमभूच्छिरः ?

सूतः—[सभयम्] कुमार ! आसीदयं तस्य तेजोराशेर्देवस्य नवः परिभवावतारः ।

अश्वत्थामा—हा तात ! हा पुत्रप्रिय ! मम मन्दभागधेयस्य कृते शस्त्रपरित्यागात्तथाविधेन क्षुद्रेणात्मा परिभावितः । अथवा—

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा
शिरः श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत् ।
स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपो—
र्ममैवायं पादः शिरसि निहितस्तस्य न करः ॥२२॥

कृप—वत्स ! लोग ऐसा ही कह रहे हैं ।

अश्वत्थामा—क्या उस दुरात्मा (दुष्ट) के द्वारा पिताजी का सिर छुआ गया ?

सूत-(भय के साथ) कुमार ! तेजोराशि देव का यह नवीन अपमान था ।

अश्वत्थामा—हा तात ! हा पुत्रवत्सल ! मुझ अभागे के लिये आपने शस्त्र का त्याग कर ऐसे नीच के द्वारा अपना तिरस्कार कराया । अथवा—

अन्वयः—शोकान्धमनसा (तेन) रणशिरसि देहे परित्यक्ते श्वा वा काकः वा द्रुपदतनयः शिरः परिमृशेत्, स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य रिपोः अयं मम एव शिरसि पादः निहितः, तस्य (शिरसि) करः न ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या—शोकान्धमनसा=शोकेन—पुत्रमरणमुपश्रुत्य जातेन दुःखेन अन्धम्—व्याकुलम्—विवेकशून्यमिति यावत्, मनः-चेतः यस्य तेन, (तेन=द्रोणाचार्येणेतिशेषः) रणशिरसि=रणमूर्ध्नि-प्रधानसंग्रामे वा, देहे=शरीरे, परित्यक्ते=विमुक्ते सति, श्वा=कुक्कुरः, वा=अथवा, काकः, वा=अथवा, द्रुपदतनयः=धृष्टद्युम्नः [श्वकाकतुल्य इत्यर्थोऽभिप्रेतः], शिरः=उत्तमाङ्गम्, परिमृशेत्=स्पृशेत् । स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य=स्फुरन्ति देदीप्यमानानि यानि दिव्यानि—श्रेष्ठानि अस्त्राणि तेषां ओघः—समूहः, स एव द्रविणम्—धनम्,

तेन यो मदः—गर्वः, तेन मत्तस्य—उन्मत्तस्य, रिपोः=शत्रोः—धृष्टद्युम्नस्य, अयम्=एषः, मम=अश्वत्थाम्नः, एव, शिरसि=उत्तमाङ्गे, पादः चरणः, निहितः=स्थापितः, तस्य=पितुः (शिरसि) करः=हस्तः, न। "तेन स्वकीयः करः द्रोणस्य शिरसि न स्थापितः, अपितु मम शिरस्येव तस्य पादः पतितः" इत्यभिप्रायः ॥२२॥

हिन्दी-अनुवाद—शोकान्धमनसा=पुत्र के मरण के बारे में सुनकर उत्पन्न हुये दुःख से किंकर्तव्यविमूढ होकर (तेन=उन द्रोणाचार्य के द्वारा, रणशिरसि=युद्धस्थल में, देहे=शरीर के, परित्यक्ते=छोड़ दिये जाने पर, श्वा=कुत्ता, वा=अथवा, काकः=कौआ, वा=अथवा, द्रुपदतनयः=द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिरः=शिर को, परिमृशेत्=(चाहे कोई भी) छुये या छूता रहे। स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य=देदीप्यमान दिव्यास्त्रों के समूहरूपी धन के अभिमान से मस्त हुये, रिपोः=शत्रु का, अयम्=यह, मम=मेरे, एव=ही, शिरसि=सिर पर, पादः=पैर, निहितः=रखा गया है, तस्य=उन (मेरे पिता) के (शिरसि=शिर पर), करः=हाथ, न=नहीं रखा गया है ॥२२॥

भावार्थ—पुत्र शोक के कारण व्याकुल होकर जब मेरे पिता द्रोण ने युद्धभूमि में अपने शरीर का त्याग कर दिया तब उनके शिर को कुत्ता अथवा कौआ अथवा धृष्टद्युम्न कोई भी छुये, उनके लिये तो सब समान ही है। किन्तु चमकते हुये दिव्य अस्त्रों के अभिमान में चूर्ण हुये शत्रु का यह मेरे ही सिर पर किया गया आघात है। अश्वत्थामा के कहने का अभिप्राय यह है कि धृष्टद्युम्न ने मेरे पिता के सिर पर जो हाथ लगाया है उसे मैं तो यह समझता हूँ कि उसने मेरे ही सिर पर अपना पैर रखा है ॥२२॥

अलङ्कार—उक्त श्लोक के तृतीय चरण में "रूपक" अलंकार है।

छन्द—इसमें 'शिखरिणी' नामक छन्द है।

लक्षण:—"रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी" ॥

समास—शोकान्धमनसा=शोकेन अन्धं मनः यस्य तेन। स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य=स्फुरन्तियानि दिव्यानि अस्त्राणि तेषामोघः एव द्रविणं, तस्य (तज्जन्य-इत्यर्थः) मदः तेन मत्तस्य।

टिप्पणियाँ—जनः=लोक। परिमृष्टम्=छुआ। नवः=नवीन। परिभवावतारः=अपमान की अभूतपूर्व घटना। मन्दभागधेयस्य=अभागे। क्षुद्रेण=नीच, पापी से। परिभावितः=अपमानित। शोकान्धमनसा=पुत्र सम्बन्धी शोक के कारण व्याकुल चित्त वाले अर्थात् किं कर्त्तव्यविमूढ सदृश स्थिति को प्राप्त हुये। रणशिरसि=रणभूमि अथवा युद्धस्थल में। देहे=शरीर क। परित्यक्ते=छोड़ दिये जाने पर। महाभारत में इस सम्बन्ध में यह बात उपलब्ध होती है कि योग के द्वारा अपने प्राणों का परित्याग कर देने के पश्चात् ही द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा आचार्य द्रोण का शिर काटा गया था। अतः निर्जीव शरीर से यदि शिर को काट भी लिया गया तो यह कोई वीरतापूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता है। मरने के अनन्तर इस नश्वर शरीर का चाहे कोई कुछ भी करे। कुत्ते, कौये आदि प्राणी भी उस शरीर का स्पर्श आदि कर सकते हैं। उन्हीं कुत्तों तथा कौओं के सदृश धृष्टद्युम्न भी था कि जिसने इस प्रकार का घृणित कार्य किया। इसी दृष्टि से यहाँ कुत्ते, कौये आदि की श्रेणी में धृष्टद्युम्न की भी गणना की गई है। इस कथन से धृष्टद्युम्न की नीचता ही प्रकट होती है। परिमृशेत्=छुये-स्पर्श करे। स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य=देदीप्यमान श्रेष्ठ अस्त्रों के समूहरूपी धन के मद में चूर। रिपोः=शत्रु के। निहितः=रखा गया। धृष्टद्युम्न के इस घृणित कार्य से मैं अपना ही घोर अपमान मानता हूँ, पिता का नहीं—अश्वत्थामा के कथन का यही अभिप्राय प्रतीत होता है ॥२२॥

आः दुरात्मन्पाञ्चालापसद !

तातं शस्त्रग्रहणविमुखंनिश्चयेनोपलभ्य
त्यक्त्वा शङ्कां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमाङ्गे।
अश्वत्थामा करधृतधनुःपाण्डुपाञ्चालसेना—
तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते ॥२३॥

आह ! दुष्ट, नीच पाञ्चाल (धृष्टद्युम्न !),

अन्वयः—शस्त्रग्रहणविमुखं तातं निश्चयेन उपलभ्य शङ्कां त्यक्त्वा, अस्य उत्तमाङ्गे पाणि विदधतः ते स्मृति पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः करधृतधनुः अश्वत्थामा किं न यातः खलु ?

संस्कृत-व्याख्या—शस्त्रग्रहणविमुखम्=शस्त्रस्य ग्रहणे-धारणे विमुखम्-विरतम्, तातम्=मत्पितरम्-द्रोणमित्यर्थः, निश्चयेन=ध्रुवेण-एषः कस्यामपि दशायां शस्त्रग्रहणं न करिष्यतीति निश्चयेनेत्यर्थः, उपलभ्य=ज्ञात्वा, शङ्काम्=शत्रुकृतमारणादिशङ्काम्, त्यक्त्वा=विहाय, अस्य=मम पितुः, उत्तमाङ्गे=शिरसि, पाणिम्=हस्तम्, विदधतः=निक्षिपतः-स्थापयतः वा, ते=तव-धृष्टद्युम्नस्येत्यर्थः, स्मृतिम्=स्मृतिपथम्, पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः=पाण्डूनाम्-पाण्डुपुत्राणां पाण्डवानां वा पाञ्चालानाम्-पाञ्चालनृपाणां च या सेना सा एव तूलः-कार्पासः तस्य उत्क्षेपे-उत्क्षेपणे प्रलयपवनः कल्पान्तमारुतः महावातः वा; करधृतधनुः=करे-हस्ते धृतम्-गृहीतम् धनुः-चापः येन तादृशः, अश्वत्थामा=द्रोणात्मजोऽहम्, किम् न=नहि, यातः=आयातः ? खलु ॥२३॥

हिन्दी-अनुवाद—शस्त्रग्रहणविमुखम्=शस्त्रग्रहण से पराङ्मुख, तातम्=मेरे पिता को, निश्चयेन=निश्चितरूप ("अब ये किसी भी दशा में शस्त्र का स्पर्श तक नहीं करेंगे" इस प्रकार के निश्चय) से, उपलभ्य=जानकर, शङ्काम्=किसी प्रकार की आशंका अथवा भयका, त्यक्त्वा=त्यागकर, अस्य उत्तमाङ्गे=इनके शिर पर, पाणिम्=हाथ को, विदधतः=रखते हुये, ते=तुझ धृष्टद्युम्न की, स्मृतिम्=स्मृति में, पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः=पाण्डवों तथा पाञ्चालराजाओं की सेनारूपी रूई को उड़ा देने में प्रलयकालीन वायु के सदृश, कर धृततनुः=हाथ में धनुष को धारण किये हुये, अश्वत्थामा=मैं अश्वत्थामा, किम्=क्या, न=नहीं, यातः खलु=आया ? ॥२३॥

भावार्थ—निश्चितरूप से शस्त्र त्याग देने की बात को भलीभाँति समझकर तथा भयरहित होकर शिरपर हाथ लगाते समय क्या तुझ धृष्टद्युम्न को पाण्डवों एवं पाञ्चालों की सेनारूपी रुई के लिये प्रलयकालीनझंझावात के समान एवं धनुर्धारी मुझ अश्वत्थामा की याद नहीं आयी ? ॥२३॥

अलंकारः—उक्त पद्य में "परम्परितरूपक" अलंकार है।

छन्दः—इसमें "मन्दाक्रान्ता" नामक छन्द है।

समास–शस्त्रग्रहणविमुखम्=शस्त्रस्य ग्रहणे विमुखम्। पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः=पाण्डूनां पाञ्चालानां च सेना एव तूलः तस्य उत्क्षेपे प्रलयपवनः। करधृतधनुः=करे धृतं धनुः येन सः।

टिप्पणियाँ—अपसद=नीच। शस्त्रग्रहणविमुखम्=शस्त्र को धारण करने से पराङ्मुख। निश्चयेन= 'अब यह द्रोण किसी भी दशा में शस्त्र को ग्रहण नहीं करेंगे' इस प्रकार के निश्चय से। उपलभ्य=जानकर। शङ्काम्= शत्रु द्वारा मारे जाने सम्बन्धी शङ्का का। त्यक्त्वा=त्यागकर। उत्तमाङ्गे= शिर पर—"उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। विदधतः=रखते हुये। पाण्डुपाञ्चालसेनातूलोत्क्षेपप्रलयपवनः=पाण्डवों तथा पाञ्चालों की सेना रूपी रुई को उड़ा देने में प्रलयकालीन झंझावात के समान। अश्वत्थामा के कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे सम्पूर्ण विश्व का विनाश कर देने में समर्थ प्रलयकालीन वायु के लिये रुई का उड़ा देना खेल ही है उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व को अपनी शस्त्राग्नि से भस्म कर देने में समर्थ अश्वत्थामा के लिये पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना तिनके के सदृश है। करधृतधनुः=हाथ में धनुष को धारण किये हुये। स्मृतिं न यातः=याद नहीं आया ॥२३॥

युधिष्ठिर युधिष्ठिर! अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन्, धर्मपुत्र, सानुजस्य ते किमनेनापकृतम्? अथवा किमनेनालोकप्रकृतिजिह्मचेतसा? अर्जुन! सात्यके! बहुशालिन्वृकोदर! माधव! युक्तं नाम भवतां सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मनः परिणतवयसः सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना द्रुपदकुलकलङ्केन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमाङ्गमुपेक्षितुम्। अथवा सर्व एवैते पातकिनः। किमेतैः?

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं

मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः

नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥२४॥

हे युधिष्ठिर ! हे युधिष्ठिर ! हे अजातशत्रो ! हे सत्यवादी ! हे धर्मपुत्र ! भाइयों सहित आपका इन्होंने (अर्थात् मेरे पिता द्रोण ने) क्या बिगाड़ा था ? अथवा इस झूठे तथा स्वभाव से ही कुटिल चित्तवाले इस (युधिष्ठिर) से क्या ? (अपेक्षा की जा सकती है।) हे अर्जुन ! हे सात्यकि ! हे प्रचण्डभुजशाली भीम ! हे कृष्ण ! क्या आपके लिये इस द्रुपदवंश के लिये कलङ्क; मनुष्य-पशु द्वारा स्पर्श किये जाते हुये, सुर, असुर तथा मानवलोक में अद्वितीय धनुर्धारी, ब्राह्मण, वृद्ध, सभी के गुरु तथा विशेषरूप से मेरे पिता के (काटे जाते हुये) सिर की उपेक्षा करना उचित था ? अथवा ये सभी पापी हैं। इनसे (कुछ कहने से) क्या प्रयोजन ?

अन्वयः—मनुजपशुभिः निर्मर्यादैः उदायुधैः यैः भवद्भिः इदं गुरुपातकं कृतम्, अनुमतम् वा दृष्टम् नरकरिपुणा सार्द्धं सभीमकिरीटिनां तेषां असृङ्मेदोमांसैः अयं अहं दिशां बलिं करोमि ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या—मनुजपशुभिः=मनुजाः नराः पशवः इव तैः, निमर्यादैः=निर्गता मर्यादा येभ्यस्तैः-सत्पुरुषमर्यादामतिक्रान्तैः-युद्धमर्यादाविहीनैर्वा, उदायुधैः=उद्गतानि उत्थितानि आयुधानि शस्त्राणि येषां तैः यैः, भवद्भिः, इदम्=सम्प्रति विहितम्, गुरुपातकम्=घोरं पापम्-गुरुवधो वा, कृतम्, अनुमतम्=समर्थितम्, वा=अथवा, दृष्टम्=विलोकितम् उपेक्षितं वा, नरकरिपुणा=नरकासुवैरिणा श्रीकृष्णेन, साद्धम्=सह, सभीमकिरीटिनाम्=भीमार्जुनसहितानाम्, तेषाम्=सर्वेषां पापिनाम्, असृङ्मेदोमांसैः=असृक्-रुधिरं च मेदः वसा च मांसं च तैः, अयम्=एषः, अहम्=अश्वत्थामा, दिशाम्=दिग्देवतानाम् (दिग्देवेभ्य इत्यर्थः), बलिम्=उपहारम्, करोमि=सम्पादयामि। युद्धे शीघ्रमेव सर्वान्निहनिष्यामि इति भावः ॥२४॥

हिन्दी-अनुवाद—मनुजपशुभिः=मनुष्य रूप में विद्यमान पशु तुल्य निर्मर्यादैः=मर्यादाहीन, उदायुधैः=अस्त्र-शस्त्र उठाये हुये, यैः=जिन, भवद्भिः=आप-

लोगों के द्वारा, इदम्=यह, गुरुपातकम्, गुरुपातकम्=महान् पाप अथवा गुरु-वध रूपी पाप, कृतम्=किया गया है, अथवा, अनुमतम्=समर्थित हुआ है, वा=अथवा, दृष्टम्=देखा गया है; नरकरिपुणा=श्रीकृष्ण के, सार्धम्=साथ, सभीमकिरीटिनाम्=भीम और अर्जुन सहित, तेषाम्=उन सभी पापियों के, असृङ्मेदोमांसै=रक्त वसा और मांस से, अयम्=यह, अहम्=मैं अश्वत्थामा दिशाम्=सभी दिशाओं के देवताओं के लिये, बलिम्=उपहार को, करोमि=करता हूँ ॥२४॥

भावार्थ—मनुष्यों में पशु के समान, युद्ध सम्बन्धी मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, शस्त्रों को धारण किये हुये, जिन आप लोगों ने गुरु-वध रूपी महान पाप को किया है अथवा इस घृणितकार्य का अनुमोदन किया है अथवा चुपचाप खड़े-खड़े जिसे देखा भी है ऐसे कृष्ण, भीम अर्जुन सहित उन सभी के रक्त, वसा तथा मांस से मैं सभी दिशाओं के देवताओं की पूजा करता हूँ। अर्थात् उन सभी को नष्ट कर दूँगा ॥२४॥

छन्दः—उक्त पद्य में "हरिणी" नामक छन्द है।

लक्षण—"नसमरसलागः षड्वेदैर्हरिणी मता"।

समास—अलोकप्रकृतिजिह्मचेतसा=अलीकेन (असत्येन) प्रकृतिवत् (इतरजनवत्) जिह्मम्-(कुटिलम्) चेतो यस्य तेन। अथवा—अलीका (मिथ्या) या प्रकृतिः (स्वभावः) तया जिह्मम् चेतः यस्य तेन। सुरासुरमनुजलोकैकधनर्धरस्य=सुरासुरमनुजानां ये लोकाः तेषु एकधनुर्धरः, तस्य। परिणतवयसः=परिणतं वयः यस्य स तस्य। मनुजपशुभिः=मनुजः पशवः इव, तैः। निर्मर्यादैः=निर्गता मर्यादा येभ्यस्तैः। उदायुधैः=उद्गतानि आयुधानि येषां तैः। गुरुपातकम्=गुरु (महत्) च तत् पातकम् इति। गुरौ (आचार्ये) पातकम्—इति।

टिप्पणियाँ—युधिष्ठिर! युधिष्ठिर इत्यादि सभी प्रयुक्त सम्बोधन पदों का प्रयोग यहाँ व्यङ्ग्यार्थ में किया गया है। अलीकप्रकृतिजिह्मचेतसा=असत्य स्वभाव के कारण कुटिल चित्तवाले। बाहुशालिन्=भुजशाली—अर्थात्

अत्यधिक पराक्रमी। **सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य**=देव, दानव तथा मानव लोगों के बीच एकमात्र (सर्वश्रेष्ठ) धनुर्धारी। **द्विजन्मनः**: ब्राह्मण का। **परिणतवयसः**=जिसकी अवस्था ढल चुकी है अर्थात् वृद्ध। **सर्वाचार्यस्य**=सम्पूर्ण लोकों के गुरु। **उत्तमाङ्गम्**=शिर। **निर्मर्यादैः**=जिन्होंने युद्ध सम्बन्धी मर्यादाओं का उल्लंघन कर दिया है ऐसे। **उदायुधैः**=शस्त्र-ग्रहण किये हुये अथवा ऊपर की ओर शस्त्र उठाये हुये। **गुरुपातकम्**=महान् पाप अथवा गुरु (द्रोण) का वध। **नरकरिपुणा**=नरकासुर के शत्रु-श्रीकृष्ण के साथ पूर्वकाल में 'नरक' नामक एक असुर प्राक्ज्योतिषपुर (आसाम) का शासक था। देवताओं द्वारा प्रार्थना किये जाने पर श्री कृष्ण ने उसे युद्ध में मारा था। अतएव श्री कृष्ण को "नरकरिपु" भी कहा जाता है। **तेषाम्**=उन सभी पापियों के। **दिशाम**=सभी दिशाओं के। अर्थात् सभी दिशाओं के देवताओं के लिये। **बलिम्**=उपहार, भेंट॥२४॥

कृपः—वत्स ! किं न संभाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति।

अश्वत्थामा—भो भोः ! पाण्डवमत्स्यसोमकमागधाद्याः क्षत्रियापसदाः !

> पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना
> कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम्।
> किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघसं
> न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमुखे ॥२५॥

कृप—हे वत्स ! भारद्वाज (द्रोणाचार्य) के सदृश, भुजबल से सम्पन्न, दिव्य अस्त्रसमूह में चतुर आप में क्या संभव नहीं है (अर्थात् आपके लिये क्या संभव नहीं है ?—सब कुछ संभव है)।

अश्वत्थामा—हे हे पाण्डव, मत्स्य, सोमक तथा मगध आदि देशों के नीच क्षत्रियों !

अन्वयः—पितुः मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना रामेणयत् कृतम् तत् भवतां श्रुतिं (किम्) न उपगतम्? क्रोधान्धः अश्वत्थामा अद्य रणमुखे अरिरुधिरासारविघसं तत् कर्म विधातुं किं न प्रभवति?

संस्कृत-व्याख्या—पितुः=स्वजनकस्य-जमदग्नेरित्यर्थः, मूर्ध्नि=शिरसि, कार्तवीर्यस्य पुत्रैः, स्पृष्टे=संस्पृष्टे सति, ज्वलदनलभास्वत्परशुना=ज्वलन्-ज्वालामुत्पादयन् यः अनलः अग्निः तद्वत भास्वान्-देदीप्यमानः परशुः-कुठारः यस्य तेन, रामेण=परशुरामेण, यत्=यादृशं कर्म (एकविंशतिवारं क्षत्रियवधाख्यं कर्म-इत्यर्थः), कृतम्=विहितम्, तत्=तत्कर्म, भवताम्=क्षत्रियाणामित्यर्थः, श्रुतिम्=श्रवणपथम्, (किम्), न उपगतम्=न यातम्? क्रोधान्धः=क्रोधेन अन्धः-विचारशून्यः अश्वत्थामा=द्रोणपुत्रोऽहम्, अद्य=सम्प्रति (पितुः द्रोणस्य शिरसि धृष्टद्युम्नेन स्पृष्टे सति), रणमुखे=युद्धे, अरिरुधिरासारविघसम्=अरीणां-शत्रूणां रुधिरस्य-रक्तस्य यः आसारः-धारासंपातः तदेव विघसः-पितृभोजनम्-भोजनविशेषः वा यस्मिन् तत्, तत् कर्म=क्षत्रियवधरूप कर्म, विधातुम्=कर्तुम्, किम्=इति प्रश्ने, न प्रभवति=न शक्तोऽस्ति? अपितु तत्कर्म कर्तुं पूर्णरूपेण शक्त एवास्तीत्यभिप्रायः ॥२५॥

हिन्दी-अनुवाद—पितुः=पिता (जमदग्नि) के, मूर्ध्नि=शिर का, स्पृष्टे=स्पर्श किये जाने पर, ज्वलदनलभास्वत्परशुना=जलती हुई अग्नि के सदृश देदीप्यमान कुठार (फरसे) वाले, रामेण=परशुराम ने, यत्=जो, कृतम्=किया, तत्=वह, भवताम्=आप लोगों के, श्रुतिम्=कानों तक, (किम्=क्या) न उपगतम्=नहीं पहुँचा है। क्रोधान्धः=क्रोध के कारण अन्धा हुआ, अश्वत्थामा=द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा, अद्य=आज, रणमुखे=युद्ध, अरिरुधिरासारविघसम्=शत्रुओं के रक्त की वर्षारूपी पितरों को दिये जाने वाले तर्पण के द्वारा, तत्=उस, कर्म=कर्म को, विधातुम्=करने में, किम्=क्या, न प्रभवति=समर्थ नहीं है? अपितु समर्थ ही है ॥२५॥

भावार्थ—अपने पिता जमदग्नि के शिर का दुष्ट-क्षत्रिय सहस्रबाहु द्वारा स्पर्श किये जाने पर प्रज्वलित अग्नि के सदृश देदीप्यमान फरसे को धारण करने वाले परशुराम ने जो (इक्कीस बार पृथ्वी पर क्षत्रियों का विनाश रूप)

कर्म किया था, उससे तो आप लोग भली भाँति परिचित होंगे ही। क्रोधान्ध अश्वत्थामा भी युद्ध में उसी प्रकार से शत्रुओं के रक्त की प्रबल धारा से क्या पितरों का तर्पण करने में समर्थ नहीं है ? अर्थात् अश्वत्थामा भी उस कार्य को करने में पूर्णतया सक्षम है, यह समझ लो।

अश्वत्थामा के कहने का अभिप्राय यह है कि वह शत्रुओं को मारकर उनके रक्त से इस पृथ्वी को रक्तरंजित कर देगा ॥२५॥

छन्द—उक्त पद्य में "शिखरिणी" छन्द है।

समास—**दिव्यास्त्रग्रामकोविदे**=दिव्यास्त्राणां ग्रामः (समूहः) तस्य कोविदः पण्डितः, तस्मिन्। **ज्वलदनलभास्वत्परशुना**=ज्वलन् योऽनलः तद्वत् भास्वान् परशुः यस्य तेन। **अरिरुधिरासारविघसम्**=अरीणां रुधिरस्य आसार एव विघसः यस्मिन् तत् ॥

टिप्पणियाँ—भारद्वाजतुल्ये=द्रोण के समान ही पराक्रमशाली। **बाहुशालिनि**=भुजाओं के पराक्रम से सुशोभित। **दिव्यास्त्रग्रामकोविदे**=ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य अस्त्रसमूह के पूर्ण ज्ञाता। **सोमकाः**=क्षत्रियविशेष। **पितुः**=पिता (जमदग्नि) के। **भास्वान्**=देदीप्यमान-चमकते हुये। **परशुना**=कुठार-फरसे से। **रामेण**=परशुराम ने। **यत् कर्म**=जो (इक्कीसबार किया गया क्षत्रियों का वधरूप) कर्म। **आसारः**=वेगवान् वर्षा। "आसारो वेगवान् वर्षः" इति हैमः। "धारासम्पात आसारः" इत्यमरश्च। **विघसम्**=यज्ञ शेष अथवा भोजनविशेष।" अमृतं विघसो यज्ञशेषभोजनशेषयोः" इत्यमरः। यहाँ पर पितृतर्पण (पितरों को दिया जाने वाला भोजन) से अभिप्राय है। **तत्कर्म**=क्षत्रियों का वधरूप कर्म। **रणमुखे**=युद्ध में प्रधान संग्राम में। **क्रोधान्धः**=क्रोध के कारण अन्धा अर्थात् कोध में पागल हुये के समान। **प्रभवति**=समर्थ है-सक्षम है।

विशेष—कार्तवीर्यार्जुन (सहस्रबाहु) द्वारा परशुराम के पिता जमदग्नि का वध किया गया था। वध किये जाते समय परशुराम आश्रम में विद्यमान नहीं थे। उनकी माँ (रेणुका) ने इक्कीस बार अपने वक्षस्थल को पीट-पीट कर परशुराम का आह्वान किया था। इसी आधार पर परशुराम ने

इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश करने की प्रतिज्ञा की थी और उन्होंने अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा भी किया था ॥२५॥

सूत ! गच्छ त्वं सर्वोपकरणैः साङ्ग्रामिकैः सर्वायुधैरुपेतं महाहवलक्षणं नामास्मत्स्यन्दनमुपनय ।

सूतः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

(इति निष्क्रान्तः)

कृपः—वत्स ! अवश्यप्रतिकर्त्तव्येऽस्मिन्दारुणे परिभवाग्नौ सर्वेषामस्माकं कोन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् । किन्तु—

अश्वत्थामा—किमतः परम् ।

कृपः—सैनापत्येऽभिषिक्तं भवन्तमिच्छामि समरभुवमवतारयितुम् ।

अश्वत्थामा—मातुल ! परतन्त्रमिदकिंचित्करं च ।

कृपः—वत्स ! न खलु परतन्त्रं नाकिंचित्करं च । पश्य—

भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम् ।
यदि तत्तुल्यकक्षोऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

हे सूत ! तुम जाओ और सभी साधनों तथा युद्ध सम्बन्धी सभी अस्त्रों से सुसज्जित हमारे 'महाहवलक्षण'. नामक रथ को ले आओ ।

सूत—जैसी कुमार की आज्ञा ।

(ऐसा कहकर चला जाता है ।)

कृप—हे वत्स ! निश्चितरूप से प्रतीकार किये जाने योग्य, भीषण, इस अपमान रूपी अग्नि का हम सब में तुम्हारे अतिरिक्त कौन अन्य प्रतीकार करने में समर्थ है । किन्तु—

अश्वत्थामा—इससे अधिक और क्या ?

कृप—'सेनापति' के पद पर अभिषिक्त हुये ही आपको संग्राम-भूमि में उतारना चाहता हूँ ।

अश्वत्थामा—मामा ! यह तो दूसरे (अर्थात् राजा दुर्योधन) के आधीन है और कोई महत्वपूर्ण भी नहीं है।

कृप—हे वत्स ! न तो यह दूसरे के आधीन बात है और न ही अमहत्व-पूर्ण ही। देखो—

अन्वयः—यदि तत्तुल्यकक्षः भवान् अत्र धुरि न युज्यते (तदा) अभीष्मं अद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथं भवेत् ॥२६॥

संस्कृत-व्याख्या—यदि=चेत्, तत्तुल्यकक्षः=तयोः भीष्मद्रोणयोः तुल्या-समाना कक्षा-श्रेणी यस्य सः तत्तुल्यकक्षः-तत्समानपराक्रम इत्यर्थः, भवान्=त्वम्, अत्र=अस्मिन्-धार्तराष्ट्रबले इत्यर्थः, धुरि=सैनापत्यरूपधुरायाम्-सैनापत्यपदे-इत्यर्थः, न युज्यते=न नियुज्यते (तदा), अभीष्मम्-भीष्मरहि-तम्, अद्रोणम्=द्रोणाचार्यविहीनम्, धार्तराष्ट्रबलम्=धार्त्तराष्ट्रस्य-दुर्योधनस्य बलम्-सैन्यम्, कथम्=कीदृशम्, भवेत्=स्यात् ? सम्प्रति त्वन्नियोगं विना दुर्योधनसैन्यं विशीर्णमेव स्यादित्यभिप्रायः ॥२६॥

हिन्दी-अनुवाद—यदि=यदि, तत्तुल्यकक्षः=भीष्म और द्रोण के पराक्रम के समान पराक्रमशाली, भवान्=आपको अत्र=इस दुर्योधन की सेना में, धुरि=सेनापति के प्रमुख पद पर, न युज्यते=नियुक्त नहीं किया जाता है, तदा=तब तो, अभीष्मम्=भीष्म से रहित, और, अद्रोणम्=द्रोणाचार्य से भी रहित, धार्तराष्ट्रबलम्=दुर्योधन की सेना, कथम्=किस प्रकार से, भवेत्=स्थित रह सकेगी। (अर्थात् तुम्हारी नियुक्ति के बिना दुर्योधन की सेना छिन्न-भिन्न ही हो जायगी)।

भावार्थ—यदि भीष्म एवं द्रोण के सदृश पराक्रमशाली आपको सेना के संचालन का भार नहीं सौंपा जाता है तो कौरवों की सेना, कि जिसमें से भीष्म और द्रोण जैसे महापराक्रमी समाप्त हो चुके हैं,—की क्या दशा होगी ?

छन्द—उक्त पद्य में "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समास—परिभवाग्नौ=परिभवः (तिरस्कारः) एव अग्निः, तस्मिन्। तत्तुल्यकक्षः=तयोः तुल्या कक्षा यस्य सः।

टिप्पणियाँ—साङ्ग्रामिकः=युद्ध के लिये समुपयुक्त। उपेतम्=सहित। महाहवलक्षणम्=महायुद्ध के लिये उपयुक्त लक्षणों से युक्त। उपनय=ले आओ। परिभवाग्नौ=तिरस्कार रूपी अग्नि में। दाहक होने की दृष्टि से परिभव में अग्नित्व का आरोप किया गया है। अवश्यप्रतिकर्त्तव्ये=निश्चित-रूप से प्रतीकार किये जाने योग्य। त्वामन्तरेण=तुम्हारे बिना। प्रतिकर्त्तुम्=प्रतीकार करने के लिये। सैनापत्ये=सेनापति के पद पर। सेनापतेः कर्म भावो वा सैनापत्यम्—सेनापति का कर्म अथवा सेनापति का होना ही 'सैनापत्य' कहलाता है। परतन्त्रम्=दूसरे के आधीन। दुर्योधन आदि के आधीन। अकिञ्चित्करम्=तुच्छ, अमहत्त्वपूर्ण अथवा निरर्थक। धार्त्तराष्ट्र-बलम्=दुर्योधन के सेना को। तत्तुल्यकक्षः=भीष्म, द्रोण के समान पराक्रम-शाली। युज्यते=नियुक्त किया जाता है। धुरि=संचालक के प्रमुख पद पर। कथं भवेत्=कैसे हो सकेगी।

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थी भवितुं पुनर्युधिष्ठिरबलम्? तदेवं मन्ये परिकल्पिताभिषेकोपकरणः कौरव-राजो न चिरात्त्वामेवाभ्यपेक्षमाणस्तिष्ठतीति।

अश्वत्थामा—यद्येवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्त-त्प्रतीकारजलावगाहनाय। तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं सैनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसन्तापं करोमि।

कृपः—वत्स! एवमिदम्। अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः।

(इति परिक्रामतः।)

(ततः प्रविशतः कर्णदुर्योधनौ)

दुर्योधनः—अङ्गराज!

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं
बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम्।
आचार्यः सुतनिधनं निशम्यसंख्ये
किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत्॥२७॥

(युद्ध के लिये) कमर कसे हुये आपसदृशं (योद्धा) का तीनों लोक भी शत्रु बनने में समर्थ नहीं हो सकते हैं (अर्थात् आपका सामना कर सकने में समर्थ नहीं हो सकते हैं।), फिर युधिष्ठिर की सेना का तो कहना ही क्या ? अतः मैं तो ऐसा समझता हूँ कि (सेनापति के पद पर तुम्हारा ही अभिषेक करने हेतु) अभिषेक सम्बन्धी सम्पूर्ण सामग्री तैयार किये हुये कौरवराज (दुर्योधन) अब आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा है।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है तो अपमान की ज्वाला से जलता हुआ यह मेरा मन भी (पिता जी के) उस (वध) के प्रतिशोधरूपी जल में प्रविष्ट होने के लिये व्याकुल हो रहा है। तो मैं चलकर पिता के वध के कारण खिन्न मन वाले कुरुनाथ (दुर्योधन) को सेनापति पद के भार को स्वयं ग्रहण करने रूप प्रेम से सान्त्वना प्रदानकर उनके सन्ताप को दूर करता हूँ।

कृप—वत्स ! यही (आपके लिये) उचित है। अतः हम दोनों उसी स्थान पर चलें (कि जहाँ दुर्योधन स्थित हैं)।

(ऐसा कहकर दोनों चल पड़ते हैं।)

(तत्पश्चात् कर्ण तथा दुर्योधन दोनों प्रवेश करते हैं।)

दुर्योधन—अङ्गराज ! (हे कर्ण !),

अन्वयः—तेजस्वी धृतायुधप्लवाभ्यां बाहुभ्यां रिपुहतबन्धुदुःखपारं व्रजति। संख्ये आचार्यः सुतनिधनंनिशम्य शस्त्रग्रहसमये किं विशस्त्रः आसीत् ? ॥२७॥

संस्कृत-व्याख्या—तेजस्वी=पराक्रमी, धृतायुधप्लवाभ्याम्=धृतम्-गृहीतम् यदायुधम्-शस्त्रम्, तदेव प्लवः कोलः याभ्यां ताभ्याम्, बाहुभ्याम्=भुजाभ्याम्, रिपुहतबन्धुदुःखपारम्=रिपुणा-शत्रुणा हतः-व्यापादितः यो बन्धुः-स्वजनः तेन तस्य वा यद्दुःखम्=सन्तापम् तस्य पारम्-परतीरम्, व्रजति=गच्छति-याति वा-(शस्त्रेणैव शत्रून् हत्वा हतस्वजनशोकं त्यजतीत्यभिप्रायः)। संख्ये=संग्रामे-युद्धे वा, आचार्यः=द्रोणाचार्यः, सुतनिधनम्=सुतस्य-पुत्रस्य अश्वत्थाम्नः निधनम् मरणसमाचारम्, निशम्य=श्रुत्वा, शस्त्रग्रहणसमये=शस्त्रग्रहस्य-शस्त्रधारणस्य समये-काले, किम्—कस्माद्धेतोः-किमर्थं वा, विशस्त्रः=शस्त्रविरहितः, आसीत्=अभूत् ? इति पृच्छामीति शेषः ॥२७॥

हिन्दी-अनुवाद—तेजस्वी=प्रतापी अथवा पराक्रमी पुरुष, धृतायुधप्लवाभ्याम्=शस्त्ररूपी नौका (अथवा जलयान) को धारण करने वाली, बाहुभ्याम्=भुजाओं से, रिपुहतबन्धुदुःखपारम्=शत्रु द्वारा मारे गये स्वजन के दुःख को पार, व्रजति=किया करता है, (किन्तु), संख्ये=युद्ध में, आचार्यः=द्रोणाचार्य ने, सुतनिधनम्=पुत्र की मृत्यु का समाचार निशम्य=सुनकर, शस्त्रग्रहसमये=शस्त्र को धारण करने के समय पर, किम्=किसलिये, विशस्त्रः=शस्त्ररहित, आसीत्=हो गये ? ॥२७॥

भावार्थ—तेजस्वी पुरुष तो शत्रु द्वारा किये गये अपने इष्टजनों (अथवा बन्धु-बान्धवों) के वध के समाचार को सुनकर उस दुःखरूपी सागर को शस्त्र युक्त भुजरूपी नौका की सहायता से पार किया करता है। (अर्थात् अपने स्वजन के वध का बदला शस्त्र की सहायता से ले लिया करता है।) न कि शस्त्र का त्याग कर दिया करता है। किन्तु इसके विपरीत मेरे पिता द्रोणाचार्य ने पुत्र-वध के समाचार को सुनते ही शस्त्र-ग्रहण के समय पर शस्त्र का त्याग क्यों कर दिया ?

अलङ्कार—उक्त पद्य में "रूपक" अलंकार है।

छन्द—इसमें "प्रहर्षिणी" छन्द है। लक्षणः—"त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्" ॥२७॥

समास—कृतपरिकरस्य=कृतः परिकरः येन सः तस्य। परिकल्पिताभिषेकोपकरणः=परिकल्पितानि (सज्जीकृतानि) अभिषेकस्य उपकरणानि (साधनानि) येन सः। परिभवानलदह्यमानम्=परिभवः (तिरस्कारः) एव अनलः (अग्निः) तेन दह्यमानम्। तत्प्रतिकारजलावगाहनाय—तस्य (पितृवधस्य) प्रतिकारः (परिशोधनम्) एव जलं तस्मिन् यदवगाहनं (मज्जनम्) तस्मै। तातवधविषण्णमानसम्=तातस्य वधेन विषण्णम्—(खिन्नम्) मानसं यस्य तम्। सैनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया—सैनापत्यस्य (सेनानायकपदस्य) यत् स्वयंग्रहणं (स्वयं कथयित्वा स्वीकरणम्) तस्मिन् यः प्रणयः प्रेम अथवा तद्रूपः यः प्रणयः तेन या समाश्वासना तया। मन्दसन्तापम्=मन्दः (अल्पीभूतः) सन्तापः (खिन्नता) यस्य तम्। धृतायु-

धप्लवाभ्याम्=धृतौ आयुधौ एव प्लवौ याभ्यां ताभ्याम् । रिपुहतबन्धुदुःखपारम्=रिपुणा हतः यः बन्धुः, तस्य दुःखस्य पारम् ।

टिप्पणियाँ—कृतपरिकरस्य=कमर कसे हुये (अर्थात् युद्ध के लिये उद्यत) । परिपन्थीभवितुम्=शत्रुरूप में युद्ध करने के लिये ।" दस्युशात्रवशत्रवः । परिपन्थिनः" इत्यमरः । यौधिष्ठिरं बलम्=युधिष्ठिर की अथवा पाण्डवों की सेना । परिकल्पिताभिषेकोपकरणः=अभिषेक सम्बन्धी सम्पूर्ण सामग्री को तैयार किये हुये । अभ्यपेक्षमाणः=प्रतीक्षा करते हुये । त्वरते=शीघ्रता कर रहा है । परिभवानलदह्यमानम्=(पितृवधरूप) अपमान की अग्नि में जलता हुआ । तत्प्रतीकारजलावगाहनाय=उस (वध) के प्रतिशोध (बदला) रूपी जल में स्नान करने के लिये । तातवधविषण्णमानसम्=पिता जी के वध के कारण खिन्न अथवा दुःखी मन वाले । सैनापत्यस्वयग्रहणप्रणयसमाश्वासनया=सेनापति-पद को स्वयं स्वीकार करने रूपी प्रेम से आश्वस्त कर (अथवा सान्त्वना प्रदान कर) । मन्दसन्तापम्=कम (हल्के) दुःख वाला । एवमिदम्=यह ठीक ही है । उद्देशम्=प्रदेश अथवा स्थान । अङ्गराज=अङ्ग देश का राजा 'कर्ण' । प्लवः=नौका अथवा डोंगी ।' उडुपं तुप्लवः कोलः" इत्यमरः । रिपुहतबन्धुदुःखपारम्=शत्रु द्वारा गये स्वजन के दुःख को पार करता हूँ । संख्ये=युद्ध में । शस्त्रग्रहणसमये=शस्त्र को ग्रहण करने के अवसर पर । विशस्त्रः=शस्त्ररहित ॥२७॥

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तैः प्रकृतिर्दुस्त्यजेति । यतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य क्षात्रधर्मकार्कश्यं द्विजातिधर्मसुलभो मार्दवपरिग्रहः कृतः ।

कर्णः—राजन् ! कौरवेश्वर ! न खल्विदमेवम् ।

दुर्योधनः—कथं तर्हि ?

कर्णः—एवं किलास्याभिप्रायो यथा अश्वत्थामा मया पृथिवीराज्ये अभिषेक्तव्य इति । तस्याभावाद्वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान् ।

दुर्योधनः—(सशिरःकम्पम्) एवमिदम् ।

कर्णः—एतदर्थं च कौरव पाण्डवपक्षपात प्रवृत्तमहासंग्रामस्य राजकस्य परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषवध उप्रेक्षा कृता।

दुर्योधनः—उपपन्नमिदम्।

कर्णः—अन्यच्च राजन्! द्रुपदेनाप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्राय-वेदिना न स्वराष्ट्रे वासोदत्तः।

दुर्योधनः—साधु, अङ्गराज! साधु। निपुणमभिहितम्।

कर्णः—न चायं ममैकस्याभिप्रायः। अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदम-न्यथा मन्यन्ते।

दुर्योधनः—एवमेतत्। कः सन्देहः।

दत्त्वाभयं सोऽतिरथो वध्यमानं किरीटिना।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा ॥२८॥

अथवा नीतिशास्त्रों (नीतिज्ञों) ने उचित ही कहा है कि स्वभाव (प्रकृति) का छोड़ा जाना बहुत ही कठिन है। क्योंकि शोक के कारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर उन (द्रोणाचार्य) के द्वारा क्षत्रियधर्म की कठोरता का त्यागकर ब्राह्मणों के लिये सुलभ मृदुलता का ही आश्रय लिया गया।

कर्ण—हे राजन् कौरवेश्वर। यह बात नहीं थी।

दुर्योधन—तो फिर यह बात कैसे हुयी?

कर्ण—उनका अभिप्राय तो यही था—"मैं पृथिवी के राज्य पर अश्व-त्थामा का अभिषेक करूँगा। उस (अश्वत्थामा) के विद्यमान न रहने पर 'मुझ वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र धारण करना निरर्थक है" यह विचार कर ही (उन्होंने) वैसा किया।

दुर्योधन—(सिर हिलाते हुये) ऐसा ही है।

कर्ण—और इसी कारण कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति पक्षपात के कारण भीषण युद्ध करने के कारण महायुद्ध में प्रवृत्त हुये राजसमूह के परस्पर विनाश की संभावना करते हुये उन (द्रोण) ने प्रधानपुरुषों के वध की उपेक्षा की।

दुर्योधन – यह ठीक है।

कर्ण—और भी, हे राजन्! बाल्यकाल से ही इनके अभिप्राय को जानने वाले द्रुपदराज ने भी इन्हें अपने राज्य में निवासस्थान नहीं दिया था।

दुर्योधन—ठीक है, अङ्गराज ठीक है। आपने ठीक ही कहा है।

कर्ण—और ऐसा केवल मेरा ही विचार नहीं है। दूसरे बुद्धिमान पुरुष भी इसे अन्यथा नहीं समझते हैं।

दुर्योधन—यह ऐसा ही है। (इसमें) क्या सन्देह है?

अन्वयः–एवं न चेत् (तदा) अन्यथा अतिरथः स अभयं दत्त्वा किरीटिना वध्यमानं सिन्धुराजं कथं उपेक्षेत? ॥२८॥

संस्कृत-व्याख्या—एवम्=इत्थम्, न चेत्=न भवेत् (तदा), अन्यथा=एकेन प्रकारेण, अतिरथः=अनन्तैः सहयुद्धं कर्तुं समर्थः, सः=द्रोणः: अभयम्=अभयवाक्यम्, दत्त्वा=सिन्धुराजाय जयद्रथाय दत्त्वा, किरीटिना=अर्जुनेन वध्यमानम्=हन्यमानम् सिन्धुराजम्=जयद्रथम्, कथम्=कस्मात्, उपेक्षेत=समुपेक्षेत–नैवोपेक्षेदित्यर्थः। अतएव भवदुक्तमेवोचितमित्यभिप्रायः ॥२८॥

हिन्दी-अनुवाद—चेत्–यदि, एवम्=ऐसा, न=न होता, (तदा=तो), अन्यथा=एक प्रकार से, अतिरथः=महारथी, स=वे, अभयम्=अभय, दत्त्वा=देकर, किरीटिना=अर्जुन के द्वारा, वध्यमानम्=मारे जाते हुये, सिन्धुराजम्=जयद्रथ को, कथम्= कैसे, उपेक्षेत=उपेक्षित करते ॥२८॥

छन्द—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समास—शोकान्धमनसा=शोकेन (सन्तापेन) अन्धं मनः यस्य तेन। क्षात्रधर्मकार्कश्यम्=क्षात्रधर्मस्य कार्कश्यम् (काठिन्यम्)। द्विजातिधर्मसुलभः=द्विजातिधर्मे सुलभः। मार्दवपरिग्रहः=मार्दवस्य (कोमलतायाः) परिग्रहः (स्वीकरणम्)। कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासंग्रामस्य=कौरवपाण्डवयोः यौ पक्षौ तयोः पातेन प्रवृत्तः (प्रवर्तितः) महासंग्रामो=महाभारतं येन तत् तस्य। राजकस्य=राज्ञां समूह राजकम्, तस्य। प्रधानपुरुषवधे=प्रधानपुरुषाणां (प्रधानयोद्धृणां) वधे (विनाशे)।

टिप्पणियाँ — सूक्तम्—सुक्तम् (सु + उक्तम्) सुष्ठुरूप में कहा गया—अर्थात् ठीक ही कहा है। अभियुक्तैः=प्रामाणिकों अथवा नीतिज्ञों ने। प्रकृतिः=स्वभाव। शोकान्धमनसा=शोक के कारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ मन से। क्षात्रधर्मकार्कश्यम्=क्षत्रियोचित कठोरता। विमुच्य=छोड़कर। द्विजातिधर्मसुलभः=ब्राह्मण जाति के अनुरूप अथवा ब्राह्मणत्व के लिये उचित। मार्दवपरिग्रहः=मृदुलता अथवा कोमलता को धारण कर लेना। तस्य=उस अश्वत्थामा के। तथा कृतवान्=युद्ध में शस्त्र को त्याग दिया। राजकस्य=राजसमूह का। परस्परक्षयम्=एक दूसरे का वध। अपेक्षमाणेन=चाहते हुये। प्रधानपुरुषवधे=प्रधानपुरुष (जयद्रथ) के मारे जाने में। उपपन्नम्=युक्तियुक्त। स्वराष्ट्रे वासो न दत्तः=आचार्य द्रोण पहले द्रुपद के यहाँ रहा करते थे। किन्तु कालान्तर में किसी समय दोनों में मनोमालिन्य हो गया। परिणामस्वरूप द्रोण को द्रुपद के राज्य को त्यागना पड़ा। निपुणम्=ठीक, सुन्दर, युक्ति पूर्ण। अभियुक्ताः=तत्व को जानने वाले विद्वज्जन। अतिरथः=जो एक साथ ही लाखों शूरवीर योद्धाओं से युद्ध करने में समर्थ हुआ करता है उसे 'अतिरथ' कहा जाता है। यह महारथी से भी उच्चश्रेणी का व्यक्ति हुआ करता है। अभयंदत्वा=अभयदान देकर। आचार्य द्रोण द्वारा जयद्रथ को यह वचन दिया गया था कि "तुम निश्चिन्त रहो। आज अर्जुन तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ न सकेगा।" किन्तु यह आश्वासन देने पर भी द्रोण जयद्रथ की रक्षा न कर सके। परिणामस्वरूप अर्जुन के बाणों से वह मारा ही गया। वास्तविकता तो यह है कि उस समय द्रोण के साथ धोखा हुआ था। इस कारण वे उसकी रक्षा नहीं कर सके थे। किन्तु इस समय कर्ण इसका दूसरे ही प्रकार का अर्थ दुर्योधन को समझा रहे हैं। सिन्धुराजम्=जयद्रथ को।

कृपः—(विलोक्य) वत्स ! एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्यां न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति। तदुसर्पावः।

(तथा कृत्वा)

उभौ—विजयतां कौरवेश्वरः।

दुर्योधनः—(दृष्ट्वा) अये कथं कृपोऽश्वत्थामा च। (आसनादवतीर्य कृपं प्रति) गुरो! अभिवादये। (अश्वत्थामानमुद्दिश्य) आचार्यपुत्र!

एह्यस्मदर्थहततात परिष्वजस्व
क्लान्तैरिदं मम निरन्तरमङ्गमङ्गैः।
स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते
शोकेऽपि यो महति निर्वृतिमादधाति ॥२९॥

कृप—(देखकर) यह दुर्योधन सूतपुत्र कर्ण के साथ वटवृक्ष की छाया में बैठा हुआ है। अतः (इसके) पास चलें। उभौ (दोनों)–कौरवों के स्वामी की जय हो।

दुर्योधन—(देखकर) अरे! क्या कृपाचार्य और अश्वत्थामा हैं? (आसन से उतरकर कृपाचार्य के प्रति) आचार्य! मैं प्रणाम करता हूँ। (अश्वत्थामा को लक्ष्य करके) आचार्य पुत्र!

अन्वयः—हे अस्मदर्थहततात! एहि, क्लान्तैः इमैः अङ्गैः मम अङ्गं निरन्तरं परिष्वजस्व। ते पितुः सदृशः तव यः एषः भुजयोः स्पर्शः महति शोके अपि निर्वृतिं आदधाति। पाठान्तरे—ते पितु सदृशः तव एषः भुजयोः स्पर्शः नः शोके अपि तनूरुहेषु विकृतिं एति ॥२९॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अस्मदर्थहततात=अस्मदर्थं मम प्रयोजनार्थं हतः घातितः तातः पिता यस्य स तत्सम्बुद्धौ, एहि=आगच्छ, क्लान्तैः=शोकखिन्नैः; इमैः=एतैः स्वसम्बन्धिभिरित्यर्थः, अङ्गैः=शरीरावयवैः, मम=दुर्योधनस्य, अङ्गम्=उरःस्थलम्, निरन्तरम्=गाढं यथास्यात्तथा, परिष्वजस्व=आलिङ्ग्य। ते=तव, पितुः=जनकस्य, सदृशः=तुल्यः, तव=भवतः, यः, एषः=अयम्, भुजयोः=बाह्वोः, स्पर्शः, महति=विशाले, शोके=दुःखे, अपि, निर्वृतिम्=शान्तिम्, आदधाति=करोतीत्यर्थः (पाठान्तरे—ते पितु सदृशः तव एषः भुजयोः स्पर्शः नः शोके अपि, तनूरुहेषु=रोमाञ्चेषु, विकृतिम्=विकारम् रोमाञ्चं वा, एति=प्राप्नोति-विधत्ते। शोकेऽपि रोमाञ्चमुत्पादयतीत्यर्थः।) ॥२९॥

हिन्दी-अनुवाद—हे अस्मदर्थंहततात् !=हे हमारे प्रयोजन के लिये मारे गये पिता वाले !, एहि=आओ। क्लान्तैः=शोक के कारण खिन्न, इमैः=इन, अङ्गैः=अङ्गों से, मम=मेरे, अङ्गम्=शरीर को, निरन्तरम्=गाढरूप में, परिष्वजस्व=आलिङ्गित करो। ते=तुम्हारे, पितुः=पिता के, सदृशः=समान, यः=जो, तव=तुम्हारा, एषः=यह, भुजयो=बाहों का, स्पर्शः=स्पर्श, महति=महान्, शोके=शोक में, अपि=भी, निर्वृतिम्=शान्ति को, आदधाति=प्रदान कर रहा है॥ (पाठान्तर में—तुम्हारे पिता के समान, तुम्हारी भुजाओं का यह स्पर्श, शोके अपि=शोक में भी, हमारे, तनूरुहेषु=रोमाञ्चों में, विकृतिम्=रोमाञ्च को, एति=प्राप्त कर रहा है।) ॥२९॥

भावार्थ—हे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ! आपके पिता जी हमारे प्रयोजन के लिये वीरगति को प्राप्त हुये हैं। आओ, अपने शारीरिक अङ्गों से मेरे शरीर का आलिङ्गन करो। आपकी भुजाओं का स्पर्श आपके पिता जी के स्पर्श के समान ही आनन्दोत्पादक प्रतीत हो रहा है। तुम्हारे आलिङ्गन से इस शोक पूर्ण मेरे शरीर में रोमाञ्च हो रहा है॥२९॥

अलङ्कार—उक्त पद्य के तृतीय चरण में 'उपमा' अलङ्कार है।

छन्द—इसमें "वसन्ततिलका" छन्द है।

समास—हे अस्मदर्थंहततात=अस्मदर्थं हतः तातो यस्य स, तत्सम्बुद्धौ।

टिप्पणियाँ—सूतपुत्रेण=सारथिपुत्र के साथ। "सूतः क्षत्ता च सारथिः" इत्यमरः। न्यग्रोधः=वट-वृक्ष। "न्यग्रोधो बहुपा द्वटः" इत्यमरः। उपसर्पावः=पास में चलें। क्लान्तैः=शोक के कारण दुःखी अथवा मुर्झाये हुये अङ्गों से। निरन्तरम्=गाढ़े रूप में—कसकर। परिष्वजस्व=आलिङ्गन करो। निर्वृतम्=शान्ति को। आदधाति=धारण करता है। विकृतिम्=विकार अथवा रोमाञ्च को। एति=प्राप्त करता है॥२९॥

(आलिङ्ग्य पार्श्वं उपवेशयति।)

(अश्वत्थामा वाष्पमुत्सृजति।)

कर्णः—द्रौणायने ! अलमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षिप्य।

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र ! को विशेष आवयोरस्मिन्व्यसनमहार्णवे। पश्य—

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे
शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि ।
किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं
जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥३०॥

(आलिङ्गन करके अपनी बगल में बैठाता है।)

[अश्वत्थामा आँसू बहाता है (अर्थात् रोता है) ।]

कर्ण—हे द्रोणपुत्र ! अपने को शोकरूपी अग्नि में अत्यधिक रूप से डालने से बस । (अर्थात् अत्यधिक शोक करने से क्या लाभ ?)

दुर्योधन—हे आचार्य पुत्र ! हम दोनों के इस दुःखरूपी महासागर में क्या भिन्नता है ? देखिये—

अन्वयः—सः तव प्रणयवान् तातः मे पितुः सखा (आसीत्) सः शस्त्रे यथा तव गुरुः तथा मम अपि (आसीत्) । तस्य देहनिधने दुःखं किं कथयामि ? तत् गुरुशुचा मनसा त्वं एव जानीहि ।

संस्कृत-व्याख्या—सः=जगद्विदितः आचार्यद्रोणः; तव=भवतः, प्रणयवान्=त्वयि स्नेहयुक्तः, तातः=पिता, मे=मम, पितुः=जनकस्य-धृतराष्ट्रस्येत्यर्थः, सखा=सुहृत् (अतः पितृतुल्य एव) आसीदिति क्रियाशेषः। सः=द्रोणाचार्यः, शस्त्रे=शस्त्रशास्त्रे-शस्त्रविद्यायामित्यभिप्रायः, यथा=येन प्रकारेण, तव=भवतः, गुरुः=शिक्षकः, तथा=तेनैव रूपेण, मम=दुर्योधनस्य, अपि, गुरुः आसीत् । तस्य=द्रोणस्य, देहनिधने=शरीरपाते, दुखम्=मनस्तापम्, किम्=किनु, कथयामि=ब्रवीमि ? (कथनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति, यतः) तत्=दुःखम्, गुरुशुचा=शोकभाराक्रान्तेन, मनसा=मानसेन, त्वमेव=भवान् एव, जानीहि=विद्धि । यथा तव मनः गुरुशोकाकुलं तथा ममापीति जानीहीत्यभिप्रायः ॥३०॥

हिन्दी-अनुवाद—सः=वह, तव=तुम्हारे, प्रणयवान्=स्नेही, तातः=पिता मे=मुझ दुर्योधन के, पितुः=पिता के, सखा=मित्र थे। सः=वे, शस्त्रे=शस्त्रविद्या के विषय में, यथा तव गुरुः=जैसे तुम्हारे गुरु थे, तथा=वैसे, मम=मेरे, अपि=भी गुरु थे। तस्य=उनके, देहनिधने=शरीर के नष्ट हो जाने पर, दुःखम्=दुःखको, किम्=क्या कहूँ ? तत्=वह दुःख, गुरुशुचा=असीम दुःख से युक्त, मनसा=मन से, त्वमेव=तुम ही, जानीहि=समझ लो ॥३०॥

भावार्थ—द्रोणाचार्य यदि आपके पिता थे तो वे मेरे भी पिता के मित्र (पितासदृश) थे। शस्त्रविद्या में वे तुम्हारे गुरु थे और मेरे भी गुरु थे। उनका विनाश हो जाने से मुझे कितना कष्ट हुआ है ? इसे मैं क्या कहूँ ? इसे तो आप शोक के भार से आक्रान्त अपने मन से ही अनुभव कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि द्रोण की मृत्यु के कारण तुम्हारे ही समान मुझे भी अत्यधिक शोक हुआ है ॥३०॥

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—द्रौणायने=द्रोणस्यापत्यं पुमान् द्रौणायनिः तत्सम्बुद्धौ हे द्रोणायने ! गुरुशुचा=गुर्वीशुक् यस्य तेन गुरुशुचा।

टिप्पणियाँ—द्रौणायने ! =हे अश्वत्थामा। अत्यर्थम्=अत्यधिक। विशेषः=भेद, भिन्नता। व्यसनमहार्णवे=विपत्ति के महासागर में। प्रणयवान्=स्नेह से युक्त, प्रिय। शस्त्रे=शस्त्रविद्या में। देहनिधने=शरीर के विनष्ट हो जानें पर। गुरुशुचा=शोक के भार से आक्रान्त। जानीहि=जान लो, समझ लो ॥३०॥

कृपः—वत्स ! यथाह कुरुपतिस्तथैवैतत्।

अश्वत्थामा—राजन् ! एवं पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव शोकभारं लघूकर्त्तुम्। किन्तु—

मयि जीवति मत्तातः केशग्रहमाप्तवान्।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ॥३१॥

कृप—हे वत्स ! कुरुपति (दुर्योधन) जैसा कह रहे हैं, यह वैसा ही है । (अर्थात् उनका कथन ठीक ही है ।) ।

अश्वत्थामा—हे राजन् ! (मेरे प्रति) प्रेम रखने वाले आप द्वारा (मेरे) शोक के भार को हल्का किया जाना उचित ही है । किन्तु—

अन्वयः—मयि जीवति (सति) मत्तातः केशग्रहणं अवाप्तवान् । (तदा) अन्ये पुत्रिणः पुत्रेभ्यः स्पृहां कथं करिष्यन्ति ॥३१॥

संस्कृत-व्याख्या—मयि=(स्वपुत्रे) अश्वत्थाम्नि, जीवति सति=प्राणान् धारयति सति, मत्तातः=मम पिता द्रोणः, केशग्रहणम्=केशाकर्षणम्, अवाप्तवान् । तदा=एतादृशीं अवस्थायाम्, अन्ये=इतरे, पुत्रिणः=पुत्रवन्तः पितरः, पुत्रेभ्यः=तनयेभ्यः, स्पृहाम्=अनुरागम्, कथम्, करिष्यन्ति=विधास्यन्ति ? मयि विद्यमानेऽपि यदि मे पितुः तिरस्कारः भवेत् किं मम जीवितेनेत्यभिप्रायः ॥३१॥

हिन्दी-अनुवाद—मयि=मुझ अश्वत्थामा के, जीवति सति=जीवित रहने पर, मत्तातः=मेरे पिता ने, केशग्रहणम्=केशों के खीचें जाने को, अवाप्तवान्=प्राप्त किया है । तदा=तब ऐसी दशा में, अन्ये=दूसरे, पुत्रिणः=पुत्रों वाले पिता, पुत्रेभ्यः=पुत्रों से, स्पृहाम्=स्नेह, कथम्=कैसे, करिष्यन्ति=करेंगे ?

भावार्थ—जब मेरे जीवित रहते ही मेरे पिता का केश पकड़कर शत्रु द्वारा उनका अपमान किया गया तब ऐसी स्थिति में पिता लोग पुत्रों से स्नेह (अथवा पुत्रों की कामना) क्यों करेंगे ? (अश्वत्थामा के कहने का अभिप्राय यह है कि मेरे विद्यमान रहते हुये ही पिता का घोर तिरस्कार किया गया । अतः मेरा जीवित रहना बेकार है ।) ।

छन्द—उक्त पद्य में "पथ्यावक्त्र" छन्द है ।

टिप्पणियाँ—पक्षपातिनि=दुःख में सहानुभूति प्रकट किये जाने पर अथवा बन्धुभाव दिखलाये जाने पर अथवा प्रेमभाव प्रदर्शित किये जाने पर । लघूकर्तुम्=दूर करने के लिये । युक्तमेव=उचित ही है । केशग्रहम्=केशों का खींचा जाना । पुत्रिणः=पितृजन-पिता लोग । स्पृहाम्=इच्छा, अनुराग, प्रेम ॥३१॥

कर्णः—द्रौणायने ! किमत्र क्रियते यदा तेनैव सर्वपरिभवत्राणहेतुना शस्त्रमुत्सृजता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज ! किमाह भवान् किमत्र क्रियते इति । श्रूयतां यत्क्रियते ।

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा ।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरतिमयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥३२॥

कर्ण—हे द्रोणपुत्र ! इस बारे में क्या किया जा सकता है ? जब कि सभी को तिरस्कार से बचाने वाले उन्हीं (द्रोण) के द्वारा शस्त्र त्यागकर वैसी दशा में अपने आपको कर लिया गया ।

अश्वत्थामा—हे अङ्गराज कर्ण ! क्या कहा आपने कि" इस बारे में क्या किया जा सकता है ?" सुनिये, जो किया जा सकता है—

अन्वयः—पाण्डवीनां चमूनां मध्ये स्वभुजगुरुमदः यः यः शस्त्रं बिभर्ति, पाञ्चालगोत्रे यः यः शिशुः वा अधिकवयाः वा गर्भशय्यां गतः, यः यः तत्कर्मसाक्षी, रणे मयि चरति, यः यः च प्रतीपः, इह क्रोधान्धः अहं तस्य तस्य स्वयं जगतां अन्तकस्य अपि अन्तकः (अस्मि) ॥३२॥

संस्कृत-व्याख्या—पाण्डवीनाम्=पाण्डवसम्बन्धिनीनाम्, चमूनाम्=सेनानाम्, मध्ये, स्वभुजगुरुमदः=स्वभुजयोः स्वबाह्वोः गुरुः महत् मदः अभिमानं यस्य तथाभूतः, यः यः=यःकश्चित्, शस्त्रम्=आयुधम्, बिभर्ति=दधाति, पाञ्चालगोत्रे=पाञ्चालानामिदं पाञ्चालं तथा भूते गोत्रे राजवंशे, यः यः=यःकश्चित्, शिशुः=बालः, वा=अथवा, अधिकवयाः=अधिकं वयः यस्य सः अधिकवयाः=तरुणो वृद्धश्च, वा=अथवा, गर्भशय्याम्=मातुः गर्भाशयः एव शय्या तल्पं ताम्, गतः=प्राप्तः गर्भस्थो वा, अस्तीतिशेषः, यः यः=यश्च यश्च, तत्कर्मसाक्षी=तस्य गुरुवधाख्यस्य कर्मणः-कृत्यस्य साक्षी द्रष्टा अस्तीति क्रिया शेषः;

रणे=युद्धे, मयि=अश्वत्थाम्नि, चरति=युद्धकर्माचरिति, यः यः च, प्रतीपः=विरुद्धः, इह=अत्र युद्धे, क्रोधान्धः=क्रोधोपहतविवेकः, अहम्=अश्वत्थामा, तस्य तस्य= तस्य सर्वस्यापि, स्वयम्=साक्षात्, जगताम्=लोकानाम्, अन्तकस्य=विनाशकस्य, कालस्य, अपि, अन्तकः=विनाशकः–यमः, अस्मि। सर्वं पाण्डवबलं विनाशयिष्यामीत्यर्थः। अखिलान् रिपून् हनिष्यामीत्यभिप्रायः॥३२॥

हिन्दी-अनुवाद–पाण्डवीनाम्=पाण्डवों की, चमूनाम्=सेनाओं के, मध्ये=मध्य में, स्वभुजगुरुमदः=अपनी भुजाओं के अभिमान में चूर, यः यः=जो जो, शस्त्रम्=शस्त्र को बिभर्ति=धारण करता है, पाञ्चालगोत्रे=पाञ्चालवंश में, यः यः=जो जो, शिशुः=बालक, वा=अथवा, अधिकवयाः=अधिक अवस्था वाला-युवा अथवा प्रौढ़, वा=अथवा, गर्भशय्याम्=गर्भरूपीशय्या में–(अर्थात् गर्भावस्था में) गतः=स्थित है, यः यः=जो जो, तत्कर्मसाक्षी=मेरे पिता के वध रूप कर्म के द्रष्टा हैं, रणे=युद्ध में, मयि=मुझ अश्वत्थामा के, चरति=संचरण करने पर, यः यः च=जो जो भी, प्रतीपः=(मेरे) विरुद्ध आचरण करने वाला होगा, इह=इस युद्ध में, क्रोधान्धः=क्रोध से अन्धा हुआ, अहम्=मैं, तस्य-तस्य=उस उसका, स्वयम्=साक्षात्, जगताम्=लोगों के, अन्तकस्य=विनाशक अथवा यम का, अपि=भी, अन्तकः=विनाशक अथवा यम, अस्मि=हूँ ॥३२॥

भावार्थ–पाण्डवों की सेना में––जिसे अपने बाहुबल का अभिमान है, जो शस्त्र को धारण करने वाले योद्धा हैं, पाञ्चालों की सेना में जो-जो वीर योद्धा हैं तथा जो बड़े अथवा छोटे अथवा गर्भ में स्थित बालक हैं और जिस-जिस ने यह गुरु के वधरूपी पाप को देखा है एवं जो भी युद्ध में मेरे समक्ष मेरा विरोधी बनकर आयेगा–उन सभी के लिये क्रोधान्ध मैं (अश्वत्थामा)–काल का भी काल–महाकाल ही हूँ। (कहने का तात्पर्य यह है कि मैं शत्रुओं के गर्भस्थ बच्चों तक को नहीं छोड़ूँगा, बड़ों की तो फिर बात ही क्या ?) ॥३२॥

अलंकार–उक्त पद्य के चतुर्थ चरण में 'रूपक' अलंकार है।

छन्द—इसमें 'स्रग्धरा' नामक छन्द है।

समास—पाण्डवीनाम्=पाण्डवानां इमाः पाण्डव्यः तासाम् । स्वभुजगुरुमदः=स्वभुजाभ्यां गुरुर्मदो यस्य सः । अधिकवयाः=अधिकं वयः यस्यासौ । गर्भशय्याम्=गर्भः एव शय्या इति गर्भशय्यां ताम् ।

टिप्पणियाँ—अत्र=इस (केशाकर्षणरूप कार्य) में, क्रियते=हमारे द्वारा (क्या) किया जाना संभव है । सर्वपरिभवत्राणहेतुना=सभी की अपमान से रक्षा करने में कारणभूत—अर्थात् सभी को अपमान से बचाने वाले । स्वभुजगुरुमदः=अपनी भुजाओं का महान् अभिमान रखने वाले । प्रतीपः=विरोधी, विरोधकर्त्ता । अन्तकस्य=विनाशक अथवा यम का । अन्तकः=विनाशक अथवा यम ॥३२॥

अपि च । भो जामदग्न्यशिष्य कर्ण !

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः ।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरुण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः ॥३३॥

और भी, हे जमदग्नि-पुत्र (परशुराम) के शिष्य कर्ण !

अन्वयः—अयं स देशः यस्मिन् अरातिशोणितजलैः ह्रदाः पूरिताः । क्षत्रात् एव तथाविधः तातस्य केशग्रहः परिभवः । मे अहितशस्त्रघस्मरगुरूणि तानि एव अस्त्राणि भास्वन्ति (सन्ति) । रामेण (पुरा) यत्कृतं क्रोधनः द्रौणायनिः (अपि) तदेव कुरुते ॥३३॥

संस्कृत-व्याख्या—अयम्=एषः, स=पुराणप्रसिद्धः, देश, अस्तीति शेषः । यस्मिन्=यत्र देशे, अरातिशोणितजलैः=अरातीनां शत्रूणां शोणितानि रुधिराणि एव जलानि सलिलानि, तैः, ह्रदाः=जलाशयाः, पूरिताः=भृताः । क्षत्रात्=क्षत्रियात्—धृष्टद्युम्नादेवेत्यर्थः, तथाविधः=तादृशःएव—जामदग्न्यपितृकेशाकर्षणसदृश एव, तातस्य=पितुः द्रोणस्य, केशग्रह,=केशाकर्षणरूपः, परिभवः=अनादरः । अभूदिति शेषः । मे=मम, अहितशस्त्रघस्मरगुरूणि=

अहितानाम्-रिपूणाम् शस्त्राणाम्-आयुधानाम् घस्मराणि-भक्षकानि अतएव गुरुणि-प्रचण्डानि पटूनि वा, तानि=जामदग्न्यसम्प्रदायागतानि, एव, अस्त्राणि=प्रहरणानि, भास्वन्ति=भास्वराणि, सन्तीति शेषः। रामेण=परशुरामेण, पुरा=पूर्वम्, यत्=यादृशम्--क्षत्रियवधात्मकं कर्म, कृतम्=विहितम्, क्रोधनः=रोषणः कुपितो वा, द्रौणायनिः=द्रोणसुतोऽश्वत्थामा, तदेव=तादृशमेव, कुरुते=विधत्ते-विधास्यतीयर्थः-वर्तमानसामीत्येऽत्र लट् ॥३३॥

हिन्दी-अनुवाद—अयम्=यह, स=वही, देशः=देश है, कि यस्मिन्=जिसमें, अरातिशोणितजलैः=शत्रुओं के रक्त रूपी जल से, ह्रदाः=तालाब, पूरिताः=भर दिये गये थे। क्षत्रात्=क्षत्रिय (धृष्टद्युम्न) से, तथाविधः=उस ही प्रकार का, एव=ही, तातस्य=पिता द्रोण का भी, केशग्रहः=केशाकर्षणरूप कर्म के द्वारा, परिभवः=अनादर किया गया है। मे=मेरे, अहितशस्त्रघस्मरगुरूणि=शत्रुओं के शस्त्रों को निगल जाने वाले अतएव महान्, तानि एव=वे ही, अस्त्राणि=अस्त्र, भास्वन्ति=चमक रहे हैं। रामेण=परशुराम ने (पुरा=पहले) यत्=जो क्षत्रियों का विनाश रूप कर्म, कृतम्=किया था, क्रोधनः=क्रोधी, द्रौणायनिः=अश्वत्थामा भी, तदेव=उसी प्रकार का कर्म, कुरुते=कर रहा है (करने जा रहा है।) ॥३३॥

भावार्थ—यह वही देश है कि जहाँ पर परशुराम ने शत्रुओं के रक्त से बड़े-बड़े तालाबों को भर दिया था। मेरे पिता द्रोण का भी केशग्रहण रूप तिरस्कार क्षत्रिय 'धृष्टद्युम्न' द्वारा किया गया है। परशुराम जी के पास शत्रुओं के शस्त्रों को खा जाने वाले जो अस्त्र-शस्त्र विद्यमान थे, वे ही मेरे समीप भी विद्यमान हैं (अर्थात् गुरुपरम्परा से मुझे भी प्राप्त हैं।) अतएव जो कर्म परशुराम ने किया था वही काम मैं अश्वत्थामा भी करूँगा ॥३३॥

अलंकार—इस पद्य में "निदर्शना" अलंकार है।

छन्द—इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

समास—अरातिशोणितजलैः=अरातीनां शोणितानि एव जलानि, तैः। अहितशस्त्रघस्मरगुरुणि=अहितानां शस्त्राणां घस्मराणि अतएव गुरुणि—इति। द्रौणायनिः=द्रोणस्यापत्यं द्रौणायनिः।

टिप्पणियाँ--जामदग्न्यशिष्यः=जमदग्नि के पुत्र परशुराम के शिष्य। कर्ण ने परशुराम से यह कहकर शस्त्रविद्या को सीखा था कि "मैं ब्राह्मण हूं"। बाद में परशुराम को यह ज्ञात हो गया कि यह तो क्षत्रिय है, ब्राह्मण नहीं। तब परशुराम ने उन्हें यह श्राप दे दिया था कि "जाओ, मुझसे सीखी गयी तुम्हारी सम्पूर्ण विद्या निष्फल हो जायगी"। इस समय अश्वत्थामा ने जो "जामदग्न्यशिष्य" कहकर कर्ण को सम्बोधित किया है उससे उस (कर्ण) की शस्त्रनिष्फलता की ओर ही संकेत किया गया है। अयम्=यह 'स्यमन्तपञ्चकतीर्थ-कुरुक्षेत्र' नामक स्थल। अरातिशोणितजलैः=शत्रुओं के रक्तरूपी पानी से। ह्रदाः=बड़े-बड़े तालाबों अथवा झीलों को। पूरिताः=भर दिया गया था। तथाविधः=उस ही प्रकार का। परिभवः=अपमान। अहितशस्त्रघस्मरगुरूणि=शत्रुओं के शस्त्रों को निगलजाने वाले। घस्मर-भक्षक-"भक्षको घस्मरोऽद्मरः" इत्यमरः। भास्वन्ति=देदीप्यमान-चमकते हुये। रामेण=परशुराम ने। प्राचीनकाल में हैहयवंशज 'सहस्रार्जुन' नामक एक राजा था। इसकी राजधानी महिष्मती थी। इसने परशुराम के पूज्य पिता जमदग्नि से 'कामधेनु' को बलपूर्वक छीन लिया था। परिणामस्वरूप परशुराम ने इसका वध किया और २१ बार क्षत्रियों का भी विनाश किया था। द्रौणायनिः=द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ॥३३॥

दुर्योधन—आचार्यपुत्र! तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम्?

कृपः—राजन्! सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण बोढुमध्यवसितः समर-भारः। तदहमेवं मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तुं लोकत्रयमपि समर्थः किं पुनर्युधिष्ठिरबलम्। अतोऽभिषिच्यतां सैनापत्ये।

दुर्योधनः—सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः। किं तु प्राक्प्रतिपन्नोऽयमर्थोऽङ्गराजस्य।

कृपः—राजन्! असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमङ्ग-राजस्यार्थे नैवोपेक्षितुं युक्तम्। अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम्। अतः किमस्य पीडा न भविष्यति?

अश्वत्थामा–राजन् कौरवेश्वर ! किमद्यापि युक्ताऽयुक्तविचारणया ।

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा–
　　मकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम् ।
इयं परिसमाप्यते रणकथाद्य दोःशालिना–
　　मपैतु नृपकाननातिगुरूरद्य भारो भुवः ॥३४॥

दुर्योधन—हे आचार्यपुत्र ! आपके जगद्विदित, असाधारण पराक्रम के अनुरूप और क्या हो सकता है ?

कृप—हे राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने युद्ध का महान् भार वहन करने का निश्चय किया है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपके द्वारा सत्कृत व पुरस्कृत (सेनापतिपद पर आरूढ) होकर यह तीनों लोकों का भी विध्वंस कर देने में समर्थ है। फिर युधिष्ठिर की सेना का तो कहना ही क्या ? अतएव इन्हें सेनापति के पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।

दुर्योधन—आपने ठीक (तथा) युक्तियुक्त ही कहा है। किन्तु यह तो पहले ही अङ्गराज (कर्ण) के लिये स्वीकृत किया जा चुका है।

कृप—हे राजन् ! अङ्गराज (कर्ण) के कारण असाधारण शोकरूपी सागर में डूबते हुये इन (अश्वत्थामा) की उपेक्षा किया जाना उचित नहीं है। इन (अश्वत्थामा) को भी उस ही शत्रुकुल को दण्डित करना है। अतः (कर्ण को सेनापति बनाये जाने पर) क्या इन्हें पीड़ा नहीं होगी ?

अश्वत्थामा—हे राजन्, कौरवाधिपति ! अब उचित-अनुचित का विचार करने से क्या (प्रयोजन) ?

अन्वयः—अद्य (त्वम्) निशां शेषे स्तुतिभिः प्रयत्नपरिबोधितः (भविष्यसि)। अद्य भुवनं अकेशवं अपाण्डवं निःसोमकं (भविष्यति)। अद्य दोःशालिनां इयं रणकथा परिसमाप्यते। अद्य भुवः नृपकाननातिगुरुः भारः अपैतु ॥३४॥

संस्कृत-व्याख्या—अद्य=अस्मिन्नेव दिने, (त्वम्=दुर्योधनः), निशाम्=सम्पूर्णां निशां यावत्; शेषे=शयिष्यसे (वर्तमानसामीप्ये लट्), स्तुतिभिः=

प्रभातकालिकैः वन्दिचारणमागधादिकृतस्तवैः, प्रयत्नपरिबोधितः=प्रयत्नेन-प्रयासेन परिबोधितः-प्रबोधितः भविष्यसीतिशेषः। अद्य, भुवनम्=जगत्, अकेशवम्-कृष्णशून्यम्, अपाण्डवम्=युधिष्ठिरादिभिर्विरहितम्, निःसोमकम्=सोमवंशशून्यं च भविष्यतीति क्रियाशेषः। एतान् सार्वानेव हनिष्यामीत्यभिप्रायः। अद्य, दोःशालिनाम्=दोर्भिः बाहुभिः शालन्ते शोभन्ते इति दोःशालिनः तेषाम् दोःशालिनाम्-बाहुपराक्रमशालिनाम्, इयम्=एषा प्रवर्त्तमाना, रणकथा=युद्धवार्त्ता, (मया) परिसमाप्यते=अवसीयते। अद्य=अद्यैव, भुवः=पृथिव्याः, नृपकाननातिगुरुः=नृपाः-राजानः एव काननानि-वनानि तैः अतिगुरुः-अतिविशालः, भारः=भरः, अपैतु=व्यपगच्छतुदूरं भवतु। ऐतानखिलान् पापिनः विनाश्य पृथिव्याः भारं लघूकरिष्यामीति भावः। अतएव हे राजन्! सैनापत्ये मां अभिषिच्य मे कौतुकं पश्येत्यभिप्रायः ॥३४॥

हिन्दी-अनुवाद—अद्य=आज, (त्वम्=आप) निशाम्=रात्रिपर्यन्त, शेषे=शयन करेंगे। स्तुतिभिः=बन्दी, चारणों आदि के द्वारा प्रातःकाल की गई हुई स्तुतियों के द्वारा, प्रयत्नबोधितः=बड़े प्रयत्न के साथ जगाये जावेंगे। अद्य=आज, भुवनम्=यह संसार, अकेशवम्=कृष्ण से रहित, अपाण्डवम्=पाण्डवों से रहित, निःसोमकम्=सोमवंश से विहीन (भविष्यति=हो जाएगा)। अद्य=आज, दोःशालिनाम्=अत्यधिक पराक्रमयुक्त भुजाओं वाले राजाओं की, इयम्=यह, रणकथा=युद्ध की चर्चा, (मया=मेरे द्वारा) परिसमाप्यते=समाप्त कर दी जायगी। अद्य=(और) आज ही, भुवः=पृथिवी का, नृपकाननातिगुरुः=राजाओं रूपी वनों के कारण अत्यधिक, भारः=भार (भी) अपैतु=दूर हो जायेगा ॥३४॥

भावार्थ—आज ही रात्रि में आप निश्चिन्त होकर गाढ़निद्रा में शयन करेंगे। और प्रातःकाल होने पर बन्दी, चारणों आदि द्वारा की गयी स्तुतियों के साथ प्रयत्नपूर्वक जगाए जावेंगे (ऐसी गाढ़निद्रा में आप निमग्न होंगे)। आज ही इस संसार से कृष्ण, पाण्डव तथा सोमक (पाञ्चाल) क्षत्रियों का नाम-निशान ही मिट जायगा। देखते ही देखते आज ही मैं शूरवीरों के घनघोर युद्ध की चर्चा को भी समाप्त कर दूंगा। और राजारूपीवनों से वृद्धि

को प्राप्त हुआ पृथ्वी का यह महान भार भी आज ही दूर हो जाएगा। (अश्वत्थामा के कहने का अभिप्राय यह है कि आप मुझे सेनापति बनाकर देखिये——मैं आज ही बात की बात में सबको समाप्त कर देता हूँ।)

अलंकार——उक्त पद्य में 'रूपक' अलङ्कार है।

छन्द——इसमें "पृथिवी" नामक छन्द है।

व्याकरण—शेषे=शीङ् (स्वप्ने) + लट् (मध्यमपुरुष-एकवचन)। निशाम्=में "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" सूत्र में वर्णित नियम के अनुसार द्वितीया विभक्ति हुई है।

समास——कृतपरिकरः=कृतः परिकरः यस्य सः। असदृशपरिभव-शोकसागरे=नास्तिसदृशो यस्य-इति—असदृशः यः परिभवः तस्मात् यः शोकः, एव सागरः—इति, तस्मिन्। प्रयत्नपरिबोधितः=प्रयत्नेन परिबोधितः। दोःशालिनाम्=दोर्भिः शालन्ते इति दोःशालिनः, तेषाम्। नृपकाननाति-गुरुः=नृपाः एव काननानि तैः अतिगुरुः—इति।

टिप्पणियाँ——तथाविधस्य=परशुराम के सदृश। अनन्यसाधारणस्य=विशेष का। वीरभावस्य=वीरत्व का, शौर्य का। वोढुम्=वहन करने के लिये। कृतपरिकरः=सत्कृत। सैनापत्ये=सेनापति पद पर। युज्यमानम्=युक्तियुक्त। प्राक्=पहले। प्रतिपन्नः=स्वीकार की जा चुकी है। अर्थे=लिये। अनुशासनीयम्=दण्डनीय। प्रयत्नपरिबोधितः=प्रयत्नपूर्वक जगाए जाते हुये। शेषे=सोओ दोःशालिनाम्=भुजाओं के पराक्रम से युक्त। रणकथा=युद्ध की चर्चा। अतिगुरुः=अत्यधिक द्वेषफल। अपैतु=दूर हो जाय ॥३४॥

कर्णः—(विहस्य) वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमिध्यवसितुम्। बहवः कौरवबलेऽस्य कर्मणः शक्ताः।

अश्वत्थामा—अङ्गराज! एवमिदम्। बहवः कौरवबलेऽत्र शक्ताः। किं तु दुःखोपहतः शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण।

कर्णः—मूढ! दुःखितस्याश्रुपातः, कुपितस्य चायुधद्वितीयस्य सङ्ग्रामावतरणमुचितं नैवंविधाः प्रलापाः।

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभूत ! सूतापसद ! ममापि नामाश्वत्थाम्नो दुःखितस्याश्रुभिः प्रतिक्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण । पश्य—

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवेवायुधं
सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा ।
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्त्रेण यत् ॥२५॥

कर्ण—(हँसकर) ऐसा कहना सरल है किन्तु (इसका) पूरा करना अति कठिन है। कौरवों की सेना में अनेक व्यक्ति इस कार्य के लिये समर्थ हैं।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, यह ऐसा ही है (जैसा कि तुम्हारे द्वारा कहा जा रहा है।) कौरवों की सेना में अनेक लोग इस कार्य में समर्थ हैं। किन्तु दुःख से आहत होकर शोक के आवेग के साथ कह रहा हूँ, वीर-पुरुषों की निन्दा की दृष्टि से नहीं।

कर्ण—मूर्ख, दुःखी (व्यक्ति) का आँसू बहाना तथा क्रोधित (व्यक्ति) का शस्त्र लेकर युद्ध-भूमि में उतर जाना उचित हुआ करता है, इस प्रकार का बकवास नहीं।

अश्वत्थामा—(क्रोध के साथ) अरे रे ! राधा के गर्भ के सारभूत ! अधमसूत ! मुझ दुःखित अश्वत्थामा को भी आँसुओं से प्रतीकार का उपदेश दे रहे हो, न कि शस्त्र से। देख—

अन्वयः—किम् तव इव मे आयुधं गुरुशापभाषितवशात् निर्वीर्यम् ? किम् त्वं यथा (अहमपि) सम्प्रति एव भयात् समरं विहाय प्राप्तः अस्मि ? किम् अहं स्तुतिवंशकीर्त्तनविदां सारथीनां कुले जातः ? यत् क्षुद्रारातिकृताप्रियं अस्त्रेण प्रतिकरोमि, न अस्त्रेण ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या—किमिति प्रश्ने, तव=भवतः कर्णस्य, इव=यथा, मे=मम, आयुधम्=शस्त्रम्, गुरुशापभाषितवशात्=गुरोः-शिक्षकस्य परशुरामस्य शापभाषितम्—शापवचनम् तद्वशात्-तत्कारणात्, निर्वीयम्=निर्बलम्, अस्तीति

शेषः ? किम् त्वम् यथा=त्वमिव (अहमपीति शेषः) सम्प्रति=अधुना, एव, भयात्=भीतेः, समरम्=युद्धम्, विहाय=त्यक्त्वा, प्राप्तः=आगतः अस्मि ? नैवेत्यर्थः। किम्, अहम्=अश्वत्थामा, स्तुतिवंशकीर्त्तनविदाम्=प्रशंसा-वंशावलीवर्णनपराणानाम्, सारथीनाम्=सूतानाम्, कुले=वंशे, जातः=उत्पन्नः, अस्मि ? त्वमिव तत्र नैव जातोऽहमित्यर्थः। यत=यतः, क्षुद्रारातिकृत प्रियम्=क्षुद्रः=नीचः यः अरातिः=शत्रुः तेन कृतम्-विहितम् अप्रियम्-अहितम् अपकारं वा, अस्त्रेण=अश्रुणा रोदनेनेत्यर्थः, प्रतिकरोमि=अपनयामि प्रतीकारविषयं करोमि वा, न अस्त्रेण=आयुधेन न (प्रतिकरोमि)। त्वादृशाः अकुलीनाः एव अश्रुणा शत्रुकृतापकारं कुर्वन्ति, न तु मादृशाः कुलीनाः शूराः—इत्यभिप्रायः ॥३५॥

हिन्दी-अनुवाद—किम्=क्या, तव=तुम्हारे, इव=समान, मे=मेरा, आयुधम्=शस्त्र, गुरुशापभाषितवशात्=गुरु (परशुराम) द्वारा दिये गये शाप के कारण, निर्वीर्यम्=शक्तिहीन हो गये हैं ? किम्=क्या, त्वम्=तुम्हारे, यथा=सदृश, (अहमपि=मैं भी), सम्प्रति=अभी, एव=ही, भयात्=भय से, समरम्=युद्ध को, विहाय=छोड़कर, प्राप्तः अस्मि=आगया हूँ ? किम्=क्या, अहम्=मैं, स्तुतिवंशकीर्त्तनविदाम्=प्रशंसा तथा वंश का कीर्त्तन करने वाले, सारथीनाम् सूतों के, कुले=वंश में, जातः=पैदा हुआ हूँ। यत्=जो कि, क्षुद्रारातिकृताप्रियम्=तुच्छ शत्रुओं के द्वारा किये गये अपकार का, अस्त्रेण=आँसुओं से, प्रतिकरोमि=बदला लूँ, अस्त्रेण=अस्त्र अथवा शस्त्र से, न=नहीं ॥३५॥

भावार्थ—क्या गुरु (परशुराम) के शाप के कारण तुम्हारे ही समान हमारे भी शस्त्र शक्तिहीन हो गये हैं ? क्या तुम्हारे ही सदृश मैं भी युद्धक्षेत्र से अभी भागकर आया हूँ ? क्या तुम्हारे ही समान स्तुति तथा वंशावली का मानकर उदरपूर्ति करने वाले सारथियों के कुल में मेरा भी जन्म हुआ है ? कि जो मैं तुच्छ शत्रुओं द्वारा किये गये अपकार का बदला आँसुओं से लूँ, शस्त्र से न लूँ ? (तुम्हारे ही समान अकुलीन व्यक्ति आँसुओं द्वारा शत्रुओं द्वारा किये गये अपकार का बदला लेते होंगे, मुझ जैसे कुलीन तथा शूरवीर व्यक्ति नहीं—यह अभिप्राय है।)।

छन्द—उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है।

समास—गुरुशापभाषितवशात्=गुरोः शापभाषितस्य वशात् । स्तुतिवंशकीर्त्तनविदाम्=स्तुतिं च वंशकीर्त्तनं च स्तुतिवंशकीर्त्तनम्—विदन्तीति—स्तुतिवंशकीर्त्तनविदाः, तेषाम् । क्षुद्रारातिकृताप्रियम्=क्षुद्रश्चासो अरातिश्च क्षुद्रारातिः, तेन कृतं यदप्रियं तत् ॥

टिप्पणियाँ—अध्यवसितुम्=किया जाना, करना । शक्ताः=समर्थ हैं । एवमिदम्=जैसा आपने कहा है, वैसा ही । वीरजनाधिक्षेपेण=वीर लोगों द्वारा की जाने वाली निन्दा के कारण । आयुधद्वितीयस्य=शस्त्र ही एकमात्र जिसका सहायक है । प्रलापाः=बकवास, निरर्थकवचन । गुरुशापभाषितवशात्=गुरु (परशुराम) द्वारा दिये गये शाप के कारण । कर्ण ने शस्त्रविद्या सीखने हेतु परशुराम को अपना गुरु बनाया था । उनसे कहा था कि मैं ब्राह्मण वर्ण का हूँ । बाद में जब परशुराम को यह ज्ञात हो गया कि यह तो क्षत्रिय हैं तथा इसने मुझे धोखा दिया है, यह ब्राह्मण नहीं है तब उन्होंने कर्ण को यह शाप दे दिया कि मुझसे सीखी हुयी सम्पूर्ण विद्या निष्फल हो जाय । निर्वीर्यम्=शक्तिहीन, बलहीन, बेकार । स्तुतिवंशकीर्त्तनविदाम्=प्रशंसा तथा वंश का कीर्त्तन करने वाले—अथवा—प्रशंसापूर्ण वंश का कीर्त्तन करने वाले । अरातिकृताप्रियम्=अराति-शत्रुओं द्वारा किये गये अपकार का । प्रतिकरोमि=बदला लूँ ॥३५॥

विशेष—किसी-किसी संस्करण में ३४ वें तथा ३५ वें श्लोक के बीच में कर्ण द्वारा कथित निम्नलिखित श्लोक उपलब्ध होता है और कहीं-कहीं सैंतीसवें श्लोक के स्थान पर । हमारे इस संस्करण में ३७ वें पर ही होगा ।

"सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥"

अर्थात् चाहे मैं सारथी होऊँ अथवा सारथी-पुत्र होऊँ अथवा जो कोई भी मैं होऊँ । किसी कुल में जन्म का प्राप्त किया जाना तो दैव (अदृष्ट) के आधीन हुआ करता है । मेरे आधीन तो पराक्रम है ।

कर्णः—(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट ! वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध ! बटो !

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।
यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ॥३६॥

कर्ण—(क्रोध के साथ) अरे रे बकवादी ! व्यर्थं ही शस्त्र-धारण करने से अभिमानी ! ब्राह्मण के बच्चे !

अन्वयः—निवीर्यं वा सवीर्यं वा, आयुधं मया न उत्सृष्टम् । यथा पाञ्चालभीतेन बाहुशालिना ते पित्रा (कृतम्) ।

संस्कृत-व्याख्या—मम शस्त्रम्, निवीर्यम्=पराक्रमरहितम्, वा=अथवा, सवीर्यम्=पराक्रमशालि वा स्यादितिशेषः, आयुधम्=शस्त्रम्, मया=कर्णेन, न=नहि, उत्सृष्टम्=त्यक्तम् । यथा=येन प्रकारेण, पाञ्चालभीतेन=द्रुपदपुत्र-धृष्टद्युम्नत्रस्तेन, बाहुशालिना=पराक्रमशालिना, ते=तव, पित्रा=जनकेन-द्रोणेनेत्यर्थः, कृतमितिशेषः ॥३६॥

हिन्दी-अनुवाद—मेरा शस्त्र, निवीर्यम्=पराक्रमहीन अथवा बलहीन; वा=अथवा, सवीर्यम्=पराक्रमशाली अथवा बलशाली हो, आयुधम्=शस्त्र को, मया=मैंने, न=नहीं, उत्सृष्टम्=छोड़ा । यथा=जैसा कि, पाञ्चालभीतेन=द्रुपदपुत्रधृष्टद्युम्न से भयभीत हुये, बाहुशालिना=पराक्रमशाली, ते=तुम्हारे, पित्रा=पिता (द्रोणाचार्य) ने, कृतम्=किया ॥३६॥

भावार्थ—मेरे शस्त्र निर्बल हों अथवा सबल, किन्तु मैंने उनका त्याग तो कभी भी नहीं किया है । जैसा कि तुम्हारे पराक्रमी पिता (द्रोण) ने किया है ॥३६॥

अलङ्कार—इस पद्य में 'उपमा' अलंकार है ।

छन्द—इसमें ''पथ्यावक्त्र'' छन्द है ।

टिप्पणियाँ—वाचाट=अत्यधिकनिन्दनीय बोलने वाला । "वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्" इत्यमरः । बटो=ब्राह्मणपुत्र । पाञ्चालभीतेन=द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न से भयभीत । बाहुशालिना=अपनी भुजाओं के बल के गर्व में चूर ।३६।

अपि च-

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवास्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥३७॥

और भी—

अन्वयः—सूतः वा सूतपुत्रः वा यः वा कः वा अहं भवामि । कुले जन्म दैवायत्तम्, तु पौरुषं मदायत्तम् ॥३७॥

संस्कृत-व्याख्या—सूतः=सारथिः, वा=अथवा, सूतपुत्रः=सारथिपुत्रः, वा=अथवा, यः कः=अविचारणीयः नीचातिनीचोवेत्यर्थः, अहम् भवामि=कोप्यहमस्मि । कुले=वंशे (उत्तमवंशे नीचवंशे वा), जन्म=उत्पत्तिः, दैयात्तम्=अदृष्टाधीनम्, अस्ति । तु=किन्तु, पौरुषम्=पराक्रमः, मदायत्तम्=ममाधीनम्, अस्ति ॥३७॥

हिन्दी-अनुवाद —सूतः=सारथी, वा=अथवा, सूतपुत्रः=सारथिपुत्र, वा=अथवा, यः=जो, कः=कोई, अहम्=मैं, भवामि=होऊँ । कुले=वंश में, जन्म=पैदा होना, दैवायत्तम्=भाग्य (अदृष्ट) के आधीन है । तु=किन्तु, पौरुषम्=पुरुषार्थ अथवा पराक्रम, मदायत्तम्=मेरे आधीन है ॥३७॥

भावार्थ—मैं सूत होऊँ अथवा सूतपुत्र अथवा जो कोई भी होऊँ, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । श्रेष्ठ कुल में अथवा नीच कुल में जन्म लेना तो भाग्य के आधीन है । किन्तु मेरे आधीन पुरुषार्थ अवश्य है ॥३७॥

छन्द—उक्त पद्य में "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है ।

टिप्पणियाँ–दैवायत्तम्=भाग्य के आधीन । पौरुषम्=पुरुषार्थ, पराक्रम । मदायत्ताम्=मेरे (अपने) आधीन । आयत्तम्=आधीन ॥३७॥

अश्वत्थामा-(सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलङ्क ! राधागर्भभारभूत ! अरे आयुधानभिज्ञ ! तातमप्यधिक्षिपसि । अथवा–

स: भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने
कृतं यत्तेनाजौ प्रतिदिनमियं वेत्तिवसुधा।
परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स सत्यव्रतधरः
पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ?॥३८॥

अश्वत्थामा—(क्रोध के साथ) अरे रे रथकार-कुल के कलङ्क ! राधा के कुल के भारभूत ! अरे शस्त्रों के प्रयोग से अनभिज्ञ ! तुम मेरे पिता जी पर भी दोषारोपण कर रहे हो ? अथवा—

अन्वयः—त्रिभुवने प्रथितभुजसारः स शूरः वा भीरुः (आसीत्), प्रतिदिनं तेन आजौ यत् कृतम् (तत्) इयं वसुधा वेत्ति। शस्त्रं कथं परित्यक्तं इति सत्यव्रतधरः सः पृथासूनुः साक्षी, हे रणभीरो ! त्वं तदा क्व नु असि ?

संस्कृत-व्याख्या—त्रिभुवने=लोकत्रये, प्रथितभुजसारः=प्रथितं ख्यातं भुजयोः बाह्वोः सारः बलं यस्य सः, सः=मत्तातः, शूरः=वीरः, वा=अथवा, भीरुः=कातरः (आसीत्), प्रतिदिनम्=प्रत्यहम्, तेन, आजौ=युद्धे, यत्=यादृशं कर्म, कृतम्=विहितम्, (तत्), इयम्=एषा, वसुधा=पृथिवी ('रणभूमिः'-इत्यर्थः), वेत्ति=जानाति। शस्त्रम्=आयुधम्, कथम्=कस्मात् हेतोः, परित्यक्तम्=विसृष्टम्, इति=अस्मिन् विषये तु, सः=सत्यवादित्वेन प्रसिद्धः, पृथासूनुः=कुन्तीपुत्रः युधिष्ठिरः, साक्षी=प्रत्यक्षद्रष्टा, अस्ति। हे रणभीरो !=हे रणकातर !, त्वम्=कर्णः, तदा=तस्मिन् काले (यदा दुष्टेन तादृशं कर्म कृतम्), क्व नु=कुत्र, असि=आसीः ? ॥३८॥

हिन्दी-अनुवाद—त्रिभुवने=तीनों लोकों में, प्रथितभुजसारः=प्रसिद्ध भुजबल वाले, सः=वह (मेरे पिता द्रोण), शूरः=शूरवीर, वा=अथवा, भीरुः=डरपोक (आसीत् थे।)। प्रतिदिनम्=प्रतिदिन, तेन=उन्होंने, आजौ=युद्ध में, यत्=जो, कुछ, कृतम्=किया (तत्=उसे), इयम्=यह, वसुधा=पृथिवी, वेत्ति=जानती है। शस्त्रम्=शस्त्र को, कथम्=किस कारण अथवा क्यों, परित्यक्तम्=छोड़ा, इति=इस बारे में, सत्यव्रतधरः=सत्यवादी, सः=वह, पृथासूनुः=कुन्तीपुत्र-

युधिष्ठिर, साक्षी=साक्षी हैं। हे रणभीरो !=हे युद्ध से डरने वाले !, त्वम्=तुम (कर्ण), तदा=उस समय, क्व नु=कहाँ, असि=थे ? ॥३८॥

भावार्थ - मेरे पिता (द्रोण) शूरवीर थे अथवा डरपोक थे (जो भी थे, वे थे, इस बारे में यह निश्चित है कि-)तीनों लोकों में उनकी भुजाओं का बल प्रसिद्ध था। उन्होने युद्ध में प्रतिदिन जो भी कार्य किये हैं उनसे यह पृथ्वी भलीभाँति परिचित है। (अर्थात् रणभूमि में पड़े हुये लाखों रुण्ड-मुण्ड ही इसके प्रमाण हैं।)। उन्होने युद्ध में शस्त्र का परित्याग क्यों कर दिया था ? इसका साक्षी वह सत्यव्रतधारी युधिष्ठिर विद्यमान ही है। किन्तु हे भीरु (कायर) कर्ण ! तू उस समय कहाँ था ? (अर्थात् तू तो उस समय इधर-उधर भागता फिरता था।) ॥३८॥

छन्द—उक्त पद्य में "शिखरिणी" छन्द है।

समास—रथकारः=रथं करोतीति रथकारः। यहाँ 'कर्मण्यण" से अण् होता है। प्रथितभुजसारः=प्रथितः भुजयोः सारः यस्य सः।

टिप्पणियाँ—अधिक्षिपसि=निन्दा करते हो। प्रथितभुजसारः=जिसकी भुजाओं का पराक्रम तीनों भुवनों में व्याप्त था। आजौ=युद्ध में। वेत्ति=जानती है। पृथा=कुन्ती। साक्षी=साक्षात् द्रष्टा ॥३८॥

कर्णः-(विहस्य) एवं भीरुरहम्। त्वं पुनः विक्रमैकरसं पितरमनुस्मृत्य किं करिष्यसीति महान्मे संशयो जातः। अपि च रे मूढ !

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान्।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं
सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसंनिधौ ॥३९॥

कर्ण—(हँसकर) मैं ऐसा डरपोक हूँ। किन्तु पिता के ही पराक्रम में आनन्द प्राप्त करने वाले तुम (अपने) पिता का स्मरण कर क्या करोगे—यह सोचकर मुझे अत्यधिक संशय हो रहा है। और भी—अरे मूर्ख !

अन्वयः—यदि शस्त्रं उज्झितम् (इति सत्यं भवेत्तथापि) अस्त्रपाणयः उदायुधान् अरीन् किं न निवारयन्ति ? यत् नृपचक्रसन्निधौ स्त्रिया इव अनेन मौलिदलने अपि सुचिरं उदासितम् ॥३९॥

संस्कृत-व्याख्या—यदि, (तव पित्रा शोकेन) शस्त्रम्=आयुधम्, उज्झितम्=परित्यक्तम् (इति सत्यं भवेत्तथापि) अशस्त्रपाणयः=शस्त्रपाणयो न भवन्ति—इति-अशस्त्रपाणयः=त्यक्तास्त्राः, उदायुधान्=उद्यतास्त्रान्—प्रहर्तुमुद्यतान्—इत्यर्थः, अरीन् शत्रून्, किं न निवारयन्ति=किं न प्रतिकुर्वन्ति ? प्रतिकुर्वन्त्येव। यत्=यस्मात्, नृपचक्रसन्निधौ=नृपाणां-राज्ञां चक्रस्य-समूहस्य सन्निधौ-समक्षम्, स्त्रिया इव=योषितेव, अनेन=तव पित्रा, मौलिदलने=मौलिः मस्तकं तस्य दलने-खण्डने, अपि, सुचिरम्=पर्याप्तकाल यावत्, उदासितम्=औदासीन्यमवलम्बितम्। तत्कुतः इत्ययमेव मे सन्देहः—इत्यर्थः। अतिनिर्बलः स आसीदित्यभिप्रायः ॥३९॥

हिन्दी-अनुवाद—यदि=यदि, (मेरे पिता द्रोण) ने, शस्त्रम्=शस्त्र का, उज्झितम्=परित्याग कर दिया था (यदि यह सत्य हो तो भी) अशस्त्रपाणयः=हाथ में शस्त्र न धारण किये हुये व्यक्ति, उदायुधान्=(मारने के लिये) शस्त्रों को ऊपर उठाये हुये, अरीन्=शत्रुओं का, किं न निवारयन्ति=क्या प्रतीकार नहीं करते हैं ? (अर्थात् अवश्य करते हैं।) यत्=जो कि, नृपचक्रसन्निधौ=राजसमूह के समक्ष, स्त्रिया=स्त्री के, इव=समान, अनेन=तुम्हारे पिता द्रोण ने, मौलिदलने=गर्दन के काटे जाने पर, अपि=भी, सुचिरम्=बहुत समय तक, उदासितम्=उदासीनता का ही प्रदर्शन किया ॥३९॥

भावार्थः—यदि तुम्हारे पिता ने शस्त्र का त्याग भी कर दिया था तो भी क्या लोग शस्त्र के बिना शत्रु के आक्रमण को नहीं रोका करते हैं ? (अर्थात् अवश्य रोका करते हैं।) किन्तु तुम्हारे पिता तो सब राजाओं के समक्ष स्त्रियों के सदृश चुपचाप बैठे रहे। बाल पकड़कर खींचे जाने तथा गर्दन काटे जाने पर भी उन्होंने कुछ भी नहीं किया ॥३९॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "उपमा" अलंकार है।

छन्द—इसमें "मञ्जुभाषिणी" नामक छन्द है।

लक्षण—"सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी"।

समास—विक्रमैकरसम्=विक्रमे (पराक्रमे) एकः रसः यस्य तम्। अशस्त्रपाणयः=न विद्यते शस्त्रं पाणौ येषां ते। नृपचक्रसन्निधौ=नृपाणां चक्रस्य सन्निधौ-इति ॥

टिप्पणियाँ—विक्रमैकरसः=पराक्रमपरायण। यह आचार्य द्रोण का कर्ण द्वारा प्रयुक्त विशेषण है। यद्यपि आचार्य द्रोण के लिये प्रयुक्त यह विशेषण पूर्णतया उपयुक्त ही है किन्तु कर्ण तो इसका प्रयोग व्यङ्ग्यार्थ में ही कर रहा है। उसका अभिप्राय यह है कि विक्रम (पराक्रम) प्रदर्शन के समय जिस भाँति तुम्हारे पिता जी ने शत्रु के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया उसी भाँति कहीं तुम भी न करो यही हमें सन्देह है। उज्झितम्=त्याग दिया। उदायुधान्=(मारने के निमित्त) अपने शस्त्रों को ऊपर उठाये हुये। निवारयन्ति=निवारण करते हैं। नृपचक्रसन्निधौ=राजाओं के समूह के पक्ष। मौलिदलने=शिर काटने में, एक हाथ से बालों को पकड़ कर दूसरे हाथ से गर्दन को काटने में। सुचिरम्=देर तक, पर्याप्त समय तक। उदासितम्=उदासीनता को प्रकट किया ॥३९॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधं सकम्पं च) दुरात्मन्! राजवल्लभ! प्रगल्भ! सूतापसद! असंबद्धप्रलापिन्!

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य।
तवभुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयनम् ॥४०॥

(इति तथाकर्त्तुमुत्तिष्ठति।)

अश्वत्थामा—(क्रोध के साथ काँपते हुये) दुष्ट! राजा का मुँह लगा! ढीठ! अधमसारथि! ऊटपटाँग बकने वाले!

अन्वयः—दुखिना वा भीरुणा तेन मम पित्रा द्रुपदतनयपाणिः कथमपि न निषिद्धः। अद्य भुजबलदर्पाध्मायमानस्य तव शिरसि एषः वाम, चरणः न्यस्यते, एनं वारय ॥ ४० ॥

संस्कृत-व्याख्या:—दुःखिना=शोकाकुलेन, वा=अथवा, भीरुणा=भयाकुलेन, तेन=मृतेनेत्यर्थः, मम, पित्रा=द्रोणेनेत्यर्थः, द्रुपदतनयस्य धृष्टद्युम्नस्य पाणिः हस्तः, कथमपि=येन केनापि रूपेणेत्यर्थः, न निषिद्धः=न निवारितः। अद्य=सम्प्रति, भुजबलदर्पाध्मायमानस्य=भुजयोः बलस्य यो दर्पः अभिमानः तेन आध्मायमानस्य गर्वितस्य-उत्फुल्लस्य वा, तव=कर्णस्येत्यर्थः, शिरसि=मूर्ध्नि, एषः=अयम्, वामः=दक्षिणेतरः, चरणः=पादः, (मया) न्यस्यते= स्थाप्यते। यदि समर्थोऽसि तर्हीति शेषः, एनम्=शिरसि स्थाप्यमानं मम चरणम्; वारय=न्यषेधय ।। ४० ।।

हिन्दी-अनुवाद—दुःखिना=दुःखी, वा=अथवा, भीरुणा=डरपोक, तेन=उन, मम=मेरे, पित्रा=पिता (द्रोण) के द्वारा, द्रुपदतनयपाणिः—द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न का हाथ, कथमपि=जिस किसी प्रकार से, न निषिद्धः=नहीं रोका गया। अद्य=आज, भुजबलदर्पाध्मायमानस्य=अपने बाहुबल के अभिमान में चूर, तव=तुम्हारे सिर पर, एषः=यह, वामः=बायाँ, चरणः=चरण, (मया=मेरे द्वारा), न्यस्यते=रखा जा रहा है, (यदि शक्ति हो तो) एनम्=इसको, वारय=रोको ।। ४० ।।

भावार्थ—चाहे मेरे पिता ने दुःखित होकर अथवा डरकर द्रुपदपुत्र-धृष्टद्युम्न का हाथ नहीं रोका। किन्तु अपनी भुजाओं के गर्व में फूले हुए तेरे शिर पर मैं अपना बायाँ चरण रखता हूँ। यदि तुम्हारे अन्दर सामर्थ्य हो तो इसे रोको ।। ४० ।।

छन्द—उक्त पद्य में "मालिनी" छन्द है। लक्षण—"न-न-म-य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः"।

समासः—द्रुपदतनयपाणिः=द्रुपदतनयस्य पाणिः-इति। भुजबलदर्पाध्मायमानस्य=भुजयोः बलम्-भुज-बलम्, तस्य यः दर्पः तेन आध्मायमानस्य ।।

टिप्पणियाँ—राजवल्लभ=राजा का प्रिय। प्रगल्भ=वाचाट। असम्बद्धप्रलापिन्=निरर्थक बोलने वाले। दुःखिता=दुखी। भीरुणा=डरपोक। आध्मायमानस्य=फूले हुए; गर्वीले। न्यस्यते=रखा जा रहा है ।।४०।।

(यह कह कर वैसा करने के लिए उठता है ।)

कृप-दुर्योधनौ—गुरुपुत्र ! मर्षय, मर्षय । (इति निवारयतः ।)

(अश्वत्थामा चरणप्रहारं नाटयति ।)

कर्णः—(सक्रोधमुत्थाय खड्गमाकृष्य) अरे दुरात्मन् ! वाचाल ! ब्रह्मबन्धो ! आत्मश्लाघ !

जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विममुद्धृतम् ।
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥ ४१ ॥

कृपाचार्य और दुर्योधन—हे गुरु पुत्र ! क्षमा करो, क्षमा करो (ऐसा कहकर रोकते हैं ।)

(अश्वत्थामा अपने चरण-प्रहार का अभिनय करता है ।)

कर्ण—(क्रोध के साथ उठकर तथा तलवार खींचकर) अरे दुष्ट ! बकवादी ! नीच ब्राह्मण ! अपनी प्रशंसा करने वाले !

अन्वयः—जात्या कामं (त्वम्) अवध्यः असि, तु उद्घृतं इदं चरणं अनेन खड्गेन लूनं, क्षितौ पतितं द्रक्ष्यसि ।

संस्कृत-व्याख्या:—जात्या=ब्राम्हणजात्या—इत्यर्थः, कामम्=यद्यपि, (त्वम्), अवध्यः=अहन्तव्यः, असि, तु=किन्तु, उद्घृतम्=प्रहर्तुमुत्थापितम्, इदम्=एतत्, चरणम्=पादम्, अनेन=एतेन—मदीयेनेत्यर्थः, खड्गेन=असिना, लूनम्=छिन्नम्, सत्, क्षितौ=भूमौ, पतितम्, द्रक्ष्यसि=अवलोकयिष्यसि ॥४१॥

हिन्दी-अनुवाद—जात्या=जाति से ब्राह्मण होने के कारण, कामम्=यद्यपि, तुम, अवध्यः=अवध्य हो, तु=किन्तु, उद्धृतम्=उठाये गये, इदम्=इस, चरणम्=पैर को, अनेन=इस, खड्गेन=तलवार से, लूनम्=कटा हुआ, क्षितौ=पृथ्वी पर, पतितम्=पड़ा हुआ, द्रक्ष्यसि=देखोगे ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जाति से ब्राह्मण होने के कारण, यद्यपि तू अवध्य है । फिर भी तेरे इस उठे हुये पैर को अपनी इस तलवार से काटकर पृथ्वी पर फेंक देता है । देखो ।

छन्द—इस पद्य में "पथ्यावक्त्र" छन्द है।

टिप्पणियाँ—तथाकर्त्तुम्=बाँयें पैर को उस (कर्ण) के शिर पर रखने के लिए। मर्षय=क्षमा करो। नाटयति=अभिनय करता है। वाचाट=अत्यधिक बोलने वाले। ब्रह्मबन्धो=नीच ब्राह्मण। "ब्रह्मबन्धुरधिक्षेपेऽनिर्देश्ये" इत्यमरः। कामम्=इच्छानुसार, यद्यपि। अवध्यः=हिंसा न किये जाने योग्य, अवध्य। लूनम्=कटा हुआ। क्षितौ=पृथ्वी पर। पतितम्=पड़ा हुआ ॥४१॥

अश्वत्थामा—अरे मूढ ! किं नाम जात्या काममवध्योऽहम्। इयं सा जातिः परित्यक्ता।

(इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति। पुनश्चसक्रोधम्)

अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया।
शस्त्रं गृहाण वात्यक्त्वा मौलौ वा रचयाञ्जलिम् ॥४२॥

अश्वत्थामा—अरे मूर्ख ! क्या कहा ?—"मैं (ब्राह्मण) जाति के कारण अवध्य हूँ"। यह वह जाति छोड़ दी। (यह कहकर यज्ञोपवीत (जनेऊ) को तोड़ देता है। और फिर क्रोध के साथ)—

अन्वयः—अद्य मया असौ किरीटी मिथ्याप्रतिज्ञः क्रियते; वा शस्त्रं गृहाण, वा त्यक्त्वा मौलौ अञ्जलिं रचय ॥४२॥

संस्कृत-व्याख्या—अद्य=अधुना, मया=अश्वत्थाम्ना, असौ=सः, किरीटी=अर्जुनः, मिथ्याप्रतिज्ञः=मिथ्या वितथा-असत्या वा प्रतिज्ञा-प्रणः यस्य सः तादृशः, क्रियते=विधीयते। अर्जुनेन कर्णवधः प्रतिज्ञातः। सम्प्रति मया कर्णवधः क्रियते। एवं कृते सति अर्जुनस्य प्रतिज्ञा असत्या भविष्यतीत्यभिप्रायः। शस्त्रम्=आयुधम्, गृहाण=धारय, वा=अथवा त्यक्त्वा=शस्त्रं परित्यज्य, मौलौ=मस्तके, अञ्जलिम्=करसम्पुटम्, रचय=विधेहि। शस्त्रं गृहीत्वा युध्यस्व अथवा शस्त्रं त्यक्त्वा त्राणार्थं शरणागतो भवेतिभावः ॥४२॥

हिन्दी-अनुवाद—अद्य=आज, मया=मुझ अश्वत्थामा के द्वारा, असौ=वह किरीटी=अर्जुन, मिथ्याप्रतिज्ञः=झूठी प्रतिज्ञा वाला, क्रियते=किया जा रहा

है। वा=या तो, शस्त्रम्=शस्त्र, गृहाण=धारण करो (अर्थात् शस्त्र धारण कर मेरे साथ युद्ध करो), वा=अथवा, त्यक्त्वा=शस्त्र का त्यागकर, मौली=मस्तक पर, अञ्जलिम्=हाथों को जुड़े हुये रूप में, रचय=रक्खो ॥४२॥

भावार्थ—आज मैं अपने हाथों कर्ण का वध कर अर्जुन को झूठी प्रतिज्ञा वाला कर देता हूँ। अतः हे कर्ण ! या तो युद्ध के लिये शस्त्र को धारण करो अथवा शस्त्र का त्यागकर शिर पर अञ्जलि को बाँधो (अर्थात् प्राणों की भीख मुझसे माँगो—तभी तुमको छोड़ सकता हूँ, अन्यथा नहीं।)।

छन्द— इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

टिप्पणियाँ— मिथ्याप्रतिज्ञः=असत्य प्रतिज्ञा वाला। अर्जुन ने आज कर्ण का वध करने के निमित्त प्रतिज्ञा की है। किन्तु यदि आज अश्वत्थामा ही कर्ण को मार डालेगा तो अर्जुन की प्रतिज्ञा भंग हो जायगी और वह झूठी प्रतिज्ञा वाला हो जायेगा। अतः शस्त्रं गृहाण–या तो शस्त्र को ग्रहण करो अथवा शस्त्र का त्यागकर शरण में आ जाओ। इसके अतिरिक्त तुम्हारे लिये कोई अन्य मार्ग नहीं है ॥४२॥

उभावपि खड्गमाकृष्यान्योन्यं प्रहर्तुमुद्यतौ। कृपदुर्योधनौवारयतः।

दुर्योधनः—सखे आचार्यपुत्र ! शस्त्रग्रहणेनालम्।

कृपः—वत्स, सूतपुत्र ! शस्त्रग्रहणेनालम्।

अश्वत्थामा—मातुल मातुल ! किं निवारयसि ? अयमपि तातनिन्दाप्रगल्भः सूतापसदो धृष्टद्युम्नपक्षपात्येव।

कर्णः—राजन् ! न खल्वहं निवारयितव्यः।

उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥४३॥

(दोनों ही तलवार खींचकर एक दूसरे पर प्रहार करने को उद्यत होते हैं। कृप और दुर्योधन रोकते हैं।)

दुर्योधनः—मित्र, आचार्यपुत्र ! शस्त्र-ग्रहण करने से बस (अर्थात् शस्त्र उठाने की आवश्यकता नहीं।)।

कृप—बेटा, सूतपुत्र ! शस्त्र ग्रहण करने से बस (अर्थात् शस्त्र निकालने की आवश्यकता नहीं।)।

अश्वत्थामा—मामा, मामा, क्यों रोक रहे हो ? पिता जी की निन्दा करने में ढीठ यह नीच सूत भी धृष्टद्युम्न का पक्षपाती है।

कर्ण—हे राजन् मुझे न रोकिये।

अन्वयः—धीरसत्त्वैः अवज्ञया उपेक्षितानां क्रोधान्धैः अत्रासितानां मन्दानां एषा विकत्थना भवति ॥४३॥

संस्कृत-व्याख्या—धीरसत्त्वैः=धीरं गम्भीरं सत्त्वं बलं येषां तैः—गुरुपराक्रमैरित्यर्थः, अवज्ञया=अनादरेण, उपेक्षितानाम्=अकृतप्रतीकाराणाम्, क्रोधान्धैः=क्रोधाविष्टैः—कोपेन विवेकशून्यैः, अत्रासितानाम्=अतर्जितानाम्-अशासितानां वा, मन्दानाम्=हीनशक्तीनां मूर्खाणाम्, एषा=ईदृशी एव, विकत्थना=स्वभुजवीर्यश्लाघा, भवति=जायते। अकृतप्रतीकाराः नीचा एवमेव प्रगल्भन्ते, अतः अस्य प्रतीकारः कर्त्तुमुचितमेवेति भावः ॥४३॥

हिन्दी-अनुवाद—धीरसत्त्वैः=गम्भीरस्वभाव वाले वीरों के द्वारा, अवज्ञया=अनादर से, उपेक्षितानाम्=अपेक्षित, क्रोधान्धैः=क्रोध के कारण विवेकशून्य, अत्रासितानाम्=दण्डित न किये गये, मन्दानाम्=मूर्खों की, एषा=ऐसी ही, विकत्थना=आत्मश्लाघा (डींग), भवति=हुआ करती है।

भावार्थ—पराक्रमी पुरुषों द्वारा तिरस्कार की दृष्टि से उपेक्षा किये गये नीच लोग यदि क्रोध के साथ दण्डित न किये जायें तो वे इस ही भाँति बढ़ बढ़कर बोला करते हैं। अतः इन (अश्वत्थामा) की उपेक्षा उचित नहीं है। इसे दण्ड देना ही उचित है ॥४३॥

छन्द—उपर्युक्त पद्य में "अनुष्टुप" छन्द है।

टिप्पणियाँ—तातनिन्दाप्रगल्भः=पिता (द्रोण) की निन्दा करने में ढीठ। उपेक्षितानाम्=उपेक्षा किये गये। प्रतीकार न किये गये। क्रोधान्धैः=क्रोध के कारण विवेकशून्य। अत्रासितानाम्=दण्डित न किये गये व्यक्ति। विकत्थना=अपने भुजाओं के पराक्रम की स्वयं ही प्रशंसा करने वाले ॥४३॥

अश्वत्थामा—राजन् ! मुञ्च मुञ्चैनम् । आसादयतु मद्भुजान्तरनिष्पेषसुलभमसूनामवसादनम् । अन्यच्च राजन् स्नेहेन कार्येण वा यत्त्वमेनं ताताधिक्षेपकारिणं दुरात्मानं मत्तः परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव । पश्य—

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सखायं
सूतान्वयः शशधरान्वयसंभवस्य ।
हन्ता किरीटिनमहं नृप मुञ्च कुर्यां
क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥

अश्वत्थामा- राजन् ! छोड़िये, इसे छोड़िये । यह मेरी भुजाओं के बीच में पीस दिये जाने से सरलता के साथ प्राण-नाश को प्राप्त कर ले । और दूसरी बात यह है कि हे राजन् ! प्रेम के कारण अथवा प्रयोजन वश जो आप इस (मेरे) पिता जी की निन्दा करने वाले दुरात्मा को मुझसे बचाना चाहते हैं, ये दोनों ही व्यर्थ हैं । देखिये:—

अन्वयः—हे नृप ! गुणिनः शशधरान्वयसंभवस्य तव पापप्रियः सूतान्वयः अयं कथं सखा ? अहं किरीटिनं हन्ता (अतः, माम्) मुञ्च । अद्य क्रोधात् लोकं अकर्णं अपृथात्मजं कुर्याम् ॥४४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे नृप् !=हे राजन् !, गुणिनः=गुणान्वितस्य, शशधरान्वयसम्भवस्य=शशधरः-चन्द्रः तस्य अन्वयः-वंशः तत्र संभवस्य-उत्पन्नस्य, तव=भवतः, पापप्रियः=पापी. सूतान्वयः=सूतकुलोत्पन्नः, अयम्=एषः (कर्णः) कथम्=केन प्रकारेण,सखा=प्रियसुहृत् भवितुमर्हतीति शेषः ?एवञ्च स्नेहेनास्य रक्षणं न सम्भवति । कार्यार्थमपि अस्य रक्षणं नोचितमित्याह—अहमेव=अश्वत्थामा एव, किरीटिनम्=अर्जुनम्, हन्ता=हनिष्यामि । अतोऽस्मात्प्रयोजनादपि अस्य रक्षणं नैवोचितम् । (अतः, माम्) मुञ्च=त्यज । अद्य=अस्मिन्नेव दिवसे, क्रोधात्=कोपात्, लोकम्=जगत्, अकर्णम्=कर्णविरहितम्, अपृथात्मजम्=अर्जुनशून्यञ्च, कुर्याम=सम्पादयेयम् ॥४४॥

हिन्दी-अनुवाद—हे नृप्=हे राजन् !, शशधरान्वयसंभवस्य=चन्द्रकुल में उत्पन्न, तव=आपका, पापप्रियः=पापी, सूतान्वयः=सूतकुल में उत्पन्न, अयम्=यह (कर्ण), कथम्=कैसे, सखा=प्रिय मित्र (हो सकता है ।) । अहम्=मैं (अश्वत्थामा) ही, किरीटिनम्=अर्जुन को, हन्ता=मारूँगा । (अतः=इसलिये, माम्=मुझको), मुञ्च=छोड़ दो । अद्य=आज, क्रोधात्=क्रोध से, लोकम्=संसार को, अकर्णम्=कर्ण से रहित, अपृथात्मजम्= अर्जुन से रहित, कुर्याम्=कर दूँगा ॥४८॥

भावार्थ – हे राजन् (दुर्योधन) ! आपका जन्म तो पवित्र चन्द्रवंश में हुआ है, आप गुणी व्यक्ति हैं, इस प्रकार के आपके साथ इस सूतकुलकलङ्क, पापी की मित्रता कैसी ? (अतः स्नेह के साथ आप के द्वारा इसकी रक्षा किया जाना उचित नहीं है ।) मैं स्वयं ही अर्जुन को मार दूँगा । (अतः इससे अर्जुन को मार देने रूप कार्य की भी आशा करना व्यर्थ है ।) । मैं आज ही क्रोध से इस लोक (पृथ्वी) को कर्ण तथा अर्जुन दोनों से ही रहित कर देता हूँ ॥४४॥

छन्दः—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" छन्द है ।

समास—मद्भुजान्तरनिष्पेषसुलभम्=मदीयौ यौ भुजौ तयोः अन्तरे यः निष्पेषः (यन्त्रणं मर्दनं वा) तेन सुलभम् । ताताधिक्षेपकारिणम्=तातस्य (मत्पितुः) अधिक्षेपकारिणम् (निन्दकम्) । शशधरान्वयसंभवस्य=शशधरस्य अन्वयः इति शशधरान्वयः तत्र संभवो यस्य स तस्य ।

टिप्पणियाँ—एनम्=इस (कर्ण) को । मद्भुजान्तरनिष्पेषसुलभम्=मेरी बाहुओं के बीच में पीस दिये जाने से सरलतापूर्वक । असूनाम्=प्राणों की । अवसादनम्=समाप्ति, विनाश । कार्येण=अपने कार्य की सिद्धि के निमित्त । अधिक्षेपकारिणम्=निन्दा करने वाले को । तदुभयम्=वह दोनों । अश्वत्थामा के कहने का अभिप्राय यह है कि (१) यदि आप मित्रता के कारण इस कर्ण की रक्षा करना चाहते हैं तो यह निश्चित रूप से जान लीजिये कि वह आपका मित्र कभी भी नहीं बन सकता है क्योंकि मित्रता तो समानशीलता और समानवंशता के आधार पर ही हुआ करती है । आप

अत्यन्त गुणी तथा उच्चकुल के हैं तथा वह पूर्णतया पापी तथा नीच वंश का है। अतः मित्र बनने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। (२) यदि आप इस दृष्टि से इसकी रक्षा कर रहे हैं कि यह आपका हित करेगा अर्थात् आपके शत्रु अर्जुन का नाश कर देगा तो यह भी व्यर्थ ही है क्योंकि अब तो मैं स्वयं ही अर्जुन का नाश करूँगा। इसी भाव को आगामी श्लोक में पूर्णरूप से स्पष्ट किया गया है। शशधरः=चन्द्र, चन्द्रमा। अन्वयः=वंश, कुल। पापप्रियः=पापी, नीच। सूतान्वयः=सारथियों के कुल में उत्पन्न। किरीटिनम्=अर्जुन का। हन्ता=मारूँगा। अपृथात्मजम्=पृथा अर्थात् कुन्ती के पुत्र से रहित। कुर्याम=कर डालूँगा ॥४४॥

(इति प्रहर्तुमिच्छति।)

कर्णः—(खड्गमुद्यम्य) अरे वाचाट ! ब्राह्मणाधम ! अयं न भवति। राजन् ! मुञ्च, मुञ्च। न खल्वहं वारयितव्यः। (हन्तुमिच्छति।)

(दुर्योधनकृपौ निवारयतः।)

दुर्योधनः—कर्ण ! गुरुपुत्र ! कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोहः।

कृपः—वत्स ! अन्यदेव प्रस्तुतमन्यत्रावेगः इति कोऽयं व्यामोहः। स्वबलव्यसनं चेदस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत्त एव भवतीति वामः पन्थाः।

अश्वत्थामा—मातुल ! न लभ्यतेऽस्य कटुप्रलापिनो रथकारकुलकलङ्कस्य दर्पः शातयितुम्।

कृपः—वत्स ! अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य।

अश्वत्थामा—मातुल ! यद्येवम्,

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः
परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयास्त्रं रणमुखे।
बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये
समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ॥४५॥

(यह कहकर प्रहार करना चाहता है ।)

कर्ण—(तलवार उठाकर) अरे बकवादी ! नीच ब्राह्मण ! अब यह नहीं रहेगा । हे राजन् ! छोड़िये, छोड़िये । मुझे न रोकिये । (ऐसा कहकर) मार देना चाहता है ।

(दुर्योधन और कृपाचार्य रोकते हैं ।)

दुर्योधन—हे कर्ण ! हे गुरुपुत्र ! तुम दोनों को आज यह कैसा पागलपन हो गया है ।

कृप—वत्स ! प्रस्तुत कुछ अन्य था और यह आवेश किसी अन्य पर हो रहा है । यह कैसा मतिविभ्रम (पागलपन) है ? इस समय इस राजकुल की शक्ति का क्षय तुमसे ही हो रहा है । यह कैसा उल्टा मार्ग है ?

अश्वत्थामा—हे मामा ! कटु-प्रलाप करने वाले, इस रथकार के कुल के कलङ्क के अभिमान को चूर करने का अवसर नहीं मिल पा रहा है ।

कृप—वत्स ! अब अपनी सेना के प्रधान के साथ विरोध करने का यह उचित अवसर नहीं है ।

अश्वत्थामा—मामा ! यदि ऐसा है (तो–)

अन्वयः—यावत् अरिशरैः पापः अयं निधनं न उपेयात् तावत् मया रणमुखे प्रियं अपि अस्त्रं परित्यक्तम् । बलानां नाथे अस्मिन् (सति) समरे परिकुपितभीमार्जुनभये समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु ॥४५॥

संस्कृत-व्याख्या— यावत्=यावत्कालम्, अरिशरैः=अरीणां शत्रूणां शरैः बाणैः, पापः=पापकर्मा, अयम्=कर्णः, निधनम्=मरणम्, न, उपेयात्=प्राप्नुयात्, तावत्=तावत्कालम्, मया=अश्वत्थाम्ना, रणमुखे=संग्राममध्ये, प्रियम्=प्रेमास्पदम्, अपि, अस्त्रम्=आयुधम्, परित्यक्तम्=न्यस्तम् । बलानाम्=सेनानाम्, नाथे=अधिपतौ, अस्मिन्=कर्णे (सति), समरे=युद्धे, परिकुपितभीमार्जुनभये=परिकुपितौ क्रुद्धौ यो भीमार्जुनौ ताभ्यां भयं तस्मिन्, समुत्पन्ने=जाते, राजा=भवान्-दुर्योधनः, प्रियसखबलम्=प्रियस्य सख्युः-मित्रस्य बलम् शक्तिम्, वेत्तु=जानातु ।४५॥

हिन्दी-अनुवाद—यावत्=जब तक, अरिशरैः=शत्रु के बाणों से, पापः=पापी, अयम्=यह कर्ण, निधनम्=मृत्यु को, न उपेयात्=नहीं प्राप्त हो जाता, तावत्=तब तक, मया=मेरे द्वारा, रणमुखे=युद्ध के बीच, प्रियम्=प्रिय, अपि=भी, अस्त्रम्=अस्त्र, परित्यक्तम्=छोड़ दिया गया। बलानाम्=सेना के; नादे=नायक, अस्मिन् सति=इस (कर्ण) के होने पर, समरे=युद्ध में, परिकुपित भीमार्जुनभये=अत्यधिक क्रोधित भीम और अर्जुन से भय समुत्पन्ने=उत्पन्न होने पर, राजा=दुर्योधन, प्रियसखबलम्=प्रिय मित्र कर्ण के पराक्रम को, वेत्तु=जान लें ।।४५।।

भावार्थ—जब तक यह पापी कर्ण शत्रुओं के बाणों से मारा नहीं जाता है तब तक के लिये मैं अपने प्रिय अस्त्र शस्त्रों का भी युद्ध में परित्याग किये देता हूँ। कौरव-सेना का सेनापति इस कर्ण के हो जाने पर क्रुद्ध हुये भीम तथा अर्जुन की ओर से भय के उत्पन्न कर दिये जाने पर राजा दुर्योधन (अथवा आप) अपने प्रियमित्र कर्ण के वास्तविक पराक्रम को स्वयं ही जान लेंगे।

छन्द – इस पद्य में 'शिखरिणी" छन्द है।

समास— परिकुपितभीमार्जुनभये=परिकुपितौ यौ भीमार्जुनौ ताभ्यां भयं तस्मिन्। प्रियसखबलम्=प्रियश्चासौ सखा च प्रियसखः, तस्य बलम्।

टिप्पणियाँ—वाचाट्=बकवादी। व्यामोहः=मूर्खता-पागलपन-मतिविभ्रम। स्वबलव्यसनम्=अपनी सेना का विनाश अथवा अपनी शक्ति का विनाश। वामः=उल्टा, विरोधी। रथकारः=सूत, सारथी। शातयितुम्=नष्ट करने का, चूर-चूर कर देने का। अकालः=अनवसर। अरिशरैः=शत्रुओं के बाणों से। पापः=पापी। निधनम्=मृत्यु को। उपेयात्=प्राप्त हो जाता। रणमुखे=युद्ध के बीच में। परिकुपितः=क्रोधित। समुत्पन्ने=उत्पन्न होने पर। पियसखबलम्=प्रिय मित्र(कर्ण) के पराक्रम को। वेत्तु=जान लें।।४५।।

(इति खड्गमुत्सृजति।)

कर्णः—(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद्भवादृशां यदस्त्रपरित्यागो नाम।

अश्वत्थामा—ननु रे ! अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात् ।

कर्ण—अरे मूढ !

घृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ।
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥४६॥

(ऐसा कहकर तलवार छोड़ देता है)

कर्ण—(जोर से हँसकर) जो यह अस्त्र-त्याग है वह तो आप जैसे लोगों में वंश-परम्परा से चला आ रहा है ।

अश्वत्थामा—अरे ! आप सदृशों के द्वारा अस्त्र का परित्याग न किये जाने पर भी (गुरु के शाप से) निष्फल होने के कारण वह (अस्त्र) छोड़े हुये के ही सदृश है ।

कर्ण—अरे मूर्ख !

अन्वयः—यावत् अहं घृतायुधः, तावत् अन्यैः आयुधैः किम् ? वा यत् मम अस्त्रेण न सिद्धम्, तत् केन सेत्स्यति ॥४६॥

संस्कृत-व्याख्या—यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, अहम्=कर्णः, घृतायुधः=गृहीतशस्त्रः, अस्मीति क्रिया शेषः, तावत्=तावन्तं कालम्, अन्यैः=इतरैः-अन्यगृहीतैरित्यर्थः, आयुधैः=शस्त्रैः, किम्=किं प्रयोजनम् ? न किमपीतिभावः। वा=अथवा, यत्=यत्कार्यम्, मम=कर्णस्य, अस्त्रेण=आयुधेन, न सिद्धम्=न सम्पन्नम्, तत्=तत्कार्यम्, केन=केन शूरेण, सेत्स्यति=सिद्धिं गमिष्यति ? कथमपि सिद्धिं न गमिष्यतीत्यभिप्रायः ॥४६॥

हिन्दी-अनुवाद—यावत्=जब तक, अहम्=मैं, घृतायुधः=शस्त्र को धारण किये हुये हूँ, तावत्=तब तक, अन्यैः=दूसरे, आयुधैः=शस्त्रों से, किम्=क्या प्रयोजन ? वा=अथवा, यत्=जो कार्य, मम=मेरे, अस्त्रेण=अस्त्र से, न सिद्धम्=सिद्ध नहीं हो सका, तत्=वह कार्य, केन=किसके द्वारा, सेत्स्यति=सिद्ध हो सकेगा ! अर्थात् किसी के भी द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकेगा ॥४६॥

भावार्थ—जब तक मैंने शस्त्र धारण कर रखा है तब तक दूसरों के शस्त्रों से क्या प्रयोजन ? और जो कार्य मेरे शस्त्रों के द्वारा सिद्ध नहीं हो सकेगा, उसे कोई दूसरा भी सिद्ध नहीं कर सकेगा ॥४६॥

छन्दः—उक्त पद्य में "अनुष्टुप" छन्द है।

समास—धृतायुधः=धृतं आयुधं येन सः ॥

टिप्पणियाँ—कुलक्रमागतम्=वंशपरम्परा से चला आता हुआ। भवादृशैः=आप जैसों के द्वारा। निष्फलत्वात्=गुरु (परशुराम) द्वारा दिये गये शाप के कारण निष्फल (प्रयोजनविहीन)। सेत्स्यति=सिद्ध किया जा सकेगा ॥४६॥

(नेपथ्ये)

आः दुरात्मन ! द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन् ! धार्तराष्ट्रापसद ! चिरस्य खलु कालस्य मत्संमुखमागतोऽसि। क्षुद्रपशो ! क्वेदानीं गम्यते ? अपि च। भो भो राधेयदुर्योधनसौबलप्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधनाः ! शृण्वन्तु भवन्तः-

स्पृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा
येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः।
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवा-
न्सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥४७॥

(नेपथ्य में)

आह ! दुष्ट, द्रौपदी के केश तथा वस्त्र खींचने का महान् पाप करने वाले ! धृतराष्ट्र के नीचपुत्र, आज बहुत समय के पश्चात् मेरे समक्ष आये हो। ऐ नीच पशु ! अब (बचकर) कहाँ जाओगे ? और भी—हे पाण्डवों से द्वेष करने वाले, धनुर्धारी, मान को ही धन समझने वाले अर्थात् मानी-राधापुत्र (कर्ण), दुर्योधन तथा सौबल (शकुनि) आदि आप लोग सुनिये।

अन्वयः—नृपशुना येन शिरोरुहे पाञ्चालराजात्मजा स्पृष्टाः, राज्ञां गुरूणां च पुरः अस्याः परिधानं अपि येन अपहृतम्ः यस्य उरःस्थलशोणितासवं पातुं अहं अहं प्रतिज्ञातवान्, सः अयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः, हे कौरवाः संरक्ष्यताम् ॥४७॥

संस्कृत-व्याख्या— नृपशुना=मनुष्यपशुना, येन=दुःशासनेन, शिरोरुहे=केशावच्छेदेन (अत्र अवच्छेदार्थे सप्तमी) केशान् गृहीत्वा—इत्यर्थः, पाञ्चालराजात्मजा=पाञ्चालराजस्य द्रुपदस्य आत्मजा-पुत्री 'द्रौपदी' इत्यर्थः, कृष्टा=आकृष्टा, राज्ञाम्—नानादिग्देशादागत्योपस्थितानां नृपाणाम्, गुरूणाम्=वृद्धानां पूज्यानाञ्च, पुरः=अग्रे, अस्याः=द्रौपद्याः, परिधानम्—धौतवस्त्रम्, अपि, येन=दुःशासनेन, अपहृतम्=आकृष्टम्, यस्य=दुःशासनस्य, उरःस्थलशोणितासवम्=उरःस्थलस्य-वक्षस्थलस्य शोणितम्—रक्तं एव आसवः मद्यं इव, तम्, पातुम्=पीतुम्, अहम्=भीमः, प्रतिज्ञातवान्=प्रतिज्ञां कृतवानस्मि, सः=एषः, अयम्=दुःशासनः, मद्भुजपञ्जरे=ममभुजौ एव पञ्जरं तस्मिन्—मम बाहुमध्ये, निपतितः=अकस्मात् प्राप्तः, हे कौरवाः=हे दुर्योधनप्रभृतयः कुरुपुत्राः, तत्पक्षपातिनश्च, संरक्ष्यताम्=परित्रायताम् । यस्मिन् शक्तिः भवेत् सः दुशासनं रक्षितुं ममाग्रे आगच्छतु—इत्यभिप्रायः ॥४७॥

हिन्दी-अनुवाद—नृपशुना=मनुष्यों में पशु के समान, येन=जिस (दुःशासन) ने, शिरोरुहे=बालों को पकड़कर, पाञ्चालराजात्मजा=पाञ्चालदेश के राजा (द्रुपद) की पुत्री द्रौपदी को, कृष्टा=खींचा था, राज्ञाम्=नाना देशों से आये हुये राजाओं के (च) और, गुरूणाम्=गुरुजनों (बड़े-बूढ़ों) के, पुरः=समक्ष, अस्याः=इस (द्रौपदी) के, परिधानम्=वस्त्र (धोती) को, अपि=भी, येन=जिस (दुःशासन) ने, अपहृतम्=खींचा था, यस्य=जिसके, उरःस्थलशोणितासवम्=वक्षस्थल से निकलते हुये रक्तरूपी मदिरा को, पातुम्=पीने की, अहम्=मैंने, प्रतिज्ञातवान्=प्रतिज्ञा भी की थी, सः=वही, अयम्=यह (दुःशासन), मद्भुजपञ्जरे=मेरी बाहों के पिंजड़े में, निपतितः=आ पड़ा है, फँस गया है, हे कौरवाः=हे कौरव लोगो !, संरक्ष्यताम्=इसकी रक्षा करो, इसे बचाओ। यदि किसी में शक्ति हो तो वह आकर इस दुःशाशन को बचाये ॥४७॥

भावार्थ— जिस नीच मानवपशु ने द्रौपदी के बालों को पकड़कर भरी सभा में खींचा था, जिसने राजाओं और गुरुजनों (बड़े-बूढ़ों) के समक्ष उसकी साड़ी को पकड़कर खींचा था और इन्हीं कारणों वश जिसके वक्षस्थल

के रक्तरूपी मदिरा का पान करने की मैंने प्रतिज्ञा की थी, वही दुष्ट दुःशासन आज (इस समय) मेरी भुजाओं के पिंजड़े में आ फँसा है। हे कौरवो! यदि सामर्थ्य हो तो इसे बचा लो ॥४७॥

छन्द—उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समास–**द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्**=द्रौपद्याः केशानां अम्बरस्य च, आकर्षणमेव महापातकम् (महान् पापी), तदस्यास्तीति द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापात की, तत्सम्बुद्धौ। **नृपशुना**=ना पशुः इव नृपशुः, तेन। **उरःस्थलशोणितासवम्**=उरःस्थमस्य शोणितं आसवः इव, तम्, अथवा उरस्थलस्य शोणितमेव आसवः, इति, तम्। **मद्भुजपञ्जरे**=मद्भुजो पञ्जरमिव, तस्मिन्।

टिप्पणियाँ—**धार्तराष्ट्रापसद्**=धृतराट्र के नीच पुत्र। **क्षुद्रपशो!**=हे नीच पशु। **राधेयः**=राधापुत्र–कर्ण। **सौबलः**=शकुनि। दुर्योधन का मामा। **चापपाणयः**=धनुर्धारी। **नृपशुना**=मानव-पशु के द्वारा। **शिरोरुहे**=बालों को पकड़ कर। **कृष्टा**=खींचा था अथवा खींचा गया था। **गुरूणाम्**=भीष्म, द्रोण आदि गुरुजनों के। **पुरः**=समक्ष, सामने। **परिधानम्**=वस्त्र को, धोती को, साड़ी को। **अपहृतम्**=खींचा था। **उरस्थलशोणितासवम्**=जिसकी छाती से निकले हुये रक्त रूपी मदिरा को। **मद्भुजपञ्जरे**=मेरी बाहुओं के पिंजड़ें में। जैसे कोई पक्षी पिंजड़े में पड़ जाने के पश्चात् निकलने में असमर्थ हो जाया करता है उसी प्रकार से यह दुःशासन भी मेरी भुजाओं के पिंजड़े रूपी बन्धन में बँधा पड़ा है। अब इससे इसका छुटकारा हो सकना संभव नहीं है। **संरक्ष्यताम्**=यदि कौरवों में सामर्थ्य हो तो आकर इसे बचायें ॥४७॥

(सर्वे आकर्णयन्ति।)

अश्वत्थामा—(सोत्प्रासम्) अङ्गराज! सेनापते! जामदग्न्यशिष्य! द्रोणोपहासिन्! भुजबलपरिरक्षितसकललोक! ('धृतायुधः' ३।४६–इति पठित्वा) इदं तदासन्नतरमेव संवृत्तम्। रक्षेनं साम्प्रतं भीमाद् दुःशासनम्।

कर्णः—आः ! का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायामप्याक्रमितुम् । युवराज ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहमागतोऽस्मि । (इति निष्क्रान्तः ।) ।

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ ! अभीष्मद्रोणं संप्रति कौरवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवंविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम् । अतः स्वयमेव भ्रातुः प्रतीकारपरो भव ।

दुर्योधनः—आः, का शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् । वत्स ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । कः कोऽत्र भोः रथमुपनय । (इति निष्क्रान्तः) ।

(नेपथ्ये कलकलः)

अश्वत्थामा--(अग्रतोऽवलोक्य) मातुल ! हा, धिक्कष्टम् । एष खलु भ्रातुः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुः किरीटी समं दुर्योधनराधेयौ शरवर्षैर्दुर्वारैरभिद्रवति । सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन । न खलु विषहे दुर्योधनानुजस्यैनां विपत्तिमवलोकयितुम् । अनृतमनुमतं नाम । मातुल ! शस्त्रं शस्त्रम् ।

सत्यादप्यनृतं श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे ।
भीमाद्दुःशासनं त्रातुं त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥४८॥

(सब सुनते हैं ।)

अश्वत्थामा—(व्यंग्य के साथ) अङ्गराज ! सेनापति ! परशुराम के शिष्य । द्रोण का उपहास करने वाले ! अपनी भुजाओं से समग्र विश्व की रक्षा करने वाले ! ('घृतायुधः'' इत्यादि ३/४६ श्लोक का पाठ करके) यह तो अति शीघ्र ही हो गया । अब भीम से इस दुःशासन की रक्षा करो ।

कर्ण—आह ! मेरे जीवित रहते भीम की क्या शक्ति है कि वह दुःशासन की छाया का भी स्पर्श कर सके । युवराज ! डरो नहीं, डरो नहीं । यह मैं आ ही गया हूं । (ऐसा कहकर निकल जाता है ।) ।

अश्वत्थामा—हे राजन् कुरुराज ! अब भीष्म तथा द्रोण से रहित कौरवों की सेना मथते हुये भीम और अर्जुन को कर्ण अथवा किसी अन्य के द्वारा

रोका जा सकना संभव नहीं है। अतः आप स्वयं ही अपने भाई (दुःशासन) की रक्षा में लग जाइये।

दुर्योधन—आह! हाथ में शस्त्र लिये मेरे जीते जी (वायु पुत्र) भीम अथवा किसी अन्य की क्या शक्ति है कि जो वत्स (दुःशासन) की छाया का भी अतिक्रमण कर सके। वत्स! डरना नहीं, डरना नहीं। अरे, कौन है यहाँ? रथ लाओ। (ऐसा कहकर निकल जाता है।)।

[नेपथ्य (पर्दे के पीछे) में कोलाहल होता है।]

अश्वत्थामा—(सामने की ओर देखकर) मामा, हाय धिक्कार है! कष्ट है! भाई (भीम) की प्रतिज्ञा के भङ्ग होने की आशङ्का से यह अर्जुन, कर्ण और दुर्योधन पर एक साथ ही निवारण न किये जाने योग्य (अर्थात् न रोके जा सकने वाले अथवा अमोघ) बाणों की वर्षा करके आक्रमण कर रहा है। भीम ने दुःशासन का रक्त बिल्कुल पी ही लिया। दुर्योधन के छोटे भाई (दुःशासन) की इस दुर्दशा को देखकर मैं इसे सहन नहीं कर सकता। मुझे झूठ भी स्वीकार है। मामा! शस्त्र, शस्त्र (दीजिये)।

अन्वयः—सत्यात् अपि अनृतं श्रेयः, स्वर्गं धिक्, मे नरकः अस्तु, दुःशासनं त्रातुं त्यक्तं आयुधं अत्यक्तम् ॥४८॥

संस्कृत-व्याख्या—सत्यात्=सत्यप्रतिज्ञत्वात्, अपि, अनृतम्=असत्यप्रतिज्ञत्वम्, श्रेयः=श्रेष्ठं अस्ति, इति शेषः। स्वर्गम्=सत्यप्रतिज्ञलभ्यं देवलोकम्, धिक्=धिगस्तु। मे=मम, नरकः=नरकपातः, अस्तु=भवतु। (सत्यवचनस्यपरिणामभूतं स्वर्गं न कामये, मिथ्यावचनपरिणामभूतं नरकमनुमतं नामेत्यभिप्रायः।); (किन्तु), भीमात्=वृकोदरात्, दुःशासनम्; त्रातुम्=रक्षितुम्, त्यक्तम्=पूर्वं मया परित्यक्तमपि, आयुधम्=शस्त्रम्, अत्यक्तम्=अपरित्यक्तमिति मया स्वीकृतम् ॥४८॥

हिन्दी-अनुवाद—(इस समय तो), सत्यात्=सत्य की अपेक्षा, अपि=भी (मुझे), अनृतम्=असत्य ही, श्रेयः=श्रेष्ठ अथवा कल्याणकारी प्रतीत होता है। स्वर्गम्=स्वर्ग को, धिक्=धिक्कार है। मे=मुझे, नरकः=नरकपात ही, अस्तु=प्राप्त होवे। किन्तु, भीमात्=भीम से, दुःशासनम्=दुःशासन की,

त्रातुम्=रक्षा करने के लिये, मैं, त्यक्तम्=छोड़े गये अपने, आयुधम्=शस्त्र को, अत्यक्तम्=न छोड़ा गया ही मानता हूँ । ४८।।

भावार्थ—इस समय तो मुझे सत्य की अपेक्षा असत्य ही अधिक श्रेष्ठ अथवा प्रिय प्रतीत हो रहा है । मुझे स्वर्ग की प्राप्ति न होकर चाहे नरक में ही क्यों न जाना पड़े । परन्तु भीमसेन से दुःशासन को बचाने के लिये मैं पुनः शस्त्र-ग्रहण करता हूँ । अर्थात् अपने मित्र का हितचिन्तक होने के नाते मैं अपनी की हुयी प्रतिज्ञा का भी भंग करने के लिये उद्यत हूँ ।

छन्द—उक्त पद्य में "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है ।

व्याकरण—स्वर्गम्=इसमें 'धिक्' के योग में द्वितीया विभक्ति हुई है । भीमात्=इसमें "भीत्रार्थानां भयहेतुः" में वर्णित नियम के अनुसार पंचमी विभक्ति हुई है ।

समास—भुजबलपरिरक्षितसकललोक !=भुजबलेन परिरक्षितः सकलो लोकः येन सः, तत्सम्बुद्धौ ।

टिप्पणियाँ—सोत्प्रासम्=ईषत् हास्य के साथ—अर्थात् व्यंग्य के साथ । "सोत्प्रासस्तु मनाक्स्मितम्" इत्यमरः । आसन्नतरम्=अत्यधिक समीप में विद्यमान । संवृत्तम्=हो गया । अवसर उपस्थित हो गया । वृकोदरस्य=भीम का । आक्रमितुम्=अक्रमण करने अथवा छूने का । न भेतव्यम्=भयभीत नहीं होना चाहिये । डरना नहीं चाहिये । आलोडयन्त्यौ=मन्थन करते हुये—मथते हुये । प्रतीकारपरः=रक्षा में संलग्न । पर-संलग्न । पवनतनयस्य=वायुपुत्र भीम का । अन्यस्य वा=अथवा किसी दूसरे (अर्जुन आदि) का । विषहे=सहन करने में समर्थ हूं । अनृतम्=असत्य, झूठ । अनुमतम्=स्वीकृत—स्वीकार करता हूँ ।।४८।।

(इति खड्गं गृहीतुमिच्छति ।)

(नेपथ्ये)

महात्मन् ! भरद्वाजसूनो ! न खलु सत्यवचनमनुल्लङ्घितपूर्वमुल्लङ्घयितुमर्हसि ।

कृपः - वत्स ! अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति ।

अश्वत्थामा--कथमियममानुषी वाग्नानुमनुते सङ्ग्रामावतरणं मम। भोः कष्टम्। आः, पक्षपातिनो देवा अपि पाण्डवानाम्। सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन। भोः कष्टं कष्टम्।

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम्।
दुर्योधनस्य कर्तास्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ॥४६॥

(ऐसा कहकर तलवार उठा लेना चाहता है।)

[नेपथ्य (पर्दे की पीछे) में]

हे महात्मन! भारद्वाज-पुत्र! आपको पहले कभी उल्लंघन न किये गये सत्यवचन का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

कृप-वत्स! अशरीरी (अदृश्य) वाणी आपको असत्य से बचा रही है।

अश्वत्थामा—क्या यह देववाणी मुझे संग्राम में उतरने की अनुमति नहीं दे रही है? आह! कष्ट है। ओह! देवगण भी पाण्डवों के पक्षपाती हैं। निश्चय ही भीम ने दुःशासन का रक्त पी ही लिया। आह! कष्ट है, कष्ट है।

अन्वयः—दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने अपि (यदि मया) उदासितम् (तर्हि) आहवे दुर्योधनस्य अन्यत् किं प्रियं कर्त्ता अस्मि ॥४९॥

संस्कृत-व्याख्या—दुःशासनस्य=दुर्योधनानुजस्य, रुधिरे=रक्ते, पीयमाने=भीमेन पीयमाने,अपि,(यदि मया),उदासितम्=औदासीन्यमवलम्बितम्,(तर्हि), आहवे=युद्धे, दुर्योधनस्य=कुरुराजस्य स्वाश्रयदातुरित्यर्थः, अन्यत्=इतोऽन्यत्, किम्=कीदृशम्, प्रियम्=अभीष्टम्, कर्त्ता=सम्पादयिता, अस्मि=भविष्यामीत्यर्थः। यदि दुःशासनस्य रक्षा मया न कृता तदा दुर्योधनस्य क उपकारः मया विधास्यते? प्रश्नाभिप्रायः ॥४६॥

हिन्दी-अनुवाद—दुःशासनस्य=दुःशासन के, रुधिरे=रक्त के, पीयमाने=भीम द्वारा पी लिये जाने पर भी, (यदि मया=यदि मुझ अश्वत्थामा के द्वारा), उदासितम्=उदासीनता का ही आश्रय लिया गया, (तर्हि=तो), आहवे=युद्ध में, दुर्योधनस्य=दुर्योधन के, अन्यत्=दूसरे, किम्=किस, प्रियम्=प्रिय कार्य का, कर्त्ता=करने वाला, मैं, अस्मि=होऊँगा ॥४६॥

भावार्थ—भीम द्वारा दुःशासन का रक्तपान किया जा रहा है और मैं चुपचाप खड़ा-खड़ा इस दृश्य को देख रहा हूँ। दुःशासन की रक्षा करने रूपी

कार्य की अपेक्षा दुर्योधन का अन्य कौन सा कार्य ऐसा होगा कि जिसके काम में आ सकूँगा ? ॥४६॥

छन्द—उक्त पद्य में "अनुष्टुप्" नामक छन्द है।

टिप्पणियाँ—भारद्वाजसूनुः=द्रोणपुत्र अश्वत्थामा। अनुल्लंघितपूर्वम्=पहले जिसका कभी भी उल्लंघन नहीं किया गया था। अशरीरिणी=शरीर-रहित अर्थात् अदृश्य आकाशवाणी। अमानुषी=दैवी। अभिरक्षति=बचा रही है। असत्यमार्ग पर जाने से रोक रही है। उदासितम्=उदासीनता का आश्रय लिया गया अर्थात् तटस्थ रहा गया। आहवे=युद्ध में। प्रियम्=प्रिय कार्य ॥४६॥

मातुल ! राधेयक्रोधवशादनार्यमस्माभिराचरितम्। अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञः पार्श्ववर्ती भव।

कृपः—गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम्। भवानपि शिविरसंनिवेशमेव प्रतिष्ठताम्।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ ॥)

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

मामा ! राधापुत्र कर्ण के प्रति क्रोध के आवेश में (शस्त्र का परित्याग कर दिये जाने के कारण दुःशासन की रक्षा न कर) हमने अनुचित किया है। अतः अब आप भी राजा के समीप में रहें।

कृप—मैं इसका प्रतीकार करने जाता हूँ। आप भी शिविरस्थान को ही जाइये।

(घूमकर दोनों निकल जाते हैं।)

टिप्पणियाँ—अनार्यम्=अनुचित। पार्श्ववर्ती=सहायक। अत्र=इस विषय में। प्रतिविधातुम्=प्रतीकार करने के लिये। शिविरसन्निवेशम्=शिविर-स्थान को। प्रतिष्ठताम्=जाइये (गच्छतु) ॥

"इस प्रकार 'वेणीसंहार' नाटक का तृतीय अङ्क समाप्त हुआ ॥

॥ इत्याचार्य सुरेन्द्रदेवशास्त्रिकृतायां वेणीसंहारस्य 'आशुबोधिनी' व्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः समाप्तः ॥

———

चतुर्थोऽङ्कः

[ततः प्रविशति प्रहारमूर्च्छितं रथस्थं दुर्योधनमपहरन् सूतः ।]

[सूतः ससंभ्रमं परिक्रामति ।]

(नेपथ्ये)

भो भोः बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः कौरवपक्षपात-पणीकृतप्राणद्रविणसंचया नरपतयः, संस्तभ्यन्तां संस्तभ्यन्तां निहत-दुःशासनपीतावशेषशोणितस्नपितवीभत्सवेषवृकोदरदर्शनभयपरिस्ख-लत्प्रहरणानि रणात्प्रद्रवन्ति बलानि ।

सूतः—(विलोक्य) कथमेष धवलचपलचामरचुम्बितकनककम-ण्डलुना शिखरावबद्धवैजयन्तीसूचितेन हतगजवाजिनरकलेवरसहस्र-संमर्दविषमोद्घातकृतकलकलकिङ्किणीजालमालिना रथेन शरवर्ष-स्तम्भितपरबलपराक्रमप्रसरः प्रद्रुतमात्मबलमाश्वासयन्कृपः किरीटि-नाभियुक्तमङ्गराजमनुसरति । हन्त ! जातमस्मद्बलानामवलम्बनम् ।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

(तत्पश्चात् प्रहार से मूर्च्छित रथ-स्थित दुर्योधन को (युद्धस्थल से) बाहर ले जाता हुआ सारथी प्रवेश करता है ।

(सारथि घबराहट के साथ घूमता है ।)

(नेपथ्य में)

(अपने) बाहुबल के अभिमान से महायुद्ध की प्रबल अभिलाषा करने वाले, कौरवों के प्रति पक्षपात के कारण प्राणरूपी धन-राशि को दाँव पर लगा देने वाले, हे हे राजा लोगो ! (युद्ध में) मारे गये दुःशासन के, पीने से बचे हुये रक्त में स्नान करने के कारण वीभत्सवेष वाले भीम को देखकर (उत्पन्न हुये) भय के कारण शस्त्रों को गिरा देने वाली तथा युद्धक्षेत्र से भागती हुई सेनाओं को रोको, रोको ।

सूत--(देखकर) श्वेत तथा चञ्चल चामर से चुम्बित स्वर्णकलश वाले, शिखर भाग पर बँधी हुई ध्वजा से ही पहचान में आने वाले, मारे गये हजारों हाथियों, घोड़ों तथा मनुष्यों के शवों के शरीरों के आधिक्य के कारण ऊँची-नीची भूमिपर उछलने से झनझनाने वाले छोटे-छोटे घुंघरुओं के समूह की माला वाले रथ में स्थित बाणों की वर्षा से शत्रुसेना के पराक्रम की वृद्धि को रोक देने वाले, अपनी भागती हुई सेना को सान्त्वना प्रदान करते हुये, क्या यह कृपाचार्य अर्जुन द्वारा आक्रमण किये गये (अर्थात् धर-दबोचे गये) कर्ण की ओर बढ़ रहे हैं ? आह, अब हमारी सेनाओं को सहारा मिल गया।

(नेपथ्य में कल-कल ध्वनि के पश्चात्)

समास—**बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदाः**=बाह्वोः—भुजयोः यद्बलं-शक्तिः तस्य योऽवलेपः—गर्वः तेन प्रवर्तितः—प्रारब्धः महासमर एव दोहदः अभिलाषा आकांक्षा वा यैस्ते तत्सम्बोधने। **कौरवपक्षपातपणीकृतप्राण-द्रविणसंचयाः**=कौरवाणां-दुर्योधनादीनां पक्षपातेन-पक्षावलम्बनेन पणीकृतः—मूल्यीकृतः प्राणाः—असवः एव द्रविणसंचयः—धनराशिः यैस्ते, तत्सम्बोधने। **निहतदुःशासनपीतावशेषशोणितस्नपितबीभत्सवेषवृकोदरदर्शनभयप-रिस्खलत्प्रहरणानि**=निहतः—घातितः यो दुःशासनः तस्य पीतावशेषं—पानेन अवशिष्टं यत् शोणितं-रक्तं तेन स्नपितः—कृतस्नानः अतएव बीभत्सवेषः—विकृतभयानकवेषः यः वृकोदरः—भीमः तस्य दर्शनेन यद्भयं—भीतिः तेन परिस्खलन्तिप्रपतन्ति प्रहरणानि आयुधानि येषां तानि। **धवलचपलचामर-चुम्बितकनककमण्डलुना**=धवलैः—श्वेतैः चपलैश्च-चञ्चलैश्च चामरैः—प्रकीर्णकैः चुम्बिताः स्पृष्टाः कनकस्य-सुवर्णस्य कमण्डलवः रथोपरिगोलाकाराः भागाः यत्र तेन। **शिखरावबद्धवैजयन्तीसूचितेन**=शिखरं-शृङ्गम-रथोर्ध्व-भागः तत्र अवबद्धया-संलग्नया वैजयन्त्या-पताकया सूचितेन-ज्ञातेन। **हतगज-वाजिनरकलेवरसहस्रसंमर्दविषमोद्घातकृतकलकलकिङ्किणीजालमा-लिना**=हतानां-घातितानां गजानां वाजिनां नराणां च यानि कलेवराणि-शरीराणि, तेषां यानि सहस्राणि तैः संमर्दः—संघट्टः समूहो वा तेन यः विषमः—उन्नतावनतप्रदेशः तेन यः उद्घातः—आघातः ('ठोकर' इति प्रसिद्धः) तेन कृतः कलकलः येन तादृशेन किङ्किणीजालेन—क्षुद्रघण्टिकासमूहेन मलते

शोभते तच्छीलेन । तादृशजालेन माली-मालावानितिवाऽर्थः । शरवर्षस्तम्भितपरबलपराक्रमप्रसरः=शराणां बाणानां वर्षेण वृष्ट्या स्तम्भितः-अवरुद्धः परबलानां-शत्रुसेनानां पराक्रमप्रसरः-पराक्रमवृद्धिः येन सः ।

टिप्पणियाँ— अपहरन्=युद्धभूमि से अन्यत्र ले जाते हुये । ससंभ्रमम्=शीघ्रता के साथ । "संभ्रमस्त्वरा इति, समौ संवेगसंभ्रमौ" इति चामरः । परिक्रामति=रथ को ले जाता है । अवलेपः=दर्प, घमण्ड । "दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भः" इत्यमरः । दोहदः=आकांक्षा, अभिलाषा-"दोहदं इच्छाकांक्षा" इत्यमरः । पणीकृतः=दाँव पर लगा देना । संस्तभ्यन्ताम्=रोको । स्नपित=नहाये हुये । परिस्खलत्=गिरते हुये । प्रद्रवन्ति=भागती हुई । बलानि=सेनायें । चामरैः=चमरों अथवा प्रकीर्णकों से—"प्रकीर्णकन्तु चामरम्" इत्यमरः । अवबद्धा=संलग्न । वैजयन्ती=पताका, ध्वजा । कलेवराणि=शरीर । माला=पंक्ति । प्रसरः=वृद्धि, वेग । अभियुक्तम्=जबरदस्ती आक्रमित । अङ्गराजम्=कर्ण को । हन्त=यह एक अव्यय है कि जो यहाँ 'हर्ष' अर्थ में प्रयुक्त है । अवलम्बनम्=सहारा, आधार ।

भो भोः अस्मद्दर्शनभयस्खलितकार्मुककृपाणतोमरशक्तयः कौरवचमूभटाः पाण्डवपक्षपातिनश्च योधाः ! न भेतव्यं भेतव्यम् । अयमहं निहतदुःशासनपीवरोरःस्थलक्षतजासवपानमदोद्धतो रभसगामी स्तोकावशिष्टप्रतिज्ञामहोत्सवः कौरवराजस्य द्यूतनिर्जितो दासः पार्थमध्यमो भीमसेनः सर्वान्भवतः साक्षीकरोमि श्रूयताम्—

राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याग्रतः
प्रत्यक्षं कुरुबान्धवस्य मृषतः कर्णस्य शल्यस्य च ।
पीतं तस्य मयाद्य पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः
कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णादसृग्वक्षसः ॥१॥

हमको देखकर (उत्पन्न हुये) भय से गिरते हुये धनुष, तलवार, तोमर तथा शक्ति वाले, हे हे कौरव सेना के वीरो तथा पाण्डवों के पक्षपाती योद्धाओ ! डरो नहीं, डरो नहीं । यह मैं मारे गये दुःशासन के पुष्ट वक्षस्थल

के फाड़ने से निकले हुये रक्त रूपी मदिरा का पान करने से मदमस्त, वेगः पूर्णगति वाला, अल्पावशिष्ट प्रतिज्ञारूपी महोत्सव वाला, कौरवराज (दुर्योधन) जुये में जीता गया दास, मझला पाण्डव, मैं भीमसेन आप सभी को साक्षी कर कह रहा हूँ। सुनिये—

अन्वयः—मानधनस्य कार्मुकभृतः राज्ञः दुर्योधनस्य अग्रतः कुरुबान्धवस्य मृषतः कर्णस्य च शल्यस्य प्रत्यक्षं पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः जीवतः एव तस्य तीक्ष्णकरजक्षुण्णात् वक्षसः कोष्णं असृक् अद्य मया पीतम् ।।१।।

संस्कृत-व्याख्याः—मानधनस्य=मानं स्वाभिमानं एव धनं यस्य सः, तस्य स्वाभिमानिनः, कार्मुकभृत=धनुर्धरस्य, राज्ञः=सर्वं कर्त्तुं समर्थस्य भूपालस्य, दुर्योधनस्य=दुःखेन योधयतीति, तस्य-युद्धे भीषणस्येत्यर्थः, अग्रतः=पुरतः एव, कुरुबान्धवस्य=कुरुकुलसुहृदः, मृषतः=सहिष्णोः-सहमानस्य वा, कर्णस्य=राधेयस्य, च, शल्यस्य, प्रत्यक्षम्=समक्षम्, पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः=पाण्डवानां वधूः=पत्नी, तस्याः केशानां अम्बरस्य-वस्त्रस्य च आकर्षिणः-आकर्षकस्य, जीवतः=प्राणान् धारयतः, एव, तस्य=दुःशासनस्य, तीक्ष्णकरजक्षुण्णात्=तीक्ष्णैः-निशितैः करजैः-नखैः क्षुण्णात्-विदीर्णात्, वक्षसः=हृदयात्, कोष्णम्=ईषदुष्णम्, असृक्=रक्तम्, अद्य=इदानीम्, मया=भीमेन, पीतम्=पानं कृतम् ।।१।।

हिन्दी-अनुवाद—मानधनस्य=स्वाभिमानी (अभिमान को ही एकमात्र धन समझने वाले), कार्मुकभृतः=धनुर्धारी, राज्ञः=राजा, दुर्योधनस्य=दुर्योधन के, अग्रतः=समक्ष, कुरुबान्धवस्य=कौरवों के हितैषी, मृषतः=सहनशील, कर्णस्य=कर्ण के, च=और, शल्यस्य=शल्य के भी, प्रत्यक्षम्=समक्ष, पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः=पाण्डवों की पत्नी (द्रोपदी) के केशों तथा वस्त्र को खींचने वाले, जीवतः=जीवित रहते, एव=ही, तस्य=उस दुःशासन के, तीक्ष्णकरजक्षुण्णात्=तेज नाखूनों के अग्रभाग से फाड़े गये, वक्षसः=वक्षस्थल से, कोष्णम्=कुछ-कुछ गरम, असृक्=रक्त का, अद्य=आज ही, मया=मुझ भीम द्वारा, पीतम्=पान किया गया ।।१।।

भावार्थ—स्वाभिमानी तथा धनुर्धारी राजा दुर्योधन के तथा कौरवों के पक्षपाती कर्ण तथा शल्य के देखते-देखते (अर्थात् इन सभी के समक्ष) मैंने

पाण्डवों की वधू द्रौपदी के केशों तथा वस्त्र को खींचने वाले उस दुःशासन के वक्षःस्थल को अपने तीक्ष्ण नाखूनों से फाड़कर उसकी जीवित अवस्था में ही उसके गरम-गरम रक्त का पान किया है। (भीमसेन के कथन का अभिप्राय यह है कि मैंने दुःशासन की छाती से रक्तपान करने की जो प्रतिज्ञा की थी, वह तो आज आप सभी की विद्यमानता में पूर्ण हो गई। अतः मेरी इस प्रतिज्ञा के पूर्ण होने के आप सभी लोग साक्षी हैं) ॥१॥

अलङ्कार—उक्त श्लोक के प्रथम चरण में "परिकर" नामक-अलंकार है।

छन्द—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समास—**अस्मद्दर्शनभयस्खलितकार्मुककृपाणतोमरशक्तयः**=कार्मुकं च कृपाणश्च तोमरश्च शक्तयश्च—इति—ताः, अस्माकं भीमसेनस्य दर्शनेन यद्भयं तेन स्खलिताः (पतिताः) कार्मुककृपाणतोमरशक्तयः येषां ते, तत्सम्बोधने। **कौरवचमूभटाः**=कौरवाणां चमू इति कौरवचमू—कौरवसेना तस्याः भटाः योद्धारः, तत्सम्बोधने। **निहतदुःशासनपीवरोरःस्थलक्षतजासवपानमदोद्धतः**=निहतः—मारितः यो दुःशासनः, तस्य पीवरं-स्थूलं मांसलं वा यत् उरःस्थलं—वक्षस्थलं तस्य क्षतजं-क्षतात् जातं रक्तम्, तदेव य आसवः—मद्यं, तस्य पानेन यो मदः तेन उद्धतः—उद्दण्डः। **रभसगामी**=रभस गन्तुं शीलमस्य-इति-रभसगामी। **स्तोकावशिष्टप्रतिज्ञामहोत्सवः**=स्तोकं—स्वल्पं अवशिष्टः प्रतिज्ञामहोत्सवः। **मानधनस्य**=मानं एव धनं यस्य सः, तस्य। **दुर्योधनस्य**=दुःखेन योधयतीति, तस्य। **पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः**=पाण्डवानां वधूः इति पाण्डववधूः, तस्याः केशानां अम्बरस्य च आकर्षिणः। **तीक्ष्णकरजक्षुण्णात्**=तीक्ष्णैः करजैः क्षुण्णात्—भिन्नात्।

टिप्पणियाँ—**कार्मुकम्**=धनुष। **तोमरः**=गडांसा। **शक्तयः**=सेल सांग आदि शस्त्र। **निहतः**=मारा गया। **पीवरम्**=स्थूल अथवा मांसल। **क्षतजम्**=रक्त। **मदोद्धतः**=मदमस्त, मतवाला। **रभसगामी**=शीघ्रगामी। **प्रतिज्ञामहोत्सवः**= प्रतिज्ञा के पूरे हो जाने से प्राप्त होने वाला महान् आनन्द। भीमसेन ने दो प्रतिज्ञायें की थीं। प्रथम तो यह कि वह दुःशासन को मारकर उसके वक्षःस्थल का रक्तपान करेगा। दूसरे यह कि दुर्योधन को

वह गदायुद्ध में मारेगा। यहाँ उसकी प्रथम प्रतिज्ञा तो पूरी हो गई है। द्वितीय प्रतिज्ञा का पूर्ण होना अभी शेष है। यही है प्रतिज्ञा का थोड़ा सा शेष रह जाना। **राज्ञोमानधनस्य**=इत्यादि श्लोक में दुर्योधन के लिये, भीम द्वारा प्रयुक्त, विशेषण-पद अपना एक विशिष्ट अर्थ रखते हैं। भीम द्वारा प्रयुक्त इन विशेषणों का प्रयोग आगे दिखलाये गये अर्थों की ही दृष्टि से किया गया है। **मानधनस्य**=साधारण अर्थ हैं—स्वाभिमान को ही अपना धन समझने वाला (अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु मर मिटनेवाला) किन्तु यहाँ विशिष्ट अर्थ है—'स्वाभिमान से रहित'। **कार्मुकभृतः**=सार्थक धनुष का धारण करने वाला। इसका वि० अर्थ है—'व्यर्थ में ही धनुष को धारण करने वाला।' **राज्ञः**=पूर्णप्रभुता सम्पन्न राजा का। वि० अ० है—प्रभुता-विहीन। **दुर्योधनस्य**=भीषणरूप से युद्ध करने वाला। वि० अ० है—"युद्ध से भयभीत, कायर। **कुरुबान्धवस्य**=कौरवों के हितैषी। वि० अ० है—-'बनावटी अहितकर्ता"। **मृषतः**=सहन करते हुये। वि० अ० है—"कुछ भी कर सकने में असमर्थ"। **जीवतः**=जीवन धारण करते हुये। जीते जी। **करजैः**=नाखूनों से। **कोष्णम्**=कुछ गरम। **असृक्**=रक्त॥१॥

सूतः—(श्रुत्वा सभयम्) अये ! आसन्न एव दुरात्मा कौरवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतो मारुतिः। अनुपलब्धसंज्ञश्च तावदत्र महाराजः। भवतु। सुदूरमपहरामि स्यन्दनम्। कदाचिद् दुःशासन इवास्मिन्नप्ययमनार्योऽनार्यमाचरिष्यति। (त्वरिततरं परिक्रम्यावलोक्य च) अये ! अयमसौ सरसीसरोजविलोलनसुरभिशीतलमातरिश्वसंवाहितसान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः। उचिता विश्रामभूरियं समरव्यापाराखिन्नस्य वीरजनस्य। अत्र स्थितश्छायाचिततालवृन्तेन हरिचन्दनच्छटाशीतलेनाप्रयत्नसुरभिणादशापरिणामयोग्येन सरसीसमीरणेनामुना गतक्लमो भविष्यति महाराजः। लूनकेतुश्चायं रथोऽनिवारित एव प्रवेक्ष्यति छायाम्। (इति प्रवेशं रूपयित्वा) कः कोऽत्र भोः। (समन्तादवलोक्य) कथं न कश्चिदत्र परिजनः। नूनं तथाविधस्य वृकोदरस्य दर्शनादेवविधस्य च स्वामिनस्त्रासेन शिविरसंनिवेशमेव प्रविष्टः। कष्टं भोः, कष्टम्।

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः
क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म।
दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां
नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावतापि ॥२॥

सूत—(सुनकर, भय के साथ) अरे, कौरव-राजकुमारों रूपी महान् वन के लिये उत्पात-वायु (प्रलयकालीन-वायु) के सदृश वायु-पुत्र भीम पास में ही (आ गया) है। और अभी तक महाराज (दुर्योधन) की चेतना नहीं लौटी है (अर्थात् वे होश में नहीं आये हैं।)। अच्छा, रथ को पर्याप्त दूर हटा ले जाता हूँ। कहीं वह दुष्ट, दुःशासन के ही समान, इनके साथ भी दुष्कृत्य न करे। (अतिशीघ्रता के साथ घूमकर तथा देखकर) अरे, यहाँ यह तालाव के कमलों के सम्पर्क से सुगन्धित और शीतल वायु के द्वारा हिलते हुये सघन पत्तों से युक्त वट का वृक्ष है। युद्ध-व्यापार से श्रान्त वीरपुरुष के योग्य यह विश्राम-स्थल है। यहाँ स्थित महाराज (दुर्योधन) स्वयं प्राप्त पंखे के सदृश, लाल चन्दन की राशि के समान शीतल, विनापरिश्रम के ही सुगन्धित, (महाराज दुर्योधन की अचेतन) अवस्था को बदलने में समर्थ इस जलाशय के सम्पर्क से शीतल वायु से श्रम-विहीन (अर्थात् स्वस्थ) हो जायेंगे। कटी हुई ध्वजा वाला यह रथ बिना किसी बाधा के छाया में चला जावेगा। (ऐसा कहकर, प्रवेश का अभिनय करके) अरे! यहाँ कोई है? (चारों ओर देखकर) यहाँ कोई सेवक क्यों नहीं है? निश्चय ही उस प्रकार खून से लथपथ भीम को और इस भाँति मूर्च्छित महाराज को देखकर भय के कारण पड़ाव में ही सब चले गये हैं। ओह! बड़े ही दुःख की बात है।

अन्वयः—द्रोणेन पार्थात् अभयं दत्त्वा अपि सिन्धुराजः न संरक्षितः। भीमसेनेन अरीणां दुःसाध्यां अपि लघुमिव प्रतिज्ञां समरे पूरयित्वा अस्मिन् दुःशासने हरिणे इव क्रूरं कर्मकृतम्। एतावता अपि कुरुकुलविमुखं दैवं अहं सकामं न मन्ये ॥२॥

संस्कृत व्याख्या—द्रोणेन=द्रोणाचार्येण, पार्थात्=पृथापुत्रात्=अर्जुनात्, अभयम्='मयि जीवति तव किञ्चिदपि भयं न'' इत्यभयवचनम्, दत्त्वा अपि,

सिन्धुराजः=जयद्रथः, न, संरक्षितः=त्रातः । भीमसेनेन, अरीणाम्=सर्वेषां कर्ण-दुर्योधनादीनां शत्रूणाम्, पुरत' इति शेषः दुःसाध्याम्=दुःखेन सम्पादनीयाम, अपि, लघुमिव=लघ्वीमिव-अनायासेन इत्यर्थः, प्रतिज्ञाम्=शोणितपानरूपां प्रतिज्ञाम्, समरे=युद्धे, पूरयित्वा=निष्पाद्य. अस्मिन्, दुःशासने=दुर्योधनानुजे, हरिणे इव=मृगे इव-पशाविवेत्यर्थः, क्रूरम्=निर्दयम्, कर्म=कार्यम्, कृतम्=विहितम् । एतावता=एवं दुःशासनादिविनाशेन कार्यजातं विनाश्य, अनर्थम् च कृत्वा अपि, कुरुकुलविमुखम्=कौरवकुलोपरिक्रुद्धम्-कुरुवंशात् विपरीतम्, दैवम्=विधिम्, अहम्, सकामम्=कृतकृत्यं-सन्तुष्टं-शान्तं वा, न=नहि, मन्ये=तर्कयामि । इतोऽप्यधिकं किमप्यनिष्ट विधास्यतीति शङ्के । एतेन भावी दुर्योधनवधः सूचितः ॥२॥

हिन्दी-अनुवाद—द्रोणेन=आचार्य द्रोण ने, पार्थात्=अर्जुन से, अभयम्=अभय, दत्त्वा=दान देकर, अपि=भी, सिन्धुराजः=जयद्रथ को, न संरक्षितः=हीं बचाया । भीमसेनेन=भीम के द्वारा, अरीणाम्=कर्ण, दुर्योधन आदि सभी शत्रुओं के समक्ष, दुःसाध्याम्=बड़ी कठिनता से संभव होने योग्य होने पर भी, लघुमिव=क्षुद्र के समान, प्रतिज्ञाम्=दुःशासनवध रूप प्रतिज्ञा को, समरे=युद्ध में, पूरयित्वा=पूरी करके, अस्मिन्=इस, दुःशासने=दुःशासन पर, हरिणे इव=हरिण के समान, क्रूरम्=क्रूर, कर्म=बधरूप कर्म, कृतम्=किया गया । एतावता=इतना अथवा ऐसा होने पर, अपि=भी, कुरुकुलविमुखम्=कुरुवंश के विपरीत, दैवम्=भाग्य को, अहम्=मैं, सकामम्=कृतकृत्य अथवा सन्तुष्ट हुआ, न=नहीं, मन्ये=मानता हूँ अथवा समझता हूँ ॥२॥

भावार्थ—आचार्य द्रोण ने अर्जुन की ओर से अभयदान देकर भी जयद्रथ की रक्षा नहीं की । भीम के द्वारा हरिण अथवा पशु के सदृश दुःशासन का वध रूप क्रूरकर्म कर्ण, दुर्योधन आदि सभी महारथी शत्रुयोद्धाओं के समक्ष ही किया गया । इस भाँति शत्रुओं की प्रतिज्ञाओं को अनायास ही पूर्ण कराके भी दैव (भाग्य) अभी तक भी कृतकृत्य अथवा सन्तुष्ट नहीं हो सका है-मैं ऐसा ही मानता हूँ । (कहने का तात्पर्य यह है कि अभी हमसे भी अधिक कुछ अन्य भी होना शेष है जिसे दुष्टभाग्य अवश्य ही करायेगा ।)॥२॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "उपमा" अलंकार है ।

छन्द—इसमें "स्रग्धरा" नामक छन्द है।

समास—कौरवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतो=कौरवराजपुत्राः एव महावनं तस्य उत्पातमारुतः (प्रलयवायुः)। **सरसीसरोजविलोलनसुरभिशीतलमातरिश्वसंवाहितसान्द्रकिसलयः**=सरसी-महत्सरः, तत्र यानि सरोजानि-कमलानि तेषां विलोलनं-कम्पनम्-सञ्चालनं वा तेन सुरभिः-घ्राणतर्पणः शीतलश्च यो मातरिश्वा-वायुः तेन संवाहितानि-चालितानि मिलितानि वा सान्द्राणि-निबिडानि किसलयानि-पल्लवाः यस्य सः। **समरव्यापारखिन्नस्य**=समरस्य व्यापारेण-कार्येण खिन्नस्य-श्रान्तस्य। **अयाचिततालवृन्तेन**=अयाचितं यत् तालवृन्तं-व्यजनं तेन। **हरिचन्दनच्छटाशीतलस्य**=हरिचन्दनस्य-शीतलस्य छटा-समूहः तद्वत् शीतलस्य। **दशापरिणामयोग्येन**=दशायाः अवस्थाया परिणामः तद्योग्येन। **कुरुकुलविमुखम्**—कुरुकुलात् विमुखं-विरुद्धम्॥

टिप्पणियाँ—आसन्नः=समीप में स्थित। **उत्पातमारुतः**=प्रलयकालीन वायु, विनाशक झंझावात। **मारुतः**=वायुपुत्र भीम। **अनुपलब्धसंज्ञः**=जिसको चेतना प्राप्त नहीं हो सकी है। **स्यन्दनः**=रथ। **अनार्यः**=दुष्ट। **अनार्यम्**=क्रूरता को, नृशंसता को (वधकर रक्तपान आदि का क्रिया जाना)। **सरसी**=बड़ा जलाशय, झील। **विलोलनम्**=कम्पन, विलोडन, संचालन। **सुरभिः**=सुगन्धित। **मातरिश्वा**=वायु। **किसलयानि**=नवीन पत्ते अथवा पल्लव। "पल्लवोऽस्त्री किसलयम्" इत्यमरः। **न्यग्रोधपादपः**=वट का वृक्ष। **अयत्नोपवीजितेन**=विना किसी प्रयत्न के ही चलाये गये हुये। **तालवृन्तेन**=व्यजन, पंखा। **अयाचितम्**=स्वयं उपस्थित। **हरिचन्दनच्छटाशीतलेन**=हरिचन्दन के वृक्षों की पंक्ति के संपर्क से शीतल। **दशापरिणामयोग्येन**=भाग्य के दुष्परिणाम के योग्य **विगतक्लमः**=थकावट अथवा व्यथा से रहित। **रूपयित्वा**=अभिनय करके। **लूनकेतुः**=कटी हुई अथवा छिन्न-भिन्न हुई ध्वजा से रहित। **तथाविधस्य**=उस प्रकार के बीभत्सवेषधारी। **त्रासेन**=भय से। **सिन्धुराजः**=जयद्रथ। **संरक्षितः**=बचाया। **कुरुकुलविमुखम्**=कुरुवंश के विरुद्ध कुरुवंश की ओर से मुख मोड़े हुये। **शिविर**-

संनिवेशम् =पड़ाव-स्थल । दैवम् =भाग्य, विधि । सकामम् =कृतकृत्य, शान्त, पूर्ण मनोरथ वाला ।।२।।

(राजानमवलोक्य) कथमद्यापि न चेतनां लभते महाराजः ।
भोः कष्टम् । (निःश्वस्य)

मदकलितकरेणुभज्यमाने
विपिन इव प्रकटैकशालशेषे ।
हतसकलकुमारके कुलेऽस्मिं-
स्त्वमसि विधेरवलोकितः कटाक्षैः ।।३।।

(राजा की ओर देखकर) क्या इस समय तक भी महाराज होश में नहीं आ रहे हैं ? ओह, कष्ट है । (दीर्घश्वास लेकर अथवा आह भर कर)

अन्वयः—मदकलितकरेणुभज्यमाने प्रकटैकशालशेषे विपिने इव हतसकलकुमारके अस्मिन् कुले त्वं अपि विधेः कटाक्षैः अवलोकितः ।

संस्कृत-व्याख्या—मदकलितकरेणुभज्यमाने=मदेन कलितः उन्मत्तः यः करेणुः-हस्ती (प्रकृते तत्सादृश्यात्करेणुः—भीमः, तेन भज्यमाने—विनाश्यमाने, प्रकटैकशालशेषे=प्रकटः स्फुटः एकः एकाकी शालः—वृक्षः दुर्योधनरूपः शेषो यत्र तस्मिन्, विपिने=वने, इव, हतसकलकुमारके=हताः विनाशिताः सकलाः समग्राः कुमारकाः कुमाराः यस्य तस्मिन्, अस्मिन्=एतस्मिन्, कुले=वंशे, त्वम्=भवान्, अपि, विधेः=दैवस्य, कुटिलस्य दुरदृष्टस्य, कटाक्षैः=काक्षैः—दुर्निरीक्षितैः, अवलोकितः=दृष्टः किम् ? त्वामपि जीवन्तमवलोकितुं किं विधिः न सहते ? यतो मूर्च्छितोऽप्यद्य यावन्न प्रबुध्यसे—इत्यभिप्रायः ।।३।।

हिन्दी-अनुवाद—मदकलितकरेणुभज्यमाने=मदमस्त हाथियों द्वारा उजाड़े जाते हुये, प्रकटैकशालशेषे=एक (दुर्योधन रूप) ही वृक्ष शेष रह गया है जिसमें ऐसे, विपिने इव=वन के सदृश, हतसकलकुमारके=जिस (कुल) में सभी कुमार मारे जा चुके हैं ऐसे, अस्मिन्=इन, कुले=वंश में, त्वम्=तुम, अपि=भी, विधेः=दैव अथवा भाग्य के, कटाक्षैः=कटाक्षों अथवा दुर्दृष्टियों के द्वारा, अवलोकितः=देखलिये गये हो क्या ?

भावार्थ—जैसे कोई मदोन्मत्त हाथी वन को उखाड़ डाला करता है तथा उस वन में कोई विरला ही वृक्ष शेष बच पाता है, वैसे ही इस कुरुवंश के सभी कुमारों को तो भीमसेन ने मार ही डाला है। केवल एक (दुर्योधन) आप ही अवशिष्ट बचे हैं। (आप भी अभी तक चेतना को प्राप्त नहीं कर रहे हैं।) अतः ऐसा प्रतीत होता है कि क्रूर दैव (भाग्य) की कुटिल दृष्टि आप पर भी पड़ गयी है। (अर्थात् दुर्दैव आपको भी जीवित नहीं देखना चाहता है।) ॥३॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "पूर्णोपमा" अलङ्कार है।

छन्द—इसमें "पुष्पिताग्रा" छन्द है।

समास—मदकलितकरेणुभज्यमाने=मदेन कलिताः ये करेणवः तैः भज्यमाने। प्रकटैकशालशेषे=प्रकटः एकः शालः शेषः यत्र तस्मिन्। हतसकलकुमारके=हताः सकलाः कुमाराः यत्र तस्मिन् ॥

टिप्पणियाँ—चेतनाम्=चेतनावस्था को। मूर्च्छावस्था जिसकी समाप्त होकर चेतना प्राप्त हो गई है। मदकलितः=मद के कारण उन्मत्त। मदमस्त। करेणुः=हाथी। हाथी के समान भीम के द्वारा। भज्यमाने=नष्ट कर दिये जाने पर। प्रकटः=स्पष्ट रूप से। शालः=‘शाल’ नामक वृक्ष—"शालः शङ्कुतरुर्मतः" इति विश्वः। कटाक्षैः=चढ़ी हुई भौंओं से। जब कोई किसी को मारना चाहता है अथवा उस पर क्रुद्ध हुआ करता है तो वह उस व्यक्ति की ओर चढ़ी हुई भौंओं से युक्त दृष्टि से देखा करता है ॥३॥

ननु भो हतविधे ! भरतकुलविमुख !

अक्षतस्य गदापाणेरनारूढस्य संशयम् ।
एषापि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया ॥४॥

हे भरतकुल से पराङ्मुख, अधम भाग्य !

अन्वयः—गदापाणेः अक्षतस्य संशयं अनारूढस्य भीमसेनस्य एषा अपि प्रतिज्ञा त्वया पूर्यते ॥४॥

संस्कृत-व्याख्याः—गदापाणेः=गदा पाणौ हस्ते यस्य तादृशस्य, अक्षतस्य=अनाकलितव्रणस्य, संशयम्=संदेहम्—मम जयोभविष्यत्यस्य वेतिरूपं संशयम्,

अनारूढस्य=अप्राप्तस्य, भीमसेनस्य=वृकोदरस्य, एषा=दुर्योधनवधरूपा, अपि, प्रतिज्ञा=प्रणः, त्वया=हतविधिना, पूर्यते=मन्ये अनायासेनैव पूर्यते। भीमेन प्रतिज्ञातमासीत्—ऊरुभङ्गं कृत्वाऽहं दुर्योधनं हनिष्यामि। भीमस्यैषा प्रतिज्ञाऽपि अनायासेनैव पूर्णा भविष्यतीत्यभिप्रायः ॥४॥

हिन्दी-अनुवाद—गदापाणेः=हाथ में अपनी गदा को धारण किये हुये, अक्षतस्य=बिना घायल हुये, संशयम्=सन्देह में, अनारुढस्य=बिना पड़े हुये, भीमसेनस्य=भीमसेन की, एषा=यह, अपि=भी, प्रतिज्ञा=(दुर्योधनवध सम्बन्धी दूसरी) प्रतिज्ञा, त्वया=तुम्हारे द्वारा, पूर्यते=पूरी की जा रही है ॥४॥

भावार्थ—हे दैव! क्या आप गदापाणि भीमसेन की इस दुर्योधन का वध करने सम्बन्धी प्रतिज्ञा को भी बिना किसी प्रकार के सन्देह के अनायास ही तुम पूरी कर रहे हो? ।४॥

छन्द—उक्त पद्य में "अनुष्टुप्" छन्द है।

टिप्पणियाँ—**भरतकुलविमुख**=कुरुवंश के विरोधी। **अक्षतस्य**=बिना घायल हुये। यदि भीम तथा दुर्योधन का गदा युद्ध हुआ होता तो यह निश्चय था कि भीम भी किसी न किसी अंश में अवश्य ही घायल हुये होते क्योंकि दोनों ही तुल्यबल वाले थे। किन्तु इस समय तो दुर्योधन अर्जुन के बाणों से घायल होकर स्वयं ही मर रहा है। अतः भीम को इस दुर्योधन के साथ युद्ध कर घायल होने का भी अवसर न मिल सका। **संशय अनारूढस्य**=महाभारत-युद्ध में गदायुद्ध के विशेषज्ञ दो ही थे (१) दुर्योधन (२) भीम। इन दोनों के पारस्परिक युद्ध में यह संदेह किया जा सकता था कि विजय किसके हाथ लगेगी? किन्तु भीम को तो इस संदेहात्मक स्थिति में भी न पड़ना पड़ा। **भीमसेनस्य-प्रतिज्ञा**=भीम ने यह प्रण किया था कि वह गदा से मार-मार कर दुर्योधन की उन जांघों को तोड़कर मार डालूंगा जिन पर वह द्रौपदी को नग्न कर बिठालना चाहता था। **पूर्यते**=पूर्ण की जा रही है अर्थात् हे दैव भीम की उक्त प्रतिज्ञा तो तुम्हारे द्वारा अनायास ही पूर्ण की जा रही है ॥४॥

दुर्योधनः—(शनैरुपलब्धसंज्ञः) आः शक्तिरस्ति दुरात्मनो वृकोदरहतकस्य मयि जीवति दुर्योधने प्रतिज्ञां पूरयितुम्। वत्स दुःशासन!

न भेतव्यम् न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि। ननु सूत ! प्रापय रथं तमेवोद्देशं यत्र वत्सो मे दुःशासनः।

सूतः—आयुष्मन् ! अक्षमाः सम्प्रति वाहास्ते रथमुद्वोढुम्। (अपवार्य) मनोरथं च।

दुर्योधनः–(रथादवतीर्य सगर्वं साकूतं च) कृतं स्यन्दनगमनकालातिपातेन।

सूतः—(सवैलक्ष्यं सकरुणं च) मर्षयतु मर्षयत्वायुष्मान्।

दुर्योधनः—धिक् सूत ! किं रथेन ? केवलमरातिविमर्दसंघट्टसंचारी दुर्योधनः खल्वहम्। तद्गदामात्रसहायः समरभुवमवतरामि।

सूतः—आयुष्मन् ! एवमेतत्। कः सन्देहः ?

दुर्योधनः—यद्येवं किमेवं भाषसे ? पश्य—

बालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः
पापं व्यवस्यति समक्षमुदायुधोऽसौ।
अस्मिन्निवारयसि किं व्यवसायिनं मां
क्रोधो न नाम करुणा न च तेऽस्ति लज्जा ॥५॥

दुर्योधन—(धीरे-धीरे चेतना प्राप्तकर) आह ! मुझ दुर्योधन के जीते जी दुष्ट भीमसेन की क्या शक्ति है (कि) वह अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर ले। वत्स दुःशासन ! डरो नहीं, डरो नहीं। यह मैं आ ही गया हूँ। हे सारथी ! मेरे रथ को उस ही स्थान पर ले चलो, जहाँ मेरा भाई दुःशासन है।

सूत—आयुष्मन् ! इस समय आपके घोड़े रथ को वहन करने (खींचने) में समर्थ नहीं हैं (आड़कर दूसरी ओर) और (आपके) मनोरथ (इच्छा) को भी (पूर्ति करने में समर्थ नहीं हैं)।

दुर्योधन—(रथ से उतरकर, गर्व एवं विशिष्ट अभिप्राय अथवा व्यंग्य के साथ) रथ द्वारा चलने के लिये समय का बिताना व्यर्थ है।

सूत—(लज्जा तथा करुणा के साथ) क्षमा कीजिये, आयुष्मान् ! क्षमा कीजिये।

दुर्योधन—ओह, धिक्कार है सारथी ! रथ से क्या ? मैं तो एकमात्र शत्रुओं के समूह से टकराकर चलने वाला 'दुर्योधन' हूँ। अतः केवल गदा को ही लेकर युद्ध-भूमि में उतरता हूँ।

सूत—आयुष्मन् ! यह ऐसा ही है। इसमें क्या सन्देह है ?

दुर्योधन—"यदि ऐसा है" ऐसा क्यों कह रहे हो ? देखो—

अन्वयः—उदायुधः पापः असौ मे समक्षं प्रकृतिदुर्ललितस्य बालस्य पापं व्यवस्यति। अस्मिन् व्यवसायिनं मां किं निवारयसि ? ते क्रोधः न, नापि करुणा, च न लज्जा अस्ति ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—उदायुधः=उद्धृताऽऽयुधः, पापः=पापकर्मा, असौ=भीमसेनः, मे=मम, सपक्षम्=संमुखमेव, प्रकृतिदुर्ललितस्य=प्रकृत्या—स्वभावेन दुर्ललितस्य-नितरां लालितस्य—स्नेहेन पालितस्येत्यर्थः, बालस्य=वत्सस्य-कनिष्ठभ्रातुः दुःशासनस्य, पापम्=रुधिरपानरूपं क्रूरं कर्म, व्यवस्यति=विधास्यति। अस्मिन्=पापिनि (भीमं प्रति), व्यवसायिनम्=प्रतीकारपरम्, माम्=दुर्योधनम्, किम्=कस्मात्, निवारयसि=अवरुणद्धि ? ते=तव, क्रोधः=(अत्याचारमवलोक्य) कोपः, न=न उत्पद्यते ? करुणा=दया, च, न आगच्छति ? च, न, लज्जा=त्रपा एव, अस्ति ? स्वस्वामिभ्रातृवधात् ते क्रोध एव उचितः, बालवधात् करुणा उचिता, स्वाविनयाच्च लज्जा उचिता। परं त्वयि तु एतत् त्रयमपि नास्तीति त्वं नितरां निर्लज्जः क्रूरश्चासीत्यभिप्रायः ॥५॥

हिन्दी-अनुवाद—उदायुधः=हाथ में शस्त्र लिये हुये, पापः=पापी, असौ=यह भीम, मे=मेरे, समक्षम्=सामने, प्रकृतिदुर्ललितस्य=स्वभाव से ही कोमल अथवा बड़े स्नेह के साथ लालित (अथवा शिरचढ़ा अथवा मुँह लगा), बालकस्य=बालक, छोटे भाई दुःशासन के प्रति, पापम्=रक्त-पान रूप क्रूर कर्म, व्यवस्यति=करेगा। अस्मिन्=इस दुष्ट भीम के प्रति, व्यवसायिनम्=बदला लेने में तत्पर, माम्, मुझको, किम्=क्यों, निवारयसि=रोक रहे हो ? ते=तुझे, क्रोधः=क्रोध, न=नहीं आ रहा है ? नापि करुणा च=न दया ही आ रही है ? च=और, न लज्जा अस्ति=लज्जा ही आ रही है ? ॥५॥

भावार्थ—अपने हाथ में शस्त्र लिये हुये, दुष्ट; पापी यह (भीम) मेरे लाड़िले दुःशासन पर शस्त्र द्वारा उसे मारकर उसके रक्त का पान करने रूप क्रूर कर्म कर रहा है। मैं इसे रोकने हेतु युद्ध-क्षेत्र में जाना चाहता हूँ किन्तु तुम मुझे रोकते हो। तुमको (शत्रु पर) क्रोध अथवा (बालक दुःशासन पर) दया अथवा (अपने कर्म पर) लज्जा भी नहीं आ रही है। अतः तुम पूर्ण-रूपेण कायर, निर्दयी तथा निर्लज्ज ही हो ॥५॥

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—**अरातिविमर्दसंघट्टसंचारी**=अरातीनां-शत्रूणां यो विमर्दः-संश्लेषः तेन यः संघट्टः-संघर्षः-आक्रमणं वा-परस्परास्फालनं वा तत्र सञ्च-रितुं शीलमस्य तथा विधः। **उदायुधस्य**=उद् उद्गतं आयुधं यस्य सः। **प्रकृतिदुर्ललितस्य**=प्रकृत्या दुर्ललितः-इति प्रकृतिदुर्ललितः, तस्य ॥

टिप्पणियाँ—**प्रतिज्ञाम्**=दुःशासन के हृदय से निकले हुये रक्त का पान करने की प्रतिज्ञा को सूत द्वारा चतुर्थ श्लोक की द्वितीय पंक्ति पढ़ते समय ही दुर्योधन होश में आ रहा था। उसने यही पंक्ति सुनी थी। अतः वह सूत के सम्पूर्ण वक्तव्य से अपरिचित है। वह सोचता है कि अभी दुःशासन मारा नहीं गया है। भीम द्वारा ही जाने वाला है अतः वह कह उठता है। **उद्देशम्**=स्थान। **अक्षमाः**=असमर्थ। **वाहाः**=घोड़े। सारथी ने ऐसा कहकर दुर्योधन को युद्ध में जाने से रोकने के लिये बहाना मात्र ही किया है। क्योंकि उनकी स्थिति इस योग्य न थी। **अपवार्य**=आड़ करके, दूसरी ओर। **मनोरथम्**=इच्छा को (भी पूर्ण करने में असमर्थ)। **साकूतम्**=अभिप्राय के साथ। व्यङ्ग्य के साथ। **कालातिपातः**=समय का बिताना। **मर्षयतु**=क्षमा करें। **विमर्द्दः**=भीड़, समूह। **संघट्टः**=समूह। **उदायुधः**=हाथ में शस्त्र को उठाये हुये। **पापः**=पापी-क्रूरकर्मा। **प्रकृतिदुर्ललितस्य**=स्वभाव से ही मुँह लगा हुआ—अति स्नेह से लालित-पालित। **व्यवस्यति**=करेगा। **व्यवसायिनम्**=बदला लेने में तत्पर। **निवारयसि**=रोकते हो ॥५॥

सूत—(सकरुणं पादयोर्निपत्य) एतद्विज्ञापयामि। आयुष्मन्! सम्पूर्णप्रतिज्ञेन निवृत्तेन भवितव्यमिदानीं दुरात्मना वृकोदरहतकेन। अत एवं ब्रवीमि।

दुर्योधनः—(सहसा भूमौ पतन्) हा वत्स दुःशासन ! हा मदाज्ञा-विरोधितपाण्डव ! हा विक्रमैकरस ! हा मदङ्कदुर्ललित ! हा अराति-कुलगजघटामृगेन्द्र ! हा युवराज ! क्वासि ? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् । (इति निःश्वस्य मोहमुपगतः ।) ।

सूतः—राजन् ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

दुर्योधनः—(संज्ञा लब्ध्वा निःश्वस्य)

युक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव
त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन ।
अस्यास्तु वत्स तव हेतुरहं विपत्ते-
र्यत्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि ॥६॥

सूत—(करुणा के साथ, पैरों पर गिरकर) मैं यह निवेदन कर रहा हूँ—आयुष्मन् ! दुष्ट एवं नीच भीम तो इस समय तक अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके निवृत्त हो चुका होगा । इसी कारण (मैं ऐसा) कह रहा हूँ ।

दुर्योधन—(अचानक पृथिवी पर गिरता हुआ) हा ! वत्स दुःशासन, हा ! मेरी आज्ञा से पाण्डवों का विरोध करने वाले, हा ! पराक्रम में ही एकमात्र आनन्द लेने वाले, हा ! मेरी गोद के लिये आग्रह करने वाले, हा ! शत्रु-समूह रूप हाथियों के झुंड के लिये सिंह के सदृश, हा ! युवराज कहाँ हो ? मुझे प्रत्युत्तर दो । (इस भाँति विलाप करके पुनः दीर्घश्वास लेकर मूर्च्छित हो जाता है) ।

सूत—हे राजन् ! धैर्यधारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये ।

दुर्योधन—(चेतना प्राप्तकर तथा दीर्घश्वास लेकर) ।

अन्वयः—हे वत्स ! त्वं उपभोगसुखेषु यथेष्टं न एव युक्तः, वृथाग्रजेन मया त्वं हि न लालितः, तव अस्या विपत्तेः हेतुः अहं (अस्मि), यत् अविनयं कारितः असि, तु न रक्षितः च न असि ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे ! वत्स =हे भ्रातः; त्वम्, उपभोगसुखेषु=विलास सम्भोगसुखेषु, यथेष्टम्=इच्छानुरूपम्, न, एव, युक्तः=नियोजितः; वृथाग्रजेन=

मिथ्याज्येष्ठभ्राता-निरर्थकज्येष्ठेनेत्यर्थः, मया=दुर्योधनेन, त्वम्, हि=इति निश्चये, न लालितः=स्नेहेन न पालितः—विलासं न नीतः वा, तव=भवतः; अस्याः=एतस्याः, विपत्तेः=मृत्युरूपविपदः; हेतुः=कारणम्, अहम्=तव ज्येष्ठ-भ्राता दुर्योधनः, अस्मीति शेषः, यत्=यस्मात्, अविनयम्=द्रौपदीकेशाम्बराक-र्षणरूपं अनुचितं दुष्टतापूर्णं वा कर्म, कारितः=कर्त्तुं प्रेरितः, असि, तु=किन्तु, न रक्षितः=न (मया) परित्रातोऽसि । द्रौपदीकेशाम्बरकर्षणरूपे कर्मणि नियोजनवत्तव रक्षणमपि मम कर्त्तव्यमासीदित्यभिप्रायः ॥६॥

हिन्दी-अनुवाद—हे वत्स !=हे भाई दुःशासन, त्वम्=तुमको, उपभोग-सुखेषु=उपभोग सम्बन्धी सुखों में, यथेष्टम्=इच्छानुसार, नैव युक्तः=नहीं लगाया। वृथाऽग्रजेन=निरर्थक बड़े भाई बने हुये, मया=मेरे द्वारा, त्वम्=तुम, हि=निश्चय ही, न लालितः=प्रेम पूर्ण नहीं किये गये हो ! तव=तुम्हारी, अस्याः=इस, विपत्तेः=मृत्यु रूप विपत्ति का, हेतुः=कारण, अहम्=मैं ही हूँ, यत्=जो, अविनयम्=मर्यादाहीन आचरण, कारितः असि=(मैंने तुमसे कराया) था। तु=किन्तु, न रक्षितः=नहीं बचाये जा सके, असि=हो ॥६॥

भावार्थ—हे छोटे भाई दुःशासन् ! मैंने तुमको सांसारिक भोगों में तुम्हारी इच्छानुसार नहीं लगने दिया, मैं तुमको भलीभाँति प्यार अथवा लालन-पालन भी न कर सका। मरणरूप तेरी विपत्ति का कारण मैं ही हूँ क्योंकि मैंने ही तुम्हारे हाथों द्वारा द्रौपदी के केशों तथा वस्त्र को खिचवाया था। यह शिष्टाचारविहीन घृणित कार्य तो मैंने तुमसे कराया किन्तु बाद में फिर तुम्हारी रक्षा मैं न कर सका ॥६॥

अलङ्कार–उक्त पद्य के चतुर्थ-चरण में 'विशेषोक्ति" नामक अलंकार है।

छन्द—इसमें "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—मदाज्ञाविरोधितपाण्डव !=मदाज्ञया विरोधिताः कृतवैराः पाण्डवाः येन स, तत्सम्बोधने। विक्रमैकरस !=विक्रमे पराक्रमे एव एको रसो यस्य सः, तत्सम्बोधने। उपभोगसुखेषु=उपभोगस्य सुखानि-इति-उपभो-गसुखानि, तेषु।

टिप्पणियाँ—अङ्कम्=गोद, उत्सङ्ग। अरातिकुलगजघटामृगेन्द्र !=शत्रु-समूह रूप हाथियों के झुंड के लिये सिंह के समान। प्रयच्छ=दो। प्रतिवचनम्=प्रत्युत्तर। मोहम्=मूर्च्छा को। सञ्ज्ञाम्=चेतना को। उपभोगसुखेषु=विलास, सम्भोग आदि के सुखों में। यथेष्टम्=इच्छानुसार। वृथा=निरर्थक। अग्रजेन=बड़े भाई द्वारा। लालितः=लालन-पालन किये गये। विपत्तेः=भीम द्वारा तुम्हें दबोचकर तुम्हारे वक्षस्थल को विदीर्णकर उससे निकले हुये तुम्हारे रक्त का पान करने रूप विपत्ति का। अविनयम्=दुष्टता को, मर्यादारहित आचरण का। कारितः=कराया गया। तु=किन्तु। रक्षितः=रक्षा न की जा सकी ॥६॥

(इति पतति।)

सूतः—आयुष्मन्! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

दुर्योधनः—धिक् सूत, किमनुष्ठितं भवता ?

रक्षणीयेन सततं बालेनाज्ञानुवर्तिना।
दुःशासनेन भ्रात्राहमुपहारेण रक्षितः ॥ ७ ॥

[ऐसा कहकर (पुनः) गिर पड़ता है।]

(अर्थात् मूर्च्छित हो जाता है।)

सूत—हे राजन्! धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये।

दुर्योधन—सारथि (तुझे) धिक्कार है। आपने क्या कर दिया ?

अन्वयः—सततं आज्ञानुवर्तिना बालेन रक्षणीयेन भ्रात्रा दुःशासनेन उपहारेण अहं रक्षितः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—सततम्=निरन्तरम्, आज्ञानुवर्तिना=आज्ञापरिपालकेन, बालेन=मुग्धेन, रक्षणीयेन=रक्षणोचितेन, भ्रात्रा=अनुजेन, दुःशासनेन=दुःशासनरूपेण, उपहारेण=उपहारभूतेन तं बलिदत्वा इति यावत्, अहम्=दुर्योधनः, रक्षितः=समरादपसार्य परित्रातः। एतत्तव कार्यं अनुचितमेवेति भावः ॥७॥

हिन्दी-अनुवाद—सततम्=सर्वदा, आज्ञानुवर्तिना=आज्ञापालन में ही संलग्न, बालेन=बालक, रक्षणीयेन=रक्षा किये जाने योग्य, भ्रात्रा=भाई,

दुःशासनेन=दुःशासन के, उपहारेण=बलिदान से, अहम्=मैं (दुर्योधन), रक्षितः=(तुम्हारे द्वारा) बचा लिया गया हूँ ॥७॥

भावार्थ—सदैव मेरी आज्ञापालन में तत्पर, सर्वथा रक्षणीय, बालक दुःशासन की बलि देकर युद्धभूमि से मुझे यहाँ लाकर तुमने बचा लिया है। (तुमने यह अनुचित ही किया है।)।

अलङ्कार—उक्त पद्य में "काव्यलिङ्ग" नामक अलङ्कार है।

छन्द—इसमें "अनुष्टुप्" नामक छन्द है।

टिप्पणियाँ—अनुष्ठितम्=किया। किमनुष्ठितम्=क्या किया? अर्थात् अनुचित ही किया। सन्ततम्=निरन्तर। आज्ञानुवर्तिना=आज्ञापालन करने वाले। बालेन=बालक। रक्षणीयेन=रक्षा किया जाने योग्य। उपहारेण=भेंट अथवा बलि देकर। रक्षितः=बचा लिया गया ॥७॥

सूतः—महाराज! मर्मभेदिभिरिषुतोमरशक्तिप्रासवर्षैर्महारथानामपहृतचेतनत्वान्निश्चेष्टः कृतो महाराज इत्यपहृतो मया रथः।

दुर्योधनः—सूत! विरूपं कृतवानसि।

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विषो मे
क्षोभैर्गदाशनिकृतैर्न विबोधितोऽस्मि।
तामेव नाधिशयितो रुधिरार्द्रशय्यां
दौःशासनीं यदहमाशु वृकोदरो वा ॥८॥

सूत—महाराज! महारथियों की मर्मभेदी बाण, भाले, बर्छे और गण्डासों की वर्षा ने महाराज की चेतना अपहरण करके मूर्च्छित कर दिया था। इसी कारण मैं रथ को दूर हटा ले आय:।

दुर्योधन—सूत! (तुमने यह) अनुचित किया है।

अन्वयः—पाण्डवपशोः मे अनुजद्विषः तस्य एव गदाशनिकृतैः क्षोभैः न विबोधितः अस्मि। ताम् एव दौःशासनीं रुधिरार्द्रशय्यां अहं वा वृकोदरः आशु न अधिशयितः ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या:—पाण्डवपशोः=पाण्डवः पाण्डुपुत्रः भीमः पशुः चतुष्पाद इव तस्य-नीचमध्यमपाण्डवस्य भीमस्य, मे=मम, अनुजद्विषः=कनिष्ठभ्रातृशत्रोः, तस्य एव=कौरवशत्रुत्वेन प्रसिद्धस्य, गदाशनिकृतैः=गदा अशनिः इव-गदाशनिः-गदारूपं वज्रं वा तत्कृतैः क्षोभैः-प्रहारजनितपीडाभिरित्यर्थः, न, विबोधितः=अवबुद्धः-प्राप्तचैतनाः अस्मिनष्टसंज्ञः जातः अस्मि। ताम् एव, दौःशासिनीम्=दुश्शासनसम्बन्धिनीम्, रुधिरार्द्रशय्याम्=रुधिरेण-रक्तेन आर्द्रां-क्लिन्नां शय्यां पर्यङ्कं भूपर्यङ्कमित्यर्थः, अहम्=दुर्योधनः, वा=अथवा, वृकोदरः=मम प्रतियोद्धा भीमः, आशु=शीघ्रम्, न अधिशयितः=न सुप्तः। शस्त्रप्रहारैः अहं मूच्छितः अभूवम्, नोचेत्तं भीमं तत्रैव रुधिरशय्यायां निपातयेयम्। अथवा अहं तत्र शयितः स्यामित्यभिप्रायः ॥८॥

हिन्दी-अनुवाद—पाण्डवपशोः=पशुसदृश पाण्डव-भीम, मे=मेरे, अनुजद्विषः=छोटे भाई दुःशासन के शत्रु, तस्य=उस भीम के, एव=ही, गदाशनिकृतैः=वज्रसदृश गदा के, क्षोभैः=क्षोभ से-प्रहारों से, न=नहीं, विबोधितः=जागाया (चैतन्यता को प्राप्त कराया) गया, अस्मि=हूँ। ताम्=उस, एव=ही, दौःशासिनीम्=दुःशासन सम्बन्धी, रुधिरार्द्रशय्याम्=रक्त से भीगी हुयी (पृथ्वी रूपी) शय्या पर, अहम्=मैं, वा=अथवा, वृकोदरः=भीम, आशु=अतिशीघ्र, न=नहीं, अधिशयितः=सुला दिये गये ॥८॥

भावार्थ—पाण्डवों में पशु के समान, मेरे छोटे भाई के शत्रु उस भीम की वज्रसदृश गदा के आघातों से मैं बेहोश हो गया था, मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था। अन्यथा जिस स्थल पर दुःशासन का रक्त पड़ा हुआ था तथा उसका शव पड़ा था वहीं पर या तो मैं ही गिर जाता अथवा उस दुष्ट भीम को ही मारकर गिरा देता। परन्तु क्या किया जाय? मैं तो अचेतनावस्था को ही प्राप्त हो गया था ॥८॥

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—मर्मभेदिभिः=मर्म (जीवनस्थानम्) भिन्दन्ति-(विदारयन्ति); तैः। पाण्डवपशोः=पाण्डवेषु पशुरिव इति पाण्डवपशुः तस्य। गदाशनि-

कृतैः=गदा एव अशनि वज्रम्-गदाशनिः तेन कृतैः। रुधिरार्द्रशय्याम्-रुधिरेण आर्द्रा शय्या इति रुधिरार्द्रशय्या, ताम् ॥८॥

टिप्पणियाँ—मर्मभेदिभिः=मर्मस्थल को विदीर्ण करने वाले। अपहृतः=दूर ले आया, दूर हटा लाया। विरूपम्=विरुद्ध। अनुचित। अशनिः=वज्र। क्षोभैः=क्षोभ से। क्षौदैः=(पाठ होने पर) आघातों से—व्रणों से। विबोधितः=जगाया गया। रुधिरार्द्रशय्याम्=रक्त से भीगी हुई पृथ्वी रूपी शय्या पर। आशु=शीघ्र ॥८॥

(निःश्वस्य नभो विलोक्य) ननु भो हतविधे ! कृपाविरहित ! भरतकुल विमुख !

अपि नाम भवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः।

सूतः—शान्तं पापम् शान्तं पापम्। महाराज ! किमिदम् ?

दुर्योधनः –

घातिताशेषबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा ॥ ९ ॥

(दीर्घ श्वास लेकर, आकाश की ओर देखकर) ओ, निर्दय, भरत कुल से मुख मोड़े हुये, दुष्ट दैव (अथवा दुर्भाग्य) !

अन्वयः—अपि नाम (मम) मृत्युः भवेत्, च वृकोदरः हन्ता न (भवेत्) ? (हि) घातिताशेषबन्धोः मे राज्येन वा जयेन किम् ? ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—अपि=इति प्रश्ने; नाम=इति सम्भावनायाम्, (मम=दुर्योधनस्य) मृत्युः=मरणम्, भवेत्=स्यात् ? च=तथा, वृकोदरः=भीमः, हन्ता=विनाशकः, न भवेदिति शेषः। भीमः हन्ता न स्यादिति प्रार्थये—इत्यभिप्रायः।

हिन्दी-अनुवाद—अपि नाम=क्या संभव है (मम=मेरी) मृत्युः=मृत्यु, भवेत्=हो जाय ? किन्तु वृकोदरः=भीम, (मेरा), हन्ता=मारने वाला, न भवेत्=न हो। कहने का अभिप्राय यह है कि यह संभव है कि मेरी मृत्यु हो जाय किन्तु मैं यही चाहता हूँ कि मेरी मृत्यु भीम के हाथों न हो।

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। महाराज ! यह आप (अमङ्गल-वचन) क्यों कह रहे हैं ?

दुर्योधन—

(हि=यतः) घातिताशेषबन्धोः=घातिताः—विनाशिताः अशेषाः समग्राः बन्धवः—अनुजाः अन्ये च स्वपक्षावलम्बिनः योद्धारः यस्य तादृशस्य, मे=मम दुर्योधनस्य, राज्येन=साम्राज्यलाभेन, वा=अथवा, जयेन=विजयेन, किम्=किं प्रयोजनम् । न किमपीत्यर्थः ॥९॥

(हि=क्योंकि) घातिताशेषबन्धोः=जिसके सम्पूर्ण बन्धु-बान्धव तथा योद्धागण मारे जा चुके हैं ऐसे, मे=मुझे, राज्येन=साम्राज्य प्राप्ति से, वा=अथवा, जयेन=विजय से; किम्=क्या लाभ ? ॥९॥

भावार्थ— हे दुर्भाग्य ! यदि तुझे मेरी मृत्यु ही अभीष्ट हो तो भी मेरी आप से यही प्रार्थना है कि आप मेरी मृत्यु भीम के हाथों मत कराना । मेरे सभी बन्धु-बान्धव युद्ध में मारे जा चुके हैं । अब मुझे राज्य-प्राप्ति से अथवा विजयप्राप्ति से क्या प्रयोजन ? (ऐसी स्थिति में तो मेरा मर जाना ही उत्तम है ।) ।

छन्द—उक्त पद्य में "अनुष्टुप्" नामक छन्द है ।

टिप्पणियाँ—कृपाविरहित !=कृपा से रहित अर्थात् निर्दय !, अपि=यहाँ यह अव्यय प्रश्नवाचक अर्थ में प्रयुक्त है । नाम=यह 'सम्भावना' अर्थ में प्रयुक्त है । घातिताः=मार डाले गये हैं । अशेषाः=सम्पूर्ण ॥९॥

(ततः प्रविशति शरप्रहारव्रणबद्धपट्टिकालंकृतकायः सुन्दरकः ।)

(तत्पश्चात् बाणों के आघातों से उत्पन्न हुये घावों पर बँधी हुई पट्टियों से सुशोभित शरीर वाला सुन्दरक प्रवेश करता है ।)

सुन्दरकः—आर्याः । अपि नामास्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो युष्माभिर्महाराजदुर्योधनो न वेति ? (निरूप्य) कथं न कोऽपि मन्त्रयते । भवतु । एतेषां बद्धपरिकराणां पुरुषाणां समूहो दृश्यते । अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि (परिक्रम्य विलोक्य च) कथमेते खलु स्वस्वामिनो गाढप्रहाराहतस्य घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः कङ्कवदनैर्हृदयाच्छल्यान्युद्धरन्ति । तन्न खल्वेते जानन्ति । भवतु । अन्यतो विचेष्यामि ।

(अग्रतोऽवलोक्य किंचित्परिक्रम्य) इमे खल्वपरे प्रभूततराः संगता वीरमनुष्याः दृश्यन्ते। तदत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (उपगम्य) हंहो! जानीथ यूयं कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्त्तत इति। (दृष्ट्वा) कथमेतेऽपि मां प्रेक्ष्याधिकतरं रुदन्ति। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। हा अतिकरुणं खल्वत्र वर्त्तते। एषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुकनिवसनया समग्रभूषणया वध्वा सहानुम्रियते। (सश्लाघम्) साधु, वीरमातः, साधु। अन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरे अनिहतपुत्रका भविष्यसि। भवतु। अन्यतो विचेष्यामि। (अन्यतो विलोक्य) अयमपरो बहुप्रहारनिहत कायोऽकृतव्रणबन्ध एव योधसमूह इमं शून्यासनं तुरङ्गमुपालभ्य रोदिति। नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादितः। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। भवतु। अन्यतो गत्वा प्रक्ष्यामि। (सर्वतो विलोक्य) कथ सर्व एवावस्थानुरूपं व्यसनमनुभवन्भागधेयविमुखतया पर्याकुलो जनः। तत्कमत्र प्रक्ष्यामि। कं वोपालप्स्ये? भवतु। स्वयमेवात्र विचेष्यामि (परिक्रम्य) भवतु दैवमिदानीमुपालप्स्ये। हंहो दैव! एकादशानामक्षौहिणीनां नाथो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गराजशल्यकृपकृतवर्माश्वत्थामप्रमुखस्य राजचक्रस्य सकलपृथ्वीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनोऽप्यन्विष्यते। अन्विष्यमाणोऽपि न ज्ञायते कस्मिन्नुद्देशे वर्तत इति (विचिन्त्य निःश्वस्य च) अथवा किमत्र दैवमुपालभे। तस्य खल्विदं निर्भर्त्सितविदुरवचनबीजस्यावधीरितपितामहहितोपदेशाङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साहनादिविरूढमूलस्य जतुगृहद्यूतविषशाखिनः संभूतचिरकालसंबद्धवैरालबालस्य पाञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य फलं परिणमति (अन्यतो विलोक्य) यथात्रैष विविधरत्नप्रभासंवलितसूर्यकिरणप्रसूतशक्रचापसहस्रसंपूरितदशदिशामुखो लूनकेतुवंशो रथो दृश्यते तथाहं तर्कयाम्यवश्यमेतेन महाराजदुर्योधनस्य विश्रामोद्देशेन भवितव्यमिति। यावन्निरूपयामि (उपगम्य दृष्ट्वा निश्वस्य च) कथमेकादशानामक्षौहिणीनां नायको भूत्वा महाराजो दुर्योधनः प्राकृतपुरुष इवाश्लाघनीयायां भूमावुपविष्टस्ति-

ष्ठति। अथवा तस्य खल्विदं पाञ्चालीकेशग्रहकुसुमस्य फलं परिणमति।

(अज्जा अवि णाम इमस्सिं उद्देसे सारहिदुइओ दिट्ठो तुम्हेहिं महाराअदुज्जोहणोण वेत्ति। कहं ण कोवि मन्तेदि। होदु। एदाणं बद्धपरिअराणं पुरिसाण समूहो दीसइ। एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम्। कहं एदे क्खु स्वसामिणो गाढप्पहारहदस्स घणसण्णाहजालदुब्भेज्जमुहेहिं कङ्कवदणेहिं हिअआदो सल्लाइं उद्धरन्ति। ता ण क्खु एदे जाणन्ति। होदु। अण्णदो विचिणइस्सम्। इमे क्खु अवरे प्पहूदरा संगदा वोर-मणुस्सा दीसन्ति। ता एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम्। हहो जाणह तुम्हे कस्सिंउद्देसे कुरुणाहो वट्टइत्ति। कहं एदे वि मं पेक्खिअ अहिअदरं रोअन्दि। ता ण हु एदे वि जाणन्ति। हा, अदिकरुणं क्खु एत्थ वट्टइ। एसा वीलमादा समलविणिहदं पुत्तअं सुणिअं रत्तंसुअणिवसणाए समग्गभूसणाए वहूए सह अणुमरदि साहु वीरमादे, साहु। अण्णसिं वि जम्मन्तरे अणिहदपुत्तआ हुविस्ससि। होदु। अण्णदो विचिण-इस्सम्। अअं अवरो बहुप्पहारणिहदकाओ अकिदव्वणप्पडिआरो एव्व जोहसमूहो इमं सुण्णासणं तुलङ्गमं उवालहिं रोइदि। णूणं एदाणं एत्थ एव्व सामी वावादिदो। ता ण क्खु एदे वि जाणन्दि। होदु। अण्णदो गदुअ पुच्छिस्सम्। कहं सव्वो एव्व अवत्थाणुरूवं वयसणं अणुभवन्तो भाअधेअविमुखदाए पज्जाउलो जणो। ता क एत्थ पुच्छि-स्सम्। क वा उवालहिस्सम्। होदु। सअं एव्व एत्थ विचिणइस्सम्। होदु। देव्वं दाणिं उवालहिस्सम्। हंदो देव्व! एआदसाणं अक्खोहि-णीणं णाहो जेट्ठो भादुसदस्स भत्ता गङ्गेअद्दोणङ्गराअसल्लकिवकीदव-म्मअस्सत्थामप्पमुहस्स राअचक्कस्स सअलप्पुहवीमण्डलेक्कणाहो महाराअदुज्जोहणो वि अण्णेसीअदि। अण्णेसीअन्तो वि ण जाणीअदि कस्सिं उद्देसे वट्टइत्ति। अह वा किं एत्थ देव्वं उवालहामि। तस्स क्खु एदं णिब्भच्छिअविउरवअणवीअस्स अवहीरिदपिदामहहिदोवदेसङ्कु-रस्स सउणिप्पोच्छाहणादिविरूढमूलस्स जदुगेहजूदविससाहिणो संभू-दुचिरआलसंबद्धवेरालबालस्स पञ्चालीकेसग्गहणकुसुमस्स फलं परि-

णमदि। जह्रा एत्थ एसो विनिहररिणप्पहासंवलिदसूरकिरणप्पसूदस-वकचावसहस्ससंपूरिददसदिसामुहो लूणकेदुवंसो रहो दीसइ ता अहं तक्केमि, अवस्सं एदिणा महाराअदुज्जोहणस्स विस्सामुद्देसेण होद-व्वम् याव निरूपेम्मि। कध एआदहाणं अक्खोहिणीणं णाअको भविअ महाराओ दुज्जोहणो पाइदपुरिसो विअ असलाहणोए भूमिए उवविट्ठोचिट्ठदि। अध वा तस्स क्खु एवं पञ्चालीकेसग्गहकुसुमस्स फलं परिणमदि।)

सुन्दरक—आर्य लोगों! क्या आप लोगों ने इस सारथि के साथ महाराज दुर्योधन को कहीं देखा है अथवा नहीं? (ध्यान से देखकर) क्या कोई भी नहीं बोल रहा है? अच्छा, यह कमर कसे हुये लोगों का समूह दिखलाई दे रहा है। यहाँ चलकर पूछूँगा। (घूमकर और देखकर) क्या ये लोग प्रबल प्रहारों से आहत, अपने-अपने स्वामियों के वक्षस्थल से, जिनके अग्रभाग दृढ़-कवच के जाल से भी नहीं टूट सकते हैं ऐसी चिमटियों के द्वारा बाणों के (टूटे हुए एवं तीक्ष्ण) अग्रभागों (कांटों) को निकाल रहे हैं। तब ये लोग नहीं जानते होंगे। अच्छा, अन्यत्र खोजूँगा। (आगे की ओर देखकर तथा कुछ दूर चलकर) और भी अधिक एकत्रित हुये ये कुछ अन्य वीर पुरुष दृष्टिगोचर हो रहे हैं। तो यहाँ चलकर पूछूँगा। (समीप जाकर) क्या आप लोग जानते हैं कि कौरवराज (दुर्योधन) कहाँ हैं? (देखकर) ये भी मुझे देखकर न जाने अत्यधिक क्यों रोने लगे हैं? तो निश्चय ही ये लोग भी नहीं जानते हैं। ओह! यहाँ तो बड़ा ही करुणाजनक दृश्य उपस्थित है। किसी वीर की यह माता पुत्र को संग्राम में मारा गया सुनकर, लाल-वस्त्र को धारण किये हुई, सम्पूर्ण आभूषणों से सजी-धजी अपनी पुत्र-वधू के साथ (चिता पर जलकर) मरने जा रही है। (प्रशंसा के साथ) धन्य हो वीरमाता, धन्य हो। आगामी जन्म में न मारे गये पुत्रवाली होओगी। अच्छा, अन्यत्र खोजूँगा। (दूसरी ओर देखकर) योद्धाओं का यह दूसरा समूह है जो अनेक प्रहारों से शरीर के घायल होने पर घावों को बाँधे बिना ही इस खाली काठी वाले घोड़े को उलाहना देकर रो रहा है। निश्चय ही इन लोगों का स्वामी (नायक) यहीं पर मारा गया है। तब तो ये लोग भी नहीं जानते

हैं। अच्छा, दूसरी ओर जाकर पूछूँगा। (चारों ओर देखकर) कैसे, सब ही लोग भाग्य के विपरीत होने के कारण अपनी अवस्था के अनुरूप विपत्ति भोगते हुये व्याकुल हो रहें हैं ? तो फिर यहाँ किससे पूछूँ अथवा किसको उलाहना दूँ ? अच्छा, अब मैं स्वयं ही यहाँ खोजूँगा। (घूमकर) अच्छा, अब दैव (भाग्य) को ही उलाहना दूँगा। वाह रे भाग्य, ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी, सौ भाइयों में सबसे बड़े, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा आदि राजसमूह के स्वामी, सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के एकमात्र अधिपति महाराज दुर्योधन को भी आज खोजा जा रहा है। (और) खोजे जाने पर (भी) पता नहीं लग रहा है कि (वे) किस जगह पर हैं। (सोचकर तथा दीर्घ-श्वास लेकर) अथवा इस बारे में भाग्य को भी क्या दोष दूँ ? क्योंकि यह तो उस लाक्षागृह, (कपट) द्यूत एवं (विष) दान रूप उस वृक्ष का फल है; विदुर का तिरस्कार किया गया वचन ही जिसका बीज है, भीष्मपितामह का ठुकराया गया हितकारी उपदेश जिसका अंकुर है, शकुनि के प्रोत्साहन आदि जिसकी दृढ़ जड़ें हैं, उत्पन्न हुआ तथा काफी दिनों से बँधा हुआ वैर ही जिसका थाला है तथा द्रौपदी का केश-ग्रहण ही जिसका फूल है (दूसरी ओर देखकर) जैसे कि यहाँ पर एक कटी हुई ध्वजा वाला रथ दिखलाई पड़ रहा है जो अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति से उत्पन्न सहस्रों इन्द्रधनुषों द्वारा दशों दिशाओं के अग्रभागों को भर रहा है, इससे अनुमान करता हूँ कि अवश्य ही यह महाराज दुर्योधन का विश्रामस्थल होगा (अर्थात् वे इसी स्थल पर विश्राम कर रहें होंगे)। अतः ध्यान से देखता हूँ (समीप में जाकर, देखकर तथा लम्बी साँस लेकर) कैसे ग्यारह हजार अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी होकर महाराज दुर्योधन सामान्य पुरुष के सदृश इस अप्रशस्त (अपने अयोग्य) भूमि पर बैठे हुये हैं ? अथवा यह द्रौपदी के केशग्रहणरूपी फूल का फल (ही) पक रहा है।

समास—व्रणबद्धपट्टिकालंकृतकायः=व्रणेषु क्षतेषु बद्धा या पट्टिका-वस्त्रखण्डः, तया अलङ्कृतः कायः शरीरं यस्य स। गाढप्रहाराहतस्य=गाढैः—तीव्रैः प्रहारैः आहतस्य—ताडितस्य। घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः=

घनः अतिदृढः यः सन्नाहः कवचः तस्य स एव वा जालं तस्मात् दुर्भेद्यं मुखं येषां तैः। **समरविनिहतम्**=समरे–युद्धे विनिहितम् मारितम्। **बहुप्रहारनिहतकायः**=बहुप्रहारैः निहतः आहतः जर्जरितः कायः शरीरं यस्य स। **अकृतव्रणबन्धः**=न कृतः व्रणेषु ईर्मेषु ("व्रणो·········ईर्मम्"–इत्यमरः) बन्धः यस्य सः। **सकलपृथिवीमण्डलैकनाथः**=सकलस्य पृथिवीमण्डलस्य भूवलयस्य एकः नाथः एक स्वामी (चक्रवर्तीत्यर्थः)। **निर्भर्त्सितविदुरवचनबीजस्य**=निर्भर्त्सितं निन्दितं तिरस्कृतमित्यर्थः। विदुरस्य वचनमेव बीजं–कारणं यस्य, तस्य। **अवधीरितपितामहहितोपदेशांकुरस्य**=अवधीरितः तिरस्कृतः पितामहस्य-भीष्मस्य हितोपदेशः-हितवचनम् एव अंकुरः प्ररोहः यस्य तादृशस्य। **शकुनिप्रोत्साहनादिविरूढमूलस्य**=शकुनिना कृत यत् प्रोत्साहनादि तदेव विरूढं मूलं यस्य तस्य। **जतुगृहद्यूतविषशाखिनः**=जतुनः गृहं जतुगृहम्, जतुगृहं च द्यूतं च विषं (भीमाय विषदानम्) चैव शाखा विद्यन्ते यस्य तस्य। **संभूतचिरकालसम्बद्धवैरालवालस्य**=संभूतः-उत्पन्नः चिरकालात्–बहुकालात् संबद्धः वैरः–शत्रुता एव आलवालः जलावापप्रदेशः यस्य, तादृशस्य। **पाञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य**=पाञ्चाल्याः द्रौपद्याः केशग्रहणं कचग्रहः एव कुसुमं यस्य तादृशस्य। **विविधरत्नप्रभासंवलितसूर्यकिरणप्रसूतशक्रचापसहस्रसंपूरितदशदिशामुखः**=विविधानि यानि रत्नानि–मणयः तेषां प्रभाभिः–कान्तिभिः संवलिताः–मिश्रिताः ये सूर्यकिरणाः–दिनकरांशवः तेभ्यः प्रसूताः–उत्पन्नाः ये शक्रचापाः–इन्द्रधनूंषि तेषां सहस्रेण पूरितानिव्याप्तानि दशदिशानां मुखानि–अग्रभागाः येन सः। **लूनकेतुवंशः**=लूनः–छिन्नः केतोः पताकायाः वंशः दण्डः यस्य सः एतादृशः रथः।

टिप्पणियाँ—**हे आर्याः**=हे मान्यजनो!। **अपि**=प्रश्नवाचक अव्यय है। **नाम**=सम्भावना अर्थ में प्रयुक्त है। **उद्देशे**=प्रदेश अथवा स्थान पर। **बद्धपरिकराणाम्**=कमर कसे हुये योद्धाओं का। **गाढप्रहाराहतस्य**=तीव्र प्रहारों से आहत। **घनः**=घने, अतिदृढ़। **संनाहः**=कवच। **कङ्कवदनैः**=कंक पक्षियों की चोंच से निर्मित चिमटियों से। बाणों के तीक्ष्ण अग्रभागों को निकालने के लिये निर्मित यन्त्र। **विचेष्यामि**=खोजूँगा। **संगताः**=एकत्रित हुये। **विनिहतम्**=मारे गये। **व्यसनम्**=विपत्तिको। **बहुप्रहारनिहतकायः**—

अत्यधिक प्रहारों के कारण जर्जर शरीर वाला। अकृतव्रणबन्धः=घावों पर मरहमपट्टी विना किये हुये ही। शून्यासनम्=जिसकी पीठ का आसन अश्वारोही व्यक्ति के न होने से रिक्त है। भागधेयस्य=भाग्य के। विमुखतया=विरुद्ध होने से। पर्याकुलः=व्याकुल। अक्षौहिणी=२१८७० रथों, २१८७० हाथियों, ६५६१० घोड़ों तथा १०९३५० पैदल सिपाहियों के समूह का नाम एक अक्षौहिणी सेना कहा जाता है। ऐसी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी। गाङ्गेयः=भीष्म। राजचक्रस्य=राजसमूह का। निर्भर्त्सितम्=निन्दित, तिरस्कृत। बीजम्=कारण। अवधीरितः=तिरस्कृत। संभूतः=उत्पन्न। आलवालः=आवाप-थाला—"स्यादालवालं............आवापः इत्यमरः।" जतुगृहद्यूतविषशाखिनः=लाक्षागृह, कपट-द्यूत एवं विषदान रूप वृक्ष का। दुर्योधन ने पाण्डवों को लाख के घर में कपट से प्रवेश कराके आग लगवा दी थी। जुआ में छल के साथ हराकर पाण्डवों का सब कुछ छीन लिया था तथा भोजन में विष मिलाकर खाने के लिये दिलवाया था। दुर्योधन द्वारा किये गये इन्हीं कुकृत्यों की ओर संकेत किया गया है। संवलिताः=मिश्रित। शक्रचापाः=इन्द्रधनुष। पूरितानि=व्याप्त। लूनः=छिन्नभिन्न। केतुवंशः=पताका का डण्डा। प्राकृतपुरुषः=साधारण पुरुष। अश्लाघनीयाम्=अप्रशंसनीय-अयोग्य। परिणमति=पक रहा है।

(उपसृत्य सूतं संज्ञया पृच्छति।)

सूतः—(दृष्ट्वा) अये, कथं सङ्ग्रामात्सुन्दरकः प्राप्तः ?

सुन्दरकः—(उपगम्य) जयतु जयतु महाराजः। (जअदु जअदु महाराओ।)

दुर्योधनः—(विलोक्य) अये सुन्दरक। सुन्दरक, कच्चित्कुशलमङ्गराजस्य ?

सुन्दरकः—देव ! न भग्नो रथः। अस्य मनोरथोऽपि। (देव, ण भग्गो रहो। मणोरहो वि।)

दुर्योधनः—(सरोषम्) किमविस्पष्टकथितै राकुलमपि पर्याकुलयसि मे हृदयम्। तदशेषतो विस्पष्टं कथ्यताम्।

सुन्दरकः—यद्देव आज्ञापयति । अये ! देवस्य मुकुटमणिप्रभावेणापनीता मे रणप्रहारवेदना (इति साटोपं परिक्रम्य) शृणोतु देवः । अस्तीदानीं कुमारदुःशासनवध (इत्यर्धोक्ते मुखमाच्छाद्य शङ्कां नाटयति ।) (जं देवो आणवेदि । अए देवस्स मउडमणिप्पहावेण अवणीदा मे रणप्पहारवेअणा । सुणादु देवी । अत्थि दाणीं कुमालदुस्सासणवह—) ।

सूतः—सुन्दरक ! कथय । कथमेव देवेन ।

दुर्योधनः—कथ्यताम् । श्रुतमस्माभिः ।

सुन्दरकः—शृणोतु देवः । अद्य तावत्कुमारदुःशासनवधामर्षितेन स्वामिनाङ्गराजेन कृतकुटिलभ्रुकुटीभङ्गभीषणललाटपट्टेनाविज्ञातसंधानतीक्ष्णमोक्षशिलीमुखसंघातवर्षिणाअभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवो । (सुणादु देवो । अज्ज दाव कुमालदुस्सासणवहामरिसिदेण सामिणा अङ्गराएण किदकुडिलभिउडीभङ्गभीसणलिडलवट्टेण अविण्णादसंधाणतीक्खमोक्खसिलीमुहसंघादवरिसिणा अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो ।) ।

(समीप में जाकर सारथी से संकेत (इशारे) द्वारा पूछता है ।)

सूत—(देखकर) अरे, क्या युद्धभूमि से सुन्दरक आ गया है ?

सुन्दरक—(समीप जाकर) जय हो, महाराज की जय हो ।

दुर्योधन—(देखकर) अरे सुन्दरक है । सुन्दरक ! अङ्गराज (कर्ण) कुशल से तो हैं ?

सुन्दरक—देव ! शरीरमात्र से वे सकुशल हैं ।

दुर्योधन—(घबराहट के साथ) सुन्दरक ! क्या अर्जुन के द्वारा इस (कर्ण) के घोड़े मार डाले गये अथवा सारथि मार डाला गया अथवा रथ ही तोड़ डाला गया ?

सुन्दरक—महाराज ! रथ ही नहीं तोड़ दिया गया किन्तु मनोरथ भी (तोड दिया गया) ।

दुर्योधन—(क्रोध के साथ) पहले से ही, व्याकुल मेरे हृदय को अस्पष्ट वाक्यों के द्वारा और अधिक व्याकुल क्यों बना रहे हो ? इसलिये सबकुछ स्पष्टरूप से कह डालो।

सुन्दरक—जैसी महाराज आज्ञा दे रहे हैं (वैसा ही कहूँगा) । अहा ! महाराज के मुकुट की मणि के प्रभाव से युद्ध में हुये प्रहारों की मेरी पीड़ा समाप्त हो गई। (ऐसा कहकर अभिमान के साथ घूमकर) महाराज सुनें। आज कुमार दुःशासन के वध (ऐसा आधा ही कहकर मुख को ढककर भय का अभिनय करता है) ।

सूत—सुन्दरक ! कह डालो। भाग्य ने कह ही दिया।

दुर्योधन—कहो। हमने सुन लिया है।

सुन्दरक—सुनिये महाराज। आज कुमार दुःशासन के वध से क्रोधित हुये, चढ़ाई गई टेढ़ी भौंहों की वक्रता से भयानक मस्तक वाले स्वामी अङ्गराज (कर्ण) ने, जिनके चढ़ाने और छोड़ने का पता नहीं लग पारहा था, ऐसे वाणों के समूह की वर्षा करते हुये दुराचारी उस मध्यम पाण्डव (भीम) पर आक्रमण कर दिया।

समासः—कृतकुटिलभ्रुकुटीभङ्गभीषणललाटपट्टेन—कृतः कुटिलः-वक्रः यः भ्रुकुटीभङ्गः—भ्रुकुटिवक्रता तेन भीषणम्—भयङ्करम् ललाटपट्टम्—मस्तकम् यस्य तेन। अविज्ञातसंधानतीक्ष्णमोक्षाशिलीमुखसंघातवर्षिणा= अविज्ञातम्—अलक्षितम् सन्धानम्—प्रत्यञ्चायामारोपणम्। तीक्ष्णमोक्षश्च येषां ते तादृशाः ये शिलीमुखाः—बाणाः तेषां संघातं वर्षतीति तेन।

टिप्पणियाँ—धौरेयाः=(धुरं वहन्तीति-धौरेयाः) घोड़े। अविस्पष्ट-कथितैः=स्पष्ट रूप से कहे गये हुये। पर्याकुलयसि=व्याकुल बना रहे हो। अशेषतः=सम्पूर्ण। मुकुटमणिप्रभावेण=मुकुट में लगी हुई मणि के महात्म्य अथवा प्रभाव से। मुंख के देखने मात्र से। अपनीता—दूर हो गई। साटोपम्=अभिमान के साथ। दैवेन=दैव (भाग्य) ने। अमर्षितेन= क्रोधित-क्रुद्ध। अङ्गराजेन=कर्ण ने। सन्धानम्=प्रत्यञ्चापर (वाण) का चढ़ाया जाना। शिलीमुखाः=बाण। अभियुक्तः= आक्रमण किया गया। मध्यमपाण्डवः=भीमसेन॥

उभौ—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव ! उभयबलमिलद्दीप्यमानकरितुरगपदातिसमुद्भूतधूलिनिकरेण पर्यस्तगजघटासंघातेन च विस्तीर्यमाणेनान्धकारेणान्धीकृतमुभयबलम् । न खलु गगनतलं लक्ष्यते । (तदो देव ! उहअवलमिलन्तदप्पन्तकरितुरअपदादिसमुब्भूदधूलिणि अरेण पल्लत्थगअघडासंघादेण अ वित्थरन्तेण अन्धआरेण अन्धीकिदं उहअबलम् । ण हु गगणतलं लक्खीअदि ।) ।

उभौ—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव ! दूराकृष्टधनुर्गुणाच्छोटनटङ्कारेण गम्भीर भीषणेन ज्ञायते गर्जितप्रलयजलधरेणेति । [ततो देव ! दूराकड्ढिअधणुग्गुणाच्छोडणटङ्कारेण गम्भीरभीसणेन जाणीअदि गज्जिदं पलअजलहरेण त्ति ।] ।

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव ! द्वयोरपि तयोरन्योन्यसिंहनादगर्जितपिशुनं विविधपरिमुक्तप्रहरणाहतकवचसंगलितज्वलनविद्युच्छटाभासुरं गम्भीरस्तनितचापजलधरं प्रसरच्छरधारासहस्रवर्षिजातं समरदुर्दिनम् । (तदो देव, दोहिणं वि ताणं अण्णोण्णसिंहणादगज्जिदपिसुणं विविहपरिमुक्कप्पहरणाहदकवअसंगलिदजलणविज्जुच्छडाभासुरं गम्भीरत्थणिअचापजलहरं प्पसरन्तसरधारासहस्सवस्सवरिसं जादं समरदुद्दिणम् ।) ।

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव ! एतस्मिन्नन्तरे ज्येष्ठस्य भ्रातुः पराभवशङ्किना धनञ्जयेन वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाग्रस्थितमहावानरः तुरङ्गसंवाहनव्याप्तवासुदेवशङ्खचक्रासिगदालाञ्छितचतुर्बाहुदण्डदुर्दर्शन आपूरितपाञ्चजन्यदेवदत्तताररसितप्रतिरवभरितदशदिशामुखकुहरो धावितस्तमुद्देशं रथवरः । (तदो अ देव, एदस्सिं अन्तरे जेट्ठस्स भादुणो पराभवसङ्किणा धणंजएण वज्जणिग्घादणिग्घोसवि-

समरसिदधअग्गट्ठिदमहा वारणो तुरङ्गमसंवाहणवापिदवासुदेव सङ्ख चक्कासिगदालञ्छिच उब्बाहुदण्डदुद्दंसणो आपूरिअ पञ्चजण्णदेअदत्त-ताररसिदप्पडिरवभरिददसदिसामुहकुहरो धाविदो तं उद्देसं रहवरो)।

दोनों—उसके पश्चात् (क्या हुआ ?) ।

सुन्दरक—हे महाराज ! उसके पश्चात् दोनों सेनाओं के परस्पर संघर्ष करते हुये और चमकते हुये हाथियों, घोड़ों और पैदल सिपाहिओं द्वारा उठाये गये धूलि-समूह से औरबिखरे हुए हाथियों के झुंड से बढ़ते हुये अन्धकार के द्वारा दोनों ओर की सेनायें अन्धी सी कर दी गईं । आकाश-तल (भी) दिखलाई नहीं देता था ।

दोनों-- उसके पश्चात् (क्या-हुआ ?)

सुन्दरक—देव ! इसके पश्चात् दूर तक (कान तक) खींची गई धनुष की डोरी के छोड़ने की गम्भीर तथा भयंकर टङ्कार से (ऐसा) प्रतीत होता था कि मानो प्रलयकालीन मेघ ही गरज रहा हो ।

दुर्योधन—-तदनन्तर क्या हुआ ?

सुन्दरक—महाराज, इसके पश्चात् उन दोनों का पारस्परिक सिंहनादरूपी गर्जन से सूचित होने वाला, अनेक प्रकार के छोड़े गये आयुधों से टकराये कवचों से निकलती हुयी अग्निरूपी विद्युत की चमक से प्रकाशित, धनुष की गम्भीर गर्जन रूपी मेघों वाला, युद्धरूपी दुर्दिन प्रारम्भ हुआ (अभिप्राय यह है कि दोनो में अतिभीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ ।)

दुर्योधन—उसके पश्चात् (क्या हुआ ?)

सुन्दरक—हे देव ! इसके अनन्तर-इसी बीच बड़े भाई (भीम) की पराजय की आशङ्का करने वाले धनञ्जय (अर्जुन) ने, जिसकी ध्वजा के अग्रभाग पर बज्रपात की ध्वनि के सदृश भीषण शब्द करने वाला महाकपि (हनुमान) स्थित था, जो घोड़ों को हांकने में लगे हुये वसुदेव-पुत्र (कृष्ण) के शंख, चक्र तलवार तथा गदा से लाञ्छित (सुशोभित) चारों भुजाओं से दुर्निरीक्ष्य था, जिसने बजाये गये (कृष्ण में) पाञ्चजन्य और (अर्जुन के) देवदत्त नामक

शंखों के तीव्र शब्द की प्रतिध्वनि से दशों दिशाओं के मुखरूपी गुफाओं को व्याप्त कर दिया था, इस प्रकार अपने रथ को उसी स्थल की ओर दौड़ाया (कि जहाँ भीम विद्यमान थे ।) ।

समास—उभयबलमिलद्दीप्यमानकरितुरगपदातिसमुद्भूतधूलिनिकरेण—उभयबलयोःपाण्डकौरवसेनयोः मिलद्भिः-संघर्षं कुर्वद्भिः (अतएव) दीप्यमानैः क्रुद्धैः करितुरगपदातिभिः-हस्त्यश्वपदातिभिः समुद्भूतः-उत्थापितः यः धूलिनिकरः—रजःसमूहः ; तेन । **पर्यस्तगजघटासंघातेन** = पर्यस्ताः विस्तृताः विपर्यस्ताः च याः गजघटाः—हस्तिश्रेण्यः, तासां संघातेन—समूहेन । **दूराकृष्टधनुर्गुणाच्छोटनटङ्कारेण**—दूरम्—श्रोत्रात्तम् आकृष्टं यत् धनुधनुर्गुणम्—प्रत्यञ्चा तस्य आच्छोटनम्.—आस्फालनम्, तस्य टङ्कारेण—शब्देन । **सिंहनादगर्जितपिशुनम्**—सिंहनादः सिंहवन्नादो ध्वनिः स एव गर्जित-मेघध्वनेः पिशुनः सूचकः यस्मिन् तादृशम् । **विविध परिमुक्तप्रहरणाहतकवचसंगलितज्वलनविद्युच्छटाभासुरम्**—विविधानि परिमुक्तानिप्रक्षिप्तानि यानि प्रहरणानि आयुधानि, तैः आहतम्—ताडितम्. यत् कवचं—वर्म तस्मात् सङ्गलितः—निसृतः यः ज्वलनः—अग्निः एव विद्युच्छटाः—चपलाकान्तिः, तया भासुरम्—देदीप्यमानम् । **गम्भीरस्तनितचापजलधरम्**—गम्भीरम् स्तनितम्-गर्जित यस्य तादृशः चापः धनुः एव.जलधरः—मेघः यस्मिन् यस्य वा तादृशम् । **प्रसरच्छरधारासहस्रवर्षि**—प्रसरन्तः-निस्सरन्तः, शराः—वाणाः एव धारासहस्राणि वर्षितुं शीलं यस्य तत्तादृशम् । **समरदुर्दिनम्**—समरः एव दुर्दिनम् इति । **पराभवशङ्किना** पराभवं शङ्कते इति तेन । **वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाग्रस्थितमहावानरः**—वज्रस्य-कुलिशस्य निर्घातवत् पतनशब्दवत्योनिर्घोषः रथचक्रशब्दः तद्वत् विषमं—भीषणं रसितम्—गर्जनम् यस्य तादृशः, ध्वजाग्रे स्थितः महावानरः हनुमानित्यर्थः यस्य तादृशः । पाठान्तर में—**वज्रनिर्घातनिर्घोषविसृमरह्रेषितहयः**—वज्रस्य निर्घातवत्—पतनशब्दवत् यो निर्घोषः—रथचक्रशब्दः, तेन विसृमराः—चञ्चलाः ह्रेषिताः शब्दायनानां हयाः अश्वाः यस्य तादृशः । **तुरङ्गमसंवाहनव्यापृवासुदेवशंखचक्रासिगदालाञ्छितचतुर्बाहुदण्डदुर्दर्शनेन**—तुरङ्गमाणाम्—अश्वानाम् संवाहने—सञ्चालने व्यापृतः प्रसक्तः यः वासु-

देवः-कृष्णः तस्य शङ्खचक्रगदासिभिः लाञ्छिताः-चिह्निताः ये चत्वारः बाहुदण्डाः भुजदण्डाः तैः दुर्दर्शः-दुर्निरीक्ष्यः, तेन । आपूरितपाञ्चजन्यदेवदत्ततारर-सितप्रतिरवभरितदशदिशामुखकुहरः=आपूरितौ-मुखवायुना वादितौ यौ पाञ्चजन्यदेवदत्तौ-पाञ्चजन्यदेवदत्तनामानौ कृष्णार्जुनशङ्खौ, तयोर्यत्तारं-दीर्घतरं रसितम्-ध्वनिः, तस्य यः प्रतिरवः-प्रतिध्वनिः तेन भरितानि दशदिशानां मुखानि एव कुहराणि-छिद्राणि येन तथाभूतः ।

टिप्पणियाँ—तयोः=अर्जुन तथा कर्ण के । स्तनितम्=गर्जन । दूरम्=दूर तक अर्थात् कान तक । आकृष्टम्=खींची गई हुई । आच्छोटनम्=छोड़ने की । टङ्कारेण=शब्द से । सङ्कुलितः=उत्पन्न हुआ । प्रसरन्तः=इधर उधर गमन करने वाले । दुर्दिनम्=मेघों से आच्छादित दिन "दुर्दिन" कहलाता है—"मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्"—इत्यामरः । व्यापृताः=संलग्न । लाञ्छिताः=चिह्नित । चतुर्बाहुदण्डाः=चारभुजाओं से युक्त—भक्त से प्रेम रखने वाले भगवान् कृष्ण चार भुजाओं से युक्त होकर अर्जुन के रथ का संचालन कर रहे थे । पाञ्चजन्यदेवदत्तौ=श्री कृष्ण के शङ्ख का नाम पाञ्चजन्य तथा अर्जुन के शंख का नाम देवदत्त था—'शङ्खो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यः" इत्यमरः, देवदत्तोऽर्जुनशङ्खः" । ताररसितस्य=तार अर्थात् उच्चस्वर से ध्वनित । उद्देशम्=स्थान को । धावितः=अति वेग के साथ चलने में प्रेरित हुआ ॥

दुर्योधनः—ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततो भीमसेनधनञ्जयाभ्यामभियुक्तं पितरं प्रेक्ष्य ससंभ्रमं विगलितमवधूय रत्नशीर्षकमाकर्णाकृष्टकठिनकोदण्डजीवः दक्षिणहस्तोत्क्षिप्तशरपुङ्खविघट्टनत्वरायितसारथिकस्तं देशमुपनतः कुमारवृषसेनः । [तदो भीमसेणधणंजएहिं अभिजुत्तं पिदरं पेक्खिअ ससंभमं विअलिअं, अवधूणिअ रुअणसीसअं आकण्णाकड्ढिदकठिणकोदण्डजीओ दाहिणहत्थुक्खित्तसरपुङ्खविघट्टणतुवराइदसारहीओ तं देसं उवगदो कुमालविससेणो] ।

दुर्योधनः—[सावष्टम्भम्] ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततश्च देव तेनागच्छतैव कुमारवृषसेनेन विदलितासिलताश्यामलस्निग्धपुङ्खैः कठिनकङ्कपत्रैः कृष्णवर्णैः शाणशिलानिशितश्यामलशल्यबन्धैः कुसुमित इव तरुर्मुहूर्तेन शिलीमुखैः प्रच्छादितो धनञ्जयस्य रथवरः। (तदो अदेव, तेण आअच्छन्तेण एव्व कुमालविससेणेण विदलिदासिलदासामलसिणिद्धपुङ्खेहिं कठिणकङ्कवत्तेहिं किसणवण्णेहिं साणसिलाणिसिदसामलसल्लबन्धेहिं कुसुमिदो विअ तरु मुहूत्तएण सिलीमुहेहिं पच्छादिदो धणञ्जअस्स रहवरो।)।

दुर्योधन—तदन्तर क्या हुआ ?

सुन्दरक—तत्पश्चात् भीमसेन तथा धनंजय (अर्जुन) द्वारा अपने पिता (कर्ण) को आक्रान्त देखकर शीघ्रता के कारण (शिर से) गिरे हुए रत्नजटित मुकुट की उपेक्षा करके कठोर धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) को कान तक खींचते हुए और दाहिने हाथ से निकाले हुए बाण के पिछले भाग के द्वारा खोदकर (उकसाकर) सारथि को शीघ्रता करने के लिए प्रेरित करता हुआ कुमार वृषसेन भी उस स्थान पर आ पहुँचा।

दुर्योधन—(सँभलकर) उसके पश्चात् क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव ! तब कुमार वृषसेन आते ही टूटी हुई तलवार के समान श्याम (कृष्ण) तथा चिकनी पूँछ वाले, कठोर कङ्कपक्षवाले, कालेवर्णवाले; कृष्णवर्ण के शान नामक पत्थर पर तेज किये गये श्यामल (फलक) धार वाले बाणों से, क्षणभर में, अर्जुन के रथ को (इस भाँति) ढक दिया, मानों फूलों से लदा हुआ वृक्ष ही हो।

समास—आकर्णाकृष्टकठिनकोदण्डजीवः=आकर्णम्, श्रोत्रपर्यन्तम् आकृष्टा-आकृष्य नीता कठिनस्य कोदण्डस्य-धनुषः जीवा-प्रत्यञ्चा येन सः। दक्षिणहस्तोत्क्षिप्तशरपुङ्खविघट्टनत्वरायितसारथिकः=दक्षिणहस्तेन उत्क्षिप्तः-तूणीरान्निष्कासितः यः शरः-बाणः, तस्य यः पुङ्खः-बाणमूलभागस्तेन यद्विघट्टनं-स्पर्शः तेन त्वरायितः-त्वरां कारितः सारथिः येन तथाभूतः।

विदलितासिलताश्यामलस्निग्धपुङ्खैः-विदलिता-निशिता खण्डिता वा या असिलताखड्गलता तद्वत् श्यामलाः-कृष्णाः स्निग्धाः-मसृणाश्च पुङ्खाः-बाणमूलानि येषां तैः। कठिनकङ्कपत्रैः-कठिनानि कठोराणि कङ्कपत्राणि-कङ्कनामकपक्षिपत्राणि येषां तैः। शाणशिलानिशितश्यामलशल्यबन्धैः शाणशिलायां निकषपाषाणे निशिताः-अतितीक्ष्णतां नीताः अतएव श्यामलाः श्यामवर्णाः शल्यबन्धाः बाणाग्रफलकानि येषां तैः।

टिप्पणियाँ—अभियुक्तम्=आक्रान्त। पितरम्=कर्ण को। विगलितम्=शीघ्रता के साथ गिरा हुआ। अवधूय=छोड़कर। रत्नशीर्षकम्=रत्नखचित् मुकुट। श्यामलाः=कुछ-कुछ कृष्णवर्ण वाले। पुङ्खाः=बाण के मूल भाग। उत्क्षिप्तः=तूणीर से निकाले गये हुए। वृषसेनः=कर्ण का पुत्र। सावष्टम्भम्=धैर्य के साथ। विदलिता=तीक्ष्ण अथवा खण्डित। कठिनानि=सुदृढ़। शाणशिलायाम्=सान रखने वाली शिला पर। शिलीमुखैः=बाणों से—"शिलीमुखौ बाणभृङ्गौ" इत्यमरः। प्रच्छादितः=ढक दिया।

विशेष—कङ्कपत्रैः=कङ्क नाम का एक पक्षी होता है, इसके पंख अत्यन्त दृढ़ हुआ होते हैं। बाणों के मूल भागों में इसे ही लगाने की प्रथा थी।

उभौ—[सहर्षम्] ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव! तीक्ष्णविक्षिप्तनिशितभल्लबाणवर्षिणा धनञ्जयेनेषद्विहस्यभणितम्-अरे रे वृषसेन! पितुरपि तावत्ते न युक्तं मम कुपितस्याभिमुखं स्थातुम्। किं पुनर्भवतो बालस्य। तद् गच्छ। अपरैः कुमारैः सहायुध्यस्वेति। एवं वाचं निशम्य गुरुजनाधिक्षेपेणोद्दीपितकोपोपरक्तमुखमण्डलविजृम्भितभ्रकुटीभङ्गभीषणेनचापधारिणा कुमारवृषसेनेनापि मर्मभेदकैः परुषविषमैः श्रुतपथकृतप्रणयैर्निर्भर्त्सितो गाण्डीवी बाणैर्न पुनर्दुष्टवचनैः। (तदो देव तिक्खविक्खित्तणिसिदभल्लबाणवरिसिणा धणंजएण ईसि विहसिअभणिदम्-अरे रे विससेण, पिदुणो वि दाव दे ण जुत्तं मह कुविदस्स अभिमुहं ठादुम्। किं उण भवदो बालस्स

ता गच्छ। अवरेहिं कुमोरहिं सह आओधेहित्ति। एव्वं वाअं णिसमिअ गुरुअणाहिक्खेवेण उद्दीविअकोवोपरत्तमुहमण्डलविअम्भिअभिउडी-भङ्गभीसणेण चावधारिणा कुमालविसेसणवि मम्मभेदएहिं परुस-विसमेहिं सुदिवहकिदप्पणएहिं णिब्भच्छिदो गण्डीवी बाणेहिं ण उण दुट्ठवअणेहिं।)

दुर्योधनः—साधु, वृषसेन, साधु। सुन्दरक, ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव, निशितशराभिघातवेदनोपजातमन्युना किरीटिना चण्डगाण्डीवजीवाशब्दनिर्जितवज्रनिर्घातघोषेण बाण-निपतनप्रतिषिद्धदर्शनप्रसरेण प्रस्तुतं शिक्षाबलानुरूपं किमप्याश्चर्यम्। (तदो देव, णिसिदसराभिघादवेअणोपजादमण्णुणाः किरीटिणा चण्डगण्डीवजीआसद्दणीज्जिदवज्जणिग्घादघोसेण बाणणिपडणपडि-सिद्धदंसणप्पसरेण पत्थुदं सिक्खाबलाणुरुवं किं वि अच्चरिअम्।)

दुर्योधनः—(साकूतम्) ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तत्तादृशं प्रेक्ष्य शत्रोः समरव्यापारचतु-रत्वमविभाविततूणीरमुखधनुर्गुणागमनागमनसरसन्धानमोक्षचटुलकर-तलेन कुमारवृषसेनेनापि सविशेषं प्रस्तुतं समरकर्म। (तदो अ देव; तं तारिसं पेक्खिअ सत्तुणो समरव्वावारचडवत्तणं अविभाविअ-तूणीरमुहधणुग्गुणगमणागमणसरसंधाणमोक्खचडुलकरअलेण कुमाल-विससेणेण वि सविसेसं पत्थुदं समलकम्म।)

दोनों—(बड़े हर्ष के साथ) उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—महाराज ! इसके अनन्तर तेजी के साथ फेंके गये हुए तीक्ष्ण अथवा पैने फलकवाले बाणों की वर्षा करने वाले अर्जुन ने मुस्कुराते हुए कहा—अरे रे वृषसेन, मुझ क्रुद्ध के समक्ष तुम्हारे पिता को भी खड़ा होना उचित नहीं है, फिर तुम बालक का तो कहना ही क्या ? अतः जाओ अन्य कुमारों के साथ युद्ध करो। इस प्रकार के वचनों को सुनकर (अपने) पिता की निन्दा के कारण भड़के हुए क्रोध से लाल मुख-मण्डल पर बढ़ी हुई भौंह की कुटिलता से भीषण, धनुर्धारी कुमार वृषसेन ने

भी मर्मभेदी, कठोर एवं तीक्ष्ण तथा श्रवण-पथ से प्रेम करने वाले (अर्थात् कान तक खींचे गये) बाणों से अर्जुन को निरादृत किया, न कि तीखे वचनों से (कहने का तात्पर्य यह है कि वृषसेन ने अर्जुन के तीक्ष्ण वचनों का उत्तर तीक्ष्ण वचनों द्वारा न देकर तीक्ष्ण बाणों से दिया ।)

दुर्योधन–शाबाश ! वृषसेन ! शाबाश, सुन्दरक, उसके बाद, उसके बाद ?

सुन्दरक—देव ! उसके पश्चात् तीक्ष्ण बाणों के प्रहार की पीड़ा से उत्पन्न क्रोधवाले, भयंकर गाण्डीव नामक (अपने) धनुष की प्रत्यञ्चा की ध्वनि से विद्युत के कड़क के शब्द को जीत लेने वाले तथा बाणों की बौछारों से दृष्टि को अवरुद्ध कर देने वाले अर्जुन ने (अपनी) शिक्षा एवं पराक्रम के अनुरूप कुछ आश्चर्यजनक कर्म प्रस्तुत किया ।

दुर्योधन—(विशिष्टअभिप्राय के साथ) उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ।

सुन्दरक—देव ! उसके अनन्तर शत्रु के युद्ध-कर्म में ऐसे चातुर्य को देखकर कुमार वृषसेन ने भी, कि जिसका हाथ तरकस के मुख (अग्रभाग) तथा धनुष की प्रत्यञ्चा तक आने-जाने, बाण चढ़ाने और छोड़ने में इतना फुर्तीला था कि (ये) क्रियायें दृष्टिगोचर ही नहीं हो पाती थीं, और अधिक पराक्रम (युद्ध-कौशल) दिखलाया ।

समास—**तीक्ष्णविक्षिप्तनिशितभल्लबाणवर्षिणा**—तीक्ष्णं यथा तथा विक्षिप्ताः-संचालिताः निशिताः-तीक्ष्णाः भल्लाः-फलकाः ये बाणाः, तान् वर्षितुं शीलं यस्य तेन । **गुरुजनाधिक्षेपेण**—गुरुजनस्य-श्रेष्ठजनस्य पितुरित्यर्थः अधिक्षेपेणनिन्दः । **उद्दीपितकोपोपरक्तमुखमण्डलविजृम्भितभ्रकुटीभङ्ग-भीषणेन**—उद्दीपितः वृद्धि प्राप्तः य, कोपः क्रोधः तेन उपरक्त-रक्तम् यत् मुखमण्डलं, तेन विजृम्भितः यः भ्रकुटिभङ्गः तेन भीषणः, तेन । **निशितशराभिघातवेदनोपजातमन्युना**—निशिताः—तीक्ष्णाः ये शराः तेषां अभिघातेन-प्रहारेण जातः उत्पन्नः मन्युः क्रोधः यस्य तेन । **चण्डगाण्डीवजीवाशब्द-निर्जितवज्रनिर्घातघोषेण**—चण्डः-भीषणः यः गाण्डीवः-अर्जुनधनुः तस्य जीवा-प्रत्यञ्चा तस्याः शब्देन निर्जितः-तिरस्कृतः वज्रनिर्घातस्य वज्रपातस्य घोषः शब्दः येन तादृशेन । **बाणनिपतनप्रतिषिद्धदर्शनप्रसरेण**—बाणानां

निपतनम्-प्रक्षेपः तेन प्रतिषिद्धः दर्शनप्रसरः दृष्टिशक्तिः येन तादृशेन। समरव्यापारचतुरत्वम्=समरस्य व्यापारे-कार्ये चतुरत्वम्-कौशलम्। अविभाविततूणीरमुखधनुर्गुणगमनागमनशरसंधानमोक्षचटुलकरतलेन= अविभावितानि-अलक्षितानि-अविदितानि यानि तूणीरमुखधनुर्गुणयोः गमनागमनानि च शरसन्धानं मोक्षश्च तेषु चटुलम्-चञ्चलम्, करतलं यस्य, तेन।

टिप्पणियाँ—भल्लाः=बाणों के फलक (अग्रभाग)। धनञ्जयेन=अर्जुन ने। गुरुजनाधिक्षेपेण=गुरुजन अर्थात् अपने पिता की निन्दा से। विजृम्भितः=प्रकट हुए। अभिघातेन=प्रहार से। गाण्डीवः=अर्जुन का धनुष। जीवा=प्रत्यञ्चा। वज्रनिर्घातः=वज्रपात। दर्शनप्रसरः=दृष्टि के प्रसार को। समरव्यापारचतुरत्वम्=युद्ध के कार्य में कौशल (चातुर्य) को अविभावितम्=अप्रकटित-अविदित। चटुलम्=चञ्चल। कहने का अभिप्राय यह है कि बाणों का संचालन करने में भी जिसके हाथ का लाघव (फुर्ती) अद्‌भुत था।

दुर्योधनः—ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव! अत्रान्तरे विमुक्तसमरव्यापारो मुहूर्तविश्रमितवैरानुबन्धो द्वयोरपि कुरुराजपाण्डवबलयो 'साधु कुमारवृषसेन, साधु' इति कृतकलकलो वीरलोकोऽवलोकयितुं प्रवृत्तः। (तदो देव, एत्थन्तरे विमुक्कसमरव्वावारो मुहुत्तविस्समिदवेराणुबन्धो दोण्णं बि कुरुराअपण्डवबलाणं साहु कुमालविससेण साहु त्ति किदकलअलो वीरलअलो वीरलोओ अवलोइदुं पउत्तो।)

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) ततस्ततः।

सुन्दरक—ततश्च देव! अवधीरितसकलधानुष्कचक्रपराक्रमशालिनः सुतस्य तथाविधेन समरकर्मारम्भेण हर्षरोषकरुणासंकटे वर्तमानस्य स्वामिनोऽङ्गराजस्य निपतिता शरपद्धतिर्भीमसेने बाष्पपर्याकुला दृष्टिः कुमारवृषसेने। (तदो अ देव, अवहीरिदसअलधाणुक्कचक्कपराक्कमसालिणो सुदस्स तहाविहेण समलकम्मा-

लम्भेण हरिसरोसकरुणासंकडे वट्टमाणस्य सामिणो अङ्गराअस्स णिवडिआ सरपद्धइ भीमसेणे बाष्पपज्जाउला दिट्ठी कुमाल-विससेणे ।) ।

दुर्योधनः—(सभयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव ! उभयबलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन शरवर्षप्रज्ज्वलितेन गाण्डीविना तुरगेषु सारथावपि रथवरे धनुष्यपि जीवायामपि नरेन्द्रलाञ्छने सितातपत्रेऽपि च व्यापारितः समं शिलीमुखासारः । (तदो अ देव, उभअबलप्पउत्तसाहुकारामरिसिदेण-सरवरिसपज्जलिदेन गण्डीविणा तुरगेसु सारहिं पि रहवरे धणुं पि जीआइं पि णलिन्दलञ्छणे सिदादवत्ते वि व्यावारिदो समं सिलीमुहासारो ।)

दुर्योधन—इसके पश्चात् ।

सुन्दरक— देव ! तत्र इसी बीच युद्धकार्य त्यागकर; क्षणभर के लिये वैर-भाव को शान्तकर कौरव तथा पाण्डव सेनाओं के वीर-जन "शाबाश; कुमार वृषसेन, शाबाश" इस प्रकार की तुमुल-ध्वनि करते हुये (उन दोनों के युद्ध-कौशल को) देखने में प्रवृत्त हुये ।

दुर्योधन— (आश्चर्य के साथ) इसके पश्चात् ।

सुन्दरक—देव ! तत्पश्चात् सम्पूर्ण धनुर्धारियों के समूह को तिरस्कृत करने वाले पराक्रमशाली (अपने) पुत्र के इस प्रकार के युद्ध सम्बन्धी कार्य के प्रारम्भ से हर्ष, क्रोध एवं करुणा के सङ्गम में पड़े हुये स्वामी अङ्गराज (कर्ण) के बाणों की पंक्ति भीमसेन पर और अश्रुधारा से परिपूर्ण दृष्टि कुमार वृषसेन पर पड़ी ।

दुर्योधन—(भय के साथ) इसके पश्चात् ।

सुन्दरक—देव ! तत्पश्चात् दोनों ओर की सेनाओं द्वारा की गयी (वृष-सेन की प्रशंसा से क्रुद्ध तथा बाणों की वर्षा से उत्तेजित हुये अर्जुनने (वृषसेन के) घोड़ों पर, सारथि पर, श्रेष्ठ रथ पर, धनुष पर प्रत्यञ्चा पर तथा राज-चिह्न श्वेत-छत्र पर एक साथ ही बाणों की वृष्टि की ।

समास—विमुक्तसमरव्यापारः=विमुक्तः परित्यक्तः समरस्य व्यापारः येनः सः। मुहूर्तविश्रमितवैरानुबन्धः=मुहूर्तं विश्रमितः—शिथिलीकृतः वैरानुबन्धः—शत्रुभावः येन सः। अवधीरितसकलधानुष्कचक्रपराक्रमशालिनः=अवधीरितम्—पराक्रमेण तिरस्कृतम् निखिलम् धानुष्कचक्रम्—धनुर्धारिणां समूहः येन सः चासौ पराक्रमशाली, तस्य। उभयबलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन=उभयाभ्यां बलाभ्यां—सेनाभ्यां प्रवृत्तः—उक्तः यः साधुकारः—साधुवादः तेन अमर्षितः—क्रुद्धः; तेन। शरवर्षप्रज्ज्वलितेन=वृषसेनकृतशराणां वर्षैः प्रज्ज्वलितेन—दीप्तेन। नरेन्द्रलाञ्छने=नरेन्द्रस्य लाञ्छने—चिह्ने।

टिप्पणियां—हर्षरोषकरुणासंकटे=हर्ष, क्रोध और करुणा के मिश्रण में। अपने पुत्र (वृषसेन) के पराक्रम को देखने से उत्पन्न हुये हर्ष से। शत्रु के पराक्रम का दर्शन करने से उत्पन्न क्रोध से। बालक वृषसेन का महाबलशाली अर्जुन के साथ युद्ध देखकर उत्पन्न हुई करुणा से। इस भांति यहां पर तीन प्रकार के भावों के उद्रेक से तीन प्रकार के रसों के मिश्रण में। धानुष्कः=धनुर्धर। पद्धतिः=पंक्ति साधुकारः=साधुवाद। अमर्षितः=क्रोधित। जीवायाम्=प्रत्यञ्चा में। "मौर्वी जीवा गुणो गव्या" इति हैमः। नरेन्द्रलाञ्छने=राजचिह्न। पुरातन काल में राजा लोग श्वेतवर्ण के छत्र को धारण किया करते थे जो कमल के आकार का हुआ करता था। इस छत्ररूप चिह्न को देखकर लोग यह समझ जाया करते थे कि यह राजा है। समम्=एक साथ ही।

दुर्योधनः—(सभयम्) ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव, विरथो लूनगुणकोदण्डः परिभ्रमणव्यापारमात्रप्रतिषिद्धशरसंपातो मण्डलैर्विचरितुं प्रवृत्तः कुमारः। (तदो देव विरहो लूणगुणकोदण्डः परिब्भमणव्वावारमेत्तप्पडिसिद्धसरसंपादो मण्डलेसिंह विअरिदुं पउत्तो कुमालो।)।

दुर्योधनः—(साशङ्कम्) ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव सुतरथविध्वंसनामर्षोद्दीपितेन स्वामिनांगराजेनागणितभीमसेनाभियोगेन परिमुक्तो धनञ्जयस्योपरि शिली-

मुखासारः। कुमारोऽपि परिजनोपनीतमन्यं रथमारुह्य पुनरपि प्रवृत्तो धनंजयेन सहायोद्धम्। [तदो देव, सुतरहविद्धंसणामरिसुद्दीविदेण सामिणा अङ्गराएण अडाणिअभीमसेणाभीजोएण परिमुक्को धणंजअस्स उवरि सिलीमुहासारो कुमालो वि परिजणोवणोदं अण्णं रहं आरुहिअ पुणोवि पउत्तो धणंजएण सह आओधेदुम्।

उभौ--साधु, वृषसेन! साधु। ततस्ततः।

सुन्दरकः--ततो देव! भणितं च कुमारेण--'रे रे ताताधिक्षेपमुखर मध्यमपाण्डवं, ममशरास्तव शरीरमुज्झित्वान्यस्मिन्न निपतन्ति' इति भणित्वा शरसहस्त्रैः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य सिंहनादेन गर्जितुं प्रवृत्तः। (भणिदं च कुमालेण रेरे तादाहिवखेवमुहल मज्झमपण्डव, मह सरा तुह सरीरं उज्झिअ अण्णसंसिह ण णिवडन्ति, त्ति भणिअ सर सहस्सेहिं पण्डवसरीरं पच्छादिअ सिंहणादेण गज्जिदुं पऊत्तो)।

दुर्योधनः--(सविस्मयम्) अहो बालस्य पराक्रमो मुग्धस्वभावोऽपि। ततस्ततः।

सुन्दरकः--ततश्च देव, तं शरसंपातं समवधूय निशितशराभिघातजातमन्यु ना किरीटिना गृहीता रथोत्सङ्गात्क्वणत्कनककिङ्किणीजालझङ्कारविराविणी मेघोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मला निशितश्यामलस्निग्धमुखी विविधरत्नप्रभाभासुरभीषणरमणीयदर्शना शक्तिः सोपहासं विमुक्ता च कुमाराभिमुखी। (तदो अ देव, तं सरसपादं समवधूणिअ णिसिदसराभिघादजादमण्णुणा किरीटिणा गहिदा रहुच्छङ्गादो क्वणन्तकणअकिङ्किणीजालझङ्कारविराइणी मेहोवरोहविमुक्कणहत्थलणिम्मला णिसिदसामलसिणिद्धमुही विविहरअणप्पहाभासुरभीसणरमणिज्जदंसणा सत्ती सोवहासं विमुक्का अ कुमालाहिमुही।)।

दुर्योधन--(भयपूर्वक) उसके पश्चात् (क्या हुआ ?)

सुन्दरक—देव ! तब रथहीन, कटी हुई डोरी तथा धनुषवाला और चक्कर काटने मात्र से (पैंतराबदलने मात्र से) बाण-वृष्टि को बचाता हुआ कुमार वृषसेन मण्डल बनाकर घूमने लगा।

दुर्योधन—(आशङ्का के साथ) उसके पश्चात्, उसके पश्चात्।

सुन्दरक—देव ! तब पुत्र के रथ को नष्ट किये जाने से क्रोधित, स्वामी अङ्गराज (कर्ण) ने, भीमसेन के आक्रमण की चिन्ता न करते हुए, धनञ्जय (अर्जुन) के ऊपर बाणों की वर्षा की। कुमार (वृषसेन) भी सेवकों द्वारा लाये गये दूसरे रथ पर सवार होकर फिर से अर्जुन के साथ युद्ध करने लगा।

दोनों—वाह, वृषसेन, वाह। उसके पश्चात्—

सुन्दरक—देव ! तब कुमार ने कहा—"रे रे मेरे पिता की निन्दा करने में वाचाल मझले पाण्डव, मेरे बाण तुम्हारे शरीर को छोड़कर (किसी) अन्य के (शरीर) पर नहीं पड़ रहे हैं।" ऐसा कहकर हजार बाणों से पाण्डव (अर्जुन) के शरीर को ढककर के सिंहनाद साथ गरजने में प्रवृत्त हुआ (अर्थात् सिंहनाद करने लगा।)।

दुर्योधन—(आश्चर्य के साथ) बालक का पराक्रम तथा भोलापन भी आश्चर्यजनक है। उसके अनन्तर।

सुन्दक— देव ! तब उस बाण-प्रहार को उड़ाकर (अर्थात् रोककर) तीक्ष्ण बाणों के लगने से क्रोधित अर्जुन ने रथ के मध्यभाग से शब्द करती हुयी सुवर्णनिर्मित घण्टियों के समूह की झंकार से शब्दायमान, मेघों के आच्छादन से रहित आकाशतल के सदृश निर्मल, तीक्ष्ण, श्यामवर्ण एवं चिकने मुख वाली, अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति से चमचमाती हुई तथा भीषण एवं सुन्दर दृष्टिगोचर होने वाली एक शक्ति (एक प्रकार का अस्त्र) उठाई और हँसकर कुमार (वृषसेन) की ओर छोड़ दी।

समास—लूनगुणकोदण्डः=लूनः-छिन्नः गुणः-प्रत्यञ्चा कोदण्डं च-धनुषश्च यस्य सः। परिभ्रमणव्यापारमात्रप्रतिषिद्धशरसंपातः=परिभ्रमणव्यापार एव परिभ्रमणव्यापारमात्रं तेन प्रतिषिद्धः—निवारितः, शरसंपातः

येन सः। **सुतरथविध्वंसनामर्षोद्दीपितेन**--सुतस्य-कुमारवृषसेनस्येत्यर्थः, रथस्य विध्वंसनम्-भंजनम् तेन यः अमर्ष-क्रोधः, तेन उद्दीपितेन। **अगणितभीमसेनाभियोगेन**=अगणितः भीमसेनस्य अभियोगः आक्रमणम् येन-तथाभूतेन। **शिलीमुखासारः**=शिलीमुखानां-बाणानां आसारः वृष्टिः। **तताधिक्षेपमुखरः**=तातस्य-पितुः (कर्णस्य) अधिक्षेपे-निन्दायां मुखरः वाचालः, तत्सम्बुद्धौ। **निशितशराभिघातजातमन्युना**=निशिताः--तीक्ष्णाः ये शराः बाणाः तेषां अभिघातेन-प्रहारेण जातः मन्युः यस्य तेन। **क्वणत्कनककिंकिणीजालझंकारविराविणी**--क्वणन्ति-शब्दायमानानि यानि कनककिङ्किणीजालानि-सौवर्णक्षुद्रघण्टिकाजालानि तेषां झंकारेण विराविणी-शब्दायमाना। **मेघोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मला**=मेघोपरोधेन-मेघावरणेन विमुक्तं रहितं यन्नभस्तलम्-गगनतलं तद्वन्निर्मला-स्वच्छा। **निशितश्यामलस्निग्धमुखी**=निशितम्-तीक्ष्णम्, स्निग्ध-चिक्कणम्, मुखम्-अग्रभागः यस्याः सा। **विविधरत्नप्रभाभासुरभीषणरमणीयदर्शना**=विविधानां-अनेकवर्णानां रत्नानां प्रभाभिः-कान्तिभिः, भासुरा-प्रकाशमाना चासौ भीषणं रमणीयं च दर्शनं यस्याः सा तादृशी।

टिप्पणियाँ—**विरथः**=विध्वस्त हो गया है रथ जिसका। **लूनः**=छिन्नभिन्न हो गया है। **कोदण्डः**=धनुष। **शरसम्पातः**=बाण-वृष्टि। **अमर्षः**=क्रोध। **अभियोगेन**=आक्रमण से। **आसारः**=वर्षा-बौछार। **परिजनोपनीतम्**=सेवकादि द्वारा लाये गये हुए। **आयोधितुम्**=युद्ध करने के लिए। **उभौ**=दुर्योधन और सारथी। **तताधिक्षेपमुखर**=मेरे पिता (कर्ण) के निन्दा करने में मुखरित (वाचाल)। **उज्झित्वा**=त्याग कर। **प्रच्छाद्य**=ढककर, आच्छादित करके। **रथोत्संगात्**=रथ की गोद अर्थात् मध्यभाग से। **विराविणी**=शब्द करती हुई। **उपरोधः**=ढक लेना। **भासुरा**=चमचमाती हुई। **कुमाराभिमुखी**=कुमार (वृषसेन) की ओर।

दुर्योधनः--(सविषादम्) अहह ! ततस्ततः ?

सुन्दरकः--ततश्च देव ! प्रज्वलन्तीं शक्तिं प्रेक्ष्य विगलितमंगराजस्य हस्तात्सशरं धनुर्हृदयाद्वीरसुलभ उत्साहो नयनाद्बाष्पसलिलं

वदनाद्गसितं। हसितम् च धनंजयेन, सिंहनादं विनादितं वृकोदरेण, दुष्करं दुष्करमित्याक्रन्दितं कुरुबलेन। (ततो अ देव, पज्जलन्ती शत्ति पेक्खिअ विअलिअं अङ्गराअस्स हत्थादो ससरं धणु, हिअआदो वीरसुलहो उच्छाहो, णअणादो बाप्पसलिलं, वअणादो रसिदं। हसिदं अ धणंजएण, सिंहणादं विणादिदं वि ओदलेण, दुक्कलं दुक्कलं त्ति आक्कन्दिदं, कुरुबलेण।)।

दुर्योधनः—(सविषादम्) ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततो देव ! कुमारवृषसेनेनाकर्णकृष्टनिशितक्षुरप्रं चिरं निध्यायार्धपथ एव भागीरथीव भगवता विषमलोचनेन त्रिधा कृता शक्तिः। (तदो देव, कुमालविससेणेण आकण्णाकिट्ठणिसिदखुरप्पेहि चिरं णिज्झाइअ अद्धपहे एव्व भाईरही विअ भवअदा विसमलोअणेण तिधा किदा सत्ती।)।

दुर्योधनः— साधु, वृषसेन, साधु। ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततश्च देव ! एतस्मिन्नन्तरे कृतकलकलमुखरेण वीरलोकसाधुवादेनान्तरितः समरतूर्यरवः। सिद्धचारणगणविमुक्त-कुसुमप्रकरेण प्रच्छादितं समराङ्गणम्। (तदो अ देव, एदस्सि अन्तले किदकलकलमुहरेण वीरलोअसाहुवादेण अन्तरिदो समरतूररवो। सिद्धचालणगणविमुक्ककुसुमप्पअरेण पच्छादिदं समलाङ्गणम्।)।

दुर्योधनः— अहो बालस्य पराक्रमः। ततस्ततः ?

सुन्दरकः— ततश्च देव ! भणितं स्वामिनाङ्गराजेन—'भो वृकोदर ! असमाप्तव ममापि समरव्यापारः। तदनुमन्यस्व मां मुहूर्तम्। प्रेक्षावहे तावद्वत्सस्य तव भ्रातुश्च धनुर्वेदशिक्षानिपुणत्वम्। तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम्—इति। (तदो अ देव, भणिदं सामिणा अङ्गराण—भो विकोदल असमत्तो तुह मह वि समलव्वावारोता अणुमण्ण मं मुहुत्तअम। पेक्खामहे दाव वस्सस्स तुह भादुणो अणुव्वेदसिक्खानिउणत्तणम्। तुह वि एदं पेक्खणिज्जं त्ति।)।

दुर्योधन—(दुःख के साथ) अहह, उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—हे देव ! उसके अनन्तर जलती हुई शक्ति को देखकर अङ्गराज (कर्ण) के हाथ से बाण चढ़ा धनुष तथा हृदय से वीर-सुलभ उत्साह एवं आँखों से आँसू तथा मुख से चीत्कार निकाल पड़ा अर्जुन हँसा, भीम ने सिंहनाद किया तथा कौरवों की सेना ने—'बुरा हुआ, बुरा हुआ' यह कहकर करुण-क्रन्दन किया।

दुर्योधन—(विषाद (दुःख) के साथ) उसके पश्चात्, उसके पश्चात्।

सुन्दरक—देव, तब कुमार वृषसेन ने देर तक लक्ष्य को साधकर कान तक खींचे गये तीक्ष्ण क्षुरप्र नामक बाणों से मध्य-मार्ग में ही शक्ति को (उसी भाँति) तीन भागों में विभक्त कर दिया कि जिस भाँति भगवान् शिव ने गङ्गा को (मध्यमार्ग में ही) तीन भागों में विभक्त कर दिया था।

दुर्योधन— शाबाश, वृषसेन, शाबाश। उसके पश्चात् (क्या हुआ ?)

सुन्दरक—देव ! तदनन्तर इसी बीच कल-कल ध्वनि से बढ़े हुये, वीरजनों द्वारा प्रदत्त शाबाशी (वाह-वाही) के शब्द से युद्ध के नगाड़ों का शब्द भी छिप गया। सिद्ध तथा चारणों द्वारा बरसाये गये पुष्पसमूह से युद्ध-भूमि ढक गई।

दुर्योधन—ओह ! बालक का पराक्रम अति अद्भुत था। उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—देव ! तदनन्तर स्वामी अंगराज (कर्ण) ने कहा— 'हे भीम ! मेरा तथा तेरा युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है। तो मुझे क्षण भर के लिये अनुमति दो। (हम दोनों भी) इस समय वत्स (वृषसेन) तथा आपके भाई (अर्जुन) के धनुर्विद्या सम्बन्धी चातुर्य को देखें। तुम्हारे लिये भी यह दर्शनीय है।

समास—आकर्णकृष्टनिशितक्षुरप्रैः=आकर्णं कृष्टाः निशिताः-तीक्ष्णाः ये क्षुरप्राः-क्षुरप्रबाणाः, तैं,।

टिप्पणियां—क्षुरप्रः=बाण का एक भेद (खुरपा बाण)। विषमलोचनेन=शिव ने। शक्तिः=विशिष्ट आयुध-अस्त्र भागीरथीव=गंगा के समान। स्वर्ग अत्यधिक तीव्र गति के साथ आती हुई गङ्गा को शिव ने अपने सिर पर

रोककर तीन मार्गों में विभक्त कर दिया था । इन तीन में एक तो इस पृथ्वीतल पर प्रवाहित होने वाली गङ्गा 'भागीरथी' है । दूसरी आकाश गंगा-'मन्दाकिनी' हैं । और तीसरी गङ्गा शिव की जटाओं मे भ्रान्त हैं ।

दुर्योधनः—ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततो देव ! विश्रमितायोधनव्यापारौ मुहूर्तविश्रमितनिजवैरानुबन्धौ द्वावपि प्रेक्षकौ जातौ भीमसेनांगराजौ । (ततो देव; विस्समिदाओधनव्वावारा मुहुत्तविस्समिदणिअवेराणुबन्धा दुवे वि पेक्खआ जादा भीमसेणांगराआ ।) ।

दुर्योधनः—(साभिप्रायम्) ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे शक्तिखण्डनामर्षितेन गाण्डीविना भणितम्—'अरे रे दुर्योधनप्रमुखाः—(इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयति) (तदो अ देव एदस्सिं अन्तरे सत्तिखण्डणामरिसिदेण गाण्डीविणा भणिअम्—अरे रे दुज्जोहणप्पमुहा—) ।

दुर्योधनः—सुन्दरक ! कथ्यताम् । परवचनमेतत् ।

सुन्दरकः—शृणोतु देवः । 'अरे दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभवः, अरे अविनयनौकर्णधार कर्ण युष्माभिर्मम परोक्षं बहुभिर्महारथैः परिवृत्यैकाकी मम पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः । अहं पुनर्युष्माक प्रेक्षमाणानामेवैतं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यशेषं करोमि' इति भणित्वा सगर्वमास्फालितमनेन वज्रनिर्घातनिर्घोषभीषणजीवारवं गाण्डीवम् । स्वामिनापि सज्जीकृतं कालपृष्ठम् । (सुणादु देवो । अरे दुज्जोहणप्पमुहा कुरुबलसेणापहुणो अरे अविणअणोकण्णधार कण्ण, तुम्हेहिं मह परोक्खं बहुहिं महारहेहिं पडिवारिअ एआई मम पुत्तओ अहिमण्णु व्वावादिदो । अहं उणं तुह्माणं पेक्खवन्ताणं एव्व एदं कुमालविससेणं सुमरिदव्वसेसं करोमि, त्ति भणिअ सगव्वं आप्फालिदं णेण वज्जणिग्घादणिग्घोसभीषण जीआरवं गाण्डीवम् । सामिणा वि सज्जीकिदं कालपुट्ठम् ।) ।

दुर्योधन—उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—देव ! तत्पश्चात् युद्धकार्य को रोके हुये और क्षणभर के लिये अपने वैर-भाव को दवाये हुये भी भीमसेन और अङ्गराज (कर्ण) दोनों ही-दर्शक बन गये ।

दुर्योधन—(अभिप्राय के साथ) उसके पश्चात् क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव ! तत्पश्चात् इसी बीच शक्ति के टुकड़े कर देने पर क्रुद्ध हुए अर्जुन ने कहा—'ओ दुर्योधन-प्रमुख'... (यह आधा ही कहकर लज्जा का अभिनय करता है ।)

दुर्योधन—कह डालो । यह तो शत्रु का कथन है (तुम्हारा नहीं, अतः लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं है ।)

सुन्दरक—महाराज ! सुनिये । 'अरे ओ दुर्योधन प्रमुख कौरव सेना के सेनापतियों, अरे अविनयरूपी नौका के कर्णधार (खिवैया) कर्ण, मेरे न रहने पर तुम बहुत से महारथियों ने एकत्रित होकर असहाय (अकेले) मेरे पुत्र अभिमन्यु का वध किया था । किन्तु मैं तुम लोगों को देखते-देखते ही इस कुमार वृषसेन को स्मृति-शेष कर रहा हूँ ।' ऐसा कहकर अभिमान के साथ इसने वज्रपात की ध्वनि के सदृश भीषण प्रत्यञ्चा की ध्वनि वाले गाण्डीव का टङ्कार किया । स्वामी (कर्ण) ने भी (अपने) कालपृष्ठ नामक धनुष को संभाला ।

समास—**विश्रमितायोधनव्यापारौ**=विश्रमितः-त्यक्त-इत्यर्थः, आयोधनस्य,युद्धस्य व्यापारः-कार्यम् याभ्यां तौ । **मुहूर्तविश्रमितनिजवैरानुबन्धौ**=मुहूर्तं-क्षणम् विश्रमितः- शान्त निजवैरस्य-स्वशत्रुतायाः अनुबन्धः-आवेगः याभ्यां तौ । **दुर्योधनप्रमुखाः**=दुर्योधन प्रमुखः येषु ते । **कुरुबलसेनाप्रभवः**=कुरुबलानां प्रभवः—स्वामिनः । **अविनयनौकर्णधार**=अविनयः एव नौः—नौका तस्याः कर्णधारः (—सञ्चालकः—'नाविकः—इत्यर्थः) इव—इति, तत्सम्बुद्धौ । **वज्रनिर्घातनिर्घोषभीषणरवम्**=वज्रनिर्घातस्य—वज्रपातस्य निर्घोषः—ध्वनिः तद्वत् भीषणः जीवायाः प्रत्यञ्चायाः रवः शब्दः यस्य तत् ।

टिप्पणियाँ—विश्रमितः=त्याग दिया है। आयोधनस्य=युद्ध का। प्रेक्षकौ=दर्शक। अन्तरे=बीच में—अथवा अवसर पर। अविनयः=विनय राहित्य, उद्दण्डता। नौः=नाव। कर्णधारः=नाविक- चालक। "कर्णधारस्तु नाविकः –इत्यमरः। परिवृत्य=मिलकर। एकत्रित होकर। व्यापादितः= मार डाला। स्मर्तव्यशेषम्=स्मरणमात्र से अवशिष्ट। जिसकी केवल स्मृति ही शेष रह गई है। भणित्वा=कहकर। आस्फालितम्=उत्थापित–उठाये गये हुये। अथवा टङ्कार शब्द से युक्त। कालपृष्ठम्='कालपृष्ठ' नाम का कर्ण का धनुष।

दुर्योधनः—(सावहित्थम्) ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततश्च देव, प्रतिषिद्धभीमसेनसमरकर्मारम्भेण गाण्डीविना विरचिते अङ्गराजवृषसेनरथकूलङ्कषे द्वे बाणनद्यौ। ताभ्यामपि द्वाभ्यामन्योन्यस्नेहदर्शितशिक्षाविशेषाभ्यामभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवः : तदो अ देव, पडिसिद्धभीमसेणसमलकम्मालम्भेण गाण्डीविणा विरइदा अङ्गराअविससेणरहकूलंकसाओ दुवे बाणणदीओ। तेहिं वि दुवेहिं अण्णोण्णसिणेहदं सिदसिक्खाविसेसेहिं अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो।)।

दुर्योधनः—ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततश्च देव, गाण्डीविनाताररसितजीवानिर्घोषमात्रविज्ञातबाणवर्षेण तथाचरितं पत्रिभिर्यथा न नभस्तलं न स्वामी न रथो न धरणी न कुमारो न केतुवंशो न बलानि न सारथिर्न न दिशो न वीरलोकश्च लक्ष्यते। (तदो अ देव, गाण्डीविणा ताररसिदजोआणिग्घोसमेत्तविण्णादबाणवरिसेण तह आअरिदं पत्तिहिं जह ण णहत्तलं ण सामी ण रहो ण धरणी कुमालो ण केदुवंसोण बलाइं ण सारही ण तुरङ्गमा ण दिसाओ ण वीरलोओ अ लक्खीअदि।)

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततश्च देव, अतिक्रान्ते शरवर्षे क्षणमात्रमेव सहर्षसिंहनादे पाण्डवसैन्ये सविषादमुक्ताक्रन्दे कौरवबले समुत्थितो महान्कलकलः 'हा हतः कुमारवृषसेनः' इति। (तदो अ देव, अदिक्कन्ते सरवरिसे क्खणमेत्तं एव्व सहरिससिंदणादे पाण्डवसेण्णे सविसादमुक्काक्कन्दे कोरवबले समुत्थिदो महन्तो कलअलो हा हदो कुमालविससेणोत्ति।

दुर्योधनः—(सवाष्परोधम्) ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततो देव, प्रेक्षे कुमारं हतसारथितुरंगं लूनातपत्रचापचारमरकेतुवंशं स्वर्गभ्रष्टमिव सुरकुमारमेकेनैव हृदयमर्मभेदिना शिलिमुखेन भिन्नदेहं रथमध्ये पर्यस्तम्। (ततो देव! पेक्खामि कुमालं हदसारहितुलंगं लूणादवत्तचावचामरकेदुवंसं सग्गब्भट्टं विअ सुलकुमालं एक्केण ज्जेव हिअअमम्मभेदिणा सिलीमुहेण भिण्णदेहं रहमज्झे पल्लत्थं।)

दुर्योधन—(मुख के भाव को छिपाकर) उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—हे देव! तत्पश्चात् भीमसेन को युद्ध करने से मना करके अर्जुन ने अङ्गराज (कर्ण) और वृषसेन के रथरूपी तटों को विदीर्ण करने वाली दो बाणरूपी नदियों को बनाया (अभिप्राय यह है कि दोनों की ओर बाणों की धारा चला दी)। परस्पर स्नेह के कारण (धनुर्विद्या सम्बन्धी) अपनी-अपनी शिक्षा की निपुणता को प्रदर्शित करते हुए उन दोनों (कर्ण एवं वृषसेन) के द्वारा भी मझला पाण्डव (अर्जुन) पर आक्रमण किया गया।

दुर्योधन—उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—हे देव! तदनन्तर अर्जुन ने, जिसके बाणों की वर्षा भयंकर शब्द वाली प्रत्यञ्चा के घोष मात्र से जानी जा रही थी, बाणों से ऐसा अनुपम कौशल प्रदर्शित किया कि न आकाश दिखलाई पड़ता था, न स्वामी, न रथ, न पृथिवी, न कुमार, न पताका का दण्ड, न सेनाएँ, न सारथी, न दिशाएँ और न वीर योद्धा ही।

दुर्योधन—(आश्चर्य के साथ) उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—महाराज ! उसके बाद बाणवृष्टि के शान्त होने पर क्षणभर के लिए पाण्डव सेनाओं के हर्ष से सिंह-नाद तथा कौरव-सेनाओं के करुण-क्रन्दन करने पर महान् कोलाहल उत्पन्न हुआ 'हाय कुमार वृषसेन मार डाला गया।'

दुर्योधन—(अश्रुधारा को रोकते हुए) उसके पश्चात्, उसके पश्चात् (क्या हुआ ?)।

सुन्दरक—हे महाराज ! तब मारे गये सारथि और घोड़ों वाले, कटे हुए श्वेत-छत्र, धनुष, चामर तथा ध्वजदण्ड वाले, हृदय के मर्मस्थल को बींधने वाले एकमात्र बाण से बिंधे हुए शरीर वाले कुमार (वृषसेन) को, स्वर्ग से गिरे हुए देव-बालक के सदृश रथ के मध्य में पड़ा हुआ देखा।

समास—**प्रतिषिद्धभीमसेनसमरकर्मारम्भेण**=प्रतिषिद्धः निवारितः भीमसेनस्य समरकर्मारम्भः-युद्धकार्यं प्रसरः येन तादृशेन। **अङ्गराजवृषसेनरथकूलङ्कषे**=अङ्गराजवृषसेनयोः रथौ-स्यन्दने एव कूले तटे ते कषतः (हिंस्तः) इति अङ्गराजवृषसेनरथकूलंकषे। **बाणनद्यौ**=बाणाः एव नद्यो-इति। **अन्योन्यस्नेहदर्शितशिक्षाविशेषाभ्याम्**=अन्योन्यं-परस्परं स्नेहेन दर्शितः शिक्षाविशेषः-धनुर्विद्यानिपुणत्वं याभ्यां ताभ्याम्। **ताररसितजीवानिर्घोषमात्रविज्ञातबाणवर्षेण**=तारम्-दीर्घम् रसितं-ध्वनिर्यस्यासौ तथाविधः यः ज्यानिर्घोषः-मौर्वीनिर्घोषः, तेनैव विज्ञातं बाणानां वर्षं-वृष्टिः यस्याऽसौ तथाभूतेन। **हतसारथितुरङ्गम्**=हताः सारथितुरङ्गाः यस्य तम्। **लूनातपत्रचापचामरकेतुवंशम्**=लूनाः-छिन्नाः आतपत्रचापचामरकेतुवंशाः=छत्रधनुःप्रकीर्णकध्वजदण्डाः यस्य तम्। **हृदयमर्मभेदिना**=हृदयस्य मर्म प्राणधारकं स्थलं भिनत्तीति हृदयमर्मभेदी, तेन।

टिप्पणियाँ—**गाण्डीविना**=अर्जुन ने। **रथकूलंकषे**=रथरूपी किनारों को छिन्नभिन्न करने वाली। **शिक्षाविशेषः**=धनुर्विद्यासम्बन्धी चातुर्य। **सावहित्थम्**=मुखाकृतिके भाव को छिपाकर। "अवहित्थाऽऽकारगुप्तिः" इत्यमरः। **अभियुक्तः**=आक्रान्त, आक्रमित, आक्रमण किया गया।

ज्यानिर्घोषः=प्रत्यञ्चा का टंकार शब्द। पत्रिभिः=बाणों से। "पत्रीरोप इषुर्द्वयोः" इत्यमरः। लूनम्=कटा हुआ। आतपत्रम्=छत्र। केतुवंशः=ध्वजा का दण्ड। शिलीमुखेन=बाण से। पर्यस्तम्=गिरा हुआ, पड़ा हुआ।

दुर्योधनः—(सास्रम्) अहह, कुमार वृषसेन। अलमतः परं श्रुत्वा। हा वत्स! हा मदङ्कदुर्ललित! हा मदाज्ञाकर! हा गदायुद्धप्रियशिष्य! हा शौर्यसागर! हा राधेयकुलप्ररोह! हा प्रियदर्शन! हा दुःशासननिर्विशेष! हा सर्वगुरुवत्सल! प्रयच्छमे प्रतिवचनम्।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त--

मुद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्।

प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं

कर्णेन तत्कथमिवाननपंकजं ते॥ १०॥

दुर्योधन—(अश्रुधारा के साथ) आह! कुमार वृषसेन! इसके आगे सुनने से बस (अर्थात् इसके आगे अब सुनने की कोई आवश्यकता नहीं)। हाय वत्स! हाय, मेरी गोदी के आग्रही, हाय! मेरी आज्ञा का पालन करने वाले! हाय! गदा-युद्ध में प्रिय-शिष्य, हाय! शूरता के समुद्र, हाय! कर्ण-वंश के अंकुर, हाय! प्रियदर्शन, हाय! दुःशासन के अभिन्न, हाय! सभी गुरुओं के प्रेमी, मुझे प्रत्युत्तर दो।

अन्वय--ते पर्याप्तनेत्रं अचिरोदितचन्द्रकान्तं उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभं प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि, तत् आननपंकजं कर्णेन कथमिव दृष्टम्?

संस्कृत व्याख्या--ते=तव, पर्याप्तनेत्रम्=पर्याप्तं तृप्तं यथेष्टं वा (आयतं वा) नेत्रं यस्मिन् तत्, अचिरोदितचन्द्रकान्तम्=त्वरितोदितेन्दुसदृशरम्यम्, उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्=उद्भिद्यमानं-उद्गच्छत्

यन्नवयौवनं- नूतनयुवावस्था तेन रम्या-मनोहारिणी, शोभा-कान्तिः यस्य तत्, प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि=प्राणविनाशविपरीतदर्शनम्, आनन-पंकजम्=कमलसदृशमुखम्, कर्णेन=त्वत्पित्रा कर्णेन, कथमिव=केन प्रकारेण, दृष्टम्=अवलोकितम् ?

हिन्दी अनुवाद—ते=तुम्हारे, पर्याप्तनेत्रम्=बड़ी-बड़ी आँखों वाले, अचिरोदितचन्द्रकान्तम्=तत्काल उदित हुए चन्द्रमा के समान सुन्दर, उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्=प्रकट होती हुई नवीन युवावस्था की छटा से सुशोभित, प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि=प्राणान्त हो जाने के कारण विकृतदृष्टि से युक्त, तत्=उस, आननपंकजम्=कमलसदृश मुख को, कर्णेन=कर्ण ने, कथमिव=कैसे, दृष्टम्=देखा होगा ?

भावार्थः—विशाल नेत्रों से युक्त, नूतन तथा उदित होते हुए चन्द्रमा के सदृश लालिमा से सुशोभित, चढ़ती हुई युवावस्था की मनोहरता से शोभायुक्त तुम्हारे उस कमल सदृश मुख को मृत्यु के समय होने वाली यन्त्रणा के कारण विकृत दृष्टि की शोभा से युक्त हो जाने पर तुम्हारे पिता कर्ण के द्वारा किस भाँति देखा गया होगा ?

अलंकार—उक्त पद्य के चतुर्थ चरण में "लुप्तोपमा" अलंकार है

छन्द—इसमें "वसन्ततिलका" छन्द है।

समास—पर्याप्तनेत्रम्-पर्याप्तं (विशालम्) नेत्रं यस्मिन् तत् अचिरोदितचन्द्रकान्तम्=अचिरात् (तत्कालमित्यर्थः) उदितः-निर्गतः चन्द्रः इव कान्तम्-सौन्दर्योपेतम्। उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम्=उद्भिद्यमानम्-उद्गच्छत् नवं नूतनं यत् यौवनं तेन रम्या शोभा यस्य तत्। प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि=प्राणानां अपहारेणविनाशेन परिवर्तिता-पर्यस्ता दृष्टिः यत्र तत्। आननपंकजम्=आननं पंकजं इव-इति।

टिप्पणियाँ—अंक=गोद। राधेयः=कर्ण। प्रतिवचनम्=प्रत्युत्तर। पर्याप्तम्=विशाल अर्थात् कानों तक फैले हुए। यथेष्ट—"पर्याप्तं तु यथेष्टं स्यात्तृप्तौ शक्तिनिवारणे।" इति विश्वः। उद्भिद्यमानम्=उदय

होते हुए। प्राणानाम्=प्राणों का—"प्राणश्चैवं जीवोऽसुधारणम्"—इत्यमरः। परिवर्तिता=उलटी हुई, पलटी हुई, विपर्यस्त। कथमिव=किस प्रकार से?

सूतः—आयुष्मन्! अलमत्यन्तदुःखावेगेन।

दुर्योधनः—सूत, पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति। अस्माकं पुनः—

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना।
हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा॥ ११॥

सूत—आयुष्मन्! शोक के अत्यधिक आवेग से बस (अर्थात् आप अत्यधिक दुःख के आवेग में न बह जाइये।)।

दुर्योधन—सूत, पुण्यशाली व्यक्ति ही दुःख का अनुभव किया करते हैं। हमारा तो फिर—

अन्वय—प्रत्यक्षं हतबन्धूनां (अस्माकम्) हृदयं परिभवाग्निना अत्यर्थं दह्यते (अतः) कुतः दुःखं कुतः व्यथा?

संस्कृत-व्याख्या—प्रत्यक्षम्=समक्षम्, हतबन्धूनां=हताः-विनाशिताः बन्धवः-स्वजनाः येषां येषाम्, अस्माकम्, हृदयम्=अन्तःकरणम्, परिभवाग्निना=परिभवः अवमानना एव अग्निः, तेन, अत्यर्थम्=भृशं वा अत्यधिकम्, दह्यते=भस्मसात्क्रियते। अतः, कुतः=कस्मात्, दुःखम् कुतः=कस्मात्, व्यथा=पीडा। हृदयस्य दह्यमानत्वात् दुःखव्यथयोस्तत्रावकाशः नास्तीति भावः।

हिन्दी अनुवाद—प्रत्यक्षम्=(अपने) समक्ष ही, हतबन्धूनाम्=मारे गये हैं, कुटुम्बीजन जिनके ऐसे, अस्माकम्=हम लोगों का, हृदयम्=हृदय, परिभवाग्निना=अपमान की ज्वाला से, अत्यर्थम्=अत्यधिक, दह्यते=जल रहा है। (अतः=अतएव) कुतः=कहाँ से, दुःखम्=दुःख और, कुतः=कहाँ से, व्यथा=पीड़ा होना सम्भव है। अभिप्राय यह है कि दुःख और वेदना का सम्बन्ध हृदय से होता है। ऐसी स्थिति में जब हृदय ही जल चुका हो तो फिर दुःख और पीड़ा की अनुभूति कैसे की जा सकती है।

भावार्थः—जिस व्यक्ति के अनेक कुटुम्बीजन मारे जा चुके हैं ऐसे व्यक्ति का हृदय तो अपमान रूपी अग्नि में स्वयं ही भस्मसात् हो जाया करता है। फिर ऐसे व्यक्ति का हृदय दुःख अथवा वेदना का अनुभव कैसे कर सकता है ?

अलङ्कारः—उक्त पद्य के द्वितीय चरण में "रूपक" अलङ्कार है।

छन्दः—इसमें "पथ्यावक्त्र" नामक छन्द है।

समासः—हतबन्धूनाम्=हताः बन्धवः येषां तेषाम्। परिभवाग्निना= परिभवः एव अग्निः इति परिभवाग्निः, तेन।

टिप्पणियाँ—अत्यर्थम्=अत्यधिक। दह्यते=भस्मसात् हो गया है—जल रहा है। जब हृदय ही जल चुका हो तब दुःख तथा वेदना की अनुभूति का क्या कहना। अर्थात् इस प्रकार की स्थिति में दुःख अथवा पीड़ा की अनुभूति किया जाना संभव नहीं है।

(इति मोहमुपगतः।)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः। (इति पटान्तेन वीजयति।)

दुर्योधनः—(लब्धसंज्ञः) भद्र सुन्दरक ! ततो वयस्येन किं प्रतिपन्नमङ्गराजेन ?

सुन्दरकः—ततश्च देव, तथा विधस्य पुत्रस्य दर्शनेन संगलितमश्रुजलमुज्झित्वा अनवेक्षितपरप्रहरणाभियोगेन स्वामिनांगराजेनाभियुक्तो धनञ्जयः। तं च सुतवधामर्षोद्दीपितपराक्रमं विमुक्तजीविताशं तथा पराक्रमन्तं प्रेक्ष्य भीमनकुलसहदेवपाञ्चालप्रमुखैरन्तरितो धनञ्जयस्य रथवरः। (तदो अ देव, तधाविधस्स पुत्तस्स दंसणेण संगलिद अस्सुजलं उज्झिअ अणवेक्खिदपरप्पहरणाभिजोएण सामिणा अङ्गराएण अभिजुत्तो धणंजओ। तं अ सुदवहामरिसुद्दीविदपरक्कमं विमुक्कजीविदासं तह परक्कमन्तं पेक्खिअ भीमणउलसहदेवपञ्चालप्पमुहेहिं अन्तरिदो धणंजअस्स रहवरो।)।

दुर्योधनः—ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततो देव, शल्येन भणितम् 'अंगराज ! हततुरंगमो भग्नकूबरस्ते रथः। तन्न युक्तं भीमार्जुनाभ्यां सहयोद्धुम्'। इति भणित्वा निर्वर्तितो रथोऽवतारितः स्वामी स्यन्दनाद् बहुप्रकारं च समाश्वासितः। (तदो देव, सल्लेण भणिदम्—अंगराअ, हदतुलंगमो भग्गकूबरो दे रहो ता ण जुत्तं भीमाज्जुणेहिं सह आजुज्झिदुं। त्ति भणिअ णिवट्टिदो रहो ओदारिदो सामी सन्दणादो बहुप्पआरं अ समस्सासिदो।)

[ऐसा कहकर मूच्छित हो जाता है।]

सूत—धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये, महाराज। [ऐसा कह कर वस्त्र के आंचल से हवा करता है।]

दुर्योधन—[चेतना प्राप्त कर] कल्याणकारिन् हे सुन्दरक ! तत्पचात् मित्र अङ्गराज (कर्ण) ने क्या किया ?

सुन्दरक—देव ! तदनन्तर उस प्रकार (दुरवस्थाग्रसित) पुत्र को देखकर बहते हुये आंसुओं का त्यागकर शत्रु के आयुधों के प्रहार की चिन्ता न हुये स्वामी अङ्गराज (कर्ण) ने अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। पुत्र-बध के क्रोध से उद्दीप्तपराक्रमवाले और जीवन की आशा छोड़कर अत्यधिक पराक्रम दिखलाते हुये (कर्ण को) देखकर भीम, नकुल सहदेव और पाञ्चाल आदि के द्वारा अर्जुन का रथ आड़ में कर लिया गया।

दुर्योधन उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—महाराज, तब शल्य ने कहा—'अङ्गराज (कर्ण) तुम्हारे रथ के घोड़े मार डाले गये हैं तथा कूबर टूट चुका है अतः भीम और अर्जुन—दोनों के साथ युद्ध करना ठीक नहीं है' ऐसा कहकर रथ लौटा लिया गया। स्वामी (कर्ण) रथ में से उतार लिये गये तथा उन्हें अनेक प्रकार से (ढाढस) सान्त्वना प्रदान की गयी।

समासः—अनवेक्षितपरप्रहरणाभियोगेन=अनवेक्षिताः- अगणिताः परेषां=अन्येषां, प्रहरणानाम् आयुधानाम् अभियोगाः-उद्योगाः येन तथाभूतेन।

सुतवधावर्षोद्दीपितपराक्रमम्=सुतस्य यो वधः तेन यः अमर्षः—क्रोधः तेन उद्दीपितः—वृद्धि प्राप्तः पराक्रम यस्य, तम् । विमुक्तजीविताशम्=विमुक्ता जीवितस्य—जीवनस्य आशा येन तम् ।

टिप्पणियाँ – संगलितम्=गिरते हुये—बहते हुये । अभियुक्तः=आक्रमण किया । परिक्रामन्तम्=पराक्रम दिखलाते हुये । युद्ध करते हुये । पाञ्चालः =धृतराष्ट्र । अन्तरितः=आड़ में अथवा ओट में कर लिया । स्यन्दनात्=रथ से । समाश्वासितः=आश्वस्त किया, धैर्य बँधाया ।।

दुर्योधनः—ततस्ततः ?

सुन्दरकः—ततश्च स्वामिना सुचिरं विलप्य परिजनोपनीतं अन्यं रथं प्रेक्ष्य दीर्घं निश्वस्य मयि दृष्टिर्विनिक्षिप्ता । सुन्दरक एहीति भणितं च । ततोऽहमुपगतः स्वामिसमीपम् । ततोऽपनीय शीर्षस्थानात्पट्टिकां शरीरसंगलितैः शोणितबिन्दुभिलिप्तमुखं बाणं कृत्वभिलिख्य प्रेषितो देवस्य संदेशः । (इति पट्टिकामर्पयति ।) (तदो अ सामिणा सुइरं विलविअ परिअणोवणीदं अण्णं रहं पेक्खिअ दीहं निस्ससिअ मइ दिट्ठी विणिक्खिदा । सुन्दरअ, एहि त्ति भणिदं अ । तदो अहं उवगदो सामिसमीवम् । तदो अवणीअ सीसट्ठाणादो पट्ठिअं शरीरसंगलिदेहिं सोणिअबिंदुहिं लित्तमुहं बाणं कदुअ अहिलिहिअ प्पेसिदो देवस्स संदेसो ।)

[दुर्योधनो गृहीत्वा वाचयति यथा ।]

स्वस्ति । महाराजदुर्योधन समराङ्गणात्कर्णं एतदन्तं कण्ठे गाढमालिङ्ग्य विज्ञापयति—

अस्त्रग्रामविधौ कृती न समरेष्वस्यास्ति तुल्यः पुमान्
भ्रातृभ्योऽपि ममाधिकोऽयममुनाजेयाः पृथासूनवः ।
यत्संभावित इत्यहं न च हतो दुःशासनारिर्मया
त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण बाष्पेण वा ॥१२॥

दुर्योधन—उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ?

सुन्दरक—तत्पश्चात् स्वामी (कर्ण) ने बहुत समय तक विलाप करके, सेवकों द्वारा लाये गये दूसरे रथ को देखकर, दीर्घ-श्वास लेकर मेरे ऊपर दृष्टि डाली और कहा—'सुन्दरक आओ' तदनन्तर मैं स्वामी के समीप गया। इसके पश्चात् शिर की पट्टी खोलकर शरीर से बहते हुये रक्त-विन्दुओं से भीगे अग्रभाग वाले बाण से लिखकर महाराज के लिये यह सन्देश भेजा है (यह कहकर पत्रिका (दुर्योधन को) देता है।)।

[दुर्योधन लेकर बांचता (पढ़ता) है।]

स्वस्ति। युद्धभूमि से कर्ण महाराज दुर्योधन का अन्तिम कण्ठालिङ्गन कर के निवेदन करता है:—

अन्वयः—अयं अस्त्रग्रामविधौ कृती, समरेषु अस्य तुल्यः पुमान् न अस्ति, (अयम्) मम भ्रातृभ्यः अपि अधिकः, (अतः) अमुना पृथासूनवः जेयाः, इति अहं यत् सम्भावितः, मया दुशासनारिः न हतः (अतः) त्वं (स्वयमेव) भुजयोः वीर्येण वा वाष्पेण दुःखप्रतिकारं एहि ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—अयम्=एषः कर्णः, अस्त्रग्रामविधौ=अस्त्राणां—आयुधानां ग्रामस्य—समूहस्य विधौ—क्रियायां (संचालने इत्यभिप्रायः), कृती=कुशलः 'अस्तीति शेषः'। समरेषु=युद्धेषु, अस्य=कर्णस्य, तुल्यः=सदृशः, पुमान्=पुरुषः, न अस्ति=न वर्तते। (अयम्=एषः) मम=दुर्योधनस्य, भ्रातृभ्यः=दुःशासनादिभ्यः अनुजेभ्यः, अपि, अधिकः=विशिष्टः अस्ति। अमुना=एतेन कर्णेन, पृथासूनवः—पृथायाःकुन्त्याः सूनवः पुत्राः (अर्जुनादय-पाण्डवाः), जेयाः=जेतुं योग्याः इति=इत्थम्, अहम्=कर्णः' यत्, सम्भावितः सत्कृतः (अथवा आशाविषयः कृतः—इति भावः) . मया=त्वया सत्कृतेन कर्णेन, दुःशासनारिः=दुःशासनस्य शत्रुः ('हन्ता' इत्यर्थः) भीमः, न हतः=न मारितः, अतः, त्वम्=भवान्, स्वयमेव, भुजयोः=बाह्वोः, वीर्येण=बलेन अथवा, दुःखप्रतिकारम्=दुःखविनाशोपायम्, एहि=प्राप्नुहि। यदि बलमस्ति यदा स्वकीयेन बलेन अन्यथा रोदनेन दुःख स्वल्पं कुरु—इत्यभिप्रायः ॥१२॥

हिन्दी-अनुवाद — अयम्=यह; अस्त्रग्रामविधौ=शस्त्रास्त्र समूह के चलाने में, कृती=कुशल हैं, समरेषु=युद्धस्थल में, अस्य=इस कर्ण के, तुल्यः=समान; पुमान्=पुरुष (कोई अन्य) न अस्ति=नहीं है। अयम्=यह (कर्ण), मम=मेरे, भ्रातृभ्यः अपि=भाइयों से भी, अधिकः=बढ़कर है। अमुना=इस (कर्ण) के द्वारा, पृथासूनवः= कुन्तीपुत्र पाण्डव, जेयाः=जीते जायेंगे। इस प्रकार की; अहम्=मेरे बारे में, यत्=जो, संभावितः=(आपद्वारा जो) संभावना की गई थी, मया=मुझ कर्ण ने, उस, दुःशासनारिः=दुःशासन के शत्रु भीमसेन को, न हतः=नहीं मारा, अतः=इसलिये, स्वयमेव त्वम्=स्वयं तुम ही, भुजयोः=अपनी बाहों के, वीर्येण=बल अथवा पराक्रम से, वा=अथवा वाष्पेण=अश्रुधारा से, उस, दुःखप्रतिदारम्=दुःख के प्रतीकार को, एहि=प्राप्त करो ॥१२॥

भावार्थ—यह (कर्ण) शस्त्रास्त्र के समूह के प्रयोग में अत्यधिक चतुर है। अन्य कोई भी पुरुष युद्ध में इसकी समानता का नहीं है। मेरे लिये यह मेरे भाइयों से भी कहीं अधिक बढ़कर है। निश्चित रूप से यह (कर्ण) पाण्डवों पर विजय प्राप्त करेगा। मेरे बारे में इस प्रकार की आपकी धारणा थी। किन्तु दुःशासन का हनन करने वाले उस भीमसेन को मैं नहीं मार सका। अतः आप ही अपनी भुजाओं के पराक्रम से अथवा अश्रुधारा से दुःख के प्रतीकार को प्राप्त होओ (अर्थात् तुम अपने दुःख का प्रतीकार स्वयं ही करो।)।

छन्द—उक्त पद्य में 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द हैं।

समास—एतदन्तम्=एतत्-आलिङ्गनमित्यर्थः अन्तम्-अन्त्यमित्यर्थः यस्मिन् कर्मणि यथा तथा। अस्त्रग्रामविधौ=अस्त्राणां ग्रामस्य विधौ। पृथासूनवः=पृथायाः सूनवः-इति। दुःखप्रतिकारम्=दुःखस्य प्रतिकारम् ॥

टिप्पणियाँ—पट्टिकाम्=शिरोवस्त्र (पगड़ी), घाव को बांधने वाली पट्टी। पट्टिकाम्=सन्देश पत्रिका को। एतदन्तम्=अन्तिम सन्देश। मरने के लिये हो अन्तिम निश्चय कर लिया है—इससे सम्बन्धित कथन। विज्ञापयति=निवेदन करता है। अस्त्रग्रामविधौ=अस्त्र समूह के चलाने अथवा प्रयोग

करने में। कृती=कुशल, चतुर। अधिकः=बढ़कर। पृथासूनवः=कुन्ती के पुत्र, पाण्डवगण। संभावितः=सम्मान दिया गया था अथवा मुझ से सम्भावना की गई थी। दुःखप्रतिकारम्=दुःख के प्रतीकार को ।।१८।।

दुर्योधनः— वयस्य कर्ण ! किमिदं भ्रातृशतवधदुःखितं मामपरेण वाक्शल्येन घट्टयसि ? भद्रसुन्दरक ! अथेदानीं किमारम्भोऽङ्गराज ?

सुन्दरकः – देव ! अपनीतशरीरावरण आत्मवधकृतनिश्चयः पुनरपि पार्थेन सह समरं मार्गयते। (देव, अवणीदसरीरावरणो अप्पवहकिदणिच्चओ पुणो वि पत्थेण सह समलं मग्गादि।)।

दुर्योधनः—[आवेगादासनादुत्तिष्ठन्] सूत ! रथमुपनय। सुन्दरक ! त्वमपि मद्वचनात्त्वरिततरं गत्वा वयस्यमङ्गराजं प्रतिबोधय। अलमतिसाहसेन। अभिन्न एवायमावयोः संकल्पः। न खलु भवानेको जीवितपरित्यागाकाङ्क्षो। किन्—

हत्वा पार्थान्सलिलमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा
मुक्त्वा वाष्पं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च।
कृत्वान्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं
संत्यक्ष्यावो हततनुमिमां दुःखतौ निर्वृतौ च ॥१३॥

दुर्योधन—मित्र कर्ण, सौ भाइयों के वध से दुःखी मुझ को इस वचनरूपी बाण से क्यों बींध रहे हो ? भद्र सुन्दरक, तो अब क्या कर रहे हैं ?

सुन्दक— महराज, अपने शरीर के कवच उतार कर अपने वध का निश्चय करते हुये पुनः अर्जुन के साथ युद्ध का अवसर खोज रहे है।

दुर्योधन—(आवेग के साथ आसन से उठते हुये) सूत; रथ लाओ। सुन्दरक, तुम भी अतिशीघ्र जाकर मेरे वचनों से (अर्थात् मेरी ओर से) मित्र अङ्गराज को समझाओ। अत्यधिक साहस से बस (अर्थात् आवश्यकता से अधिक साहस करने की आवश्यकता नहीं) हम दोनों का संकल्प समान अथवा एक ही प्रकार का है। केवल आप ही अकेले प्राणों को त्यागने की इच्छा नहीं कर रहे हैं। अपितु—

अन्वयः—पार्थान् हत्वा बन्धुवर्गाय अशिवं सलिलं दत्वा (अवशिष्टैः) कतिपयैः मन्त्रिभिः च चारिभिः सह वाष्पं मुक्त्वा अपुनर्भावि गाढोपगूढं अन्योन्यं सुचिरं कृत्वा दुःखितौ च निर्वृत्तौ, इमां हततनुं सन्त्यक्षावः ॥१३॥

संस्कृत व्याख्या—पार्थान्=पृथायाः पुत्रान्-पाण्डवान्, हत्वा=व्यापाद्य, बन्धुवर्गाय=युद्धमृतबन्धुबान्धवेभ्यः, अशिवम्=अमङ्गलरूपम्, सलिलम्=जलम् तिलाञ्जलिमित्यर्थः, दत्वा=वितीर्य, (अवशिष्टैः) कतिपयैः=कियद्भिः, मन्त्रिभिः=अमात्यैः, च, चारिभिः=सेवकैः, सह=साकम्, वाष्पम्=शोकाश्रु, मुक्त्वा=त्यक्त्वा, अपुनर्भावि=अन्तिमम्, गाढोपगूढम्=गाढालिङ्गनम्; अन्योन्यम्=परस्परम्, सुचिरम्=बहुकालम्, कृत्वा=विधाय, दुःखितौ=वर्गविनाशेन दुःखमनुभवन्तौ, च, निवृतौ=शत्रुविनाशेन सन्तोषमनुभवन्तौ, इमाम्=एताम्, हततनुम्=मृतप्रायं शरीरम्, सन्त्यक्षावः=हास्यावः ॥ १३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—पार्थान्=कुन्ती के पुत्रों अर्थात् पाण्डवों को; हत्वा=मारकर, बन्धुवर्गाय=युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए बन्धुबान्धवों के लिए, अशिवम्=अमङ्गलरूप (अर्थात् तिलाञ्जलिरूप), सलिलम्=जल को, दत्वा=देकर, (अवशिष्टैः=बचे हुए), कतिपयैः=कुछ, मन्त्रिभिः=मन्त्रियों, च=और, चारिभिः=सेवकों के, सह=साथ, वाष्पम्=शोक के आंसुओं को, मुक्त्वा=बहाकर, अपुनर्भावि=पुनः प्राप्त न होने वाले अर्थात् अन्तिम, गाढोपगूढम्=गाढ़े आलिङ्गन को, अन्योन्यम्=आपस में, सुचिरम्=पर्याप्त समय तक, कृत्वा=करके, दुःखितौ=दुःखी, च=तथा, निर्वृतौ=सन्तुष्ट होते हुए, इमाम=इस, हततनुम्=नश्वर शरीर को, सन्त्यक्षावः=छोड़ेंगे अथवा त्यागेंगे ॥ १३ ॥

भावार्थ—कुन्ती के पुत्रों अर्थात् पाण्डवों को मारकर, युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए बन्धु-बान्धव जनों को अमांगलिक तिलाञ्जलि देकर, बचे हुए कुछ मन्त्रियों तथा सेवकों के साथ आंसू बहाकर, पर्याप्त समय तक आपस में पुनः कभी प्राप्त न होने वाले अर्थात् अन्तिम गाढालिङ्गन को करके दुःखी तथा शान्त हुए हम दोनों इस नश्वर शरीर का त्याग करेंगे ॥ १३ ॥

छन्दः—उक्त पद्य में "मन्दाक्रान्ता" छन्द है।

समासः—भ्रातृशतवधदुःखितम्=भ्रातृशतस्य वधेन दुखितम्। किमारम्भः=कः आरम्भः यस्य सः। अपनीतशरीरावरणः=अपनीतं-शरीरस्य आवरणं-रक्षकं कवचमित्यर्थः, येन सः। आत्मवधकृतनिश्चयः=आत्मनः वधाय-नाशाय कृतः निश्चयः येन सः। जीवितपरित्यागाकांक्षी=जीवितस्य-जीवनस्य परित्यागं आकांक्षते, इति अपुनर्भावि।

टिप्पणियाँ—घट्टयसि=बींध रहे हो। अपनीतशरीरावरणः=दूर कर दिया है शरीर की रक्षा करने वाला कवच जिसने। मार्गयते=खोज रहा है। अर्थात् चाह रहा है। अभिन्नः=समान, एक प्रकार का। अशिवम्=अमङ्गलकारी। सलिलम्=जल को अर्थात् तिलाञ्जलि नामक जल को। अपुनर्भावि=चूँकि हम दोनों तो मर जावेंगे। अतः यह आपस में किया जाने वाला आलिङ्गन हम दोनों को पुनः प्राप्त न हो सकेगा। हततनुम्=नश्वर शरीर को। सन्त्यक्षावः=त्याग देंगे, छोड़ देंगे ॥१३॥

अथ च शोकं प्रतिमया न किञ्चित्संदेष्टव्यम्।

वृषसेनो न ते पुत्रो न मे दुःशासनोऽनुजः।
त्वां बोधयामि किमहं त्वं मां संस्थापयिष्यसि ॥१४॥

और पुत्र-शोक के कारण व्याकुल कर्ण के प्रति अथवा वृषसेन के मारे जाने से उत्पन्न शोक के प्रति मुझे कुछ भी सन्देश नहीं देना है।

अन्वयः—वृषसेनः ते पुत्रः न, दुःशासनःमे अनुजः न। (अत्र) अहंत्वा किं बोधयामि? (वा) त्वं मां किम् संस्थापयिष्यसि?

संस्कृत-व्याख्या—वृषसेनः=वृषसेनाख्यः, ते=तव, पुत्रः=सुतः, न=न आसीत्। दुःशासन=दुःशासनाख्यः, मे=मम, अनुजः=कनिष्ठभ्राता, न=न आसीत्। अत्र=अस्मिन् विषये, अहम्=दुर्योधनः, त्वाम्=भवन्तम्, कर्णम् किम्, बोधयायि=आश्वासयामि? (वा=अथवा) त्वम्=भवान्; माम्=दुर्योधनम्, किम्, संस्थापयिष्यसि=आश्वासयिष्यसि-बोधयिष्यसि वा? नश्वरस्य जगतः ईदृशी गतिः एव। अस्मिन् विषये किं वक्तव्यमित्यभिप्रायः ॥१४॥

हिन्दी-अनुवाद—वृषसेनः=वृषसेन, ते=तुम्हारा, पुत्रः=पुत्र, न=नहीं था, दुःशासनः=छोटा भाई दुःशासन, मे=मेरा, अनुज=भाई, न=नहीं था। (अत्र =इस बारे में), अहम्=मैं दुर्योधन, त्वाम्=तुझ (कर्ण) को, किम्=क्या, बोधयामि=समझाऊँ अथवा सान्त्वना दूं? (वा—अथवा) त्वम्=तुम ही, माम्=मुझको, किम्=क्या, संस्थापयिष्यसि=धैर्य धारण कराओगे अथवा सान्त्वना प्रदान करोगे? ॥१४॥

भावार्थः—हे कर्ण! वृषसेन वस्तुतः तुम्हारा पुत्र न था और न दुःशासन ही मेरा छोटा भाई था (यदि ऐसा न होता तो ये लोग हम लोगों को इस विपत्ति में छोड़कर चले ही क्यों जाते।) इस बारे में मैं तुमको क्या समझाऊँ अथवा धैर्य बँधाऊँ? अथवा तुम ही मुझे क्या आश्वस्त कर सकोगे? (इस नश्वर एवं अनित्य संसार की गति ही इस प्रकार की है। अतः इस बारे में क्या कहा जाय?) कहने का अभिप्राय यह है कि हम दोनों ही समानरूप से दुःखी हैं ॥१४॥

छदः—उक्त पद्य में 'अनुष्टुप्' छन्द है।

टिप्पणियाँ—संदेष्टव्यम्=संदेश दूं या भेजूं। अर्थात् इस वृषसेन की मृत्यु के बारे में अथवा उससे उत्पन्न हुये शोक के बारे में मुझे कुछ भी नहीं कहना है। संस्थापयिष्यसि=धैर्य धारण कराओगे, सन्तोष प्रदान करोगे, आश्वासन प्रदान करोगे ॥१४॥

सुन्दरकः—यद्देव आज्ञापयति (इति निष्क्रान्तः) (जं देवो आणवेदि)।

दुर्योधनः—तूर्णमेव रथमुपस्थापय।

सूतः—(कर्णं दत्वा) देव! ह्रेषासंवलितो नेमिध्वनिः श्रूयते। तथा तर्कयामि नूनं परिजनोपनीतो रथः।

दुर्योधनः—सूत, गच्छ त्वं सज्जी कुरु।

सूतः—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति।)।

दुर्योधनः—(विलोक्य) किमिति नारूढोऽसि?

सूतः—एष खलु तातोऽम्बा च संजयाधिष्ठितं रथमारुह्य देवस्य समीपमुपगतौ।

दुर्योधनः—किं नाम तातोऽम्बा च संप्राप्तौ। कष्टमतिबीभत्समाचरितं देवेन। सूत, गच्छ त्वं स्यन्दनं तूर्णमुपहर। अहमपि तातदर्शनं परिहरन्नेकान्ते तिष्ठामि।

सूतः—देव! त्वदेकशेषबान्धवावेतौ कथमिव न समाश्वासयसि।

दुर्योधनः—सूत, कथमिव समाश्वासयामि विमुखभागधेयः। पश्य-

अद्यैवावां रणमुपगतौ तातमम्बां च दृष्ट्वा

घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽहं च दुःशासनश्च।

तस्मिन्बाले प्रसभमरिणा प्रापिते तामवस्थां

पार्श्वे पित्रोरपगतघृणः किं नु वक्ष्यामि गत्वा ॥१५॥

सुन्दरक—जैसी महाराज की आज्ञा। (यह कहकर निकल जाता है।)

दुर्योधन—अतिशीघ्र ही रथ लाओ।

सूत—(कान लगाकर) देव! (घोड़ो की) हिनहिनाहट से मिश्रित रथ के पहिये के घेरे की आवाज सुनाई दे रही है। इससे ऐसी तर्कना करता हूँ कि निश्चय ही परिजनों द्वारा रथ लाया जा रहा है।

दुर्योधनः—सूत, तुम जाओ, तैयार करो।

सूत—महाराज की जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर, निकलकर फिर प्रवेश करता है।)

दुर्योधन—(देखकर) तुम रथपर चढ़े क्यों नहीं हो ?

सूत—यह पिता जी और माता जी संजय के द्वारा हाँके जाते हुये रथ पर बैठकर आपके पास आये हैं।

दुर्योधन—क्या पिता जी और माताजी आये हैं? आह, भाग्य ने बड़ा ही घृणित आचरण किया। सूत, जाओ, तुम अतिशीघ्र रथ को ले आओ। मैं भी पिता जी की तथा माता जी की आँखों को बचाता हुआ एकान्त में खड़ा होता हूँ ?

सूत—महाराज, जिनके आप ही एकमात्र सम्बन्धी बचे है, ऐसे इन दोनों को आप सान्त्वना क्यों नहीं दे रहे है ?

दुर्योधन—सूत, विपरीत भाग्य वाला मैं किस प्रकार सान्त्वना दूं ? देखो–

अन्वयः—आवां तातं च अम्बां दृष्ट्वा अद्य एव रणं उपगतो, ताभ्यां विनतः अहं च दुःशासनः च शिरसि घ्रातः। अरिणा तां अवस्थां तस्मिन् बाले प्रसभं प्रापिते (सति) पित्रोः पार्श्वं गत्वा अपगतघृणः किन्नु वक्ष्यामि।

संस्कृत-व्याख्या—आवाम्=अहं दुःशासनश्च, तातम्=पितरम्, च अम्बाम्=मातरम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, अद्य=अस्मिन् दिने, एव, रणम्=संग्राम भूमिम्, उपगतौ=उपयातौ, ताभ्याम्=मातापितरम्, विनत=प्रणामार्थं नम्र, अहम्=सुयोधन, च, दुःशासनः, च, शिरसि=मस्तके, घ्रातः= जिघ्रतः। अरिणा=शत्रुणा, ताम्=तादृशीम्–हृद्विदारणपूर्वक मरणरूपमित्यर्थः अवस्थाम्=दशाम्, तस्मिन्=दुःशासने, बाले=अल्पवयस्के, प्रसभम्=हठात्, प्रापिते=संयोजिते, सति, पित्रोः=मातापित्रोः, पार्श्वम्=समीपम्, गत्वा=यात्वा, अपगत घृणः=अपगता–दूरीभूता घृणा–दया यस्मात् स तादृशः अहमिति शेषः, किं नु=किम्, वक्ष्यामि=कथयिष्यामि ?

हिन्दी-अनुवाद—आवाम्=मैं तथा दुःशासन, तातम्=पिता जी को, च =और, अम्बाम्=माता को, दृष्ट्वा=देखकर, अद्य एव=आज ही रणम्= युद्धभूमि में, उपगतौ=गये थे। ताभ्याम्=उन दोनों के द्वारा, विनतः=प्रणाम करने के लिये, झुके हुये, अहम्=मैं, च=और, दुःशासनः=दुशासन के, शिरसि =मस्तक पर, घ्रातः=सूँघा गया। अरिणा=शत्रु के द्वारा, ताम्=उस, अवस्थाम्=मरणरूपा अवस्था को, तस्मिन् बाले=उस अल्पवयस्क दुःशासन को, प्रसभम्=जबरदस्ती, प्रापिते सति=प्राप्त करा दिये जाने पर, पित्रोः=माता-पिता के, पार्श्वम्=समीप, गत्वा=जाकर, अपगतघृणः=निर्दयी मैं, किं नु=क्या, वक्ष्यामि=कहूँगा ?

भावार्थ—हम दोनों आज ही माता-पिता का दर्शनकर युद्धभूमि को गये थे। हम दोनों के द्वारा प्रणाम किये जाने पर उन दोनों ने हम दोनों के सिरों को सूँघा था। शत्रु द्वारा बलात् उस बालक दुःशासन की हृदय को

विदीर्णकर रक्तपान करने आदि से युक्त मरणरूपा अवस्था को प्राप्त करा दिये जाने पर माता-पिता के समीप जाकर निर्दयी मैं क्या कहूँगा ?

छन्द—उक्त पद्य में 'मन्दाक्रान्ता' छन्द है ।

समासः— त्वदेकशेषबान्धवौ=त्वमेव एकः शेषः (जीवितः इत्यर्थः) बान्धवः-स्वजनः ययोः तौ । अपगतघृणः=अपगता घृणा यस्मात् सः ।

टिप्पणियां—शिरसिघ्रातः—शिर पर सूँघा गया था । प्राचीनकाल में ऐसा रिवाज था कि जब छोटे व्यक्ति जब कहीं जाते थे अथवा आते थे तो उनके जाते समय अथवा आते समय वृद्धजन छोटेजनों के शिर को सूँघकर अपना प्रेम प्रदर्शित किया करते थे । अपगतघृणः—दूर हो गयी है दया जिससे अर्थात् निर्दयी । "जुगुप्सा करुणे घृणे"—इत्यमरः ।

तथाप्यवश्यं वन्दनीयौ गुरू ।

(इति निष्क्रान्तौ ॥

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

फिर भी माता-पिता अवश्य वन्दनीय हैं (अर्थात् माता-पिता तो सदैव वन्दनीय ही हुआ करते हैं ।) ।

(ऐसा कहकर दोनों बाहर निकल जाते हैं ।)

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ ॥

॥ इत्याचार्य सुरेन्द्रदेवशास्त्रिकृतायां वेणीसंहारस्य 'आशुबोधिनी' व्याख्यायां चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ॥

—:०:—

पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशति रथयानेन गान्धारी संजयो धृतराष्ट्रश्च]

धृतराष्ट्रः—वत्स संजय ! कथय कथय कस्मिन्नुद्देशे कुरुकुलकाननैकशेषप्रवालो वत्सो मे दुर्योधनस्तिष्ठति। कच्चिज्जीवति वा न वा ?

गान्धारी—जात ! यदि सत्यं जीवति मे वत्सस्तत्कथय कस्मिन्देशे वर्तते। [जाद जइ सच्चं जीवदि मे वच्छो ता कहेहि कस्सिं देसे पट्ठदि ?]

संजयः—नन्वेष महाराज एक एव न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति।

गान्धारी—(सकरुणम्) जात ! एकाकीति भणसि। किं नु खलु सांप्रतं भ्रातृशतमस्य पार्श्वे भविष्यति। (जाद, एआइ त्ति भणासि। किं णु क्खु संपदं भादुसद से पास्से भविस्सदि ?)

संजय—तात ! अम्ब ! अवतरतं स्वैरं रथात्।

[उभाववतरणं नाट्यतः]

(ततः प्रविशति सव्रीडमुपविष्टो दुर्योधनः)

संजयः—(उपसृत्य) विजयतां महाराजः। नन्वेष तातः अम्बया सह प्राप्तः। किं न पश्यति महाराजः ?

दुर्योधनः—(वैलक्ष्यं नाट्यति)

धृतराष्ट्रः—

शल्यानि व्यपनीयकंकवदनैरुन्मोचिते कंकटे।
बद्धेषु व्रणपट्टकेषु शनकैः कर्णौ कृतापाश्रयः।
दूरान्निर्जितसान्त्वितान्नरपतीनालोकयंल्लीलया
सह्या पुत्रक वेदनेति न मया पापेन पृष्टो भवान्॥

(धृतराष्ट्रो गान्धारी च स्पर्शेनोपेत्यालिङ्गतः।)

(तत्पश्चात् रथ पर सवार गान्धारी, संजय और धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं।)

धृतराष्ट्रः—हे पुत्र संजय ! बतलाओ, बतलाओ, किस स्थान पर कुरुवंशरूपी वन का एकमात्र अवशिष्ट अंकुर मेरा पुत्र दुर्योधन स्थित है? वह जीवित है अथवा नहीं।

गान्धारी—पुत्र ! यदि मेरा बेटा वस्तुतः जीवित है तो बतलाओ वह किस स्थान पर है?

संजय—यह महाराज अकेले ही वटवृक्ष की छाया में बैठे हैं।

गान्धारी—(दयालुता के साथ) बेटा 'अकेला है' ऐसा क्यों कहते हो? सम्भवतः इस समय इनके (मेरे बेटे) के पास तो सौ भाई होंगे।

संजय—पिता जी, माताजी, धीरे-धीरे रथ से उतरिये।

(दोनों उतरने का अभिनय करते हैं?)

(तत्पश्चात् बैठा हुआ, लज्जित दुर्योधन प्रवेश करता है।)

संजय—(पास जाकर) महाराज को जय हो : यह पिता जी माता जी के साथ आये हुए हैं। महाराज, क्या नहीं देख रहे हो?

दुर्योधन—(लज्जा का अभिनय करता है।)

धृतराष्ट्र—कङ्कटे उन्मोचिते कंकवदनैः शल्यानि व्यपनीय व्रणपट्टकेषु बद्धेषु कर्णे कृतापाश्रयः निर्जितसान्त्वितान् नरपतीन् लीलया दूरात् आलोकयन् भवान् पापेन मया हे पुत्रक ! 'वेदना सह्या' इति न पृष्ठः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या— कंकटे=कवचे, उन्मोचिते=शरीरान्निस्सारिते सति, कंकवदनैः=कंकस्य लोहपृष्ठनामकपक्षिविशेषस्य वदनं मुखमिव मुखं येषां तैः, शल्यानि=बाणशंकून्-बाणाग्रस्य फलकानि वा, व्यपनीय=निस्सार्य, व्रणपट्टकेषु=औषधे संलिप्तव्रणवस्त्रेषु, बद्धेषु=संयोजितेषु, कर्णे=राधेये, कृतायाश्रयः=कृतः विहितः अयाश्रयः आधारः येन सः, निर्जितसान्त्वितान्=पूर्वं निर्जिताः बलात् वशीकृता-पश्चात् सान्त्विताः सान्त्वनां प्रदत्ताः तान्, नरपतीन्=भूभुजान्, लीलया=हेलया-विलासेन, दूरात्=दूरेणैव, आलोकयन्=पश्यन्, भवान्=मम पुत्रस्त्वमित्यर्थः, पापेन=

पापशीलेन, मया=धृतराष्ट्रेणेत्यर्थः, हे पुत्रक ! हे वत्स !, वेदना=बाणादि-पीडा, सह्यः=सोढुं योग्या-किंनातिव्यथाकारी ?-इत्यभिप्रायः, इति=इत्येवम्, न पृष्ठः। युद्धादागतस्य कृतोपचारस्य कर्णादिस्वजनधृतकरस्य भवतः कुशलवृत्तान्तः पापेन मया अद्य न पृष्टः-इति भावः। समरान्निवृत्तः सन् अन्यदिनवत् त्वमद्य मत्समीपे कस्मान्न समायातः इत्युद्विग्नोऽस्तीत्य-भिप्रायः ॥ १ ॥

हिन्दी-अनुवाद—कङ्कटे=कवच को, उन्मोचिते=शरीर से हटा देने पर, कङ्कवदनैः=कंकनामक पक्षी के मुख के समान अग्रभाग वाली, चिमटी से, शल्यानि=बाणों के फलकों (अग्रभागों) को व्यपनीय=निकालकर, व्रणपट्टकेषु=घावों पर पट्टियों के, बद्धेषु=बाँध दिये जाने पर, कर्णे=कर्ण पर, कृतापाश्रयः=सहारा लिये हुए, निर्जितसान्त्वितान्=(पहले) जीते गये और (बाद में) सान्त्वना दिये गये, नरपतीन्=राजाओं को, लीलया=विलास के साथ (शान से) दूरात्=दूर से ही, आलोकयन्=देखते हुए, भवान्=आप, पापेन मया=पापी मुझ धृतराष्ट्र के द्वारा, हे पुत्रक !=हे बेटे !, वेदना=पीड़ा, सह्या=सहन करने के योग्य है ? इति=इस प्रकार, न पृष्टः=नहीं पूछे गये ॥ १ ॥

भावार्थ—कवच उतार देने पर कंक पक्षी की चोंच के सदृश बनी हुई चिमटी से बाणों के अग्रभागों को हटाकर, घावों पर पट्टियों के बाँध दिये जाने पर, कर्ण का सहारा लिये हुए, पहले जीते गये और बाद में सान्त्वना प्रदान किये गये राजाओं को लीला (नज़ाकत) के साथ दूर से ही देखते हुए आपसे मुझ पापी ने यह न पूछा कि हे पुत्र ! तुम्हारी पीड़ा सहन करने योग्य तो है ? (कहने का अभिप्राय यह है कि धृतराष्ट्र दुर्योधन से कह रहे हैं कि युद्ध से लौटकर आज तुम मुझ से क्यों नहीं मिले ?)।

छन्द—उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है।

समासः—कुरुकुलकाननैकशेषप्रवालः=कुरुकुलं एव काननम् इति कुरुकुलकाननम् तस्य एकः—केवलः शेषः प्रवालः—अंकुरः ("प्रवालमंकुरेऽप्यस्त्री"—इत्यमरः)। कृतापाश्रयः=कृतः अपाश्रयः आश्रयः येन तादृशः। निर्जितसान्त्वितान्=पूर्वं निर्जिताः पश्चाच्च सान्त्विताः, तान्।

टिप्पणियाँ—प्रवालः=अंकुर "प्रवालमंकुरेऽप्यस्त्री"—इत्यमरः। कच्चित्=यह प्रश्नवाचक अव्यय है। कङ्कटे=कवच। "कंकटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। कङ्कवदनैः=गिद्ध की चोंच के सदृश अग्रभाग वाले। शल्यानि=बाण के फलकों अग्रभागों को। व्यपनीय=निकालकर। व्रणपट्टकेषु=घावों पर पट्टियों के। बद्धेषु=बाँध दिये जाते हैं।

(धृतराष्ट्रो गान्धारी च स्पर्शेनोपेत्यालिङ्गतः)

गान्धारी—वत्स ! अतिगाढ़प्रहारवेदनापर्याकुलस्यास्मासु सन्निहितेष्वपि न प्रसरति ते वाणी। (वच्छ, अदिगाढप्पहारवेअणापज्जाउलस्स अम्हेसु सण्णिहिदेसु विण प्पसरदि दे वाणी।)

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन ! किमकृतपूर्वः संप्रति मय्यप्यसव्याहारः ?

गान्धारी—वत्स यदि त्वमप्यस्मान्नालपसि तत्किं साम्प्रत वत्सो दुःशासन आलपति दुर्मर्षणो वाथान्यो वा। (बच्छ, जइ तुमं वि अह्ने णालवसि ता किं संपदं वच्छो दुस्सासणो आलवदि दुम्मरिसणो वा अध अण्णो वा।) (इति रोदिति)।

दुर्योधनः—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी
तातस्य वाष्पपयसां तव चाम्ब हेतुः।
दुर्जातमत्र विमले भरतान्वयेवः
किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि ॥२॥

(धृतराष्ट्र तथा गान्धारी टटोलते टटोलते पास में आकर दुर्योधन का आलिङ्गन करते हैं।)

गान्धारी—बेटा, अति प्रबल प्रहार की पीड़ा से व्याकुल तुम्हारी वाणी हम लोगों द्वारा समीप में आ जाने पर भी खुल नहीं रही है।

धृतराष्ट्र—पुत्र दुर्योधन ! पहले कभी न किया गया मेरे प्रति तुम्हारा यह मौन क्यों ?

गान्धारी--बेटा ! यदि तुम भी हम लोगों से नहीं बोलते हो तो फिर क्या अब दुःशासन,दुर्मर्षण अथवा कोई दूसरा (बेटा) बोलेगा।

(ऐसा कहकर रोती है।)।

दुर्योधन—

अन्वयः--हे अम्ब ! अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी पापः अहं तव तातस्य च बाष्पपयसां हेतुः (अस्मि)। अत्र विमले (अपि) भरतान्वये दुर्जातं वः सुतक्षयकरं मां सुत इति किं अवैषि ?

संस्कृत-व्याख्या--हे अम्ब !=हे मातः, अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी=अप्रतिकृतः-प्रतिक्रियारहितः अनुजानां-भ्रातृणां, नाशः-क्षय द्रष्टुं शीलं यस्य सः पापः=पापबुद्धिः, अहम्=पाण्डवैः सह शत्रुताकारणभूतोऽहं दुर्योधन-इत्यर्थः, तव=भवत्याः, तातस्य=पितुः, च, बाष्पपयसाम्=अश्रुजलानाम्, हेतुः=कारणम्, अस्मि। अत्र=अस्मिन्, विमले=निर्मले, (अपि) भरतान्वये=भरतवंशे, दुर्जातम्=कुपुत्ररूपेण उत्पन्नम्, वः=युष्माकम्, सुतक्षयकरम्=पुत्रनाशकारणम्, माम्=दुर्योधनम्, सुत इति=पुत्र इति, किम्=कस्मात, अवैषि=जानासि ? अहं भवत्पुत्रत्व योग्यः नास्मि। भ्रातृवधकारणतया नीचोऽहमस्मि-इत्यभिप्रायः ॥२॥

हिन्दी-अनुवाद—हे अम्ब !=हे माता, अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी=बिना बदला लिये ही भाई का विनाश देखने वाला, पापः=पापी, अहम्=मैं, तव=आपके, च=तथा, तातस्य=पिता जी के, बाष्पपयसाम्=आँसुओं का, हेतुः=कारण, अस्मि=हूँ। अत्र=इस, विमले=निर्मल, भरतान्वये=भरतवंश में, दुर्जातम्=कुपुत्ररूप में पैदा हुये, वः=आपके, सुतक्षयकरम्=पुत्र के नाश का कारणभूत, माम्=मुझ दुर्योधन को, सुतः=पुत्र, इति=ऐसा, किम्=क्यों, अवैषि=समझ रहे हो ? ॥ २ ॥

भावार्थः—हे माता ! बिना बदला लिए अपने अनुज का नाश देखने वाला पापी मैं आपके तथा पिताजी के आँसुओं का कारण हूँ। इस निर्मल भरतवंश में कुपुत्र के रूप में उत्पन्न, आप लोगों के पुत्रों का नाश करने वाले मुझको आपलोग पुत्र' ऐसा क्यों समझ रहे हो ? वस्तुतः मैं "पुत्र" कहलाने योग्य नही हूँ।

छन्द—उक्त पद्य में 'बसन्ततिलका' छन्द है।

समासः—**अतिगाढ़प्रहारवेदनापर्याकुलस्य**=अतिगाढ़:—अतिप्रबलः यः प्रहारः-आघातः तस्य वेदना तथा पर्याकुलस्य-व्यथितस्य। **अकृतपूर्वः**= न कृतः पूर्वं, इति। **अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी**=अप्रतिकृतः अप्रतीकार-विषयीकृतः यः अनुजानां नाशः, तं पश्यतीति। **सुतक्षयकरम्**=सुतानां क्षयं करोतीति-सुतक्षयकरः, तम्।

टिप्पणियाँ—**स्पर्शेन**=अन्धे के समान शरीर के स्पर्श से। **उपेत्य**= पहचानकर। उसके समीप जाकर। धृतराष्ट्र तो जन्म से ही अन्धे थे। गान्धारी ने भी अपने पति को अन्धा जानकर जीवन-पर्यन्त आँखों पर पट्टी बाँधे रहने का सङ्कल्प लिया। अतएव उस समय दोनों ही (धृतराष्ट्र और गान्धारी-दुर्योधन के माता-पिता) अन्धे के समान थे। अतः अन्धे के सदृश उन दोनों ने टटोल-टटोलकर दुर्योधन के अंगों का स्पर्श कर उसे पहचाना। **प्रहारः**=आघात। **पर्याकुलस्य**=व्यथित। **अकृतपूर्वः**=जैसा पहले नहीं किया था। **अव्याहारः**=अनालाप-न बोलना। **दुर्मर्षणः**= दुर्मर्षण नाम का दुर्योधन का भाई। **अन्यो वा**=अथवा तुम्हारा कोई अन्य भाई। **अप्रतिकृतः**=बिना बदला लिये हुए भाई के बध को देखने वाला। **बाष्पपयसाम्**=अश्रुधाराओं का, आँसुओं का। **हेतु**,=कारण-निमित्त। **विमले**=निर्मल। **दुर्जातम्**=दुष्ट पुत्र। **सुतक्षयकरम्**=पुत्र के विनाश को देखनेवाला। **अवैषि**=जानते हो- समझते हो॥ २॥

गान्धारी—जात। अलं परिदेवितेन। त्वमपि तावदेकोऽस्यान्ध-युगलस्य मार्गोपदेशकः। तच्चिरं जीव। किं मे राज्येन जयेन वा

(जाद अलं परिदेविदेण । तुमं वि दाव एक्को इमस्स अन्धजुअलस्स मग्गोवदेसओ । ता चिरं जीव । किं मे रज्जेण जएण वा ।)

दुर्योधनः—

मातः किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते
सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैषा ।
निर्वत्सले सुतशतस्य विपत्तिमेतां
त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम् ॥३॥

नूनं विचेष्टितमिदं सुत शोकस्य ।

गान्धारी--हे पुत्र ! विलाप करने से बस (अर्थात् अधिक विलाप करने की आवश्यकता नहीं है ।) अब केवल तुम ही इस अन्धे जोड़े के पथ-प्रदर्शक हो । अतः बहुत समय तक जीवित रहो । मुझे राज्य अथवा विजय से क्या प्रयोजन ?

दुर्योधनः—

अन्वयः--हे मातः । ते किमपि असदृशं कृपणं वचः, सुक्षत्रियां भवती क्व ? च एषा दीनता क्व ? हे निर्वत्सले ! त्वं सुतशतस्य एतां विपत्ति न अनुचिन्तयसि, अयोग्यं मां रक्षसि ।

संस्कृत-व्याख्या--हे मातः ! हे जननि, ते=तव, किमपि=अनिर्वचनीयम्; असदृशम्=अयोग्यम्, कृपणम्=दीनम्, वचः=वचनम्, अस्तीति शेषः; सुक्षत्रिया=श्रेष्ठक्षत्रियकुलोत्पन्ना, भवती=श्रीमती, क्व=कुत्र ? च=तथा, एषा=इयम्, दीनता=दैन्यम्, क्व=कुत्र ? उभयमेकत्र संघटते-इत्यभिप्रायः । हे निर्वत्सले ! स्नेहशून्यहृदये-वात्सल्यशून्ये वा, त्वम्=भवती, सुतशतस्य=पुत्रशतस्य, एताम्=मरणरूपाम्, विपत्तिम्=आपदाम्, न=नहि, अनुचिन्तयसि=विभावयसि; अयोग्यम्=पुत्रधर्मरहितम्, माम्=पुत्रशतस्य निधने हेतुभूतं मां दुर्योधनम्, रक्षसि=रक्षितुमीहसे । इत्यनौचित्यं भवत्या इति भावः ॥ ३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हे मातः ।=हे माता, ते=तुम्हारा, किमपि=विलक्षण, असदृशम्=अनुचित, कृपणम्=दीनतायुक्त, वचः=वचन है। सुक्षत्रिया भवती क्व=कहाँ तो कुलीन क्षत्रियकुलोत्पन्ना वीराङ्गना आप, च=और; एषा दीनता क्व=यह दीनता कहाँ ? हे निर्वत्सले ! हे पुत्र-स्नेह से रहित, त्वम्=तुम, सुतशतस्य=सौ पुत्रों की, एताम्=इस, विपत्तिम्=आपत्ति (विनाश) को, न = नहीं, अनुचिन्तयसि=सोच रहे हो; अयोग्यम्=अयोग्य, माम्=मुझ दुर्योधन को, रक्षसि=बचा रही हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे माता ! यह तुम्हारा विलक्षण, अयोग्य, दीन वचन है। कहाँ तो आप कुलीन क्षत्रिय वीराङ्गना ? और कहाँ यह दीनता ? (दोनों में किसी प्रकार का सामञ्जस्य नहीं बैठता है।) हे पुत्र-स्नेह से रहित ! तुम अपने सौ पुत्रों के वध का स्मरण नहीं कर रही हो किन्तु मुझ अयोग्य (उनका बदला लेने की इच्छा न रखने वाले) की रक्षा कर रही हो। निश्चय ही यह पुत्र-शोक का ही कार्य है (अवश्य ही पुत्र-शोक के कारण तुम्हारे हतबुद्धि होने का ही यह प्रभाव है।) ।

छन्द—उपर्युक्त पद्य में "वसन्ततिलका" नामक छन्द है।

समास—सुतशतस्य=सुतानां शतं इति सुतशतम्-तस्य।

टिप्पणियाँ—परिदेवितेन=विलाप से। "विलापः परिदेवनम्"—इत्यमरः। मार्गोपदेशकः=सहायक। असदृशम्=अतुल्य, अयोग्य, अनुचित। किमपि=अनिर्वचनीय। कृपणम्=दीन। निर्वत्सले=वात्सल्य-स्नेह से शून्य। अनुचिन्तयसि=सोच रही हो, विचार कर रही हो। रक्षसि=रक्षा कर रही हो, बचा रही हो। विचेष्टितम्=सोचा गया हुआ, प्रभाव, कार्य। सुतशोकस्य = पुत्र-शोक-के कारण हतबुद्धि हो जाने से (तुम ऐसा सोच रही हो।) ।

संजयः—महाराज। किं वायं लोकवादो वितथः 'न घटस्य कूपपाते रज्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या' इति।

दुर्योधनः—अपुष्कलमिदम्। उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन ? (इति रोदिति।) ।

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य) वत्स ! समाश्वसिहि । समाश्वासय चास्मानिमामतिदीनां मातरं च ।

दुर्योधनः—तात ! दुर्लभः समाश्वास इदानीं युष्माकम् । किं तु—

कुकुंत्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया ।
विराजमानौ शोकेऽपि तनयाननुशोचतम् ॥ ४ ॥

संजय—महाराज ! क्या यह लोकवाद (लोकोक्ति) असत्य है कि 'घड़े के कुएं में गिर जाने पर रस्सी भी उसमें नहीं फेंक दी जाती ।' (अर्थात् १०० पुत्रों के मरजाने के पश्चात् अवशिष्ट एकमात्र पुत्र तुमको मृत्यु के मुख में भेज देना कैसे उचित कहा जा सकता है ? अर्थात् उचित कभी भी नहीं कहा जा सकता है ?) ।

दुर्योधन—(आपका) यह (कथन) श्रेष्ठ (पूर्णरूप से सही-) नहीं है । भोग करने वाले (व्यक्ति) के अभाव में. भोग सामग्री से क्या प्रयोजन ? (ऐसा कहकर रोता है ।) :

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन करके) बेटे ! धैर्य धारण करो और हमलोगों को तथा अत्यधिकदीन (दुःखी) अपनी इस मां को भी धैर्य बँधाओ ।

दुर्योधन—अब आप लोगों को धैर्य धारण कराना (सान्त्वना प्रदान करना) कठिन है । किन्तु—

अन्वयः—अद्य मया निहतपुत्रया कुन्त्या सह शोके अपि विराजमानौ युवां तनयान् अनुशोचतम् ॥ ४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अद्य=अस्मिन्नेव दिवसे, मया=दुर्योधनेन, निहतपुत्रया=निहताः-घातिताः पुत्राः यस्याः सा तया, कुन्त्या=पृथया, सह=सार्धम्, शोके अपि, विराजमानौ=वर्तमानौ, युवाम्, तनयान्=पुत्रान्, अनुशोचतम्=(तेषाम्) शोकं कुरुतम् । अद्यैव पाण्डुपुत्रान् हत्वा स्वयं प्राणान् त्यक्ष्यामीत्यभिप्रायः ॥ ४ ॥

हिन्दी-अनुवाद--अद्य=आज, मया=मेरे द्वारा, निहत पुत्रया=मार डाले गये पुत्रों वाली, कुन्त्यासह=कुन्ती के साथ, शोके=दुःख में, अपि=भी, विराजमानौ=वर्तमान, युवाम्=आप दोनों, तनयान्=दुःशासन आदि पुत्रों के प्रति, अनुशोचतम्--शोक करें ॥ ३ ॥

भावार्थ--आज ही मेरे द्वारा जिसके पुत्रों का हनन कर दिया गया है ऐसी कुन्ती के साथ शोक में भी बैठकर अपने पुत्रों के लिए शोक कीजियेगा। (अर्थात् मैं आज ही कुन्ती के पुत्रों (पाण्डवों) को मारकर तुम्हारे पुत्रों के वध का बदला ले लेता हूँ। तब तुम अपनी शत्रु कुन्ती के साथ बैठकर साथ ही साथ अपने पुत्रों के शोक का अनुभव करना।

अथवा--मैं आज ही कुन्ती के पुत्रों (पाण्डवों) का हनन कर दूँगा और स्वयं भी मर जाऊँगा। तब कुन्ती के साथ बैठकर तुम लोग भी साथ ही साथ शोक अथवा दुःख का अनुभव करना।)।

अलंकारः--उक्त पद्य में 'सहोक्ति' अलंकार है।

छन्दः--इसमें 'अनुष्टुप्' छन्द है।

समासः--उपक्रियमाणाभावे=उपक्रियमाणस्य अभावे-इति। निहत-पुत्रया=निहताः पुत्राः यस्याः सा, तया।

टिप्पणियां--लोकवादः=लोकोक्ति, लोक चर्चा। वितथः=असत्य; झूठ। अपुष्कलम्=अपर्याप्त, अश्रेष्ठ--"श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्"—इत्यमरः। उपक्रियमाणाभावे=भोग करने वाले (व्यक्ति) के अभाव में के विद्यमान न होने पर उपकरणेन=भोग्य पदार्थों से। किम्=क्या प्रयोजन? अर्थात् कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। समाश्वासः=धैर्य, सान्त्वना। निहतपुत्रया=मार डाले गये हैं पुत्र जिसके। विराजमानौ=वर्तमान, विद्यमान। अनुशोचतम्=शोक करें, दुःख करें, सोचें ॥ ४ ॥

गान्धारी—जात! एतदेव साम्प्रतं प्रभूतं यत्त्वमपि तावदेको जीवसि। तज्जात! अकालस्ते समरस्य। प्रसीद। एष ते शीर्षाञ्जलिः। निवर्त्यतां समरव्यापारात्। अपश्चिमं कुरु पितुर्वचनम्। (जाद,

एदं एव्व संपदं प्पभूदं जं तुमं वि दाव एक्को जीवसि। ता जाद अकालो दे समरस्स। प्पसीद। एसो दे सीसञ्जली। णिवट्ठीअदु समरव्वावारादो। अपच्छिमं करेहि पिदुणो वअणम्।)

धृतराष्ट्रः—वत्स ! शृणु वचनं तवाम्बाया मम च निहताशेषबन्धुवर्गस्य। पश्य—

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात्।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुःशेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पालय ॥५॥

गान्धारी—हे पुत्र ! (मेरे लिये) अब यही बहुत है कि एक तुम ही जीवित हो। अतः हे पुत्र ! (शत्रुओं के साथ) तुम्हारे युद्ध का (अब) समय नहीं है। प्रसन्न होओ। तुम्हारे यह हाथ जोड़ती हूँ। युद्ध-व्यापार से निवृत्त हो जाओ। (अपने) पिता के वचन का पालन करो।

धृतराष्ट्र—हे पुत्र। अपनी माँ के तथा मारे गये इष्ट बन्धु-बान्धवों वाले मेरे वचन को सुनो (स्वीकार करो)। देखो—

अन्वयः—ययोः बलेन दायादाः न गणिताः, तौ द्रोणभीष्मौ हतौ। कर्णस्य आत्मजं (कर्णस्य) अग्रतः शमयतः फाल्गुनात् जगत् भीतम्। मे वत्सानां निधनेनरिपुः अधुना त्वयि शेषप्रतिज्ञः, अतः वैरिषु मानं मुञ्च। अन्धौ इमौ पितरौ पालय ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—ययोः=द्रोणभीष्मयोः, बलेन=शक्त्या, दायादाः=दायं पित्रादि द्रव्यमाददतेऽदन्तीति वा दायादाः-ज्ञातयःयुधिष्ठिरादयः पाण्डवाः, न गणिताः=न आकलिताः-तुच्छत्वेनावज्ञाताः, तौ, द्रोणभीष्मौ=आचार्य पितामहौ, हतौ=विनाशितौ। कर्णस्य=राधेयस्य, आत्मजम्=पुत्रम्, वृषसेनम्, (कर्णस्य), अग्रतः=समक्षम्, शमयतः=नाशयतः, फाल्गुनात्=अर्जुनात्, जगत्=संसारः, भीतम्=त्रस्तम्। अतः तस्मिन्नपि विश्रम्भः न कार्यः।

मे=मम, वत्सानाम्=एकोनशतसंख्याकपुत्राणाम् निधनेन=मारणेन-वधेन वा, अधुना=सम्प्रति, रिपुः=शत्रुः भीम-इत्यर्थः, त्वयि=भवति.दुर्योधने, शेषप्रतिज्ञः शेषा-अवशिष्टा प्रतिज्ञा-प्रणः यस्य सः ("भीमेन प्रतिज्ञातमासीत्-यदहं धृतराष्ट्रस्य पुत्रशतं हनिष्यामि" एतादृशी प्रतिज्ञा कृता आसीत्।)। अतः, हे तात! ।=हे वत्स!, वैरिषु=शत्रुषु, मानम्=अहंकारम्, मुञ्च=त्यज। अन्धौ=नेत्रहीनौ, इमौ=एतौ, पितरौ=पितरं जननीञ्च स्वाम्, पालय=सेवस्व, रक्ष वा ॥ ५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—ययोः=जिन दोनों के, बलेन=बल के आधार पर, दायादाः=युधिष्ठिर आदि बन्धुओं की, न गणिताः=परवाह नहीं की, तौ=वे दोनों, द्रोणभीष्मौ=द्रोण तथा भीष्म, हतौ=मार डाले गये। कर्णस्य=कर्ण के आत्मजम्=पुत्र को, (कर्णस्य=कर्ण के ही) अग्रतः=समक्ष, शमयतः मार डालते हुये, फाल्गुनात्=अर्जुन से, जगत्=संसार, भीतम्=डर गया है। मे=मेरे, वत्सानाम् पुत्रों के, निधनेन=संहार से, अधुना=इस समय, रिपुः=शत्रु, त्वयि=तुम्हारे ही विषय में, शेषप्रतिज्ञः=अवशिष्ट प्रतिज्ञा वाला है। अतः इसलिये हे तात्! हे बेटा!, वैरिषु=शत्रुओं, के प्रति, मानम्=अहंकार अभिमान को मुञ्च=त्याग दो। अन्धौ=अन्धे, इमौ=इन, पितरौ=माता-पिता की। पालय=सेवा करो, रक्षा करो ॥५॥

भावार्थ—जिन भीष्म और द्रोण के बल पर मैंने युधिष्ठिर आदि भाई पाण्डु के पुत्रों की चिन्ता नहीं की थी, वे द्रोण और भीष्म मार डाले गये। कर्ण के देखते-देखते उसके पुत्र वृषसेन का बध करते हुये अर्जुन से समस्त संसार भयभीत हो उठा है। ऐसी स्थिति में कर्ण का भरोसा करना भी बेकार है। मेरे पुत्रों के मारे जाने के कारण शत्रु (भीम) अब केवल तुम्हारे ही बारे में अविष्ट प्रतिज्ञा वाला है। अतः हे पुत्र दुर्योधन! तुम शत्रु के बारे में अभिमान को छोड़ दो तथा अपने इन अन्धे मां-बाप का पालन करो ॥५॥

छन्द—उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है। लक्षण—सूर्याश्वैर्मसज-स्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"।

समासः—दायादाः=दायं-पित्रादि द्रव्यमाददते अदन्तीति वा दायादाः। फाल्गुनात्=फाल्गुनीनक्षत्रे जातः फाल्गुनः, तस्मात्। शेषप्रतिज्ञः=शेषा प्रतिज्ञा यस्य सः।

व्याकरणः—दायादाः=दायपूर्वक अद् (भक्षणे) धातु से 'कर्मण्यण' से अण होने पर। अथवा—दाय+आङ्+दा (कर्त्ता में)। फाल्गुन= फाल्गुन+अण (स्वार्थ में) होकर।

टिप्पणियां—प्रभूतम्=पर्याप्त। अकालः=अनवसर। शीर्षाञ्जलिः= प्रणाम। अपश्चिमम्=उल्लंघन न किये जाने योग्य। मानने योग्य, स्वीकार किये जाने योग्य। दायादाः=भागीदार, हिस्सेदार। अर्थात् शत्रुरूप में विद्यमान पाण्डु के पुत्र-सभी पाण्डव। गणिताः=गिने गये, कुछ समझे गये। शमयतः=समाप्त करते हुए, मारते हुए, नष्ट करते हुए। फाल्गुनात्= फाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए अर्जुन से। शेषप्रतिज्ञः=भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि "मैं धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का विनाश करूँगा।" इस प्रतिज्ञा के अनुसार भीम ने धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से ९९ पुत्रों को अपने हाथों मार डाला था। अब केवल एक पुत्र 'दुर्योधन' ही शेष था कि जिसे मार देने पर भीम की प्रतिज्ञा शत-प्रतिशत पूर्ण होती थी। अतः दुर्योधन के जीवित रहते अभी भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण होने में एक प्रतिशत अंश शेष था। यही उनकी प्रतिज्ञा का शेष भाग था। पालय=पालन करो, संभालो, रक्षा करो॥ ५॥

दुर्योधनः—समरात्प्रतिनिवृत्य किं मया कर्त्तव्यम्?

गान्धारी—जात! यत्पिता ते विदुरो वा भणति। (जाद जं पिदा दे विउरो वा भणदि।)

संजयः—देव! एवमिदम्।

दुर्योधनः—सञ्जय! अद्याप्युपदेष्टव्यमस्ति।

संजयः—देव! यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम्।

दुर्योधनः—(सक्रोधम्) शृणुमस्तावद्ब्रुवत एव प्रज्ञावतः संप्रत्यस्मदनुरूपमुपदेशम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स ! युक्तवादिनि संजये किमत्र क्रोधेन । यदि प्रकृतिमापद्यसे तदहमेव भवन्तं ब्रवीमि । श्रूयताम् ।

दुर्योधनः—कथयतु तातः ।

धृतराष्ट्रः—वत्स ! किं विस्तरेण । संधत्तां भवानिदानीमपि युधिष्ठिरमोप्सितपणबन्धेन ।

दुर्योधनः—तात ! तनयस्नेहवैक्लव्यादम्बा बालिशत्वात्संजयश्च काममेव ब्रवीतु । युष्माकमप्येवं व्यामोहः । अथ वा प्रभवति पुत्रनाशजन्मा हृदयज्वरः । अन्यच्च तात ! अस्खलितभ्रातृशतोऽहं यदा तदावधीरितवासुदेवसाम्नोपन्यासः । सम्प्रति हि दृष्टपितामहाचार्यानुजराजचक्रविपत्तिः स्वशरीरमात्रस्नेहादुदात्तपुरुषव्रीडावहममुखावसानं च कथमिव करिष्यति दुर्योधनः सह पाण्डवैः संधिम् । अन्यच्च । नयवेदिन्संजय !

हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् ।
दुःशासने हतेऽहीनाः सानुजाः पाण्डवाः कथम् ॥ ६ ॥

दुर्योधन—युद्ध से निवृत्त होकर मुझे क्या करना चाहिये ?

गान्धारी—हे पुत्र ! तुम्हारे पिताजी अथवा (महामन्त्री) विदुर जो कुछ कहें, (वही करो) ।

संजय—महाराज ! यह ठीक है ।

दुर्योधनः—संजय ! (क्या) अब भी उपदेश का अवसर है ?

संजय—महाराज ! विजय की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति जब तक जीवित रहा करता है तब तक वह बुद्धिमानों के उपदेश का पात्र रहा करता है ।

दुर्योधनः—(क्रोध के साथ) अच्छा तो, हम आप ही बुद्धिमान् का अपने योग्य उपदेश सुनते हैं ।

धृतराष्ट्रः—हे पुत्र ! यथार्थ कथन करने वाले इस संजय पर क्रोध करने से क्या ? यदि आप सुस्थिर (शान्त) हो जायें तो मैं ही आपसे कहता हूँ । सुनो ।

दुर्योधन--पिता जी कहें ।

धृतराष्ट्र--हे पुत्र ! विस्तार में जाने से क्या लाभ ? आप अब भी अपनी अभीष्ट शर्त के साथ युधिष्ठिर से सन्धि कर लें ।

दुर्योधन--पिताजी ! पुत्र-स्नेह की विकलता के कारण माताजी तथा मूर्खता के कारण संजय भले ही ऐसा कहें । (किन्तु) आपको यह बुद्धि-विभ्रम (किस भाँति हो गया है ।) अथवा पुत्रों की मृत्यु से उत्पन्न होने वाला हृदय-दाह (शोक) ही (यह अपना) प्रभाव दिखला रहा है । पिता जी ! इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि जब मेरे सौ भाई नष्ट नहीं हुए थे, तब मैंने कृष्ण के द्वारा रखी गई शान्ति-प्रस्तावना की अवहेलना कर दी थी । तो अब पितामह (भीष्म) आचार्य (द्रोण) भाइयों तथा राजसमूह की विपत्ति (मृत्यु) को देखने वाला दुर्योधन केवल अपने शरीर के प्रति मोह के कारण पाण्डवों के साथ उदात्त पुरुषों के लिये लज्जाकर और भविष्य में दुःखमात्र ही प्रदान करनेवाली सन्धि को किस भाँति करेगा ? और भी । हे नितिज्ञ संजय !

अन्वयः--रिपोः हीयमानाः नृपाः परान् सन्दधते किल, दुःशासने हते अहीनाः सानुजाः पाण्डवाः कथम् (सन्धि विधास्यन्ति) ।

संस्कृत-व्याख्या— रिपोः=शत्रोः, हीयमानाः=बलहीनाः, नृपाः=राजानः, परान्=शत्रून्, सन्दधते=सन्धि कुर्वन्ति, किलेत्यागमे, दुःशासने=ममानुजे, हते=मृते सति, अहीनाः=अक्षताः=सम्पूर्णा इत्यर्थः । सानुजाः=भ्रातृभिर्युक्ताः, पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः, कथम्=केन प्रकारेण, सन्धि विधास्यन्ति । अतः सन्धिप्रस्तावोऽपि व्यर्थ एवेति नीतिः ॥ ६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—रिपोः=शत्रु की अपेक्षा, हीयमानाः=कम शक्तिवाले, नृपाः=राजा लोग, परान्=शत्रुओं से, सन्दधते किल=सन्धि किया करते हैं ।

दुःशासने=दुःशासन के, हते=मारे जाने पर, अहीनाः=भरे-पूरे अथवा प्रबल, सानुजाः=भाइयों समेत, पाण्डवाः=युधिष्ठिर आदि पाण्डु के पुत्र, कथम्=कैसे-सन्धि करेंगे ?

भावार्थः—शत्रु की अपेक्षा कम शक्ति रखने वाले राजा लोग शत्रुओं के साथ सन्धि किया करते हैं। दुःशासन के मारे जाने पर शक्तिशाली तथा सभी भाइयों से युक्त पाण्डव हम लोगों के साथ किस भाँति सन्धि करने को उद्यत होंगे ?

कहने का अभिप्राय यह है कि मेरे तो सभी भाई तथा शक्तिशाली योद्धा-गण युद्ध में मारे जा चुके हैं। मेरा पक्ष तो निर्बल-सा हो गया है। पाण्डवों के तो सभी भाई विद्यमान हैं तथा वे पूर्ण शक्तिशाली भी हैं। ऐसी स्थिति में वे हम लोगों के साथ किस भाँति सन्धि करने को तय्यार होंगे।

अलंकार—उक्त पद्य में 'काव्यलिङ्ग' नामक अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'अनुष्टुप' छन्द है।

समास—ईप्सितपणबन्धेन=ईप्सितस्य-युधिष्ठिरापेक्षितस्य स्वापेक्षितस्य वा पणस्य मूल्यस्य बन्धेन। तनयस्नेहवैक्लव्यात्=तनयानां स्नेहस्य वैक्लव्यात्-विकलताहेतोः। अस्खलितभ्रातृशतः=अस्खलितं-अविनष्टं विद्यमानं वा भ्रातृणां शतं यस्य तथाविधः। अवधीरितवासुदेवसामोपन्यासः=अवधीरितः तिरस्कृतः वासुदेवस्य-कृष्णस्य सामोपन्यासः-शान्तिप्रार्थना-सन्धि-प्रस्तावो वा येन तथाविधः। दृष्टपितामहाचार्यानुजराजचक्रविपत्तिः=दृष्टा पितामहस्य-भीष्मस्य आचार्यस्य-द्रोणस्य अनुजानां-भ्रातृणां राजचक्रस्य-राजसमूहस्य विपत्तिः-विनाशो येन, तथाविधः। उदात्तपुरुषव्रीडावहम्=उदात्तपुरुषाणां-श्रेष्ठजनानां व्रीडां-लज्जां आवहतीति, तम्। असुखावसानम्=असुखम्-दुःखमित्यर्थः अवसानं-अन्तं यस्य तम्। नयवेदिन्=नयं-नीतिं वेत्तीति, तत्सम्बुद्धौ॥

टिप्पणियाँ—प्राणिति=जीवित है। उपदेष्टव्यभूमिः=उपदेश देने का विषय अथवा पात्र। विजिगीषुः=विजय की इच्छा रखने वाला-विजयाभिलाषी। राजा। संपन्नश्च प्रकृतिभिः महोत्साहः कृतश्रमः। जेतुमेषणशीलश्च

विगीषुरितिस्मृतः ॥" यह विजिगीषु का लक्षण है। प्रज्ञावताम्=बुद्धिमानों का। विस्तरेण=विस्तार से। ईप्सितपणबन्धेन=मनचाही शर्तों के साथ। वैक्लव्यात=व्याकुलता के कारण। बालिशत्वात्=मूर्ख होने से। व्यामोहः=बुद्धि का विभ्रम। हृदयज्वरः=मानसिक दुःख अथवा सन्ताप। अस्खलितम्=अविनाशित-विद्यमान। अवधीरितः=तिरस्कृत। सामोपन्यासः=शान्ति प्रस्ताव अथवा सन्धि का प्रस्ताव। राजचक्रस्य=राजसमूह का। उदात्तपुरुषव्रीडावहम्=महापुरुषों के लिये लज्जाकर। असुखावसानम्=भविष्य में दुःख को ही प्रदान करनेवाली। परिणाम में दुःख देने वाला। दुःखान्त। नयवेदिन! हे नीतिशास्त्र के ज्ञाता! परान्=शत्रुओं से। अहीनाः=जो किसी भी प्रकार से हीन नहीं हो सके हैं। अर्थात् जो पूर्णरूप से सबल हैं॥ ६॥

धृतराष्ट्रः—वत्स! एवं गतेऽपि मत्प्रार्थनया न किंचिन्न करोति युधिष्ठिरः। अन्यच्च। सर्वदैवाप्रकृष्टमात्मानं मन्यते युधिष्ठिरः।

दुर्योधनः—कथमिव?

धृतराष्ट्रः—वत्स! श्रूयतां प्रतिज्ञा युधिष्ठिरस्य नाहमेकस्यापि भ्रातुर्विपत्तौ प्राणान्धारयामीति। बहुच्छलत्वात्सङ्ग्रामस्यानुजनाशमाशङ्कमानो यदैव भवते रोचते तदैवासौ सज्जः संधातुम्।

सञ्जयः—एवमिदम्।

गान्धारी—जात! उपपत्तियुक्तं प्रतिपद्यस्व पितुर्वचनम्। (जाद, उववत्तिज्जुत्तं पडिवज्जस्स पिदुणो वअणम्।)

दुर्योधनः—तात! अम्ब! संजय!

एकेनापि विनानुजेन मरणं पार्थः प्रतिज्ञातवान्—
भ्रातॄणां निहते शतेऽभिलषते दुर्योधनो जीवितुम्।
तं दुःशासनशोणिताशनमरिं भिन्नं गदाकोटिभि—
र्भीमं दिक्षु न विक्षिपामि कृपणसंधिं विदध्यामहम् ॥७॥

धृतराष्ट्र—हे पुत्र! ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना पर युधिष्ठिर कुछ भी नहीं करेगा (ऐसी बात) नहीं है। (अभिप्राय यह है कि मुझे विश्वास

है कि वह मेरी बात मान जायगा। दूसरी बात यह भी है कि युधिष्ठिर सदैव अपने आपको ही नहीं (श्रेष्ठ नहीं) मानता है।

दुर्योधन—कैसे ?

धृतराष्ट्र-हे पुत्र ! युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा यह है कि मैं "एक भी भाई की विपत्ति में (अर्थात् एक भी भाई की मृत्यु हो जाने पर) प्राण-धारण नहीं करूँगा।" युद्ध के नानाविध कपटपूर्ण होने के कारण भाइयों के विनाश से डरने वाला वह (युधिष्ठिर) जब भी आपको अच्छा लगे, तब ही सन्धि करने को तय्यार है।

संजय—यह ऐसा ही है।

गान्धारी—हे पुत्र ! पिता के युक्तियुक्त वचनों को स्वीकार कर लो।

दुर्योधन—पिता जी, माता जी तथा संजय !

अन्वयः—पार्थः एकेन अपि अनुजेन विना मरणं प्रतिज्ञातवान्। दुर्योधनः भ्रातृणां शते निहते जीवितुं अभिलषते। दुःशासनशोणिताशनं अरिं तं भीमं गदाकोटिभिः भिन्नं दिक्षु न विक्षिपामि। कृपणः अहं सन्धिं विदध्याम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—पार्थः=कुन्तीपुत्रः युधिष्ठिरः, एकेन, अनुजेन=लघुभ्राता, विना, मरणम्=प्राणत्यागम्, प्रतिज्ञातवान्=निश्चितमकरोत। एतादृशी प्रशसनीया स्निग्धबन्धुभावना दर्शनीया अस्ति। दुर्योधनः=सुयोधनः, भ्रातृणाम्=अनुजानाम्, शते, निहते=विनाशिते-मृते वा, अपि, जीवितुम्=प्राणान् धारयितुम्, अभिलषते=इच्छति। कीदृशी निन्दनीया बन्धुभावना अस्ति। दुःशासनशोणिताशनम्=दुःशासनस्य शोणितं रक्तं अश्नातीति, तम् अरिम्=शत्रुम्, तम्=आततायिनम्, भीमम्=वृकोदरम्, गदाकोटिभिः=गदायाः अग्रभागेनः, भिन्नम्=विदीर्णम्, कृत्वा दिक्षु=दिशासु, न, विक्षिपामि=निक्षिपामि। कृपणः=दीनो भूत्वा, अहम्, सन्धिम् विदध्याम्=कुर्याम् ? मम तु अयमेव निश्चयः यदहं सन्धिं तु कदापि न करिष्यामि। गदायाः अग्रभागेन भीमं भित्वा दिशासु निक्षेपयिष्यामि ॥७॥

हिन्दी-अनुवाद—पार्थः=कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने, एकेन=एक, अपि=भी, अनुजेन=लघु भ्राता के, विना=विना, मरणम्=मर जाने की, प्रतिज्ञातवान्= प्रतिज्ञा की है। दुर्योधनः=मैं, भ्रातृणाम् शते=सो भाइयों के, निहते=मर जाने पर भी, जीवितुम्=जीने की, अभिलषते=इच्छा करता हूँ। दुःशासनशोणिताशनम्=दुःशासन का रुधिर पान करने वाले, अरिम्=शत्रु, तम् उस, भीमम्=भीम को, गदाकोटिभिः=गदा के अग्रभाग से, भिन्नम्=विदीर्ण=करके, दिक्षु=दिशाओं में, न विक्षिपामि=न फेंक दूं ? कृपणः=दीन होकर, अहम्=मैं, सन्धिम्=सन्धि, विदध्याम्=कर लूँ ॥७॥

भावार्थः—युधिष्ठिर ने तो एक भी छोटे भाई के मारे जाने पर स्वयं मरजाने (प्राण त्यागने) की प्रतिज्ञा की है। और एक मैं हूँ कि जो सौ भाइयों के मर जाने पर भी जीवित रहना चाहूँ ? तथा जीवित रहने के लिए सन्धि करूँ। मैं तो अपने छोटे भाई दुःशासन के मारने वाले शत्रु भीमसेन को गदा के अग्रभाग से मारकर उसे फेंक दूँगा ताकि उसके शरीर को चील और कौवे आदि खायें। मैं दीन बनकर शत्रु के समक्ष जाकर सन्धि की प्रार्थना कभी भी नहीं करूँगा।

अलंकारः—उपर्युक्त पद्य में 'यमक' अलंकार है।

छन्दः—इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

समासः—दुःशासनशोणिताशनम्=दुःशासनस्य शोणितम्-दुःशासनशोणितम्, तं अश्नातीति, तम्। गदाकोटिभिः=गदायाः कोटिभिः इति।

टिप्पणियाँ—विपत्तौ=विनाश में। संधातुम्=सन्धि करने के लिए। उपपत्तियुक्तम्=युक्तियों से परिपूर्ण। प्रतिज्ञातवान्=प्रतिज्ञा की है। जीवितुम्=जिन्दा रहने की। शोणिताशनम्=रक्त पान करने वाले। कोटिभिः=अग्रभाग से। भिन्नम्=विदीर्ण। विक्षिपामि=फेंकूँ। कृपणः=दीन ॥ ७ ॥

गान्धारी—हा जात दुःशासन ! हा मदङ्कदुर्ललित ! हा युवराज ! अश्रुतपूर्वा खलु कस्यापि लोक ईदृशी विपत्तिः। हा वीरशतप्रसविनि हतगान्धारि ! दुःखशतं प्रसूतासि, न पुनः सुतशतम्। (हा जाद दुस्सासण, हा मदङ्कदुल्ललिद, हा जुअराअ, अस्सुदपुव्वा क्खु कस्स वि लोए ईदिसी विपत्ती। हा वीरसदप्पसविणि हदगान्धारि दुक्खसदं प्पसूदासि। ण उण सुदसदम्।) (सर्वे रुदन्ति)।

संजयः—(वाष्पमुत्सृज्य) तात, अम्ब, प्रतिबोधयितुं महाराजमिमां भूमिं युवामागतौ। तदात्मापि तावत्संस्तभ्यताम्।

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन ! एवं विमुखेषु भागधेयेषु त्वति चामुञ्चति सहजं मानमरिषु त्वदेकशेषजीविताल‍म्बनेयं तपस्विनी गान्धारी कमवलम्बतां शरणमहं च।

दुर्योधनः—श्रूयतां यत्प्रतिपत्तुमिदानीं प्राप्तकालम्।

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यातिरस्कृतविद्विषः
प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चनाः।
अभिमुखमरीन् घ्नन्तः संख्ये हताः शतमात्मजा
वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया॥ ८॥

गान्धारी—हाय, पुत्र दुःशासन ! हाय, मेरी गोद के हठी। हाय, युवराज। लोक में पहले कभी किसी की भी ऐसी विपत्ति (मृत्यु) नहीं सुनी गई। हाय, सौ वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, अभागिन गान्धारी ! तुमने सौ पुत्र नहीं अपितु सौ दुःख ही उत्पन्न किये। [सभी रोते हैं।]

संजय—(आँसू बहाते हुए) पिता जी और माता जी। आप लोग महाराज को आश्वासन प्रदान करने हेतु यहाँ आये हैं। तो फिर पहले आप अपने को भी संभालें।

धृतराष्ट्रः—हे पुत्र दुर्योधन। भाग्य के इस प्रकार से विपरीत हो जाने और तुम्हारे द्वारा शत्रुविषयक (प्रतिशोध की भावना से युक्त) अभिमान

का परित्याग न किये जाने पर, यह वेचारी गान्धारी, कि जिसके प्राणों के सहारे के रूप ये एकमात्र तुम ही शेष रह गये हो, और मैं किसकी शरण को प्राप्त करूँ ?

दुर्योधनः--अब जिस कार्य को करने का समय है, उसे सुनिये--

अन्वयः—कलितभुवनाः भुक्तैश्वर्याः तिरस्कृतविद्विषः प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चनाः अरीन् अभिमुखं घ्नन्तः संख्ये शतं आत्मजाः हताः। (अतऐवेदानीम्) अम्बया सहितः तात, सगरेण ऊढां धुरं वहतु ॥ ८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—कलितभुवनाः=कलितं स्वायत्तीकृतं वशीकृतं वा भुवनं जगत् यैस्ते, भुक्तैश्वर्याः=भुक्तं-प्राप्तं ऐश्वर्यं-सम्पत्तिः प्रभुत्वं वा यैस्ते, तिरस्कृतविद्विषः=तिरस्कृताः अपमानिताः विद्विषः अरयः यैस्ते, प्रणतशिरसाम्=नतमस्तकानाम्, राज्ञाम्=भूपतीनाम्, चूडासहस्रकृतार्चनाः= चूडानां शिखानां सहस्रैः कृतं सम्पादितं अर्चनं पूजनं वन्दनं वा येषां ते, अरीन्=शत्रून्, अभिमुखम्=सम्मुखम्, घ्नन्तः=विनाशयन्तः, सङ्ख्ये=युद्धे, शतम्=शतसंख्याकाः, आत्मजाः=भवत्पुत्राः, (मरणार्थं कृतनिश्चयः अहमतो मामपि आदाय-इत्यभिप्रायः) हताः=विनाशिताः। (अतएव-इदानीम्) अम्बया=मज्जनन्या गान्धार्या, सहितः, तातः=पिता (भवान्-इत्यर्थः), सगरेण=सगरनामकसूर्यवंशविख्यातेन महाराजेन, ऊढाम्=धृताम्, धुरम्= भुवो भारम्, वहतु=धारयतु। यथा राजा सगरः पुत्राणां षष्ठिसहस्रं विनष्टे (एते सहसैव क्रुद्धेन कपिलमुनिना भस्मसात् कृताः=इति पुराण प्रसिद्धिः।) सति स्वयमेव पृथिव्याः पालनं चकार, तथैव मम तातोऽपि करोत्वित्य-भिप्रायः ॥ ८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—कलितभुवनाः=समस्त संसार को अपने आधीन कर लेने वाले, भुक्तैश्वर्याः=ऐश्वर्य अथवा प्रभुत्व का उपभोग करने वाले, तिरस्कृतविद्विषः=शत्रुओं को अपमानित अथवा अभिभूत करने वाले, प्रणतशिरसाम्=नतमस्तकः राज्ञाम्=राजाओं के, चूडासहस्रकृतार्थनाः= हजारों मुकुटों से पूजित, अरीन्=शत्रुओं को, अभिमुखम्=सम्मुख, घ्नन्तः= मारते हुए, संख्ये=युद्ध में, शतम्=सौ, आत्मजाः=पुत्र, हताः=मारे जा चुके

हैं। (अतएव=इसलिये, इदानीम्=इस समय) अम्बया=माता के, सहितः=सहित, तातः=पिता जी, सगरेण=राजा सगर के द्वारा, ऊढाम्=धारण की गयी, धुरम्=पृथ्वी के भार को, वहतु=धारण करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जिनका समस्त विश्व पर आधिपत्य था, संसार के समस्त ऐश्वर्य और सम्पत्ति का जिन्होंने उपभोग किया था, शत्रुओं को जिन्होंने परास्त किया था, जो झुके हुए हजारों राजाओं के मुकुटों से पूजित थे, ऐसे आप के सौ पुत्र युद्ध में शत्रुओं के सम्मुख प्रहार करते हुए मारे जा चुके हैं। इसी प्रकार पहले राजा सगर के साठ हजार पुत्र युद्ध में कपिलमुनि के क्रोध से भस्म कर दिये गये थे। उस समय माता के साथ पिता सगर ने पृथ्वी के भार को वहन कर अनेक वर्षों तक राज्य किया था, उसी प्रकार आप भी माता के साथ रहते हुए अपने सौ पुत्रों के मर जाने पर पृथ्वी का भार ग्रहण करें ॥ ८ ॥

अलंकारः—उक्त पद्य में "निदर्शना" नामक अलंकार है।

छन्दः—इसमें "हरिणी" नामक छन्द है।

लक्षण—"नसमरसलागः षडवेदैर्हयैर्हरिणी मता"।

समासः—त्वदेकशेषजीवितालम्बना=त्वमेव एकः शेषः जीवितस्य आलम्बनम् यस्याः सा। कलितभुवनाः=कलितं भुवनं यैस्ते। तिरस्कृतविद्विषः=तिरस्कृताः विद्विषः यैस्ते। प्रणतशिरसाम्=प्रणतानि शिरांसि येषां तेषाम्। चूडासहस्रकृतार्चनाः=चूडानां सहस्रैः कृत अर्चनम् येषां ते ॥ ८ ॥

टिप्पणियां—भागधेयेषु=भाग्यों के। सहजम्=स्वाभाविक। तपस्विनी=बेचारी "तपस्वी ताप से चानुकम्पार्हे च तपस्विनि" इति विश्वः। विद्विषः=शत्रुगण। कलितम्=वशीभूत, अपने आधीन किये गये हुए। घ्नन्तः=प्रहार करते हुए, मारते हुए। संख्ये=युद्ध में। हताः=मार दिये, नष्ट कर दिये। ऊढाम्=धारण की गई हुई। धुरमु=पृथ्वी के भार को। वहतु=धारण करें ॥ ८ ॥

विशेष— शतमात्मजाः=दुर्योधन समेत धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे। दुर्योधन भी मरने का निश्चय कर चुका है। अतः वह अपनी भी गणना मरे हुये भाइयों में ही करता है और इसी दृष्टि से वह 'शतमात्मजाः'= सौ पुत्र इन पदों का प्रयोग कर रहा है ॥ ८ ॥

विपर्यये त्वस्याधिपतेरुल्लङ्घितः क्षात्रधर्मः स्यात्।

(नेपथ्ये महान्कलकलः।)

गान्धारी—(आकर्ण्य सभयम्) जात! कुत्रैतत् हाहाकारमिश्रं तूर्यरसित श्रूयते। (जाद, कहिं एदं हाहाकारमिस्सं तूररसिदं सुणीअदि।)

सञ्जयः—अम्ब! भूमिरियमेवं विधानां भीरुजनत्रासनाना महानिनादानाम्।

धृतराष्ट्रः—वत्स सञ्जय! ज्ञायतामतिभैरवः खलु विस्तारी हाहारवः। कारणेनास्य महता भवितव्यम्।

दुर्योधनः—तात! प्रसीद। पराङ्मुखं खलु दैवमस्माकम्। यावदपरमपि किंचिदत्याहितं न श्रावयति तावदेवाज्ञापय मां संग्रामावतरणाय।

गान्धारी—जात! मुहूर्तं तावन्मां मन्दभाग्यां समाश्वासय। (जाद, मुहुत्तअं दाव मं मन्दभाइणीं समस्सासेहि।)

धृतराष्ट्रः—वत्स! यद्यपि भवान्समराय कृतनिश्चयस्तथापि रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम्।

दुर्योधनः—

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः
किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यन्न प्रकाशं रणे।

गांधारी—जात! एकाकी त्वम्। कस्ते साहाय्यं करिष्यति? (जाद, एआइ तुमम्। को दे सहाअत्तणं करिस्सदि।)।

दुर्योधनः—

एकोऽहं भवतीसुतक्षयकरो मातः कियन्तोऽरयः
साम्यं केवलमेतु दैवमधुना निष्पाण्डवा मेदिनी ॥ ६ ॥

इसके विपरीत होने पर राजा के क्षात्र-धर्म का उल्लंघन होगा।

(पर्दे के पीछे प्रचण्ड कोलाहल होता है।)

गान्धारी—(सुनकर, भय के साथ) हे पुत्र! हाहाकार से मिश्रित यह वाद्य-ध्वनि कहाँ से सुनायी दे रही है?

संजय—हे माता। भीरु लोगों को डराने वाली इस प्रकार की प्रचण्ड ध्वनियों का यह (युद्ध क्षेत्र) स्थान ही है।

धृतराष्ट्र—वत्स संजय! मालूम करो। हाहाकार यह शब्द तो अतिभीषण तथा चारों ओर फैलने वाला है। इसका कोई महान् कारण अवश्य होना चाहिये।

दुर्योधन—पिताजी। कृपा कीजिये। निश्चय ही भाग्य हम लोगों के विपरीत है। जब तक (भाग्य) अन्य किसी महान् भय (अनर्थ) को नहीं सुना देता तब तक मुझे युद्धभूमि में उतरने की आज्ञा दीजिये।

गान्धारी—हे पुत्र? क्षणभर के लिए मुझ मन्दभागिनी को तो धैर्य बँधाओ।

धृतराष्ट्र—हे पुत्र। यद्यपि आपने युद्ध के लिए निश्चय किया हुआ है। फिर भी गुप्तरूप से शत्रु के वध का उपाय सोचिये।

दुर्योधनः—

अन्वयः—मम प्रत्यक्षं हतबान्धवाः परे रहः हन्तुं योग्या न। वा तेन कृतेन किम्? यत् तैः इव रणे प्रकाशं न कृतम्।

संस्कृत-व्याख्या—मम=दुर्योधनस्येत्यर्थः, प्रत्यक्षम्=समक्षम्, हतबान्धवाः=हताः-विनाशिताः बान्धवाः मम लघुभ्रातरः यैस्ते, परे=शत्रवः, रहः=एकान्ते, हन्तुम्=मारयितुम्, योग्याः=अर्हाः, न सन्तीत्यर्थः। वा=अथवा, तेन=तादृशेन, कृतेन=सम्पादितेन कर्मणा, किम्=को लाभः? यत् तैः इव

शत्रुभिरिव, रणे=संग्रामे, प्रकाशम्=सर्वसमक्षम्, न कृतम्=न विहितम् : यथा शत्रुभिः अस्माकं बान्धवाः दुःशासनादयः सर्वजनसमक्षं हताः तथैव मयाऽपि तेषां वधः सर्वजनसमक्षमेव कर्त्तव्यः–इत्यभिप्रायः ।। ६ ।।

हिन्दी-अनुवाद—मम=मुझ दुर्योधन के, प्रत्यक्षम्=समक्ष, हतबान्धवाः=मेरे छोटे भाइयों को मारने वाले, परे=शत्रुगण, रहः=एकान्त में अथवा गुप्तरूप से, हन्तुम्=मारने के, योग्याः=योग्य, न=नहीं हैं। वा=अथवा, तेन=उस, कृतेन=काय से, किम्=क्या लाभ ? यत् = कि जो, तैः = उन्हीं की, इव=तरह, रणे=युद्ध में, प्रकाशम्=सभी के समक्ष, न कृतम्=न किया गया हो ।

भावार्थः—दुर्योधन का कहना है कि मैं शत्रुओं (पाण्डवों) का संहार अवश्य करना चाहता हूँ किन्तु छिपकर नहीं। जैसे मेरे उन शत्रुओं ने मेरे दुःशासन आदि मनुजों का वध सभी लोगों के समक्ष किया है वैसे ही मैं भी उन (अपने शत्रुओं) का वध सभी के समक्ष करना चाहता हूँ ।

गान्धारी--हे पुत्र तुम तो अकेले ही रह गये हो। तुम्हारी सहायता कौन करेगा ?

दुर्योधनः—

अन्वयः—हे मातः। अहं एकः भवतीसुतक्षयकरः, अरयः कियन्तः ? अधुना केवलं दैवं साम्यं एतु। मेदिनी निष्पाण्डवाः (भविष्यति) ।

संस्कृत-व्याख्या—हे मातः !=हे जननि !, एकः=अद्वितीय एव, भवतीसुतक्षयकरः=भवत्याः सुतानां–पुत्राणां क्षयकरः–विनाशकर्त्ता अस्मि; अरयः=शत्रवः, कियन्तः=कियन्मात्राः–स्वल्पाः। तेषां कापि गणना न, तुच्छत्वादित्यभिप्रायः। त तु पश्चैवेति भावः। तर्हित कुतः न हन्यन्त इत्यन्त इत्यत आह=अधुना=सम्प्रति, केवलम्, दैवम्=भाग्यम् साम्यम्=आनुकूल्यम्, एतु=प्राप्नोतु। भाग्येऽनुकूले सति तु, मेदिनी=पृथिवी, निष्पाण्डवाः=पाण्डव-शून्यैव, भविष्यतीति शेषः।

हिन्दी-अनुवाद—हे मातः !=हे माता !, अहम्=मैं, एकः=अकेला ही, भवतीसुतक्षयकरः=आपके ९९ पुत्रों को विनष्ट करने वाला हूँ। अरयः=शत्रु तो है ही, कियन्तः=कितने ? अधुना=इस समय, केवलम्=केवल, दैवम्=भाग्य की, साम्यम्=अनुकूलता ही चाहिये। भाग्य की अनुकूलता प्राप्त हो जाने पर तो, मेदिनी=पृथिवी, निष्पाण्डवाः=पाण्डवों से रहित, भविष्यति=हो जायेगी ॥ ९ ॥

भावार्थः--हे माता ! आपके कथनानुसार वस्तुतः मैं हूँ तो अकेला ही। साथ ही मेरे ही कारण आपके ९९ पुत्रों का विनाश भी हुआ है। वैसे शत्रुओं की संख्या तो मात्र पाँच (पञ्चपाण्डव) ही हैं। यदि भाग्य की विपरीतता परिवर्तित होकर अनुकूलता में परिणत हो जाय तो (अर्थात् भाग्य मेरे अनुकूल हो जाय तो मुझे विश्वास है कि) यह निश्चय है कि यह पृथिवी पाण्डवों से रहित हो जायेगी। कहने का अभिप्राय यह है कि भाग्य के अनुकूल होने पर मैं अकेला ही पाण्डवों को मार देने मे समर्थ हूँ ॥९॥

छन्द--उक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है।

समासः—कृतनिश्चयः=कृतः-विहितः निश्चयः येन सः। परप्रतिघातोपायः=परस्य शत्रोः प्रतिघातः-वधः तस्य उपायः-विधिः। हतबान्धवाः=हताः बान्धवाः यैः ते। भवतीसुतक्षयकरः=भवत्याः सुतानां क्षयकरः।

टिप्पणियाँ—प्रसीद=दया करें। पराङ्मुखम्=विपरीत। अत्याहितम्=महान् भय "अत्याहितं महद्भयम्" इत्यमरः। अनिष्ट। सङ्ग्रामावतरणाय=युद्धभूमि में उतरने के लिए। समाश्वासय=आश्वस्त करो, सान्त्वना दो, धैर्य बँधाओ। रहः=एकान्त मे। प्रतिघातः=वध। प्रकाशम्=स्पष्ट अथवा प्रकट रूप से। मेदिनी=पृथिवी। निष्पाण्डवाः=पाण्डवों से रहित ॥ ९ ॥

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो योधाः निवेदयन्तु भवन्तः कौरवेश्वराय इदं महत्कदनं प्रवृत्तम्। अलमप्रियश्रवणपराङ्मुखतया। यतः कालानुरूपं प्रतिविधातव्यमिदानीम्। तथा हि—

त्यक्तप्राजनरश्मिरङ्कितततनुः पार्थाङ्कितैर्मार्गणै--
वाहैः स्यन्दनवर्त्मनां परिचयादाकृष्यमाणः शनैः।
वार्तामंगपतेर्विलोचनजलैरावेदयन्पृच्छतां
शून्येनैव रथेन याति शिविरं शल्यः कुरुञ्छल्ययन् ॥१०॥

(पर्दे के पीछे कोलाहल के अनन्तर)

हे हे योद्धाओ ! आप कौरवों के अधिपति से इस वर्तमान (हो रहे) महान् अनर्थ के बारे में बतला दें। अप्रिय सुनने के विषय में मुंह मोड़ने से बस करो। क्योंकि इस समय-समय के अनुरूप बदले का कार्य किया जाना चाहिये। क्योंकि—

अन्वयः—पार्थाङ्कितैः मार्गणैः अङ्कितततनुः त्यक्तप्राजनरश्मिः स्यन्दनवर्त्मनां परिचयात् वाहैः शनैः आकृष्यमाणः अङ्गपतेः वार्त्तां पृच्छतां विलोचनजलैः आवेदयन् कुरून् शल्ययन् शून्येन एव रथेन शल्यः शिविरं एति ॥ १० ॥

संस्कृत-व्याख्या—पार्थाङ्कितैः=अर्जुननामाङ्कितैः, मार्गणैः,=बाणैः, अङ्कितततनुः=चिह्नितशरीरः, त्यक्तप्राजनरश्मिः=त्यक्तौ-मुक्तौ प्राजनरश्मि-अश्वप्रेरकदण्डप्रग्रहौ येन सः, स्यन्दनवर्त्मनाम्=रथमार्गाणाम्, परिचयात्= "संस्तवःस्यात् परिचयः" इत्यमरः, वाहैः=अश्वैः, शनैः=मन्दं मन्दं यथा स्यात्तथा, आकृष्यमाणः=नीयमानः, अङ्गपतेः=कर्णस्य, वार्ताम्= वृत्तान्तम्, पृच्छताम्=जिज्ञासमानानां जनानाम्, विलोचनजलैः=अश्रुभिः; आवेदयन्=कथयन् तथा च कर्णो मृतः इति रोदनेनैव सूचयन्नित्यभिप्रायः, कुरून्=कौरवान्, शल्ययन्=दुःखं प्रापयन्, शल्यः=महाभारते कर्णस्य रथसंचालकः राजा शून्येन एव=कर्णविरहितेन, रथेन=स्यन्दनेन, शिविरम्= सैन्यनिवासस्थानम्, याति=गच्छति ॥ ९ ॥

हिन्दी-अनुवाद—पार्थाङ्कितैः=अर्जुन के नामांकित, मार्गणैः=बाणों से, अंकिततनुः=चिह्नित शरीर वाला, त्यक्तप्राजनरश्मिः=चाबुक और लगाम की डोरी छोड़े हुए, स्यन्दनवर्त्मनाम्=रथ के मार्गों का, परिचयात्=परिचय होने के कारण, वाहैः=घोड़ो द्वारा, शनैः=धीरे-धीरे, आकृष्यमाणः=खींचकर ले जाया जाता हुआ, अङ्गपतेः=कर्ण के, वार्ताम्=पूछने वाले लोगों को, विलोचनजलैः=आँखों से निकलने वाले आँसुओं से, आवेदयन=सूचित करता हुआ, कुरून्=कौरवों को, शल्ययन्=शल्य के सदृश बींधता हुआ, शून्येन=खाली, एव=ही, रथेन=रथ से, शल्यः=शल्य, शिविरम्=पड़ाव (छावनी) की ओर, याति=जा रहा है ।। १० ।।

भावार्थ—अर्जुन के नामांकित बाणों से चिह्नित शरीर वाला, चाबुक और लगाम को छोड़े हुए, रथके मार्ग से भलीभांति परिचित होने के कारण घोड़ों द्वारा ही ले जाया जाता हुआ, कर्ण का समाचार जानने के इच्छुक लोगों को आँखों से ही सूचित करता हुआ तथा कौरवों के हृदय को शल्य के समान बींधता हुआ यह राजा शल्य खाली रथ से अपने पड़ाव की ओर चला जा रहा है ।। १० ।।

अलंकारः—उक्त पद्य में 'यमक' अलंकार है ।

छन्दः—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है ।

समासः—अप्रियश्रवणपराङ्मुखतया=अप्रियस्य श्रवणात् पराङ्मुखः=इति अप्रियश्रवणपराङ्मुखः तस्य भावः, तया । त्यक्तप्राक्तनरश्मिः=त्यक्तौ प्राजनरश्मी येन सः । अङ्किततनुः=अङ्किता तनुः यस्य सः । स्यन्दनवर्त्मनाम्=स्यन्दनस्य वर्त्मनाम्-इति । शल्यः=महाभारत युद्ध में शल्य कर्ण का सारथि था ।। १० ।।

दुर्योधनः—(श्रुत्वा साशंकम्) आः केनेदमविस्पष्टमशनिपात-दारुणमुद्घोषितम् । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य संभ्रान्तः ।)

सूतः—हा हताः स्मः (इत्यात्मानं पातयति) ।

दुर्योधनः—अयि, कथय कथय ।

धृतराष्ट्रसंजयौ—कथ्यतां कथ्यताम् ।

सूत—आयुष्मन् ! किमन्यत् ?

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम् ।
शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवारूढेन ॥११॥

दुर्योधन—(सुनकर, भय के साथ) आह, यह वज्रपात के सदृश दारुण घोषणा अस्पष्ट रूप से किसके द्वारा की गई है ? क्या कोई यहाँ पर है ।

(प्रवेश करके, घबराया हुआ)

सूत—हाय ! हम लोग मर गये । (ऐसा कहकर अपने आपको गिरा देता है ।)

दुर्योधन—अरे, कहो, कहो ।

धृतराष्ट्र और संजय—कहो, कहो ।

सूत—आयुष्मन् ! और क्या ?

अन्वयः—मनोरथं इव कर्णस्य शून्यं रथं अधिरूढेन प्रविशता शल्येन यथा शल्येन अय जनौघः मूर्च्छितः ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—मनोरथम्, इव=यथा, कर्णस्य=राधेयस्य, शून्यम्=रहितम्–कर्णरहितम्, रथम्=स्यन्दनम्, अधिरूढेन=आरूढेन, प्रविशता शल्येन=शंकुनामकास्त्रविशेषेण प्रविशता, यथा=इव शल्येन=कर्णसारथिभूतेन राज्ञा, अयम्=एषः, जनौघः=जनसमुदायः—(सैन्यम्), मूर्च्छितः=चेतनाशून्यः कृतः ॥ ११ ॥

हिन्दी-अनुवाद—मनोरथम्=मनोरथ के, इव=सदृश, कर्णस्य=कर्ण के, शून्यम्=खाली, रथम्=रथ पर, अधिरूढेन=सवार, प्रविशता=प्रवेश करते हुए, शल्येन=बर्छी की, यथा=तरह, शल्येन=कर्ण-सारथि शल्य के द्वारा, अयम्=यह, जनौघः=जनसमूह, मूर्च्छितः=चेतनाशून्य कर दिया गया है ॥११॥

भावार्थः—जिस भाँति अन्दर प्रविष्ट होने वाले बाणों से जनसमूह व्याकुल हो जाया करता है । उसी भाँति कर्ण से रहित कर्ण के रथ पर सवार होकर प्रविष्ट होते हुए इस शल्य से हमारी सेना व्याकुल हो गई है ।

अलङ्कारः—इस पद्य में यमक तथा पूर्णोपमा अलङ्कार हैं ।

छन्द,—इसमें 'आर्या' छन्द है।

समास:—अशनिपातदारुणम्=अशनिः—वज्रं तस्यः पातः, तद्वत् दारुणम्—इति।

टिप्पणियाँ—अविस्पष्टम्=सन्दिग्ध। उद्घोषितम्=घोषणा की। शून्यम्=रहित, खाली, रिक्त। अधिरूढेन=सवार। जनौघः=जनसमूह। मूर्च्छितः=चेतनाशून्य कर दिया, मूर्च्छा को प्राप्त कर दिया।

दुर्योधनः—हा वयस्य कर्ण (इति मोहमुपगतः)।

गान्धारी—जात ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। (जाद, समस्सस)।

संजयः—समाश्वसितु समाश्वसितु देवः।

धृतराष्ट्रः—भोः कष्टं, कष्टम्।

> भीष्मे द्रोणे च निहते च आसीदवलम्बनम्।
> वत्सस्य मे सुहृच्छूरो राधेयः सोऽप्ययं हतः ॥ १२ ॥

दुर्योधन—हाय मित्र कर्ण (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गये)।

गान्धारी—हे पुत्र ! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

संजय—धैर्य रखिये, महाराज धैर्य रखिये।

धृतराष्ट्रः—आह, महान कष्ट है।

अन्वयः—भीष्मे च द्रोणे निहते यः अवलम्बनं आसीत् सः मे वत्सस्य सुहृत् शूरः अयं राधेयः अपि हतः ॥ १२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—भीष्मे=भीष्मपितामहे, च, द्रोणे=द्रोणाचार्ये, निहते=शत्रुभिर्विनाशिते सति, यः=कर्णः, अस्माकमिति शेषः, अवलम्बनम्=आश्रयः साहाय्यकर्त्ता वा, आसीत्, सः, मे=मम, वत्सस्य=पुत्रस्य-दुर्योधनस्येत्यर्थः, सुहृत्=मित्रम्, शूरः=वीरः, अयम्=एषः, राधेयः=राधापुत्रकर्णः, अपि, हतः—(शत्रुणा) निहतः ॥ १२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—भीष्मे=भीष्मपितामह, च—और, द्रोणे=द्रोणाचार्य के, निहते=मारे जाने पर, यः—जो (हमारा), अवलम्बनम्=सहारा, आसीत्=था, सः=वह, मे=मेरे, वत्सस्य=बेटे का, सुहृत्=मित्र, शूरः=वीर, अयम्=यह, राधेयः=कर्ण, अपि=भी, हतः=मार डाला गया ॥ १२ ॥

भावार्थः—भीष्मपितामह तथा आचार्य द्रोण के मारे जाने पर जो (कर्ण) हमारा सहारा था। वह मेरे पुत्र दुर्योधन का मित्र, शूरवीर यह कर्ण भी शत्रुओं द्वारा मार डाला गया ॥ १२ ॥

वत्स ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ! ननु भो हतविधे !

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः
शोच्यां दशामुपगतः सहभार्ययाहम् ।
अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे
दुर्योधनेऽपि हि कृतो भवता निराशः ॥१३॥

हे पुत्र धैर्य रखो, धैर्य रखो। अरे नीच भाग्य।

अन्वयः—अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः अन्धः अहं भार्यया सह शोच्यां दशां उपगतः। अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे अस्मिन् दुर्योधने अपि भवता हि निराशः कृतः ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः=अनुभूतं शतपुत्राणां विपत्तेः मरणरूपायत्तेः दुःख-कष्ट येन सः, अन्धः=नेत्रहीनः, अहम्=धृतराष्ट्रः, भार्यया=स्त्रिया गान्धार्या, सह=साधम्, शोच्याम्=शोचनीयाम्, दशाम्=अवस्थाम्, उपगतः=प्राप्तः। अशेषितसुहृदगुरुबन्धुवर्गे=अशेषितः-विनष्टः सुहृत्गुरुबन्धूनां-मित्राचार्यस्वजनसमूहः यस्य तस्मिन्, अस्मिन्=पुरः स्थिते दुर्योधने, अपि, भवता=त्वया, हि=निश्चयेन, निराशः=आशारहितः, कृतः=विहितः ॥ १३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः=सौ पुत्रों की (मृत्युरूप) विपत्ति के दुःख का अनुभवकर्ता, अन्धः=अन्धा, अहम्=मैं, भार्यासह=पत्नी (गान्धारी) सहित, शोच्याम्=(इस) शोचनीय, दशाम्=अवस्था को, उपगतः=प्राप्त हो गया हूँ। अशेषितसुहृदगुरुबन्धुवर्गे=जिसके मित्र, गुरुजन तथा बन्धुवर्ग नष्ट हो गये हैं ऐसे- अस्मिन्=इस, दुर्योधन के सम्बन्ध में, अपि=भी, भवता=तुमने, हि=निश्चितरूप से, मुझे, निराशः कृतः निराश कर दिया है ॥ १३ ॥

भावार्थः--सौ पुत्रों की मृत्युरूप विपत्ति के दुःख का अनुभव करने वाला मैं नेत्रहीन धृतराष्ट्र पत्नीसहित इस शोचनीय-अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ। मित्र, गुरु एवं बन्धुवर्गों से हीन इस दुर्योधन के बारे में भी हे नीच भाग्य तुमने मुझे निराश कर दिया है॥ १३॥

अलंकार—उक्त पद्य में 'काव्यलिङ्ग' अलंकार है।

छन्द--इसमें 'वसन्ततिलका' छन्द है।

समास—अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः = अनुभूतं शतपुत्रस्य विपत्तेः (मरणस्य) दुःखं येन सः। अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे=अशेषितः सुहृद-गुरुबन्धुवर्गः यस्य तस्मिन्।

टिप्पणियाँ—हतविधे=हे दुष्ट (नीच) भाग्य। शोच्याम्=शोचनीय। अशेषिताः=सभी मारे गये।

वत्स दुर्योधन! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि। समाश्वासय तपस्विनीं मातरं च।

दुर्योधनः—(लब्धसंज्ञः)—

अयि कर्ण कर्ण कर्णसुखदां प्रयच्छ मे
गिरमुद्गिरन्निव मुदं मयि स्थिराम्।
सतताविमुक्तमकृताप्रियं प्रियं
वृषसेनवत्सल विहाय यासि माम्॥ १४॥

हे पुत्र दुर्योधन! धैर्य धारण करो और अपनी कातर अथवा दीन माता को धैर्य बँधाओ।

दुर्योधन--(चेतना प्राप्त करके)

अन्वयः—अयि कर्ण! मयि स्थिरां मुदं उद्गिरन् इव (त्वम्) कर्णसुखदां गिरं मे प्रयच्छ। हे वृषसेनवत्सल! सतताविमुक्तं अकृताप्रियं प्रियं मां विहाय यासि?॥ १४॥

संस्कृत-व्याख्या—अयि कर्ण!=हे राधेय!, मयि=दुर्योधने, स्थिराम्=निश्चलाम्, मुदम्=प्रसन्नताम्, उद्गिरन्=वमन्, इव, (त्वम्),

कर्णसुखदाम्—कर्णयोः सुखं ददातीति कर्णसुखदा, ताम्, गिरम्—वाणीम्, मे—मह्यम्, प्रयच्छ—देहि। हे वृषसेनवत्सल!—हे वृषसेनाख्य स्वसुतप्रिय! सतताऽवियुक्तम्—निरन्तराऽविरहितम्—कदाप्यवियुक्तम्, अकृताप्रियम्—अकृतं अप्रियं अनभिलषितं येन तम्—अनपराधम्, प्रियं—प्रेमभाजनं-सुहृदं वा, माम्—दुर्योधनम्, विहाय—परित्यज्य, यासि—गच्छसि ? ॥ १४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—अयिकर्ण!—हे कर्ण!, मयि—मुझमें, स्थिराम्—निश्चल, मुदम्—प्रसन्नता को, उद्गिरन् इव—वमन सी करते हुए अथवा वर्षा सी करते हुए, (त्वम्—तुम), कर्णसुखदाम्—कानों को प्रिय लगने वाली, गिरम्—वाणी, मे—मुझे, प्रयच्छ—प्रदान करो। हे वृषसेनवत्सल! हे वृषसेन को स्नेह करने वाले, सतताऽवियुक्तम्—कभी भी न बिछुड़े हुए, अकृताप्रियम्—अप्रिय कार्य न करने वाले, प्रियम्—प्रिय, माम्—मुझको, विहाय—छोड़कर; यासि—जा रहे हो ? ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे कर्ण! स्थायी आनन्द की वर्षा करते हुए तुम मुझसे कानों को सुख देनेवाली वाणी बोलो। हे वृषसेन से प्रेम करने वाले! कभी भी मुझसे न बिछुड़े हुए, कभी अप्रियकार्य न करने वाले प्रियमित्र (मुझको) छोड़कर तुम क्यों चले जा रहे हो ? ॥ १४ ॥

अलंकार—उक्त पद्य के प्रथम चरण में 'यमक,' द्वितीयचरण में 'उपमा', चतुर्थचरण में पदार्थगत 'काव्यलिङ्ग' अलंकार है।

छन्द—इसमें 'मञ्जुभाषिणी' नामक छन्द है। लक्षण—"सजसाजगौ च यदि मञ्जुभाषिणी"।

समास—कर्णसुखदाम्—सुखं ददातीति सुखदा, कर्णयोः सुखदा—इति कर्णसुखदा, ताम्। वृषसेनवत्सल—वृषसेनः वत्सलः यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ। सतताऽवियुक्तम्—सततं अवियुक्तम्—इति। अकृताप्रियम्—न कृतं अप्रियं येन तम् ॥ १४ ॥

टिप्पणियाँ—सतताऽवियुक्तम्—निरन्तर अविरहित—कभी भी न बिछुड़े हुए। अकृताप्रियम्—कभी भी अप्रिय न करने वाले। कभी भी मेरे अनिच्छित कार्य को न करने वाले ॥ १४ ॥

(पुनर्मोहमुपगतः ।)

(सर्वेसमाश्वासयन्ति ।)

(पुनः मूर्च्छित हो जाता है ।)

(सभी लोग सान्त्वना प्रदान करते हैं ।)

दुर्योधनः—

मम प्राणाधिके तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते ।
उच्छ्वसन्नपि लज्जेऽहमाश्वासे तात का कथा ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे तात ! मम प्राणाधिके तस्मिन् अङ्गानां अधिपे हते सति अहं उच्छ्वासन् अपि लज्जे । आश्वासे का कथा ?

संस्कृत व्याख्याः—हे तात ! =हे पितः, मम प्राणाधिके=मम प्राणेभ्योऽप्यधिके, तस्मिन्=जगद्विदिते, अङ्गानाम्=देशविशेषाणाम्, अधिपे—शासके, हते=विनाशिते—युद्धे यशःशेषतां याते, सति, अहम्=दुर्योधनः, उच्छ्वसन्=श्वासं गृह्णन्, अपि, लज्जे=लज्जां अनुभवामि । आश्वासे=धैर्ये पुनः, का कथा—कीदृशी वार्त्ता ? जीवितेऽपि अद्य मे भारः । कुतो मे समाश्वासः—इत्यभिप्रायः ॥१५॥

हिन्दी-अनुवाद— हे तात् ! =हे पिता जी !, मम=मेरे, प्राणाधिके=प्राणों से भी अधिक (प्रिय), तस्मिन्=जगद्विदित उस, अङ्गानाम्=अङ्ग देश के, अधिपे=शासक कर्ण के, हते सति=मार दिय जाने पर, अहम्=मैं, उच्छवसन्=श्वास लेता हुआ, अपि=भी, लज्जे=लज्जित हो रहा हूँ । आश्वासे=धैर्य धारण करने की तो, का कथा=बात ही क्या ? ॥१५॥

भावार्थ— हे पिता जी ! मेरे प्राणो से भी अधिक प्रिय उस अङ्गराज कर्ण के दिवंगत हो जाने पर जीवित रहने में भी मैं लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ । धैर्य धारण करने की तो बात ही क्या है ?

छन्दः—उक्त पद्य में 'अनुस्टुप्' छन्द है ।

अपि च—

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्सं
दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम् ।
येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णो
कर्तास्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ॥१६॥

अपि भी—

अन्वयः—अधुना शोच्यं अपि शत्रुहतं वत्सं दुःशासनं न शोचामि । च तं बन्धुवर्गं (अपि) न (शोचामि) । येन कर्णो कपिदुःश्रवं तस्य कुलस्य समरे निधनं कर्ता अस्मि ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना=सम्प्रति, शोच्यम्=शोचनार्हम्, अपि, शत्रुहतम्=शत्रुणा-अरिणा हतम्-मृत्युं प्रापितम्, वत्सम्=स्वानुजम्, दुःशासनम् न, शोचामि=हार्दिकं दुःखमनुभवामि । च, तम्=तादृशम्, बन्धुवर्गम्=बान्धववृन्दम्, अपि, न शोचामि । येन=शत्रुणा अर्जुनेनेत्यर्थः, कर्णे=राधेये, अतिदुःश्रवम्=नितरां श्रोतुमशक्यम, असाधुकृतम्=असाधुअनुचितं वा अशुभं वा आचरितम्, तस्य, कुलस्य=वंशस्य, समरे=युद्धे, निधनम्=विनाशम्, कर्त्ता अस्मि=करिष्यामि । इदानीं त्वहं पाण्डवानेव हनिष्यामीत्यभिप्रायः ॥१६॥

हिन्दी-अनुवाद—अधुना=अब, शोच्यम्=शोक किये जाने योग्य, अपि=भी, शत्रुहतम्=शत्रु (अर्जुन) द्वारा मारे गये, वत्सम्=छोटे भाई, दुःशाशनम्=दुःशासन के बारे में, न शोचामि=शोक नहीं करता हूँ । च=और, तम्=उस, बन्धुवर्गम्=बन्धुवर्ग के लिये भी, न शोचामि=शोक नहीं करता हूँ । येन=जिसके द्वारा, कर्णे=कर्ण के विषये, अतिदुःश्रवम्=पूर्णरूप से न सुना सकने योग्य, असाधु=अनुचित, कृतम्=किया है । तस्य=उसके, कुलस्य=वंश का, निधनम्=विनाश, कर्त्ता अस्मि=कर दूँगा ॥१६॥

भावार्थ—जिसके विषय में शोक किया जाना उचित है ऐसे, शत्रु द्वारा मारे गये अपने छोटे भाई दुःशासन के बारे में मैं शोक नहीं करता

हूँ। साथ ही अपने इष्ट बन्धुबान्धवों के सम्बन्ध में भी शोक नहीं करता हूँ, किन्तु जिस (अर्जुन) ने कर्ण के बारे में अत्यधिक अश्राव्य तथा अनुचित कार्य किया है ऐसे व्यक्ति के कुल का मैं युद्ध में विनाश करूँगा ॥ १६ ॥

छन्द—उक्तपद्य में 'वसन्ततिलका' नामक छन्द है।

समासः—शत्रुहतम्=शत्रुणा हतम्=इति। अतिदुःश्रवम्=दुःखेन श्रोतुं योग्यम्-दुःश्रवम्, अत्यन्तं दुःश्रवम्-इति अतिदुःश्रवम्।

टिप्पणियाँ—अतिदुःश्रवम्=बड़ी कठिनता से श्रवण किये जाने योग्य। असाधु-अनुचित (वध)।

गान्धारी—जात! शिथिलय तावत्क्षणमात्रं बाष्पमोक्षम्।
(जाद, सिढिलेहि दाव क्खणमेत्तं बाप्पमोक्खम्।)

धृतराष्ट्रः—वत्स! क्षणमात्रे परिमार्जयाश्रूणि।

दुर्योधनः—

मामुद्दिश्य त्यजन्प्राणान्केनचिन्न निवारितः।
तत्कृते त्यजतो बाष्पं किं मे दीनस्य वार्यते ॥ १७ ॥

गान्धारी—हे पुत्र? अब क्षणभर के लिए आँसू बहाना कम करो।

धृतराष्ट्र—हे पुत्र! थोड़ी देर के लिए आँसूओं को पोंछ लो।

दुर्योधनः—

अन्वयः—माम् उद्दिश्य प्राणान् त्यजन् (कर्णः) केनचित् न निवारितः, तत्कृते बाष्पं त्यजतः दीनस्य मे किं वार्यते ॥ १७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—माम्=दुर्योधनम्, उद्दिश्य=लक्ष्यीकृत्य, प्राणान्=असून्, त्यजन्=मुञ्चन्, (कर्णः), केनचित्=केनापि; न निवारित,=न निषिद्धः। तत्कृते=तस्य कर्णस्य कृते हेतौ, बाष्पम्=अश्रूणि, त्यजतः=मुञ्चतः, दीनस्य=आर्त्तस्य=दुःखितस्य, मे=मम, किम्=कस्मात्, वार्यते=निषिध्यते? ॥ १७ ॥

हिन्दीअनुवाद—माम्=मुझ (दुर्योधन) को, उद्दिश्य=उद्देश्य करके, प्राणान्=प्राणों को, त्यजन्=त्यागता हुआ, कर्णः=कर्ण, केनचित्=किसी के भी द्वारा, न=नहीं, निवारितः-रोका गया। तत्कृते=उसके लिए,

बाष्पम्=आँसू, त्यजतः=बहाते हुए, दीनस्य=दीन, मे=मुझको, किम्=क्यों, वार्यते=रोका जा रहा है ? ॥ १७ ॥

भावार्थः—मेरे ही लिए अपने प्राणों का त्याग करते हुए कर्ण को किसी ने भी नहीं रोका। किन्तु आज जब कि मैं उसके लिये आँसू बहा रहा हूँ, तब मुझ बेचारे को आप लोग क्यों रोक रहे हैं ॥ १७ ॥

छन्द - इस पद्य में 'अनुष्टुप्' छन्द है।

सूत ! केनैतदसंभावतीयमस्मत्कुलान्तकरं कर्म कृतं स्यात् ?

सूत—आयुष्मन् ! एवं किल जनः कथयति।

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य।
निहतः किलेन्द्रसूनोरस्मत्सेनाकृतान्तस्य ॥ १८ ॥

सूत ! मेरे वंश की समाप्ति करने वाला, जिसकी कभी सम्भावना भी न थी, यह कार्य किसने किया होगा ?

सूत—आयुष्मन् ! लोग इस प्रकार कहते हैं।

अन्वयः—चक्रायुधसारथेः=अस्मत्सेनाकृतान्तस्य तस्य इन्द्रसूनोः शरैः भूमौ निमग्नचक्रः (कर्णः) निहतः किल ॥ १८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—चक्रायुधसारथेः=चक्र-सुदर्शनचक्रं आयुधं यस्य सः चक्रायुधः-कृष्णः सारथिः-रथसंचालकःयस्य तस्य, अस्मत्सेनाकृतान्तस्य=अस्माकं सेनायाः-वाहिन्याः कृतान्तस्य-यमराजस्य-विनाशकस्य इत्यर्थः; तस्य=तगद्विदितस्येत्यर्थः, इन्द्रसूनोः=इन्द्रपुत्रस्य-अर्जुनस्येत्यर्थः, शरैः=बाणैः, भूमौ=पृथिव्याम्, निमग्नचक्रः= निमग्नं-त्रुडितं, चक्रम्-रथाङ्गम् यस्य सः; कर्णः, निहतः=विनाशितः मारितः किलेति प्रसिद्धौ। यदा कर्णः भूमौ निमग्न-चक्रस्य रथस्य उद्धरणे संलग्नः आसीत् तदा अर्जुनः तं जघानेति माहाभा-रतीया कथा ॥ १८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—चक्रायुधसारथेः=सुदर्शनचक्रधारी कृष्ण ही जिसके सारथी हैं ऐसे, अस्मत्सेनाकृतान्तस्य=हमारी सेना के लिए साक्षात् यम-तुल्य, तस्य=उस, इन्द्रसूनोः=इन्द्र के पुत्र अर्जुन के, शरैः=बाणों से, भूमौ=पृथ्वी में,

निमग्नचक्रः=जिसके रथ का पहिया धँस गया था ऐसा, कर्ण, निहतः=मारा गया, किल=ऐसी प्रसिद्धि है ।। १८ ।।

भावार्थ—ऐसा लोग कहते हैं कि जब कर्ण के रथ का पहिया युद्धभूमि में धँस गया था और कर्ण उसे निकालने में संलग्न थे तो उस समय हमारी सेना के लिए साक्षात् यमराज के तुल्य कृष्णसारथि अर्जुन ने उसे अपने बाणों से मार दिया ।। १८ ।।

छन्दः—उक्त पद्य में "आर्या" छन्द है।

समासः—चक्रायुधसारथेः=चक्रं आयुधं यस्य सः चक्रायुधः-कृष्णः, स सारथिः यस्य तस्य । अस्मत्सेनाकृतान्तस्य=अस्माकं सेनायाः कृतान्तस्य । अथवा—अस्मत्सेनायां कृतान्त इव-अस्मत्सेनाकृतान्तः, तस्य । निमग्नचक्रः निमग्नं चक्रं यस्य सः । इन्द्रसूनोः-इन्द्रस्य सूनुः-इन्द्रसूनुः, तस्य ।।१८।।

टिप्पणियाँ—अस्मत्कुलान्तकरणम्=हमारे कुल (वंश) का अन्त कर देने वाला । चक्रायुधः=सुदर्शनचक्र ही है आयुध (अस्त्र) जिसका—अर्थात् श्रीकृष्ण । कृतान्तः=यमराज । इन्द्रसूनोः=कुन्ती के पति पाण्डु-रोगी थे । अतः कुन्ती ने यमराज, वायु, इन्द्र तथा अश्विनीकुमारों से क्रमशः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा नकुल और सहदेव को पैदा किया था । इसी दृष्टि से अर्जुन को इन्द्रसूनु कहा जाता है ।

दुर्योधनः—

कर्णाननेन्दुस्मरणात्क्षुभितः शोकसागरः ।
वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ।। १९ ।।

तात, अम्ब, प्रसीदतम् ।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।
समानायां विपत्तौ मे वर संशयितो रणः ।। २० ।।

दुर्योधन—

अन्वयः—कर्णाननेन्दुस्मरणात् क्षुभितः शोकसागरः वाडवेन इव मे क्रोधजेन शिखिना पीयते ।। १९ ।।

संस्कृत-व्याख्या--कर्णाननेन्दुस्मरणात्=कर्णस्य-राधेयस्य आननमेव-मुखमेव इन्दु-चन्द्रः तस्य स्मरणात् स्मृतेः, क्षुभितः=उद्वेलितः, शोकसागरः=शोकः-सन्तापः एव सागरः-समुद्रः, वाडवेन=वाडवानलेन, इव, मे=मम, क्रोधजेन=कोपसमुद्भूतेन, शिखिना=वह्निना, पीयते=विशोष्यते। कर्णमुख-स्मरणात् समुत्पन्नः शोकः क्रोधाग्निवार्यते इव। चन्द्रोदयात्समुद्रवृद्धिर्वडवानलेन समुद्रजलशोषश्च प्रसिद्धः ॥ १९ ॥

हिन्दी-अनुवाद— कर्णाननेन्दुस्मरणात्=कर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा के स्मरण से, क्षुभितः=क्षुब्ध हुए, शोकसागरः=शोक-समुद्र, वाडवेन इव=वडवाग्नि के समान, मे=मेरे, क्रोधजेन=क्रोध से उत्पन्न, शिखिना=अग्नि के द्वारा, पीयते=पान किया जा रहा है ॥ १९ ॥

भावार्थ—कर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा के स्मरण से जो शोकरूपी समुद्र क्षुब्ध हो उठता है उसे क्रोध से उत्पन्न अग्नि बडवानल के सदृश सुखा रही है। (चन्द्रमा की दैनिक वृद्धि से समुद्र में भी वृद्धि हुआ करती है किन्तु समुद्र में रहनेवाला बडवानल समुद्र के जल को पी जाया करता है। इसी कारण समुद्र अधिक बढ़ नहीं पाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोध के कारण मेरा शोक मन्द पड़ रहा है तथा शत्रु से प्रतिशोध लेने की भावना प्रबल हो रही है।) ॥ १९ ॥

पिता जी ! माता जी ! कृपा कीजिये।

अन्वयः—दुःसहः शोकजन्मा अयं ज्वलनः मां दहति। एवं समानायां विपत्तौ मे संशयितः रणः वरम् ॥ २० ॥

संस्कृत-व्याख्या--दुःसहः=दुःखेन सोढुं योग्यः, शोकजन्मा=शोकात् जन्म-उत्पत्तिः यस्य सः, अयम्=एषः, ज्वलनः=वह्निः-सन्ताप इत्यर्थः, माम्=दुर्योधनम, दहति=भस्मीकरोति, एवम्, समानायाम्=तुल्यायाम्, विपत्तौ=मरणे अर्थात् यदि युद्धमपि न करिष्यामि तदापि दाहान्मम मृत्युः भवेत्, मे=मम, संशयितः=जये पराजये च संदिग्धोपि, रणः=युद्धम्, वरम्=श्रेष्ठः। समराभावे शोकाग्नेः मे मृत्युः निश्चितः, समरे जये सति जीवनं सुखम्, पराजये तु मृत्युः निश्चित एव, समरे तु मृत्युः सदिग्धः। अतएव युद्धमेव वरमित्यभिप्रायः ॥ २० ॥

हिन्दी-अनुवाद— दुःसहः=दुःसह, शोकजन्मा=शोक से उत्पन्न, अयम्=यह, ज्वलनः=अग्नि, मां=मुझ दुर्योधन को दहति=जला रही है। एवम्=इस प्रकार, समानायाम्=समान, विपत्तौ=विपत्ति होने के कारण, मे=मेरा, संशयितः=प्राणों को सन्देह में डालने वाला, रणः=युद्ध ही, वरम्=श्रेष्ठ है।२०।

भावार्थः- शोक से उत्पन्न हुई असह्य अग्नि मुझे भस्मसात् कर रही है। अतः युद्ध में न जाने से भी इस शोकाग्नि में ही मैं भस्म हो जाऊँगा। ऐसी स्थिति में मरने की अपेक्षा युद्ध में ही जाना श्रेयस्कर है। यह सम्भव है कि युद्ध में कदाचित् मैं विजयी हो जाऊँ किन्तु बिना युद्ध के तो शोकाग्नि द्वारा मेरा भस्म हो जाना निश्चित ही है। युद्ध में तो मरना संदेहास्पद ही है। अतः युद्ध ही श्रेष्ठ है। अतएव हे पिता जी तथा माता जी ? आप लोग मुझे युद्ध में जाने दीजिये।। २०।।

छन्द—उक्त पद्य में 'अनुष्टुप्' छन्द है।

समासः—कर्णाननेन्दुस्मरणात्=कर्णस्य आननं एव इन्दुः तस्य स्मरणात्। शोकजन्या=शोकाज्जन्म यस्य सः।

टिप्पणियाँ—क्षुभितः=क्षुब्ध हुआ। शिखिना=अग्नि के द्वारा। ज्वलनः=अग्नि। शोकजन्मा=शोक से उत्पन्न। संशयितः=संदेह के योग्य ।। २०।।

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य रुदन)

भवति तनय लक्ष्मीः साहसेष्वीदृशेषु
द्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम्।
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड
छलबहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥२१॥

धृतराष्ट्र —(दुर्योधन का आलिङ्गन कर रोते हुए)

अन्वयः—हे तनय ! ईदृशेषु साहसेषु लक्ष्मी भवति; (परम्) भीमं भीमं उत्प्रेक्ष्य एतत् हृदयं द्रवति; हे मानशौण्ड ते चेष्टितं अनिकृतिनिपुणम् (वर्तते); अरीणां सङ्गरं छलबहुलं (अस्ति); (अतः) हा हतः अस्मि ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे तनय !=हे पुत्र !, ईदृशेषु=युद्धगमनरूपेषु, साहसेषु=शौर्येषु, लक्ष्मी=विजयलक्ष्मी, भवति=अधिगता भवति। (परम्=किन्तु), भीमन्=भयङ्करम्, भीमम्=भीमसेनम् उत्प्रेक्ष्य=विचिन्त्य, एतत्=इदं मदीयम्, हृदयम्=मानसम्, द्रवति=भयात् शिथिलीभवति, हे मानशौण्ड-हे मानख्यात, ते=तव, चेष्ठितम्=व्यापारः, अनिकृतिनिपुणम्=परवञ्चनारहितम्-छलरहितं वा, (वर्तते=अस्ति)। अरीणाम्=शत्रूणाम्, सङ्गरम्=युद्धं तु, छलवहुलम्=कपटपूर्णम्, (अस्ति), (अतः) हा=इति खेदे (अव्ययपदम्), हतः=विनष्टः, अस्मि। हे वत्स! समरे तव विनाशस्य अवश्यम्भावादित्यभिप्रायः ॥ २१ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हे तनय !=हे पुत्र !, ईदृशेषु=इस प्रकार के, साहसेषु=साहसों में, लक्ष्मीः=विजयलक्ष्मी, भवति=निवास किया करती है। (परम्=किन्तु) भीमम्=भयंकर, भीमम्=भीमसेन को' उत्प्रेक्ष्य=देख करके, एतत्=यह, हृदयम् =हृदय, द्रवति=विदीर्ण हो रहा है, अथवा चिन्तित हो रहा है। हे मानशौण्ड=हेप्रसिद्ध स्वाभिमानिन् !, ते=तुम्हारा, चेष्टितम्=कार्य-युद्ध, अनिकृतिनिपुणम्=छलरहि, वर्तते=है। अरीणाम्=शत्रुओं का, सङ्गरम्=युद्ध, छलवहुलम्=कपट से भरा हुआ, अस्ति=है। (अतः=इसलिए), हा=हाय, मैं, हतः=मारा गया, अस्मि=हूँ ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे पुत्र ! यह सत्य है कि इस प्रकार के साहस से ही लक्ष्मी न सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा ऐसे साहस में ही कार्यसिद्धि की संभावना भी हुआ करती है। किन्तु भयंकर उस भीमसेन का स्मरण कर मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है। हे मानियों में श्रेष्ठ ! तुम तो कपटरहित सरलस्वभाव वाले हो और शत्रुओं की रण-नीति कपटपूर्ण है। इस कारण मुझे भय लगता है। हाय ! मैं तो मारा ही गया-अर्थात् कहीं का भी न रहा ।२१।

इस कथन से कृष्ण की छलपूर्ण-नीति और दुर्योधन के भावी उरुभङ्ग की सूचना मिलती है।

छन्द—उक्त पद्य में 'मालिनी' छन्द है।

समास—अनिकृतिनिपुणम्=निकृतौ निपुणम्-इति न भवतीति-तथा भूतम्।

टिप्पणियाँ--साहसेषुलक्ष्मीः भवति=साहसों में विजयलक्ष्मी निवास करती हैं। जैसा कि कहा भी गया है :—न साहसमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति। अनिकृतिनिपुणम्=कपटरचनाचातुर्यशून्य-वञ्चना के चातुर्य से रहित। सरल स्वभाव से युक्त। छलबहुलम्=छलपूर्ण। कपट से भरा हुआ। हतः=मारा गया।। २१॥

गान्धारी—जात! ते नैव सुतशतकृतान्तेन वृकोदरेण समं समरं मार्गयसे। (जाद, तेण एव्व सुदसदकदन्तेण विओदलेण समं समलं मग्गसि।)।

दुर्योधनः—तिष्ठतु तावद् वृकोदरः।

पापेन येन हृदयस्यमनोरथो मे
सर्वाङ्गचन्दनरसो नयनामलेन्दुः।
पुत्रस्तवाम्ब तव तात नयैकशिष्यः
कर्णो हतः सपदि तत्र शराः पतन्तु॥ २२॥

गान्धारी—हे पुत्र। तुम उसी भीम के साथ युद्ध करने की इच्छा कर रहे हो कि जो मेरे सौ पुत्रों के लिए यमराज (अर्थात् सौ पुत्रों का वध करने वाला) है।

दुर्योधन—भीम की बात छोड़ो।

अन्वयः—येन पापेन मे हृदयस्य मनोरथः सर्वाङ्गचन्दनरसः नयनामलेन्दुः, हे अम्ब! तव पुत्रः, तात। तव नयैकशिष्यः कर्णः हतः, तत्र शराः सपदि पतन्तु॥ २२॥

संस्कृत-व्याख्या—येन पापेन=येन पापिना, मे=मम, हृदयस्य=चेतसः, मनोरथः=अभीष्टः—प्रभिलषणीयः, सर्वाङ्गचन्दनरसः—सर्वांगेषु चन्दनरसः—मलयजरस इव=आह्लादकत्वात्, नयनामलेन्दुः—नयनयोः=नेत्रयोः अमलः—निर्मलः इन्दुरिव-चन्द्र इव-सन्तापहारित्वादानन्दप्रदत्वाच्च, हे अम्ब!—

हे मातः !, तव=भवत्याः, पुत्रः=सुतः-सुतसदृश --इत्यर्थाः, हे तात !=हे पितः, तव=भवतः, नयैकशिष्यः=नये-नीतौ एकः-प्रधानं शिष्यः छात्रः-अवदेशशिष्यः, कर्णः=राधापुत्रः, येन=अर्जुनेन हतः=घातितः तत्र=अर्जुने, शरा=वाणाः, सपदि=एकपदे-झटिति, पतन्तु=निपतन्तु। मीमांस्यक्त्वा अर्जुनमेवेदानीं हनिष्यामीत्यभिप्रायः ॥ २२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—येन=जिस, पापेन=पापी के द्वारा, मे=मेरे, हृदयस्य=हृदय का, मनोरथः=मनोरथ, सर्वाङ्गचन्दनरसः=सम्पूर्ण शरीर के लिए चन्दन के लेप के समान, नयनामलेन्दुः=नेत्रों के लिए निर्मल चन्द्रमा के समान, हे अम्ब !=हे माता, तव=तुम्हारा, पुत्रः=बेटा, हे तात !=हे पिता जी, तव=आपका, नयैकशिष्यः=नीतिशास्त्र का प्रमुख शिष्य, कर्णः=कर्ण येन=जिस (अर्जुन) के द्वारा, हतः=मारा गया है, तत्र=उसी (अर्जुन) पर, मेरे, शराः=बाण, सपदि=अतिशीघ्र, पतन्तु=गिरें ॥ २२ ॥

भावार्थः—मेरे हृदय के साक्षात् मनोरथ के समान, सम्पूर्ण शरीर के लिए चन्दन के समान शीतल तथा आनन्दप्रद, नेत्रों के लिये निर्मल चन्द्रमा के समान आह्लादप्रद, हे माता जी ! आपके लिए पुत्रतुल्य, हे पिता जी ! आपके नीतिशास्त्र के प्रमुख शिष्य कर्ण को जिस पापी (अर्जुन) ने मारा है, उसी अर्जुन के साथ मैं युद्ध करूंगा। मेरे बाण उसी पर गिरेंगे।२२।

अलङ्कार—उक्त पद्य में 'रूपक' अलंकार है।

छन्द—इसमें 'वसन्ततिलका' छन्द है।

समास – सर्वाङ्गचन्दनरसः=सर्वाङ्गेषु चन्दनरसः इव। नयनामलेन्दुः=नयनयोः अमलः इन्दुः इव। नयैकशिष्यः=नये एकः शिष्यः इति।

सूत ! अलमिदानीं कालातिपातेन। सज्जं मे रथमुपाहर। भयं चेत् पाण्डवेभ्यस्तिष्ठ। गदामात्रसहाय एव समरभुवमवतरामि।

सूत—अलमन्यथा सम्भावितेन। अयमहमागत एव (इति निष्क्रान्तः)।

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन ! यदि स्थिर एवास्मान्दग्धुमयं ते व्यवसायस्तत्संनिहितेषु वीरेषु सेनापतिः कश्चिदभिषिच्यताम्।

दुर्योधनः—नन्वभिषिक्त एव।

गान्धारी—जात। कतरः पुनः स यत्रेमां हताशामवलम्बिष्ये। (जाद, कदरो उण सो जहिं एदं हदासं ओलम्बिस्सम्।)।

धृतराष्ट्र—किं वा शल्य उत वाश्वत्थामा।

संजय—हा कष्टम्।

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते।
आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्॥ २३॥

सूत! अब समय बिताना व्यर्थ है। मेरा रथ तैयार करके लाओ। यदि पाण्डवों से भय हो तो रुको। केवल गदा के सहारे ही (अर्थात् केवल गदा को ही लेकर) रणभूमि में उतरता हूँ।

सूत—अन्य कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं है। यह मैं आ ही गया। (ऐसा कहकर निकल गया।)

धृतराष्ट्र—पुत्र दुर्योधन! यदि हम लोगों को जलाने के लिए तुम्हारा यह कार्य निश्चित ही है तो उपस्थित वीरों में किसी को सेनापति के रूप में अभिषिक्त करो।

दुर्योधन—पहले से ही अभिषिक्त है।

गान्धारी—पुत्र! यह कौन (अभिषिक्त) है। जिस पर मैं इस मरी आशा को रखूँ?

धृतराष्ट्र—क्या वह शल्य है अथवा अश्वत्थामा?

संजय हाय! कष्ट है।

अन्वयः—भीष्मे गते द्रोणे हते च कर्णे विनिपातिते, हे राजन्! आशा बलवती, शल्यः पाण्डवान् जेष्यति॥ २३॥

संस्कृत-व्याख्या—भीष्मे=भीष्मपितामहे, गते=शरशय्याप्राप्ते, द्रोणे=द्रोणाचार्ये, हते=मृते, च, कर्णे=राधेये, विनिपातिते=घातिते, सति, हे राजन्=हे महाराज!, आशा=तृष्णा, बलवती=प्रबला भवतीति शेषः, शल्यः=राजाशल्यः साधारणो वीरो वा, पाण्डवान्=युधिष्ठिरादीन्, जेष्यति=जयं प्राप्स्यति? न जेष्यतीत्यभिप्रायः॥ २३॥

हिन्दी-अनुवाद—भीष्मे=भीष्मपितामह के, गते=शरशय्या पर लेट जाने पर, द्रोणे=द्रोणाचार्य के, हते=मारे जाने पर, च=और, कर्णे=कर्ण के; विनिपातिते=मार कर गिरा दिये जाने पर, हे राजन्=हे राजन्, आशा= आशा, बलवती=बड़ी प्रबल हुआ करती है। शल्यः=साधारण वीर शल्य, पाण्डवान्=पाण्डवों को, जेष्यति=जीतेगा, अर्थात् कभी नहीं जीतेगा— विपरीतलक्षण द्वारा ऐसा अर्थ निकलता है ॥ २३।

भावार्थ—भीष्मपितामह के शरशय्या पर पड़ जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर, कर्ण के मारकर गिरा दिये जाने पर, हे राजन्! आशा बड़ी प्रबल है, शल्य पाण्डवों को जीतेगा ?

कहने का अभिप्राय यह है कि भीष्म, द्रोण एवं कर्ण सदृश महाशक्ति-शालियों के मर जाने पर क्या शल्य पाण्डवों पर विजय प्राप्त कर सकेगा ? शल्य तो एक साधारण वीर है। अतः उसके जीतने की कोई आशा नहीं दिखलाई देती। किन्तु आशा कभी मरती नहीं। अतः शल्य द्वारा पाण्डवों पर विजय प्राप्त किये जाने की आशा की जा रही है ॥ २३ ॥

छन्द—उक्त पद्य में 'अनुष्टुप्' छन्द है।

टिप्पणियाँ—कालातिपातेन=समय गँवाने से। उपहर=ले आओ। गदामात्रसहायः=केवल गदा को लेकर ही। अकेले। स्थिरः=दृढ़। दग्धुम्=शोकाग्नि में जलाने के लिये। व्यवसायः=निश्चय। विनिपातिते= मारकर गिरा दिये जाने पर ॥ २३ ॥

दुर्योधनः—किं वा शल्येनोत वा अश्वत्थाम्ना।

कर्णालिङ्गनदायी वा पार्थप्राणहरोऽपि वा।
अनिवारितसंपातैरयमात्माश्रुवारिभिः ॥२४॥

दुर्योधन—शल्य अथवा अश्वत्थामा से क्या ?

अन्वयः—कर्णालिङ्गनदायी वा पार्थप्राणहरः अपि वा अयं आत्मा अनिवारितसम्पातैः अश्रुवारिभिः (अभिषिक्तः) ॥ २४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—कर्णालिङ्गनदायी=कर्णाश्लेषप्रदः, कर्णानुयायी। कर्णसमीपमेत्य तस्यालिङ्गनं करिष्यतीति यावत्। वा=अथवा, पार्थप्राणहरः=पार्थस्य-अर्जुनस्य प्राणान्-असून् हरतीति तथाभूतः, अपि वा-इति पादपूर्तौ अयम्=एषः मदीयः, आत्मा-स्वयमहमित्यर्थः, अनिवारितसम्पातैः=अनिरुद्ध-धारासम्पातैः, अश्रुवारिभिः=नेत्रजलैः, अभिषिक्त इति शेषः। अन्योऽपि सेनापतिः जलकलशैरनिरुद्धधारैरभिषिच्यते। दुर्योधनेन च स्वात्माऽपि अश्रुभिरभिषिक्त इति साम्यम्॥ २४॥

हिन्दी-अनुवाद—कर्णालिङ्गनदायी=कर्ण को आलिङ्गन प्रदान करने वाला, वा= अथवा, पार्थप्राणहरः=अर्जुन के प्राणों का अपहरण करने वाला, अपि वा=ये दोनों पादपूर्ति की दृष्टि से प्रयुक्त हैं। अयं आत्मा=स्वयं अपने ही, अनिवारितसम्पातैः=निरन्तर बहने वाले, अश्रुवारिभिः=आँसुओं से, अभिषिक्तः=अभिषिक्त हुआ हूँ॥ २४॥

भावार्थः—मैंने स्वयं को ही अश्रुरूपी जल की अनवरत धारा से सेनापति पद पर अभिषिक्त किया है। या तो मैं अर्जुन का ही प्राण ले लूँगा या स्वयं कर्ण से जाकर मिलूँगा। कहने का तात्पर्य यह है कि या तो मेरी विजय होगी या फिर विनाश ही होगा॥ २४॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "रूपक" अलंकार है।

छन्द—इसमें 'अनुष्टुप्' छन्द है।

समासः—कर्णालिङ्गनदायी=कर्णस्य आलिङ्गनं ददातीति। पार्थ-प्राणहरः=पार्थस्य प्राणान् हरतीति तथाभूतः। अनिवारितसम्पातैः=अनिवारितः सम्पातः-प्रवाहः येषां तैः॥ २४॥

टिप्पणियाँ—कर्णालिङ्गनदायी=कर्ण का आलिङ्गन करने वाला अर्थात् कर्ण का अनुयायी। पार्थः=अर्जुन। अनिवारितसम्पातैः=अनवरत बहने वाले। अश्रुवारिभिः=आँसुओं से॥ २४॥

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भोः भोः कौरवबलप्रधानयोधाः, अलमस्मानवलोक्य भयादितस्ततो गमनेन। कथयन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे सुयोधनस्तिष्ठतीति।

(सर्वे स संभ्रममाकर्णयन्ति ।)

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

सूतः—आयुष्मन् !

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः ।

सर्वे—कश्च कश्च ।

सूतः—

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ॥ २५ ॥

(पर्दे के पीछे कोलाहल के अनन्तर)

हे हे कौरव सेना के प्रमुख वीरों ! हम लोगों को देखकर भय के साथ इधर-उधर भागने की आवश्यकता नहीं। आप लोग यह बतलायें कि दुर्योधन किस स्थान पर विद्यमान है ?

(सभी घबराहट के साथ सुनते हैं ।)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

सूत—आयुष्मन् !

अन्वयः—इतस्ततः त्वां पृच्छन्तौ एकरथारूढौ प्राप्तौ ।

संस्कृत-व्याख्या—इतस्ततः=चतुर्दिक्षु, त्वाम्=भवन्तम्, पृच्छन्तौ=त्वद्विषयकं प्रश्नं कुर्वन्तौ, एकरथारूढौ=एकरथम्-अभिन्नस्यन्दनम् आरूढौ-स्थितौ, प्राप्तौ-आगतौ ।

हिन्दी-अनुवाद—इतस्ततः=इधर-उधर, त्वाम्=आपको, पृच्छन्तौ=पूछते हुए, एकरथारूढौ=एक रथ पर चढ़े हुए, प्राप्तौ=आ गये हैं ।

सभी लोग—कौन, कौन ?

सूत—

अन्वयः—स कर्णारिः च वृककर्मा सः क्रूरः वृकोदरः ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या—सः=प्रसिद्धः, कर्णारिः=कर्णशत्रुः अर्जुनः, च, वृककर्मा=वृको-हुण्डारः इति ख्यातः तद्वत् युद्धकर्म यस्य सः=शत्रुत्वेन प्रसिद्धः, क्रूरः=निष्ठुरः, वृकोदरः=भीमः ॥ २५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—सः=प्रसिद्ध वह, कर्णारिः=कर्ण का शत्रु अर्जुन, च=और, वृककर्मा=भेड़िये के सदृश कर्म करने वाला, सः=वह, क्रूरः=निष्ठुर, वृकोदरः=भीम ॥ २५ ॥

भावार्थः—इधर-उधर आपको पूछते हुए, एक ही रथ पर बैठे हुए वह प्रसिद्ध कर्ण-शत्रु अर्जुन तथा भेड़िये के समान कर्म करने वाले भीम आ गये हैं ॥ २५ ॥

छन्द—इस पद्य में 'अनुष्टुप्' छन्द है।

समासः—एकरथारूढौ=एकरथं आरूढौ-इति। वृककर्मा=वृकवत् कर्म यस्य सः ॥ २५ ॥

टिप्पणियाँ—ससंभ्रमम्—उद्वेग अथवा घबराहट के साथ। "समौ संवेगसम्भ्रमौ" इत्यमरः। कर्णारिः=अर्जुन। वृककर्मा=क्रूर कर्म करने वाला। वृकोदरः=भीम ॥ २५ ॥

गान्धारी—(सभयम्) जात ! किमत्र प्रतिपत्तव्यम् ? (जाद, किं एत्थ पडिपज्जिदव्वम् ।) ।

दुर्योधनः—ननु संनिहितैवेयं गदा ।

गान्धारी—हा हतास्मि मन्दभागिनी। (हा हदह्मि मन्दभाइणी)।

दुर्योधनः—अम्ब। अलमिदानीं कार्पण्येन। संजय! रथमारोप्य पितरौ शिविरं प्रतिष्ठस्व। प्राप्तोऽस्मच्छोकापनोदी जनः।

धृतराष्ट्रः—वत्स ! क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावदनयोर्भावमुपलभे।

दुर्योधन—तात ! किमनेनोपलब्धेन ?

(ततः प्रविशतो रथारूढौ भीमार्जुनौ)

भीमः—भो भोः सुयोधनानुजीविनः। किमिति संभ्रमादयथायथं चरन्ति भवन्तः। अलमावयोः शङ्कया।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्पाण्डवा यस्य दासाः।
राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रं
क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषाद्रष्टुमभ्यागतौ स्वः ॥ २६ ॥

गान्धारी—(भय के साथ) पुत्र, अब इस स्थिति में क्या करना चाहिए ?

दुर्योधन—अरे, यह गदा तो पास ही में है ।

गान्धारी—हाय ! मैं अभागिन मारी गई ।

दुर्योधन—माँ, अब इस समय दीनता दिखलाने की आवश्यकता नहीं । संजय ! माता-पिता को रथ पर बिठाकर शिविर (छावनी) में पहुँचा दो । हम लोगों के शोक को दूर करने वाला व्यक्ति आ पहुँचा है ।

धृतराष्ट्र—पुत्र ! एक क्षण प्रतीक्षा करो । मैं इन दोनों के भाव को परख (समझ) लूँ ।

दुर्योधन—पिताजी ! इसे जान लेने से क्या (लाभ) ?

(इसके अनन्तर रथ पर सवार भीम तथा अर्जुन प्रवेश करते हैं ।)

भीम—हे हे दुर्योधन के आश्रितो ! इस प्रकार से भयभीत होकर अस्त-व्यस्त रूप में क्यों भाग रहे हो ? हम दोनों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं ।

अन्वयः—द्यूतच्छलानां कर्त्ता, जतुमयशरणोद्दीपनः, कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्, अभिमानी, पाण्डवाः यस्य दासाः, दुःशासनादेः अनुजशतस्य गुरुः, अङ्गराजस्यमित्रम् राजा असौ दुर्योधनः क्व आस्ते ? कथयत, रुषा न, द्रष्टुं अभ्यागतो स्वः ॥ २६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—द्यूतच्छलानाम्=द्यूतं अक्षैः क्रीडा, तस्मिन् छलानि कपटानि तेषाम्, द्यूतं च छलानि चेति वा तेषां द्यूतकपटानाम्, कर्त्ता=विधाता, जतुमयशरणोद्दीपनः=जतुनः—लाक्षायाः विकारः जतुमयम्—लाक्षानिर्मितम् शरणम् भवनम् तस्य उद्दीपनः प्रज्वालनहेतुरित्यर्थः, जतुमयं तच्च तच्छरणं च गृहं च तस्य उद्दीपनो वा—'जतुमयगृहदाहकर्त्ता' इत्यर्थः, कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्=कृष्णायाः-द्रौपद्याः केशानां—शिरोरुहाणां उत्तरीयस्य च ऊर्ध्ववस्त्रस्य च व्यपनयने—हरणे, दूरीकरणे मरुदिव-वायुरिव द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणवातः, अभिमानी=अहङ्कारवान्, पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः, वयम् यस्य, दासाः=द्यूतविजिताः सेवकाः, दुःशासनादेः=दुःशासनप्रमुखस्य, अनुजशतस्य=लघुभ्रातृशतस्य, गुरुः=ज्येष्ठो भ्राता, अङ्गराजस्य—

कर्णस्य, मित्रम्=सुहृत्, राजा=राज्याधिकारी, असौ=सः लोकविदितः; दुर्योधनः=सुयोधनः, क्व=कुत्र, आस्ते=स्थितोऽस्ति ? कथयत=ब्रूत यूयम् इति शेषः रुषा=क्रोधेन, न=नहि; अपितु, द्रष्टुम्=दर्शनं कर्तुम् अभ्यागतौ=प्राप्तौ, स्वः=भवावः। कृतकृत्यैः सेवकैः स्वामवश्यं द्रष्टव्यः इति तं राजानं दुर्योधनं द्रष्टुं दासौ आवां आगतौ—इत्यभिप्रायः ॥ २६ ॥

हिन्दी-अनुवाद--द्यूतच्छलानां कर्त्ता=जुआ रूपी छलों का करने वाला अथवा जुआ तथा कपटों का कर्ता, जतुमयशरणोद्दीपनः=लाख से बने हुए घर को जलाने वाला, कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्=द्रौपदी के केश तथा शिर और वक्षस्थल को आच्छादित करने वाले वस्त्र (ऊर्ध्ववस्त्र) को दूर हटाने में वायु के समान, अभिमानी=अहंकारी, पाण्डवाः=युधिष्ठिर आदि हम लोग, यस्य=जिसके, दासाः=सेवक हैं, दुःशासनादेः=दुःशासन आदि अनुजशतस्य=छोटे सौ भाइयों का, गुरुः=बड़ा भाई, अङ्गराजस्य=कर्ण का, मित्रम्=मित्र, राजा=राज्य का स्वामी, असौ=वह, दुर्योधनः=दुर्योधन, क्व=कहाँ, आस्ते=स्थित है ? कथयत=(तुम लोग) बतलाओ। रुषा=क्रोध से, न=नहीं, अपितु, द्रष्टुम्=दर्शन करने के लिए, अभ्यागतौ=आये हुए, स्वः=हैं ॥ २६ ॥

भावार्थः—जुआ रूपी कपटों का करने वाला अथवा जुआ और सब प्रकार कपटों का कर्त्ता, लाक्षा-गृह में आग लगवाने वाला, द्रौपदी के केश तथा वस्त्रों को भरी सभा में खिंचवाने वाला, अभिमानी, युधिष्ठिर आदि पाण्डव जिसके जुये में जीते गये दास हैं, दुःशासन आदि १०० भाइयों का ज्येष्ठ भ्राता, कर्ण का मित्र, वह राजा दुर्योधन कहाँ पर स्थित है ? तुम लोग यह बतलाओ। हम यहाँ क्रोध से नहीं अपितु उसे केवल देखने की दृष्टि से ही आये हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि हम लोग तो उस दुर्योधन के जुये में जीते गये दास हैं। दासों को राजा का दर्शन अवश्य करना चाहिए, इस दृष्टि से हम दोनों (अर्जुन और भीम) इस स्थल पर आये हैं ॥ २६ ॥

रस—उक्त वर्णन में कर्त्ता आदि पदों द्वारा 'रौद्ररस' की प्रतीति स्पष्ट रूप से हो रही है।

उक्त पद्य के प्रत्येक पद में व्यंग्यार्थ की संभावना की जा सकती है।

छन्द—इसमें 'स्रग्धरा' वृत्त है।

समासः—**सुयोधनानुजीविनः**=सुयोधनस्य अनुजीविनः—इति। **द्यूतच्छलानाम्**=द्यूते छलानि-इति—तेषाम्। अथवा द्यूतं च छलानि च—इति—द्यूतछलानि, तेषाम्। **जतुमयशरणोद्दीपनः**=जतुनः विकारः जतुमयं तच्च तच्छरणं च तस्योद्दीपनः। **कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्**= कृष्णायाः=द्रौपद्याः केशानाम् उत्तरीयस्य च व्यपनयने-हरणे मरुदिव-वायुरिव।

टिप्पणियाँ—**प्रतिपत्तव्यम्**=करना चाहिये। **कार्पण्यम्**=दैन्य। **अपनोदी**=दूर करने वाला। **भावम्**=अभिप्राय को। **सुयोधनानुजीविनः**= हे दुर्योधन के सेवकों अथवा आश्रितो। "सेवकार्थ्यनुजीविनः" इत्यमरः। **अयथातथम्**=इधर-उधर, अस्त-व्यस्त रूप में। **शोकापनोदीजनः**= इस कथन में दो भाव अन्तर्निहित हैं—(१) यदि मैंने भीम तथा अर्जुन का हनन कर दिया तो अपने बन्धुओं का तथा कर्ण का शोक दूर हो जायगा। यदि उन्होंने मुझे ही मार डाला तो भी अपना शोक तो समाप्त हो ही जायगा। **द्यूतच्छलानाम्**=दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि से सहायता प्राप्त कर पाण्डवों के साथ छलपूर्वक जुआ खेलकर पाण्डवों को हराकर उनका सम्पूर्ण हिस्सा अपने अधिकार में कर लिया था। **कर्त्ता**=विधाता। **जतुमयशरणोद्दीपनः**=दुर्योधन ने प्रयाग के समीप लाख का एक विशाल भवन बनवाया था। उसमें बड़े छल के साथ उसने पाण्डवों को ठहरवाकर उस भवन में आग लगवा दी थी। उस समय भीम ने भवन के पीछे गुप्त स्थान पर बने हुए तथा ढके हुए द्वार से अपने भाइयों का तथा अपनी माँ का उद्धार किया था। इस भाँति उन्होंने सभी को बचा लिया था। यह स्थान इस समय भी 'लाक्षागृह' के नाम से प्रसिद्ध है। **द्रष्टुम्**=देखने को। सेवक अथवा दासजन जब अपने महान् उत्तरदायित्व को पूर्ण कर लिया करते हैं तब वे अपने स्वामी के दर्शन किया करते हैं। भीम और

अर्जुन के कहने का भी यही अभिप्राय है कि उन्होंने दुःशासन को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है। अतः अब वे अपने स्वामी दुर्योधन के दर्शन करना चाहते हैं। यह एक प्रकार का व्यङ्ग्य ही है। इस श्लोक में प्रायः सभी पद व्यङ्ग्यार्थ से युक्त हैं। अभ्यागतौ=आये हुए हैं ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्रः—सञ्जय ! दारुणः खलूपक्षेपः पापस्य।

संजयः—तात ! कर्मणा कृतनिःशेषविप्रियाः सम्प्रति वाचा व्यवस्यन्ति।

दुर्योधनः—सूत ! कथय गत्वोभयोरयं तिष्ठतीति।

सूतः— यथाज्ञापयति देवः। (तावुपसृत्य) भो वृकोदरार्जुनौ ! एष महाराजस्तातेनाम्बया च सह न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति।

अर्जुनः—आर्य प्रसीद। न युक्तं पुत्रशोकपीडितौ पितरौ पुनरस्मद्दर्शनेनोद्वेजयितुम्। तद् गच्छावः।

भीमः—मूढ ! अनुल्लंघनीयः सदाचारः। न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्। [उपसृत्य] संजय ! पित्रोर्नमस्कृतिं श्रावय। अथवा तिष्ठ। स्वयं विश्राव्य नामकर्माणी वन्दनीया गुरवः। [इति रथादवतरतः]।

अर्जुनः—(उपगम्य) तात ! अम्ब !

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते
तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः।
रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य
प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ॥२७॥

धृतराष्ट्र—सञ्जय ! इस पापी का वाक्योपन्यास तो बड़ा कठोर है।

संजय—तात ! अपने कार्यों के द्वारा तो जितना इनसे बन सका, इन्होंने हमारा बिगाड़ ही डाला है। अब अपने वचनों द्वारा भी अप्रिय करना चाहते हैं।

दुर्योधन—सूत, जाकर इन दोनों से कह दो कि यहाँ बैठें हैं।

सूत—जैसी महाराज की आज्ञा। (उन दोनों के समीप जाकर) हे भीम और अर्जुन ! यह महाराज माता और पिता के साथ वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं।

अर्जुन—आर्य ! प्रसन्न हो ! पुत्रों के शोक से पीड़ित माता-पिता को अपने दर्शनों से अधिक व्याकुल करना उचित नहीं है। तो यहाँ से चले चलें।

भीम—मूर्ख, शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। बड़ों का अभिवादन किये बिना जाना उचित नहीं है। (समीप में जाकर) संजय ! माता-पिता से (हम दोनों का) नमस्कार कहो। अथवा, ठहरो। स्वयं ही (अपने) नाम तथा काम को सुनाकर बड़े जनों की वन्दना करनी चाहिए। (यह कहकर दोनों रथ से उतरते हैं।) ।

अर्जुन—(पास में जाकर) पिता जी !, माता जी !

अन्वयः—यत्र ते सुतैः सकलरिपुजयाशा बद्धा, यस्य गर्वेण लोकः तृणमिव परिभूतः, तस्य राधासुतस्य रणशिरसि निहन्ता अयं मध्यमः पाण्डवः वां पितरौ प्रणमति ॥ २७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यत्र=यस्मिन् यस्य कर्णस्य बले-इत्यर्थः, ते=तव, सुतैः=पुत्रैः, सकलरिपुजयाशा=सकलानां-समग्राणां रिपूणां-शत्रूणां जयस्य-विजयस्य आशा, बद्धा=निबद्धा, कृता वा, यस्य=कर्णस्य, गर्वेण=अभिमानेन, लोकः=जगदिदम्, तृणम्=घासम्, इव, परिभूतः=तिरस्कृतः, तस्य=तादृशस्य, राधासुतस्य=कर्णस्य, रणशिरसि=रणमध्ये युद्धमूधि वा, निहन्ता=विनाशिता, अयम्=एषः, मध्यमपाण्डवः=अर्जुनः, वाम्=युवाम्, पितरौ=मातापितरौ, प्रणमति=नमस्करोति ॥ २७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—यत्र=जिस कर्ण पर, ते=तुम्हारे, पुत्रैः=दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्रों के द्वारा, सकलरिपुजयाशा=सम्पूर्ण शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की आशा, बद्धा=बाँधी गयी थी, यस्य=जिस (कर्ण) के, गर्वेण=अभिमान से, लोकः=संसार, तृणमिव=तिनके के समान, परिभूतः=तिरस्कृत

किया गया था, तस्य=उस, राधासुतस्य=राधा-पुत्र कर्ण को, रणशिरसि=युद्ध के मध्य, निहन्ता=मारने वाला, अयम्=यह, मध्यमः=मझला, पाण्डवः=पाण्डवः, अर्जुन वाम्=आप दोनों, पितरौ=माता-पिता को, प्रणमति=प्रणाम करता है ।। २७ ।।

भावार्थ—तुम्हारे पुत्रों ने जिस पर सभी शत्रुओं के जीतने की आशा लगा रखी थी, जिसके अभिमान से उन्होंने संसार को तिनके के सदृश अपमानित व तिरस्कृत किया था उसी राधापुत्र कर्ण को युद्ध के मध्य मारने वाला यह मँझला पाण्डव अर्जुन आप दोनों (माता-पिता) को प्रणाम करता है ।। २७ ।।

रस—उक्त पद्य में "वीर रस" का परिपाक हुआ है ।

छन्द—इसमें 'मालिनी' नामक छन्द है । लक्षण—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" ।

समासः—कृतनिःशेषविप्रियाः=कृतानि निःशेषानि=सम्पूर्णानि विप्रियाणि=अप्रियाणि यैस्ते । सकलरिपुजयाशाः=सकलेषु रिपुषु जयस्य आशा ।। २७ ।।

टिप्पणियाँ—उपक्षेपः=ताना अथवा दोषारोपण । प्रसीद=कृपा कीजिये । पितरौ=माता-पिता, गान्धारी और धृतराष्ट्र । उद्वेजयितुम्=उद्विग्न करना । परिभूतः=तिरस्कृत किया था ।। २७ ।।

भीम,—

चूर्णिताशेषकौरव्यः क्षीबो दुःशासनासृजा ।
भङ्क्त्वा सुयोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाञ्चति ।। २८ ।।

भीम—

अन्वयः—चूर्णिताशेषकौरव्यः=दुशासनाऽसृजा क्षीवः सुयोधनस्य ऊर्वोः भङ्क्त्वा अयं भीमः शिरसा अञ्चति ।

संस्कृत-व्याख्या—चूर्णिताशेषकौरव्यः=चूर्णिताः=निष्पिष्टाः निहताः वा अशेषाः-सकलाः कौरव्याः-येन सः, दुःशासनासृजा=दुःशासनस्य असृजा-रुधिरेण, क्षीबः=मत्तः, सुयोधनस्य=दुर्योधनस्य, ऊर्वोः=सक्थ्नोः, भङ्क्त्वा=त्रोटकः-

भङ्क्तर्ता, अयम्=एषः, भीमः=वृकोदरः, शिरसा, अञ्चति=प्रणमति ॥२८॥

हिन्दी-अनुवाद—चूर्णिताशेषकौरव्यः=सभी कौरवों को पीस डालने वाला, दुःशासनासृजाः=दुःशासन के वक्षस्थल के रक्त से, क्षीबः=मतवाला, सुयोधनस्य=दुर्योधन के, ऊर्वोः=जंघाओं को तोड़ने वाला, अयम्=यह, भीमः=भीमसेन, शिरसा=शिर से, अञ्चति=आपको प्रणाम कर रहा है ॥८॥

भावार्थः—जिसने सभी कौरवों का नाश कर दिया है, दुःशासन के रक्त का पान कर जो मत्त हो रहा है, दुर्योधन की जंघाओं को जो भंग करने वाला है, ऐसा भीमसेन शिर झुकाकर आपको प्रणाम करता है ॥२८॥

छन्द—इस पद्य में "अनुष्टुप्" छन्द है।

समासः—चूर्णिताशेषकौरव्यः=चूर्णिताः अशेषाः कौरव्याः येन सः। दुःशासनासृजा=दुःशासनस्य असृजा।

धृतराष्ट्रः—दुरात्मन्वृकोदर ! न खल्विदं भवतैव केवलं सपत्नानां अपकृतम्। यावत्क्षत्रं तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः। तत्किमेवं विकत्थनाभिरस्मानुद्वेजयसि ?

भीमः—तात ! अलं मन्युना।

कृष्टा केशेषु कृष्णा तव सदसि वधूः पाण्डवानां नृपैर्यैः
सर्वे ते क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया येन दग्धाः।
एतस्माच्छ्रावयेऽहं न खलु भुजबलश्लाघया नापि दर्पा-
त्पुत्रैः पौत्रैश्च कर्मण्यतिगुरुणि कृते तात साक्षी त्वमेव ॥२९॥

धृतराष्ट्र—दुरात्मा भीम ! यह शत्रुओं का विनाश केवल आपने ही नहीं किया है अपितु जब से क्षत्रिय हुए तभी से कितने ही समर विजयी वीर योद्धा जीते गये तथा मारे गये हैं। फिर इस भाँति आत्मप्रशंसा कर हम लोगों को उद्विग्न क्यों कर रहे हो ?

भीम—तात ! क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है।

अन्वयः—पाण्डवानां पुरः तव सदसि यैः नृपैः केशेषु कृष्णा कृष्टा, ते सर्वे येन क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया दग्धाः खलु एतस्मात् अहं

श्रावये, भुजबलश्लाघया न, नापि दर्पात्, हे तात ! पुत्रैः च पौत्रैः अतिगुरुणि कर्माणि त्वं एव साक्षी ।। २९ ।।

संस्कृत-व्याख्या—पाण्डवानाम्=पाण्डुपुत्राणाम्, पुरः=अग्रे, तव=राज्ञः भवतः, सदसि=सभायाम्, यैः, नृपैः=राजभिः दुःशासनादिभिः, केशेषु=केशेषु गृहीत्वा, कृष्णा=द्रौपदी, कृष्टा=आकृष्टा । ते, सर्वे=निखिलाः दुःशासनादयः, येन=यत्कारणेन, क्रोधवह्नौ=क्रोधाग्नौ, कृशशलभकुलावज्ञया=कृशं-दुर्बलं यत् शलभकुलम्-पतङ्गसमूहः तद्वदवज्ञया=अपमानेन अनायासेन वा, दग्धाः=भस्मीकृताः, खलु=इति निश्चये, एतस्मात्=यस्मादस्माभिस्ते सर्वे दग्धा एतस्मात् कारणात्, अहम्=भीमः, श्रावये=भवन्तं कथयामि, भुजबलश्लाघया=स्वबाहुबलप्रशंसया, न=न श्रावये, नापि=नैव, दर्पात्=अहङ्कारात् श्रावये । हे तात् !=हे पितः, पुत्रैः, च, पौत्रैः, कृते=विहिते, अतिगुरुणि=महति, कर्मणि=कृत्ये, त्वम्=भवानेव, साक्षी=द्रष्टा । भवानस्माकं गुरुः—पालकश्च, अतः भवतः समक्षे उस्वकीयं कृतं कर्म चितमनुचितं वा श्रावयामः—इत्यभिप्रायः ।। २९ ।।

हिन्दी-अनुवाद—पाण्डवानाम्=पाण्डवों के, पुरः=समक्ष, तव=आपकी, सदसि=सभा में, यैः=जिन, नृपैः=राजाओं के द्वारा, केशेषु=बालों को पकड़कर, कृष्णा=द्रौपदी, कृष्टा=खींची गई, ते=वे, सर्वे=सभी, येन=जिससे, क्रोधवह्नौ=क्रोधरूपी आग में, कृशशलभकुलावज्ञया=दुर्बल पतङ्गों के समूह के सदृश= अनायास ही, खलु=निश्चय ही, दग्धाः=भस्म कर दिये गये । एतस्मात्=इसीलिये, अहम्=मैं (भीम), श्रावये=आपको सुना रहा हूँ, भुजबलश्लाघया=बाहुबल की प्रशंसा से, न=नहीं, नापि=और न, दर्पात्=अभिमान के कारण ही सुना रहा हूँ । हे तात !=हे पिता जी, पुत्रैः=पुत्रों, च=और, पौत्रैः=पौत्रों के द्वारा, कृते=किये गये, अतिगुरुणि=अतिमहान् कर्मणि=कर्म में, त्वमेव=आपही, तो, साक्षी=साक्षी हैं ।। २९ ।।

भावार्थः—पाण्डवों के विद्यमान रहते तुम्हारी राजसभा में केश पकड़कर (पाण्डवों की स्त्री) द्रौपदी को जिनके द्वारा खींचा गया था वे सब हमारी क्रोधाग्नि में पतङ्गों के समूह की भाँति अनायास ही भस्म हो गये (मारे गये)

इस बात की सूचनामात्र ही मैं आपको दे रहा हूँ। अपनी भुजाओं के बल की प्रशंसा की दृष्टि से अथवा अभिमान से मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ। हे पिता जी! हम पुत्र-पौत्रों द्वारा किये गये कार्यों के साक्षी आप ही तो हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे कोई बच्चा कोई अच्छा या बुरा कार्य करता है तो वह आकर उसे बड़ों को सुनाया करता है उसी भाँति हम लोगों ने जो भी उचित अथवा अनुचित कार्य किया है उसको हम आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं॥ २९॥

छन्दः—उक्त पद्य में 'स्रग्धरा' नामक छन्द है।

समासः—कृशशलभकुलावज्ञया=कृशं यत् शलभानां कुलं तद्वदवज्ञया। भुजबलश्लाघया=भुजयोः यद्बलं तस्य श्लाघया॥ २९॥

टिप्पणियाँ—सपत्नानाम्=वैरियों के, शत्रुओं के। "रिपौवैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः" इत्यमरः। विकत्थनाभिः=आत्म-प्रशंसा से। पुरः=सामने, आगे। सदसि=सभा में। श्रावये=सुनाता हूँ। यैः नृपैः=जिन राजाओं ने। वास्तविकता तो यह है कि राजाओं द्वारा तो द्रौपदी का केश तथा वस्त्र नहीं खींचा गया था। यह कार्य तो दुर्योधन के आदेश से केवल दुःशासन ने ही किया था। हाँ, इस कुकृत्य के द्रष्टा राजा लोग अवश्य थे। इसी दृष्टि से भीम द्वारा उक्त कुकृत्य का कर्त्ता उनको कहा जा रहा है। साक्षी—आपके परिवार द्वारा नाना प्रकार के अन्याय किये गये किन्तु रोकने का प्रयास आपने कभी नहीं किया। इसका अर्थ है कि उन सभी कुकृत्यों से आप भी सहमत थे। ऐसे साक्षी के समक्ष कर्म-फल का भी आना आवश्यक है। इसी दृष्टि से मैं आपको यह सब सुना रहा हूँ। इसके अतिरिक्त ऐसा भी देखने को मिलता है कि छोटे लोग यदि कोई महान् कार्य करते हैं तो वे उस कार्य को अपने से बड़ों को सुनाया करते हैं। मैं आपके लिए पुत्र-सदृश हूँ। आप परिवार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं: अतः मैं भी अपने किये हुए कार्य को आपको सुना रहा हूँ। इस समय भी आप इन कार्यों को देखें तथा ईमानदारी से निर्णय करें कि पहले वाले कार्य ठीक थे अथवा ये कार्य॥२९॥

दुर्योधनः—अरे रे मरुत्तनय। किमेवं वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितव्यमात्मकर्म श्लाघसे। अपि च—

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिन् वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा
बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ॥ ३० ॥

दुर्योधन—अरे पवनपुत्र! इस प्रकार वृद्ध राजा के समक्ष अपने निन्दनीय कर्म की प्रशंसा क्यों कर रहे हो? और भी—

अन्वयः— मम भुवनपतेः आज्ञया भूपतीनां प्रत्यक्षं द्यूतदासी तव पशोः, तव च, तस्य राज्ञः, च तयोः भार्या केशेषु कृष्टा। अस्मिन वैरानुबन्धे ये नरेन्द्राः हताः तैः किम् अपकृतम्? वद। बाह्वोः वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदम् मां अजित्वा एव दर्पः ॥ ३० ॥

संस्कृत-व्याख्या— मम=दुर्योधनस्य, भुवनपतेः=लोकाधिपत्य, आज्ञया=आदेशेन, भूपतीनाम्=राज्ञाम्, प्रत्यक्षम्, समक्षम्, द्यूतदासी=द्यूते-अक्षक्रीडायाम् निर्जिता दासीसेविका तव=अर्जुनस्य, पशोः=पशुतुल्य, तव=भीमस्य, च, तस्य राज्ञः=युधिष्ठिरस्य, तयोः=नकुलसहदेवयोः वा, भार्या=पत्नी-द्रौपदी, केशेषु=शिरोरुहेषु, कृष्टा। अस्मिन्=एतस्मिन्, वैरानुबन्धे=शत्रुताप्रसङ्गे, ये, नरेन्द्राः=नृपाः, त्वया, हताः=घातिताः, तैः=युष्माभिः हतैरित्यर्थः नरेन्द्रैः, किम्, अपकृतम्=अपराद्धं भवताम्?, वद=कथय। अस्मिन्विषये तु अहमेवापराधी। अतः, बाह्वोः=भुजयोः, वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदम्=वीर्यस्य—बलस्य अतिरेकः—आधिक्यम् एव द्रविणं—धनम् तेन गुरुः—महान् मदः—अहङ्कारः यस्य तम्, माम्=दुर्योधनम्, अजित्वा=अविजित्य एव, दर्पः=अभिमानः, त्वया किं क्रियते?,

हिन्दी-अनुवाद—मम=मुझ भुवनपतेः=पृथ्वीपति की आज्ञया=आज्ञा से, भूपतीनाम्=राजाओं के प्रत्यक्षम्=समक्ष, द्यूतदासी=जुए में जीती गई दासी, तव=तुझ, पशोः=पशु भीम की, तव=तेरी, (अर्जुन की), च=

तथा, तस्य=उस, राज्ञः=राजा (युधिष्ठिर) की, वा=अथवा, तयोः= उन दोनों (नकुल और सहदेव) की, भार्या=स्त्री-द्रौपदी, केशेषु=केशों को पकड़कर, कृष्टा=खींची गई। अस्मिन्=इस, वैरानुबन्धे=शत्रुता के प्रसङ्ग में, ये=जो, नरेन्द्राः=राजा, हताः=मारे गये हैं, तैः=उन लोगों ने, किम्= क्या, अपकृतम्=(तुम्हारा) अपकार किया था? वद=बतलाओ। बाह्वोः=भुजाओं के, वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदम्=बल के आधिक्यरूप धन के महान् मद से युक्त, माम्=मुझ दुर्योधन को, अजित्वा=बिना जीते, एव= ही, दर्पः=अभिमान क्यों कर रहे हो?

भावार्थः—मुझ राजा दुर्योधन की आज्ञा से राजाओं के समक्ष जुये में जीती गई दासी, पशु के समान तेरी (तुझ भीम की), तुझ (अर्जुन) की उस राजा युधिष्ठिर की, उन नकुल और सहदेव की पत्नी द्रौपदी केश पकड़कर खींची गई। इस शत्रुता के कारण जो राजा मारे गये, उन राजाओं ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? बतलाओ। बाहों के बल के आधिक्यरूप धन के मद में चूर मुझ दुर्योधन को बिना जीते ही तुम अभिमान क्यों कर रहे हो? ॥ ३० ॥

छन्द—उक्त पद्य में 'स्रग्धरा' छन्द है।

समास—द्यूतदासी=द्युते दासी-इति। वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदम्= वीर्यातिरेक एव द्रविणं तेन गुरुः मदो यस्य तम् ॥ ३० ॥

टिप्पणियाँ—मरुत्तनय=वायुपुत्र भीम। द्यूतदासी=जुए में जीती गई सेविका। वैरानुबन्धे=शत्रुता के प्रसङ्ग में। अनुबन्धः=प्रकरण। दर्पः= गर्व-अभिमान। इस श्लोक द्वारा दुर्योधन यह सिद्ध कर रहा है कि भरी सभा में द्रौपदी के केशों तथा वस्त्र के खींचने की घटना उचित ही थी। वह कह रहा है कि द्रौपदी को धोती खींचकर नंगा करने का मेरा प्रयास अनुचित न था क्योंकि मैंने उसे जुए में जीता था। अतएव वह मेरी दासी थी। दासी पर स्वामी का पूर्ण प्रभुत्व हुआ करता है। वह उसको किसी भी रूप में रख सकता है। यह सब उसकी इच्छा पर निर्भर है। (२) दूसरी

बात यह है कि वह तुम पांचों में से किसी एक की पत्नी नहीं है। पांच-पांच व्यक्ति उसके पति कहलाने के अधिकारी हैं। ऐसी स्त्री को यदि दूसरे शब्दों में वेश्या ही कह दिया जाय तो कोई अनुचित न था ॥ ३० ॥

(भीम क्रोधं नाटयति।)

अर्जुनः—आर्य ! प्रसीद। किमत्र क्रोधेन ?

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा।
हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥ ३१॥

(भीम क्रोध का अभिनय करता है।)

अर्जुन—आर्य ! प्रसन्न होइये। इस पर क्रोध करने से क्या लाभ ?

अन्वयः—हतभ्रातृशतः दुःखी एषः वाचा अप्रियाणि करोति। कर्मणा न शक्तः। (अतः) अस्य प्रलापैः का व्यथा ?

संस्कृत-व्याख्या—हतभ्रातृशतः=हतं-विनाशितं भ्रातृशतं-अनुजशतं यस्य सः, (अतएव) दुःखी=व्यथितः, एषः=दुर्योधनः, वाचा-केवलं वाण्यैव, अप्रियाणि=अनिष्टानि, करोति=विदधाति। (यतः) कर्मणा=युद्धेन पराक्रमेण च, न शक्तः=न समर्थः। (अतः) अस्य=वचनमात्रैकसामर्थ्यस्य दुर्योधनस्येत्यर्थः, प्रलापैः=अनर्थकैः वचोभिः, का=कीदृशी, व्यथा=पीड़ा ? अतएवास्य निरर्थकैः वचोभिः मनसि व्यथा न कार्येत्यर्थः ॥ ३१ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हतभ्रातृशतः=सौ छोटे भाइयों के मारे जाने से, दुःखी=दुःखी, व्यथित, एषः=यह दुर्योधन, वाचा=वचनमात्र से, अप्रियाणि=अप्रिय कार्यों को, करोति=करता है। क्योंकि यह, कर्मणा=कर्म से अहित करने में, न शक्तः=समर्थ नहीं है। (अतः=इसीलिए) अस्य=इसके, प्रलापैः=बड़बड़ाने से, का=क्या, व्यथा=पीड़ा ?

भावार्थ—सौ छोटे भाइयों के मारे जाने के कारण दुःखी यह (दुर्योधन) केवल वाणी के द्वारा ही अप्रिय कर रहा है। कर्म के रूप में करने के लिये वह समर्थ नहीं है। अतः उसके बड़बड़ाने से क्या कष्ट ? (अभिप्राय यह है कि उसके बड़बड़ाने से किसी प्रकार की मानसिक व्यथा नहीं होनी चाहिए।)

छन्दः—उक्त पद्य में "अनुष्टुप्" छन्द है।

समासः—हतभ्रातृशतः=हतं भ्रातृशतं यस्य सः।

भीमः—अरे रे भरतकुलकलङ्क,

अत्रैव किं न विशसेयमहं भवन्तं
दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन्
विघ्नं गुरुर्न कुरुते यदि मद्गदाग्र-
निर्भिद्यमानरणितास्थनि ते शरीरे ॥ ३२ ॥

भीम—अरे रे भरतकुल के कलङ्क !

अन्वयः—हे कटुप्रलापिन, ते मद्गदाग्रनिर्भिद्यमानरणितास्थनि शरीरे यदि गुरुः विघ्नं न कुरुते तदा दुःशासनानुगमनाय अहं भवन्तं अत्र एव किं न विशसेयम् ?

संस्कृत-व्याख्या—हे कटुप्रलापिन् !=हे अप्रियनिरर्थकभाषिन् !, ते=तव, मद्गदाग्रनिर्भिद्यमानरणितास्थनि=मम गदायाः अग्रेण-अग्रभागेण निर्भिद्य-मानानि-निभिष्यमाणानि अतएव रणितानि-शब्दायमानानि अस्थीनि यस्मिन् तस्मिन् शरीरे=देहे, यदि, गुरुः=गुरुजनः, विघ्नम्=बाधम् न कुरुते=न करोति, तदा=तर्हि, दुःशासनानुगमनाय=दुःशासनस्य अनुगमनाय-अनुसरणाय, अहम्=भीमः, भवन्तम्=त्वां-दुर्योधनम्, अत्र=अस्मिन् स्थले, एव, किम्=कथम्, न विशसेयम्=हन्याम् ? हन्यामेवेत्यर्थः ।। ३२ ।।

हिन्दी-अनुवाद—हे कटुप्रलापिन् !=हे अप्रिय तथा निरर्थक बकवास करने वाले !, ते=तुम्हारे मद्गदाग्रनिर्भिद्यमानरणितास्थीनि=मेरी गदा की नोंक से टूटती हुई अतएव शब्द करती हुई हड्डियों से युक्त, शरीरे=शरीर में, यदि=यदि, गुरुः=माता-पिता आदि गुरुजन, विघ्नम्=विघ्न, न कुरुते=नहीं उपन्न करते हैं, तदा=तो, दुःशासनानुगमनाय=दुःशासन का अनुगमन करने के लिये, अहम्=मैं भीम, भवन्तम्=आप (दुर्योधन) को, अत्रैव=यहीं पर, किं=क्या, न=नहीं, विशसेयम्=मार डालता ? अर्थात् मार ही डालता ।। ३२ ।।

भावार्थः--हे कटुभाषी दुर्योधन ! यदि गदा के अग्रभाग के आघात से चूर-चूर होती हुई तेरी हड्डियों की कड़कड़ाहट के साथ तेरे शरीर को पीसकर चकनाचूर कर देने में ये गुरु (पितृसदृश धृतराष्ट्र) विघ्न न करते तो मैं तुझे इस स्थान पर मारकर दुःशासन के समीप भेज देता ॥३२॥

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" वृत्त है ।

समासः—मद्गदाग्रनिर्भिद्यमानरणितास्थनि—मम गदाग्रेण निर्भिद्यमानानि अतएव रणितानि अस्थीनि यस्मिन् तस्मिन् । दुःशासनानुगमनाय—दुःशासनस्य अनुगमनाय ।

टिप्पणियाँ—निर्भिद्यमानानि=चूर्ण-चूर्ण होती हुई, पीसी जाती हुई, रणितानि=शब्द करती हुई । विसर्जयेयम्—मार डालता, मार देता ॥ ३२ ॥

अन्यच्च मूढ,—

शोकैः स्त्रीवन्नयनसलिलं यत्परित्याजितोऽसि
भ्रातुर्वक्षःस्थलविघटने यच्च साक्षीकृतोऽसि ।
आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणं जीवितस्य
क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥३३॥

और भी, मूर्ख,

अन्वयः--शोकैः स्त्रीवत् नयनसलिलं यत् परित्याजितः असि, च भ्रातुः वक्षस्थलविघटने यत् साक्षीकृतः असि एतत् युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने क्रुद्धे (सति) तवकुनृपतेः जीवितस्य कारणं आसीत् ॥ ३३ ॥

संस्कृत-व्याख्या— शोकैः=भ्रातृशतवधोत्पन्नैः दुःखैः, स्त्रीवत्=अबला इव, नयनसलिलम्=नयनयोः—नेत्रयोः सलिलम्-जलम् 'अश्रु' इत्यर्थः, यत्, परित्याजितः=मोचितः, असि-शोकैः यथा स्त्री रोदिति तथा यत्त्वं नयनसलिलं त्याजितोऽसि—इत्यभिप्रायः । च, भ्रातुः=अनुजस्य दुःशासनस्य, वक्षस्थलविघटने=वक्षस्थलस्य विघटने=विदारणे, यत्, साक्षीकृतः=प्रत्यक्षद्रष्टाकृतः, असि, एतत्=इदम्-द्वयमितिशेषः, युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे=युष्मत्कुल-

तववंश: एव कमलिनी-पद्मिनी, तस्याः कुञ्जरे-गजराजे, भीमसेने-भीमे, क्रुद्धे=कुपिते सति, तव, कुनृपतेः=नीचराज्ञः, जीवितस्य=जीवनस्य, कारणम्=हेतुः, आसीत् एतद्द्वयं तव जीवितस्य कारणम् । एतदर्थमेव मया त्वं यमातिथिः न कृत इत्यभिप्रायः ॥ ३३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—शोकैः=छोटे भाइयों के वध से उत्पन्न दुःख के कारण, स्त्रीवत्=स्त्रियों के समान, नयनसलिलम्=नेत्रजल अर्थात् आँसुओं को, यत्=जो (तुमने) परित्याजितः=बहाया, असि=है, च=और, भ्रातुः=भाई दुःशासन के, वक्षस्थलविघटने=वक्षस्थल के विदीर्ण करने में, यत्=जो, साक्षीकृतः=प्रत्यक्षदृष्टा, असि=बनाये गये हो । एतत्=ये (द्वयम्=दोनों) युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे=तुम्हारे वंशरूपीकमलिनी के लिए साक्षात् हाथी के समान, भीमसेन ने=भीमसेन के, क्रुद्धे=क्रोधित हो जाने पर, तव=तुझ, कुनृपतेः=दुष्टराजा के, जीवितस्य=जीवित रहने का, कारणम्=कारण, आसीत्=था ॥ ३३ ॥

भावार्थः—मैंने तुझे तेरे भाई दुःशासन और मित्र कर्ण के शोक में स्त्रियों की भाँति रुलाया । तेरे समक्ष ही तेरे भाई (दुःशासन) के वक्षस्थल को फाड़कर मैंने रक्तपान किया । तुम्हारे वंशरूपी कमल की लता को नष्ट करने वाले मुझ भीमसेन के क्रुद्ध होने पर भी इसी दुःख को भोगने के निमित्त तेरा जीवन अभी तक विद्यमान है । अभिप्राय यह है कि इसी दुःख को दिखाने के लिए मैंने तुझ पापी को जीवित छोड़ रखा था । अब शीघ्र ही तुझे मार दूँगा । ॥ ३३ ॥

छन्द—उपर्युक्त पद्य में "मन्दाक्रान्ता" छन्द है ।

समास—वक्षस्थलविघटने=वक्षस्थलस्य विघटने । युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे=युष्मत्कुलं एव कमलिनी तस्याः कुञ्जरे ॥ ३३ ॥

दुर्योधनः—दुरात्मन् ! भरतकुलापसद । द्यूतदास ! पाण्डवपशो ! नाहं भवानिव विकत्थनाप्रगल्भः । किन्तु—

द्रक्ष्यन्ति नचिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।
मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम् ॥ ३४ ॥

दुर्योधन—हे दुष्ट ! भरतकुलाधम ! जुये में जीते गये दास ! पाण्डव-पशु ! मैं आपके समान आत्म-प्रशंसा करने में धृष्ट नहीं हूँ । किन्तु—

अन्वयः— (ते) बान्धवाः रणाङ्गणे मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिका-भीमभूषणं सुप्तं त्वां नचिरात् द्रक्ष्यन्ति ॥ ३४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—(ते=तव) बान्धवाः=स्वजनाः, रणाङ्गण=समरांगणे, मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम्=मम या गदा तया भिन्नं-भग्नम् यद्वक्षः तस्य यानि अस्थिनि तेषां वेणी इव वेणिका-समूहः, सैव भीमं-भयानकं भूषणं यस्य तम् सुप्तम्=भूमौ निपतितम्-निहतम्, त्वाम्=भीमम् न चिरात्=अतिशीघ्रम्, द्रक्ष्यन्ति=विलोकयिष्यन्ति । न चिरात् त्वां युद्धभूवि हनिष्यामीत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—(ते=तुम्हारे), बान्धवाः=स्वजने, रणाङ्गणे=युद्धस्थल में, मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणन्=मेरी गदा के आघात से टूटी हुई पसुलियों की हड्डियों की मालारूप भयानक आभूषण वाले (अतएव), सुप्तम्=सोये हुए, त्वाम्=तुमको, न चिरात्=अतिशीघ्र ही, द्रक्ष्यन्ति=देखेंगे ॥ ३४ ॥

भावार्थः—तुम्हारे कुटुम्बीजन युद्धस्थल में मेरी गदा के आघात से टूटी हुई पसुलियों की लुगदी से भयंकर आभूषणों से विभूषित अतएव सोये हुए (अर्थात् मृत अवस्था में) तुमको शीघ्र ही देखेंगे । अभिप्राय यह है कि मेरी गदा की चोट से तेरी हड्डियाँ टूट-टूट कर इकट्ठी होकर गड्डी सी बन जायेंगी और इस भाँति तुम युद्ध-भूमि पर पड़े हुए अपनी मौत की घड़ियां गिनोगे ॥ ३४ ॥

छन्द—उक्त पद्य में "अनुष्टुप्" छन्द है ।

समासः—विकत्थनाप्रगल्भः=विकत्थनायांअसत्यश्लाघाकथने प्रगल्भः-धृष्टः । मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम्=मम गदया भिन्नं वक्षः-इति मद्गदाभिन्नवक्षः तस्य यानि अस्थीनि तेषां वेणिका सा एव भीमं भूषणं यस्य स, तम् ॥ ३४ ॥

टिप्पणयाँ—विकत्थना—आत्मप्रशंसा, अपने मुख से अपनी झूठी प्रशंसा करना। प्रगल्भः=धृष्ट। रणाङ्गणे=युद्धस्थल में, युद्धभूमि में। वेणिका=माला, पंक्ति। भीमम्=भयंकर। सुप्तम्=पृथ्वी पर पड़े हुए। न चिरात्=अतिशीघ्र ही। द्रक्ष्यन्ति=देखेंगे ॥ ३४ ॥

भीमः—(विहस्य) यद्येवं नाश्रद्धेया भवान्। तथापि प्रत्यासन्नमेव कथयामि।

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसंचूर्णितोरोः
क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते।
त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेनानखाग्रं
स्त्यानेनार्द्रेण चाक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि ॥३५॥

भीम—(हँसकर) यदि ऐसा है तो आप पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। फिर भी जो शीघ्र ही घटित होने को है उसे कहता हूँ—

अन्वय—श्वः प्रभाते पश्यतां नृणां (अग्रे) पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसञ्चूर्णितोरोः क्रूरस्य तव शिरसि पादं आधाय स्त्यानेन च आर्द्रेण त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेन अनखाग्रं अक्तः स्वयं भीमं भूषणं अनुभविता अस्मि ॥ ३५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—श्वः=आगामिनी दिवसे, प्रभाते=प्रातःकाले, पश्यताम्=अवलोकयताम्, नृणाम्=राज्ञाम्, (अग्रे=पुरतः), पीनाभ्याम्=स्थूलाभ्याम्; मद्भुजाभ्याम्=मम बाहूभ्याम्, भ्रमितगुरुगदाघातसञ्चूर्णितोरोः=भ्रमिता-सचालिता या गुरुः महती या गदा तस्याः आघातेन-प्रहारेण सञ्चूर्णितौ-भग्नौ उरू-जघने यस्य तस्य, क्रूरस्य=नृशंसस्य, तव=भवतः, शिरसि=मस्तके, पादम्=चरणम्, आधाय=धृत्वा, स्त्यानेन=घनीभूतेन, च, आर्द्रेण=क्लिन्नेन, त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेन=त्वमेव-दुर्योधनमेव मुख्यः-प्रधानः यस्य तादृशं यत् भ्रातृणाम्-सहोदराणाम् चक्रम्-समूहः तस्य उद्दलनेन-खण्डनेन गलत्-स्रवत् यत् असृक्-रक्तम् तदेव चन्दनं तेन, आनखाग्रम्=नखाग्र-पर्यन्तम्, अक्तः=लिप्तः, स्वयम्-अहमितिशेषः, भीमम्=भयङ्करम्, भूषणम्=आभूषणम्, अनुभविता=अनुभवकर्त्ता, अस्मि ॥ ३५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—श्वः=कल, प्रभाते=प्रातःकाल, पश्यताम्=देखनेवाले, नृणाम्=राजाओं के, अग्रे=समक्ष, पीनाभ्याम्=मोटी तथा पुष्ट, मद्भुजाभ्याम्=मेरी भुजाओं से, भ्रमितगुरुगदाघातसंचूर्णितोरोः=घुमाई जाती हुई विशाल गदा के प्रहार से चूर-चूर हुई जंघाओं वाले, क्रूरस्य=क्रूर, तव=तेरे, शिरसि=सिर पर, पादम्=पैर, आधाय=रखकर, स्त्यानेन=गाढ़े, च=और, आर्द्रेण=ताजे, त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेन=सभी भाइयों में बड़े तुम्हारे बहते हुए रक्तरूपी चन्दन से, आनखाग्रम्=नख से शिर तक, अक्तः=पुता हुआ, स्वयम्=स्वयं मैं, भीमम्=भीषण, भूषणम्=आभूषण का, अनुभविता=अनुभव करने वाला, अस्मि=होऊँगा ॥ ३५ ॥

भावार्थः—कल प्रातःकाल सभी लोगों के समक्ष दृढ़ व स्थूल मेरी भुजाओं से बड़े वेग के साथ घुमाई गई अपनी इस महती गदा के प्रहार से जिसकी जंघायें चूर-चूर हो गई हैं ऐसे तेरे क्रूर पापी के शिर पर पैर रखकर आज तक मारे गये तेरे छोटे भाइयों के शरीर से निकले हुए रक्तरूपी गाढ़ा चन्दन जो मेरे शरीर पर शिर से नख तक पहले से ही लगा हुआ है किन्तु कुछ सूख-सा गया है, उसी के ऊपर तेरे रक्तरूपी गीले चन्दन को लगाकर स्वयं ही एक भीषण आभूषण को धारण करूँगा। अभिप्राय यह है कि तुम्हारे छोटे भाइयों के रक्त को तो मैंने अपने शरीर पर पहले ही से लगा रखा है। अब तुम्हारे भी ताजे रक्त का उसी पर लेपकर भयंकर आभूषण को धारण करूँगा ॥ ३१ ॥

छन्द—उक्त पद्य में 'स्रग्धरा' छन्द है।

समासः—भ्रमितगुरुगदाघातसञ्चूर्णितोरोः=भ्रमिता याभदा तस्यास्तया वा यः आघातः, तेन संचूर्णितौ उरू यस्य सः, तस्य। त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेन=त्वमेव मुख्यो यस्य भ्रातृचक्रस्य तस्य उद्दलनेन गलत् यत् असृक् रुधिरं तदेव चन्दनं तेन ॥ ३५ ॥

टिप्पणियाँ—प्रत्यासन्नम्=शीघ्र ही घटित होने वाला। पीनाभ्याम्=पुष्ट, दृढ़, मोटा। आधाय=रखकर। स्त्यानेन=गाढ़े। आर्द्रेण=गीले।

भ्रातृचक्रम्=भाइयों का समूह। उद्दलनेन=कुचलने से। गलत्=चूते हुए। आनखाग्रम्=पैर के नाखून से लेकर शिर तक। अक्तः=व्याप्त, लिप्त। अनुभविता=अनुभव करने वाला ॥ ३१ ॥

[नेपथ्ये]

भो भो भीमसेनार्जुनौ निहताशेषारातिचक्र आक्रान्तपरशुरामाभिरामयशाः प्रतापतापितदिङ्मण्डलस्थापितस्वजनः श्रीमानजातशत्रुर्देवो युधिष्ठिरः समाज्ञापयति ॥ ३५ ॥

उभौ —किमाज्ञापयत्यार्यः ?

[पुनर्नेपथ्ये]

कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसिजना वह्निसाद्देहभारा—
न श्रून्मिश्रं कथञ्चिद्ददतु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्यः।
मार्गन्तां ज्ञातिदेहान्हतनरगहने खण्डितान्गृध्रकङ्कै—
रस्तं भास्वान्प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि ॥३६॥

(पर्दे के पीछे)

हे हे भीम और अर्जुन ! सम्पूर्ण शत्रु-समूह के विनाशक, परशुराम की सुन्दरकीर्ति को अभिभूत करने वाले, अपने प्रताप से वश में की गई दिशाओं में स्वजनों को स्थापित करनेवाले, यह श्रीमान् अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर आज्ञा दे रहे हैं।

दोनों—आर्य क्या आज्ञा दे रहे हैं ?

(पुनः पर्दे के पीछे)

अन्वयः—आप्ताः जनाः रणशिरसिहतानां देहभारान् वह्निसात् कुर्वन्तु; अमीबान्धवाः बान्धवेभ्यः कथञ्चित् अश्रून्मिश्रं जलं ददतु, हतनरगहने गृध्रकङ्कैः खण्डितान् ज्ञातिदेहान् मार्गन्ताम्. अयं भास्वान् रिपुभिः सह अस्तं प्रयातः, (अतः) बलानि संह्रियन्ताम् ॥ ३६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—आप्ताः=प्रामाणिकाः बान्धवादयः, जनाः=व्यक्तयः, रणशिरसि=युद्धमूर्ध्नि, हतानाम्=घातितानाम्, देहभारान्=शवसमूहान्, वह्निसात्=अग्निसात्, कुर्वन्तु=विदधतु। अमी=एते, बान्धवाः=ज्ञातयः,

बान्धवेभ्यः=मृतस्वजनेभ्यः, कथञ्चित्=येन केन प्रकारेण-हृदयमवलम्ब्येत्यर्थः, अश्रून्मिश्रम्=अश्रुभिः उन्मिश्रं-युक्तम्, जलम्=जलाञ्जलिम्, ददतु=वितरन्तु। हतनरगहने=हतानां-मृतानां नराणां गहने-संकुलिते समवाये, गृध्रकङ्कैः-मांसाशिपक्षिभिः, खण्डितान्=विदलितान्-विदारितान् वा, ज्ञातिदेहान्=बान्धवशरीराणि, मार्गन्ताम्=मृग्यन्ताम्-गवेषयन्ताम्, अयम्=एषः, भास्वान्=रिपुभिः=शत्रुभिः,सह=सार्धम्, अस्तम्=अस्ताचलम्, प्रयातः=गतः-सूर्योऽस्ताचलं रपवो नाशं यातः-इत्यभिप्रायः। अतः, बलानि=सैन्यानि, संह्रियन्ताम्=एकत्री क्रियताम् ॥ ३६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—आप्ताः=कुटुम्बी, जनाः=लोग, रणशिरसि=युद्धभूमि में, हतानाम्=मरे हुए लोगों के, देहभारान्=शव-समूह को, वह्निसात्=अग्निदग्ध, कुर्वन्तु=करें। अमी=ये, बान्धवाः=बन्धुजन, बान्धवेभ्यः=सम्बन्धियों के लिये, कथञ्चित्=किसी प्रकार, अश्रून्मिश्रम्=अश्रुधारा से मिश्रित, जलम्=तर्पण-जल, ददतु=देवें। हतनरगहने=मारे गये हुए मनुष्यों के ढेर में, गृध्रकङ्कैः=गिद्धों तथा कङ्क आदि मांसभक्षी पक्षियों के द्वारा, खण्डितान्=खण्डित, ज्ञातिदेहान्=अपने कुटुम्बीजनों के शरीरों (शवों) को, मार्गन्ताम्=खोजें। अयम्=यह, भास्वान्=सूर्य, रिपुभिः=शत्रुओं के, सह=साथ, अस्तम्=अस्ताचल को, प्रयातः=जा चुके हैं। अतः=इसलिये, बलानि=सेनायें, संह्रियन्ताम्=लौटा ली जायँ ॥ ३६ ॥

भावार्थः—सम्बन्धीजन युद्ध में मारे गये अपने-अपने बन्धु-बान्धवों के शरीर का अग्नि-संस्कार करें। कुटुम्बीजन किसी प्रकार अपने मृत-बन्धुओं को अश्रुओं से मिश्रित जल (तिलाञ्जलि अथवा जलाञ्जलि) दें। मरे हुए मनुष्यों के ढेरों में से इस युद्धस्थल में मांसभक्षी पक्षियों द्वारा खाये गये अपने-अपने बन्धु-बान्धवों के शरीरों (शवों) को खोजें। अब सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे हैं अर्थात् दिन छिपने को जा रहा है। अतः सेनाओं को शिविरों में बुला लिया जाय तथा युद्ध बन्द किया जाय ॥ ३६ ॥

अलंकारः—उक्त पद्य में 'सहोक्ति' अलंकार है।

छन्द—इसमें 'स्रग्धरा' नामक वृत्त है।

समासः—निहताशेषारातिचक्रः=निहतं-घातितं अशेषं सम्पूर्णं अरातीनां-शत्रूणां चक्रं-समूहः यस्य सः। आक्रान्तपरशुरामाभिरामयशाः=आक्रान्तं-अतिक्रान्तं परशुरामस्य-जामदग्न्यस्य अभिरामं-हृद्य यशः येन सः। प्रतापतापितदिङ्मण्डलस्थापितस्वजनः=प्रतापेन तापितं-संतापितं दिङ्मण्डल येन-तादृशे दिङ्मण्डले स्थापितः स्वजनः येन सः हतनरगहने=हतानां नराणा गहने ।। ३६ ॥

टिप्पणियाँ—निहतम् = मारे गये। अरातिचक्रः=शत्रु-समूह। आक्रान्तम्—अभिभूत कर दिया है। तापितम्=संतप्त। स्थापिता=नियुक्त किये गये हुए। स्वजनाः=अपने २ पक्ष के पुरुष। देहभारान्=शरीर-समूहों (शवों) को। वह्निसात् कुर्वन्तु=जला दें। हतनरगहने=मरे हुए मनुष्यों के ढेर में। ज्ञातिदेहान्=सम्बन्धियों के शरीरों को। मार्गन्ताम्=खोजें ढूंढें। सह्रियन्ताम्=लौटा लें।। ३६ ॥

उभौ—यदाज्ञापयत्यार्यः। (इति निष्क्रान्तौ)।

(नेपथ्ये)

अरे रे गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन् अर्जुन। क्वेदानीं गम्यते।

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि
प्रौढं विक्रान्तमासीद्वनइव भवतां शूरशून्ये रणेऽस्मिन्।
स्पर्शं स्मृत्वोत्तमाङ्गे पितुरनवजितन्यस्तहेतेरुपेतः
कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदसुतचमूघस्मरो द्रौणिरस्मि।। ३७।।

दोनों—आर्य की जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर दोनों निकल जाते हैं।)

(पर्दे के पीछे)

अरे रे गाण्डीव नामक धनुष को खींचनेवाली बाहुओं वाले अर्जुन! इस समय कहाँ जा रहे हो?

अन्वयः—एतानि अहानि युष्मद्विजयि इदं धनुः कर्णक्रोधेन त्यक्तम्; (अतएव) शूरशून्ये वने इव अस्मिन् रणे भवतां विक्रान्तं प्रौढं आसीत्; अनवजितन्यस्तहेतेः पितुः उत्तमाङ्गे स्पर्शं स्मृत्वा पाण्डवानां कल्पाग्निः द्रुपदसुतचमूघस्मरः द्रौणिः उपेतः अस्मि ॥ ३७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—एतानि=इमानि, अहानि=दिनानि, युष्मद्विजयि=युष्मान् विजेतुं शीलमस्य-इति-भवद्विजयशीलमित्यर्थः, इदम्=एतत्; धनुः, कर्णक्रोधेन=कर्णे-राधेये क्रोधः-कोपः तेन, कर्णस्य परुषवचनेनेत्यर्थः, त्यक्तम्=परित्यक्तमासीत्। अतएव, शूरशून्ये=वीरविरहिते, वने=अरण्ये, इव, अस्मिन्=एतस्मिन्, रणे=युद्धे, भवताम्=युष्माकमित्यर्थः, विक्रान्तम्=विक्रमः, प्रौढम्=प्रबलमासीत्। अनवजितन्यस्तहेतेः=अनवजिता-अपराजिता न्यस्ता-पुत्रशोकेन परित्यक्ता हेतिः-अस्त्रं येन तस्य, पितुः=तातस्य, उत्तमाङ्गे=शिरसि, स्पर्शम्=पाञ्चालकृतकेशाभिमर्षणम् स्मृत्वा, पाण्डवादीनाम्=युधिष्ठिरादीनाम्, कल्पाग्निः=प्रलयकालिकाग्निः तुल्यः-प्रलयकालिकाग्निरिव विनाशक इत्यर्थः, द्रुपदसुतचमूघस्मरः=द्रुपदसुतस्य-धृष्टद्युम्नस्य या चमूः-सेना तस्याः घस्मरः भक्षकः-नाशकः, द्रौणिः=द्रोणपुत्रः-अश्वत्थामा, उपेतः=प्राप्तः, अस्मि ॥ ३७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—एतानि=इतने, अहानि=दिनों तक, युष्मद्विजयि=तुम लोगों पर विजय प्राप्त करने वाले, इदम्=इस, धनुः=धनुष को, कर्णक्रोधेन=कर्ण पर क्रोध होने के कारण, व्यक्तम्=छोड़ रखा था। अतएव, शूरसून्ये=वीर-विहीन, वने इव=जंगल के समान, अस्मिन्=इस, रणे=युद्ध में, भवताम्=आपका, विक्रान्तम्=पराक्रम, प्रौढम्=बढ़ा हुआ-अद्भुत, आसीत्=था। अनवजितन्यस्तहेतेः=पराजित हुए बिना ही शस्त्र त्याग कर देने वाले, पितुः=पिता के, उत्तमाङ्गे=शिर पर, स्पर्शम्=स्पर्श को, स्मृत्वा=स्मरण करके, पाण्डवानाम्=पाण्डवों के लिए, कल्पाग्निः=प्रलयकालीन अग्नि के समान, द्रुपदसुतचमूघस्मरः=द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न की सेना का भक्षक, द्रौणिः=द्रोणपुत्र, उपेतः=आ गया, अस्मि=हूँ ॥ ३७ ॥

भावार्थः—तुम लोगों को बात ही बात में जीतने वाले इस धनुष को मैंने कर्ण के ऊपर क्रोध के कारण इतने दिनों तक छोड़ रखा था। और इस कौरव सेना में शूरवीरों के अभाव में तुम लोगों ने युद्ध में—वन के समान-भलीभांति उछलकूद मचा रखी थी (तात्पर्य यह है कि जैसे सिंह से रहित वन में जैसे गीदड़ भी उछलने कूदने लगा करते हैं वैसे ही मेरे बिना तुम

लोगों ने भी युद्ध में अत्यधिक उत्पात मचा रखा था ।) अब तो अब तो शस्त्र त्यागकर समाधिस्थ हुए सर्वदा अपराजित अपने पिता के केश पकड़कर खींचे जाने सम्बन्धी अपमान को स्मरण करके, पाण्डवों के लिए साक्षात् प्रलयकालीन अग्नि के तुल्य, द्रुपदपुत्र (धृष्टद्युम्न) की सेना को खा जाने में समर्थ, द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा मैं आ गया हूँ । अब कहाँ जाते हो; ठहरो ॥ ३७ ॥

छन्द—उक्त पद्य में 'स्रग्धरा' नामक छन्द है ।

व्याकरण—घसितुं शीलमस्येति घस्मरः=घस्+क्मरच्–"सृघस्यदः क्मरच्" से ।

समासः—गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन्=गाण्डीवस्य आकर्षणे प्रसक्तौ यौ बाहू ताभ्यां शालते-शोभते यः तत्सम्बुद्धौ । अनवजितन्यस्तहेतेः= अनवजिता न्यस्ता हेतिः येन, तस्य । द्रुपदसुतचमूघस्मरः=द्रुपदसुतस्य चम्वाः घस्मरः ॥ ३७ ॥

टिप्पणियाँ—आकर्षणे=खींचने में । कर्णक्रोधेन=कर्ण के ऊपर उत्पन्न हुए क्रोध के कारण । शूरशून्ये=भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा आदि से रहित । विक्रान्तम्=पराक्रम, विक्रम, । अनवजिता=अपराजिता । हेतिः=अस्त्र । घस्मरः=भक्षक, नाशक । द्रौणिः=द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्रः—(आकर्ण्य सहर्षम्) वत्स दुर्योधन ! द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः पितुरपि समधिकबलः शिक्षावानमरोपमश्चायमश्वत्थामा प्राप्तः । तत्प्रत्युपगमनेन तावदयं संभाव्यतां वीरः ।

गान्धारी—जात ! प्रत्युद्गच्छैनं महाभागम् । (जाद, पच्चुग्गच्छ एदं महाभागम् ।) ।

दुर्योधनः—तात ! अम्ब ! किमनेनाङ्गराजवधाशंसिना वृथायौवनशस्त्रबलभरेण ।

धृतराष्ट्रः—वत्स ! न खल्वस्मिन्काले पराक्रमवतामेवंविधानां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुमर्हसि ।

(प्रविश्य)

अश्वत्थामा—विजयतां कौरवाधिपतिः ।

दुर्योधनः—(उत्थाय) गुरुपुत्र ! इत आस्यताम् (इत्युपवेशयति) ।

अश्वत्थामा—राजन दुर्योधन !

कर्णेन कर्णसुभगं बहुयत्तदुक्त्वा
यत्सङ्गरेषु विहितं विदितं त्वया तत् ।
द्रौणिस्त्वधिज्यधनुरापतितोऽभ्यमित्र-
मेषोऽधुना त्यजनृप प्रतिकारचिन्ताम् ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्रः—(सुनकर, हर्ष के साथ) हे पुत्र दुर्योधन ! द्रोणाचार्य के वधरूपी अपमान के कारण उद्दीप्त हुई क्रोधाग्नि से युक्त, अपने पिता से भी अधिक शक्तिशाली, शिक्षासम्पन्न, देवता के सदृश, यह अश्वत्थामा आ गया है । तो अगवानी करके इस वीर का स्वागत करो ।

गान्धारी—हे पुत्र ! इस महाभारत की अगवानी करो ।

दुर्योधन—पिता जी ! माता जी ! अङ्गराज (कर्ण) के वध की अभिलाषा करनेवाले, व्यर्थ ही यौवन एवं शस्त्रों को धारण करने वाले इस अश्वत्थामा से क्या (लाभ) ?

धृतराष्ट्र—हे पुत्र ! ऐसे समय पर इस भाँति के पराक्रमी (वीरों) का वचनमात्र से भी वैराग्य उत्पन्न करना उचित नहीं है । (अथवा ऐसे वीरों का अपमान नहीं करना चाहिये ।) ।

अश्वत्थामा—कौरव-नरेश की जय हो ।

दुर्योधन—(उठकर) गुरु पुत्र ! यहाँ बैठिये । (ऐसा कहकर बिठालता है ।) ।

अश्वत्थामा—राजन् दुर्योधन !

अन्वयः—कर्णेन यत् कर्णं सुभगं तत् बहु उक्त्वा सङ्गरेषु यत् विहितं तत् त्वया विदितम् । अधुना अभ्यमित्रं अधिज्यधनुः एषः द्रौणिः आपतितः । हे नृप ! प्रतिकारचिन्तां त्यज ॥ ३७ ॥

संस्कृत-व्याख्या--कर्णेन=राधेयेन, यत्, कर्णसुभगम्=श्रवणसुखजनकम्, तत्=तादृश वचनमित्यर्थः, बहु=वारम्वारमितियावत्, उक्त्वा=कथयित्वा, संगरेषु=सग्रामेषु, यत्=यत्कर्म, विहितम्=कृतम्, तत्=तत्कर्म, त्वया=राज्ञा दुर्योधनेन, विदितम्=ज्ञातम्। अधुना=सम्प्रति, अभ्यमित्रम्=अमित्राणां-शत्रूणां अभि-सम्मुखम् अधिज्यधनुः=अधिज्यं-समौर्वीकं धनुः यस्य सः, एषः=अयम्, द्रौणिः=अश्वत्थामा, आपतितः=आगतः। अतः=अतएव, हे नृप!=हे राजन्!, प्रतिकारचिन्ताम्=शत्रुप्रतीकारचिन्ताम्, त्यज=दूरी कुरु। अहमेव तव रिपून् हनिष्यामीत्यभिप्रायः ॥ ३८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—कर्णेन=कर्ण ने, यत्=जो, कर्णसुभगम्=कानों को सुखदायक, तत्=पूर्वकथित, बहु=बहुत सी बातों को, उक्त्वा=कहकर, संगरेषु=युद्ध में, यत्=जो कुछ, विहितम्=किया; तत्=वह, त्वया=तुमको विदितम्=ज्ञात ही है। अधुना=इस समय, अभ्यमित्रम्=शत्रुओं को लक्ष्य करके, अधिज्यधनुः=धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाकर, एषा=यह, द्रौणिः=अश्वत्थामा, आपतितः=आ गया है। (अतः=इसलिए), अतः=इसलिए, हे नृप! हे राजन्!, प्रतिकारचिन्ताम्=बदला लेने की चिन्ता को, त्यज=छोड़ो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—कर्ण ने कानों को प्रिय लगने वाली, बड़ी मीठी बातें बनाकर भी युद्ध में जो कुछ भी किया है वह तो आपको ज्ञात ही है। अब आचार्य द्रोण का पुत्र मैं-अश्वत्थामा धनुष चढ़ाकर शत्रुओं का सामना करने हेतु आ पहुँचा हूँ। अतः हे महाराज! आप अब शत्रुओं से बदला लेने की चिन्ता तथा दुःख को त्याग दें ॥ ३८ ॥

छन्द—इस पद्य में "वसन्ततिलका" छन्द है।

समासः—द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः=द्रोणस्य वधः एव परिभवः, तेन उद्दीपितः क्रोध एव पावकः यस्य सः। अभ्यमित्रम्=अमित्राणां अभि-इति। अधिज्यधनुः=अधिज्यं धनुः यस्य सः ॥ ३८ ॥

टिप्पणियाँ—परिभवः=अपमान, तिरस्कार। उद्दीपितः=वृद्धिको प्राप्त हुआ। प्रत्युद्गमनेन=अगवानी करके। सम्भाव्यताम्=सत्कृत करें। अमरोपमः=देव तुल्य। प्रत्युद्गच्छ=लाने के लिए कुछ कदम आगे तक बढ़ो। अङ्गराजवधाशंसिना=कर्ण के वध का अभिलाषी। वृथा यौवन-शस्त्रबलभरेण=निरर्थक युवावस्था और शस्त्रों के बल वाले। वाङ्मात्रेण=केवल वचन मात्र से। द्रौणिः=द्रोण के पुत्र-अश्वत्थामा। अभ्यमित्रम्=शत्रुओं के सन्मुख। प्रतिकारस्य=बदला लने की ।। ३८ ।।

दुर्योधनः—(साभ्यसूयम्) आचार्य पुत्र !

अवसानेऽङ्गराजस्य योद्धव्यं भवता किल।
ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः ॥ ३९ ॥

दुर्योधनः—(ईर्ष्या के साथ) आचार्य पुत्र !

अन्वयः—अङ्गराजस्य अवसाने भवता योद्धव्यं किल। (तदा) मम अपि अन्तं प्रतीक्षस्व, कः कर्णः, कः सुयोधनः।

संस्कृत-व्याख्या—अङ्गराजस्य=कर्णस्य, अवसाने=अन्ते, भवता=त्वया, योद्धव्यम्=युद्धं कर्त्तव्यम्, किल=इति निश्चयेऽरुचौ वा, तर्हि, ममापि=दुर्योधनस्यापि, अन्तम्=विनाशम्, प्रतीक्षस्व=किंचित्कालं प्रतिपालय, यतः, कः कर्णः कः सुयोधनः=कर्णदुर्योधनयोः को भेदः। न कोऽपीत्यर्थः। तत्कर्णस्यरिपुः ममैवरिपुरित्यभिप्रायः ।। ३९ ।।

हिन्दी-अनुवाद—अङ्गराजस्य=कर्ण का, अवसाने=अन्त हो जाने पर, भवता=आपके द्वारा, योद्धव्यम्=युद्ध किया जाना है तो, मम=मेरे, अपि=भी, अन्तम्=अन्तम् की, प्रतीक्षस्व=प्रतीक्षा करो। कः=क्या, कर्णः=कर्ण है और कः=क्या, दुर्योधनः=दुर्योधन ? अर्थात् कर्ण और दुर्योधन में कोई अन्तर नहीं है ।। ३९ ।।

भावार्थ—कर्ण की मृत्यु के अनन्तर ही आप युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। तो फिर मेरे भी अन्त की प्रतीक्षा करिये। उसके पश्चात् ही युद्ध कीजियेगा। क्योंकि कर्ण में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही हैं ।। ३९ ।।

छन्दः—उक्त पद्य में अनुष्टुप्छन्द है।

अश्वत्थामा—(स्वगतम्) कथमद्यापि स एव कर्णपक्षपातः। अस्मासु च परिभवः। (प्रकाशम्) राजन् कौरवेश्वर ! एवं भवतु। (इति निष्क्रान्तः)।

धृतराष्ट्रः—वत्स ! क एष ते व्यामोहो यदस्मिन्नपि काले एवं विधस्य महाभागस्याश्वत्थाम्नो वाक्पारुष्येणापरागमुत्पादयसि।

दुर्योधनः—किमस्याप्रियमनृतं च मयोक्तम्। किं वा नेदं क्रोधस्थानम्। पश्य—

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः
समरशिरसि युष्मद्भाग्यदोषाद्विपन्नम्।
परिवदति समक्षं मित्रमङ्गाधिराजं
मम खलु कथयास्मिन्को विशेषोऽर्जुने वा ॥ ४० ॥

अश्वत्थामा—(मन ही मन) क्या आज भी कर्ण के प्रति वही पक्षपात और मेरे प्रति तिरस्कार ? (प्रकटरूप में) हे राजन्, कुरुराज ! ऐसा ही सही। (यह कहकर बाहर चला जाता है।)।

धृतराष्ट्र—हे पुत्र ! यह तुम्हारा कैसा बुद्धि-विभ्रम है ? कि तुम इस समय भी ऐसे तेजस्वी अश्वत्थामा में वाणी की कठोरता से विराग उत्पन्न कर रहे हो।

दुर्योधन—मैंने इनसे कटु तथा असत्य क्या कहा है ? अथवा क्या यह क्रोध का स्थान नहीं है ? देखिये—

अन्वयः—आत्तचापैः क्षत्रियैः अकलितमहिमानं रणशिरसि युष्मद्भाग्यदोषात् विपन्नं मित्र अङ्गराजं मम समक्ष परिवदति, कथय खलु अस्मिन् वा अर्जुने कः विशेषः ? ॥ ४० ॥

संस्कृत-व्याख्या—आत्तचापैः=आत्तः गृहीतः चापः-धनुः यैस्तैः, क्षत्रियैः—राजन्यैः, अकलितमहिमानम्=अकलितः-अविज्ञातः महिमा-पराक्रमः यस्य तम्, रणशिरसि=युद्धस्थले, युष्मद्भाग्यदोषात्=युष्मद्भाग्यविपर्ययात्,

विपन्नम्=मृतम्, मित्रम्=सुहृदम्, अङ्गराजम्=कर्णम्, मम=दुर्योधनस्य, समक्षम्=पुरः, परिवदति=निन्दति, कथय=ब्रूहि, खलु=इति निश्चये, अस्मिन्=कर्णनिन्दके, वा=अथवा, अर्जुने=कर्णघातके पार्थे, कः=कीदृशीः, विशेषः=भेदः ? न कोऽपि भेद इति भावः ॥ ४० ॥

हिन्दी-अनुवाद—आत्तचापैः=धनुर्धारी, क्षत्रियैः=क्षत्रियों के द्वारा, अकलितमहिमानम्=जिसका पराक्रम पहले नहीं जाना जा सका ऐसे, रणशिरसि=युद्ध क्षेत्र में, युष्मद्भाग्यदोषात्=आप लोगों के भाग्य के दोष से, विपन्नम्=मरे हुए, मित्रम्=मित्र, अङ्गराजम्=कर्ण को, मम=मुझ दुर्योधन के समक्षम्=सामने, परिवदति=निन्दा करता है। कथय=बतलाइए, खलु=निश्चय ही, अस्मिन्=इसमें, वा=अथवा अर्जुने=अर्जुन में, कः=क्या, विशेषः=अन्तर है ? ॥ ४० ॥

भावार्थः—बड़े २ शूर वीर धनुर्धर क्षत्रिय भी युद्ध में जिसके पराक्रम को नहीं जान सके थे, ऐसे मेरे मित्र कर्ण—जिनकी हमारे दुर्भाग्य से ही मृत्यु हुई है—की मेरे सामने निन्दा करता था। अब आपही बतलाइये कि इसमें और अर्जुन में क्या विशेषता रह गई ? जिस भाँति कर्ण का शत्रु अर्जुन मेरा शत्रु है, उसी भाँति यह भी कर्ण का शत्रु होने से मेरे लिये अर्जुन के समान ही शत्रु है ॥ ४० ॥

छन्द—इस पद्य में 'मालिनी' छन्द है।

समासः—अकलितमहिमानम्=अकलितः महिमा यस्य तम्। आत्तचापैः=आत्तः चापः यैस्तैः।

टिप्पणियाँ – परिभवः=तिरस्कार, अपमान। व्यामोहः=मूर्खता, बुद्धि-विभ्रम्। अपरागम्=वैराग्य। अकलितः=नहीं ज्ञात है। महिमा=महत्व, पराक्रम। विपन्नम्=विनष्ट, मृत। परिवदति=निन्दा करता है। अस्मिन्=इस अश्वत्थामा में ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्रः—वत्स ! तवापि कोऽत्र दोषः। अवसानमिदानीं भरतकुलस्य। संजय ! किमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः (विचिन्त्य) भवत्वेवं तावत्। संजय ! मद्वचनाद् ब्रूहिभारद्वाजमश्वत्थामानम्।

स्मरति न भवान्पीतं स्तन्यं विभज्य सहामुना
मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः ।
अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च य--
द्वचनविकृतिष्वस्य क्रोधो मुधा क्रियते त्वया ॥४१॥

धृतराष्ट्र—हे पुत्र ! इसमें तेरा भी क्या दोष है ? अब भरतवंश का अन्त ही है । संजय ! अभागा अब मैं क्या करूँ ? (सोचकर) अच्छा, ऐसा हो । सञ्जय ! मेरी ओर से भरद्वाज कुल में उत्पन्न अश्वत्थामा से कहो—

अन्वयः---अमुना सह विभज्य स्तन्यं पीतं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः मम क्षौमं मृदितं च भवान् न स्मरति । अनुजनिधनस्फीतात् शोकात् (कर्णे) अतिप्रणयात् च वचनविकृतिषु अस्य यत् क्रोधः त्वया क्रियते, (तत्) मुधा ।४१।

संस्कृत-व्याख्या—अमुना=अनेन-दुर्योधनेन, सह=साकम्, विभज्य=सम विभाग कृत्वा, स्तन्यम्=मातृदुग्धम्, पीतम्=पानं कृतम् । बाल्ये=बाल्यकाले-शैशवावस्थायां वा, त्वदङ्गविवर्तनैः=त्वदीयाङ्गपरिवर्तनैः-त्वदङ्गलिप्त-द्रव्यविशेषैः, मम=धृतराष्ट्रस्य, क्षौमम्=दुकूलम्, मृदितम्=मलिनीकृतम्, च, भवान् न स्मरति=किं भवान् स्मृतिपथं नावतारयति ? अनुजनिधनस्फीतात्=अनुजस्य-दुःशासनस्य निधनेन-मरणेन स्फीतात्-प्रताडितात् शोकात्, (कर्णे) अतिप्रणयात्=अतिस्नेहात्, च, वचनविकृतिषु=विकृतेषु वचनेष्वित्यर्थः, अस्य=दुर्योधनस्य, यत्, क्रोधः=कोपः, त्वया=भवता, क्रियते=विधीयते, (तत्) मुधा=व्यर्थम् । त्वया क्रोधो न कर्तव्यः-इत्यभिप्रायः ॥४१॥

हिन्दी-अनुवाद—अमुना=इस दुर्योधन के, सह=साथ, विभज्य=बाँटकर, स्तन्यम्=माता का दुग्ध, पीतम्=पिया था । बाल्ये=बचपन में, त्वदङ्ग-विवर्तनैः=तुम्हारे लोट-पोट लगाने से, मम=मेरा, क्षौमम्=रेशमी वस्त्र, मृदितम्=मैला कर दिया जाता था । क्या इसको, भवान्=आप, न स्मरति=स्मरण नहीं करते हैं ? अनुजनिधनस्फीतात्=भाइयों की मृत्यु से वृद्धि को प्राप्त हुए, शोकात्=शोक से, (कर्णे=कर्ण के विषय में), अति प्रणयात्=

अत्यधिक स्नेह होने से भी, अस्य वचन विकृतिषु=इसके विकृत वचनों पर, यत्=जो, क्रोधः=क्रोध, त्वया=तुम्हारे द्वारा, क्रियते=किया जा रहा है। (तत्=वह) मुधा=व्यर्थ है ॥ ४१ ॥

भावार्थः—क्या इस दुर्योधन के साथ आप गान्धारी के स्तनों से बहुत दिनों तक दूध पीते रहे थे, यह बात क्या आपको याद है? क्या आपको यह स्मरण है कि बाल्यावस्था में मेरे रेशमी बहुमूल्य वस्त्रों को तुम अपने शरीर के लोट-पोट से मलिन कर दिया करते थे? (कहने का अभिप्राय यह है कि तुम मेरे पुत्र के सदृश हो।) अपने छोटे भाइयों तथा कर्ण के मारे जाने से एवं तुम्हारे में भाइ जैसा प्रेम होने के कारण इस दुर्योधन ने यदि कुछ अनुचित भी कह दिया हो तो उस पर आपको अधिक क्रोध नहीं करना चाहिए। (तात्पर्य यह है कि पुरातन प्रेम तथा स्नेह को देखते हुए इसे क्षमा कर देना ही उचित है।) ॥ ४१ ॥

छन्द—उक्त पद्य में 'हरिणी' छन्द है।

समासः—अनुजनिधनस्फीतात्=अनुजस्य निधनेन स्फीतात्। वचनविकृतिषु=वचनानां विकृतयः वचनविकृतयः, तेषु।

टिप्पणियाँ—अवसानम्=अन्त समय। बाल्ये=बाल्यावस्था में। विभज्य=समान विभाजन करके। विवर्तनैः=परिवर्तनों अथवा लोट-पोट लगाने से। क्षौमम्=रेशमी वस्त्र। मृदितम्=मलिन कर दिया। स्फीतम्=प्रवृद्ध, वृद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥

सञ्जयः—यदाज्ञापयति तातः। (इत्युत्तिष्ठति।)।

धृतराष्ट्रः—अपि चेदमन्यत्त्वया वक्तव्यम्।

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं
यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत्।
एतद्विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च
दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यसीति ॥ ४२ ॥

संजय—तात की जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर उठता है।)।

धृतराष्ट्र—और यह दूसरा सन्देश भी तुमको कहना है।

अन्वयः—यत् तव पिता वितथेन शस्त्रं मोचितः, यत् तादृशः सः तथाविधः परिभवः अभूत् एतत् विचिन्त्य दुर्योधनोक्तं अपहाय आत्मनि बलं च (विचार्य) पौरुषं विधास्यति ॥ ४२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यत्, तव=भवतः, पिता=जनकः-द्रोणाचार्यः, वितथेन=अनृतवचसा, शस्त्रम्=आयुधम्, मोचितः=त्यक्तः; यत् तादृशः=तथाविधगौरवान्वितस्य गुरोः=द्रोणाचार्यस्य, सः, तथाविधः=नितरामनुचितः केशाकर्षणरूपः, परिभवः=तिरस्कारः, अभूत्=अभवत्; एतत्=एतत्सर्वम्, विचिन्त्य=विचार्य, दुर्योधनोक्तम्=दुर्योधनकथितं परुषवचनम्, अपहाय=त्यक्त्वाविस्मृत्येत्यर्थः, आत्मनि=स्वस्मिन्, बलम्=सामर्थ्यम्, च, (विचार्य); पौरुषम्=पुरुषार्थम्-पराक्रममुत्साहातिशयं च, विधास्यति=(भवान्) करिष्यति ॥ ४२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—यत्=जो कि; तव=आपके, पिता=पिता जी से, वितथेन=असत्य बचन के द्वारा, शस्त्रम्=शस्त्र, मोचितः=त्याग कराया गया, यत्=जो कि, तादृशः=केशाकर्षणरूप, सः=वह, तथाविधः=उसप्रकार का; परिभवः=तिरस्कार, अभूत्=हुआ था, एतत्=यह, विचिन्त्य=विचार कर, दुर्योधनोक्तम्=दुर्योधन की कही हुई बात को, अपहाय=छोड़कर-भुला कर, च=और, आत्मनि=अपने में विद्यमान, बलम्=सामर्थ्य का भी विचार करके, पौरुषम्=पुरुषार्थ, विधास्यति=करेंगे ॥ ४२ ॥

भावार्थः—पहले शत्रुओं ने असत्य बोलकर ("अश्वत्थामा मारा गया" यह कहकर) आपके पिता जी के हाथ से शस्त्र रखवा दिये थे और तदनन्तर केशाकर्षणरूप में जो उनका तिरस्कार किया गया—इन सबका स्मरणकर, दुर्योधन द्वारा कहे गये वचनों को भुलाकर, अपने बल के अनुसार पराक्रम को दिखलाइये। (अर्थात् शत्रुओं से अपने पिता के तिरस्कार का बदला लेने में अपने योग्य पौरुष को दिखलाइयेगा)।

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" छन्द है।

टिप्पणियाँ— अन्यत्=कुछ दूसरा भी। वक्तव्यम्=सन्देश कहना चाहिये। वितथेन=असत्य कथन से। मोचितः=युधिष्ठिर आदि पाण्डवों द्वारा छुड़ा दिया गया। तथाविधः=उस प्रकार का—बालों को पकड़कर तलवार से शिर काट लेना—इत्यादि रूपों में किया गया। परिभवः=तिरस्कार, अपमान। आत्मनि=अपने में विद्यमान। पौरुषम्=पुरुषार्थ। पराक्रम। अत्यधिक उत्साह। विधास्यति=करेंगे ॥ ४२ ॥

संजयः—यदाज्ञापयति तातः। (इति निष्क्रान्तः।)।

दुर्योधनः—सूत ! साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पय।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति निष्क्रान्तः)।

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! इतो वयं मद्राधिपतेः शल्यस्य शिविरमेव गच्छावः। वत्स ! त्वमप्येवं कुरु।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

सञ्जयः—तात की जैसी आज्ञा (ऐसा कहकर चला जाता है)।

दुर्योधन—सूत ! मेरे युद्ध सम्बन्धी रथ को लाओ।

सूत—आयुष्मान् की जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर चला जाता है।)।

धृतराष्ट्रः—हे गान्धारी ! हम लोग यहाँ से मद्र-देश के स्वामी शल्य के ही शिविर में चलें। हे पुत्र ! तुम भी ऐसा ही करो।

(इसके पश्चात् थोड़ा चलकर सभी चले जाते हैं।)

टिप्पणियाँ—उपकल्पय=तैयार करो, ले आओ। मद्राधिपते=मद्र देश के अधिपति शल्य के। एवं कुरु=ऐसा करो। (अर्थात् तुम भी वहीं चलो।)। परिक्रम्य=कुछ थोड़ा-सा चलकर)।

॥ पंचम अङ्क समाप्त हुआ ॥

॥ इत्याचार्य सुरेन्द्रदेवशास्त्रिकृतायां वेणीसंहारस्य 'आशुबोधिनी' व्याख्यायां पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ॥

—: ० :—

॥ षष्ठोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशत्यासनस्थो युधिष्ठिरोद्रौपदी चेटी पुरुषश्च ।)

युधिष्ठिरः—(विचिन्त्य निःश्वस्य च) ।

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते
कर्णाशीविषभोगिनी प्रशमिते शल्ये च याते दिवम् ।
भीमेन प्रियसाहसेन रभसात्स्वल्पावशेषे जये
सर्वे जीवितसंशय वयममी वाचा समारोपिताः ॥ १ ॥

(उसके अनन्तर सिंहासन पर बैठे हुए युधिष्ठिर, द्रौपदी, चेटी तथा पुरुष प्रवेश करते हैं ।)

युधिष्ठिरः—(सोचकर तथा लम्बी आह भरकर)

अन्वयः—कथमपि भीष्ममहोदधौ तीर्णे, द्रोणानले निर्वृते, कर्णाशीविषभोगिनी प्रशमिते, च शल्ये दिवं याते, जये स्वल्पावशेषे (सति) प्रियसाहसेन भीमेन रभसात् वाचा अमी सर्वे वयं जीवितसंशयं समारोपिताः ॥ १ ॥

संस्कृत-व्याख्या—कथमपि=कथञ्चित्, भीष्ममहोदधौ=भीष्मः—भीष्मपितामहः एव महोदधिः-महासागरः तस्मिन्, तीर्णे=पारंगते, अतिक्रान्ते वा, द्रोणानलः—द्रोणः-द्रोणाचार्य एव अनलः अग्निः तस्मिन्—निर्वृते—उपशान्ते (स्वर्गं प्राप्ते सति—इत्यभिप्रायः), कर्णाशीविषभोगिनि=कर्ण एव आशी-सर्पदंष्ट्रा तत्र विषं यस्य तादृशो यो भोगी-सर्पः, तस्मिन्, अथवा आश्यां-सर्पदंष्ट्रायां विषं यत्र भोगे शरीरे सोऽस्यास्तीत्याशीविषभोगी-विषधरः, कर्णः एव आशीविषभोगी सर्पः तस्मिन्, प्रशमिते=विनाशिते, च, शल्ये=मद्राधिपतौ, दिवम्=स्वर्गम्, याते=मृते, जये-विजये च; स्वल्पावशेषे=किञ्चिदेवावशिष्टे सति, प्रियसाहसेन=प्रिय साहसं यस्य सः प्रियसाहसः तेन प्रियसाहसेन-साहसरसिकेन, भीमेन=भीमसेनेन, रभसात्=वेगात्, वाचा=प्रतिज्ञा-

रूपया "दुर्योधनं वा हनिष्यामि स्वयं वा मरिष्यामि" इति रूपया वाण्या, अमी, सर्वे=अखिलाः, वयम्=युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः, जीवितसंशयम्=जीविते-जीवने संशयः-सन्देहः जीवितसंशयः तम्, समारोपिताः=प्रापिताः, गमिताः ॥१॥

हिन्दी-अनुवाद—कथमपि=किसी प्रकार, भीष्ममहोदधौ=भीष्मरूपी महासमुद्र के, तीर्णे=पार कर लेने पर, द्रोणानले-द्रोणरूपी-प्रज्वलित अग्नि के, निर्वृते=शान्त हो जाने पर (बुझ जाने पर), कर्णाशीविषभोगिनि=कर्णरूपी विषधर सर्प के, प्रशमिते=शान्त कर दिये जाने पर, च=और, शल्ये=शल्य के, दिवम्=स्वर्ग, याते=चले जाने पर, जये=विजय के, स्वल्पावशेषे=थोड़ा ही अवशिष्ट रह जाने पर, प्रियसाहसेन=साहसप्रेमी, भीमेन=भीम के, रभसात्=वेग से, वाचा=प्रतिज्ञा के द्वारा, अमी=ये, सर्वे=सभी, वयम्=हम (पाण्डव) लोगो के, जीवितसंशयम्=जीवन संशय में, समारोपिताः=डाल गिये हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—भीष्मपितामहरूपी महान् समुद्र के किसी भाँति पार कर लेने पर, द्रोणाचार्यरूपी अग्नि के किसी भाँति बुझ जाने पर, भयंकर विषधर सर्प के तुल्य कर्ण के भी नष्ट हो जाने पर, शल्य के भी स्वग को चले जाने पर जब कि हम लोगों की विजय में थोड़ा ही भाग शेष रह गया था, उसी समय इसभीम ने अदम्य साहसकर "आज ही दुर्योधन को मारूँगा अन्यथा मैं ही प्राण त्याग दूँगा" ऐसी प्रतिज्ञा करके हम सभी के जीवनों को संशय में डाल दिया है। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि भीम की उपर्युक्त प्रतिज्ञा आज पूर्ण न हुई तो यह निश्चय है कि उसके मरने के साथ ही साथ हम सबको भी मरना होगा।

उस दिन दुर्योधन और भीम का गदायुद्ध होना निश्चित था किन्तु दुर्योधन एक विशिष्ट प्रकार की सिद्धि के लिए जल के भीतर किसी अज्ञात स्थल पर छिप गया था। उसका पता नहीं लग पा रहा था। अतएव भीमसेन का मरण निश्चित था। ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर ने कहा है कि भीम के मरने से हम सभी के जीवन भी संशय में पड़ गये थे ॥ १ ॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "रूपक अलंकार" है।

छन्दः—इसमें "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समासः—**भीष्ममहोदधौ**=भीष्म एव महोदधिः—इति-तस्मिन्। **द्रोणानले**=द्रोण एव अनलः-इति-तस्मिन्। **कर्णाशीविषभोगिनि**=कर्ण एव आशीविषभोगी-इति-तस्मिन्। **प्रियसाहसेन**=प्रियं साहसं यस्य स प्रियसाहसः, तेन। **जीवितसंशयम्**=जीविते संशयः—इति-तम्॥ १॥

टिप्पणियाँ—**आसनस्थः**=सिंहासन पर स्थित। **चेटी**=दासी। **पुरुषः**=राजपुरुष। **कथमपि**=किसी प्रकार। महान् प्रयास द्वारा। **तीर्णे**=पार कर लेने पर। **निर्वृते**=शान्त हो जाने अथवा बुझ जाने पर। **आशी**=सर्प का दाँत। "आशीरप्यहिदंष्ट्रिका" इत्यमरः। **भोगे**=शरीर में—"भोगः सुखे-स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः" इति विश्वः। **स्वल्पावशेषे**=थोड़ी ही शेष रह जाने पर। **रभसात्**=वेग से—"रभसो वेगहर्षयोः" इत्यमरः। **वाचा**=वाणी से-प्रतिज्ञा के द्वारा। भीम ने क्रोध में आकर प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि मैं आज सूर्यास्त तक दुर्योधन को न मार सका तो मैं स्वयं ही प्राण-त्याग दूंगा। इधर युधिष्ठिर यह प्रतिज्ञा पहले ही कर चुके थे कि यदि युद्ध में मेरा एक भी भाई मर गया तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। उस दिन स्थिति यह थी कि युद्धस्थल पर दुर्योधन विद्यमान ही न था। वह किसी अज्ञात स्थल पर छिपा हुआ था। अतः यह कल्पना की जा रही थी कि यदि सूर्यास्त तक वह सामने न आया तो भीम अपना प्राण-त्याग देंगे। ऐसी स्थिति होने पर युधिष्ठिर को भी प्राण-त्यागना पड़ता। पुनः अपने भाइयों के वियोग में शेष पाण्डव भी जीवित न रहते। इस भाँति भीम की उक्त प्रतिज्ञा के कारण विजय-श्री के समीपस्थ होने पर भी पाण्डवों का जीवन संकटग्रस्त हो गया था। **समारोपिताः**=डाल दिया गया था, प्राप्त करा दिया गया था॥ १॥

द्रौपदी—(सबाष्पम्) महाराज ! पाञ्चाल्येति किं न भणितम् ?

(महाराअ, पञ्चलिए त्ति किं ण भणिदं।)।

युधिष्ठिरः—कृष्णे ! ननु मया। (पुरुषमवलोक्य) बुधक !

पुरुषः—देव ! आज्ञापय ।

युधिष्ठिरः—उच्यतां सहदेवः—क्रुद्धस्य वृकोदरस्यापर्युषितदारुणां प्रतिज्ञामुपलभ्य प्रनष्टस्य मानिनः कौरवराजस्य पदवीमन्वेष्टुमतिनिपुणमतयस्तेषु तेषु स्थानेषु परमार्थाभिज्ञाश्चराः सुसचिवाश्च भक्तिमन्त पटुपटहरवव्यक्तघोषणाः सुयोधनसंचारवेदिनः प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाश्चरन्तु समन्तात्समन्तपञ्चकम् । अपि—

पंके वा सैकते वा सुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः
कुञ्जेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाबल्लवाः संचरन्तु ।
व्याधा व्याघ्राटवीषु स्वपचपुरविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा
ये सिद्धव्यञ्जना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु ॥२॥

द्रौपदी—(अश्रुधारा के साथ) महाराज ! द्रौपदी के द्वारा (प्राण संशय में डाल दिये गये हैं ।), ऐसा क्यों नहीं कहा ?

युधिष्ठिर—हे द्रौपदि ! निश्चय ही मेरे द्वारा (सभी के प्राण संशय में डाल दिये गये हैं ।) (पुरुष को देखकर) बुधक !

पुरुष—महाराज ! आज्ञा दीजिये ।

युधिष्ठिर—सहदेव से कहो—क्रुध हुए भीम की आज ही पूर्ण होनेवाली भीषण प्रतिज्ञा को जानकर छिपे हुए, अभिमानी कौरव राजा (दुर्योधन) के चरण-चिह्नों से युक्त मार्ग का पता लगाने हेतु तीक्ष्ण बुद्धि वाले, उन-उन स्थानों की वस्तुस्थिति को जानने वाले, हमारे प्रति भक्ति रखने वाले, तीव्र दुन्दुभि (नगाड़े) की ध्वनि से घोषणा करने वाले, दुर्योधन की गतिविधियों के सम्यक् ज्ञाता, जिन्हें (दुर्योधन को ढूँढ निकालने पर) धन एवं सम्मान से बदला चुकाने का वचन दिया गया है ऐसे, गुप्तचर तथा योग्य मन्त्री समन्तपञ्चक (नामक तालाब) के चारों ओर घूमें । और भी—

अन्वयः—सुनिभृतपदवीवेदिनः दाशाः पङ्के वा सैकते वा यान्तु, क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः बल्लवाः कुञ्जेषु सञ्चरन्तु; स्वपचपुरविदः नागव्या-

घ्राटवीषु च ये रन्ध्रेषु अभिज्ञाः वा सिद्धव्यञ्जनाः (सन्ति) ते चाराः प्रतिमुनिनिलयं चरन्तु ॥ २ ॥

संस्कृत-व्याख्या--सुनिभृतपदवीवेदिनः— सुनिभृतां —गुप्तां पदवीं—मार्गं विदन्तीति-सुनिभृतपदवीवेदिनः-गुप्तमार्गज्ञातारः, दाशाः—धीवराः, पङ्के= कर्दमे, वा, सैकते=बालुकामये प्रदेशे, वा यान्तु, गच्छन्तु विचरन्तु वा, क्षुण्ण-वीरुन्निलयपरिचयाः—क्षुण्णाः— पादाघातैर्मृदिताः या वीरुधः-लताः तासां निचयेषु-समूहेषु परिचयः-ज्ञानं येषां ते, बल्लवाः=गोपाः, कुञ्जेषु=लतासंघातेषु [पाठान्तरे-कक्षेषु—सामान्यवनेषु], सञ्चरन्तु=भ्रमन्तु, श्वपचपुरविदः= चाण्डालपुरीवेदिनः, नागव्याघ्राटवीषु=गजशार्दूल-दुर्गमवनेषु, च, ये=चारा इत्यर्थः, रन्ध्रेषु—कन्दरासु — पातालमार्गगुहागर्त्तादिषु, अभिज्ञाः=कुशलाः परिचिताः वा, सिद्धव्यञ्जनाः—सिद्धानां व्यञ्जनं-चिन्हं-जटादिकं येषां ते— सिद्धवेषधारिणः, सन्ति, ते—तादृशाः, चाराः—गुप्तचराः—गूढ़पुरुषाः वा, प्रतिमुनिनिलयम्=प्रतिमुनिगृहम्-प्रत्याश्रम्—चरन्तु-विचरन्तु-भ्रमणं विधाय अन्वेषयन्तु-इत्यर्थः ॥ २ ॥

हिन्दी-अनुवाद— सुनिभृतपदवीवेदिनः=गुप्तमार्गों को भलीभाँति जानने वाले अथवा गुप्त पैरों के चिह्नों को पहचानने वाले, दाशाः—मल्लाह (मांझी), पङ्के—कीचड़ युक्त स्थलों में, वा=अथवा, सैकते=बालुकामय प्रदेशों में, यान्तु=विचरण करें, क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः=कुचली हुई अथवा सूखी हुई लताओं आदि के समूह से युक्त बन में, बल्लवाः—ग्वाले, कुञ्जेषु=झुरमुटों में [पाठान्तर में-कक्षेषु=नदियों की कछारों में अथवा सूखी हुई लताओं आदि के ढेरों में], सञ्चरन्तु=विचरण करे। श्वपचपुर-विदः—चाण्डालों की वस्तियों के ज्ञातालोग, नागव्याघ्राटवीषु—हाथियों एवं व्याघ्रों से परिपूर्ण घने बनों में, च—और, ये=जो लोग, रन्ध्रेषु—कन्दराओं-गुफाओं आदि के बारे में, अभिज्ञाः—जानने वाले लोग, वा—अथवा, सिद्ध-व्यञ्जनाः=मुनियों अथवा सिद्ध-पुरुषों के वेश को धारण करने वाले, (सन्ति—

हैं) ते=ऐसे वे, चाराः=गुप्तचर, प्रतिमुनिनिलयम्=प्रत्येक मुनि के आश्रम में, चरन्तु=घूमें-विचरण करें तथा खोजें ।। २ ।।

भावार्थः—गुप्त मार्गों को जानने वाले धीवर लोग अथवा चरणचिन्हों को पहचानने वाले मांझी लोग कीचड़ में, बालुकामय प्रदेशों में जायें। कुचली हुई सूखी लताओं के समूह से परिचित ग्वाले अथवा चरवाहे लोग झुरमुटों में विचरण करें। अपने तथा पराये पद-चिन्हों को जानने वाले व्याध (शिकारी), जो कन्दराओं और गुफाओं से भी भली-भांति परिचित हों, हाथियों एवं शेरों से व्याप्त घने बनों में घूमें। तथा जो गुप्तचर सिद्धों के वेष को धारण किये हुये हैं वे (गुप्तचर) प्रत्येक मुनि के निवासस्थान (अर्थात् आश्रम अथवा तपोवन) में जायें और खोजें ।। २ ।।

छन्द— उपर्युक्त पद्य में 'स्रग्धरा' नामक छन्द है।

समासः— **अपर्युषितदारुणाम्**=अपर्युषिताम् अद्यैव पूर्यमाणाम् अतएव दारुणाम्—इति। **अतिनिपुणमतयः**=अतिनिपुणा मतिः येषां ते। **परमार्थाभिज्ञाः**=परमार्थस्य यथार्थ-स्थितः अभिज्ञाः-ज्ञातारः-इति। **पटुपटहव्यक्तघोषणाः**=पटुः यः पटहस्य दुन्दुभिविशेषस्य रवस्तेन व्यक्ता घोषणा येषां ते तथोक्ताः। **सुयोधनसञ्चारवेदिनः**=सुयोधनस्य-दुर्योधनस्य संचारं-गतिं विदन्तीति ते। **प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाः**=प्रतिश्रुताः—दातुं प्रतिज्ञाताः धनं पूजा-सत्कारः प्रत्युपकिया-प्रत्युपकारश्च यैः येभ्यो वा ते। प्रतिश्रुता-अङ्गीकृता मद्दत्तधनादीनां प्रत्युपक्रिया यैस्तें इति वा। **सुनिभृतपदवीवेदिनः**=सुनिभृता पदवी तस्याः वेदिनः। **क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः**=क्षुण्णः यः वीरुन्निचयः, तस्य परिचयः येषां ते। **श्वपचपुरविदः**=श्वपचानां पुरं विदन्तीति। (पाठान्तर में—**स्वपरपदविदः**=स्वेषां परेषां च पदानि विदन्ति इति।) **नागव्याघ्राटवीषु**=नागव्याघ्रप्रधानः अटव्यः-इति नागव्याघ्राटव्यः, तासु। **सिद्धव्यञ्जनाः**=सिद्धानां व्यञ्जनं-चिन्हं येषां ते। **प्रतिमुनिनिलयम्**=मुनीनां निलयं इति मुनिनिलयम्। मुनिनिलय मुनिनिलयं प्रति-इति-प्रतिमुनिनिलयम् ।। २ ।।

टिप्पणियाँ— अपर्युषिताम्=आज ही पूर्ण होने वाली। उपलभ्य:=जानकर। प्रनष्टस्य:=जो दृष्टिगोचर न हो अर्थात् गुप्त। मानिनः=अभिमानी का। पदवीम्=मार्ग को। अथवा चरणचिन्हों से युक्त पद्धति को। "अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः" इत्यमरः। अन्वेष्टुम=खोजने के लिये। अतिनिपुणा=कुशल अथवा चतुरतापूर्ण बुद्धि से युक्त। परमार्थाभिज्ञाः=यथार्थस्थिति के ज्ञाता। पटुः=स्पष्टरूप से बजने वाला, अथवा तीक्ष्ण गति से बजने वाला। पटहस्य=दुन्दुभिका। रवः=शब्द। घोषणा=दुर्योधन के चरणचिन्हों के आधार पर उसके गुप्त स्थान की सूचना देनेवाले को यह धन आदि दिया जायगा-इत्यादि प्रकार की घोषणा। "उच्चैर्घुष्टं तु घोषणा" इत्यमरः। संचारवेदिनः=दुर्योधन की गतिविधियों अथवा गमनादि के वारे में जानने वाले। प्रतिश्रुता=देने के लिये प्रतिज्ञपत अथवा स्वीकार कर लिया गया। प्रत्युपक्रियाः=प्रत्युपकार, बदला। पूजाः=सत्कार। समन्तपञ्चकम्=समन्तपंचक नामक क्षेत्र-कुरुक्षेत्र। समन्तात्=सब ओर से, चारों ओर से। सुनिभृताम्ः=गुप्त। दाशाः=धीवर, माँझी। "कैवर्त्ते दाशधीवरौ" इत्यमरः। कुञ्जेषुः=झुरमुटों में। कक्षेषुः=सूखी हुयी लताओं के समूह में। "कक्षस्तु दोमूले कच्छवीरुत्तृणेषु च" ति मेदिनी। क्षुण्णाः=पैरों से कुचले हुये। वीरुधः=लतायें। निचयः=समूह। बल्लवाः=ग्वाले, चरवाहे। नागः=हाथी। व्याघ्रः=सिंह—"शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे" इत्यमरः। श्वपचानाम्ः=चाण्डालों की। पुरविदः=वस्तियों के जानकार। रन्ध्रेषुः=छिद्रों में। कन्दराओं-गुफाओं में। अभिज्ञाः=परिचित, जानकार। सिद्धव्यञ्जनाः=सिद्धपुरुषों के वेष को धारण करनेवाले। व्यञ्जन-चिन्ह। चाराः=गुप्तचर, दूत। "चराः" को ही 'चाराः' कहा गया है क्योंकि यहाँ प्रज्ञादि होने से स्वार्थ में 'अण' हुआ है। निलयम्=निवासस्थान, आश्रम। चरन्तुः=घूमें, विचरण करें॥ २॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः।

युधिष्ठरः—तिष्ठ। एवं च वक्तव्यः सहदेवः।

ज्ञेया रहः शङ्कितमालपन्तः सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः।
त्रासो मृगाणां वयसां विरावो नृपाङ्कपादप्रतिमाश्च यत्र॥३॥

पुरुष—जैसी महाराज की आज्ञा ।

युधिष्ठिर—ठहरो । और सहदेव से यह कहना—

अन्वयः—रहः शङ्कितं आलपन्तः सुप्ताः रुगार्ताः मदिराविधेयाः ज्ञेयाः, यत्र मृगाणां त्रासः च वयसां विरावः नृपाङ्कपादप्रतिमाः ॥ ३ ॥

संस्कृत-व्याख्याः–रहः=एकान्ते, शङ्कितम्=शङ्काकुलं, शङ्काकरं च यथा स्यात्तथा, आलपन्तः=परस्परं भाषमाणाः सुप्ताः=प्रसुप्ताः, रुगार्ताः=रोगपीडिताः, मदिराविधेयाः=मदिरायाः विधेया-वशीभूताः-मदिरोन्मत्ताः, ज्ञेयाः=ज्ञातुं योग्याः, सन्ति; यत्र=यस्मिन् स्थाने, मृगाणाम्=वन्यपशूनाम्, त्रासः=उद्वेगः भयं वा, च, वयसाम्=पक्षिणाम्=विरावः=आक्रन्दः, नृपाङ्कपादप्रतिमाः=नृपस्य-राज्ञः अङ्काः मत्स्यच्छत्रध्वजादीनि चिन्हानि येषु पादानां-चरणानां प्रतिमाः चिह्नानि येषु ते प्रदेशाः-अन्वेष्टव्याः ॥ ३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—रहः=एकान्त में, शङ्कितम्=सशंकभाव से, आलपन्तः=परस्पर बातचीत करते हुये, सुप्ताः=सोये हुये, रुगार्ताः=रोग से पीड़ित तथा मदिराविधेयाः=मद्य के वशीभूत हुये लोगों के बारे में, ज्ञेयाः=जानने अथवा छान-बीन करने का प्रयास करना । यत्र=जिस स्थान पर, मृगाणाम्=वन्य-पशुओं का, त्रासः=भय हो, च=और, वयसाम्=पक्षियों का, विरावः=कोलाहल अथवा शोर हो रहा हो, तथा, नृपाङ्कपादप्रतिमाः=राजचिह्नों (मत्स्य, छत्र, ध्वज आदि) से अङ्कित पैरों के निशान हों—वहाँ पर भी छान-बीन करना चाहिये अथवा खोजना चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो लोग एकान्त में शङ्कित भाव से परस्पर वार्तालाप कर रहे हों उनकी, सोये हुये लोगों की एवं रोगियों की जाँच भी करना । वन में जहाँ वन्य पशुओं का भय हो तथा पक्षियों का शोर हो रहा हो उस स्थान की भी जाँच करलेना [वन्य पशुओं का ऐसा स्वभाव हुआ करता है कि यदि उनके समीप में कहीं मानव छिपा हो तो भयभीत तथा आतंकित से हो जाया करते हैं । इसी भाँति किसी भी मनुष्य के समीप में विद्यमान रहने पर पक्षी भी शब्द किया करते हैं ।] तथा मत्स्य आदि राजचिह्नों से चिह्नित पैरों के निशान यदि कहीं दृष्टिगोचर हो रहे हों तो उस स्थान की भी भलीभांति जांच कर लेना ॥ ३ ॥

छन्दः—उक्त पद्य में 'उपजाति' छन्द है।

समासः—मदिराविधेयाः=मदिरायाः विधेयाः—इति। नृपाङ्कपादप्रतिमाः=नृपाङ्क! राजचिह्न' मत्स्यादि पादप्रतिमायां यत्र ताः ॥ ३ ॥

टिप्पणियां—रहः—एकान्त में। शङ्कितम्—सशंक, शंकाकुल, भयभीत। विधेयाः—वशीभूत। विरावः—कोलाहल, शोर। नृपाङ्काः—राजचिन्ह, मछली, ध्वजा, कमल आदि के चिन्ह। प्रतिमाः—चिन्ह, निशान—(पैरों के निशान अथवा चिन्ह) तात्पर्य यह कि जिन जिन स्थलों का श्लोक में वर्णन किया गया है उन सभी स्थलों पर छिपे हुये दुर्योधन की खोज की जानी चाहिये ॥ ३ ॥

पुरुषः—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सहर्षम्) देव ! पाञ्चालकः प्राप्तः।

युधिष्ठिरः—त्वरितं प्रवेशय।

पुरुषः—(निष्क्रम्य पाञ्चालकेन सह प्रविश्य) एष देवः। उपसर्पतु पाञ्चालकः।

पाञ्चालकः—जयतु जयतु देवः। प्रियमावेदयामि महाराजाय देव्यै च।

युधिष्ठिरः—भद्र पाञ्चालक ! कच्चिदासादिता तस्य दुरात्मनः कौरवाधमस्य पदवी ?

पाञ्चालकः—देव ! न केवलं पदवी। स एव दुरात्मा देवीकेशाम्बराकर्षणमहापातकप्रधानहेतुरुपलब्धः।

युधिष्ठिरः—साधु। भद्र ! साधु। प्रियमावेदितम्। अथ दर्शनगोचरं गतः ?

पाञ्चालकः—देव ! समरगोचरं पृच्छ।

द्रौपदी—(सभयम्) कथं समरगोचरो वर्तते मे नाथः (कहं समरगोअरो वट्टइ मे णाहो।) !

युधिष्ठिरः—(साशङ्कम्) सत्यं समरगोचरो मे वत्सः ?

पाञ्चालकः—सत्यम्। किमन्यथा वक्ष्यते महाराजाय।

युधिष्ठिरः—

त्रस्तं विनापि विषयादुरुविक्रमस्य
चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति ।
जानामि चोद्यतगदस्य वृकोदरस्य
सारं रणेषु भुजयोः परिशङ्कितश्च ॥ ४ ॥

पुरुष —महाराज की जैसी आज्ञा (ऐसा कहकर, बाहर जाकर पुनः प्रवेश करके हर्ष के साथ) महाराज ! पाञ्चालक आया है ।

युधिष्ठिर —शीघ्र अन्दर लिवा लाओ ।

पुरुष— (निकलकर, पञ्चालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज हैं । पाञ्चाल ; (इनके) समीप जायें ।

पाञ्चालक —जय हो, महाराज की जय हो । महाराज को तथा महारानी को प्रिय समाचार सुनाता हूँ ।

युधिष्ठिर —हे कल्याणकारिन् पाञ्चालक । क्या उस दुरात्मा नीच कौरव का चरण-चिन्हों से युक्त मार्ग मिल गया ?

पाञ्चालक—महाराज ! केवल उसका चरणचिन्ह युक्त मार्ग ही नहीं (मिला, प्रत्युत) महारानी के केश तथा वस्त्रों के हरणरूपी महान् पापी का प्रमुख कारण वह दुष्टात्मा ही मिल गया है ।

युधिष्ठिर—वाह । तुमने तो अति आनन्द का समाचार सुनाया । तो क्या दृष्टिगोचर भी हुआ ?

पाञ्चालक—महाराज ! युद्ध में आये हुये के बारे में पूछिये । (अभिप्राय यह है कि आप यह पूछें कि उसके साथ भीम का युद्ध प्रारम्भ हुआ अथवा नहीं ?)

द्रौपदी—(भय के साथ) क्या मेरे स्वामी युद्ध में उतरे हुये हैं ?

युधिष्ठिर—(आशङ्का के साथ) क्या सचमुच मेरा वत्स (भीम) युद्ध कर रहा है ?

पाञ्चालक—(पूर्णरूप से) सत्य है। क्या महाराज से अन्यथा (झूठ) कहा जायगा ?

युधिष्ठिर—

अन्वयः—विषयात् विना अपि त्रस्तं मे चेतः विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति। उरुविक्रमस्य च उद्यतगदस्य वृकोदरस्य रणेषु सारं जानामि। (तथापि) परिशङ्कितः च (अस्मि)।

संस्कृत व्याख्याः—विषयात्=त्रासहेतोः, विना, अपि, त्रस्तम्=उद्विग्नं भीतं वा मे=मम युधिष्ठिरस्य, चेतः=मनः, विवेकपरिमन्थरताम्=विवेके-कर्तव्यनिर्णये परिमन्थरताम्-शून्यताम् - भीमविजयनिश्चये शिथिलताम्, प्रयाति=प्राप्नोति। विदुषः बलिनश्चापि पुंसः मनोऽनवसरेऽपि त्रासं प्रति-पद्यते, निश्चिते अपि विषये वृथैव शंका क्रियते, कमपि निर्णयं च नाधि-गच्छति—इत्यभिप्रायः। अन्ये तु-विषयात्=भयकारणाद्विना अपि त्रस्तं=प्रकृत्यैव भीत मे मनः विवेकपरिमन्थरताम्—भीमः विजयं प्राप्स्यति नवेति निर्णये शिथिलतां प्रयाति। उरुविक्रमस्य=उरुः-महान् विक्रमः-पराक्रमः यस्य तस्य-प्रचण्डपराक्रमशीलस्य, च, उद्यतगदस्य=उद्यता-उत्तोलिता गदा येन तस्य, वृकोदरस्य=भीमस्य, रणेषु=युद्धेषु, सारम्=बलम्-पराक्रमं वा, जानामि=अवगच्छामि। (तस्य पराक्रमं तु अवगच्छाम्येव। अतएव तस्य विजयस्तु निश्चितः—इत्यपि दृढ जानामि तथापि—) परिशङ्कितः=शङ्का-पर्याकुलः, अस्मि। महाबलस्य भीमस्य भुजयोः बलं जानतोऽपि मे मनः शङ्काकुलमस्तीत्यभिप्रायः॥ ४॥

हिन्दी-अनुवाद—विषयात्=भय के कारण के, विना=विना, अपि=भी, त्रस्तम्=भयभीत अथवा उद्विग्न, मे=मेरा, चेतः=मन, विवेकपरिमन्थरताम्=विवेकशून्यता अथवा किंकर्त्तव्य-विमूढता को, प्रयाति=प्राप्त हो रहा है। उरुविक्रमस्य=महान् पराक्रमी, च=और, उद्यतगदस्य=गदा को उठाये हुये, वृकोदरस्य=भीम के, रणेषु=युद्धों में, सारम्=बल अथवा पराक्रम को, जानामि=जानता हूँ। (तथापि=फिर भी मैं) परिशङ्कितः=आशंकित सा, अस्मि=हूं॥ ४॥

भावार्थ—वीर तथा पराक्रमी व्यक्ति का मन भी कभी कभी बिना किसी कारण ही भयभीत हो कर विवेकशून्य अपना किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाया करता है। यद्यपि में गदाधारी एवं अति पराक्रमी भीमसेन के युद्ध सम्बन्धी पराक्रम से भली भाँति परिचित हूँ (अर्थात् मैं यह भलीभाँति जानता हूं कि युद्ध में और विशेषकर गदायुद्ध में भीमसेन को कोई हराने वाला नहीं है तथा इस वर्त्तमान दुर्योधन और भीमसेन के युद्ध में भीमसेन की विजय निश्चित है) तथापि मेरा मन न जाने क्यों आशङ्का युक्त हो ही रहा है ॥ ४ ॥

अलङ्कारः—उक्त पद्य में 'विशेषोक्ति' नामक अलंकार है।

छन्दः— इसमें 'बसन्ततिलका' छन्द है।

समासः—देवीकेशाम्बराकर्षणमहापातकप्रधानहेतुः=देव्याः=द्रौपद्याः केशाम्बराणां आकर्षणम्-हरणम् एव महापातकं-महापापम् तस्य प्रधानो हेतुः। समरगोचरः=समरस्य-युद्धस्य, गोचरः=विषयः। उरुविक्रमस्य=उरुः विक्रमः यस्य सः, तस्य। विवेकपरिमन्थरताम्=विवेके परिमन्थरं इति विवेकपरिमन्थरं, तस्य भावः-विवेकपरिमन्थरता, ताम्। उद्यतगतस्य= उद्यता गदा येन तस्य ॥ ४ ॥

टिप्पणियाँ—पाञ्चालकः=पाञ्चालक नाम का राजपुरुष। पदवी= मार्ग, पदचिन्ह। समरगोचरः=युद्ध का विषय अथवा युद्ध में संलग्न। उरुः=महान्, अत्यधिक। विषयात्=भय के कारण के। परिमन्थरताम्= शून्यता, शिथिलता। परिशङ्कितः=आशङ्कित, भय से युक्त, शङ्काकुल ॥ ४ ॥

(द्रौपदीमवलोक्य) अयि सुक्षत्रिये !

गुरूणां बन्धूनां क्षितिपतिसहस्रस्य च पुरः
पुराभूदस्माकं नृपसदसि योऽयं परिभवः।
प्रिये प्रायस्तस्य द्वितयमपि पारं गमयति
क्षयः प्राणानां नः कुरुपतिपशोर्वाद्य निधनम् ॥ ५ ॥

द्रौपदी को देखकर) अयि वीर क्षत्राणी !

अन्वयः—हे प्रिये ! गुरूणां बन्धूनां च क्षितिपतिसहस्रस्य पुरः नृपसदसि अस्माकं यः अयं परिभवः पुरा अभूत्, 'तस्य द्वितयं अपि प्रायः पारं गमयति । अद्य नः प्राणानां क्षयः वा कुरुपतिपशोः निधनम् ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्याः—हे प्रिये, गुरूणाम्=द्रोणभीष्मादीनां श्रेष्ठजनानाम्, बन्धूनाम्=बान्धवानां धृतराष्ट्रादीनाम्, च, क्षितिपतिसहस्रस्य=सहस्रसंख्याक भूपतीनाम्, पुरः=अग्रे-समक्षं वा, नृपसदसि=राजसभायाम्, अस्माकम्=पाण्डवानामित्यर्थः, यः=यादृशः, अयम्=एषः, परिभवः=तिरस्कारः—केशाकर्षणादि प्रभवः तिरस्कारः, पुरा=पूर्वम्=; अभूत्=जातः, तस्य=तिरस्कारस्य, द्वितयमपि=द्वयमपि एतत्, प्रायः, पारम्=अन्तम्, गमयति=प्रापयिष्यति । अद्य=अस्मिन् दिने, नः=अस्माकं सर्वेषाम्; प्राणानाम्=जीवितानाम्, क्षयः=विनाशः, (भीमपराजये सति अस्माकं सर्वेषां प्राणविनाशः—इत्यभिप्रायः) वा=अथवा, कुरुपतिपशोः=कुरुराजः दुर्योधनः एव पशुः तस्य दुर्योधनस्य, निधनम्=मरणम् ॥ ५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हे प्रिये=हे प्रिये; गुरूणाम्=द्रोण, भीष्मपितामह आदि बड़े-बूढों के बन्धूनाम्=धृतराष्ट्र आदि कुटुम्बीजनों के, च=और; क्षितिपतिसहस्रस्य=हजारों राजाओं के, पुरः=समक्ष, नृपसदसि=राजसभा में, अस्माकम्=हम पाण्डवों का, यः=जो, अयम्=यह, परिभवः=तिरस्कार; पुरा=पहले, अभूत्=हुआ था; तस्य=उसके, द्वितयमपि=दोनों ही, प्रायः=प्रायः, पारम्=पार, गमयति=पहुंचा देंगे । अद्य=आज, नः=हमारे (हम पाण्डवों के), प्राणानाम्=प्राणों का, क्षयः=विनाश, वा=अथवा, कुरुपतिपशोः=पशुतुल्य अधम दुर्योधन का, निधनम्=मरण ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे प्रिये ! भीष्म, द्रोण आदि बड़े-बूढ़ों, धृतराष्ट्र आदि कुटुम्बियों राजाओं के समक्ष पहले भरी राजसभा में हम पाण्डवों का जो अपमान किया गया था उस अपमान रूपी सागर से आज हमें दो ही बातें पार लगा सकती हैं, या तो आज हम सभी पाण्डवों की मृत्यु हो जाय अथवा उस कौरवाधम दुर्योधन का ही विनाश (मृत्यु) हो जाय । (अर्थात् आज ही या तो हम सभी पाण्डवों का विनाश होगा अथवा दुर्योधन का मरण होगा । इनमें से एक का होना निश्चित है ।) ।

छन्दः—उक्त पद्य में "शिखरिणी" छन्द है।

समासः—नृपसदसि=नृपस्य सदः नृपसदः, तस्मिन्। कुरुपतिपशोः—कुरुपतिः एव पशुः—इति कुरुपतिपशुः, तस्य।

टिप्पणियां—सदसि-सभा में। द्वितयम्=दोनों। पारम्=पार। गमयति=पहुंचा देंगे। क्षयः—विनाश। निधनम्=मरण-मृत्यु॥ ५॥

अथवा कृतं सन्देहेन।

> नूनं तेनाद्य वीरेण प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा।
> बध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्षणक्षमः॥ ६॥

अथवा सन्देह करना व्यर्थ है।

अन्वयः—प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा वीरेण तेन अद्य ते केशपाशः च अस्य आकर्षणक्षमः सः नूनं बध्यते॥ ६॥

संस्कृत-व्याख्या—प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा=स्व प्रतिज्ञायाः-स्व प्रणस्य भङ्गः तस्मात् भीरुणा-भीतेन, वीरेण=शूरेण, तेन=भीमसेनेन, अद्य=अद्यैव, ते=तव, केशपाशः=कचकलापः, च=तथा, अस्य=एतस्य केशसमूहस्य, आकर्षणक्षमः आकर्षणे-हरणे क्षमः-समर्थः. सः=दुर्योधनः इत्यर्थः, नूनम्=निश्चयम् बध्यते=संयम्यते। दुर्योधनः, अवश्यमेव बध्यते केशपाशश्च संयम्यते-इत्यभिप्रायः॥ ६॥

हिन्दी-अनुवाद—प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा=अपनी प्रतिज्ञा के भङ्ग हो जाने के भय से, वीरेण=वीर, तेन=उस भीमसेन के द्वारा, अद्य=आज ही, ते=तुम्हारा' केशपाशः=केशसमूह, च=और, अस्य=इसको, आकर्षणक्षमः=खींचने वाला, सः=वह, नूनम्=निश्चय ही, बध्यते=बांधा जायेगा॥ ६॥

भावार्थः—आज ही अपनी प्रतिज्ञा के भङ्ग होने के भय से अत्यन्त पराक्रमी वीर भीमसेन तेरे केशसमूह को खींचनेवाले उस नीच दुर्योधन को निश्चित रूप से मार देगा और तत्पश्चात् यहां आकर तेरे केश समूह को भी बांधेगा अथवा सवारेगा॥ ६॥

अलंकारः—उक्त पद्य में "तुल्ययोगिता" नामक अलङ्कार है।

छन्दः——इसमें 'अनुष्टुप्' छन्द है ।

समासः——प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा=प्रतिज्ञाया भङ्गत् भीरुः——इति प्रतिज्ञाभङ्गभीरुः, तेन । आकर्षणक्षमः=आकर्षणे क्षमः ॥ ६ ॥

टिप्पणियाँ——आकर्षणक्षमः=खीचने में समर्थ अथवा सशक्त । बध्यते= बाँधेगा अथवा सँवारेगा ॥ ६ ॥

पाञ्चालक ! कथय-कथय, कथमुपलब्धः स दुरात्मा कस्मिन्नुद्देशे किं वाऽधुनां प्रवृत्तमिति ?

द्रौपदी—भद्र ! कथय कथय । (भद्द, कहेहि कहेहि) ।

पाञ्चालकः—शृणोतु देवो देवी च । अस्तीह देवेन हते मद्राधिपतौ शल्ये गान्धारराजकुलशलभे सहदेवशस्त्रानलं प्रविष्टे सेनापतिनिधन-निराक्रन्दविरलयोधोज्झितासु समरभूमिषु रिपुबलपराजयोद्धतवल्गित-विचित्रपराक्रमासादितविमुखारातिचक्रासु धृष्टद्युम्नाधिष्ठितासु च युष्मत्सेनासु प्रनष्टेषु कृपकृतवर्माश्वत्थामसु तथा दारुणामपर्युषितां प्रतिज्ञामुपलभ्य कुमारवृकोदरस्य न ज्ञायते क्वापि प्रलीनः स दुरात्मा कौरवाधमः ।

युधिष्ठिरः——ततस्ततः ।

द्रौपदी—अयि ! परतः कथय । (अयि, परदो कहेहि ।) ।

पाञ्चालक ! कहो, कहो वह दुरात्मा दुर्योधन कैसे तथा किस स्थान पर मिला ? तथा इस समय वह क्या कर रहा है ?

द्रौपदी——कल्याणकारिन् ! कहो, कहो ।

पाञ्चालक——महाराज तथा महारानी सुनें । महाराज द्वारा मद्रनरेश शल्य को मार दिये जाने पर, गान्धार देश के राजकुलरूपी पतङ्गों के सहदेव के शस्त्ररूपी अग्नि में प्रविष्ट हो जाने पर, युद्धभूमि के सेनापति के मर जाने पर अत्यधिक विलाप करते हुये यत्र-तत्र अवशिष्ट रूप में स्थित योद्धाओं द्वारा युद्धभूमि को छोड़ दिये जाने पर, धृष्टद्युम्न द्वारा संचालित आपकी सेना से शत्रु सेना की पराजय होने के कारण उद्धतगति एवं अद्भुत पराक्रम के साथ भागती हुई शत्रु सेना को घर दबोचने पर,

कृपाचार्य, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामा के भाग जाने पर, कुमार भीमसेन की अत्यन्त कठोर तथा बासी न होने वाली (अर्थात उस ही दिन पूर्ण होनेवाली) प्रतिज्ञा को जानकर वह दुष्टात्मा नीच कौरव (दुर्योधन) न जाने कहां छिप गया ?

युधिष्ठिर— उसके पश्चात्, उसके पश्चात् (क्या हुआ ?) ।

द्रौपदी—अरे, आगे कहो ।

समास— **गान्धारराजकुलशलभे**=गान्धारराजस्य शकुनेरित्यर्थः कुलं वंशः एव शलभः तस्मिन् । **सहदेवशास्त्रानलम्**=सहदेवस्य शस्त्राण्येव अनलो-वन्हिः इति सहदेवशस्त्रानलः, तम् । **सेनापतिनिधननिराक्रन्द-विरलयोधोज्झितासु**=सेनापतेः-सेनानायकस्य शल्यस्य निधनेन-वधेन नितरां आक्रन्दः-विलापः येषांते तथाभूताः विरलाः-स्वल्पाः ये योधाः तैः उज्झितासु-त्यक्तासु । **रिपुदलपराजयोद्धतवलितविचित्र-पराक्रमासादितविमुखाराति-चक्रासु**=रिपोः-शत्रोः बलानां-सेनानां पराजयेन-भङ्गेन उद्धतम्-उद्वृत्तं-प्रवृद्धमितियावत् वल्गितम्-कूर्दनेन गमनम्, तेन विचित्रेण-विशिष्टेन पराक्रमेण आसादितानि-वशीकृतानि विमुखारातीनाम्-पलायमानशत्रूणां चक्राणि-यूथानि यामिस्तासु । **धृष्टद्युम्नाधिष्ठितासु**=धृष्टद्युम्नेन अधिष्ठितासु ।।

टिप्पणियां—**देवेन**=युधिष्ठिर के द्वारा-आपके द्वारा । **गान्धारराजस्य**=शकुनि के । **शलभः**=पतंगा । **निधनेन**=मरजाने से । **आक्रन्दः**=विलाप, रुदन । **उज्झितासु**=छोड़ दिये जाने पर । **उद्धतम्**=उद्धत-प्रवृद्ध-बढ़ा हुआ । **वल्गितम्**=कूद कूद कर चलने वाली गति से युक्त । **विचित्रपराक्रमेण**=अद्भुतशौर्य से । **विमुखारातीनाम्**=भागते हुये शत्रुओं के । **चक्राणि**=यूथ, झुण्ड, समूह, (सेनाके) । **अधिष्ठितासु**=संचालित । **प्रनष्टेषु**=कहीं पर छिपकर स्थित । **तथा**=उस प्रकार की । **दारुणाम्**=भीषण । **अपर्युषिताम्**=उस दिन ही पूरी किये जाने योग्य । वासी न होनेवाली । **उपलभ्य**=सुनकर । **प्रतिज्ञाम्**=अपने वध से सम्बन्धित प्रतिज्ञा को । **प्रलीनः**=छिपा हुआ ।।

पाञ्चालकः—अवधत्तां देवो देवी च। ततश्च भगवता वासुदेवेनाधिष्ठितमेकरथमारूढौ कुमारभीमार्जुनौ समन्तात्समन्तपञ्चकं पर्यटितुमारब्धौ तमनासादितवन्तौ च। अनन्तरं दैवमनुशोचति माहृशे भृत्यवर्गे दीर्घमुष्णं च निश्वसति कुमारे बीभत्सौ जलधरसमयनिशासंचारितडित्प्रकरपिङ्गलैः कटाक्षैर्दग्धुमिव दिशः पर्यायेण (?) राडीपयति। गदां वृकोदरे यत्किंचनकारितामधिक्षिपति विधेर्भगवति नारायणे कश्चित्संविदितः कुमारस्य मारुतेरुज्झितमांसभारः प्रत्यग्रविशसितमृगलोहितचरणनिवसनस्त्वरमाणोऽन्तिकमुपेत्य पुरुषः परुषश्वासप्रस्तार्धश्रुतवर्णानुमेयपदया वाचा कथितवान्—देव कुमार! अस्मिन्महोऽस्य सरसस्तीरे द्वे पदपद्धती समवतीर्णप्रतिबिम्बे। तयोरेका स्थलमुत्तीर्णा न द्वितीया। परत्र कुमारः प्रमाणम् इति। ततः ससंभ्रमं प्रस्थिताः सर्वे वयं तमेव पुरस्कृत्य। गत्वा च सरस्तीरं परिज्ञायमानसुयोधनपदलाञ्छनां पदवीमासाद्य भगवता वासुदेवेनोक्तम्भो वीर वृकोदर! जानाति किल सुयोधनः सलिलस्तम्भनीं विद्याम्। तन्नूनं तेन त्वद्भयात्सरसीमेनामधिशयितेन भवितव्यम्। एतच्चे वचनमुपश्रुत्य रामानुजस्य सकलदिङ्निकुञ्जपूरितातिरिक्तमुद्भ्रान्तसलिलचरशकुन्तकुलं त्रासोद्धतनक्रग्राहमोलोड्य सरःसलिलं भैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणाभिहितम्—अरे रे वृथा प्रख्यापितालीकपौरुषाभिमानिन्! पाञ्चालराजतनयाकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन् धार्तराष्ट्रापसद!

जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां
मां दुःशासनकोष्णशोणितमधुक्षीबं रिपुं मन्यसे।
दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे
मत्त्रासान्नृपशो विहाय समरं पङ्केऽधुनालीयसे ॥७॥

पाञ्चालकः—महाराज और महारानी ध्यान देवें। तदनन्तर भगवान् कृष्ण के द्वारा हांके गये एक ही रथ पर बैठे हुये कुमार भीम और अर्जुन

ने समन्तपञ्चक नामक विशाल तालाब के चारों ओर घूमना, आरम्भ किया किन्तु उसे पा न सके। तब मुझ जैसे सेवक समूह के भाग्य के ऊपर पश्चात्ताप करने पर, कुमार, अर्जुन के दीर्घ तथा उष्ण उसांसें लेने पर, भीम द्वारा वर्षाकालीन रात्रि में चमकने वाली विद्युत के प्रवाह के सदृश कुछ कुछ लाल कटाक्षों से अपनी गदा के प्रकाशित करने पर, भगवान् कृष्ण द्वारा भाग्य की स्वेच्छाचारिता को दोष देने पर, मांस के भार को एक ओर रख देने वाले, शीघ्र ही मारे गये हरिण के रक्त से लाल पैर तथा वस्त्रवाले, शीघ्रता के साथ आते हुये, कुमार भीमसेन के परिचित किसी पुरुष ने शीघ्रता से समीप में आकर लम्बी लम्बी श्वास से ग्रसित (अतएव) आधे ही सुने गये वर्णों के द्वारा अन्दाज की गई वाक्यवाली वाणी में कहा–'महाराज कुमार ! इस महान् जलाशय के तट पर दो पद-पंक्तियों के चिन्ह पड़े हुये हैं। उनमें से एक तो स्थल की ओर वापिस लौट आई है (किन्तु) दूसरी नहीं। इसके पश्चात् कुमार ही प्रमाण हैं'। इसके पश्चात् हम सभी उस व्यक्ति को आगे करके चल पड़े। जलाशय के तट पर पहुंचकर दुर्योधन के पद-चिन्हों के रूप में जानी गई पद-पंक्ति को पाकर भगवान् कृष्ण ने कहा—"हे वीर भीम ! दुर्योधन जल को स्तम्भित करने वाली विद्या को जानता है। अतः निश्चय ही वह तुम्हारे भय से इस महान् जलाशय में लेटा हुआ होगा।" बलराम के छोटे भाई श्री कृष्ण ने इन वचनों को सुनकर जलाशय के जल का मन्थन करने के कारण, सम्पूर्ण दिशाओं के गह्वरों को भर देने के पश्चात् भी बचे हुये, घबराये हुए जलचारी पक्षियों से युक्त, भय के कारण मकर और ग्राह की उछालों से युक्त कर भीषण गर्जन के साथ कुमार भीमसेन ने कहा–'अरे रे व्यर्थ प्रकट किये गये असत्य (अपने) पौरुष पर अभिमान करने वाले, पाञ्चाल राजकुमारी (द्रौपदी) के केश एवं वस्त्र को खींचने के कारण महान् पापी, धृतराष्ट्र के नीच पुत्र !

अन्वयः--अमले इन्दोः कुले जन्म व्यपदिशसि। अद्य अपि गदां धत्से। दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबं माम् रिपुं भाषसे। मधुकैटभद्विषि हरौ अपि दर्पान्धः उद्धतं चेष्टसे। हे नृपशो ! अधुना मत्त्रासात् पङ्के लीयसे ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या—अमले=निर्मले, इन्दोः=चन्द्रमसः, कुले=कुरुवंशे. जन्म=उत्पत्तिम्, व्यपदिशसि=कथयसि। अद्य=इदानीम्, अपि, गदाम्=शस्त्र-विशेषम्, धत्से=धारयसि। दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबम्=दुःशासनस्य कोष्णं-ईषदुष्णं यत् शोणितं-रक्तं तदेव सुरा—मद्यं तया क्षीबम्-मत्तम्, माम्=भीमम्, रिपुम् शत्रुम्, भाषसे=कथयसि। मधुकैटभद्विषि=मधुकैटभयोः-तन्नामकयोः असुरयोः द्विट्-शत्रुः तस्मिन्, हरौ=वसुदेवे, अपि, दर्पान्धः=अभिमानान्धः सन्, उद्धतम्=उच्छृङ्खल यथास्यात्तथा, चेष्टसे=आचरसि। हे नृपशो=हे नराधम, अधुना=इदानीम्, मत्त्रासात्=मद्भयात्, पङ्के=कर्दमे, लीयसे=निलीय तिष्ठसि। एतत्तु अभिमानिनः तवानुचितमेवेत्य भिप्रायः ॥ ७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—अमले=निर्मल, इन्दोः=चन्द्र, कुले=वंश में, जन्म=जन्मको, व्यपदिशसि=बतलाते हो। अद्यापि=आज भी, गदाम्=गदा को, धत्से=धारण किये हुये हो। दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबम्=दुःशासन के कुछ कुछ उष्ण रक्त रूपी मदिरा का पान करने के कारण मस्त हुये, माम्=मुझको, रिपुम्=शत्रु, भाषसे=कहते हो। मधुकैटभद्विषि=मधु एवं कैटभ नामक राक्षसों के हन्ता, हरौ=श्रीकृष्ण के प्रति अपि=भी, दर्पान्धः=घमण्ड मे चूर होकर, उद्धतम्=असभ्यता पूर्ण, चेष्टसे=आचरण करते हो। हे नृपशो=हे मानवपशु !, अधुना=इस समय, मत्त्रासात्=मेरे भय से, पंङ्के=कीचड़ में, लीयसे=छिपे हुये हो ॥ ७ ॥

भावार्थः—पवित्र चन्द्रवंश में तुम अपना जन्म बतलाते हो। इस समय तक तुम अपने हाथ में गदा को भी धारण किये हुये हो। दुःशासन के कुछ २ उष्ण रक्त रूपी मदिरा का पान करने के कारण मस्त मुझ भीम को तुम अपना शत्रु कहते हो। मधु एवं कैटभ नामक राक्षसों के हन्ता श्रीकृष्ण के प्रति तुम, असभ्यतापूर्ण अनुचित आचरण करते हो। ऐसी स्थिति में हे नरपशु ! मेरे भय से युद्धक्षेत्र को छोडकर तुम इस सरोवर में आकर क्यों छिप गये हो ? यदि साहस हो तो बाहर निकल कर आओ और युद्ध करो ॥ ७ ॥

छन्द—उक्त पद्य में 'शार्दूलविक्रीडित' नामक छन्द है।

समासः-जलधरसमयनिशासंचारितडित्प्रकरपिङ्गलैः=जलधरसमयः=प्रावृट्कालः तस्य या निशा-रात्रिः तस्यां संचारिताः-प्रकटाः याःतडितः तासां यः प्रकरः—समूहः तद्वत् पिङ्गलैः-कपिशैः। यत्किंचनकारिताम्=यत्किंचन कर्तु शीलं यस्य तस्य भावः यत्किंचनकारिता, ताम्। उज्झितमांसभारः=उज्झितः मांसस्य भारः येन तथाभूतः। प्रत्यग्रविशसितमृगलोहितचरण-निवसनः=प्रत्यग्रं-सद्यः विशसितः-हृतः यो मृगः हरिणः तस्यलोहितेन-रक्तेन रक्तवर्णीकृतौ चरणौ, निवसनंच-वस्त्रं च यस्य तादृशः। परुषश्वासग्रस्तार्धश्रुतवर्णानुमेयपदया=परुषः-कठिनः यः श्वासः-प्राणवायुः तेन ग्रस्ताः-निगीर्णाः अतएव अर्द्धश्रुताः-अस्पष्टाः ये वर्णाः तैरनुमेयानि पदानि यस्यां सा तथा। समवतीर्णप्रतिविम्बे=समवतीर्णः प्रतिविम्बः ययोस्ते तथाभूते। परिज्ञायमानसुयोधनपदलाञ्छनाम्=परिज्ञायमानानि-पूर्वतः परिचितानि यानि सुयोधनस्य पदयोः लाञ्छितानि-चिन्हानि यस्यां ताम्। सकलदिङ्निकुञ्जपूरितारिक्तमुद्भ्रान्तसलिलचरशकुन्तकुलम्=सकलासु दिशासु ये निकुञ्जाः-गह्वराणि तेषु पूरितं-भरितं ततः अतिरिक्तं च-(एतत् सरोवरसलिल-विशेषणम्, क्रियाविशेषणे तु यथा तथेत्यपि योजनीयम्) उद्भ्रान्तम्-भयादितस्ततः पलायनलग्नम् सलिलचराणां-जलचराणां शकुन्तानां-पक्षिणां कुलम्-समूहः यत्र तत्। यस्मिन् कर्मणि तत्तथा वा। त्रासोद्धतनक्रग्राहम्=त्रासेन-भयेन उद्धताः नक्रग्राहाः यस्मिन् तत्। दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबम्=दुःशासनस्य कोष्णं शोणितं एव सुरा तया क्षीबम्। मधुकैटभद्विषि=मधुकैटभयोः द्विट्, इति—तस्मिन्॥ ७॥

टिप्पणियाँ—अवधत्ताम्=सावधानता से सुनें। देवः=राजा युधिष्ठिर। देवीः=महारानी द्रौपदी। अधिष्ठितम्=संचालित—हाँके जाते हुये। समन्तपञ्चकम्=समन्तपञ्चक नामक महान् जलाशय। पर्यटितुम्=घूमने के लिये। बीभत्सौ=अर्जुन में। प्रकरः=समूह। पिङ्गलैः=कुछ २ लाल पीले। कटाक्षैः=दृष्टिपातों से। यत्किञ्चनकारिताम्=स्वेच्छाचारिता। अधिक्षिपति=निन्दाकरने पर, दोष देने पर। विदितः—जिसे वृत्तान्त ज्ञात

हरि शंकर चतुर्वेदी

था। मारुतेः=भीमसेन के। प्रत्यग्रम्=शीघ्र ही। विशसितः=मारा गया। निवसनम्=वस्त्र। त्वरमाणः=शीघ्रता करता हुआ। परुषः=कठोर। श्वासः=प्राणवायु। प्रस्ताः=अभिभूता पदपद्धती=पद-पंक्ति। समवतीर्णः=अङ्कित-चिन्हित। परिज्ञायमानानि=पहले से परिचित। लाञ्छितानि=चिन्ह। रामानुजस्य=बलराम के छोटे भाई। निकुञ्जाः=गह्वरों को। सलिलस्तम्भनीम्=जलको स्तम्भित करने वाली। उद्भ्रान्तम्=त्रस्त, भयभीत। घबराये हुये। शकुन्तकुलम्=पक्षियों का समूह। आलोड्य=आलोडित करके। भैरवम्=भीषण। अलीकम्=झूठ: व्यपदिशसि=कहते हो, बतलाते हो। कोष्णम्=कुछ-कुछ गरम। क्षीबम्=मत्त, मतवाले। दर्पान्धः=गर्व में चूर। उद्धतम्=उच्छृंखल। चेष्टासे=व्यवहार करते हो। पङ्के=कीचड़ में। लीयसे=छिप रहे हो ॥ ७ ॥

अपिच। भो मानान्ध !

पञ्चाल्या मन्युवह्निः स्फुटमुपशमित प्राय एव प्रसह्य
व्यासक्तैः केशपाशैर्हतपतिषुमया कौरवान्तःपुरेषु।
भ्रातुर्दुःशासनस्य स्रवदसृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य
क्रोधात्किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयास्तोऽभिमानः ॥८॥

और भी। अरे अभिमान से अन्धे !

अन्वयः—मया प्रसह्य हतपतिषु कौरवान्तःपुरेषु (सत्सु), व्यासक्तैः केशपाशैः पाञ्चाल्याः क्रोधवह्निः उपशमितप्रायः एव, भ्रातुः दुःशासनस्य उरसा स्रवत् असृक् (मया) पीयमानं निरीक्ष्य क्रोधात् त्वया भीमसेने किं विहितम् ? यत् असमये अभिमानः अस्तः ॥ ८ ॥

संस्कृत-व्याख्याः—मया=भीमेन, प्रसह्य=बलात्, हतपतिषु=हताः=घातिताः पतयः येषां तादृशेषु, कौरवान्तःपुरेषु=कौरवाणां अन्तःपुरेषु=शुद्धान्तः स्त्रीजनेषु, सत्सु; व्यासक्तैः=उन्मुक्तैः, केशपाशैः=कचसमूहैः, पाञ्चाल्याः=द्रौपद्याः, क्रोधवन्हिः=क्रोधाग्निः, उपशमितप्रायः शान्तप्रायः, एव, जातः। भ्रातुः, दुःशासनस्य, उरसः=वक्षस्थलात्, स्रवत्=क्षरत्, असृक्= रक्तम्,

(मया), पीयमानम्=आचम्यमानम्, निरीक्ष्य=दृष्ट्वाऽपि, क्रोधात्=कोपात्, त्वया=दुर्योधनेनेत्यर्थः, भीमसेने=अपकारिणि मयि भीमसेने, किं विहितम्=किमपकृतम् ? यत्=यस्मात्, असमये=अनवसरे, (त्वया), अभिमानः=अहंकारः, अस्तः=दूरीकृतः। स्वकीयं गर्वं त्यक्त्वा समरात्प्रपलाय्य किं प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितोऽसीत्यर्थः ॥ ८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—मया=मुझ भीम के द्वारा, प्रसह्य=जबरन, हतपतिषु=मार दिये गये हैं पति जिनके ऐसी, कौरवान्तःपुरेषु सत्सु=कौरवों की स्त्रियों के हो जाने पर, व्यासक्तैः=खुले हुये अथवा बिखरे हुये, केशपाशैः=केश-समूह से युक्त हो जाने पर, पाञ्चाल्या=द्रौपदी की, क्रोधवन्हिः=क्रोधाग्नि, उपशमितप्राय एव=प्रायःशान्त हो चुकी है। भ्रातुः=छोटे भाई, दुःशासनस्य=दुःशासन के, उरसः=वक्षस्थल से, स्रवत्=बहते हुये, असृक्=रक्त को, मया=मुझ भीम के द्वारा, पीयमानम्=पिया जाता हुआ, निरीक्ष्य=देखकर, क्रोधात्=क्रोधसे, त्वया=तुम्हारे (दुर्योधन के) द्वारा, भीमसेने=भीमसेन के प्रति, किम्=क्या, विहितम=कर डाला गया है ? यत्=कि जो, तुमने, असमये=असमय में ही, अभिमानः=अपने अभिमान को, अस्तः=समाप्त कर दिया है ॥ ८ ॥

भावार्थः—द्रौपदी की क्रोधाग्नि, मेरे द्वारा जिनके पतियों का हनन कर दिया गया है ऐसी कौरवों की विधवा रानियों के खुले हुए केशसमूह को देखकर शान्तप्राय हो गई है (अर्थात् हे दुर्योधन ! तुम्हारे भाइयों की विधवा स्त्रियों को देखकर द्रौपदी का दुःख कुछ कम हो गया है।) अपने भाई दुःशासन के वक्षःथल से गर्मागर्म बहते हुए रक्त का तुम्हारे समक्ष ही पान करने वाले मुझ भीम का तुमने क्रोध कर क्या कर लिया है ? (अर्थात् क्या तुम मुझे दण्डित कर सकते हो ?) जो इस भाँति अनवसर में ही अपने अभिमान का त्यागकर तुम छिपे हुए रूप में स्थित हो गये हो ॥ ८ ॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में 'लुप्तोपमा' अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'स्रग्धरा' वृत्त है।

समासः—मानान्ध !=मानेन-अभिमानेन अन्धः-विवेकशून्यः—इति मानान्धः, तत्सम्बुद्धौ । हतपतिषु=हताः पतयः येषां तेषु । कौरवान्तः पुरेषु=कौरवाणां अन्तःपुरेषु । क्रोधवह्निः-क्रोध एव वन्हिः-इति ॥ ८ ॥

टिप्पणियाँ——व्यासवतैः-उन्मुक्त, खुले हुए, बिखरे हुए । उपशमित-प्रायः=शान्ततुल्य हो गई है । "प्रायो बाहुल्यतुल्ययोः" इति विश्वः । एव= यहाँ पर यह निश्चयार्थक है । 'प्रायः' इस पद के प्रयोग से यह भी ध्वनित होता है कि अब केवल तुम्हारा ही वध अवशिष्ट है । स्रवत्=निकलता हुआ । असृक्=रक्त । असमये = बिना अवसर के ही । अस्तः=समाप्त हो गया ।

विशेष-प्राचीन भारतीय प्रथा यह थी कि अपने पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात् स्त्रियाँ शृङ्गार नहीं किया करती थीं । उनके केश बिखरे रहा करते थे । भीम के कथन का यही अभिप्राय है कि ऐसी तुम्हारे भाइयों की विधवाओं को देखकर द्रौपदी का क्रोध प्रायः शान्त सा हो चुका है । अब वल तुम्हारा भी वध हो जाना शेष है ॥ ८ ॥

द्रौपदी——नाथ ! अपनीतो मे मन्युर्यदि पुनरपि सुलभं दर्शनं भविष्यति ।

(णाह अवणीदो मे मण्णु जइ पुणो वि सुलहं दंसणं भविस्सदि ।)

युधिष्ठिरः—कृष्णे ! नामङ्गलानि व्याहर्तुमर्हस्यस्मिन्काले । भद्र ! ततस्ततः ।

पाञ्चालकः—देव ! ततश्चैवं भाषमाणेन वृकोदरेणावतीर्य क्रोधोद्धतभ्रमितभीषणगदापाणिना सहसैवोल्लंघिततीरमुत्सन्ननलिनीवनमपविद्धमूर्च्छितग्राहमुद्भ्रान्तमत्स्यशकुन्तमतिभैरवारवभ्रमितवारिसंचयमायतमपि तत्सरः समन्तादालोडितम् ।

युधिष्ठिरः—भद्र ! तथापि किं नोत्थितः ?

पाञ्चालकः—देव ! कथं नोत्थितः ।

त्यक्त्वोत्थितः सरभसं सरसः स मूल-
मुद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः ।
आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः
क्षीरोदधेः सुमथितादिव कालकूटः ॥ ६ ॥

द्रौपदी—हे नाथ ! मेरा क्रोध दूर हो गया यदि फिर से (आपका) दर्शन सुलभ हो जाय ।

युधिष्ठिर—हे द्रौपदी ! इस समय अमङ्गल वचन कहने के तुम योग्य नहीं हो (अर्थात् इस समय तुमको अमङ्गल-वचन नहीं बोलने चाहिये ।) । हे कल्याणकारिन् ! उसके पश्चात्, उसके, पश्चात् ।

पाञ्चालक—तत्पश्चात् ऐसा कहते हुए भीम ने, जिनके हाथ में क्रोध के कारण जोर से घुमाई जाती हुई गदा विद्यमान थी, उतरकर उस महान् जलाशय को चारों ओर से (इस भाँति) मथ डाला कि एकाएक ही उसका पानी तट को लाँघ गया, कमलिनियों का समूह नष्ट हो गया, ग्राह बाहर फेंक दिये गये और मूच्छित हो गये, मछली और पक्षी घबरा गये तथा जलसमूह अत्यधिक भीषण शब्द के साथ चक्कर खाने लगा ।

युधिष्ठिर—हे कल्याणकारिन् ! क्या वह फिर भी नहीं उठा ?

पाञ्चालक—महाराज ! क्यों नहीं उठा ।

अन्वयः—सरसः मूलं सरभसं त्यक्त्वा उद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः सः आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः सुमथितात् क्षीराम्बुधेः कालकूटः इव उत्थितः ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—सरसः—सरोवरस्य, मूलम्=मूलप्रदेशं तलं वा, सरभसम्=सत्वरं सवेगं वा, त्यक्त्वा=परित्यज्य, उद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः=उद्भूतः-प्रवृद्धः यः कोपदहनः क्रोधाग्निः स एव उग्रविषस्य-उत्कटगरलस्य स्फुलिङ्गः यत्र स तथा, सः=दुर्योधनः, आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः=आयस्तौ-विशालौ दीर्घौ वा भीमभुजौ-भीमसेनबाहू एव मन्दरः-मन्दराचलः तस्य वेल्लनाः-सञ्चलनानि, ताभिः, सुमथितात सम्यक्तया विलोडितात्,

क्षीराम्बुधेः=क्षीरसागरात्, (क्षीराम्बुधिपक्षे—आयस्ताः—क्षिप्ताः ये भीमाः—भीषणाः भुजाः—देवासुरबाहवः तैर्या मन्दरस्य-मन्दराचलस्य वेल्लना-भ्रमणं ताभिः-आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः=परिभ्रमितदेवासुरमहाबाहुकृतमन्दराचलपरिभ्रमणैः, सुमथितात्- सम्यक्तया विलोडिताम्, क्षीराम्बुधेः—क्षीरसागरात्) कालकूट इव=महाविषमिव हलाहलमिव वा, उत्थितः=बहिर्निसृतः ।९।

हिन्दी-अनुवाद— सरसः=जलाशय की, मूलम्=तलहटी को, सरभसम्=बड़े वेग के साथ, त्यक्त्वा=छोड़कर, उद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः=जिसके अन्दर से क्रोधाग्निरूपी भीषण विष की चिनगारियां (कण) निकल रहीं थीं ऐसा, सः=वह दुर्योधन, आयस्त भीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः=भीम की विशाल भुजारूपी मन्दराचल के घूमने से, सुमथितात्=भलीभांति मन्थन किये गये, क्षीराम्बुजे=क्षीरसागर के (क्षीरसागर पक्ष में—मंथन कार्य में चलती हुई देव तथा दानवों की भीषण भुजाओं से घुमाये जाते हुए मंदराचल पर्वत के घूमने से क्षीर सागर से निकले हुए) समान उस तालाब कालकूट इव—कालकूट नामक विष के समान, उत्थितः=निकल पड़ा ॥ ९ ॥

भावार्थ— भयंकर क्रोध के कारण जिसके शरीर से भीषण अग्नि की विषमय चिनगारियाँ निकल रही थीं ऐसा वह दुर्योधन उस तालाब के तले को छोड़कर उसी प्रकार बड़े वेग के साथ बाहर निकल पड़ा कि जिस प्रकार से समुद्र मंथन के समय मंथनकार्य में चलती हुई देवों और दानवों की विशाल भुजाओं से घुमाये जाते हुए मंदराचल पर्वत के घूमने से क्षीरसागर से हलाहल-विष निकल पड़ा था ॥ ९ ॥

अलंकार——उक्त पद्य में रूपक तथा उपमा नामक अलंकार द्वय की प्रतीति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है।

छन्द— इसमे 'वसन्ततिलका' छन्द है।

समास— क्रोधोद्धतभ्रमितभीषणगदापाणिना=क्रोधेन उद्धता भ्रमिता भीषणा गदा पाणौ यस्य तेन। उल्लंघिततीरम्=उल्लंघितं तीरं यस्मिन् तत्। उत्सन्ननलिनीवनम्=उत्सन्नं-उच्छिन्नं नलिनीवनं यस्मिन् तत्। अपविद्धमूर्च्छितग्राहम्=अपविद्धाः-बहिः प्रक्षिप्ताः अतएव मूर्च्छिताः ग्राहाः

यस्मिन् तत् । उद्भ्रान्तमत्स्यशकुन्तम्—उद्भ्रान्ताः-पर्याकुलाः मत्स्य-शकुन्ताः यस्मिन् तत् । अतिभैरवारभ्रमितवारिसंचयम्—अति भैरवेण-अतिभीषणेन आरवेण-शब्देन भ्रमितः वारिसंचयः यस्मिन् तत् । उद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः—उद्भूताः कोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गाः यस्मात् सः । आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः—आयस्तौ भीमस्य भुजौ एव मन्दरः तस्य वेल्लनाभिः ॥ ९ ॥

टिप्पणियाँ—उद्धता=ऊपर उठाई गई । उत्सन्नम्—विनष्ट । अपविद्धा,—बाहर फेंक दिये गये । उद्भ्रान्ताः—अत्यधिक व्याकुल । शकुन्ताः—पक्षी । आरवेण—शब्द से । वारिसञ्चयः—जलसमूह । सरभसम्—शीघ्र ही । दहनः—अग्नि । स्फुलिङ्गः=चिनगारी । आयस्तः=विशाल, लम्बी लम्बी । वेल्लनाभिः—घुमाने से, परिवर्तनों से । गोलाकार चक्कर लगाने से । सुमथितात्—भलीभांति मन्थन किये जाने से । कालकूटः—हलाहल विष; गरल । उत्थितः—उठा, बाहर निकल पड़ा ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरः—साधु, सुक्षत्रिय, साधु ।

द्रौपदी—प्रतिपन्नः समरो न वा (पडिबण्णो समरो ण वा) ।

पाञ्चालकः—उत्थाय च तस्मात्सलिलाशयात्करयुगलोत्तम्भिततोरणो कृतभीमगदः कथयति स्म—"अरे रे मारुते ! किं भयेन प्रलीनं दुर्योधनं मन्यते भवान् ? मूढ ! अनिहतपाण्डुपुत्र प्रकाशं लज्जमानो विश्रमितुमध्यवसितवानस्मि पातालम् ।" एवं चोक्ते वासुदेवकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तःसलिले निषिद्धसमरसमारम्भौ स्थलमुत्तारितौ भीमसुयोधनौ । आसीनश्च कौरवराजः क्षितितले गदां निक्षिप्य विशीर्णरथसहस्रं निहतकुरुशतगजवाजिनरसहस्रकलेवरसंमर्दसंपतद्गृध्रकङ्कजम्बूकमुत्सन्नसुयोधमस्मद्वीरविमुक्तसिंहनादमपवित्रबान्धवमकौरवं रणस्थानमवलोक्यायतमुष्णं च निश्वसितवान् । ततश्च वृकोदरेणाभिहितम्—अयि भोः कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । मैवं विषादं कृथा पर्याप्ताः पाण्डवाः समरायाहमसहाय इति ।

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ।
दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥१०॥

युधिष्ठिर---वाह, वीर क्षत्रिय, वाह ।

द्रौपदी—युद्ध प्रारम्भ हुआ अथवा नहीं ?

पाञ्चालक--और उस तालाब से उठकर (निकलकर) दोनों हाथों से उठाई गई तथा तोरण बनाई हुई भयंकर गदा वाला वह कहने लगा--":अरे रे पवन पुत्र (भीम) क्या आप दुर्योधन को भय के कारण छिपा हुआ समझते हैं ? मूर्ख, पाण्डु के पुत्रों को बिना मारे प्रकट रूप में लज्जित होते हुए मैंने पाताल में विश्राम करने का निश्चय किया था।" ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के द्वारा, जल के अभ्यन्तर जिनके युद्ध-कर्म को रोक दिया गया था, भीम और दुर्योधन दोनों को ही स्थल पर ले आया गया। तब अपनी गदा को भूमि पर फेंक कर बैठते हुये कुरुराज (दुर्योधन) ने टूटे हुए हजारों रथों से युक्त, मारे गये सैकड़ों कौरवों और हजारों हाथियों, घोड़ों तथा मनुष्यों के शवों के ढेरों पर झपटते हुए गिद्ध, कङ्क तथा सियारों से युक्त, नष्ट हुए योद्धाओं से युक्त, हमारे वीरों के द्वारा किये गये सिंह-गर्जन से युक्त, हमारे मित्रों तथा बान्धवों रहित, कौरवों से शून्य रणभूमि को देखकर लम्बी और उष्ण श्वास को लिया। इसके अनन्तर भीम ने कहा--अरे हे कौरवराज ! बन्धुओं के विनाश का दुःख मत करो। इस प्रकार का विशाद न करो कि युद्ध में पाण्डव जो बहुत से हैं और मैं युद्ध में असहाय हूँ।

अन्वयः—हे सुयोधन ! अस्माकं पञ्चानां मध्ये यं सुयोधं मन्यसे तेन सह दंशितस्य आत्तशस्त्रस्य ते रणोत्सवः अस्तु ॥ १० ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सुयोधन !=हे दुर्योधन !, अस्माकम्, पञ्चानाम्=पञ्चपाण्डवानां मध्ये, यम्=यं कमपि, सुयोधम्=सुयोधम्=सुखेन योद्धं योग्यम्, मन्यसे=अवगच्छसि, केन, सह=सार्धम्, दंशितस्य=कृतसन्नाहस्य-कवचसज्जस्येत्यर्थः, आत्तशस्त्रस्य=आत्तं-गृहीतं शस्त्रं येन तस्य, ते=तव, दुर्योधनस्येत्यर्थः, रणोत्सवः=युद्धमहोत्सवः, अस्तु=भवतु ॥ १० ॥

हिन्दी-अनुवाद--हे सुयोधन !=हे दुर्योधन, अस्माकम्=हम, पञ्चानाम्=पाँचों पाण्डवों के, मध्ये=बीच में, यम्=जिस किसी पाण्डव को, सुयोधम्=सरलता के साथ युद्ध करने योग्य, मन्यसे=स्वीकार करते हो, तेन सह=उस ही (पाण्डव) के साथ, दंशितस्य=कवचधारी, आत्तशस्त्रस्य=शस्त्रधारण किये हुये, ते=तुम्हारा (अर्थात् तुम्ह दुर्योधन का), रणोत्सवः=युद्धोत्सव, अस्तु=होवे ॥१०॥

भावार्थः—हे दुर्योधन हम पाँचों पाण्डवों में से जिस किसी भी पाण्डव को तुम सरलता के साथ, युद्ध करने योग्य समझते हो उसके साथ कवच धारण कर एवं हाथ में शस्त्र लेकर तुम्हारा युद्ध हो जाय ॥१०॥

छन्द,—उक्त पद्य में 'पथ्यावक्त्र' छन्द है।

समासः—करयुगलोत्तम्भिततोरणीकृतभीमगदः=करयुगलेनउत्तम्भिता=समुत्तोलिता अतएव तोरणीकृता=बहिर्द्वारवत्कृता भीमा=भयङ्करी गदा येन सः। अनिहतपाण्डुपुत्रः=अनिहताः-न हताः पाण्डुपुत्राः येन सः। निषिद्धसमरसमारम्भो=निषिद्धसमरसमारम्भो=निषिद्धः समरस्य समारम्भः ययोः तौ। विशीर्णरथसहस्रम्=विशीर्णानि-भग्नानि रथानां सहस्राणि यस्मिन् तत् तथाभूतम्। निहतकुरुशतगजवाजिनरसहस्रकलेवर संमर्द-संपतगृध्रकङ्कजम्बुकम्=निहतानां कुरुणां शतं गजानां वाजिनां नराणां च सहस्राणि, तेषां कलेवराणि, तैः यः संमर्दः—संघट्टः, तत्र संपतन्तः गृध्राः कङ्काः जम्बूकाः यत्र तत् तथाभूतम्। उत्सन्नसुयोधम्=उत्सन्नाः—प्रनष्टाः सुयोधाः यत्र तत्तथाभूतम्। अस्मद्वीरविमुक्तसिंहनादम्=अस्माकं वीरैः विमुक्तः सिंहनादः यत्र तत्तथाभूतम्। अपमित्रबान्धवम्=अपगताः मित्र-बान्धवाः यत्र तत्तथाभूतम्। आत्तशस्त्रस्य=आत्तंशस्त्रं येन तस्य ॥१०॥

टिप्पणियाँ—प्रतिपन्नः=स्वीकार करलिया है, प्रारम्भ हो गया है। उत्तम्भिता=उठाई गई हुई। तोरणीकृता=तोरण (बाह्यद्वार) के समान (अर्द्धगोलाकार) बनाई गई। भीमा=भीषणा। प्रलीनम्=छिपा हुआ। प्रकाशम्=प्रकटरूप से। अध्यवसितवान्=निश्चित किया था, निश्चय किया था। आसीनः=स्थित। विशीर्णम्=भग्न। कलेवराणाम्=(निर्जीव)

शरीरों के। सम्मर्दः=संघर्षण। संपतन्तः=गिरते हुये–झपटते हुये। जम्बूकाः=सियार। उत्सन्नाः=नष्ट हुये, विनष्ट। मन्युना=शोक से। दंशितस्य=कवचधारण किये हुये। "संनद्धो वर्मितः सज्जो दंशितः व्यूढ-कङ्कटः" इत्यमरः आत्तशस्त्रस्य=हाथ में शस्त्र लिये हुये ॥१०॥

इत्थंचश्रुत्वासूयान्वितां दृष्टिं कुमारयोर्निक्षिप्योक्तवान्धार्तराष्ट्रः।

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम।
अप्रियोऽपि प्रियोयोद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥११॥

इस बात को सुनकर दोनों कुमारों पर डाह भरी दृष्टि डालकर धृतराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन) ने कहा—

अन्वयः—कर्णदुःशासनवधात् मम युवां तुल्यौ एव तथापि अप्रियः अपि प्रियसाहसः त्वं एव योद्धुं प्रियः ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—कर्णदुःशासनवधात्=कर्णदुःशासनयोः वधात्-हननात्; मम=दुर्योधनस्य, युवाम्=भीमार्जुनौ, तुल्यौ=समानौ, एव। तथापि, अप्रियः=द्वेष्यः; अपि, प्रियसाहसः=प्रियः साहसः यस्य सः—महासाहसरसिकः, त्वम्=भवान्, एव, योद्धुम्=द्वन्दयुद्धं कर्तुम्, प्रियः=अभीष्टः, असि ॥११॥

हिन्दी-अनुवाद—कर्णदुःशासनवधात्=कर्ण और दुःशासन का वध करने से, मम=मेरे लिये, युवाम्=तुम दोनों (भीम और अर्जुन) ही; तुल्यौ=समान, एव=ही हो तथापि=फिर भी, अप्रियः=द्वेष करने योग्य होने पर; अपि=भी, प्रियसाहसः=साहसप्रिय होने से, त्वम्=तुम (भीम). एव=ही, योद्धुम्=युद्ध करने के लिए, प्रियः=प्रिय हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे भीमसेन! अर्जुन द्वारा मेरे परममित्र कर्ण का हनन किया गया है और तुम्हारे द्वारा मेरे भाई दुःशासन का। अतः तुम दोनों समान रूप से मेरे शत्रु हो। किन्तु वस्तुतः तुम बड़े साहसी हो। अतः तुम्हारे साथ ही युद्ध करना मेरे लिये रुचिकर होगा (अर्थात् तुम्हारे साथ ही मैं मैं युद्ध करने को उद्यत हूँ ॥ ११ ॥

अलङ्कारः—उपर्युक्त पद्य में "विरोधाभास" नामक अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'पथ्यावक्त्र' छन्द है।

समासः—असूयान्विताम्=असूया—अन्योत्कर्षासहिष्णुता तथा अन्विताम्-युक्ताम्। कर्णदुःशासनवधात्—कर्णदुःशासनयोः वधः—इति कर्णदुःशासनवधः तस्मात् । प्रियसाहसः=प्रियं साहसं यस्य सः ॥ ११ ॥

टिप्पणियाँ—कुमारयोः=भीम और अर्जुन पर। युवाम्=तुमदोनों-अर्जुन द्वारा कर्ण का वध किये जाने से अर्जुन तथा दुःशासन का वध किये जाने से भीम। तुल्यौ=समानरूप से शत्रु हो। प्रियः=प्रिय अथवा रुचिकर हो ॥ ११ ॥

इत्युत्थाय परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोरसङ्ग्रामो विचित्रविभ्रमभ्रमितगदापरिभासुरभुजदण्डौ मण्डलैर्विचरितुमारब्धौ भीमदुर्योधनौ। अहं च देवेन चक्रपाणिना देवसकाशमनुप्रेषितः। आह च देवो देवकीनन्दनः। अपर्युषितप्रतिज्ञे च मारुतौ प्रनष्टे कौरवराजे महानासीन्नो विषादः। संप्रति पुनर्भीमसेनेनासादिते सुयोधने निष्कण्टकीभूतं भुवनतलं परिकलयतु भवान्। अभ्युदयोचिताश्चानवरतं प्रवर्त्यन्तां मङ्गलसमारम्भाः। कृतं संदेहेन।

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते
कृष्णात्यन्तचिरोज्झिते च कबरीबन्धे करोतु क्षणम् ।
रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनी
क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ॥१२॥

ऐसा कहकर तथा उठकर भीम और दुर्योधन जिन्होंने पारस्परिक क्रोध के कारण निन्दा के कठोर वचनों के कलह से भीषण युद्ध का प्रारम्भ कर दिया था और जिनकी दण्डसदृश भुजाएँ अनेक प्रकार की मनोहर चेष्टाओं के साथ घुमाई गई गदाओं से देदीप्यमान हो रहीं थीं, मण्डल बनाकर घूमने लगे। और उसी समय ऐश्वर्यशाली चक्रपाणि श्री कृष्ण ने मुझे आपके समीप भेज दिया। महाराज, देवकीनन्दन (श्री कृष्ण) ने कहा है—भीम द्वारा एक ही (निश्चित) दिन में (दुर्योधन को मार देने सम्बन्धी) प्रतिज्ञा कर लेने पर तथा कुरुराज दुर्योधन के छिप जाने पर हम लोगों को

अति दुःख था। किन्तु अब भीम द्वारा दुर्योधन के प्राप्त कर लेने पर आप पृथ्वीतल को कण्टकहीन हुआ ही समझें। और अभ्युदय के अनुरूप निरन्तर माङ्गलिक कार्य चलाए जायँ। अब सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं है (अर्थात् अब सन्देह करना व्यर्थ होगा।)।

अन्वयः—ते राज्याभिषेकाय रत्नकलशाः सलिलेन पूर्यन्ताम्, च चिरोज्झिते कबरीबन्धे कृष्णा क्षणं करोतु, शातकुठारभासुरकरे क्षत्र-द्रुमोच्छेदिनि रामे च क्रोधान्धे वृकोदरे आजौ परिपतति (सति) कुतः संशयः ? ॥ १२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—ते=तव युधिष्ठिरस्य, राज्याभिषेकाय=राज्यसिंहासने अभिषेचनाय, रत्नकलशाः=नानारत्नघटिताः कलशाः, सलिलेन, जलेन, पूर्यन्ताम्=भ्रियन्ताम्। चिरोज्झिते=चिरात्—बहोः कालात् उज्झिते-उन्मुक्ते-विगलितबन्धे वा, कबरीबन्धे=कबरी-केशवेशः तस्याः बन्धे बन्धने-संयमने वा, कृष्णा=द्रौपदी, क्षणम्=उत्सवं—केशवेशबन्धोत्सवमिति यावत्, करोतु। विदधातु। शातकुठारभासुरकरे=शातेन-तीक्ष्णेन कठोरेण वा कुठारेण-परशुना भासुरा—प्रदीप्तः करः—पाणिः यस्य तस्मिन्, क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि=क्षत्राः-क्षत्रियनृपाः एव द्रुमाः-वृक्षाः तान् छेत्तुं कर्तितु शीलमस्य तस्मिन्, रामे=परशुरामे, च=तथा, क्रोधान्धे=कोपान्धे, वृकोदरे=भीमसेने आजौ=युद्धे, परिपतति=अवतरति वा संप्रवृत्ते सति, कुतः संशयः=क्व विजयसंदेहावसरः ? सर्वथा भीमस्य विजयः निश्चित एवेत्यभिप्रायः॥ १२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—ते=आप (युधिष्ठिर) के, राज्याभिषेकाय=राज्याभिषेक के लिये, रत्नकलशाः=रत्नमयकलश, सलिलेन=जल से, पूर्यन्ताम्=भरेजायें। च=और, चिरोज्झिते=बहुत समयसे छोड़ेगये अर्थात् खोलें गये हुए, कबरीबन्धे=जूड़े के बाँधने के सम्बन्ध में, कृष्णा=द्रौपदी, क्षणम्=उत्सव, करोतु=मनायें। शातकुठारभासुरकरे=तीक्ष्ण अथवा कठोर फरसे से सुशोभित हाथ वाले, क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि=क्षत्रियरूपी वृक्षों को काटने वाले, रामे=परशुराम के, च=तथा, क्रोधान्धे=क्रोध से उन्मत्त, वृकोदरे=भीमसेन के, आजौ=युद्ध में, परिपततिसति=उतर पड़ने पर, कुतः संशयः=संशय के लिये स्थान कहाँ अर्थात् कहीं नहीं। भीम की विजय सुनिश्चित है॥ १२ ॥

भावार्थः— आपके राज्याभिषेक के निमित्त रत्ननिर्मित कलशों को जल से भरा जाय। द्रौपदी भी अपने चिरकाल से खुले हुये केशों के जूड़े को फिर से बाँधने हेतु महान् उत्सव मनाये। क्योंकि तीक्ष्ण अथवा कठोर फरसे को धारण करने से देदीप्यमान हाथों वाले, क्षत्रियवंश का मूलोच्छेदन करने वाले परशुराम के तथा क्रोधोन्मत्त भीमसेन के युद्ध में उतर जाने पर विजय के सम्बन्ध में सन्देह के लिये स्थान कहाँ ? अर्थात् भीमसेन की विजय पूर्णरुपेण निश्चित ही है ॥ १२ ॥

अलङ्कारः—उक्त पद्य में 'दीपक' अलंकार है।

छन्द—इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

समासः—परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोरसंग्रामौ= परस्परयोः क्रोधेन च अधिक्षेपः—तिरस्कारः तेन परुषः-कठोरः यो वाक्कलहः-वाणीविवादः तेन प्रस्तावितः-प्रवर्तितः घोरः-भीषणः संग्रामः याभ्यां तौ ; विचित्रविभ्रमभ्रमितगदापरिभासुरभुजदण्डौ=विचित्रेण विभ्रमेण-विलासेन लीलया वा भ्रमिता या गदा तया परिभासुरौ भुजदण्डौ ययोः तौ। शातकुठारभासुरकरे=शातेन कुठारेण भासुरः करः यस्य तस्मिन्। क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि=क्षत्राः एवद्रुमाः तान् छेत्तुंशीलमस्य तस्मिन् ॥ १२ ॥

टिप्पणियाँ—अधिक्षेपः=आक्षेप, तिरस्कार। परुषः=कठोर। भीम और दुर्योधन के युद्ध का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ कि सबसे पहले उन दोनों का क्रोध प्रकट हुआ, तदनन्तर एक दूसरे के द्वारा एक दूसरे का अपमान किया गया। तदनन्तर दोनों में कठोर वाद-विवाद हुआ और उसके पश्चात् युद्ध ये दोनों प्रवृत्त हुये। युद्ध में प्रवृत्त होने का क्रम भी यही है। विभ्रमेण-विलास के साथ। भ्रमिता=घुमाई गई। मण्डलैः=मण्डलाकार रूप में; पैंतरा आदि बदलते हुये। आसादिते=प्राप्त होने पर। निष्कण्टकीभूतम्=शत्रुरहित। परिकलयतु=समझें। अनवरतम्= निरन्तर। मंगलसमारम्भाः=माङ्गलिककार्य—माङ्गलिक गीत, वाद्य आदि कर्म। उज्झिते=छोड़े गये-बिखरे हुये-खुले हुये। कबरी=केशवेश-

जूड़ा । क्षणम्=उत्सव-"क्षणो मुहूर्तोत्सवयोः" इति शाश्वतः । शातेन=तीक्ष्ण, कठोर । क्षत्राः=क्षत्रिय । परिपतति=उतरजाने पर ॥ १२ ॥

द्रौपदी—[सवाष्पम्] यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणतितत्कथमन्यथा भविष्यति [जं देवो त्तिहुअणणाहो भणादि तं कहं अण्णहा भविस्सदि ।] ।

पाञ्चालकः—न केवलमियमाशीः । असुरनिषूदनस्यादेशोऽपि ।

युधिष्ठिरः—को हि नाम भगवता संदिष्टं विकल्पयति ? कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—देवस्य देवकीनन्दनस्य बहुमानाद्वत्सस्य मे विजय-मंगलाय प्रवर्त्यन्तां तदुचिताः समारम्भाः ।

कञ्चुकी—यथाज्ञापयति देवः । (सोत्साहं परिक्रम्य) भो भोः संविधातॄणां पुरःसराः यथाप्रधानमन्तर्वेशिकाः, दौवारिकाश्च, एष खलु भुजबलपरिक्षेपोत्तीर्णकौरवपरिभवसागरस्य निर्व्यूढदुर्वहप्रतिज्ञा-भारस्य सुयोधनानुजशतोन्मूलनप्रभञ्जनस्य दुःशासनोरःस्थलविदलन-नरसिंहस्य दुर्योधनोरुस्तम्भभंगविनिश्चितविजयस्य बलिनः प्राभञ्जनेर्वृकोदरस्य स्नेहपक्षपातिना मनसा मंगलानि कर्तुमाज्ञा-पयति देवो युधिष्ठिरः । (आकाशे) किं ब्रूथ-सर्वतोऽधिकतरमपि प्रवृत्तं किं नालोकयसि इति । साधु, पुत्रकाः, साधु । अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम् ।

युधिष्ठिरः—आर्य जयंधर !

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—गच्छ प्रियख्यापकं पाञ्चालकं पारितोषिकेण परितोषय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः (इति पाञ्चालकेन सह निष्क्रान्तः ।) ।

द्रौपदी--(अश्रुधारा के साथ) जो कुछ भगवान् त्रिलोकीनाथ कर रहे हैं वह अन्यथा (गलत) कैसे होगी !

पाञ्चालक--यह केवल आशीर्वचन ही नहीं, (अपितु) असुरों के विनाशक (श्रीकृष्ण) का आदेश भी है।

युधिष्ठिर—कौन (व्यक्ति) भगवान् कृष्ण के सन्देश के प्रति संशय अथवा तर्क-वितर्क कर सकता है ? अरे (क्या) कोई यहाँ है ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज ! आज्ञा दीजिये।

युधिष्ठिर—भगवान् कृष्ण के प्रति अत्यधिक आदर होने के कारण मेरे वत्स (भीमसेन) के विजयमङ्गल के लिये तदनुरूप समारोह प्रारम्भ कह दिये जायँ।

कञ्चुकी– जैसी महाराज की आज्ञा। (उत्साह के साथ घूमकर) हे हे विधि-विधानों के आचार्यों, श्रेष्ठता के क्रम से अन्तःपुर के कर्मचारियो और द्वारपालो, यह महाराज युधिष्ठिर स्नेहपूर्ण मन से भुज-बल रूपी जलयान (जहाज) से कौरवों द्वारा किये गये अपमानरूपी सागर को पार करने वाले, अतिकठिन प्रतिज्ञा के भार को निभा चुकने वाले, दुर्योधन के सौ भाइयों रूपी वृक्षों को उखाड़ फेंकने में आँधी (तूफान) के समान; दुःशासन के वक्षस्थल को विदीर्ण करने में नृसिंह के सदृश, दुर्योधन की जङ्घारूपी विशाल स्तम्भ को चूर्ण कर देने पर सुनिश्चित विजय वाले; अत्यन्त बली वायुपुत्र भीम के मङ्गल को मनाने का आदेश दे रहे हैं। (आकाश की ओर देखकर) क्या कह रहे हो ? सब ओर अत्यधिक किये गये भी मङ्गलकर्म को क्या देख नहीं रहे हो ? ठीक, पुत्रो ! ठीक। निश्चय ही बिना कहे हित करना ही हृदय-स्थित स्वामि-भक्ति को प्रकट करता है।

युधिष्ठिर—आर्य जयन्धर !

कञ्चुकी—आज्ञा दें महाराज।

युधिष्ठिर—जाओ, प्रिय सन्देश देने वाले पाञ्चालक को पारितोषिक देकर सन्तुष्ट करो।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर पाञ्चालक के साथ बाहर चला जाता है।)।

समासः—**भुजबलपरिक्षेपोत्तीर्णकौरवपरिभवसागरस्य** = भुजयोः बलेन परिक्षेपः—जलयानम् तेन उत्तीर्णः कौरवेभ्यो यः परिभवोऽवमानना स एव सागरः येन सः तस्य। **निर्व्यूढदुर्वहप्रतिज्ञाभारस्य** = निर्व्यूढः—नितरामूढः दुर्वहः-दुःखेन वोढुं शक्यः प्रतिज्ञारूपो भारो येन तस्य। **सुयोधनानुजशतोन्मूलनप्रभञ्जनस्य**=सुयोधनस्य अनुजानां शतस्य उन्मूलने प्रभञ्जनः, तस्य। **दुःशासनोरःस्थलविदलननरसिंहस्य**=दुःशासनस्य उरःस्थलं इति दुःशासनोरःस्थलम्, तस्य विदलने नरसिंहस्य। **दुर्योधनोरुस्तम्भभङ्गविनिश्चितविजयस्य**=दुर्योधनस्य उरुस्तम्भः इति दुर्योधनोरुस्तम्भः; तस्य भङ्गेन भङ्गे वा विनिश्चितः विजयः यस्य तस्य। **प्राभञ्जनेः**=प्रभञ्जनस्य वायो अपत्यं पुमान प्राभञ्जनिः, तस्य॥

टिप्पणियाँ—**संविधातृणाम्**=पुरोहित आदिकों का। **अन्तर्वेश्मिकाः**=अन्तःपुर के रक्षक, अन्तः पुर में आने जाने वाले कर्मचारियो। **दौवारिकाः**=द्वारपाल। **परिक्षेपः**=जिसके द्वारा पार किया जाता है अर्थात् जलयान। **परिभवः**=अपमान। **निर्व्यूढः**=किया गया हुआ, सम्पादित। **दुर्वहः**=अतिकठिन। **उन्मूलने**=विनाश करने में। **प्रभञ्जनस्य**=वायु के। **विदलने**=विदीर्ण करने में-फाड़ने में। **बलिनः**=पराक्रमी, वीर, बली। **प्राभञ्जनेः**=वायु के पुत्र-भीम। **जयन्धर**=कञ्चुकी का नाम है। **प्रियख्यापकम्**=अभीष्ट की सूचना देने वाले अथवा माङ्गलिक सन्देश को लाने वाले॥

द्रौपदी—महाराज! किं निमित्तं पुनर्नाथभीमसेनेन स दुराचारो भणितः—पञ्चानामप्यस्माकं मध्ये येन ते रोचते तेन सह ते सङ्ग्रामो भवतु इति। यदि माद्रीसुतयोरेकतरेण सह सङ्ग्रामस्तेन प्रार्थितो भवेत्ततोऽत्याहितं भवेत्। (महाराअ, किं णिमित्तं उण णाहभीमसेणेण सो दुराआरो भणिदो—पञ्चाणं वि अह्माणं मज्झे जेण दे रोअदि तेण सह दे संगामो होदु त्ति। जइ मद्दीसुदाणं एकदरेण सह संगामो तेण पत्थिदो भवे तदो अच्चाहिदं भवे।)।

युधिष्ठिरः--कृष्णे ! एवं मन्यते जरासंधघाती। हतसकलसुहृद्-बन्धुवीरानुजराजन्यासु कृपकृतवर्माश्वत्थामशेषास्वेकादशस्वक्षौहिणीष्वबान्धवः शरीरमात्रविभवः कदाचिदुत्सृष्टनिजाभिमानो धार्तराष्ट्रः परित्यजेदायुधं तपोवनं वा व्रजेत्सन्धिं वा पितृमुखेन याचेत। एवं सति सुदूरमतिक्रान्तः प्रतिज्ञाभारो भवेत्सकलरिपुजयस्येति। समरं प्रतिपत्तुं पञ्चानामपि पाण्डवानामेकस्यापि नैव क्षमः सुयोधनः शङ्के चाहं गदायुद्धं वृकोदरस्यैवानेन। अयि सुक्षत्रिये ! पश्य--

क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः
कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि।
स्वस्त्यस्तूद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय वत्साय मे
शङ्के तस्य सुयोधनेन समरं नैवेतरेषामहम् ॥१३॥

द्रौपदी--महाराज ! किस कारण से स्वामी भीमसेन ने उस दुराचारी (दुर्योधन) से यह कहा-"हम पाँचों में से जिसके साथ (युद्ध करना) तुमको रुचिकर हो, उसी के साथ तुम्हारा युद्ध होगा।" यदि माद्री के पुत्रों (नकुल तथा सहदेव) में किसी एक के साथ यदि उसने युद्ध की इच्छा की होती तो बड़ा अनर्थ हो जाता।

युधिष्ठिर--हे द्रौपदी ! जरासंध को मारने वाले भीमसेन ने ऐसा माना होगा—"ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं में,-जिनमें सब मित्र, बन्धु, वीर, भाई एवं राजसमूह मारे जा चुके हैं, केवल कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा ही शेष बचे हैं, बान्धवहीन धृतराष्ट्र का पुत्र (दुर्योधन), जिसका शरीर-मात्र ही विभव शेष है, कदाचित् अपने अभिमान का त्यागकर शस्त्र त्याग दे, अथवा तपोवन को चला जाय अथवा अपने पिता के मुख से सन्धि की प्रार्थना करे। ऐसा होने पर सभी शत्रुओं को जीतने की प्रतिज्ञा का निर्वाह बहुत दूर चला जायगा (अर्थात् पूर्ण न हो पायेगा)। दुर्योधन पाँचों पाण्डवों में से किसी एक के भी साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं है। मैं भीम के ही साथ इसके गदायुद्ध की आशङ्का करता हूँ। अरी वीर क्षत्राणी ! देखो--

अन्वयः— रणे क्रोधोद्गूर्णगदस्य मारुतेः सदृशः न अस्ति, सत्यम्, पुनः देवे सीरिणि यथा इयं कृतहस्तता कौरव्ये ? उद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय मे वत्साय स्वस्ति अस्तु, अहं सुयोधनेन तस्य समरं शङ्के, इतरेषां नैव ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या--रणे = युद्धे, क्रोधोद्गूर्णगदस्य=क्रोधेन कोपेन उद्गूर्णा उद्यता गदा येन तस्य, क्रोधोत्थापितगदस्य, मारुतेः=वायुपुत्रस्य भीमस्य, सदृशः=तुल्यः, न अस्ति=कोऽपि नास्ति, इति सत्यम् । पुनः=किन्तु, देवे=भगवति, सीरिणि=बलरामे, यथा=इव, इयम्=एषा, कृतहस्तता=हस्तकौशलम्-अस्त्रसञ्चालनलाघवमित्यर्थः, कौरव्ये=दुर्योधने, विद्यते इति शेषः; उद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय=उद्धतः उद्दण्डः यः धार्तराष्ट्रः-दुर्योधनः सैव नलिनी-कमललता तस्यै नागः गजराजः तस्यै मे=मम, वत्साय=अनुजाय भीमाय, स्वस्ति=कल्याणम्, अस्तु=भवतु । अहम्=युधिष्ठिरः, सुयोधनेन=दुर्योधनेन सह, तस्य=भीमस्य, समरन्=गदायुद्धम्, शङ्के, इतरेषाम्, नैव, शङ्के ॥ १३ ॥

हिन्दी-अनुवाद--रणे=युद्ध में, क्रोधोद्गूर्णगदस्य=क्रोध के साथ उठाई गई गदा वाले, मारुतेः=वायुपुत्र भीम के, सदृशः=समान (कोई दूसरा) नास्ति=नहीं है, इति सत्यम्=यह सत्य है । पुनः=किन्तु, देवे=ऐश्वर्यशाली, सीरिणि=बलराम के, यथा=समान, इयम्=यह (गदाचलाने सम्बन्धी), कृतहस्तता=चतुरता, हस्तकौशल, कौरव्ये=दुर्योधन में विद्यमान है। उद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय=उद्दण्ड दुर्योधनरूपी कमललता के लिये गजराज के समान, मे=मुझ युधिष्ठिर के, वत्साय=प्रिय छोटे भाई भीम का, स्वस्ति=कल्याण, अस्तु=होवे । अहम्=मैं, सुयोधनेन=दुर्योधन के साथ, तस्य=उस (भीम) के, समरम्=गदायुद्ध की, शङ्के=आशङ्का करता हूँ। इतरेषाम्=अन्य किसी की, नैव=नहीं ॥ १३ ॥

भावार्थ—यद्यपि यह सही है कि गदा को उठाकर युद्ध में विचरण करने वाले भीमसेन के सदृश कोई अन्य योद्धा नहीं है । किन्तु दुर्योधन भी गदायुद्ध में भगवान् बलराम के ही समान अत्यन्त निपुण है । [कहने का

अभिप्राय यह है कि दुर्योधन का जोड़ भीमसेन से ही है। कोई अन्य उसकी समानता नहीं कर सकता है।]। धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन रूपी कमललता के लिये साक्षात् गजराज के तुल्य मेरे प्रिय अनुज भीम का भगवान् कल्याण करें। उसी के साथ दुर्योधन का युद्ध हो रहा है, ऐसा मैं सोचता हूँ क्योंकि किसी अन्य के साथ वह कभी युद्ध को स्वीकार कर ही नहीं सकता है। (योद्धा अथवा पहलवान अपने जोड़ में आने वाले योद्धा अथवा पहलवान से ही युद्ध किया करता है, अपने से न्यून के साथ नहीं।)।

अलङ्कार--इस पद्य के द्वितीय चरण में उपमा तथा तृतीयचरण में 'रूपक' अलंकार है।

छन्द--इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

समासः--हतसकलसुहृद्बन्धुवीरानुजराजन्यासु=हताः सकलाः सुहृदः बान्धवाः वीराः अनुजाः राजन्याः यासां तासु। **शरीरमात्रविभवः**=शरीरमात्रं विभवः-संपत्तिः यस्य सः। **क्रोधोद्गूर्णगदस्य**=क्रोधेन उद्गूर्णा गदा येन स, तस्य। **कृतहस्तता**=कृतः शस्त्रविक्षेपणे अभ्यस्तः हस्तः यस्य स कृतहस्तः तस्य भावः कृतहस्तता। **उद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय**-उद्धता-दृप्ता धार्तराष्ट्रा एव नलिन्यः येन स चासौ नागः, तस्मै ॥ १३ ॥

टिप्पणियाँ--**दुराचारः**=पापी, बुरे आचरण वाला। **प्रार्थितः**=याचित। **अत्याहितम्**=अनर्थ, गड़बड़। **राजन्याः**=क्षत्रिय। **विभवः**=ऐश्वर्य सम्पत्ति। **उत्सृष्टः**=त्यक्त, छोड़ा गया हुआ। **प्रतिपत्तुम्**=जीतने के लिये। **क्षमः**=समर्थ। **उद्गूर्णा**=ऊपर उठाई गई हुई। **कृतहस्तता**=अस्त्र, शस्त्र गदा आदि के चलाने का अभ्यास। **सीरिणि**=बलराम के। **इतरेषाम्**=अन्यों का, दूसरों का ॥ १३ ॥

(नेपथ्ये)

तृषितोऽस्मि भोस्तृषितोऽस्मि। संभावयतु कश्चित्सलिलच्छायासंप्रदानेन माम्।

युधिष्ठिरः—(आकर्ण्य) का कोऽत्र भो ?

(प्रविश्य)

कञ्चुकी— आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—ज्ञायतां किमेतत् ?

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) देव ! क्षुन्मानतिथिरुपस्थितः ।

युधिष्ठिरः—शीघ्रं प्रवेश ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति मुनिवेषधारी चार्वाको नाम राक्षसः ।)

राक्षसः—(आत्मगतम्) एषोऽस्मि चार्वाको नाम राक्षसः । सुयोधनस्य मित्रं पाण्डवान्वञ्चयितुं भ्रमामि । (प्रकाशम्) तृषितोऽस्मि । संभावयतु मां कश्चिज्जलच्छायाप्रदानेन । (इति राज्ञः समीपमुपसर्पति ।)

(सर्वं उत्तिष्ठन्ति ।)

युधिष्ठिरः—मुने ! अभिवादये ।

राक्षसः—अकालोऽयं समुदाचारस्य । जलप्रदानेन संभावयतु माम ।

युधिष्ठिरः —मुने ! इदमासनम् । उपविश्यताम् ।

राक्षसः—[उपविश्य] ननु भवतापि क्रियतामासनपरिग्रहः ।

युधिष्ठिरः—[उपविश्य] कः कोऽत्र भोः । सलिलमुपनय ।

(पर्दे के पीछे से)

मैं प्यासा हूँ, अरे मैं प्यासा हूँ । कोई जल एवं छाया देकर मुझे अनुगृहीत करे ।

युधिष्ठिर—(सुनकर) अरे यहाँ कौन है ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज ! आज्ञा दीजिये ।

युधिष्ठिर —पता लगाओ, यह क्या है ?

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । (ऐसा कहकर, बाहर निकलकर, पुनः प्रवेश करके) ।

महाराज ! कोई भूखा, प्यासा अतिथि आया है ।

युधिष्ठिर—शीघ्र उसे प्रवेश कराओ ।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । (यह कहकर बाहर चला गया) ।

(तदनन्तर मुनिवेश को धारण किये हुए चार्वाक नामक राक्षस, प्रवेश करता है ।)

राक्षस—(अपने मन में) यह मैं चार्वाक नामक राक्षस, दुर्योधन का मित्र हूँ । मैं पाण्डवों को छलने के लिए घूम रहा हूँ । (प्रकटरूप में) प्यासा हूँ । अनुगृहीत करें, मुझे कोई पानी और छाया देकर । (ऐसा कहकर राजा के समीप जाता है ।) ।

(सभी उठ खड़े होते हैं ।)

युधिष्ठिर—हे मुनि ! मैं (आपका) अभिवादन करता हूँ ।

राक्षस—यह शिष्टाचार का समय नहीं है । जल देकर मुझे अनुगृहीत कीजिये ।

युधिष्ठिर—हे मुनि ! यह आसन है । बैठिये ।

राक्षस—(बैठकर) अब आप भी तो आसन ग्रहण कीजिए ।

युधिष्ठिर—(बैठकर) अरे, कोई यहां है ? जल लाओ ।

टिप्पणियां—संभावयतु=अनुगृहीत करें । क्षुण्मान्=भूख से व्याकुल । अकालः=अनवसर । समुदाचारस्य=शिष्टाचार का ।

(प्रविश्य गृहीतभृंगारः)

कञ्चुकी—(उपसृत्य) महाराज ! शिशिरसुरभिसलिलसम्पूर्णोऽयं भृंगारः पात्रभाजनं चेदम् ।

युधिष्ठिरः—मुने निर्वर्त्यतामुदन्याप्रतिकारः ।

राक्षसः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्यन्विचिन्त्य) भोः क्षत्रियस्त्व-मिति मन्ये ।

युधिष्ठिरः—सम्यग्वेदी भवान् । क्षत्रिय एवास्मि ।

राक्षसः—सुलभश्च स्वजनविनाशः संग्रामेषु प्रतिदिनमतो नादेयं भवद्भ्यो जलादिकम् । भवतु । छाययैवानया सरस्वतीशिशिरतरङ्ग-स्पृशा मरुता चानेन विगतक्लमो भविष्यामि ।

द्रौपदी--बुद्धिमतिके ! वीजय महर्षिमनेन तालवृन्तेन। (बुद्धिमदिए, वीएहि महेसिं इमिणा तालविन्तेण ।) ।

(चेटी तथा करोति ।)

राक्षसः—भवति ! अनुचितोऽयमस्मासु समुदाचारः ।

युधिष्ठिरः —मुने ! कथय कथमेवं भवान्परिश्रान्तः ।

राक्षसः—मुनिजनसुलभेन कौतूहलेन तत्रभवतां महाक्षत्रियाणां द्वन्दयुद्धमवलोकयितुं पर्यटामि समन्तपञ्चकम्। अद्य तु बलवत्तया शरदातपस्यापर्याप्तमेवावलोक्य गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयोरागतोऽस्मि।

(सर्वे विषादं नाटयन्ति ।)

कञ्चुकी--मुने ! न खल्वेवम् । भीमसुयोधनयोरिति कथय ।

राक्षसः—आः अविदितवृत्तान्त एव कथं मामाक्षिपसि ।

युधिष्ठिरः--महर्षे ! कथय कथय ।

राक्षसः--क्षणमात्रं विश्रम्य सर्वं कथयामि भवतो न पुनरस्य वृद्धस्य ।

युधिष्ठिरः--कथय किमर्जुनसुयोधनयोरिति ।

राक्षसः—ननु पूर्वमेव कथितं मया प्रवृत्तं गदायुद्धमिति ।

युधिष्ठिरः--न भीमसुयोधनयोरिति ।

राक्षसः—वृत्तं तद् ।

(जलपात्र (सुराही) लिए हुए प्रवेश करके)

कञ्चुकी--(समीप आकर) महाराज ! यह शीतल और सुगन्धित जल से पूर्ण सुराही है और यह है पीने का पात्र ।

युधिष्ठिर—मुने ! प्यास का प्रतीकार कीजिये (अर्थात् हमारी प्यास को शान्त कीजिये) :

राक्षस--(पैरों को धोकर, आचमन करते हुए, सोचकर) अरे, मैं समझता हूँ कि तुम क्षत्रिय हो ।

युधिष्ठिर—आप ठीक समझ रहे हैं, क्षत्रिय हूँ ।

राक्षस—युद्ध में प्रतिदिन स्वजनों का मरण सुलभ है। अतः आपसे जल आदि का ग्रहण नहीं करना चाहिए (अर्थात् आपका जल नहीं पीना चाहिए।) अच्छा। इस छाया से तथा सरस्वती (नदी) की शीतल तरङ्गों को छूने वाले उस वायु से ही अपनी थकावट दूर कर लूँगा।

द्रौपदी—(दासी से) अरी बुद्धिमतिके! ताड़के इस पंखे से मुनि के ऊपर हवा करो।

(दासी वैसा करती है।)

राक्षस—श्रीमती जी! हम लोगों के प्रति इस प्रकार का (स्त्रियों द्वारा पंखा से हवा करना आदि) शिष्टाचार उचित नहीं है (क्योंकि सन्यासी किसी स्त्री से सेवा नहीं कराया करता है।)।

युधिष्ठिर—हे मुनि जी! बतलाइए कि आप इतने अधिक क्यों थक गये हैं?

राक्षस—मुनि-जन-सुलभ उत्सुकता के कारण मैं महान क्षत्रियों का द्वन्द युद्ध देखने के लिए समन्तपञ्चक में घूम रहा हूँ। आज तो शरद् ऋतु की धूप के तेज होने के कारण अर्जुन तथा सुयोधन के गदायुद्ध को अधूरा ही देखकर चला आया हूँ।

(सभी दुःख का अभिनय करते हैं।)

कञ्चुकी—मुने! ऐसा नहीं है। भीम और सुयोधन का (गदा-युद्ध) ऐसा कहिये।

राक्षस—आह! विना वृत्तान्त जाने ही मुझ पर आक्षेप क्यों कर रहे हो?

युधिष्ठिर—महर्षे! कहिये, कहिये।

राक्षस—क्षणभर विश्रामकर आपसे सब कहूँगा किन्तु इस वृद्ध से नहीं।

युधिष्ठिर—कहिये अर्जुन और सुयोधन का क्या (हुआ)?

राक्षस—मैंने तो पहले ही बतला दिया कि (उन दोनों का) गदा-युद्ध चल रहा था।

युधिष्ठिर—भीम और सुयोधन का नहीं?

राक्षस—वह (तो सम्पन्न) हो चुका।

समासः--उदन्याप्रतिकारः—उदन्या-जलस्येच्छा पिपासा-इति यावत् तस्याः प्रतिकारः। सरस्वतीशिशिरतरंगस्पृशा=सरस्वत्याः शिशिराः-शीतलाः ये तरङ्गाः तान स्पृशतीति तेन। विगतक्लमः=विगतः श्रमः यस्य तादृशः।

टिप्पणियाँ—उदन्याप्रतीकारः=प्यास की शान्ति। "उदन्या तु पिपासा तृट्" इत्यमरः। 'निर्वर्त्यताम् = कीजिये। उपस्पृशन्-आचमन करते हुए-पान करते हुए। सम्यग्वेत्ता=भलीभांति जानकर। शिशिराः-शीतल। तालवृन्तेन-ताड़ के पंखे से। अथवा पंखा--"व्यजनं तालवृन्तकम्" इत्यमरः। समुदाचारः=व्यवहार। अस्मासु-हमारे जैसे विरक्त मुनि के प्रति। शरदातपस्यः-शरत्कालीन धूप के। अपर्याप्तम् = असमाप्त। आक्षिपसि=आक्षेप करते हो, टोंक रहे हो वृत्तम् -हो चुका।

[युधिष्ठिरो द्रौपदी च मोहमुपगतौ]

कञ्चुकी—[सलिलेनासिच्य] समाश्वसितु देवो देवी च।

चेटी-समाश्वसितु समाश्वसितु देवी (समस्ससदु समस्ससदुदेवी)।

(उभौ संज्ञां लभेते)

युधिष्ठिरः-किं कथयसि मुने ! वृत्तं भीमसुयोधनयोर्गदायुद्धमिति।

द्रौपदी—भगवन् ! कथय कथय किं वृत्तमिति ? (भअवं कहेहि कहेहि किं वुत्तं त्ति।)।

राक्षसः—कञ्चुकिन् ! कौ पुनरेतौ !

कञ्चुकी-ब्रह्मन् ! एष देवो युधिष्ठिर इयमपि पाञ्चाल-राजतनया।

राक्षसः—आः दारुणमुपक्रान्तं मया नृशंसेन।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन। (इति मोहमुपगता) (हा णाह, भीमसेण)।

कञ्चुकी--किं नाम कथितम् ?

चेटी--समाश्वसितु समाश्वसितु देवी। (समस्ससदु समस्ससदु देवी)।

युधिष्ठिर--(सास्रम्) ब्रह्मन् !

पदे संदिग्धं एवास्मिन्दुःखमास्ते युधिष्ठिरः ।
वत्सस्य निश्चिते तत्त्वे प्राणत्यागादयं सुखी ॥ १४ ॥

(युधिष्ठिर तथा द्रौपदी (दोनों) मूर्च्छित हो जाते हैं ।)

कञ्चुकी—(जल छिड़कर) महाराज और महारानी धैर्य धारण करें ।

चेटी—महारानी, धैर्यधारण करें, धैर्य धारण करें ।

(दोनों चेतना प्राप्त करते हैं ।)

युधिष्ठिर--मुनि, क्या कह रहे हो ? कि भीम और सुयोधन का गदायुद्ध समाप्त हो चुका ।

द्रौपदी—भगवन् ! बतलाइये, बतलाइये क्या हुवा ?

राक्षसः—हे कञ्चुकिन् ! ये दोनों कौन हैं ?

कञ्चुकी--ब्रह्मन् ! यह महाराज युधिष्ठिर हैं और यह पाञ्चाल की राजकुमारी-द्रौपदी ।

राक्षस—आह, मुझ निर्दय ने हृदय-विदारक (प्रसङ्ग) प्रारम्भ कर दिया ।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन ! (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है ।)

कञ्चुकी—आपने क्या कहा ?

चेटी—धैर्य रखिये महारानी, धैर्य रखिये ।

युधिष्ठिर—(आंसू भरकर) ब्रह्मन् !

अन्वयः—अस्मिन् सन्दिग्धे पदे एव युधिष्ठिरः दुःखं अस्ति । वत्सस्य तत्वे निश्चिते अयं प्राणत्यागात् सुखी ॥ १४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन्=एतस्मिन्, सन्दिग्धे=सन्देह युक्ते, पदे=वचने, युधिष्टिरः=अहम्, दुःखम्=पीडाम्, आस्ते=अनुभवामीत्यर्थः । वत्सस्य=अनुजस्य प्रियस्य भीमस्य, तत्वे=यथार्थे-मरणे, निश्चिते=निर्णीते तु, अयम्=एषः-युधिष्ठिर इत्यर्थः; प्राणत्यागात्=प्राणमोक्षणात्-मरणात्, सुखी=दुःखरहितः भविष्यतीतिशेषः । भीमे मृते सति अहं जीवितु न शक्नोमीत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

भीमे मृते सति अहं जीवितुं न शक्तोमीत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—अस्मिन्=इस, सन्दिग्धे पदे=सन्देहपूर्ण वाक्य से, एव=ही, युधिष्ठिरः=युधिष्ठिर, दुःखम्=दुःख का, आस्ते=अनुभव करता है। वत्सस्य=प्रिय भीम के, तत्त्वे=मरण के, निश्चिते=निश्चित हो जाने पर, अयम्=यह युधिष्ठिर, प्राणत्यागात्=प्राणों का त्यागकर देने से, सुखी=सुखी हो जायगा ॥ १४ ॥

भावार्थ.—आपके इस सन्देहपूर्ण वचन को सुनकर ही मुझे दुःख हो रहा है। यदि प्रियभीम के विषय में कुछ (मृत्यु का) निश्चय हो जाय तो फिर इन प्राणों का त्यागकर मैं सुखी होऊँगा ॥ १४ ॥

छन्द—उपर्युक्त पद्य में 'पथ्यावक्त्र' छन्द है।

टिप्पणयाँ—उपक्रान्तम्=प्रारम्भ कर दिया। नृशंसेन=क्रूरमैंने। तत्त्वे=यथार्थता के-मरण के। निश्चिते=निश्चित हो जाने पर ॥ १४ ॥

राक्षसः—(सानन्दमात्मगतम्) अत्रैव मे यत्नः (प्रकाशम्) यदि त्ववश्य कथनीयं तथा संक्षेपतः कथयामि। न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम्।

युधिष्ठिरः—(अश्रूणि मुञ्चन्)

सर्वथा कथय ब्रह्मन्संक्षेपाद्विस्तरेण वा।
वत्सस्य किमपि श्रोतुमेष दत्तः क्षणो मया ॥ १५॥

राक्षसः—(आनन्द के साथ मन ही मन) इसी में मेरा प्रयत्न है (कि तुम अपना प्राण त्याग दो।)। (प्रकटरूप में) यदि अवश्य कहना ही है तो संक्षेप में कहता हूँ। भाई की विपत्ति को विस्तार से कहना उचित नहीं है।

युधिष्ठिर—(आँसू बहाते हुये)

अन्वय—हे ब्रह्मन्! संक्षेपात वा विस्तरेण सर्वथा कथय, वत्सस्य किमपि श्रोतुं मया एषः क्षणः दत्तः ॥ १५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे ब्रह्मन्!-हे ब्राह्मण!, संक्षेपात्=स्वल्पवचसा, वा=अथवा, विस्तरेण=अधिक वचसा, सर्वथा=सर्वप्रकारेण, कथय=ब्रूहि,

वत्सस्य=अनुजस्य भीमस्य विषये, किमपि=किञ्चिदपि=इष्टमनिष्टं वा, श्रोतुम्=आकर्णयितुम्, मया=युधिष्ठिरेण, एषः=अयम्, क्षणः=समय, दत्तः=प्रदत्तः। यत्किञ्चिदपि वक्तव्यमस्ति तद्ब्रूहि, अहं तु कठोरहृदयः श्रोष्याम्येव ॥ १५ ॥

हिन्दी-अनुवाद--हे ब्रह्मन् !=हे ब्राह्मण !, संक्षेपात् संक्षेप से, वा=अथवा विस्तारेण=विस्तार से, सर्वथा=सब प्रकार से कथय=कहो, वत्सस्य=छोटे भाई प्रिय, भीम के बारे में, किमपि=कुछ भी (प्रिय अथवा अप्रिय) श्रोतुम्=सुनने के लिये, मया=मैंने, एषः=यह, क्षणः=क्षण, समय, दत्तः=दे दिया है ॥ १५ ॥

भावार्थः--हे ब्रह्मन् ! संक्षेप से अथवा विस्तार से जैसे भी आपको कहना हो आप कहिये। अपने प्रिय अनुज भीम के बारे में मैं सब कुछ (मृत्यु की बात तक भी) सुनने को तय्यार हूं ॥ १५ ॥

टिप्पणियां:--व्यसनम्=आपत्ति, विपत्ति। आवेदयितुम्=आवेदन करने के लिये-कहने के लिये। मुञ्चान्=छोड़ते हुये। संक्षेपात्=थोड़े से ही शब्दो द्वारा। विस्तरेण=अधिक शब्दों द्वारा, विस्तार से ॥ १५ ॥

राक्षसः--श्रूयताम्--

तस्मिन् कौरवभीमयोर्गुरुगदाघोरध्वनौ संयुगे

द्रौपदी:--(सहसोत्थाय) तदस्तदः (तदो तदो।)।

राक्षसः--(स्वगतम्) कथं पुनरनयोर्लब्ध संज्ञतामपनयामि।

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः सङ्गरः।
आलम्ब्य प्रियशिष्यतां हलिना संज्ञा रहस्याहिता
यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः ॥१६॥

राक्षस—सुनिये—

अन्वयः—कौरवभीमयोः गुरुगदाघोरध्वनौ तस्मिन् संयुगे--

संस्कृत-व्याख्या--कौरवभीमयोः=दुर्योधनभीमयोः, गुरुगदाभीमध्वनौ=गुर्वी-महती चासौ गदा तस्य भीमध्वनिः विकटशब्दः यस्मिन् तादृशे, तस्मिन्=तादृशे-अभूत-पूर्व-इत्यर्थः, संयुगे=युद्धे सञ्जाते--

हिन्दी-अनुवाद—कौरवभीमयोः=दुर्योधन और भीम के, गुरुगदाभीमध्वनौ=भारी गदाओं की भयङ्करध्वनि से युक्त, तस्मिन्=उस, संयुगे=युद्ध के होने पर—

भावार्थः—दुर्योधन और भीम की भारी गदाओं की भयंकर ध्वनि से युक्त उस युद्ध के होने पर—

द्रौपदी—(एकाएक ही उठकर) उसके पश्चात्, उसके पश्चात् (क्या हुआ ?) ।

राक्षस—(मन ही मन) फिर इन लोगों की प्राप्त हुई चेतना को किस प्रकार दूर करूँ (अर्थात् पुनः इन लोगों को किस प्रकार मूच्छित करूँ ?)।

अन्वयः—सीरी सत्वरं, आगतः, तस्य अग्रतः चिरं संगरः अभूत्। तु हलिना प्रियशिष्यतां आलम्ब्य रहसि संज्ञा आहिता यां आसाद्य कुरूत्तमः दुःशासनारौ प्रतिकृतिं गतः ॥ १६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—सीरी=बलरामः, सत्वरम्=शीघ्रम्, आगतः=तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रमन् कुरुक्षेत्रमागतः। तस्य=बलरामस्य, अग्रतः=पुरतः समक्षं वा, (तयोः) चिरम्=चिरकालपर्यन्तम्, सङ्गरः=युद्धम्, अभूत्=जातः। तु=किन्तु, हलिना=हलधरेण बलरामेणेत्यर्थः, प्रियशिष्यताम्=प्रियः शिष्यो यस्येति प्रियशिष्यः तस्य भावः प्रियशिष्यता, ताम् दुर्योधन प्रियताम्, आलम्ब्य=स्वीकृत्य, रहसि=एकान्ते, संज्ञा=सङ्केतः, आहिता=दत्ता; याम्=संज्ञामित्यर्थः, आसाद्य=प्राप्य, कुरूत्तमः=कौरवश्रेष्ठः दुर्योधनः, दुःशासनारौ=भीमे, प्रतिकृतिम्=प्रतीकारं—दुःशासनवधप्रतीकारमित्यर्थः, गतः=यातः ॥ दुर्योधनः भीमं जघान—इत्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—सीरी=बलराम, सत्वरम्=शीघ्र, आगतः=आगये। तस्य=उनके, अग्रतः=समक्ष, चिरम्=पर्याप्तसमय तक, उन दोनों का, सङ्गरः=युद्ध, अभूत्=हुआ। तु=किन्तु, हलिना=बलराम ने, प्रियशिष्यताम्=शिष्य (दुर्योधन) का, आलम्ब्य=अवलम्बन कर-पक्षपात करके, रहसि=एकान्त में, संज्ञा=संकेत, आहिता=कर दिया। याम्=जिस संकेत को,

आसाद्य=पाकर, कुरूत्तमः=कुरुराज दुर्योधन ने, दुःशासनारी=दुःशासन के शत्रु भीम के ऊपर, प्रतिकृतिम्=प्रतीकार अथवा प्रतिशोधको, गतः=प्राप्त कर लिया। दुर्योधन ने भीम को मार डाला यह भाव है ॥ १६ ॥

भावार्थः—(युद्ध होने पर) घूमते-घामते बलराम जी वहाँ आगये। उनके समक्ष पर्याप्त समय तक उन दोनों का भीषण युद्ध हुआ। उस समय बलरामजी ने अपने प्रिय शिष्य दुर्योधन को कुछ गुप्त संकेत किया। उस आधार पर दुर्योधन ने भीमको पछाड़ दिया (मार दिया) ॥१६॥

छन्द—उपर्युक्त पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" छन्द है।

समास—कौरवभीमयो=कौरवश्च भीमश्चेति कौरवभीमौ, तयोः। गुरुगदाघोरध्वनौ=गुर्व्योः गदयोः घोरः ध्वनि यस्मिन् तादृशे। प्रियशिष्यताम्=प्रियः शिष्यो यस्येति प्रियशिष्यः, तस्य भावः, ताम्। कुरूत्तमः=कुरुषु उत्तमः इति ॥

टिप्पणियाँ—संयुगे=युद्ध में। लब्धसंज्ञताम्=प्राप्त हुई चेतना को। अपनयामि=दूर कर दूँ। सीरी=बलराम। अग्रतः=समक्ष, सामने। संगर=युद्ध। हलिना=हलधर-बलराम ने। प्रियशिष्यताम्=श्रीबलरामजी अपने समय में गदा-युद्ध के महान् आचार्य थे। दुर्योधन ने उन्हीं से गदा चलाने की विद्या को सीखा था। वह बलराम का एक योग्य शिष्य था। आलम्ब्य=स्वीकार करके। रहसि=एकान्त में। संज्ञा=चेतना। चेतनता को। आहिता=कर दिया। प्रतिकृतिम्=प्रतीकार बदला, प्रतिशोध। गतः=प्राप्त हो गया ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरः—हा वत्स वृकोदर! (इतिमोहमुपगतः।)।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन! हा मम परिभवप्रतीकारपरित्यक्त—जीवित! जटासुरबकहिडिम्बकिर्मीरकीचकजरासंधनिषूदन्! सौगन्धिकाहरणचाटुकार! देहि मे प्रतिवचनम्। इति मोहमुपगता। (हा णाह भीमसेण, हा मह परिभवपडिआरपरिच्चतजीविअ, जडासुरबअडिडिबकिम्मीरकीचअजरासंघणिसूदण, सोअन्धिआहरणचाटुआर, देहि मे पडिवअणम्।)

युधिष्ठिर—हाय वत्स भीमसेन ! (ऐसा कह कर मूच्छित हो जाता है।)

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन ! हाय मेरे अपमान का बदला लेने में प्राण-त्याग करने वाले ! जटासुर वकासुर, हिडिम्ब, किर्म्मीर, कीचक और जरासन्ध को मारने वाले ! मुझे प्रसन्न करने हेतु (गन्धमादन पर्वत पर से) सुन्दर कमल को लाने वाले ! मुझे उत्तर दीजिये। (ऐसा कह कर मूच्छित हो जाती है।)।

समासः—परिभवप्रतीकारपरित्यक्तजीवित !—पतिबस्य-तिरस्कारस्य प्रतीकारे परित्यक्तं जीवितं येन सः, तत्सम्बुद्धौ। सौगन्धिकाहरणचाटुकार !—सौगन्धिकस्य-स्वर्णकह्लारस्य आहरणं तदेव चाटु-प्रियं तत्करोतीति, तत्सम्बोधने॥

टिप्पणियाँ—निषूदनः—हन्ता, मारने बाला। जटासुर—इस नामका एक राक्षस था। जब गन्धमादन पर्वत पर स्थित पाण्डव स्वर्ग से वापिस आते हुए अर्जुन की प्रतीक्षा में संलग्न थे। तो उसी समय इस राक्षस ने ब्राह्मण का वेश धारण कर उनका आतिथ्य ग्रहण किया। इसी बीच किसी कार्यवश भीम बाहर चले गये। इधर यह ब्राह्मण वेषधारी राक्षस पाण्डवों के आभूषणों तथा शस्त्रों को लेकर और युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी को अपनी भुजाओं में लपेटकर वहाँ से भाग चला। दैवयोग से मार्ग में भीम से भेंट हो गयी। भीम ने इस राक्षस का हनन कर सभी का उद्धार किया म. भा. ब. प. अ. ॥१५६॥ बकासुर—लाक्षगृह से बच निकलने के पश्चात् पाण्डव एकचक्रा नगरी में एक वृद्धा विधवा के यहाँ कुछ काल तक रहे। इस स्थान पर बकासुर नाम का व्यक्ति प्रतिदिन बारी-बारी से एक-एक घर के एक-एक व्यक्ति को खा जाता था। इस वृद्धा विधवा के केवल एक ही पुत्र था और एक दिन उसकी भी बारी आगयी थी। वृद्धा विधवा अत्यन्त दुःखी, चिन्तित व व्यग्र थी। उसकी इस अवस्था को देखकर पाण्डवों की माँ कुन्ती का हृदय द्रवीभूत हो गया और उन्होने भीम को बकासुर के समीप भेजा। भीम ने उसका वधकर वृद्धा विधवा के एकमात्र पुत्र की रक्षा की। अन्य सभी का भय भी दूर हो गया॥ मः भा. आदि

प. अ. १५४-१५६ ।। किर्मीर—यह बकासुर का भाई था। अपने भाई बकासुर के हन्ता की खोज में घूमते हुये किर्मीर की पाण्डवों से काम्यक वन में भेंट हो गई। इसका भी युद्ध भीम के साथ हुआ और भीम ने इसको मार दिया ।। म. भा. व. प. अ.-११ ।। कीचक—यह राजा विराट का साला था। छिपे हुये रूप में पाण्डव राजाविराट के यहाँ अज्ञात-वास कर रहे थे। कीचक द्रौपदी पर मुग्ध हो गया था। अतएव उसने अपनी बहन को द्रौपदी को अपने समीप भेजने के लिये बाध्य किया था। एक दिन रात्रि में भीम ही द्रौपदी का वेश धारण कर उसके समीप पहुँचे तथा उसका वध कर दिया ।। म. भा. विराट. प. अ. १४-२२ ।।

जरासन्ध—इसके बारे में अंक १ के श्लोक सं० १० में लिखा जा चुका है। इसको भी भीम ने मारा था। सौगन्धिकाहरणचाटुकार—जब पाण्डवगण वन में निवास कर रहे थे तब एक दिन द्रौपदी ने उत्तर-पूर्व दिशा की ओर से आती हुई हवा के द्वारा बहाकर लाये एक अति सुन्दर सुगन्ध से परिपूर्ण कमल को पाया। उन्होंने उसी प्रकार के अनेक पुष्पों को लाने हेतु भीम से प्रार्थना की। जिस ओर से वायु आ रही थी, भीम उस ही ओर बढ़े। चलते-चलते उन्होंने कुवेर की अलकापुरी में विद्यमान एक बावड़ी में उन फूलों को प्राप्त किया। उन्हें लाकर उन्होंने द्रौपदी को प्रसन्न किया ।। म. भा. व. प. अ.-१४५-१५४ ।। प्रतिवचनम्—प्रत्युत्तर ।।

कञ्चुकी—(सास्रम) हा कुमार भीमसेन ! धार्तराष्ट्रकुलकमलिनी-प्रालेयवर्ष ! (ससंभ्रमम्) समाश्वसितु महाराजः। भद्रे। समाश्वासय स्वामिनीम्। महर्षे ! त्वमपि तावदाश्वासय महाराजम्।

राक्षसः—(स्वगतम्) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम्। (प्रकाशम्) भो भीमाग्रज ! क्षणमेकमाधीयतां समाश्वासः। कथाशेषोऽस्ति।

युधिष्ठिरः—(समाश्वस्य) महर्षे ! किमस्ति कथाशेषः।

द्रौपदी—(प्रतिबुध्य) भगवन् ! कथ्य कीदृशः कथाशेष इति।

(भअवं कहेहि कोदिसो कहासेसो त्ति ।)

कञ्चुकी--कथय कथय ।

राक्षसः--ततश्च हते तस्मिन्मुक्षत्रिये वीर सुलभा गतिमुपगते समप्रसंगलितं भ्रातृवध शोकजं वाष्पं प्रमृज्य भ्रातृवधशोकादपहाय गाण्डोवं प्रत्यप्रक्षतजच्छटाचर्चितां तामेव गदा भ्रातृहस्तादाकृष्य निवार्यमाणोऽपि संधित्सुना वासुदेवेन । आगच्छागच्छेति सोपहासं भ्रमितगदाझङ्कारमूर्च्छितगम्भीरंवचनध्वनिनाहूयमानः कौरवराजेन तृतीयोऽनुजस्ते किरीटी योद्धुमारब्धः । अक्रातनस्तस्य गदाघातान्नि-धनमुत्प्रेक्षमाणेन कामपालेनार्जुनपक्षपाती देवकीसूनुरतिप्रयत्नात्स्वरथमारोप्य द्वारकां नीतः ।

कञ्चुकी—(अश्रुधारा के साथ) हा ! कुमार भीमसेन ! धृतराष्ट्र के कुलरूपी कमललता के लिये हिम-वर्षा के समान ! (घबराहट के साथ) महाराज धैर्य धारणकरें । भद्रे ! (चेटी) स्वामिनी को धैर्य धारण कराइये । महर्षि जी ! आप भी महाराज को सान्त्वना प्रदान करें ।

राक्षस—(मन ही मन) प्राणों का त्याग कराने के लिये धैर्य बँधाता हूँ । (प्रकटरूप में) हे भीम के ज्येष्ठ भ्राता ! एक क्षण तक धैर्य धारण करो । (अभी कुछ) कहानी शेष है ।

युधिष्ठिर—(आश्वस्त होकर) हे महर्षे ! बतलाइये, क्या कहना शेष है ?

द्रौपदी—(चैतन्यता प्राप्त कर) भगवान् ! बतलाइये । कैसी कहानी शेष है ?

कञ्चुकी—कहिये, कहिये ।

राक्षस—तब उस वीर क्षत्रिय के मारे जाने तथा वीरोचित गति को प्राप्त कर लेने पर भाई वध के शोक से उत्पन्न, पूर्णरूप से बहते हुए अश्रु को पोंछकर, भाई के वध के शोक के कारण अपने धनुष (गाण्डीव) को छोड़कर, तत्काल बहते हुए रक्त की छटा से लिप्त उस ही गदा को भाई के हाथ से लेकर, सन्धि कर लेने की इच्छा रखने वाला श्रीकृष्ण द्वारा रोके जाने पर भी, घुमाई गई गदा की झंकार से बढ़ी हुई गंभीर वचनों की

ध्वनि से कौरवराज (दुर्योधन) के द्वारा हँसी के साथ 'आओ-आओ' कह कर ललकारे गये तुम्हारे तीसरे भाई, किरीट (मुकुट) धारण करने वाले अर्जुन ने युद्ध करना आरम्भ किया। गदा युद्ध में अनिपुण उस अर्जुन की गदा के प्रहार से मृत्यु की संभावना करने वाले बलराम के द्वारा अर्जुन के पक्षपाती देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रयत्न के साथ अपने रथपर बैठाकर द्वारका ले जाया गया।

समासः—**धार्तराष्ट्रकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष**=धार्तराष्ट्रकुलं एव कमलिनी तत्र प्रालेयस्य-हिमस्य वर्षः, तत्सम्बुद्धौ। **समग्रसंगलितम्**=समग्रं संगलितं-निसृतं, इति। **भ्रातृवधशोकजम्**—भ्रातुः (भीमस्य) वधः—इति भ्रातृवधः तेन यः शोकः तस्मात् जातम्। **प्रत्यग्रक्षतजच्छटार्चिताम्**—प्रत्यग्रं-नूतनं यत्क्षतजं-रक्तं तस्य छटया-समूहेन चर्चिताम्-लिप्ताम्। **भ्रमितगदाझङ्कारमूर्च्छितगम्भीरवचनध्वनिना**—भ्रमिता या गदा तस्याः झङ्कारेण मूर्च्छितः—वृद्धि प्राप्तः यः गम्भीरवचनध्वनिः तेन॥

टिप्पणियाँ—**वीरसुलभाम्**=वीरोचित। **उपगते**=प्राप्त होने पर। **संगलितम्**—निःसृत, निकला हुआ। **गाण्डीवमपहाय**=गाण्डीव का परित्याग कर। राक्षस ने अपने इस कथन में बड़ी ही चतुरता से काम लिया है। यदि वह यह कहता कि अर्जुन ने गाण्डीव के साथ दुर्योधन से युद्ध किया तो प्रत्येक व्यक्ति अर्जुन की ही विजय को निश्चित समझता क्योंकि गाण्डीव के साथ अर्जुन को हराने वाला तीनों लोकों में कोई भी न था। इस कारण उसने यही कहना उचित समझा कि उन्होंने गाण्डीव को छोड़ दिया और अपने भाई भीम की ही गदा से दुर्योधन के साथ युद्ध किया। **प्रत्यग्रम्**—नवीन, नूतन। **क्षतजम्**—(क्षतात् जातम्) घाव से उत्पन्न-निकला हुआ—अर्थात् रक्त। **संधित्सुना**=सन्धि करने की इच्छा रखने वाले। **झङ्कारेण**—ध्वनि से। **किरीटी**—अर्जुन। **अकृतिनः**—अकुशल। **निधनम्**—मरण। **उत्प्रेक्षमाणेन**=संभावना करते हुये। **कामपालेन**=बलराम के द्वारा—"रेवतीरमणो रामः काम पालः" इति हलायुधः। **आरोप्य**—बिठाकर। **नीतः**—ले गये॥

युधिष्ठिरः–साधु, भो अर्जुन ! तदैव प्रतिपन्ना वृकोदर पदवी गाण्डीवं परित्यजता ग्रहं पुनः केनोपयेन प्राणापगममहोत्सवमुत्सहिष्ये ।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन ! न युक्तमिदानीं ते कनीयासं भ्रातरमशिक्षितं गदायां दारुणस्य शत्रोरभिमुखं गच्छन्तमुपेक्षितुम् । (मोहमुपगता ।) (हा णाह भीमसेण, ण जुत्तं दाणिं दे कणीअसं भादरं असिक्खिंद गदाए दारुणस्स सत्तुणो अहिमुहं गच्छन्तं उवेक्खिदुम् ।

राक्षसः--ततश्चाहं ।

युधिष्ठिरः—भवतु मुने ! किमतः परं श्रुतेन ? हा तात भीमसेन ! कान्तारव्यसनबाधव ! हा मच्छरीरस्थितिविच्छेदकातर ! जतुगृहवित्समुद्तरणयानपात्र ! हा किर्मीरहिडिम्बासुरजरासंघविजयैकमल्ल; हा कीचकसुयोधनानुजकमलिनीकुञ्जर ! हा द्यूतपणप्रणयिन् । हा मदाज्ञासम्पादक । हा कौरववनदावानल ।

निर्लज्जस्य दुरोदरव्यसनिनो वत्स त्वया सा तदा
भक्त्या मे समदद्विपायुतबलेनाङ्गीकृता दासता ।
किं नामापकृतं मयाऽधिकमतस्त्वय्यद्य यद् गम्यते
त्यक्त्वाऽनाथमबान्धवं सपदि मां प्रीतिः क्व ते साधुना ॥१७॥

युधिष्ठिर—ठीक, अर्जुन, तुमने गाण्डीव का परित्याग करते हुये उसी समय (स्वर्ग को जाते हुये) भीम के माग का अनुसरण किया । किन्तु मैं किस उपाय द्वारा प्राणों का परित्यागरूप महोत्सव के लिए उत्साह करूँगा ?

द्रौपदी—हाय, नाथ भीमसेन ! अब गदा युद्ध में अनभ्यस्त, क्रूर शत्रु के समक्ष जाते हुए अपने छोटे भाई की उपेक्षा करनी उचित नहीं थी । (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है ।) ।

राक्षस—उसके बाद मैं ।

युधिष्ठिर—बस, हे मुनि ! इसके आगे सुनने से क्या लाभ ? हाय ! प्रिय भीमसेन, बनवासरूपी विपत्ति में सहायक, मेरे शरीर की स्थिति के भङ्ग होने से कातर, लाक्षागृह की विपत्तिरूपी समुद्र को पार करने में नौका-सदृश, हाय ! किर्मीर, हिडिम्ब, जरासन्ध को जीतने में अद्वितीय योद्धा, हाय ! कीचक एवं दुर्योधन के छोटे भाइयों रूपी कमलिनियों के लिए गजराज-तुल्य, हाय ! जुये में (मेरी) शर्त्त को स्वीकार कर लेने वाले, हाय ! मेरी आज्ञा को पूरी करने वाले, कौरवरूपी वन के वनाग्नि,

अन्वयः—हे वत्स ! दुरोदरव्यसनिनः निर्लज्जस्य मे भक्त्या समदद्विपायुतबलेन त्वया तदा सा दासता अङ्गीकृता, अद्य मया त्वयि अतः अधिकं किं नाम अपकृतम् यत् मां अनाथं अबान्धवं सपदि त्यक्त्वा गम्यते, अधुना ते सा प्रीतिः क्व ?

संस्कृत-व्याख्या—हे वत्स !=हे प्रियलघुभ्रातः !, दुरोदरव्यसनिनः-दुष्टं उदरं यस्य तत् दुरोदरम्-द्यूतम् तत्र व्यसनिनः-आसक्तिमतः, निर्लज्जस्य=निर्गता-दूरीभूता लज्जा यस्य तादृशस्य, मे=मम-युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, भक्त्या=श्रद्धया, समदद्विपायुतबलेन=समदाः-मदमत्ताः ये द्विपाः-गजाः; तेषां अयुतं-दशसहस्राणि तस्य यद्बलम् तत्तुल्यं बलं यस्य तेन, त्वया=भीमेन-इत्यर्थः, तदा-तदानीम्—द्यूतपराजयकाले इत्यर्थः, सा=तादृशी—अपमानयुक्ता, दासता=दासभावः, अङ्गीकृता=स्वीकृता, अद्य=अस्मिन् दिने, मया=युधिष्ठिरेण, त्वयि=भीमे, अतः=अस्मात्-वनवासदुःखात्-इत्यर्थः, अधिकम्, किनाम्-इति जिज्ञासायाम्, अपकृतम्=विरुद्धमाचरितम्, यत्=यतः: माम्=युधिष्ठिरम्, अनाथम्=रक्षकविहीनम्, अबान्धवम्,=स्वजनशून्यम्, सपदि=एकपदे एव, सहसा, त्यक्त्वा=विहाय, गम्यते=परलोकं गम्यते, अधुना=इदानीम्, ते=तव, सा=पूर्वानुभूता, प्रीतिः=भ्रातृस्नेहः, क्व=कुत्र गतेतिशेषः ।।१७।।

हिन्दी-अनुवाद—हे वत्स !=हे मेरे प्रिय छोटे भाई !, दुरोदरव्यसनिनः=जुए का व्यसनी, निर्लज्जस्य=लज्जाविहीन, मे=मेरे प्रति, भक्त्या=श्रद्धा के कारण, समदद्विपायुतबलेन=मदमस्त दस हजार हाथियों के समान बल को धारण करने वाले होकर, त्वया=तुम्हारे द्वारा, तदा—उस समय-

हरि शंकर चतुर्वेदी

(जुए में हारने के समय), सा=वह, दासता=दासता, अङ्गीकृता=स्वीकार कर ली गई थी। अद्य=आज, मया=मुझ युधिष्ठिर के द्वारा, त्वयि=तुम्हारे विषय में, अतः=इससे, अधिकम्=अधिक, किंनाम=कौन सा, अपकृतम्=अपकार किया गया, यत्=कि जो, माम्=मुझ युधिष्ठिर को, अनाथम्=रक्षकविहीन तथा अबान्धवम्=बन्धु से रहित को, सपदि=एकाएक, त्यक्त्वा=छोड़कर, गम्यते=चले जा रहे हो, अधुना=इस समय, ते=तुम्हारा, सा=वह, प्रीतिः=भ्रातृप्रेम, क्व=कहाँ, चला गया ? ॥ ७ ॥

भावार्थः—जब मैंने द्यूत के फन्दे में फँसकर निर्लज्जता पूर्वक तुमको बाजी पर लगा दिया था उस समय भी दसहजार हाथियों के बल के समान बलको धारण करने वाले तुमने प्रेमपूर्वक मेरी दासता ही स्वीकार की थी। अर्थात् इतनें महान् बली होने पर भी मेरे द्वारा जुए में दांव पर रखे जाकर तुमने मेरे आदेश का पालन ही किया था। अब इस समय मैंने उससे भी अधिक कौन सा ऐसा तुम्हारा अपकार किया है कि जिसके कारण रक्षकविहीन एवं बन्धुविहीन मुझ युधिष्ठिर को छोडकर (अर्थात् मुझे असहाय अवस्था में त्यागकर) तुम परलोक को चले जा रहे हो। बतलाओ कि मेरा क्या अपराध है ? अब तुम्हारा वह भ्रातृ स्नेह कहां चला गया ? ॥ १७ ॥

अलंकार—उक्त पद्य में विशेषणों के साभिप्राय होने के कारण परिकर' नामक अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

समासः—कान्तारव्यसनबान्धव !=कान्तारे यानि व्यसानि तेषुः बान्धवः, तत्सम्बुद्धौ। मच्छरीरास्थिविच्छेदकातर !=मम शरीरस्य स्थितिः-इति मच्छरीरस्थितिः, तस्य विच्छेदः तस्मात् कातरः, तत्सम्बुद्धौ। जतुगृहविपत्समुद्रतरणयानपात्र !=जतुगृहे या विपत् सा एव समुद्रः, तस्य तरणे यानपात्रम्, तत्सम्बुद्धौ। विजयैकमल्ल !=विजये एकः मल्लः-इति विजयैकमल्लः तत्सम्बुद्धौ। कीचकसुयोधनानुजकमलिनीकुञ्जर !=कीचकः सुयोधनानुजः एव कमलिनी, तस्यै कुञ्जरः, तत्सम्बुद्धौ। दुरोदरव्य-

सनिनः=दुष्टं उदरं यस्य तत् दुरोदरं-द्यूतं, तद् व्यसनं यस्य विद्यते स, तस्य। समदद्विपायुतबलेन=समदाः ये द्विपाः तेषां अयुतं, तस्य यद्बलं तत्तुल्यं बले यस्य, तेन ॥ १७ ॥

टिप्पणियाँ—प्रतिपन्ना=स्वीकार किया है। वृकोदरपदवी=जिस पदवी को भीम प्राप्त कर चुके हैं–अर्थात् परलोक का मार्ग। उत्साहयिष्ये=उत्साह करूँगा। दारुणस्य=क्रूर का। कान्तारे=वन में—अर्थात् वन में किये गये निवास के समय। व्यसनानि=दुःख, कष्ट। बान्धवः=सहायक। विच्छेदः = विनाश। शरीरस्थिति,=जीवन। जतुगृहम्=लाक्षागृह। यानपात्र=जहाज, पोत—"यानपात्रं तु पोतः" इत्यमरः। कीचकः=राजा विराट का साला। कुञ्जरः=गजराज, हस्तिराज। भक्त्या=प्रेम से, श्रद्धा से। दुरोदरम्=द्यूत, जुआ। तदधिकम्=उससे भी अधिक। वनवास के दुःख से भी अधिक। अपकृतम्=अपकार किया। सपदि=शीघ्र ही, एकाएक, सहसा ॥ १७ ॥

द्रौपदी—(संज्ञामुपलभ्योत्थाय च) महाराज। किमेतद्वर्तते ?

(महाराअ, किं एदं वट्टइ।)

युधिष्ठरः—कृष्णे। किमन्यत् ?

स कीचकनिषूदनो बकहिडिम्बकिर्मीरहा
मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः।
गदापरिघशोभिना भुजयुगेन तेनान्वितः
प्रियस्तव ममानुजोऽर्जुनगुरुर्गतोऽस्तं किल ॥ १८ ॥

द्रौपदी—(चेतना को प्राप्तकर तथा उठ कर) महाराज। यह क्या है?
युधिष्ठिर—हे द्रौपदी। और क्या—

अन्वयः—कीचकनिषूदनः बकहिडिम्बकिर्मीरहा मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः गदापरिघशोभिना तेन भुजयुगेन अन्वितः स तव प्रियः मम अनुजः अर्जुनगुरुः अस्तं गतः किल् ॥ १८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—कीचकनिषूदनः=कीचकस्य–एतन्नाम्नो राक्षसस्य, निषूदन : विनाशकः, बकहिडिम्बकिर्मीरहा=बकहिडिम्बकिर्मीरान् हन्तीति सः, मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः=मदेन अन्ध यो मगधाधिपः–जरासन्धः स एव महाबलत्वात् द्विरद इव--गजराजः तस्य सन्धिभेदे अशनिः–वनमिव—जरासन्धघातीत्यर्थः, गदापरिघशोभिना=गदैव परिघः तेन शोभते तच्छीलेन, गदापरिघशोभिना-गदापाणिना, तेन=अद्वितीयेनेत्यर्थः, भुजयुगेन=बाहुयुगलेन, अन्वितः=युक्तः, सः, तव=भवत्याः, प्रियः=अभीष्टसम्पादकत्वादभीष्ट, मम=युधिष्ठिरस्य, अनुजः=कनिष्ठभ्राता, अर्जुनगुरुः=अर्जुनज्येष्ठः–भीमसेनः, अस्तम्=नाशम्, गतः=यातः, किल-इति निश्चये ॥ १८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—कीचकनिषूदनः=कीचक का हनन करने वाला, बकहिडिम्बकिर्मीरहा=बकासुर, हिडिम्बासुर, किर्मीरासुर का वध करने वाला, मदान्धमगधाधिपद्विरमसन्धिभेदाशनिः=मदोन्मत्त मगध-नरेश (जरासन्ध) रूपी हाथी की हड्डियों के जोड़ों को तोड़ने में वज्र के सदृश, गदापरिघशोभिना=परिघसदृश गदा से सुशोभित, तेन=उस अद्वितीय एवं विख्यात भुजयुगेन=दोनों भुजाओं (बाहुओं) से, अन्वितः=युक्त, सः=वह, तव=आपका, प्रियः = प्रिय, मम=मेरा, अनुजः=छोटा भाई, अर्जुनगुरुः अर्जुन का बड़ा भाई, अस्तम्=अस्त को, गतः किल=निश्चय ही प्राप्त हो गया ॥१८॥

भावार्थ—कीचक को मारने वाला, बकासुर, हिडिम्बासुर और किर्मीर का वध कर्त्ता, मतवाले हाथी के सदृश मदोन्मत्त जरासन्ध की अस्थियों के जोड़ों को तोड़ने में वज्रतुल्य, परिघ सदृश गदा को धारण करने वाला, सुविख्यात भुजाओं वाला, तुम्हारा प्रियतम, मेरा छोटा भाई, अर्जुन का बड़ा भाई भीम समाप्त हो गया ॥ १८ ॥

अलङ्कारः—उक्त पद्य में 'लुप्तोपमा' अलङ्कार है ।

छन्द—इसमें 'पृथ्वी' छन्द है । लक्षण—"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः" ।

समासः—कीचकनिषूदनः=कीचकस्य निषूदन । मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः=मदान्धः यः मगधाधिपः स एव द्विरदः तस्य सन्धेः

भेदे अशनिः। गदापरिघशोभिना—गदा परिघ इव तेन शोभिना ॥ १८ ॥

टिप्पणियाँ—सन्धिभेदाशनिः=सन्धियों को तोड़ने में वज्र सदृश। अशनिः-वज्र। परिघशोभिना=परिघ नाम का एक शस्त्र था। जिसे अति-भयंकर माना जाता था। अन्वितः=युक्त। अर्जुनगुरुः = अर्जुन का बड़ा भाई (भीम) ॥ १८ ॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन। त्वया किल मे केशाः संयमितव्याः। न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम्। तत्प्रतिपालय मां यावदुपसर्पामि। (पुनर्मोहमुपगता) (णाह भीमसेण, तुए किल मे केसा संजमिदव्वा। ण जुत्तं वीरस्स खत्तिअस्स पडिण्णादं सिढिलेदुम्। ता पडिवालेहि मं जाव उवसप्पामि।)

युधिष्ठिरः—(आकाशे) अम्ब पृथे। श्रुतोऽयं तव पुत्रस्य समुदाचारः। मामेकमनाथं विलपन्तमुत्सृज्य क्वापि गतः। तात जरासंधशत्रो। किं नाम वैपरीत्यमेतावता कालेनाल्पायुषि त्वयि समालोकितं जनेन। अथवा मयैव बहूपलब्धम्।

> दृष्ट्वा मे करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे
>
> द्यूते यच्च पणीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे।
>
> स्थित्यर्थं मम मत्स्यराजभवने प्राप्तोऽसि यत्सूदतां
>
> वत्सैतानि विनश्वरस्य सहसा दृष्टानि चिह्नानि ते ॥१९॥

मुने! किं कथयसि? (तस्मिन्कौरवभीमयोः ६।१६ इत्यादि पठति।)

राक्षसः—एवमेतत्।

द्रौपदी—हे स्वामी भीमसेन! आपको तो मेरे केश बाँधने थे। वीर क्षत्रिय के लिये प्रतिज्ञा करके (उसे) शिथिल करना उचित नहीं। तो मैं आपके समीप आ रही हूँ, प्रतीक्षा कीजिये।

युधिष्ठिर—(आकाश की ओर देखकर) माँ कुन्ती! आपने अपने पुत्र का यह शिष्टाचार सुना? विलाप करते हुये मुझ अनाथ को अकेला छोड़कर

कहीं चला गया। हे तात! जरासन्ध के शत्रु! इतने दिनों में लोगों ने अल्पावस्था वाले तुममें कौनसा विरोधीभाव देखा था? अथवा मैंने ही अनेक वार (विरोधीभावों को) देखा था।

अन्वयः--करदीकृताखिलनृपां मेदिनीं मे दत्वा यत् लज्जसे मया द्यूते पणीकृतः अपि यत् च न क्रुध्यसि, हि प्रीयसे, मम स्थित्यर्थं मत्स्यराजभवने यत् सूदतां प्राप्तः असि, हे वत्स। विनश्वरस्य ते सहसा एतानि चिह्नानि दृष्टानि ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या-करदीकृताखिलनृपाम्=न करदाः-न शुल्कदाः अकरदाः, अकरदाः करदाः संपद्यमानाः कृताः इति-करदीकृताः (अधीनीकृताः इत्यर्थः) अखिलाः-सकलाः नृपाः-राजानः यस्याः सा ताम् करदीकृताखिलनृपाम्-वशीभूतरास्वप्रदानतत्पर सकलराजसमूहाम्, मेदिनीम्=पृथ्वीम्, मे=मह्यम्, दत्वा=प्रदायापि, यत्, लज्जसे=जिह्रेषि। ज्येष्ठभ्रात्रे मया पर्याप्तं न समर्पित-मिति मत्वा लज्जसे इति दत्तदेकं विनश्वरस्य ते चिह्नमित्यभिप्रायः। मया=युधिष्ठिरेण, द्यूते=अक्षवत्याम्, पणीकृतः=पणतया स्थापितोऽपि, यत् च, न क्रुध्यसि=न कुप्यसि, हि=प्रत्युत्, प्रीयसे=प्रीतोभवसि। मम=मे युधिष्ठिरस्य, स्थित्यर्थम्=प्रच्छन्न-निवासाय, मत्स्य राजभवने=मत्स्यराजस्य-राज्ञा विराटस्य, भवने-प्रासादे, यत्, सूदताम्=सूपकारताम्, प्राप्तः असि= स्वीकृतवानसि, हे वत्स ! हे प्रिय!, विनश्वरस्य-विनाशशीलस्य-अल्पायुषः, ते=तव, सहसा=अकस्मात्, एतानि=इमानि, चिह्नानि=विनयादिलक्षणानि, दृष्टानि=मया अवलोकितानि ॥१९॥

हिन्दी-अनुवाद—करदीकृताखिलनृपाम्=सम्पूर्ण राजाओं को कर देने वाला (अर्थात् आधीन) बनाकर, मेदिनीम्=पृथ्वी को, मे=मुझे, दत्वा=देकर, यत्=जो कि तुम लज्जासे=लज्जित होते थे। मया=मेरे द्वारा द्यूते=जुए में, पणीकृतः=दाँव पर लगा दिये जाने पर, अपि=भी, यत्=जो कि, न क्रुध्यसि= कुपित नहीं हुये, हि=प्रत्युत, प्रीयसे=प्रसन्न ही हुये थे, मम=मुझ युधिष्ठिर के, स्थित्यर्थम्=सम्मान के लिये, मत्स्यराजभवने=राजा विराट के भवन (महल) में, यत्=जो कि, सूदताम्=रसोइयापन को, प्राप्तः=प्राप्त किये,

असि=थे, हे वत्स !=हे प्रिय भाई, विनश्वरस्य=नष्ट होने वाले, ते=तुम्हारे, सहसा=एकाएक, एतानि=इन, चिन्हानि=विनय आदि चिन्हों अथवा लक्षणों को मैंने, दृष्टानि=देखा था ॥ १९ ॥

भावार्थः—सम्पूर्ण पृथ्वी के सभी राजाओं को अपने आधीन (अपना कर दाता) बनाकर सम्पूर्ण पृथ्वी को मुझे सौंपते हुए भी तुमको लज्जा का ही अनुभव हो रहा था कि मैंने बहुत थोड़ा ही लाकर बड़े भाई को दिया है। जुये में मेरे द्वारा दाँव पर लगादिये जाने तथा हार जाने पर भी तुम क्रोधित न होकर प्रसन्न ही हुये थे। मत्स्यराज राजा विराट के महल में रसोइया बनकर तथा छिपकर मेरे ही लिये तुमने निवास किया। हे प्रिय अनुज! ये सब तुम्हरे शीघ्र ही परलोक जाने के चिन्ह थे। (अधिक विनय, अल्पावस्था में ही अधिक विद्या, यश, बल आदि जिसे अल्प-आयु में ही उपलब्ध हो जाया करते हैं वह व्यक्ति अधिक समय तक जीवित नहीं रहा करता है।) ॥१९॥ हे मुनि! क्या कह रहे हो? ('तस्मिन्कौरव भीमयोः') इत्यादि ६।१६ श्लोक पढ़ता है।

राक्षस—यह ऐसा ही है (अर्थात् ऐसी ही बात हैं)।

छन्दः—उक्त पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

समासः—करदीकृताखिलनृपाम्=न करदाः अकरदाः करदाः संपद्यमानाः कृताः अखिलाः नृपाः यस्याः सा ताम्। मत्स्यराजभवने=मत्स्यराजस्य भवने ॥१९॥

टिप्पणियाँ—संयमितव्याः=बाँधने थे-जैसा करने के लिए आपने प्रतिज्ञा की थी वैसा आपको करना आवश्यक था। तुमस्वर्ग को चले गये। अतः उक्त प्रतिज्ञा की पूर्ति हेतु मुझे भी तुम्हारे ही समीप में होना चाहिए, इस दृष्टि से मैं भी आपके समीप आ रही हूँ। प्रतिपालय=प्रतीक्षा करो। उपसर्पामि=तुम्हारे समीप आती हूँ, समुदाचार=शिष्टाचार, व्यवहार। वैपरीत्यम्=आयुके अल्प होने के सूचक लक्षण। करदीकृताः=कर देने वाला कर दिया था। पणीकृतः=दाव पर लगा देने पर। एक बार जब युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ जुआ खेल रहे थे तो बीच में एक स्थल ऐसा आ

गया कि जिस पर दोनों में बाजी लग गई कि "इस दांव पर जो भी हारेगा वह जीतने वाले का दास बनेगा"। दुर्भाग्य से युधिष्ठिर की पराजय हुई। भीम अयत्न्त बली थे। यदि वे चाहते तो शत्रुओं का विनाश कर सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे बड़े भाई के प्रति पुर्ण श्रद्धासंपन्न थे तथा उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते थे। यही दांव पर लगा देना है। **स्थित्यर्थम्**=सम्मान अथवा प्रतिष्ठा के लिये। **मत्स्यराजः**=राजा विराट। **सूदताम्**=रसोइयापन को। **चिह्नानि**=लक्षण। **विनय**-इत्यादि। "विद्या बुद्धिर्यशो बलम्—अल्पेवयसि यस्य स्युः न सजीवेच्चिरं नरः" इत्युक्तेः। जिनको अल्पायु में ही उत्तम विद्या, बुद्धि, यश और बल की प्राप्ति हो जाया करती है वह मनुष्य अधिक समय तक जीवित नहीं रहा करता है॥ १९॥

युधिष्ठिरः—धिगस्मद्भागधेयानि। भगवन्कामपाल! कृष्णाग्रज! सुभद्राभ्रातः!

> ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो
> रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यार्जुनेन।
> तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः
> कोऽयं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्येमयीत्थम्॥२०॥

युधिष्ठिर—हम लोगों के भाग्य को धिक्कार है। भगवान् बलराम! कृष्ण के बड़े भाई! सुभद्रा के भाई!

अन्वयः—मनसि ज्ञातिप्रीतिः (त्वया) न कृता। (इदम्) क्षत्रियाणां धर्मः न। अनुजस्य अर्जुनेन रूढ तत् सख्यं अपि न गणितम्। शिष्ययोः स्नेहबन्धः तुल्यः कामं भवतु। मन्दभाग्ये मयि यत् इत्थं विमुखः असि, अयं कः पन्था?

संस्कृत-व्याख्या—मनसि=चित्ते, ज्ञातिप्रीतिः=ज्ञातेः-स्वजनस्य प्रीतिः-स्नेहः, सुभद्राभ्रातृत्वेन विशेषणात्सुभद्राद्वारा ज्ञातिप्रीतिः, त्वया, न कृता=न आनीता, न चिन्तिता वा, (इदम्), क्षत्रियाणाम्=राजन्यानाम्, धर्मः=आचारः (वीरयोः समदृष्टिता) मनसि न कृतः। अनुजस्य=स्वभ्रातुः श्रीकृष्णस्य,

अर्जुनेन = मम भ्रातुः, अर्जुनेन सह, रूढम्-उपचितं वा, तत्=जगत्प्रसिद्धम्, सख्यम्=मैत्री, अपि, न गणितम्=न आदृतम्-न विचारितम्। शिष्योः= भीमदुर्योधनयोः, स्नेहबन्धः=अनुरागसम्बन्धः, तुल्यः=समान एव, कामम्= यथेच्छम्, भवतु=स्यात्। किन्तु, मन्दभाग्ये=हतभाग्ये, मयि=युधिष्ठिरे, यत्, इत्थम्=अनेन प्रकारेण, विमुखः=प्रतिकूलः, असि=वर्तसे, अयम्=एषः, कः=कीदृशः पन्था=मार्गः? सुयोधनभीमयोः शिष्ययोः तुल्ये स्नेहे सत्यपि मम पक्षपातेन भीमेऽनुग्रहः त्वया कर्तव्य आसीत्। विपरीतं भवता सङ्केतं दत्त्वा भीमो घातितः—इति कोऽयं भवतामनुचितो मार्गः—इत्यभिप्रायः ॥२०॥

हिन्दी-अनुवाद— मनसि=मन में, ज्ञातिप्रीतिः=सम्बन्धियों का प्रेम, त्वया=आपके द्वारा, न कृता=नहीं विचारा गया। इदम्=यह, क्षत्रियाणाम्- क्षत्रियों का (वीरों के प्रति समान भाव होना), धर्मः=धर्म भी, मनसि न कृतः= मन में नहीं सोचा गया। अनुजस्य=अपने छोटे भाई श्रीकृष्ण का, अर्जुनेन=अर्जुन के साथ, रूढम्=बढ़ा हुआ, तत्=वह जगत् प्रसिद्ध, सख्यम्=मैत्री,अपि=भी, न गणितम्=नहीं विचार किया गया। शिष्ययोः= भीम और दुर्योधन दोनों शिष्यों के प्रति, स्नेहबन्धः=आपका प्रेम, तुल्यः= समानरूप से, कामम्=भले ही, भवतु=रहा हो, किन्तु, मन्दभाग्ये=अभागे, मयि=मुझ युधिष्ठिर से, यत्=जो, इत्थम्=इस प्रकार से आप, विमुखः असि= प्रतिकूल हो, अयम्=यह, कः=(आपका) कौन सा, पन्था=मार्ग है? आपको अपने दोनों शिष्यों के प्रति समान स्नेह ही रखना चाहिये था, न कि दुर्योधन का पक्षपातकर भीम को मरवा देना चाहिये था ॥ २० ॥

भावार्थ—हे बलराम्! आपने सम्बन्धियों के प्रति प्रेम-भाव का विचार नहीं किया। क्षत्रियों के धर्म की ओर भी आपने ध्यान नहीं दिया। ('निष्पक्ष अथवा समानदृष्टि होना' जो क्षत्रिय-धर्म है उसका भी आपने ध्यान नहीं रखा।) आपने-अपने छोटे भाई कृष्ण की जो मित्रता मेरे छोटे भाई अर्जुन के साथ थी, उसका भी विचार नहीं किया। दुर्योधन और भीम इन दोनों शिष्यों के प्रति आपका भले ही समान-स्नेह रहा हो किन्तु मुझ भाग्यहीन (युधिष्ठिर) से जो आप प्रतिकूल हो गये, क्या यह आपके लिये उचित

था ? (भीम और दुर्योधन दोनों ही आपके प्रिय शिष्य थे, दोनों ही के प्रति आपका स्नेहभाव समान ही रहा होगा—ऐसी स्थिति में आपको तटस्थ ही रहना उचित था। अथवा आपका जो मेरे साथ सम्बन्ध था, उसकी दृष्टि से आपका मेरे प्रति पक्षपात होना उचित था, न कि दुर्योधन के प्रति। आपने अपने सङ्केत द्वारा दुर्योधन की सहायता कर भीम को मरवा दिया। क्या आप जैसे व्यक्ति के लिये यह उचित था ?)।

छन्द—उक्त पद्य में 'मन्दाक्रान्ता' नामक छन्द है।

समासः—ज्ञातिप्रीतिः=ज्ञातेः प्रीतिः-इति। स्नेहबन्धः=स्नेहस्य बन्धः-इति ॥ २० ॥

टिप्पणियाँ—हे कामपाल !=हे बलराम। रूढम्=सुदृढ़ अथवा प्रसिद्ध। सख्यम्=मैत्री, मित्रता। न गणितम्=गणना नहीं की अर्थात् विचार नहीं किया। कामम्=यथेच्छ। मन्दभाग्ये=अभागे, भाग्यहीन के प्रति। विमुखः—प्रतिकूल, विपरीत ॥ २० ॥

(द्रौपदीमुपगम्य) अयि पाञ्चालि ! उत्तिष्ठ। समानदुःखावेवावां भवावः। मूर्च्छया किं मामेवमतिसंधत्से।

द्रौपदी—(लब्धसंज्ञा) बध्नातु नाथो दुर्योधनरुधिरार्द्रेण हस्तेन दुःशासनविमुक्तं मे केशहस्तम्। हञ्जे बुद्धिमतिके ! तव प्रत्यक्षमेव नाथेन प्रतिज्ञातम्। (कञ्चुकिनमुपेत्य) आर्य। किं संदिष्टं तावन्मे देवेन देवकीनन्दनेन पुनरपि केशरचनामारभ्यतामिति। तदुपनय मे पुष्पदामानि। विरचय तावत्कबरीम्। कुरु भगवतो नारायणस्य वचनम्। न खलु सोऽलीकं संदिशति। अथवा किं मया संतप्तया भणितम्। अचिरगतामार्यपुत्रमनुगमिष्यामि। (युधिष्ठिरमुपगम्य) महाराज। आदीपय मे चिताम्। त्वमपि क्षत्रधर्ममनुवर्तमान एव नाथस्य जीवितहरस्याभिमुखो भव। अथवा यत्ते रोचते।

(बन्धेदु णाहो दुज्जोहणरुधिलाद्देण हत्थेण दुस्सासणविमुक्कं मे केसहत्थम्। हञ्जे बुद्धिमदिए, तव पच्चक्खं एव्व णाहेण पडिण्णादम्। अज्ज, किं संदिट्ठं दाव मे देवेण देवकीनन्दणेण पुणो वि केसरअणा

आरम्भीकदु त्ति। ता उवणेहि मे पुप्फदामाइं। विरएहि दाव कबरीम्। करेहि भअवदो णाराअणस्स वअणम्। ण क्खु सो अलीअं संदिसदि। अहवा किं मए संतत्ताए भणिदम्। अचिरगदं अज्ज उत्तं अणुगमिस्सम्। महाराअ, आदीवअ मे चिदाम्। तुमं वि खत्तधम्मं अणुवहन्तो एव्व णाहस्स जीविदहरस्स अहिमुहो होहि। अहवा जं दे रोअदि।)

युधिष्ठिरः--युक्तमाह पाञ्चाली। कञ्चुकिन्! क्रियतामियं तपस्विनी चितासंविभागेन सह्यवेदना। ममापि सज्जं धनुरुपनय। अलमथवा धनुषा।

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गी—
मादाय संयति गदामपविध्य चापम्।
भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन
श्रेयो ममापि हि तदेव कृतं जयेन ॥२१॥

(द्रौपदी के पास जाकर) अरी द्रौपदी! उठ। हम दोनों समानदुःख वाले होवें। मूर्च्छाद्वारा (अर्थात् मूर्च्छित होकर) तुम मुझे इस प्रकार क्यों धोखा दे रही हो?

द्रौपदी—(चेतना पाकर) स्वामी दुर्योधन के रक्त से गीले हाथ से दुःशासनद्वारा खोले गये मेरे केशों को बाँधे। हे सखि बुद्धिमतिके! तुम्हारे समक्ष ही स्वामी (भीम) ने प्रतिज्ञा की थी। (कञ्चुकी के समीप जाकर) आर्य। भगवान् कृष्ण ने मेरे लिये क्या सन्देश भेजा था कि फिर से केशों का प्रसाधन प्रारम्भ कर दिया जाय? तो मेरे लिये पुष्पों की माला लाओ। रचकर मेरा जूड़ा बनाओ। भगवान नारायण के वचन का पालन करो। वह कभी भी असत्य संदेश नहीं भेजा करते हैं। अथवा मुझ दुखिया ने क्या कह डाला? अभी-अभी गये हुये आर्यपुत्र (भीम) का अनुगमन करूँगी। (युधिष्ठिर के समीप जाकर) महाराज। मेरी चिता जलाओ। आप भी क्षत्रिय के धर्म का पालन करते हुये स्वामी (भीम) के

प्राणों का हरण करने वाले का सामना कीजिये। अथवा जैसी आपको रुचि हो (तदनुसार कीजिये) ।

युधिष्ठिर—पाञ्चालराजपुत्री (द्रौपदी) ने ठीक ही कहा है। कञ्चुकी। इस बेचारी को चिता देकर वेदना सहन करने योग्य कर दो। मेरा भी धनुष तैयार करके लाओ। अथवा धनुष की आवश्यकता नहीं है (रहने दो धनुष) ।

अन्वयः—तस्य एव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गीं गदां आदाय चापं अपविध्य भ्रातृप्रियेण अर्जुनेन संयति अद्य यत् कृतम्, तत एव मम अपि श्रेयः हि, जयेन कृतम् ॥ २१ ॥

संस्कृत-व्याख्याः—तस्य=भीमस्य, एव, देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गीम्=देहस्य-शरीरस्य रुधिरेण-रक्तेन उक्षितम्-सिक्तम् अतएव पाटलम्-रक्तवर्णं अङ्गम्-शरीरम् यस्याः साताम्—भीमरक्तसम्पर्केणईषद् रक्ताङ्गीम्, गदाम्, आदाय=गृहीत्वा, चापम्=धनुः, अपविध्य=त्यक्त्वा, भ्रातृप्रियेण=भ्राता-सहोदरः भीमः प्रियः यस्य सः तेन, अर्जुनेन=किरीटिना, संयति=युद्धे, अद्य, यत्=कार्यम्, कृतम्=विहितम्, तत्=धनुस्त्यागेन गदया युद्धम्, एव, मम=युधिष्ठिरस्य अपि, श्रेयः=कल्याणकारकम्, हि=इति निश्चये, जयेन=शत्रुविजयेन, कृतम्=व्यर्थम्। भ्रातरं विना विजयस्य निष्फलत्वात् ॥ २१ ॥

हिन्दी-अनुवाद—तस्य एव=उस (भीम) के ही, देहरुधिरोक्षितपटलाङ्गीम्=शरीर के रक्त से लिप्त होने के कारण रक्तवर्ण वाली, गदाम्=गदा को, आदाय=लेकर, चापम्=धनुष का, अपविध्य=त्यागकर, भ्रातृप्रियेण=भ्रातृस्नेही, अर्जुनेन=अर्जुन ने, संयति=युद्ध में, अद्य=आज, यत्=जो कुछ, कृतम्=किया है, तत एव=वही कार्य, मम अपि=मुझ युधिष्ठिर के लिये भी, श्रेयः=कल्याणकारी है। हि=निश्चय ही, जयेन=शत्रु पर विजय प्राप्त करने से, कृतम्=बस (अथवा शत्रु पर विजय प्राप्त करना भी व्यर्थ ही है।) क्योंकि भाई के विना विजय भी निष्फल ही होगी ॥ २१ ॥

भावार्थः—धनुष का परित्यागकर तथा उस भीम के ही रक्त से सनी हुयी लाल वर्ण की उसी (भीम की) गदा को ग्रहण कर, भाई के स्नेह

से युक्त अर्जुन द्वारा युद्ध में आज जो कुछ किया गया है, वही मेरे लिये भी हितकर होगा क्योंकि यदि मैं विजय भी प्राप्त कर लेता हूं, तो वह विजय भी भाइयों के बिना मेरे लिये व्यर्थ ही होगी ॥२१॥

अलङ्कार--उक्त पद्य में 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है।

छन्दः--इसमें 'वसन्ततिल का' नामक छन्द है।

समासः--दुर्योधनरुधिरार्द्रेण = दुर्योधनस्य रुधिरेण आर्द्रः—इति, तेन। चितासंविभागेन=चितायाः संविभागेन इति। देहरुधिरोक्षित-पाटलाङ्गीम्=देहस्य रुधिरेण उक्षितानि अतएव पाटलानि अङ्गानि यस्याः सा ताम्। भ्रातृप्रियेण-भ्राता प्रियः यस्य सः तेन ॥ २१ ॥

टिप्पणियां—अतिसंधत्से=ठगरही हो, धोखा दे रही हो अथवा (मुझसे भी) आगे निकल गई हो। मैं तो मूर्च्छित नहीं हुआ किन्तु आप मूर्च्छित हो गई हो। अतः तुम मुझ से भी अधिक दुःख का अनुभव कर रही हो। अत एव मुझ से आगे निकल गई हो॥ अथवा-जब तुम मूर्च्छित हो जाती हो तब चेतना रहित हो जाने के कारण तुम तो दुःखमुक्त हो जाती हो। अतः चेतना में आओ ताकि हम दोनों ही समान रूप से दुःख का अनुभव करें। आर्द्रः=गीला। केशहस्तम् =केशसमूह, केशपाश। दाम=माला। कबरीम्=केशों को रचना विशेष, चूड़ा। अलीकम्=असत्य, झूठ। अभिमुखम्=सन्मुख। चितासंविभागेन=चिता की रचना से। सह्यवेदना=वेदना (पीड़ा) को सहन करने में समर्थ। उपनय=लाओ। उक्षितानि=सिक्त, सिंचित। पाटलम्-कुछ-कुछ लाल, "ईषद्रक्तस्तु पाटलः" इत्यमरः। श्रेयः=कल्याण-कारक। जयेन=शत्रु पर विजय प्राप्त करने से। कृतम्=व्यर्थ, बस, प्रयोजन रहित ॥ २१ ॥

राक्षसः--राजन्! रिपुजयविमुखं ते यदि चेतस्तदा यत्र तत्र वा प्राणत्यागं कुरु। वृथा तत्र गमनम्।

कञ्चुकी—धिङ् मुने! राक्षससदृशं हृदयं भवतः।

राक्षसः—(सभयम् स्वगतम्) किं ज्ञातोऽहमनेन। (प्रकाशम्) भोः कञ्चुकिन्!, तयोर्गदया खलु युद्धं प्रवृत्तमर्जुनदुर्योधनयोः।

जानामि च तयोर्गदायां भुजसारम्। दुःखितस्य पुनरस्य राजर्षेरपरमनिष्टश्रवणं परिहरन्नेवं ब्रवीमि।

युधिष्ठिरः—(वाष्पं विसृजन्) साधु महर्षे ! साधु। सुस्निग्धमभिहितम्।

कञ्चुकी—महाराज ! किं नाम शोकान्धतया देवेन देवकल्पेनापि प्राकृतेनेवत्यज्यते क्षात्रधर्मः।

युधिष्ठिरः—आर्य जयंधर !

शक्ष्यामि नो परिघपीवरबाहुदण्डौ
वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ।
भीमार्जुनौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ
द्रष्टुं तयोश्च निधनेन रिपुं कृतार्थम् ॥२२॥

राक्षस—राजन् ! यदि आपका चित्त शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त करने से पराङ्मुख है तो जहाँ कहीं भी प्राणों का त्याग कर लीजिये। वहाँ जाना व्यर्थ है।

कञ्चुकी—हे मुने ! तुमको धिक्कार है। राक्षस के हृदय के सदृश आपका हृदय है।

राक्षस—(भय के साथ, मन ही मन) क्या इसने मुझे पहचान लिया है ? (प्रकटरूप में) हे कञ्चुकी ! उन अर्जुन और दुर्योधन का गदा-युद्ध तो प्रारम्भ हुआ था। उन दोनों के गदा सम्बन्धी भुज-बल को मैं जानता हूँ। अतः इस दुःखित राजर्षि को अन्य अनिष्ट-श्रवण से बचाते हुए ही मैंने ऐसा कहा है। (कहने का अभिप्राय यह है कि गदा-युद्ध में अर्जुन मारा जायगा; यह तो निश्चित ही है। इनको तो अभी तक केवल भीम का ही समाचार मिला है। वहाँ जाने पर अर्जुन सम्बन्धी मृत्यु का भी वृत्तान्त इन्हें ज्ञात होगा। इसी दुःखद समाचार को बचाते हुए मेरे द्वारा ऐसा कहा जा रहा है।)

युधिष्ठिर—(आँसू बहाते हुए) ठीक है महर्षि, ठीक है। आपने हित की बात कही है।

कञ्चुकी—महाराज ! शोक से अन्धा (अर्थात् किंकर्त्तव्यविमूढ़) होने के कारण देवतुल्य महाराज (आप) भी साधारण पुरुषों की भाँति क्षात्र-धर्म का परित्याग क्यों कर रहे हैं ?

युधिष्ठिर—आर्यं जयन्धर !

अन्वय—परिघपीवरबाहुदण्डौ वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ भीमार्जुनौ च तयोः निधनेन कृतार्थं रिपुं द्रष्टुं नो शक्ष्यामि ।२२।

संस्कृत-व्याख्या--परिघपीवरबाहुदण्डौ=परिघवत् अर्गलावत् पीवरौ-पुष्टौ बाहुदण्डौ-भुजदण्डौ ययोस्तौ, वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ—वित्तेशः-कुबेरः शक्रः—इन्द्रः तयोः पुरे-नगर्याम् दर्शितः वीर्यस्य-बलस्य सारः-तत्वं याभ्यां तौ=क्रमशः कुबेरमहेन्द्रनगरप्रदर्शितभुजबलौ, क्षितितले=पृथ्वीतले, प्रविचेष्टमानौ=लुठन्तौ, भीमार्जुनौ, च, तयोः=भीमार्जुनयोः, निधनेन=मृत्युना, कृतार्थम्=कृतकृत्यमित्यर्थः, रिपुम्=शत्रुं दुर्योधनम्, द्रष्टुम्=विलोकयितुम्, न शक्ष्यामि=न समर्थो भविष्यामि ।। २२ ।।

हिन्दी-अनुवाद—परिघपीवरबाहुदण्डौ=अर्गला के सदृश स्थूल भुजाओं वाले, वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ=कुबेर और इन्द्र की नगरियों में अपना पराक्रम दिखलाने वाले (कुबेर की अलकापुरी में भीमसेन ने पराक्रम दिखलाया था और इन्द्रपुरी में अर्जुन ने), क्षितितले=पृथ्वीतल पर, प्रविचेष्टमानौ=अपने प्राणों का त्याग करते हुए (छटपटाते हुए), भीमार्जुनौ=भीम और अर्जुन को, च=और, तयोः=उन दोनों के, निधनेन=मरने से, कृतार्थम्=कृतकृत्य अथवा प्रसन्न होते हुए, रिपुम्=शत्रु दुर्योधन को भी, द्रष्टुम्=देखने में, न शक्ष्यामि=समर्थ नहीं हूँ ।। २२ ।।

भावार्थ—अर्गला के समान स्थूल, भुजाओं को धारण करने वाले, कुबेर तथा इन्द्र की नगरियों में अपना-पराक्रम दिखलाने वाले—अर्थात् महान् शक्तिशाली होने पर भी पृथ्वीतल पर निश्चेष्टरूप में पड़े हुए भीम और अर्जुन को तथा उनकी मृत्यु से कृतकृत्य हुए शत्रु दुर्योधन को भी मैं देख नहीं सकूँगा ।। २२ ।।

अलङ्कार—उक्त पद्य में 'यथासंख्य' अलङ्कार है ।

छन्द—इसमें 'वसन्ततिलका" नामक छन्द है ।

समासः—परिघपीवरबाहुदण्डौ=परिघ इव पीवरौ बाहुदण्डौ ययोस्तौ। वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ=वित्तेशश्च शक्रश्च तयोः पुरौ इति वित्तेश-शक्रपुरे तयोः दर्शितः वीर्यस्य सारो याभ्यां तौ ॥ २२ ॥

टिप्पणियाँ—परिघवत=अर्गला के समान। पीवरौ=स्थूल। पुष्ट। प्रविचेष्टमानौ=लोट पोट करते हुए अथवा छटपटाते हुए अथवा निश्चेष्ट पड़े हुए। कृतार्थम्=कृतकृत्य हुए अथवा सन्तुष्ट हुए। शक्ष्यामि=समर्थ होऊँगा ॥ २२ ॥

अयि पाञ्चालराजतनये, मद्दुर्नयप्राप्तशोच्यदशे, यथासंदीप्यते पावकस्तथा सहितावेव बन्धुजनं संभावयावः।

द्रौपदी—आर्य! कुरु दारुसंचयम्। प्रज्वाल्यतां चिता। त्वरते मे हृदयं नाथं प्रेक्षितुम्। (सर्वतोऽवलोक्य) कथं न कोऽपि महा-राजस्य वचनं करोति। हा नाथ भीमसेन! तदेवेदं राजकुलं त्वया विरहितं परिजनोऽपि सांप्रतं परिहरति। (अज्ज, करेहि दारुसंचअम्। पज्जलीअदु चिदा। तुवरदि मे हिअअं णाघं पेक्खिदुम्। कहं ण को वि महाराअस्स बअणं करेदि! हा णाह भीमसेण, तं एब्व एदं राअउल तुए विरहिदं पडिअणो वि संपदं परिहरदि।)

युधिष्ठिरः—महर्षे! न कश्चिच्छृणोति तावदावयोर्वचनम्। तदिन्धनप्रदानेन प्रसादः क्रियताम्।

राक्षसः—मुनिजनविरुद्धमिदम् (स्वगतम्) पूर्णो मे मनोरथः। यावदनुपलक्षितः समिन्धयामि वह्निम्। (प्रकाशम्) राजन्! न शक्नुमो वयमिह स्थातुम् (इति निष्क्रान्तः)।

युधिष्ठिरः—कृष्णे! न कश्चिदस्मद्वचनं करोति। भवतु। स्वयमेवाहं दारुसंचयं कृत्वा चितामादीपयामि।

द्रौपदी - त्वरतां त्वरतां महाराजः। (तुवरदु तुवरदु महाराओ।)

[नेपथ्ये कलकलः]

द्रौपदी—(सभयमाकर्ण्य) महाराज! कस्याप्येष बलदर्पितस्य विषमः शङ्खनिर्घोषः श्रूयते। अपरमप्यप्रियं श्रोतुमस्ति निर्बन्धस्ततो

विलम्ब्यते (महाराअ, कस्स वि एसो बलदप्पिदस्स विसमो सङ्खणिग्घोसो सुणीअदि। अवरं वि अप्पिअं सुणिदुं अत्थि णिब्बन्धो तदो विलम्बीअदि।)

युधिष्ठिरः-न खलु विलम्ब्यते। उत्तिष्ठ।

[इति सर्वे परिक्रामन्ति।]

युधिष्ठिरः—अयि पाञ्चालि! अम्बायाः सपत्नीजनस्य च किंचित्संदिश्य निवर्तय परिजनम्।

द्रौपदी—महाराज! अम्बायै एवं संदेक्ष्यामि। यः स बकहिडिम्बकिर्मीरजटासुरजरासंधविजयमल्लस्ते मध्यमपुत्रः स मम हताशायाः पक्षपातेन परलोकं गत इति। (महाराअ, अम्बाए एव्वं सदिसिस्सं—'जो सो बअहिडिम्बकिम्मीरजडासुरजरासंघविजअमल्लो दे मज्झमपुत्तो सो मम हदासाए पक्खवादेण परलोअं गदो' त्ति।)

अरी, मेरी दुर्नीति के कारण शोचनीय अवस्था को प्राप्त पाञ्चालराजकुमारी!, जैसे ही अग्नि प्रज्वलित हो वैसे ही हम दोनों एक साथ ही बन्धुओं का (अपने अनुगमन द्वारा) सम्मान करें।

द्रौपदी—आर्य? लकड़ी एकत्रित कीजिये। चिता जलाई जाय। मेरा हृदय स्वामी (भीमसेन) को देखने के लिये उतावला हो रहा है। (चारों ओर देखकर) कोई भी महाराज के बचनों को क्यों नहीं सुन रहा है? हाय स्वामी भीमसेन। तुमसे विहीन उस ही इस राजकुल को अब सेवक भी छोड़ रहे हैं।

युधिष्ठिर—महर्षे! हम दोनों की बात को अब कोई भी नहीं सुन रहा है। अतः अब (आपही) इंधन देकर (हम लोगों पर) कृपा कीजिये।

राक्षस—यह (कार्य) मुनिजनों के (आचरण के) प्रतिकूल है। (मन ही मन) मेरी इच्छा पूर्ण हुई। जब तक अदृश्य रहकर आग को भली-भाँति प्रज्वलित करता हूँ। (प्रकट रूप में) हे राजन्। हम यहाँ नहीं ठहर सकेंगे। (ऐसा कहकर बाहर चला जाता है।)

युधिष्ठिर—हे द्रौपदी। कोई भी हम लोगों की बात को नहीं सुन रहा है। अच्छा मैं स्वयं ही लकड़ी एकत्रित करके चिता को प्रज्वलित करता हूँ।

द्रौपदी—शीघ्रता कीजिये, महाराज। शीघ्रता कीजिए।

(नेपथ्य में (पर्दे के पीछे) कल-कल ध्वनि होती है।)

द्रौपदी—(भय के साथ, सुनकर) बल से गर्वीले किसी की यह भयंकर शङ्खध्वनि सुनाई पड़ रही है। आपको (कुछ) अन्य भी अप्रिय सुनने की अभिलाषा है, इसीलिये यह विलम्ब किया जा रहा है।

युधिष्ठिर—विलम्ब नहीं किया जा रहा है। उठो।

(ऐसा कहकर-सभी घूमते हैं।)

युधिष्ठिर—हे द्रौपदी। माँ (कुन्ती) तथा (अपनी) सौतों के लिये कुछ सन्देश देकर इन सेवकों को लौटा दो।

द्रौपदी—महाराज। माता जी के लिये इस प्रकार संदेश दूँगी—'बकासुर; हिडिम्बासुर, किर्मीरासुर तथा जटासुर एवं जरासन्ध पर (कुश्ती में) विजय प्राप्त करने वाला जो आपका मँझला पुत्र (भीम) था वह मुझ अभागिन के प्रति पक्षपात के कारण परलोक चला गया।

समासः—मद्दुर्नयप्राप्तशोच्यदशे—मम दुर्नयः इति मद्दुर्नयः तेन प्राप्ता शोच्या दशायां तथाभूते। बलदर्पितस्य—दर्पः अस्य संजातः असौ दर्पितः बलेन दर्पितः बलदर्पितः, तस्य। विजयमल्लः—विजयेमल्लः, इति।

टिप्पणियाँ—दुर्नयेन—मेरी गलत नीति के कारण। सम्भावयावः—सम्मान करें, देखें। अनुपलक्षितः—अदृष्ट अथवा अदृश्य होकर। आदीपयामि—प्रज्वलित करता हूँ। निर्घोषः—ध्वनि, शब्द। अपरमपि—अन्य भी;, और भी। यहाँ अर्जुन की मृत्यु की ओर संकेत है। निर्बन्धः—अभिलाषा, इच्छा। परिक्रामन्ति—चलते हैं। संदिश्य—सन्देश देकर। मध्यमपुत्रः—मँझला पुत्र (भीमसेन)।

युधिष्ठिर - भद्रे बुद्धिमतिके! 'उच्यतामस्मद्वचनादम्बा।

येनासि तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने
निर्वाहिता सह सुतैः भुजयोर्बलेन ।
तस्य प्रियस्य बलिनस्तनयस्य पाप—
माख्यामि तेऽम्ब कथयेत्कथमीदृगन्यः ॥२३॥

युधिष्ठिर—हे भली बुद्धिमतिके। मेरी ओर से मां कुन्ती से कहना—

अन्वयः—तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने येन भुजयोः बलेन (त्वम्) सुतैः सह निर्वाहिता असि तस्य (ते) प्रियस्य बलिनः तनयस्य पापं आख्यामि। अन्यः कथं ईदृक् कथयेत् ॥ २३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—तत्र=प्रवासे-वारणावते, जतुवेश्मनि=जतुनः-लाक्षायाः वेश्म गृहम्, तस्मिन् जतुवेश्मनि-लाक्षागृहे, दीप्यमाने=अग्निना प्रज्वाल्यमाने, सति,येन=वृकोदरेण, भुजयोः=बाह्वोः, बलेन, (त्वम्) सुतैः=युधिष्ठिरादिभिः स्वपुत्रैः, सह=सार्धम्, निर्वाहिता=बहिरानीता, रक्षितेति यावत्, असि, तस्य=तादृशस्य, ते=तव, प्रियस्य=स्निग्धस्य, बलिनः=बलवतः, तनयस्य=पुत्रस्य, पापम्=मरणम्, ते=तुभ्यम्, आख्यामि=कथयामि। अन्यः=मदतिरिक्तः, कथम्=केन प्रकारेण, ईदृक्=ईदृशं अतिक्रूरं-अकथनीयं वा कथयेत्=निवेदयेत् ॥ २३ ॥

हिन्दी-अनुवाद-तत्र=वहां (प्रवास के समय वारणावत में), जतुवेश्मनि=लाक्षागृह के, दीप्यमाने=जला दिये जाने पर, येन=जिस (भीमसेन) ने, भुजयोः=बाहुओं के, बलेन=बल से, (त्वम्=तुमको), सुतैः सह=युधिष्ठिर आदि, आपके पुत्रों के साथ, निर्वाहिता=बाहर निकाला, असि=था। तस्य=उस (ते=आपके), प्रियस्य प्रिय, बलिनः=बलशाली, तनयस्य=पुत्र (भीम) की, पापम्=मृत्यु को, आख्यामि=कह रहा हूँ। अन्यः=मेरे अलावा कोई अन्य, कथम्=किस प्रकार से, ईदृक्=इस प्रकार के अकथनीय समाचार को, कथयेत्=कह सकता है ? ॥ २३ ॥

भावार्थः— हे मां। वारणावत में दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में आग लगवा दिये जाने पर आपके पुत्रों के साथ आपको उस विपत्ति से अपनी भुजाओं के बल

से बचाकर जिस (भीम) ने बाहर निकाला था उस अत्यन्त बलशाली भीम के बारे में मैं उसके मरण के विषय में आपको सूचित कर रहा हूँ। इस अकथनीय समाचार को मुझ पापी के अतिरिक्त और कोई अन्य व्यक्ति आपको नहीं सुना सकता है ॥ २३ ॥

अलङ्कारः—यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का कथन किये जाने से 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है।

छन्द—इसमें "वसन्ततिलका" छन्द है।

समासः—जतुवेश्मनि=जतुनः वेश्म इति जतुवेश्म, तस्मिन्। बलिनः=बलमस्यास्तीति बली, तस्य ॥ २३ ॥

टिप्पणियाँ—जतुवेश्मनि=लाक्षा (लाख) से बने हुये गृह में। निर्वाहिताः=बाहर निकाला था। आख्यामि=कहता हूँ ॥ २३ ॥

आर्य जयंधर! त्वयापि सहदेवसकाशं गन्तव्यम्। वक्तव्यश्च तत्रभवान्पाण्डुकुलबृहस्पतिर्माद्रेयः कनीयानस्माकं सकलकुरुकुलकमलाकरदावानलो युधिष्ठिरः परलोकमभिप्रस्थितः प्रियानुजमप्रतिकूलं सततमाशंसनीयमसमूढं व्यसनेऽभ्युदये च धृतिमन्तं भवन्तमविरलमालिङ्गय शिरसि चाघ्रायेदं प्रार्थयते—

मम हि वयसा दूरेणाल्पः श्रुतेन समो भवा-
न्सहजकृतया बुद्ध्या ज्येष्ठो मनीषितया गुरुः।
शिरसि मुकुलौ पाणी कृत्वा भवन्तमतोऽर्थये
मयि विरलतां नेयः स्नेहः पितुर्भव वारिदः ॥२४॥

आर्यजयन्धर! आप भी सहदेव के पास चले जायें और पाण्डुकुल के लिये बृहस्पति तुल्य माद्री के पुत्र हम सभी के सबसे छोटे भाई उन सहदेव से कहें—"सम्पूर्ण कुरुकुलरूपी कमलवन के लिये दावाग्नि सदृश, परलोक को गमन करने वाले युधिष्ठिर, सर्वदा अनुकूल रहने वाले, प्रत्युपकार हेतु जिससे सदैव आशा रखी जा सकती हे (कृतज्ञ), विपत्ति के समय किंकर्तव्यविमूढ न होने वाले, अभ्युदय (उन्नति) में क्षमाशील, आप प्रिय अनुज का गाढ़ आलिङ्गन करके तथा सिर सूँघकर यह प्रार्थना करते हैं:—

अन्वयः--भवान् हि वयसा मम दूरेण अल्पः, श्रुतेन समः, सहजकृतया बुद्धया ज्येष्ठः, मनीषितया गुरुः, अतः शिरसि पाणी मुकुलौ कृत्वा भवन्तं अभ्यर्थये—मयि स्नेहः विरलतां नेयः, पितु वारिदः भव ।

संस्कृत-व्याख्या—भवान्, हि=निश्चयेन, वयसा=अवस्थया, मम=युधिष्ठिरस्य—युधिष्ठिरापेक्षया—इत्यर्थः, दूरेण=अधिकेन-नितरामसंनिकृष्टेन, अल्पः=कनिष्ठः—सर्वतो हि भवान् मत्तः कनिष्ठः—इत्यभिप्रायः; किन्तु, श्रुतेन=शास्त्रेण-तदध्ययनेन तु, समः=तुल्यः; सहजकृतया=सहजा-स्वाभाविकी तथा कृता-अर्जिता, तया, बुद्ध्या=मत्या, (मम) ज्येष्ठः=भरा: श्रेष्ठः; मनीषितया=मनसः ईष्टे इति मनीषी, तस्यभावः मनीषिता, तया—विद्वत्तया पाण्डित्येन वा, गुरुः=गुरुतुल्यः—मान्यः—श्रेष्ठः, अतः=अस्मात्कारणात्, शिरसि=मस्तके, पाणी=हस्तौ, मुकुलौ=कुड्मलाकारौ—सम्पुटितौ, कृत्वा=विधाय, भवन्तम्=त्वाम्, अभ्यर्थये=प्रार्थये—मयि=युधिष्ठिरे, स्नेहः=अनुरागः, विरलताम्=स्वल्पताम्, नेयः=प्रापणीयः, पितुः=पाण्डोः, वारिदः=जलदाता-जलाञ्जलिप्रदः, भव । अनुरागकारणान्मदनुगमनं विहाय पितृभ्यः जलादि-दानाय प्राणधारणं कुरु—इत्यभि प्रायः ॥ २४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—भवान्=आप, हि=निश्चय ही, वयसा=अवस्था की दृष्टि से, मम=मुझ युधिष्ठिर की अपेक्षा, दूरेण=बहुत, अल्पः=छोटे, श्रुतेन=शास्त्रों के अध्ययन अथवा ज्ञान की दृष्टि से, समः=समान, सहजकृतया=स्वाभाविक तथा अर्जित, बुद्ध्या=बुद्धि में, ज्येष्ठः=श्रेष्ठ, मनीषितया=विद्वत्ता की दृष्टि से भी, गुरुः=श्रेष्ठ अथवा गुरुतुल्य हो। अतः=अतएव, शिरसी=तुम्हारे शिर पर, पाणी=हाथों को, मुकुलौ=कली के सदृश अर्थात् जोड़, कृत्वा=करके, भवन्तम्=आप से, अभ्यर्थये=प्रार्थना करता हूँ कि तुम, मयि=मेरे प्रति अपने, स्नेहः=प्रेम को, विरलताम्=कम, नेयः=कर लेना और, पितुः=पिता को, वारिदः=जल की अंजलि देने वाला, भव=होना ॥ २४ ॥

भावार्थः—तुम अवस्था में मुझसे कहीं अधिक छोटे हो, किन्तु अध्ययन में तो मेरे समान ही हो। स्वाभाविक तथा अर्जित बुद्धि तुम मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हो, विद्वत्ता में भी तुम मेरे लिये गुरु (बृहस्पति) के समान हो,

अतः मैं शिरपर अञ्जलि बाँधकर (अर्थात् हाथ जोड़कर आप से यही प्रार्थना करता हूं कि मेरे प्रति जो तुम्हारा स्नेह है उसे तुम कम करना तथा पिता (पाण्डु) को जलाञ्जलि देने हेतु जीवित रहना अर्थात् मेरे न रहने पर तुम भी शरीर का त्याग न कर देना। तुम्हारा जीवित रहना आवश्यक है। यदि तुम जीवित न रहे तो पिता आदि को जल की अञ्जलि कौन देगा ? ॥ २४ ॥

अलङ्कारः— उक्त पद्य में "उल्लेख" नामक अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'हरिणी' छन्द है। लक्षण—"नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता"।

समासः—सकलकुरुकुलकमलाकरदावानलः=सकलं-सम्पूर्णं कुरुकुलं-कुरुवंश एव कमलाकरः कमलपूर्णसरोवरः तस्य दावानलः—वनाग्निः। सहजकृतया=सहजा कृता च—इति सहजकृता, तया। मनीषितया=मनसः ईष्टे इति मनीषी, तस्य भावः मनीषिता, तया ॥ २४ ॥

टिप्पणियाँ—माद्रेयः=माद्री के पुत्र। कमलाकरः—कमल वन। प्रियानुजम्=प्रिय छोटा भाई सहदेव। आशंसनीयम्=प्रत्याशा के योग्य। व्यसने=विपत्ति में। अभ्युदये=अभ्युदय अथवा उन्नति में। असंमूढम्=अभ्रान्त। अविरलम्=गाढ़। धृतिमन्तम्=क्षमाशील। आघ्राय=सूँघकर। मनीषितया=विद्वत्ता अथवा पाण्डित्य की दृष्टि से। मनीषी—विद्वान् धीर, ज्ञानी—"धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः" इत्यमरः। गुरुः—श्रेष्ठ, मान्य, गुरुतुल्य। मुकुलौ=मुकुलाकार (हाथ जोड़कर)। पाणी=दोनों हाथ। विरलताम्=कृशता को, कम को। नेयः—प्राप्त करा देना। वारिदः=जलाञ्जलि देने वाला ॥ २४ ॥

अपि च। बाल्ये सम्बर्द्धितस्य नित्याभिमानिनोऽस्मत्सदृशहृदयसारस्यापि नकुलस्य ममाज्ञया वचने स्थातव्यम्। तदुच्यतां नकुलः। नानुगन्तव्यास्मत्पदवी। त्वया हि वत्स।

विस्मृत्यास्मान्श्रुतिविशदया प्रज्ञया सानुजांश्च
पिण्डान्पाण्डोरुदकपृषतानश्रुगर्भान्प्रदातुम् ।
दायादानामपि तु भवने यादवानां कुले वा
कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम् ॥२५॥

और भी। बाल्यकाल में प्यार के साथ पाले गये, सर्वदा अभिमानी, हमारे ही समान हृदय की दृढ़ता से युक्त, नकुल के कहने में भी, मेरी आज्ञा से सर्वदा रहना। इसलिये नकुल से, कहना कि वह हमारे पथ का अनुगमन न करे। हे वत्स! तुम्हारे द्वारा—

अन्वयः—श्रुतिविशदया आत्मबुद्धया सानुजान् अस्मान् विस्मृत्य, च अश्रुगर्भान् उदकपृषतान् पिण्डान् पाण्डो। प्रदातु तु दायादानामपि भवने यादवानां कुले वा कान्तारे कृतवसतिना शरीरं रक्षणीयम् ॥ २५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—श्रुतिविशदया=श्रुत्या-अध्ययनेन बिशदा-निर्मला; तया, आत्मबुद्धया=स्वप्रज्ञया, सानुजान्=अनुजाभ्यां भीमार्जुनाभ्यामित्यर्थः सहितान्, अस्मात्=युधिष्ठिरादीन्, विस्मृत्य=स्मृतिपथादुदस्य, अश्रुगर्भान्-नेत्रजलमिश्रितान्, उदकपृषतान्=जलबिन्दून्, पिण्डान्=श्राद्धान्नकवलान्, पाण्डोः=पाण्डवे-स्वपित्रे, प्रदातुम्=दानार्थम् तु, दायादानाम्=शत्रूणां कौरवाणाम्, अपि, भवने=गृहे, यादवानाम्=यदुवंश्यानां श्रीकृष्णादीनाम्, कुले=वंशे, वा, कान्तारे=वने, कृतवसतिना=कृता वसतिः वासः येन तादृशेन, त्वया, शरीरम्=स्वशरीरम्, रक्षणीयम्=पालनीयमेव ॥ २५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—श्रुतिविशदया=शास्त्रों के अध्ययन से निर्मलता को प्राप्त हुयी, आत्मबुद्ध्या=अपनीबुद्धि से, सानुजान्=भाइयों (भीम तथा अर्जुन) सहित, अस्मान्=हम लोगों को, विस्मृत्य=भुलाकर, च=और, अश्रुगर्भान्=आँसुओं से मिश्रित, उदकपृषतान्=जलबिंदुओं को, तथा, पिण्डान्=पिण्डों को, पाण्डोः=पाण्डु को, प्रदातुम्=देने के लिये, दायादानाम्=पट्टीदारों-शत्रु कौरवों के, अपि=भी, भवने=घर में, यादवानाम्=

यादवों के, कुले=कुल में, वा=अथवा, कान्तरे=वन में, कृतवसतिना=निवास करने वाले, (तुम्हारे द्वारा) शरीरम्=शरीर की रक्षणीयम्=रक्षा की जानी चाहिये ।। २५ ।।

भावार्थः— शास्त्राध्ययन से निर्मल हुयी अपनी बुद्धि से हमें तथा हमारे (भीम तथा अर्जुन) भाइयों को भूलकर अपने पिता पाण्डु को अश्रुमिश्रित पिण्डों तथा अश्रुमिश्रित जलाञ्जलि को देने के लिये अपने पट्टीदारों (शत्रु कौरवों) के घर में रहकर अथवा यदुवंशी कृष्ण आदि के कुल (द्वारका) में रहकर, अथवा किसी निर्जन वन में रहकर भी अपने शरीर की रक्षा करना। (अभिप्राय यह है कि पिता को पिण्डादि देने के लिये तुम्हारा जीवित रहना आवश्यक है। अतः तुम भी हमारा अनुगमन मत करना।) ।। २५ ।।

अलङ्कारः— उक्त पद्य में 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है।

छन्द— इसमें "मन्दाक्रान्ता" छन्द है।

समासः— श्रुतिविशदया=श्रुत्या विशदा इति श्रुतिविशदा, तया। दायादानाम्=दायं आदयते इति दायादाः, तेषाम् ।। २५ ।।

टिप्पणियाँ—सानुजात्=भीम अर्जुन सहित। श्रुतिविशदया=शास्त्रों के अध्ययन से निर्मल हुयी। अश्रुगर्भान्=नेत्रों के जल (आँसुओं) से मिश्रित। पृषतान्=बूँदों को। ''पृषन्ति बिन्दुपृषताः'' इत्यमरः। दायादानाम्=पट्टीदारों-शत्रु कौरवों के। यादवानाम्=यदुवंशी श्रीकृष्ण आदि के। कान्तारे=दुर्गम वन में। कृतवसतिना=जिसने निवास कर लिया ऐसे तुम्हारे द्वारा ।। २५ ।।

गच्छ जयंधर, अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितेन भवताऽकालहीनमिदमवश्यमावेदनीयम्।

द्रौपदी—हला बुद्धिमतिके ! भण मम वचनेन प्रियसखीं सुभद्राम्—अद्य वत्साया उत्तराया आपन्नसत्वायाश्चतुर्थो मासो वर्तते। सर्वथा नाभिकुले तां निक्षिपसि। कदापीतः परलोकगतस्य श्वसुरकुलस्यास्माकमपि सलिलबिन्दुदो भविष्यति' इति (हला बुद्धिमदिए; भणहिमह वअणेण पिअसहीं सुभद्दाम्—अज्ज वच्छाए उत्तराए

चउत्थो मासो पडिवण्णस्थ गब्भस्स। तुमं एव्व कुलपडिट्ठावअं सावहाणं रक्ख। कदा वि इदो परलोअगदस्स ससुर उललस्स अह्माणं वि सलिलविन्दुदोभविस्सदि' त्ति।)।

युधिष्ठिरः--[सास्रम्] भोः कष्टम्।

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे
पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे।
दग्धे दैवात्सुमहति तरौ तस्य सूक्ष्माङ्कुरेऽस्मि—
न्नाशाबन्धं कमपि कुरुते छाययार्थीजनोऽयम् ॥२६॥

जयन्धर। जाओ। हमारे शरीर को स्पर्शकर शपथ दिलाये गये आप अविलम्ब अवश्य ही जा कर यह कह दें। (अर्थात् हे जयन्धर। तुमको हमारे शरीर की शपथ है, इस मेरे सन्देश को तुम शीघ्रातिशीघ्र सहदेव से अवश्य कह देना।)।

द्रौपदी--हे सखि बुद्धिमतिके। मेरी ओर से प्रिय सखी सुभद्रा से कहना—'बेटी उत्तरा को गर्भ धारण किये हुये आज चतुर्थ मास है। सावधानता से उसे (उसके अथवा अपने) पितृकुल में रख देना। संभवतः वह ही यहाँ से परलोक गये हुये श्वसुर कुल के लिये तथा हम लोगों के लिये भी जलाञ्जलि देने वाला होगा।

युधिष्ठिर—(अश्रुधारा के साथ) हाय, बड़े कष्ट की बात है कि—

अन्वयः—शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले पीनस्कन्धे मण्डिताशे सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे सुमहतितरौ दैवात् दग्धे तस्य अस्मिन् सूक्ष्माङ्कुरे छायया अर्थी अयं जनः कं अपि आशाबन्धं कुरुते ॥ २६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले—शाखानां रोधः—अवरोधः तेन स्थगितम्—आच्छादितम्, वसुधायाः—पृथिव्याः मण्डलम्—वलयम् येन स तस्मिन्, पीनस्कन्धे—पीन—स्थूलः स्कन्धः वृक्षप्रकाण्डः यस्य तस्मिन्; मण्डिताशे=मण्डिताः—अलङ्कृताः आशाः दिशः येन तस्मिन्, सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे=सुसदृशानि-समुचितानि च तानि महान्ति-विशालानि च मूलानि तेषां पर्यन्तेषु-प्रान्तेषु बन्धः आलबालरचना यस्य तस्मिन्—दृढमूले-आल-

बालपरिवृते-इत्यर्थः; सुमहति=अतिमहति; तरौ=वृक्षे,-पाण्डवकुलरूपवृक्षे, दैवात्=दुर्भाग्यात्; दग्धे=भस्मीभूते-भीमादिवधाद्विनष्टे सति, तस्य=तादृशस्य वृक्षस्य-पाण्डुवंशस्य, अस्मिन्, एतस्मिन् सूक्ष्माङ्कुरे=उत्तरागर्भरूपे क्षीणे अंकुरे; छायया अर्थी=छायाभिलाषी-सुखार्थी, अयम्=एषः-द्रौपदीरूपः, जनः=व्यक्तिः, कमपि=अनिर्वचनीयम्-विचित्रं विशिष्टं वा, आशाबन्धम्=कुरुते-करोतिविदधाति ॥ २६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले=अपनी शाखाओं (डालियों) के आवरण द्वारा भूमण्डल को आच्छादित करने वाले, पीनस्कन्धे=मोटे तने वाले, मण्डिताशे=दिशाओं को अलंकृत करने वाले, सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे-अपनी महती जड़ों के अनुरूप सुदृढ़ आलबाल वाले; सुमहति=अतिविशाल; तरौ=वृक्ष के, दैवात्=दुर्भाग्य से; दग्धे=जल जाने पर; तस्य=उस पाण्डु-वंशरूप वृक्ष के, अस्मिन्=इस, सूक्ष्मांकुरे=उत्तरा में गर्भरूप में विद्यमान सूक्ष्मअंकुर पर, छायया अर्थी=छाया-(आश्रय) की अभिलाषा करने वाला, अयं जनः=यह दुःख संतप्त द्रौपदी रूप व्यक्ति; कमपि=किसी अनिर्वचनीय, आशाबन्धम्=‘पाण्डवों को जलदान करने वाला होगा’ इस प्रकार की आशा को, कुरुते=करती है ॥ २४ ॥

भावार्थः—अपनी शाखाओं (डालियों) के आवरण से ही सम्पूर्ण भूमण्डल को आच्छादित करने वाले, मोटे तने वाले; सम्पूर्ण दिशाओं को सुशोभित करने वाले, अपनी विशाल एवं सुदृढ़ जड़ों के अनुरूप ही आलबाल (थाला) से युक्त पाण्डुकुलरूपी महान् वृक्ष के दुर्भाग्य के कारण भस्म हो जाने (विनष्ट हो जाने) पर भी छाया की अभिलाषा रखने वाली द्रौपदी उस (पाण्डुवंशरूप वृक्ष) के उत्तरा के गर्भ में विद्यमान छोटे से अंकुर पर ही आशा रखती है। (अभिप्राय यह है कि भीम अर्जुन जैसे महारथियों के मारे जाने पर पाण्डुवंश की रक्षा के निमित्त उत्तरा में विद्यमान ४ मास के गर्भ पर ही हाय, यह द्रौपदी आशा लगा रही है।) ।

अलङ्कार—इसमें ‘रूपक’ अलङ्कार है।

छन्दः—इसमें ‘मन्दाक्रान्ता’ छन्द है।

समासः—आपन्नसत्त्वायाः=आपन्नः सत्त्वः-गर्भः यया सा तस्याः। अकालहीनम्=कालेन न हीनम्—इति। शाखारोधस्थगितसुधामण्डले=शाखानां रोधः—अवरोधः तेन स्थगितं। वसुधायाः मण्डलं येन तस्मिन्। मण्डिताशे=मण्डिताः आशाः-दिशः येन तस्मिन्। पीनस्कन्धे=पीनः स्कन्धः यस्य तस्मिन्। सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे=सुसदृशानि च तानि महान्ति च मूलानि तेषां पर्यन्तेषु बन्धः यस्य तस्मिन्॥ २६॥

टिप्पणियाँ—शरीरस्पृष्टिकया=शरीर के स्पर्श से। अकालहीनम्=शीघ्रातिशीघ्र। उत्तरायाः=अभिमन्यु की पत्नी के। नाभिकुले=पितृकुल में। सलिलबिन्दुदः=जलबिन्दुओं को देने वाला जलाञ्जलि देने वाला। निक्षिपसि=रख देना। बन्धः=आलवालरचना-थाला। आशाबन्धम्=अभिलाषा का संयोजन॥ २६॥

साधु। इदानीमध्यवसितं करणीयम् (कञ्चुकिनमवलोक्य) आर्य जयन्धर! स्वशरीरेण शापितोऽसि तथापि न गम्यते।

कञ्चुकी—(साक्रन्दम्) हा देव पाण्डो। तव सुतानामजातशत्रु-भीमार्जुननकुलसहदेवनामयं दारुणः परिणामः। हा देवि कुन्ति! भोजराजभवनपताके!

भ्रातुस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन—
स्तस्यैवाखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः।
आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन मत्तेन वा
दग्धं त्वत्सुखकाननं ननु मही यस्याश्रयाच्छीतला॥२७॥

ठीक है। अब पहले से सोचा हुआ निश्चित कर्तव्य करना चाहिए। (कञ्चुकी को देखकर) आर्य जयन्धर! अपने शरीर की सौगन्ध (शपथ) दिलाई है, फिर भी नहीं जा रहे हो!

कञ्चुकी—(विलाप करते हुए) हाय, महाराज पाण्डु। आपके पुत्रों युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का यह भयंकर अन्त! हाय, भोजराज के महल की पताका सदृश महारानी कुन्ती।

अन्वयः—ते भ्रातुः तनयेन शौरिगुरुणा गाण्डीविनः श्यालेन अखिल-धार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः तस्य एव वृकोदरस्य आचार्येण मत्तेन वा उन्मत्तेन हलिना त्वत् सुतकाननं दग्धम्, यस्य आश्रयात् मही शीतला (आसीत्) ॥ २७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—ते=तव, भ्रातुः=वसुदेवस्य, तनयेन=पुत्रेण, शौरिगुरुणा शौरिः श्रीकृष्णः तस्य गुरुणा-अग्रजेन, गाण्डीविनः=अर्जुनस्य, श्यालेन=पत्नी सुभद्राभ्रात्रा, अखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने=अखिलधार्तराष्ट्राः-निखिलघृतराष्ट्रसुताः एव नलिनी-कमलिनी तस्याः व्यालोलने-दलने, दन्तिनः=हस्तिनः इवेत्यर्थः, तस्य=युद्धे मृतस्य, एव, वृकोदरस्य=भीमस्य, आचार्येण=गुरुणा, मत्तेन=मदिराविह्वलेनेत्यर्थः, वा=अथवा, उन्मत्तेन=उन्मादिना, हलिना=बलरामेण, त्वत्सुतकाननम्=तव-भवत्याः सुताः-पुत्राः एव काननम्-वनम्, दग्धम्=भस्मीकृतम्-विनाशितम्, यस्य=सुतकाननस्य, आश्रयात्=आश्रयणात्, मही=पृथ्वी, शीतला आसीत्=अभूत् ॥ २७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—ते=तुम्हारे, भ्रातुः=भाई के, तनयेन=पुत्र, शौरिगुरुणा=कृष्ण के बड़े भाई, गाण्डीविनः=अर्जुन के, श्यालेन=साले, अखिलधार्तराष्ट्र-नलिनीव्यालोलने=सम्पूर्ण धृतराष्ट्रकुलरूपी कमललता को उखाड़ फेंकने में, दन्तिनः=हाथी के समान, तस्य एव=उसी, वृकोदरस्य=भीम के, आचार्येण=गुरु, मत्तेन=मतवाले, वा=अथवा, उन्मत्तेन=पागल, हलिना=बलराम ने, त्वत्सुतकाननम्=तुम्हारा पुत्ररूपी वन, दग्धम्=जला डाला है। यस्य=जिस (पुत्ररूपी वन) के, आश्रयात्=आश्रय से, ननु=निश्चय ही, मही=पृथिवी, शीतला=शीतल थी ॥ २७ ॥

भावार्थ—तुम्हारे भाई वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण के बड़े भाई, अर्जुन के साले, धृतराष्ट्र के सम्पूर्ण पुत्रों रूपी कमललता को उखाड़ फेंकने में हाथी के समान, उसी भीमसेन के गुरु, बलराम के द्वारा मद्यपान से उन्मत्त हो अथवा पागल हो तुम्हारा पुत्र रूपी वन नष्ट कर दिया गया है कि जिस तुम्हारे पुत्ररूपी वन के आश्रय को प्राप्त कर संसार शान्ति का अनुभव किया करता था ॥ २७ ॥

अलंकारः—उक्त पद्य में 'विषम' नामक अलंकार है।

छन्द—इसमें 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है।

समासः—भोजराजभवनपताके=भोजदेशस्य राज्ञः यद्भवनं तस्य पताका इव—इति भोजराजभवनपताका—तत्सम्बुद्धौ। शौरिगुरुणा—शौरिणः गुरुः इति शौरिगुरुः, तेन। अखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने=अखिलधार्तराष्ट्राः एव नलिनी तस्याः व्यालोलने। त्वत्सुतकाननम्—तव सुताः—इति त्वत्सुताः एव काननम्—इति ॥ २७ ॥

टिप्पणियाँ—अध्यवसितम्—पहले से ही निर्धारित अथवा निश्चित। शापितः=सौगन्ध (शपथ) दिलाई गई। साक्रन्दम्=रुदन अथवा विलाप के साथ। दारुणः=भीषण, भयंकर—"दारुणं भीषणं भीष्मम्"। भोजराजभवनपताके—भोज देश (आजके समय में यह 'भूपाल' के नाम से प्रसिद्ध है।) के राजा के महल के लिए ध्वजा तुल्य—हे कुन्ती। कुन्ती भोजराज की पुत्री थी। वसुदेव की लाड़ली तथा कृष्ण की बुआ थी। शौरिः—श्रीकृष्ण। व्यालोलने—मंथन अथवा ध्वस्त करने में। हलिना—बलराम के द्वारा। सुतकाननम्=तुम्हारे पुत्रों रूपी वन को। दग्धम्—जला डाला—नष्ट कर डाला। यस्य आश्रयात् मही शीतला—जिस (तुम्हारे पुत्रों रूप वन) के आश्रय को प्राप्त कर पृथ्वी शीतल थी—अर्थात् आपके जिन (भीम और अर्जुन) के आश्रय को प्राप्त कर संसार शान्ति और सन्तोष का अनुभव किया करता था ॥ २७ ॥

[इति रुदन्निष्क्रान्तः।]

युधिष्ठिरः—जयन्धर, जयन्धर !

[प्रविश्य]

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः।

युधिष्ठिरः—वक्तव्यमिति ब्रवीमि। न पुनरेतावन्ति भागधेयानि नः। यदि कदाचिद्विजयी स्याद्वत्सोऽर्जुनस्तद्वक्तव्योऽस्मद्वचनाद्भवता—

हली हेतुः सत्यं भवति मम वत्सस्य निधने
तथाप्येष भ्राता सहजसुहृदस्ते मधुरिपोः ।
अतः क्रोधः कार्यो न खलु मयि चेत्प्रेम भवतो
वनं गच्छेर्मा गाः पुनरकरुणां चात्रपदवीम् ॥२८॥

[इस प्रकार रोता हुआ बाहर चला जाता है ।]

युधिष्ठिर—जयन्धर ! जयन्धर !

[प्रवेश करके]

कञ्चुकी—महाराज ! आज्ञा दीजिए ।

युधिष्ठिर—कहना चाहिये, इसलिए कह रहा हूँ । हमारे ऐसे भाग्य तो नहीं हैं । यदि कहीं वह अर्जुन विजयी हो जाय तो आप मेरी ओर से (उससे) कह देना—

अन्वयः—सत्यं मम वत्सस्य निधने हली हेतुः भवति, तथापि एषः ते सहजसुहृदः मधुरिपोः भ्राता । अतः भवता (तस्मिन्) क्रोधः न खलु कार्यः, चेत् भवतः प्रेममयि (तदा) वनं गच्छेः । पुनः अकरुणां क्षात्रपदवीं मा गाः ।२८।

संस्कृत-व्याख्या—सत्यम्=यद्यपि, मम=मे=युधिष्ठिरस्य, वत्सस्य=स्नेह्यस्य अनुजस्य भीमस्य, निधने=मरणे, हली=बलरामः, हेतुः=कारणम्, भवति, तथापि=एवं सत्यपि, एषः=अयं बलरामः, ते=तव, सहजसुहृदः=स्वाभाविकमित्रस्य, मधुरिपोः=श्रीकृष्णस्य, भ्राता=अग्रजन्मा सहोदरः, अस्तीति शेषः । अतः=अस्मात् कारणात्, भवता=त्वया, (तस्मिन्=बलरामे) क्रोधः=कोपः, न=नहि, खलु, कार्यः=विधेयः चेत्=यदि, भवतः, प्रेम=स्नेहः, मयि=युधिष्ठिरे, (तदा=त्वम्) वनम्=अरण्यम्, गच्छेः=व्रजेः । पुनः=भूयः, अकरुणाम्=निर्दयाम्, क्षात्रपदवीम्=क्षत्रियोचितमाचरणम्=बलरामवधरूपमाचरणम्=इत्यर्थः, मा गाः=न गमिष्यसि ॥ २८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—सत्यम्=यद्यपि, मम=मुझ युधिष्ठिर के वत्सस्य=प्रिय छोटे भाई, भाई भीम के, निधने=मरने में, हली=बलराम ही, हेतुः=कारण, भवति=होते हैं, तथापि=फिर भी, एषः=यह बलराम, ते=तुम्हारे, सहज

सुहृदः=स्वाभाविक मित्र, मधुरिपोः=श्रीकृष्ण के, भ्राता=भाई हैं। अतः=इसलिये, भवता=आप द्वारा, (तस्मिन्=उन पर), क्रोधः=कोप, न कार्यः=नहीं किया जाना चाहिये। चेत्=यदि, भवतः=आपका, प्रेम=प्रेम, मयि=मुझ युधिष्ठिर के प्रति हो (तदा=तो) त्वम्=तुम, वनम्=वन को, गच्छे=चले जाना। पुनः=किन्तु, अकरुणाम्=निर्दयतापूर्ण, क्षत्रियपदवीम्=क्षत्रियोचित मार्ग का, मा गाः=अनुसरण न करना ॥ २८ ॥

भावार्थ—यद्यपि मेरे प्रिय छोटे भाई भीम के मारने में बलराम ही कारण हैं तो भी वे तुम्हारे सच्चे मित्र श्री कृष्ण के बड़े भाई हैं। अतः उन पर क्रोध मत करना। यदि तुम्हारा मेरे प्रति वास्तविक स्नेह हो और किसी प्रकार जीते बच जाओ तो बन को चले जाना किन्तु क्रूर तथा निर्दयता से परिपूर्ण जो क्षत्रियोचित आचरण (बदला लेने की पद्धति) है उसपर मत चलना (अर्थात् बलराम जी से बदला लेने का प्रयास न करना।) ॥ २८ ॥

अलङ्कार—उक्त पद्य में "काव्यलिङ्ग" अलङ्कार है।

छंन्द—इसमें "शिखरिणी" छन्द है।

टिप्पणियाँ—सत्यम्=यद्यपि, वस्तुतः। निधने=मरने मे। मधुरिपोः=मधु नामक राक्षस के हन्ता-श्रीकृष्ण के। क्षात्रपदवीम्=क्षत्रियोचित आचरण—अर्थात् बलराम से बदला लेने रूपी आचारण। मा गाः=मत करना ॥ २८ ॥

कञ्चुकी—यथाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।)

युधिष्ठिरः—(अग्निं दृष्ट्वा सहर्षम्) कृष्णे! ननूद्धतशिखाहस्ताहूतास्मद्विधव्यसनिजनः समिद्धो भगवान्हुताशनस्तत्रेन्धनीकरोष्यात्मानम्।

द्रौपदी—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजो ममानेनापश्चिमेन प्रणयेन। अहं तावदग्रतः प्रविशामि (पसीदहु पसीदहु महाराओ मम इमिणा अपच्छिमेण पणएण। अहं दाव अग्गदो पविसामि।)

युधिष्ठिर—यद्येवं सहितावेवाभ्युदयमुपभोक्ष्यामहे।

चेटी - हा भगवन्तो लोकपाला! परित्रायध्वम्। एव खलु सोमवंशराजर्षी राजसूयसंतर्पितहव्यवाहः खाण्डवसंतर्पितहुतवहस्य किरीटिनो ज्येष्ठो भ्राता सुगृहीतनामधेयो महाराजयुधिष्ठिरः। एषापि पाञ्चालराजतनया देवी यज्ञवेदिमध्यसंभवा याज्ञसेनी। द्वावपि निष्करुणज्वलनस्य प्रवेशेनेन्धनीभवतः। तत्परित्रायध्वमार्याः, परित्रायध्वम्। कथं न कोऽपि परित्रायते। (तयोरग्रतः पतित्वा) किं व्यवसितं देव्या देवेन च ?

(हा भग्रवन्तो लोग्रवाला, परित्ताअह परित्ताअह। एसो क्खु सोमवंसराएसी राग्रसूअ संतप्पिवहव्ववाहो लण्डवसंतप्पिवहुदवहस्स किरीडिणो जेट्ठो भादा सुग्गहीदणामहेओ महाराअजुहिट्ठिरो। एसा वि पाञ्चालराअतणग्रा देवी जण्णवेदिमज्जसंभवा जण्णसेणी। दुवे वि णिक्करुणजलणस्स प्पवेसेण इन्धणीहोन्ति ता परित्ता अह अज्जा परित्ताअह। कधं ण को वि परित्ताअदि। किं ववसिवं देवीए देवेण अ।)

युधिष्ठिर—अयि बुद्धिमति के! यद्वत्सलेन प्रियानुजेन विना सदृशं तत्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, भद्रे! उदकमंपनथ।

(चेटी तथा करोति।)

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। (यह कहकर बाहर चला जाता है।)

युधिष्ठिर—(अग्नि को देखकर हर्ष के साथ) हे द्रौपदी! ऊपर उठती हुई ज्वाला रूपी हाथों से हम जैसे विपत्ति में पड़े हुये लोगों को आमन्त्रित करने वाला भगवान् अग्निदेव प्रज्वलित हो गये हैं। (अब) इसमें स्वयं को इंधन बनाता हूँ।

द्रौपदी—प्रसन्न हो जाइये महाराज! प्रसन्न हो जाइये मेरी इस अन्तिम प्रार्थना से (अर्थात् मेरी यह अन्तिम प्रार्थना स्वीकार कीजिये।)। अब मैं अग्नि में पहले प्रवेश करूं (अर्थात् आप मुझे अग्नि में अपने से पहले ही प्रवेश करने दे।)।

युधिष्ठिर—यदि ऐसा है तो हम दोनों साथ-साथ ही अभ्युदय का उपभोग करेंगे। (अर्थात् एक साथ ही अग्नि में कूद कर दुःख से मुक्त होंगे।)।

चेटी—हाय भगवान् लोकपालो! रक्षा कीजिये। यह चन्द्रवंश के राजर्षि, राजसूय यज्ञ द्वारा अग्नि कोतृप्त करने वाले, खाण्डव वन से अग्नि को सन्तुष्ट करने वाले, अर्जुन के बड़े भाई, प्रातःस्मरणीय नाम वाले महाराज युधिष्ठिर हैं। और यह भी पाञ्चाल-राज की पुत्री, यज्ञ के वेदी से उत्पन्न होने वाली, महारानी द्रौपदी हैं। दोनों ही क्रूर (निर्दय) अग्नि में प्रवेश करके भस्म होने जा रहे हैं। तो हे महानुभावो! बचाइये, बचाइये। क्या कोई भी नहीं बचा रहा है? (उन दोनों के आगे गिरकर) महाराज और महारानी ने यह क्या ठान रखा है?

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिके! प्रेम करने वाले, प्रिय अनुज के बिना जो उचित है वही (ठान रखा है।)। उठो, उठो कल्याणी! जल ले आओ।

(चेटी वैसा ही करती है।)

समासः—**उद्धतशिखाहस्ताहूतास्मद्विधव्यसनिनजनः**=शिखाः एव हस्ताः, उद्धताः—उत्थापिताः ये शिखाहस्ताः तैः आहूताः—आकारिताः अस्मद्विधाः व्यसनिजनाः येन स तथा भूतः। **सोमवंशराजर्षिः**=सोमवंशस्य राजा ऋषिः इव—इति। **राजसूयसन्तर्पितहव्यवाहः**=राजा सोमः सूयते अत्र इति राजसूयः, तेन संतर्पितः हव्यवाह, येन सः। **खाण्डवसन्तर्पितहुतवहस्य**=खाण्डवेन-खाण्डवनामवनेन सन्तर्पितः हुतवहः—अग्निः येन, तस्य।=**सुगृहीतनामधेयः**=सुष्ठु गृहीतं इति सुगृहीतम् सुगृहीतं-प्रातः स्मृतं नामधेयं यस्य स तथोक्तः। **यज्ञवेदिमध्यसम्भवा**=यज्ञस्य वेद्याः मध्ये सम्भवः—उत्पत्तिः यस्याः सा।

टिप्पणियाँ—**उद्धताः**=ऊपर उठी हुई। **शिखाः**=ज्वालायें। **आहूता**=बुलाया गया। **व्यसनिजनाः**=दुःखी लोग। **हुताशनः**=अग्नि। **इन्धनीकरोमि**=भस्म करता हूँ। **अपश्चिमेन**=(न पश्चिमो यस्मात्तेन चरमेणेत्यर्थः।) जो प्रथम न हो अर्थात् अन्तिम। **प्रणयेन**=प्रार्थना या याचना से। **अभ्युदयम्**=कल्याण, सुख। **उपभोक्ष्यावहे**=उपभोग करें-

अनुभव करें। लोकपालाः=लोकरक्षक इन्द्र आदि देवता। सोमः= चन्द्र। हव्यवाहः=अग्नि। खाण्डवेन=कुरुक्षेत्र प्रदेश में खाण्डव नाम का एक वन था। इस वन को इन्द्र का मित्र कहा जाता है। अर्जुन तथा कृष्ण की सहायता से अग्नि ने इव वन को जला डाला था। अग्नि की इससे पर्याप्त तृप्ति हो गई थी। (देखिये–महाभारत-आदिपर्व-२२४-२३०)। किरीटिनः=अर्जुन का। सुगृहीतनामधेयः=प्रातःस्मरणीय। यज्ञवेदि-मध्यसम्भवा=आचार्य द्रोण का आदेश पाकर अर्जुन ने जीवित अवस्था में ही राजा द्रुपद को बन्दी बनाकर उनको गुरुदक्षिणा के रूप में आचार्य द्रोण के समक्ष लाकर उपस्थित कर दिया। द्रोण ने पहले उन्हें अपमानित किया और बाद में छोड़ दिया। द्रुपद ने "याज" "तथा" "अनुयाज" नामक ऋषियों की सहायता से एक ऐसा यज्ञ किया कि जिस यज्ञ की ज्वालाओं से 'धृष्टद्युम्न' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसने आचार्य द्रोण का वध किया और यज्ञ की वेदी के मध्यभाग से द्रौपदी नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका पाणिग्रहण 'अर्जुन' के साथ हुआ (देखिये–महाभा० आदिपर्व–अ० १४०-१६९।)। याज्ञसेनी=द्रौपदी। व्यवसितम्=निर्णित किया है: निश्चित किया है।

युधिष्ठिर—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च) एष तावत्सलिलाञ्जलि-र्गाङ्गेयाय भीष्माय गुरवे। अयं प्रपितामहाय शान्तनवे। अयमपि पितामहाय विचित्रवीर्याय (सास्रम्) तातस्याधुनावसरः। अयमपि तत्रभवते सुगृहीतनाम्ने पित्रे पाण्डवे।

अद्यप्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः।
तात माद्र्या त्वया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर–(पैरों को धोकर और आचमन करके) जल की यह अञ्जलि तो गङ्गा के पुत्र गुरु भीष्म के लिये है। यह प्रपितामह शान्तनु के लिये है। यह भी पितामह विचित्रवीर्य के लिए है। (अश्रुधारा के साथ) अब पिता जी की बारी है। यह (जलाञ्जलि) पूजनीय, प्रातःस्मरणीय पिता पाण्डु के लिये है।

अन्वय—हे तात ! मया दत्तं अद्यप्रभृति अस्मत्तः पुनः दुर्लभं इदं दत्तं वारि त्वया माद्र्यम्बया सार्धं निपीयताम् ॥ २९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे तात !=हे पितः !, मया=युधिष्ठिरेण, दत्तम्=समर्पितम, अद्यप्रभृति=अद्यारम्य, अस्मत्तः, पुनः=भूयः, दुर्लभम्=दुष्प्राप्यम्, इदम्, दत्तम्, वारि=जलम्, त्वया, माद्र्यम्बया=मात्रा माद्र्या, सार्धम्=साकम्, निपीयताम्=पीयताम् ॥ २९ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हे तात ।=हे पिता जी ।, मया=मुझ युधिष्ठिर द्वारा, दत्तम्=दिया हुआ, तथा, अद्यप्रभृति=आज से, अस्मत्तः=हम से, पुनः=फिर दुर्लभम्=दुष्प्राप्य, इदम्=यह, वारि=जल (निवापजल) त्वया=तुम्हारे द्वारा, माद्र्यम्बया=माँ माद्री के, सार्धम्=साथ, निपीयताम्=पिया जाय ।२९।

भावार्थ—हे पिता जी । अब आज के पश्चात् हमारे द्वारा किया गया तर्पण का जल तुमको मिलना दुर्लभ हो जायगा । अतः आज मेरे द्वारा दिये गये इस जल को आप माता माद्री के अवश्य पीजिये ।। २९ ॥

अलंकार—उक्त पद्य में "काव्यलिङ्ग" नामक अलंकार है ।

छन्दः—इसमें 'पथ्यावक्त्र' छन्द है । लक्षण—"युजोश्चतुर्थतो येन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ।"

टिप्पणियाँ—गांगेयाय=गङ्गा के पुत्र भीष्म के लिए । माद्र्यम्बया=पाण्डु के दो पत्नियां थीं (१) कुन्ती (२) माद्री । नकुल एवं सहदेव की उत्पत्ति माद्री से हुयी थी । माद्री अपने पति पाण्डु के साथ ही चिता में सती हो गई थी । लोगों द्वारा समझाये जाने पर कुन्ती छोटे बच्चों की देख-भाल के निमित्त बच गई थी ॥ २९ ॥

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय
भीमाय भोस्तव मताप्यविभक्तमस्तु ।
एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि
पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥३०॥

अन्वय—जलजनीलविलोचनाय भीमाय (दत्तम्) एतत् जलं भो वत्स । तव मत अपि अविभक्तं अस्तु । तु पिपासितः अपि (त्वम्) एकं क्षणं विरम् त्वया सह पातुं अयं (अहम्) जवात् आगतः अस्मि ॥ ३० ॥

संस्कृत-व्याख्या—जलजनीलविलोचनाय=जलजं-कुवलयमिव नीले-श्यामवर्णे विलोचने-नेत्रे यस्य तस्मै, भीमाय, (दत्तम्=प्रदत्तम्), एतत्=इदम्, जलम्=सलिलम्-जलाञ्जलिरिति यावत्, भो वत्स=हे भीम, तव=भीमस्य, मम=युधिष्ठिरस्य, अपि, अविभक्तम्=सम्मिलितम्, अस्तु=भवतु। तु=किन्तु, पिपासितः=तृषितः, अपि, त्वम्, एकम्, क्षणम्=मुहूर्त्तम्, विरम=विलम्ब कुरु, त्वया=भवता, सह=सार्धम्, पातुम्=पान कर्तुम्, अयम्=एषः (अहम्), जवात्=वेगात्, आगतः=आयातः, अस्मि। शीघ्रमेव चिताधिरोहणं कृत्वा तव समीपे अहं वेगात् आगतः एवास्मि-इत्यभिप्रायः ॥ ३० ॥

हिन्दी-अनुवाद—जलजनीलविलोचनाय=नीलकमल के सदृश नीले नेत्रों वाले, भीमय=भीमके लिये, (दत्तम्=दिया हुआ) एतत्=यह, जलम्=जल (जलकी यह अंजलि), भो वत्स=हे भाई भीम, तव=तुम्हारी व, मम=मेरी (दोनों की), अविभक्तम्=सम्मिलित रूप से, अस्तु=होवे। तु=किन्तु, पिपासितः अपि=प्यासे होने पर भी, (त्वम्=तुम), एकम्=एक, क्षणम्=क्षण के लिये, विरम=रुक जाना। त्वयां सह=तुम्हारे साथ, पातुम्=पीने के लिये, अयम्=यह, (अहम्=मैं-युधिष्ठिर), जवात्=वेग से-शीघ्रता से, आगतः=आ ही गया, अस्मि=हूँ ॥ ३० ॥

भावार्थः—जल की यह अञ्जलि नीलकमल के समान नेत्रों वाले भाई भीम के लिये है। हे भाई भीम इस जलाञ्जलि को तुम अविभक्त (बिना बंटी हुई) ही रखना ताकि यह मेरे लिये भी हो सके। यद्यपि मैं जानता हूँ कि तुम प्यासे हो किन्तु फिर भी तुम एक क्षण के लिये मेरी प्रतीक्षा करना। मैं भी इसका पान करने के लिये तुम्हारे पास पहुँच ही रहा हूँ (अर्थात् शीघ्र ही इस चिता पर चढ़कर मैं तुम्हारे पास पहुंच रहा हूँ।) ॥३०॥

छन्दः—उक्त पद्य में "वसन्ततिलका" छन्द है॥ ३० ॥

अथवा सुक्षत्रियाणां गति मुपगतं वत्समहमुपगतोऽप्यकृती द्रष्टुम्। वत्स भीमसेन !

मया पीतं पीतं तदनु भवताम्बास्तनयुगं
मदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया।
वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू—
न्निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेव त्वमधुना ॥३१॥

अथवा समीप पहुंच जाने पर भी मैं वीर क्षत्रियों की गति को प्राप्त हुये वत्स भीम को देखने में सफल नहीं होऊँगा। वत्स भीमसेन!

अन्वयः—अम्बास्तनयुगं मया पीतम् तदनुभवता पीतम्; वत्सलतया मदुच्छिष्टैः रसैः वृत्ति जनयसि। वितानेषु अपि तव च मम सोमे एवं विधिः अभूत्। अधुना त्वं निवापाम्भः पूर्वं कथं पिबसि? ॥ ३१ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अम्बास्तनयुगम्=अम्बायाः-मातुः स्तनयुगम्-स्तन-युगलम्, मया=(पूर्वं) युधिष्ठिरेण, पीतम्=आस्वादितम्; तदनु=तत्पश्चात्, भवता=भीमेन पीतम्=आस्वादितम्, वत्सलतया=स्नेहेन, मदुच्छिष्टैः=मद्भोजनपानावशिष्टैः, रसैः=दुग्धादिभिः, वृत्तिम्=जीविकाम्, जनयसि=अजनयः। वितानेषु=यज्ञेषु; अपि, तव=भवतः, च, मम=युधिष्ठिरस्य, सोमे=सोमरसपाने, एवम्=इत्थम्, विधिः=प्रकारः क्रमो वा, अभूत्=जातम्। अधुना=सम्प्रति, त्वम्, निवापाम्भः=तिलमिश्रितजलाञ्जलिमित्यर्थः, पूर्वम्=मत्तः प्राक्, कथम्=केन प्रकारेण, पिबसि=पास्यसीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

हिन्दी-अनुवाद—अम्बास्तनयुगम्=माँ के दोनों स्तनों को, मया=पहले मुझ युधिष्ठिर द्वारा, पीतम्=पिया गया था, तदनु=तत्पश्चात्, त्वया=तुम्हारे द्वारा, पीतम्=पिया गया था। वत्सलतया=स्नेह के कारण, मदुच्छिष्टैः=मेरे द्वारा खाने व पीने स बचे हुये, रसैः=दुग्ध आदि से, वृत्तिम्=जीविका को, जनयसि=उत्पन्न करते थे अर्थात् अपनी उदरपूर्ति तुम किया करते थे। वितानेषु=यज्ञों में, अपि भी, तव=तुम्हारा, च=और, मम=मेरा; सोमे=सोम-पान करने में, एवम्=इसी प्रकार का, विधिः=क्रम, अभूत्=थी। अधुना इस समय, त्वम् = तुम, निवापाम्भः = जलाञ्जलि को, पूर्वम् = मुझ से पहले, कथम्=कैसे, पिबसि=पी रहे हो अथवा पियोगे? ॥ ३१ ॥

भावार्थः—हे प्रिय भाई भीम ! पहले माँ कुन्ती का स्तन-पान मैंने ही किया था और तत्पश्चात तुमने किया था। मेरे खाने तथा पीने से बचें हुये दुग्धादि पदार्थों का सेवन तुम सदैव करते रहे हो। सभी प्रकार के यज्ञों में भी सोमपान आदि का क्रम हम दोनों के बीच यही रहा करता था। फिर अब इस समय इस जलाञ्जलि को तुम मुझसे पहले क्यों पी रहे हो ? ॥३१॥

अलङ्कारः—उक्त पद्य में 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है।

छन्द—इसमें 'शिखरिणी' छन्द है।

टिप्पणियाँ—गतिम् = स्वर्ग आदि की प्राप्ति। अकृती = असमर्थ। वृत्तिम् = जीविका को, उदरपूर्ति को। विधि = प्रकार, क्रम। निवापः = पितरों को दिये जाने योग्य। अम्भः = जल। "तिलमिश्रित जल की अञ्जलि" से अभिप्राय है ॥३१॥

कृष्णे। त्वमपि देहि सलिलाञ्जलिम्।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमतिके। उपनय मे सलिलम्। (हञ्जे बुद्धिमदिए, उवणेहि मे सलिलम्।)।

(चेती तथा करोति।)

द्रौपदी—(उपसृत्य जलाञ्जलिं पूरयित्वा) महाराज। कस्मै सलिलं ददामि। (महाराअ, कस्स सलिलं देह्मि।)।

युधिष्ठिरः—

तस्मै देहि जलं कृष्णे सहसा गच्छते दिवम्।
अद्यापि येन गान्धार्या रुदितेन सखीकृता ॥ ३२ ॥

हे द्रौपदी ! तुम भी जलाञ्जलि दो।

द्रौपदी—सखि बुद्धिमतिके ! मुझे जल लाकर दो।

[चेटी वैसा ही करती है।]

द्रौपदी—(समीप में जाकर, अञ्जलि को जल से भर कर) महाराज ! किसे जल दूं ?

युधिष्ठिर—

अन्वयः—हे कृष्णे सहसा दिवं गच्छते तस्मै जलं देहि येन अम्बा अपि रुदितेन गान्धार्याः सखीकृता ॥ ३२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे कृष्णे ! = हे द्रौपदी !, सहसा = अकस्मात्, दिवम् = स्वर्गं, गच्छते = व्रजते, तस्मै = भीमाय-इत्यर्थः, जलम् = तिलमिश्रितजलाञ्जलिम्, देहि = अर्पय, येन = येन भीमेन, अम्बा = कुन्ती, अपि, रुदितेन = (पुत्रमरणोत्पन्नेन) विलापेन, गान्धार्याः = दुर्योधन मातुः, सखीकृता = तथैव रोदनवतीकृता ॥ ३२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हे कृष्णे !=हे द्रौपदी !, सहसा=एकाएक, दिवम्-स्वर्ग को, गच्छते=जाने वाले, तस्मै=उस भीम के लिये, जलम्-जल, देहि=दो, येन=जिस (भीम) के द्वारा, अम्बा=माँ कुन्ती, अपि=भी, रुदितेन=रोने के द्वारा, गान्धार्याः=(दुर्योधन की माता) गान्धारी की सखीकृता=सहेली बना दी गई ॥ ३२ ॥

भावार्थ—हे द्रौपदी ! तू उस ही भीम को जल दे कि जो (भीम) गान्धारी के साथ ही साथ मां कुन्ती को भी रुलाकर स्वर्ग को चला गया। (भीम ने ही गान्धारी के सौ पुत्रों को मारकर उसे रुलाया था।) ।

छन्द—उक्त पद्य में "पथ्यावक्त्र" छन्द है ।

द्रौपदी—नाथ भीमसेन ! परिजनोपनीतमुदकं स्वर्गगतस्य ते पादोदकं भवतु । [णाह भीमसेण, परिअणोवणीदं उदअं सग्गगदस्स दे पादोदअं भो दु ।] ।

युधिष्ठिरः – फाल्गुनाग्रज !

असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि याते त्वयि महाभुजे ।
मुक्तकेश्यैव दत्तस्ते प्रियया सलिलाञ्जलिः ॥३३॥

द्रौपदी–हे स्वामी भीमसेन ! मुझ सेविका द्वारा दिया गया यह जल स्वर्ग में गये आपके पैर धोने के लिये हो ।

युधिष्ठिर—हे अर्जुन के बड़े भाई (भीम) !

अन्वयः—असमाप्तप्रतिज्ञे अपि महाभुजे त्वयि याते सति ते प्रियया मुक्तकेश्या एव सलिलाञ्जलिः दत्तः ॥ ३३ ॥

संस्कृत-व्याख्या:—असमाप्तप्रतिज्ञे=अपूरितवेणीसंवरणप्रतिज्ञे, अपि, महाभुजे=महान्तौ-विशालौ भुजौ-बाहू यस्य सः, तस्मिन्, त्वयि=भवति-भीमे, याते=स्वर्गं गते, सति; ते-तव, प्रियया=प्रियया द्रौपद्या-इत्यर्थः, मुक्तकेश्या=असंयमितवेण्या-अबद्धकेशया, एव, सलिलाञ्जलिः=जलाञ्जलिः, दत्तः=समर्पितः ॥ ३३ ॥

हिन्दी-अनुवाद--असमाप्तप्रतिज्ञे=वेणीसंयमनरूप अपनीप्रतिज्ञा के पूर्ण किये विना, अपि=भी, महाभुजे=विशालभुजाओं वाले त्वयि=आपके, याते-सति=स्वर्ग को चले जाने पर, ते=तुम्हारी, प्रियया=प्रिया (द्रौपदी) के द्वारा, मुक्तकेश्या=खुली हुयी वेणी के साथ, एव=ही, सलिलाञ्जलि.=निवापाञ्जलि दे दी गई है ॥ ३३ ॥

भावार्थ:—हे स्वामी भीमसेन ! आप तो अपनी वेणीसंयमन रूप प्रतिज्ञा को पूर्ण किये विना ही स्वर्ग को चले गये। अतः तुम्हारी प्रिया द्रौपदी खुले केशों के साथ ही तुमको जलाञ्जलि दे रही है ॥ ३३ ॥

छन्दः—उक्त श्लोक में "पथ्यावक्त्र" छन्द है।

समासः—असमाप्तप्रतिज्ञे=असमाप्तः प्रतिज्ञा-प्रणः येन तथा भूते। महाभुजो=महान्तौ भुजौ यस्य सः महाभुजः, तस्मिन्। मुक्तकेश्या=मुक्ताः केशाः यस्याः सा मुक्तकेशी, तया ॥ ३३ ॥

द्रौपदी--उत्तिष्ठ महाराज ! दूरं गच्छति ते भ्राता। (उट्ठेहि महाराअ, दूरं गच्छदि दे भादा।)।

युधिष्ठिर:—(दक्षिणाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा)।

पाञ्चालि ! निमित्तानि मे कथयन्ति संभावयिष्यसि वृकोदरमिति।

द्रौपदी—महाराज ! सुनिमित्तं भवतु। (महाराअ, सुणिमित्तं भोदु।)।

[नेपथ्ये कलकलः]

[प्रविश्य संभ्रान्तः]

कञ्चुकी—परित्रायतां परित्रायतां महाराजः। एष खलु दुरात्मा कौरवापसदः क्षतजाभिषेकपाटलिताम्बरशरीरः समुच्छ्रितदिग्धभीषणगदापाणिरुद्यतकालदण्ड इव कृतान्तोऽत्रभवतीं पाञ्चालराज्यतनयामितस्ततः परिमार्गमाणः इत एवाभिवर्तते।

युधिष्ठिरः—हा देव ! ते निर्णयो जातः। हा गाण्डीवधन्वन्।

[इति मुह्यति]

द्रौपदी—हा आर्यपुत्र ! हा मम स्वयंवरस्वयंग्राहदुर्ललित, प्रियं भ्रातरमनुगतोऽसि, न पुनर्महाराजमिमं दासजनं च (इति मोहमुपगता)। (हा अज्जउत्त, हा मम सअंवरसअंगाहदुल्ललिद, पिअं भादुअं अणुगदोसि। ण उण महाराअं इमं दासजणं अ।)

युधिष्ठिरः—हा वत्स सव्यसाचिन् ! हा त्रिलोचनाङ्गनिष्पेषमल्ल ! हा निवातकवचोद्धरणनिष्कण्टकीकृतामरलोक ! हा वदर्याश्रममुनिद्वितीयतापस !, हा द्रोणाचार्यप्रियशिष्य ! हा अस्त्रशिक्षाबलपरितोषितगाङ्गेय ! हा राधेयकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष ! हागन्धर्वनिर्वासित दुर्योधन ! हा पाण्डवकुलकमलिनीराजहंस !

तां वत्सलामनभिवाद्य विनीतमम्बां
गाढं च मामनुपगुह्य मयाप्यनुक्तः।
एतां स्वयंवरवधूं दयितामदृष्ट्वा
दीर्घप्रवासमयि तात कथं गतोऽसि ॥ ३४ ॥

द्रौपदी—महाराज ! उठिये, आपके भाई दूर चले जा रहे हैं।

युधिष्ठिर—(दाहिनी आँख का फड़कना सूचित करके) हे द्रौपदी। मेरे शकुन बतला रहे हैं कि (तुम) भीम को प्राप्त करोगी।

द्रौपदी—महाराज ! आपके शकुन शुभ (शकुन) बनें।

(पर्दे के पीछे कलकल ध्वनि होती है।)

(प्रवेश करके घबराया हुआ।)

कञ्चुकी—बचाइये, बचाइये महाराज ! रक्त से रँगे हुये लाल वस्त्र तथा शरीरवाला, रक्त से लिप्त भीषण गदा को हाथ में उठाये हुये, (अतएव) कालदण्ड उठाये हुये यमराज के समान, यह नीच दुरात्मा अधम कौरव आदरणीया पाञ्चाल राजकुमारी द्रौपदी को इधर-उधर खोजता हुआ इस ओर ही आ रहा है।

युधिष्ठिरः—हा भाग्य ! तेरा निर्णय हो गया। हाय, गाण्डीवधारी (अर्जुन) !

[ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाता है]

द्रौपदी—हाय आर्यपुत्र ! हाय मेरे स्वयंबर में स्वयं ही सम्मिलित होने के दुराग्रही (अर्जुन) ! (तुम भी) प्रिय भाई भीम के पीछे-पीछे चले गये ? न कि इन महाराज युधिष्ठिर और इस मुझ दासी का (अनुसरण किया अर्थात् इनका तथा मेरा कुछ भी विचार नहीं किया।)।

युधिष्ठिरः—हा ! प्रिय भाई सव्यसाचिन् (दोनों हाथों से धनुष को चलाने वाले), हा ! भगवान् शंकर के अङ्गों का मर्दन करने वाले, हा ! निवात एवं कवच नामक दैत्यों को उखाड़ फेंकने से देवलोक को कण्टक विहीन बना देने वाले, हा ! बदरिकाश्रम के दूसरे तपस्वी, हा ! द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, हा ! अस्त्रों की शिक्षा के बल से गंगा-पुत्र (भीष्म) को सन्तुष्ट करने वाले, हा ! राधा-पुत्र कर्ण के कुल रूपी कमलिनी के लिये हिमपात-स्वरूप, हा ! गन्धर्व (की पकड़) से दुर्योधन को छुड़ाने वाले हा ! पाण्डव-कुलरूपी कमलिनी के राजहंस, ।

अन्वयः—अयि तात ! तां वत्सलां अम्बां विनीतं मां अनभिवाद्य च मां गाढं अनुपगुह्य, मया अपि अनुक्तः एतां स्वयंबरवधूं दयितां अदृष्ट्वा दीर्घ-प्रवासं कथं गतः असि ? ॥ ३४ ॥

संस्कृत-व्याख्या:--अयि तात !=हे प्रियानुज अर्जुन !, ताम्=पूज्याम्, वत्सलाम् स्नेहवतीम्, अम्बाम्=मातरम्-कुन्तीम्, विनीतम्=सविनयं यथा, तथा अनभिवाद्य=अप्रणम्य, च, माम्=स्वाग्रजं युधिष्ठिरम्, अनुपगुह्य=अनालिङ्ग्य, मया=अग्रजेन मया युधिष्ठिरेण, अपि, अनुक्तः=अननुज्ञातः, एतान् = इमाम्, स्वयंवरवधूम्=स्वयं वृणीत इति स्वयंवरा सा चासौ वधू ताम्, दयिताम्= प्रियाम्, अदृष्ट्वा=अनवलोक्य, दीर्घप्रवासम्=चिरप्रवासम्-मरणमिति यावत्, कथम्=केन प्रकारेण, गतः=यातः, असि ? ॥ ३४ ॥

हिन्दी-अनुवाद--अयि तात !=हे प्रिय छोटे भाई अर्जुन, ताम्=उस, वत्सलाम्=स्नेह करने वाली, अम्बाम्=माँ (कुन्ती) को, विनीतम्=नम्रता के साथ, अनभिवाद्य=विना प्रणाम किये ही, च=और, माम्=मुझ दुर्योधन को, गाढम् अनुपगुह्य=गाढ़ालिङ्गन किये विना ही, मया=मेरे द्वारा, अपि=भी, अनुक्तः=आज्ञा प्रदान न किये ही, एताम्=इस, स्वयंवरवधूम्=स्वयं वरणकर के लाई गई हुई, दयिताम्=प्रिया-'द्रौपदी' को, अदृष्ट्वा=बिना देखे ही, दीर्घप्रवासम्=चिरकालीनप्रवास के लिये, कथं गतः असि=क्यों चले गये हो ? ॥ ३४ ॥

भावार्थ—प्रिय भाई अर्जुन ! तुम अपनी स्नेहार्द्र माता को बिना प्रणाम किये ही तथा मेरा (मुझ युधिष्ठिर का) गाढ़-आलिङ्गन किये विना एवं बिना मेरे आदेश को प्राप्त किये ही और अपनी स्वयंवर से लाई गई हुई वधू द्रौपदी को भी विना देखे ही इस लम्बे प्रवास (दूरयात्रा-स्वर्ग) के लिये किस भाँति चले गये हो ? ॥ ३४ ॥

अलंकार--उक्त पद्य में 'परिकर' नामक अलङ्कार है।

छन्दः--इसमें 'वसन्ततिलका' छन्द है।

समास—कौरवापसदः=कौरवेषु-कुरुपुत्रेषु अपसदः-नीचः। क्षतजाभिषेकपाटलिताम्बरशरीरः=क्षतात्-व्रणात् जायते इति क्षतजं-रक्तं, तेन यःअभिषेकः-स्नानम् तेन पाटलितंरक्तीकृतं अम्बरं-वस्त्रं शरीरं च यस्य सः। समुच्छ्रितदिग्धभीषणगदापाणिः=समुच्छ्रिता-उत्थापिता दिग्धा-रक्तलिप्ता भीषणा च गदा पाणौ यस्य सः। उद्यतकालदण्डः=उद्यतः

कालदण्डः येन, तथाभूतः। **स्वयंवरस्वयंग्राहदुर्ललित**=स्वयंवरे यः स्वयंग्राहः-पतित्वेन वरणं स एव दुर्ललितं यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ। **सव्यसाचिन्**-सव्येन-वामकरेण सचते दक्षिण-हस्तेनेव बाणान् वर्षते असौ सव्यसाची; तत्सम्बुद्धौ। **त्रिलोचनाङ्गनिष्पेषमल्ल**-त्रिलोचनस्य किरातवेषधारिणः शिवस्य अङ्गानां निष्पेषे-मर्दने मल्लः, इति, तत्सम्बुद्धौ। **बदर्याश्रममुनि-द्वितीयतापस**=बदर्याश्रमे यो मुनी-नरनारायणौ तयोः द्वितीयः तापसः; इति, तत्सम्बुद्धौ। **राधेयकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष**-राधेयकुलमेव कमलिनी तस्याः प्रालेयवर्षः हिमपातः-इति, तत्सम्बुद्धौ। **गन्धर्वनिर्वासितदुर्योधन**-गन्धर्वाच्चित्ररथात् निर्वासितः मोचितः दुर्योधनः येन तत्सम्बुद्धौ ॥ ३४ ॥

टिप्पणियाँ-**संभावयिष्यसि**-प्राप्त करोगे। **अपसदः**-नीच, अधम। **क्षतजम्**=घाव से निकलने वाला रक्त। **अभिषेकः**-स्नान। **पाटलितम्**-रक्तवर्ण का (लाल-लाल) कर दिया है। **समुच्छ्रिता**-ऊपर उठाई गई हुई। **दिग्धा**-रक्त से लिप्त। खून से सनी हुई। **उद्यतः**-उठाये हुये। **कृतान्तः**-यमराज, यम। **परिमार्गमाणः**-खोजता हुआ। **इतः**-इस ओर ही। **स्वयंग्राहः**-पति के रूप में वरण करलेना। **दुर्ललितः**-दुराग्रही-हठी। द्रौपदी के स्वयंवर के समय पाण्डव वनवास का समय व्यतीत कर रहे थे। अतः वे स्वयंवर में आमन्त्रित न थे। किन्तु बाणविद्या में अत्यन्त निपुण होने के कारण अर्जुन से रहा न गया और वे विना निमन्त्रण के ही स्वयंवर में पहुंच गये। यही अर्जुन का दुराग्रह कहा जायगा। **सव्यसाचिन्**-जो बायें हाथ से भी दाहिने ही हाथ की ही तरह बाणों को बरसाया करता है। ऐसा अर्जुन। अर्जुन जिस भाँति दाहिने हाथ में लिये हुये धनुष से बाण छोड़ा करते थे उसी प्रकार बायें हाथ में लिये हुये धनुष से भी बाणों को बरसाया करते थे। अतः बायें हाथ का भी प्रयोग किये जाने से अर्जुन को 'सव्यसाची' कहा गया है। **निष्पेष**=मर्दन करना। अर्जुन ने शिव को प्रसन्नकर उनसे आयुध-प्राप्ति के निमित्त तपस्या प्रारम्भ की। उनकी परीक्षा के निमित्त एक दिन शिव जी किरात का वेष धारण कर उनके समीप पहुंचे। दोनों में मल्ल-युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा शिव जी अर्जुन की बल

परीक्षा से सन्तुष्ट हो गये और उनकी इच्छा की पूर्ति की। निवातकवचौ–निवात और कवच नामक दो दैत्य थे जिनको मारकर अर्जुन ने देवलोक को निष्कण्टक कर दिया था। वदर्याश्रममुनिद्वितीयतापस=पूर्वजन्म में श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने बदरिकाश्रम में क्रमशः नारायण और नर रूप में तपस्या की थी। इनमें नारायण प्रथमतपस्वी थे और नर रूप में तपस्या करने वाले अर्जुन द्वितीय तपस्वी थे। नारायण ने श्रीकृष्ण का तथा नर ने अर्जुन का अवतार ग्रहण किया था। प्रालेयवर्ष–हिमपात। विनीतम्–सविनय। नम्रतापूर्वक। अनभिवाद्य–विना अभिवादन (प्रणाम, नमस्कार आदि) किये हुये। अनुपगुह्य–विना आलिङ्गन किये। अनुक्तः–विना आदेश दिये हुये। दयिताम्–प्रिया (द्रौपदी) को। दीर्घप्रवासम्–चिरकालीन प्रवास को। गतः असि–प्राप्त कर लिया है ॥ ३४ ॥

(मोहमुपगतः।)

कञ्चुकी—भोः कष्टम्। एष दुरात्मा कौरवाधमो यथेष्टमित एवाभिवर्तते। सर्वथा प्रवेशकालः। चितासमीपमुपनाम्यत्रभवतीं पाञ्चालराजतनयाम्। अहमप्येवमेवानुगच्छामि। (चेटीं प्रति) भद्रे। त्वमपि देव्या भ्रातरं धृष्टद्युम्नं नकुलसहदेवौ वाऽत्राप्नुहि। अथवा एवमवस्थिते महाराजेऽस्तमितयोर्भीमार्जुनयोः कुतोऽत्र परित्राणाशा।

चेटी–परित्रायध्वं परित्रायध्वमार्याः। (परित्ताअह परित्ताअह अज्जा।)

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भोः भोः समन्तपंचकसंचारिणः क्षतजासवमत्त यक्षराक्षसपिशाचभूतवेतालकङ्कगृध्रजम्बुकोलूक वायसभूयिष्ठाः विरलयोधपुरुषाः कृतमस्मद्दर्शनत्रासेन। कथयत कस्मिन्नुद्देशे याज्ञसेनी संनिहितेति। कथयाम्युपलक्षणं तस्याः।

ऊरुं करेण परिघट्टयतः सलीलं
दुर्योधनस्य पुरतोऽपहृताम्बरा या।
दुःशासनेन कचकर्षणभिन्नमौलिः
सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे ॥ २५ ॥

कञ्चुकी—अरे बड़ा कष्ट है। यह दुष्ट नीच कौरव स्वच्छन्दतपूर्वक इधर ही चला आ रहा है। सब प्रकार से (यही चिता में) प्रवेश करने का उपयुक्त समय है। आदरणीया पाञ्चालराज-पुत्री (द्रौपदी) को चिता के समीप ले चलता हूँ। मैं भी इसी भाँति (चिता में कूदकर इनका) अनुगमन करूँगा। (चेटी की ओर लक्ष्य करके) कल्याणी ! तुम भी देवी के भाई धृष्टद्युम्न अथवा नकुल और सहदेव के पास चली जाओ। अथवा महाराज के ऐसी अवस्था में विद्यमान होने पर और भीम तथा अर्जुन के अस्त (मृत) हो जाने पर अब यहाँ रक्षा की आशा कहाँ ? (अर्थात् किससे की जा सकती है ?)।

चेटी—बचाओ, महानुभावो, बचाओ।

[पर्दे के पीछे कल-कल ध्वनि के पश्चात्]

रक्तरूपी मदिरा (आसव) से मतवाले यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, वेताल, कङ्क, गृध्र, सियार, उल्लू और कौवों से परिव्याप्त, हे हे समन्त-पञ्चक में घूमनेवाले, अल्पसंख्या में बचे हुए हे वीर पुरुषो ! हमको देखकर भयभीत मत होओ। बतलाइये कि किस स्थान पर द्रौपदी स्थित है ? मैं उसकी पहचान बतला रहा हूँ—

अन्वयः—सलीलं करेण ऊरुं परिघट्टयतः, दुर्योधनस्य पुरतः या अपहृता-म्बरा, दुःशासनेन कचकर्षणभिन्नमौलिः (आसीत्), सा द्रौपदी पुनः क्व प्रदेशे (अस्ति) ? कथयत ॥ २५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—सलीलम् = विलासपूर्वकम्, करेण=हस्तेन, ऊरुम्= स्वकीयां जङ्घाम्, परिघट्टयतः=परामृशत, मर्दयतः दुर्योधनस्य, पुरतः=अग्रे, या=अपहृतानि-आकृष्टानि अम्बराणि वस्त्राणि यस्याः सा, अभूदिति क्रियाशेषः;

दुःशासनेन, कचकर्षणभिन्नमौलिः=कचकर्षणेन-कचानां-केशानां कर्षणेन-आकर्षणेन भिन्नः-प्रकीर्णः मौलिः-चूडा यस्याः सा, आसीत्, सा=तादृशी, द्रौपदी=द्रुपदात्मजा, पुनः, क्व=कस्मिन्, प्रदेशे=स्थाने अस्ति ? इति कथयत=कथय ॥ ३५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—सलीलम्=हावभाव आदि विलासों के साथ, करेण=हाथ से, ऊरुम्=अपनी जांघ को, परिघट्टयतः=ठोंकते हुए, दुर्योधनस्य=दुर्योधन के, पुरतः=समक्ष, या=जो द्रोपदी, अपहृताम्बरा=खींचें गये वस्त्रों वाली, हो गई थीं, दुःशासनेन=दुःशासन के द्वारा, कचकर्षणभिन्नमौलिः=बालों को खींचने के कारण बिखरे हुए जूड़ावाली, आसीत्=हो गई थी, सा=वह, द्रौपदी=द्रौपदी, पुनः=फिर, क्व=किस, प्रदेशे=स्थान पर विद्यमान है ? कथयत=यह बतलाओ ॥ ३५ ॥

भावार्थः—जो बड़े हावभाव व संकेतों के साथ अपने हाथ से अपनी जंघा को थपथपाते हुए दुर्योधन के समक्ष वस्त्र खींचकर नग्न कर दी गई थी, दुःशासन के द्वारा केश पकड़कर खींचे जाने से जिसकी वेणी (जूड़ा) खुल गई थी, वह द्रौपदी कहाँ पर स्थित है ? मुझे बतलाइये ॥ ३८ ॥

छन्द—उक्त पद्य में "वसन्ततलिका" छन्द है।

समासः—अपहृताम्बरा=अपहृतं अम्बरं यस्याः सा। कचकर्षणभिन्नमौलिः=कचानां कर्षणेन भिन्ना मौलिः यस्याः सा ॥ ३५ ॥

टिप्पणियाँ—परित्राणाशा=बचाये जाने अथवा रक्षा की आशा। आर्याः=सज्जनों, महानुभावों। विरलयोधपुरुषाः=थोड़े ही योद्धा लोग अथवा वीरपुरुष जिसमें शेष बचे थे। कृतम्=(अलम्) बस। उद्देशे=स्थान पर। सलीलम्=बड़े हाव-भाव के साथ, विलासपूर्वक। परिघट्टयतः=थपथपाते हुए-बार २ ताड़न के साथ स्पर्श करते हुए। मौलिः=वेणी-जूड़ा।३५।

कञ्चुकी—हा देवि यज्ञवेदिसंभवे ! परिभूयसे संप्रत्यनाथा कुरुकुलकलङ्कैः।

युधिष्ठिरः—(सहसोत्थाय सावष्टम्भम्) पाञ्चालि ! न भेतव्यम्। (ससंभ्रमम्) कः कोऽत्र भोः ? सनिषङ्गं मे धनुरुपनय। दुरात्मन-

दुर्योधनहतक । आगच्छागच्छ । अपनयामि ते गदाकौशलसंभृतं भुजदर्पं शिलीमुखासारेण । अन्यच्च रे कुरुकुलाङ्गार !

प्रियमनुजमपश्यंस्तं जरासन्धशत्रुं
कुपितहरकिरातद्वेषिणं तं च वत्सम् ।
त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नास्मि शक्तो
ननु पुनरपहर्तुं बाणवर्षैस्तवासून् ॥ ३६ ॥

कञ्चुकी—हाय, यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई महारानी (द्रौपदी) अब रक्षकविहीन होकर आप कुरुवंश के कलङ्कभूत (दुर्योधन) अपमानित हो रही हो।

युधिष्ठिर—(एकाएक उठकर, अभिमान के साथ) द्रौपदी ! डरो नहीं। (जल्दी में) क्या यहाँ कोई है ? तूणीर के साथ मेरा धनुष ले आओ। दुष्ट नीच दुर्योधन आओ, आओ। (मैं अभी) बाणों की वर्षा से गदा चलाने की प्रवीणता के कारण उत्पन्न हुए तुम्हारे बाहुबल के अभिमान को दूर किये देता हूँ। और भी, रे कुरुकुल के अङ्गारसदृश !

अन्वय—जरासन्धशत्रुं प्रियं तं अनुजं च कुपितहरकिरातद्वेषिणं तं वत्सं अपश्यन् कठिनचेताः त्वमिव प्राणितुं शक्तः न अस्मि। पुनः बाणवर्षैः तव असून् अपहर्तुं ननु शक्तः (अस्मि) ॥ ३६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—जरासन्धशत्रुम्=जरासन्धघातिनम्, प्रियम्=प्रेमपात्रम्, तम्, अनुजम्=लघुभ्रातरम्, च, कुपितहरकिरातद्वेषिणम्=कुपितः=क्रुद्धः यः हरः=शिवः एव किरातः=किरातरूपधारी शिवः इत्यर्थः तस्य द्वेषिणं तेन सह विस्तारितयुद्धमित्यर्थः, तम्=प्रसिद्धं तम्, वत्सम्=प्रियमनुमर्जुनमित्यर्थः, अपश्यन्=अनवलोकयन्, कठिनचेताः=कठिनं=क्रूरं चेतः हृदयं यस्य सः, त्वमिव=यथा त्वमित्यर्थं, (अनुजशतनाशं दृष्ट्वाऽपि क्रूरचित्तः सन् नाहं त्वादृशमित्यभिप्रायः) प्राणितुम्=जीवितुम्, शक्तः=समर्थः, न अस्मि। पुनः=किन्तु, बाणवर्षैः=शरवर्षैः, तव=दुर्योधनस्येत्यर्थः, असून्=प्राणान्, अपहर्तुम्=नाशयितुम्, ननु=इति निश्चये, शक्तः=समर्थः अस्मि एव। भ्रात्रोः-वियोगे जीवितुमशक्तः सन्नपि त्वां हन्तुं तु समर्थं एवास्मीत्यभिप्रायः ॥३६॥

हिन्दी-अनुवाद—जरासन्धशत्रुम्=जरासन्ध के शत्रु, प्रियम्=प्रिय, तम्=उस, अनुजम्=छोटे भाई, (भीम) को, च=और, कुपितहरकिरातद्वेषिणम्=क्रुद्ध किरातवेषधारी शिव से द्वन्द्व युद्ध करने वाले, तम्=उस, वत्सम्=प्रियभाई (अर्जुन) को अपश्यन्=न देखता हुआ, कठिनचेताः=कठोर हृदय वाले, त्वमिव=तुझ दुर्योधन के समान, प्राणितुम्=जीवित रहने में, शक्तः=समर्थ, न=नहीं, अस्मि=हूँ। पुनः=किन्तु, बाणवर्षै=बाणों की वर्षा से, तव=तुम्हारे, असून्=प्राणों का, अपहर्तुम्=अपहरण करने में, ननु=निश्चय ही, शक्तः=समर्थ हूँ ॥ ३६ ॥

भावार्थः—अपने प्रियभाई जरासन्धशत्रु भीम को तथा किरातवेषधारी क्रुद्ध शिवजी के साथ युद्ध करने वाले प्रिय भाई अर्जुन को बिना देखे यद्यपि मैं प्राणों को धारण करने में असमर्थ अवश्य हूँ क्योंकि मैं तुम्हारे समान कठोर हृदय नहीं हूँ कि जो तू दुःशासन आदि ९९ भाइयों के मरने पर भी अभी तक प्राणधारण किये हुए है। किन्तु इतना अवश्य है कि बाणों की वर्षा द्वारा तेरे प्राणों को ले लेने में मैं अपने को समर्थ अवश्य समझता हूँ। (कहने का अभिप्राय यह है कि इस भाँति आपत्तियों में पड़ा हुआ होने पर भी मैं तुझ को बाणों की वर्षा से नष्ट अवश्य कर सकता हूँ।) ।

अलंकारः—उक्त पद्य में "रूपक" अलंकार है।

छन्द—इसमें 'मालिनी' नामक छन्द है।

लक्षण—'ननमयययुतेयंमालिनी भोगिलोकैः।'

समास—सनिषङ्गम्=निषङ्गेन सहितम्-इति। गदाकौशलसंभृतम्=गदायाम्-गदासंचालने यत् कौशलं तेन सम्भृतम्-वृद्धिङ्गतम्। शिलीमुखासारेण=शिलीमुखानां-शराणां आसारेण-वृष्ट्या। जरासन्धशत्रुम्=जरासन्धस्य-जरया राक्षस्या कृतसन्धानस्य राक्षसस्य शत्रुम्। कुपितहरकिरातद्वेषिणम्=कुपितः हर एव किरातः हरः किरात इवेति वा तद्द्वेषिणम्। कठिनचेताः=कठिनं चेतः यस्य सः ॥ ३६ ॥

टिप्पणियाँ—सनिषङ्गम्=तूणीर सहित। "तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः" इत्यमरः। गदाकौशलसम्भृतम्=गदा चलाने की निपुणता में वृद्धि को प्राप्त हुआ। भुजदर्पम्=अपने बाहुबल के अभिमान को। शिली-

मुखासारेण–बाणों की वर्षा से। "आसारो वेगवान् वर्षः" इति हैमः। कठिनचेताः–कठोर हृदय वाले। क्रूरहृदय। प्राणितुम्–जीने के लिये। अपहर्तुम्–अपहरण करने (ले लेने) के लिये ॥ ३६ ॥

(ततः प्रविशति गदापाणिः क्षतजसिक्तसर्वाङ्गो भीमसेनः।)

भीमसेनः—(उद्धतं परिक्रामन्) भो भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः सैनिकाः। कोऽयमावेगः?

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि।
भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व–
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥३७॥

(तत्पश्चात् हाथ में गदा लिये हुये रक्त से लथपथ सम्पूर्ण शरीर वाले भीमसेन प्रवेश करते हैं।)

भीमसेन—(अकड़ के साथ घूमते हुये) हे हे समन्तपञ्चक में घूमने वाले सैनिको! यह कैसी घबराहट है?

अन्वयः— अहं न रक्षः, न भूतः, रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजल-निधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियः अस्मि। समरशिखिशिखा दग्ध-शेषाः भो भोः राजन्यवीराः। वः अनेन त्रासेन कृतम्, यत् हतकरि-तुरगान्तर्हितैः लीनैः आस्यते ॥ ३७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अहम्, न, रक्षः=राक्षसः अस्मि, न=नाप्यहम्, भूतः=देवयोनि-विशेषः प्रेतो वा अस्मि। रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः–रिपोः–शत्रोः रुधिरमेव-रक्तमेव जलम्-सलिलं तेन प्लावितानि-सिक्तानि अङ्गानि अवयवाः यस्य सः शत्रुरक्तसंसिक्तगात्रः शत्रुरक्तेन कृतस्नानः वेत्यर्थः, प्रकामम्=यथेच्छम्, निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः=निस्तीर्णम्-उत्तीर्णम् उरुप्रतिज्ञायाः महत्याः प्रतिज्ञायाः एव जलनिधेः-सागरस्य गहनम्-गाम्भीर्यम् येन सः तादृशः; निस्तीर्णः उरुः प्रतिज्ञा एव गहनः जलनिधिः येन इति वा; क्रोधनः=कोपशीलः, क्षत्रियः, अस्मि। समरशिखिशिखादग्धशेषा=समरं-युद्धमेव शिखी-प्रज्वलि-

ताग्नि: तस्य शिखाभि:ज्वालाभि: दग्धा:—भस्मीभूता:विनष्टा: वा तेभ्य: शेषा:-अवशिष्टा:, भो भो—हे हे, राजन्यवीरा:=क्षत्रियशूरा:, व:—युष्माकम्, अनेन, त्रासेन—भयेन, कृतम्=अलम् । यत्=यस्मात्, हतकरितुरगान्तर्हितै:—हता:-घातिता: करितुरगा:-हस्त्यश्वा: तै: अन्तर्हिता:—तिरोहितशरीरा: तै,: अत: लीनै:—प्रच्छन्नैरिव युष्माभि: आस्येन—स्थीयते । न तथा स्थातव्यमिति भाव: । एतत् त्रासफलमेव ॥ ३७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—अहम्—मैं, न रक्ष:—न तो राक्षस ही हूँ और, न भूत:—न भूत ही हूँ । रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्ग:—शत्रु के रक्तरूपी जल से भीगे हुये अङ्गो वाला, प्रकामम्—इच्छानुसार, निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधि-गहन:—महतीप्रतिज्ञारूपी गहन समुद्र को पार करने वाला, क्रोधन:—क्रोधी, क्षत्रिय:—क्षत्रिय, अस्मि—हूँ । समरशिखिशिखादग्धशेषा:—युद्धरूपी प्रज्वलित अग्नि के लपटों से बचे हुये, भो भो—हे हे, राजन्यवीरा:—क्षत्रिय-वीरो !, व:—आप लोगों के, अनेन—इस, त्रासेन—भय से, कृतम्—बस । यत्—जो कि, हतकरितुरगान्तर्हितै:—युद्ध में मारे गये हुये हाथी और घोड़ों की ओट में, आप लोग, लीनै:—छिपे हुये रूप में, आस्यते—बैठे हुये हैं ॥३७॥

भावार्थ—न तो मैं राक्षस ही हूँ और न भूत ही । हाँ, शत्रु के रक्त रूपी जल से शरीर को लिप्त करने वाला, अपनी महतीप्रतिज्ञारूपी गहन सागर को पार कर लेने वाला, क्रोध से उन्मत एक क्षत्रिय वीर अवश्य हूँ । हे युद्धरूपी प्रज्वलित अग्नि की लपटों से अवशिष्ट योद्धाओ अथवा क्षत्रियवीरो ! आप लोग इतने भयभीत क्यों हो रहे हैं कि जो आप मरे हुये हाथी घोड़ो के शवों की ओट मे जाकर छिपे हुये हैं । घबराने की कोई बात नहीं है । अत: आप स्वच्छन्दतापूर्वक नि:शङ्क भाव से विचरण कीजिये ॥ ३७ ॥

अलङ्कार—उक्त पद्य के तृतीय चरण में 'रूपक' अलङ्कार है ।

छन्द—इसमें 'स्रग्धरा' नामक वृत्त है ।

समास:—समन्तपञ्चकसंचारिण:—समन्तपञ्चके संचरन्तीति । रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्ग:—रिपो: रुधिरमेवजलं तेन प्लावितं अङ्गं यस्य स: । निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहन:—निस्तीर्ण: ऊरु:-गुर्वी प्रतिज्ञा

एव जलनिधिः तस्य गहनं दुस्तरो मार्गो येन सः। अथवा—निस्तीर्णः ऊरुः प्रतिज्ञा एव गहनः जलनिधि येन सः। यहाँ पर "गहनश्चासौ जलनिधिश्चेति जलनिधिगहनः" इस कर्मधारय समास में "कडाराः कर्मधारये" अष्टा० २।२।३८॥ सूत्र से कडारादि शब्दों की स्थिति विकल्प से पहले होने के आधार पर समास होता है। इस भाँति पूर्वनिपातविधि की अनित्यता से ही इसका समाधान हो जाता है। समरशिखिशिखादग्धशेषाः—समरमेव शिखी तस्य शिखाभिःदग्धाः तेभ्यः शेषाः। हतकरितुरगान्तर्हितैः—हताः ये करितुरगास्तैः अन्तर्हितैः॥ ३७॥

टिप्पणियाँ—आवेगः=घबराहट, भय। प्लावितानि=भीगे हुये, लथपथ। प्रकामम्=यथेच्छ। निस्तीर्णः=पार कर चुका हुआ। क्रोधनः=क्रोधी। शिखी=जलती हुयी अग्नि। लीनैः=छिपे हुये रूप में स्थित। आस्यते:=बैठे हुये हैं॥ ३७॥

कथयन्तु भवन्तः-कस्मिन्नुद्देशे पाञ्चाली तिष्ठति ?

द्रौपदी—(लब्धसञ्ज्ञा) परित्रायतां परित्रायतां महाराजः। (परित्ताअदु परित्ताअदु महाराओ।)

कञ्चुकी—देवि पाण्डुस्नुषे ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। सम्प्रति झटिति चिताप्रवेश एव श्रेयान्।

द्रौपदी—(सहसोत्थाय) कथं न संभावयाम्यद्यापि चितासमीपम्। (कहं ण संभावेमि अज्जवि चिदासमीवम्)।

युधिष्ठिरः—कोऽत्रभोः। सनिषङ्गं धनुरुपनय। कथं न कश्चित्परिजनः। भवतु। बाहुयुद्धेनैव दुरात्मानं गाढमालिङ्ग्य ज्वलनमभिपातयामि। (परिकरं बध्नाति)।

कञ्चुकी—देवि पाण्डुस्नुषे ! संयम्यन्तामिदानीं नयनोपरोधिनो दुःशासनाव कृष्टामूर्धजाः। अस्तमिता सम्प्रति प्रतीकाराशा। चितासमीपमेव द्रुततरं सम्भावय।

युधिष्ठिरः—कृष्णे ! न खल्वनिहते तस्मिन्दुरात्मनि दुर्योधने संहर्त्तव्याः केशाः।

भीमसेनः—पाञ्चालि ! न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशासन-विलुलिता वेणिरात्मपाणिभ्याम् । तिष्ठतु तिष्ठतु । स्वयमेवाहं संहरामि ।

[द्रौपदी भयादपसर्पति ।]

भीमसेनः—तिष्ठ तिष्ठ । भीरु क्वाधुना गम्यते ।

[इति केशेषु ग्रहीतुमिच्छति ।]

युधिष्ठिरः—(वेगाद्भीममालिङ्ग्य) दुरात्मन् ! भीमार्जुन शत्रो !, सुयोधनहतक !,

आशैशवादनुदिनं जनितापराधो
मत्तो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्रः ।
आसाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपञ्जरस्य
जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ॥ ३८ ॥

आप लोग बतलायें किस स्थान पर द्रौपदी स्थित है ?

द्रौपदी—(चेतना प्राप्तकर के) रक्षा कीजिये, महाराज ! रक्षा कीजिये ।

कञ्चुकी—महारानी ! पाण्डु की पुत्रवधू ! उठिये, उठिये । अब तुरन्त ही चिता म प्रवेश करना अच्छा है ।

द्रौपदी—(अकस्मात् उठकर) अब भी चिता के समीप कैसे नहीं जाऊँगी ?

युधिष्ठिर—अरे ! यहाँ कोई है ? तूणीरसहित धनुष लाओ । क्यों, क्या कोई सेवक यहां नहीं है ?

अच्छा । बाहु युद्ध द्वारा ही इस दुष्ट का गाढ़-आलिङ्गन करके आग में गिराये देता हूँ । (ऐसा कहकर कमर को कसता है) ।

कञ्चुकी—महारानी ! पाण्डु की पुत्रवधू ! आँखों को ढकने वाले, दुःशासन द्वारा खींचे गये केशों को, अब समेट कर बांध लो । अब बदला चुकाने की आशा समाप्त हो चुकी है । चिता के समीप में ही अति शीघ्र चलो ।

युधिष्ठिर—हे द्रौपदी ! उस दुरात्मा दुर्योधन को बिना मारे केश न बांधे जायें।

भीमसेन—हे पाञ्चाल राज की पुत्री द्रौपदी ! दुःशासन के द्वारा खोली गई चोटी को मेरे जीते जी अपने हाथों से न बांधना। रुकिये, रुकिये। मैं स्वयं ही बांधता हूँ।

(द्रौपदी भयभीत होकर दूर भागती है।)

भीमसेन—ठहरो, ठहरो। डरपोक, अब कहां जा रही हो ? (ऐसा कहकर केशों को पकड़ना चाहता है।)

युधिष्ठिर—(शीघ्रता के साथ भीम को दोनों भुजाओं में पकड़कर) दुरात्मन् !, भीम तथा अर्जुन के शत्रु, नीच दुर्योधन !

अन्वयः—हे पाप ! आशैशवात् अनुदिनं जनितापराधः, भुजयोः बलेन मत्तः हतराजपुत्रः (त्वम्) मे भुजपञ्जरस्य इदं अन्तरं आसाद्य अद्य पदात् पदमपि जीवन् न प्रयासि ॥ ३८ ॥

संस्कृत-व्याख्याः—हे पाप !=हे पापिन् !, आशैशवात्=बाल्यकालादारभ्य, अनुदिनम्=प्रतिदिनम्, जनितापराधः=कृतापराधः, भुजयोः=बाह्वोः, बलेन, मत्तः=गर्वितः, हतराजपुत्रः=हतौ-घातितौ राजपुत्रौ-भीमार्जुनौ येन, तादृशः, त्वम्, मे=मम, भुजपञ्जरस्य=भुजयोः-बाह्वोः पञ्जरस्य, इदम्, अन्तरम्=मध्यभागम्, आसाद्य=प्राप्य, अद्य=अस्मिन् दिने, पदात् पदम्=एकमपि पदमित्यर्थः, जीवन्=प्राणान् धारयन्, न प्रयासि= न प्रयास्यसि, गन्तु न शक्नोषीत्यभिप्रायः ॥ ३८ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हे पाप =हे ! पापी !, आशैशवात्=बचपन से लेकर, अनुदिनम्=प्रतिदिन, जनितापराधः=अपराधों को करने वाला, भुजयोः=बाहों के, बलेन=बल से, मत्तः=उन्मत्त, हतराजपुत्रः=भीम तथा अर्जुन नामक दोनों राजपुत्रों को मारने वाला, त्वम्=तुम, मे=मरे, भुजपञ्जरस्य=भुजारूपी पिंजड़े के, इदम्=इस, अन्तरम्=मध्यभाग को, आसाद्य=प्राप्तकर, पदात्पदमपि=एक पग भी, जीवन्=जीवित रहते हुये, न प्रयासि=नहीं जा सकोगे ? ॥ ३८ ॥

भावार्थः—बाल्यावस्था से लेकर तू प्रतिदिन अपराध करता चला आ रहा है। तुझे अपने बाहु-बल का बड़ा घमण्ड हो गया है। तूने भीम तथा अर्जुन नामक राजपुत्रों को मारा है। अरे पीपी! अब तू मेरे भुजाओं के पिंजड़े में मध्य में आकर फंस गया है। अतः अब तुम जीते जी एक पग भी बाहर नहीं जा सकते हो ॥ ३८ ॥

अलङ्कारः—इसमे 'रूपक' अलङ्कार है।

छन्दः—इसमें 'वसन्ततिलका' छन्द है।

समासः—सनिषङ्गम्=निषङ्गेन-तूणीरेण सहितमिति। जनितापराधः=जनिताः-कृताः कारिताश्च अपराधाः येन सः। हतराजपुत्रः=हतौ राजपुत्रौ येन सः। भुजपञ्जरस्य=भुजो एव पञ्जरं-इतिभुजपञ्जरम्, तस्य ॥ ३८ ॥

टिप्पणियाँ—निषङ्गम्=तूणीर। परिकरम्—कमर। स्नुषा= पुत्रवधू। संयम्यन्ताम्=बध लो। मूर्धजाः—केश बाल। अस्तमिता=नष्ट हो गई। प्रतीकाराशा=बदला लेने सम्बन्धी आशा। शत्रु द्वारा किये गये अपमान का बदला लेने की आशा। सम्प्रति=इस समय। भीम और अर्जुन का बध हो जाने पर। द्रुतम्=शीघ्र। संहर्त्तव्याः=बांधे जाने चाहिये। विलुलिता=खींचे गये अथवा खींचे जाने के कारण फैले हुये। संहरामि=बांधता हूँ। अनुदिनम्=प्रति दिन। अन्तरम्—मध्य में। आसाद्य=प्राप्त कर। प्रयासि=प्राप्त होओगे, प्राप्त हो सकोगे। यहां वर्त्तमान की समीपता के कारण भविष्यत् अर्थ में लट् लकार का प्रयोग हुआ है ॥ ३८ ॥

भीमसेनः—अये कथमार्यः सुयोधनशङ्कया क्रोधान्निर्दयं मामालिङ्गति।

कञ्चुकी—(निरूप्य सहर्षम्) महाराज! वञ्चयसे। अयं खल्वायुष्मान् भीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीराम्बरो दुर्लक्ष्यव्यक्तिः। अलमधुना संदेहेन।

चेटी—(द्रौपदीमालिङ्ग्य) देवि! निवर्त्यतां निवर्त्यताम्। एष खलु पूरित प्रतिज्ञाभारो नाथस्ते वेणोसंहारं कर्तुं त्वामेवान्विष्यति।

(देवि, णिवट्ठोअदु णिवट्ठोअदु। एसो क्खु पूरिदपडिण्णाभारो णाहो दे वेणीसंहारं कादुं तुमं एव्व अण्णेसेदि।)।

द्रौपदी—हञ्जे ! किं मामलीकवचनैराश्वासयसि ? (हञ्जे, किं म अलीअवअणेहिं आसासेसि।)

युधिष्ठिरः—जयंधर ! किं कथयसि नायमनुजद्वेषी दुर्योधनहतकः। मया हितस्य दुरात्मनः पाण्डुकुलपरिभाविनः—

भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयः सीमया सार्धमुर्व्या।
भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ
नामैकं यद् ब्रवीषि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम्।३९।

भीमसेन—अरे कैसे ? आर्य (बड़े भाई-युधिष्ठिर) दुर्योधन की आशङ्का से क्रोध के कारण निर्दयता के साथ मेरा अलिङ्गन कर रहे हैं।

कञ्चुकी—(ध्यान से देखकर, हर्ष के साथ) महाराज ! आप धोखे में पड़े हैं। यह तो आयुष्मान् भीमसेन हैं जिनका सम्पूर्ण शरीर और वस्त्र दुर्योधन के रक्त से लाल हो गये हैं और इसी कारण वे पहचान में नहीं आ रहे हैं। अब किसी प्रकार का सन्देह करना व्यर्थ है।

चेटी—(द्रौपदी का आलिङ्गन करके) महारानी ! लौट आइये। लौट आइये, जिन्होंने प्रतिज्ञा के भार को पूरा कर लिया है ऐसे आपके स्वामी (भीमसेन) ही आपकी चोटी को बांधने के लिये आपको खोज रहे हैं।

द्रौपदी—हे सखि ! क्यों असत्य वचनों से मुझे आश्वासन दे रही हो ?

युधिष्ठिर—जयन्धर ! क्या कह रहे हो ? कि यह मेरे छोटे भाई (भीम और अर्जुन) का हन्ता नीच दुर्योधन नहीं है ?

भीमसेन—महाराज अजात शत्रु ! भीम तथा अर्जुन के बड़े भाई ! अब नीच दुर्योधन कहां है ? (अर्थात् उसका तो अस्तित्व ही मेरे द्वारा समाप्त किया जा चुका है। अतः उसका अस्तित्व अब कहां है ?)

पाण्डुकुल का अपमान करने वाले उस दुरात्मा को मैंने—

अन्वयः—शरीरं भूमौ क्षिप्तम्; इदं चन्दनाभं असृक् निजाङ्गे निहितम्; चतुरुदधिपयःसीमया उर्व्या सार्धं लक्ष्मीः आर्ये निषण्णाः। रणाग्नौ भृत्याः, मित्राणि, योधाः, एतत् अखिलं कुरुकुलं दग्धम्। हे क्षितिप! धार्तराष्ट्रस्य एकं नाम यद् ब्रवीषि, तत् शेषम् ॥ ३९ ॥

संस्कृत-व्याख्याः—(मया दुरात्मनः तस्य) शरीरम्=दुर्योधनस्य कलेवरम्, भूमौ=पृथिव्याम्, क्षिप्तम्=प्रक्षिप्तम्; इदम्=एतत्, चन्दनाभम्=चन्दनेन-रक्तचन्दनेन सदृशं यथा तथा चन्दनाभम् अथवा चन्दनस्य आभा-कान्तिः इव आभा यस्य तत्—रक्तचन्दनसदृशम्, असृक्=रुधिरम्, निजाङ्गे=स्वशरीरे, निहितम्=लिप्तम्, चतुरुदधिपयःसीमया=चतुर्णां उदधीनां-सागराणां पयांस्येव-जलान्येव सीमा-मर्यादा यस्याः सा तथोक्तया, उर्व्या=पृथिव्या, सार्धम्=साकम्; लक्ष्मीः=राजश्रीः, आर्ये=त्वयि, निषण्णा=स्थिता। रणाग्नौ=युद्धाग्नौ, भृत्याः=सेवकाः, मित्राणि=सुहृदः, योधाः=सैनिकाः, एतत्=इदम्, अखिलम्=सर्वम्=कुरुकुलम्=कौरववंशः, दग्धम्=विनष्टम्-भस्मीभूतम्। हे क्षितिप!=हे राजन्!, धार्तराष्ट्रस्य=धृतराष्ट्रपुत्रस्य—दुर्योधनस्येत्यर्थः, एकम्=केवलम्, नाम, यद्, ब्रवीषि=कथयसि, तत्=तन्नाम, एव, शेषम्=अवशिष्टम् ॥ ३९ ॥

हिन्दी-अनुवाद—शरीरम्=(उस दुर्योधन के) शरीर को, भूमौ=पृथ्वी पर, क्षिप्तम्=फेंक दिया। इदम्=इस, चन्दनाभम्=रक्त चन्दन सदृश कान्ति से युक्त, असृक्=(उस दुर्योधन के) रक्त को, निजाङ्गे=अपने शरीर पर, निहितम्=लगा लिया है। चतुरुदधि-पयःसीमया=चारों समुद्रों के जल की सीमा से युक्त, उर्व्या=पृथिवी के, सार्धम्=साथ ही, लक्ष्मीः=राजलक्ष्मी, आर्ये=आर्य (आप) के पास, निषण्णा=स्थित हो गई है। रणाग्नौ=युद्ध की भीषण अग्नि में, भृत्याः=सेवक, मित्राणि=मित्र, योधाः=सैनिक, एतत्=(और) यह, अखिलम्=समग्र, कुरुकुलम्=कुरुवंश, दग्धम्=भस्म हो चुका है। हे क्षितिप!=हे राजन्!, धार्तराष्ट्रस्य=धृतराष्ट्र के पुत्र-दुर्योधन का, एकम्=एकमात्र, नाम=नाम, यद् ब्रवीषि=जिसे आप बोल रहे हो, तत्=वह नाम ही, शेषम्=बचा हुआ है।

भावार्थः—मैने (मुझ भीम ने उस दुर्योधन के) शरीर को भूमि पर फेंक दिया है। उसका रक्त मैंने लालचन्दन के लेप के सदृश अपने शरीर में पोत लिया है। चारों समुद्रों के जलों से वेष्टित पृथिवी को राजलक्ष्मी सहित आर्य (आप) को समर्पित कर दिया है। उसके नौकर, मित्र, योद्धा-गण और सम्पूर्ण कुरुवंश इस युद्धाग्नि में नष्ट हो चुका है। अब तो हे राजन्! उसका केवल 'दुर्योधन' यह नाम ही शेष रह गया है कि जिसका उच्चारण आपके मुख द्वारा अभी किया जा रहा था। अन्य अब कुछ भी शेष नहीं रहा है॥ ३९॥

अलंकार—उक्त पद्य में 'रूपक' तथा 'सहोक्ति नामक अलङ्कार हैं।

छन्दः—इसमें "स्रग्धरा" छन्द है।

समासः—सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीराम्बर—सुयोधनस्य क्षत-जेन—रक्तेन अरुणीकृतं रक्तीकृतं सकलं शरीरं अम्बरं-वस्त्रं च यस्य सः। दुर्लक्ष्य-व्यक्तिः=दुर्लक्ष्या-दुर्ज्ञेया व्यक्तिः—स्पष्टाकारो यस्य सः। पूरितप्रतिज्ञाभारः—पूरितः प्रतिज्ञायाः भारः येन सः। वेणीसंहारम्—वेण्या संहारः—संयमनम्; तम्। चन्दनाभम्—चन्दनस्य आभा इव आभा यस्य तत्। चतुरुदधिपयः-सीमया=चतुर्णामुदधीनां पयांस्येव सीमानो यस्याः सा तया॥ ३९॥

टिप्पणियाँ—निरूप्य=देखकर। दुर्लक्ष्यव्यक्तिः=जिसके शरीर का आकार पहचानने में नहीं आ रहा है ऐसा। अलीकवचनैः=मिथ्यावचनों से। पाण्डुकुलपरिभाविनः—पाण्डुकुलं परिभवितुं शीलमस्य, तस्य। असृक्—रक्त, खून। निहितम्=लिप्त कर लिया है, पोतलिया है। निषण्णा= स्थापित कर दी है, स्थित हो गयी है। हे क्षितिप!—हे राजन्! शेषम्—शेष; अवशिष्ट रह गया है॥ ३९॥

(युधिष्ठिरः स्वैरं मुक्त्वा भीममवलोकयन्नश्रूणि प्रमार्जयति।)

भीमसेनः—(पादयोः पतित्वा) जयत्वार्यः।

युधिष्ठिरः—वत्स! वाष्पजलान्तरितनयनत्वान्न पश्यामि ते मुख-चन्द्रम्। तत्कथय कच्चिज्जीवति भवान्समं किरीटिना।

भीमसेनः—निहतसकलरिपुपक्षे त्वयि नराधिपे, जीवति भीमोऽर्जुनश्च।

युधिष्ठिरः—(पुनर्गाढमालिङ्ग्य)

रिपोरास्तां तावन्निधनमिदमाख्याहि शतशः
प्रियो भ्राता सत्यं त्वमसि मम योऽसौ बकरिपुः।

भीमसेनः—आर्य! सोऽहम्।

युधिष्ठिरः—

जरासन्धस्योरःसरसि रुधिरासारसलिले
तटाघातक्रीडाललितमकरः संयति भवान् ॥४०॥

[युधिष्ठिर धीरे से छोड़कर भीम को देखता हुआ आँसू पोंछता है।]

भीमसेन—[चरणों पर गिरकर] आर्य की जय हो।

युधिष्ठिर—हे वत्स! आँसुओं से नेत्रों के ढके होने के कारण मैं तुम्हारे मुख-चन्द्र को नहीं देख पा रहा हूँ। तो बतलाओ—आप अर्जुनसहित जीवित तो हैं?

भीमसेन—मार दिया गया समग्र शत्रुपक्ष जिसका ऐसे आपके राजा होने पर भीम तथा अर्जुन जीवित हैं।

युधिष्ठिर—(पुनः गाढ़-आलिङ्गन करके)

शत्रु के वध की बात को तो रहने दो। पहले मुझे यह बतलाओ कि क्या वस्तुतः बकासुर को मारने वाले मेरे भाई भीमसेन तुम ही हो?

भीमसेन—आर्य! मैं वही हूँ।

युधिष्ठिरः—

अन्वयः—रिपोः निधनं तावत् आस्ताम्, इदं शतशः आख्याहि—यः असौ बकरिपुः, सत्यं त्वं मम भ्राता असि? संयति जरासन्धस्य रुधिरासारसलिले उरःसरसि तटाघातक्रीडाललितमकरः भवान् (एव)? ॥ ४० ॥

संस्कृत-व्याख्या—रिपोः=शत्रोः दुर्योधनस्य. निधनम्=मरणम्, तावत्=क्षणम्, आस्ताम्=तिष्ठतु। इदम्=एतत्—मया जिज्ञासितम्, शतशः=भूयो-

भूयः—बारं वारम्, आख्याहि—कथय—यः, असौ, वकरिपुः—बकासुरस्य हन्ता; सत्यम्—यथार्थम्, त्वम्, मम—युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, भ्राता—अनुजः, असि ? संयति—युद्धे, जरासन्धस्य—मगधाधिपस्य, रुधिरासारसलिले—रुधिरस्य-रक्तस्य आसारः-धाराभिः निस्सरणम् एव सलिलम्, तस्मिन् उरःसरसि—उरः-वक्षस्थलं एव सरः-जलाशयः तस्मिन्, तटाघातक्रीडाललितमकरः—तटे आघातस्य ताडनस्य या क्रीडा-लीला तया ललितः—सुन्दरः मकरः—ग्राहः; भवान्, एवासि ? किं भवानेव जरासन्धस्य हन्ता असीत्यभिप्रायः ।। ४० ।।

हिन्दी-अनुवाद—रिपोः—शत्रु का, निधनम्—मरण, तावत्—क्षणभर के लिये, आस्ताम्—दूर रहे । इदम्=मेरे द्वारा जिज्ञासित इस बात को, शतशः—बार-बार आख्याहि—बतलाओ, कि, यः—जो, असौ—वह, बकरिपुः—बकासुर नामक दैत्य का हन्ता था, क्या, सत्यम्—वस्तुतः, त्वम्—तुम, (वही), मम—मेरे, भ्राता—भाई, असि—हो ? संयति—युद्ध में, जरासन्धस्य—जरासन्ध के, रुधिरासारसलिले—रक्त की धाराओं रूपी जल से युक्त, उरःसरसि—वक्षस्थलरूपी तालाब में, तटाघातक्रीडाललितमकरः—तटाघातरूपी क्रीडा में सुन्दर लगने वाले मगर, भवान्—आप (एव—ही हो ?) ।। ४० ।।

भावार्थ—रक्त की निकलती हुई धाराओं रूपी जल से युक्त जरासन्ध के वक्षस्थल रूपी सरोवर के तट पर टक्कर मार के की क्रीडा से सुन्दर लगने वाले मगर (ग्राह) क्या आप ही हो ? (अभिप्राय यह है कि क्या जरासन्ध का हनन करने वाले भीम तुम ही हो ?) ।

अलङ्कारः—उक्त पद्य में 'रूपक' अलङ्कार है ।

छन्दः—इसमें 'शिखरिणी' छन्द है :

समासः—निहतसकलरिपुपक्षे—निहतः-मारितः सकलः रिपुपक्षेः यस्य सः, तस्मिन् । रुधिरासारसलिले—रुधिरस्य आसारः इति रुधिरासारः, रुधिरासार एव सतः, तस्य सलिले । उरःसरसि—उरः एव सरः इति उरःसरः तस्मिन् । तटाघातक्रीडाललितमकरः—तटाघातः—सरस्तटताडनं, सैन क्रीडा तया ललितः मकरः ।। ४० ।।

टिप्पणियाँ—स्वैरम्=धीरे से। नराधिपे=राजा के होने पर। शतशः=बारम्बार, पुनः पुनः। संयति=युद्ध में। तटाघातः=तालाब के किनारे को ताडित करना। क्रीडा=लीला। मकरः=मगर-ग्राह ॥ ४० ॥

भीमसेनः—आर्य ! स एवाहम्। तन्मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम्।

युधिष्ठिरः—किमपरमवशिष्टम् ?

भीमसेनः—सुमहदवशिष्टम्। संयच्छामि तावदेनेन सुयोधनशोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम्।

युधिष्ठिरः—गच्छतु भवान्। अनुभवतु तपस्विनीवेणीसंहारमहोत्सवम्।

भीमसेनः—(द्रौपदीमुपसृत्य) देवि पाञ्चालराजतनये ! दिष्ट्या वर्धसे रिपुकुलक्षयेण।

द्रौपदी—(उपसृत्य) जयतु जयतु नाथः (जेदु जेदु णा हो।)

(इति भयादपसर्पति।)

भीमसेनः—राजपुत्रि ! अलमेवंविधं मामालोक्य त्रासेन।

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन

स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृञ्जि।

कान्ते राज्ञः कुरूणामपि रुधिरमिदं मद्गदाचूर्णितोरो—

रङ्गेऽङ्गे निषक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥४१॥

भीमसेन—हे आर्य ! मैं वही हूं। इसलिये आर्य मुझे क्षणभर के लिये छोड़ दें।

युधिष्ठिर— दूसरा (अब) क्या बाकी है ?

भीमसेन—आर्य ! बहुत बड़ा कार्य शेष रह गया है। सबसे पहले दुर्योधन के रक्त से भीगे हुये इस अपने हाथ से दुःशासन द्वारा खींचे गये द्रौपदी के केश समूह को बाधूँगा।

युधिष्ठिर—जायें आप। वह वेचारी वेणी बांधने के आनन्द का अनुभव करे।

भीमसेन--(द्रौपदी के समीप पहुँचकर) महारानी ! पाञ्चालराज की पुत्री ! सौभाग्य से शत्रु-कुल के विनाश से आप बढ़ रहीं हैं (अभिप्राय यह है कि शत्रुकुल के विनाश के उपलक्ष्य में आपको बधाई है ।) ।

द्रौपदी—(समीप आकर) विजय हो, स्वामी की विजय हो ।

(ऐसा कहकर भय के कारण पीछे हटती है ।)

भीमसेन--हे राजपुत्रि ! इस अवस्था में मुझे देखकर भय से बस करो (अर्थात् आपको भय करने की आवश्यकता नहीं है ।) ।

अन्वयः—येन नृपशुना तेन दुःशासनेन राज्ञां सदसि कृष्टा असि, तस्य मम करयोः पीतशेषाणि एतानि स्त्यानानि असृञ्जि स्पृश, हे कान्ते ! मद्गदाचूर्णितोरोः कुरूणां राज्ञः अपि (मम) अङ्गे अङ्गे निषक्तं इदं रुधिरं तव परिभवजस्य अनलस्य उपशान्त्यै (भवतु) ।

संस्कृत-व्याख्या—येन, नृपशुना=पशुतुल्यनरेण, तेन, दुःशासनेन, राज्ञाम्=नृपाणाम्, सदसि=सभायाम्, कृष्टा=आकृष्टा, असि=आसीः, तस्य, मम=मे, करयोः=हस्तयोः, पीत-शेषाणि=पीतात्-पानात् शेषाणि-अवशिष्टानि, एतानि=इमानि, स्त्यानानि=निविडानि, असृञ्जि=रक्तानि, स्पृश=तापशान्त्यै संस्पृश । हे कान्ते !=हे प्रिये !, मद्गदाचूर्णितोरोः-मम-भीमस्य गदया चूर्णितौ-भग्नौ ऊरू-जङ्घे यस्य, तस्य कुरूणाम्=कौरवाणाम्, राज्ञः-दुर्योधनस्य, अपि, (मम) अङ्गे अङ्गे=सर्वाङ्गेष्वित्यर्थः, निषक्तम्=लिप्तम्, इदम्=एतत्, रुधिरम्=रक्तम्, तव=भवत्याः, परिभवजस्य=परिभवात्—वस्त्रकेशाकर्षणरूपापमानात् जातस्य-उत्पन्नस्य, अनलस्य=कोपाग्नेः, उपशान्त्यै=शमनाय (भवतु) । मामालिङ्ग्य निजायमानजन्यं सन्तापमुपशमयेत्यभिप्रायः ॥ ४१ ॥

हिन्दी-अनुवाद—येन=जिस, नृपशुना=नरपशु, तेन=उस, दुःशासनेन=दुःशासन के, द्वारा राज्ञाम्=राजाओं की, सदसि=सभा में, कृष्टा=खींची गई, असि=थी । तस्य=उसके, मम=मेरे, करयोः=हाथों में, पीतशेषाणि=पीने से बचे हुये, एतानि=इन, स्त्यानानि=गाढ़े, असृञ्जि=रक्तों का, अपने सन्ताप की शान्ति के लिये, स्पृश=स्पर्श करो । हे कान्ते !=हे प्रिये, मदगदा-

चूर्णितोरोः = मेरी गदा की चोटों से चूर-चूर हो गईं हैं जंघायें जिसकी ऐसे, कुरूणाम्=कौरवों के, राज्ञः=राजा दुर्योधन का, अपि=भी, मम=मेरे, अङ्गे-अङ्गे=सभी अङ्गों में, निषक्तम्=लिप्त, इदम्=यह, रुधिरम्=रक्त, तव=तुम्हारे, परिभवजस्य=वस्त्र तथा केशों के खींचने से उत्पन्न हुये, अनलस्य=सन्तापाग्नि की, उपशान्त्यै=शान्ति के लिये, भवतु=होवे ॥ ४१ ॥

भावार्थः—राजाओं की सभा में जिस नरपशु दुःशासन ने तुझे खींचा था, उस पापी के मेरे पीने से बचे हुये तथा मेरे हाथों में लगे हुये इस गाढ़े रक्त को तुम भी स्पर्श करो। हे प्रिये ! मेरी गदा की चोटों से जिसकी जंघायें चूर-चूर हो गईं थीं ऐसे कौरवराज दुर्योधन का यह अति सरस रक्त मैंने अपने शरीर के सभी अङ्गों में लिप्त कर रखा है। इससे तेरा अपमान-जनित सन्ताप शान्त हो जाय ॥ ४१ ॥

छन्दः—उक्त पद्य में 'स्रग्धरा' छन्द है। लक्षण-"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ ४१ ॥

समासः—सुयोधनशोणितोक्षितेन=सुयोधनस्य शोणितेन-रक्तेन उक्षितः-लिप्तः तेन। दुःशासनावकृष्टम्=दुःशासनेन, अवकृष्टम्-आकृष्टम्। वेणीसंहारमहोत्सवम्=वेण्याः-केशरचनायाः संहारः-संयमनम् एव महोत्सवः, तम्। पीतशेषाणि=पीतात् शेषाणि, इति। मद्गदाचूर्णितोरो=मम गदया चूर्णितौ ऊरू यस्य तस्य। परिभवजस्यः=परिभवात् जायते-इति, तस्य ॥ ४१ ॥

टिप्पणियाँ—उक्षितेन=लिप्त। केशहस्तम्=केशपाश। वेणीसंहारम्=वेणी का बांधना। सदसि=सभा में। कृष्टा=खींची गई। स्त्यानानि=गाढ़े। असृञ्जि=रक्तों को। निषक्तम्=लिप्त कर लिया-अपने अंगों में लगा लिया ॥ ४१ ॥

बुद्धिमतिके ! क्व सा संप्रसि भानुमती योपहसति पाण्डवदारान्। भवति यज्ञवेदिसंभवे याज्ञसेनि।

द्रौपदी—आज्ञापयतु नाथः (आणवेदु णाहो।)।

भीमसेनः—स्मरति भवती यन्मयोक्तम् ? ("चञ्चद्भुजेत्यादि"-१।२१ पूर्वोक्तं पठति)।

द्रौपदी—नाथ ! न केवलं स्मरामि। अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन। (णाह, ण केवलं सुमरामि। अणुहवामि अ णाहस्स प्पसादेण।)।

भीमसेनः—(वेणीमवधूय) भवति ! संयम्यतामिदानीं धार्तराष्ट्र-कुलकालरात्रिर्दुःशासनविलुलितेयं वेणी।

द्रौपदी—नाथ ! विस्मृताऽस्म्येतं व्यापारम्। नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्ये। (णाह, विसुमरिदह्मि एद बावारम्। णाहस्स प्पसादेण पुणो वि सिक्खिस्सम्।)।

[भीमसेनो वेणीं बध्नाति।]

[नेपथ्ये].

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजन्यकुलाय।

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि
प्रत्याशं मुक्तकेशान्यतुलभुजबलैः पार्थिवान्तःपुराणि।
कृष्णायाः केश पाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरूणां
सोऽयं बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राज्ञां कुलेभ्यः॥४२॥

बुद्धिमतिके ! अब वह भानुमती कहाँ है ? जो पाण्डवों की पत्नी का उपहास करती थी। हे श्रीमती यज्ञ की वेदी से उत्पन्न याज्ञसेनी (द्रौपदी) !

द्रौपदी—स्वामी ! आज्ञा कीजिये।

भीमसेन—जो मैंने कहा था वह आपको स्मरण है।

["चञ्चद्भुज"" इत्यादि १।२१ पढ़ता है।]।

द्रौपदी—स्वामिन् ! न केवल स्मरण ही कर रही हूँ अपितु स्वामी की कृपा से उसका अनुभव भी कर रही हूँ।

भीमसेन—(वेणी को हिलाकर) श्रीमतीजी, धृतराष्ट्र के कुल के लिये कालरात्रिस्वरूप, दुःशासन द्वारा खोली गई यह वेणी (चोटी) अब बाँध ली जाय।

द्रौपदी—स्वामिन् ! मैं तो इस कार्य को भूल गई हूँ। स्वामी की कृपा से फिर सीख लूँगी।

[भीमसेन वेणी बाँधते हैं।]

[पर्दे के पीछे]

महायुद्धरूपी अग्नि में जलने से बचे हुये क्षत्रियकुल का कल्याण हो।

अन्वयः---यस्य मोक्षात् क्रोधान्धैः क्षतनरपतिभिः अतुलभुजबलै पाण्डु-पुत्रैः प्रत्याशं पार्थिवान्तःपुराणि मुक्तकेशानि कृतानि, स अयं कुपितयमसखः कुरूणां धूमकेतुः, कृष्णायाः केशपाशः बद्धः, प्रजानां निधनं विरमतु, राज्ञां कुलेभ्यः स्वस्ति (अस्तु) ।। ४२ ।।

संस्कृत-व्याख्या —यस्य=केशपाशस्येत्यर्थः, मोक्षात्=उन्मोचनात् विलोलनाद्वा, क्रोधान्धैः=क्रोधेन अन्धैः विवेकशून्यैः, क्षतनरपतिभिः='क्षताः-घातिताः नरपतयः-राजानः यैस्तैः—विनाशितसकलराजलोकैः, अतुलभुजबलैः=अतुलं भुजयोः बलं येषां तैः—अमितपराक्रमशालिभिः, पाण्डुपुत्रैः=पाण्डवैः, प्रत्याशम्=प्रतिदिशम्, पार्थिवान्तः—पुराणि=पृथिव्याः ईश्वराः पार्थिवाः—नृपाः तेषामन्तःपुराणि लक्षणया तत्रस्थाः स्त्रियः, मुक्तकेशानि=मुक्ताः-वेणीविरहिताः केशाः येषां तानि, कृतानि=विहितानि। वैधव्यात्केशमोक्षस्तासामिति भावः। सः=तादृशः, अयम्=एषः, कुपितयमसखः=कुपितस्य—क्रोधितस्य यमस्य सखा—मित्रमिति कुपितयमसखः—क्रुद्धान्तकतुल्यः, कुरूणाम्=कौरवानाम्, धूमकेतुः=वधोत्पातसूचको धूमकेतुरिव—नाशहेतुत्वात् अत्र कृष्णायाः केशपाशेऽपि धूमकेतुत्वमिति, कृष्णायाः=द्रौपद्याः, केशपाशः=केशकलापः, बद्धः=संयमितः। अतः प्रजानाम्, निधनम्=मरणम्—वधः विनाशो वा, विरमतु=शाम्यतु, राज्ञाम्, कुलेभ्यः=वंशेभ्यश्च, स्वस्ति=कल्याणं मङ्गलं वा भवतु। कस्यापि सिद्धस्य वचनमिदम् ।। ४२ ।।

हिन्दी-अनुवाद—यस्य=जिस वेणी के, मोक्षात्=खुल जाने के कारण, क्रोधान्धैः=क्रोध के कारण विवेकशून्य, क्षतनरपतिभिः=राजाओं का विनाश करने वाले, अतुल भुजबलैः=अपरिमित बाहुबल वाले, पाण्डुपुत्रैः=पाण्ड के पुत्रों (पाण्डवों) द्वारा, प्रत्याशम्=प्रत्येक दिशा में, पार्थिवान्तःपुराणि=राजाओं के रनिवास, मुक्तकेशानि=खुले हुये केशों वाले, कृतानि=कर दिये गये। सः=वह, अयम्=यह, कुपितयमसखः=क्रोधित यमराज के समान, कुरूणाम्=

कौरवों के लिये, धूमकेतु:—पुच्छलतारे के समान, कृष्णाया:—द्रौपदी का, केश-पाश:—केशपाश, बद्धः—बांध दिया है। अत:, प्रजानाम्—प्रजाओं का, निधनम्—विनाश, विरमतु = शान्त हो जाय तथा, राज्ञाम्—राजाओं के, कुलेभ्य:—कुलों का, स्वस्ति—कल्याण हो ॥ ४२ ॥

भावार्थ:——द्रौपदी की जिस वेणी के खोल दिये जाने के कारण क्रोधान्ध, अपरिमित बलशाली पाण्डवों ने राजाओं को नष्ट करके प्रत्येक दिशा में राजाओं के अन्त:पुरों को खुले केशों वाला (अर्थात् राजाओं की स्त्रियों को विधवा) कर दिया। क्रुद्ध हुये यमराज के सदृश, कौरवों के लिये विनाशक-ग्रह धूमकेतु के समान द्रौपदी का यह केशपाश अब बांध दिया गया है। अतः अब प्रजाओं का नाश बन्द हो जाय। राजाओं के वंशों का कल्याण हो ॥ ४२ ॥

अलङ्कार:—उक्त पद्य में "पर्यायोक्ति" अलङ्कार है। लक्षण-"कार्याद्यैः प्रस्तुतैरुक्ते पर्यायोक्ति प्रचक्षते ॥"

छन्द——इसमें "स्रग्धरा" छन्द है।

व्याकरण—कुपितयमसख:—यहां पर "राजाहःसखिभ्यष्टच्" सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है ॥

समास:—धार्तराष्ट्रकुलकालरात्रि:—धार्तराष्ट्रम्-धृतराष्ट्रसम्बन्धि यत् कुलं तस्य कालरात्रि:—प्रलयनिशा। क्षतनरपतिभि:—क्षता: नरपतय: यैस्तै:। अतुलभुजबलै:—अतुलं भुजयो: बलं येषां तै:। प्रत्याशम्—आशायां आशायां इति प्रत्याशम्। पार्थिवान्त:पुराणि—पार्थिवानां अन्त:पुराणि। मुक्तकेशानि—मुक्ता: केशा: येषां तानि। कुपितयमसख:—कुपित: यो यम: तस्य सखा-इति कुपितयमसख: ॥ ४२ ॥

टिप्पणियां—भानुमती—दुर्योधन की पत्नी। वेणीं अवधूय—वेणी को हिलाकर अथवा झाड़कर। विलुलिता—खींचकर खोल दी गई थी। शिक्षिष्ये—सीखूंगी। मोक्षात्—खुल जाने से। प्रत्याशम्—प्रत्येक दिशा में। कुपितयमसख:—क्रुद्ध यमराज के सदृश यहां 'सखा' का अर्थ है 'समान' धूमकेतु:—पुच्छल तारा। यह विनाशक हुआ करता है। निधनम्—मरण, वध, विनाश। स्वस्ति—कल्याण अथवा मंगल (हो) ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर—देवि ! एष ते वेणीसंहारोऽभिनन्द्यते नभस्तलसञ्चारिणा सिद्धजनेन ।

(ततः प्रविशतः कृष्णार्जुनौ ।)

कृष्णा—(युधिष्ठिरमुपगम्य) विजयतां निहतसकलारातिमण्डलः सानुजः—पाण्डवकुलचन्द्रमा महाराजो युधिष्ठिरः ।

अर्जुनः—जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः—(विलोक्य) अये ! भगवान्पुण्डरीकाक्षो वत्सश्च किरीटी । भगवन् ! अभिवादये । (किरीटिनं प्रति) एह्येहि वत्स ! परिष्वजस्व माम् ।

(अर्जुनः प्रणमति ।)

युधिष्ठिरः—(वासुदेवं प्रति) देव कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवान् पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्ति
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।
अजरममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां
भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिर—हे महारानी ! आकाश-तल में विचरण करने वाले सिद्ध जनों के द्वारा तुम्हारे वेणी-बन्धन का अभिनन्दन किया जा रहा है ।

[तदनन्तर कृष्ण तथा अर्जुन प्रवेश करते हैं ।]

कृष्ण—(युधिष्ठिर के पास जाकर) सम्पूर्ण शत्रु-समूह को नष्ट कर देने वाले, पाण्डवकुल में चन्द्रमा के समान महाराज युधिष्ठिर भाइयों सहित विजयी बनें ।

अर्जुन—आर्य की जय हो ।

युधिष्ठिर—(देखकर) अरे, भगवान् कमलनेत्र (श्री कृष्ण) और प्रिय भाई अर्जुन ! भगवन् ! मैं प्रणाम करता हूँ । (अर्जुन के प्रति) आओ वत्स ! आओ, मेरा आलिङ्गन करो ।

[अर्जुन प्रणाम करता है ।]

युधिष्ठिर—(श्रीकृष्ण के प्रति) हे देव ! जिसके लिये स्वयं पुरातन-पुरुष भगवान् नारायण मङ्गल की कामना करें, उसकी भला विजय के अतिरिक्त और क्या हो सकती है ?

अन्वयः—कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिम् गुणिनं प्रजानां उदयनाशस्थानं हेतुं अजं अमरं अचिन्त्यं त्वां चिन्तयित्वा अपि (कश्चन) दुःखी न भवति । हे देव पुनः दृष्ट्वा किम् ?

संस्कृत-व्याख्या—कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिम्=गुरवः महान्तश्च ते महदादयः–बुद्ध्यहंकारादयः, कृताः–अनित्याः ये गुरुमहदादयः तेषां क्षोभेण-परिणामेन सम्भूता-उत्पन्ना मूर्तिः—आकारः यस्य तम्, गुणिनम्=गुणाः-सत्वरजस्तमांसि अस्य सन्तीति गुणी तम् गुणिनम्—सगुणम्, प्रजानाम्=जनानाम्, उदयनाशस्थानहेतुम्=उदयश्च–उत्पत्तिश्च नाशश्च-प्रलयञ्च स्थानञ्च–स्थितिश्चेति उदयनाशस्थानानि तेषां हेतुम्–उत्पत्तिविनाशस्थिति-कारणमित्यर्थः, अजम्=अजन्यम्, अमरम्=अनाश्यम् (अजरमिति पाठे जरारहितमविकारमित्यर्थः), अचिन्त्यम्=वाङ्मनसागोचरम्, त्वाम्=भवन्तम्, चिन्तयित्वा = ध्यात्वा, अपि, (कश्चन), दुःखी = शोकाकुलः, न भवति=न जायते । हे देव !=हे भगवन्, पुनः, दृष्ट्वा = साक्षात्कृत्य, किम् ? ॥ ४३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिम्=महान् महत्तत्वादि को उत्पन्न करने वाली प्रकृति के परिणाम से उत्पन्न पाञ्चभौतिक शरीरवाले अथवा अनित्य महत्तत्व, आदि के परिणाम से उत्पन्न मूर्तिवाले, गुणिनम्=सगुण, प्रजानाम्=प्राणियों के, उदयनाशस्थानहेतुम्=उत्पत्ति, विनाश तथा स्थिति के कारणभूत, अजम्=अजन्मा, अमरम्=अमर, अचिन्त्यम्=अचिन्त्य, त्वाम्=तुम्हारा, चिन्तयित्वा=ध्यान करके, अपि भी, (कश्चन=कोई भी प्राणी) दुःखी न भवति=दुःखी नहीं हुआ करता है । हे देव !=हे भगवन् ! पुनः=फिर, दृष्ट्वा=साक्षात्‌रूप से देखकर (दर्शन प्राप्त कर) तो, किम्=कहना ही क्या ? ॥ ४३ ॥

भावार्थः—महत्तत्त्व आदि को उत्पन्न करने वाली प्रकृति के परिणाम से उत्पन्न पाञ्चभौतिक शरीर वाले, सगुण, प्राणियों की उत्पत्ति विनाश एवं स्थिति के कारण, अजन्मा, अमर (नित्य) और अचिन्त्य आपका ध्यान करने मात्र से संसार में कोई भी प्राणी दुःखी नहीं हुआ करता है अर्थात् आपका ध्यान करने मात्र से ही प्राणी दुःखरहित हो जाया करता है। फिर यदि आपका दर्शन ही जिसे प्राप्त हो जाय तो फिर उसका तो कहना ही क्या ? ॥ ४३ ॥

अलङ्कारः—उक्त पद्य में 'विरोधाभास' तथा 'अर्थापत्ति' अलङ्कारों की प्रतीति होती है।

छन्द—इसमें "मालिनी" छन्द है। लक्षण–" न नमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः"।

समासः—निहतसकलारातिमण्डलः=निहतं सकलं अरातीनां मण्डलं येन तथा भूतः। कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिः—कृताः गुरवः स्थूल-भूतानि, महदादयश्च येन तादृशं यत् प्रधानतत्त्वम्, तस्य क्षोभेण-सृष्ट्यनुगुण-विकारविशेषेण सम्भृता मूर्तिः यस्य सः ॥ ४३ ॥

टिप्पणियाँ—वेणीसंहारः=केशों का बन्धन (चोटी बाँधना)। सिद्ध-जनेन=सिद्ध नामक देवयोनिविशेष के व्यक्तियों द्वारा। उपगम्य=समीप पहुँचकर। पुण्डरीकाक्षः=कमल के समान नेत्रों वाले भगवान् कृष्ण। किरीटी=अर्जुन। क्षोभेण=विक्षोभ से–परिणमित होने से। संभूता=उत्पन्न। कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिः=सांख्य-दर्शन के अनुसार "सत्व-रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः" अर्थात् सत्व, रज और तम-इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम 'प्रकृति'। है इस अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त 'महत्तत्व' आदि उत्पन्न होते हैं। सृष्टि-रचना का क्रम भी यही है। उदयनाशस्थानहेतुम्=उत्पत्ति, विनाश (प्रलय) तथा स्थिति का कारण-भूत। अजम्=अजन्मा ॥ ४३ ॥

(अर्जुनमालिङ्ग्य) वत्स ! परिष्वजस्व माम्।

कृष्णः—महाराज युधिष्ठिर !

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो
धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः ।
प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं
स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते ॥४४॥

(अर्जुन का आलिङ्गन करके) हे वत्स ! मेरा आलिङ्गन करो ।

कृष्ण—महाराज युधिष्ठिर !

अन्वयः—अयं भगवान् व्यासः, च अमी वाल्मीकिरामादयः मुनयः, च, आज्ञाविधेयैः मागधमत्स्ययादवकुलैः समं स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशाः माद्रीसुताधिष्ठिताः धृष्टद्युम्नमुखाः सैन्यपतयः ते राज्याभिषेकाय प्राप्ताः ॥४४॥

संस्कृत-व्याख्या - अयम्=एषः, भगवान्, व्यासः=पाराशर्यः; च, अमी=एते, वाल्मीकिरामादयः=वाल्मीकिपरशुरामप्रभृतयः, मुनयः=ऋषयः; च, आज्ञाविधेयैः=वशंवदैः, मागधमत्स्ययादवकुलैः=मगधमत्स्यदेशशासकैः यादवकुलैश्चेत्यर्थः, समम्=सार्धम्, स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशाः=स्कन्धेषु-ग्रीवामूलभागेषु उत्तम्भिताः-उत्थापिताः तीर्थवारीणाम्-तीर्थजलानाम् कलशाः-घटाः यैस्ते, माद्रीसुताधिष्ठिताः=माद्रीसुताभ्याम्-नकुलसहदेवाभ्यां अधिष्ठिताः-संचालिताः, धृष्टद्युम्नमुखाः=द्रुपदपुत्रप्रमुखाः, सैन्यपतयः=सेनाध्यक्षा, ते=तव-युधिष्ठिरस्येत्यर्थः, राज्याभिषेकाय, प्राप्ताः=समागताः ।४४।

हिन्दी-अनुवाद—अयम्=यह, भगवान् व्यासः=पूज्य वेदव्यास, च=और, अमी=ये, वाल्मीकिरामादयः=वाल्मीकि तथा परशुराम आदि, मुनयः=मुनिगण, च=तथा, आज्ञाविधेयैः=आज्ञा का पालन करने में संलग्न, मागधमत्स्ययादवकुलैः=मगध तथा मत्स्य देशों के शासक राजाओं तथा यदुवंशियों के, समम्=साथ, स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशाः=अपने-अपने कन्धों पर तीर्थ जलों से परिपूर्ण कलशों को उठाये हुये (अर्थात् रखे हुये) माद्रीसुताधिष्ठिताः=नकुल और सहदेव के नियंत्रण में संचालित, धृष्टद्युम्नमुखाः=धृष्टद्युम्न आदि, सैन्यपतयः=सेनाध्यक्ष, ते=तुम्हारे, राज्याभिषेकाय=राज्याभिषेक के लिये, प्राप्ताः=आये हैं ॥ ४४ ॥

भावार्थः—ये ऐश्वर्यशाली वेदव्यास और ये वाल्मीकि, परशुराम आदि मुनिजन तथा आज्ञा पालन करने में तत्पर, मगध एवं मत्स्य देश के शासक और यदुवंशी लोगों के साथ अपने कन्धों पर तीर्थों के जल से परिपूर्ण कलशों को रखे हुये, माद्री के पुत्रों (नकुल और सहदेव) द्वारा संचालित, धृष्टद्युम्न आदि सेनापति तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये आये हैं ।। ४४ ।।

छन्द – उक्त पद्य में 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है ।

समास—स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशाः=स्कन्धेषु उत्तम्भिताः तीर्थवारीणां कलशाः यैस्ते । धृष्टद्युम्नमुखः=धृष्टद्युम्नः मुखं-आद्यः येषां ते ।।४४।।

टिप्पणियाँ—रामः = परशुराम । अधिष्ठिताः=नियन्त्रित-संचालित । आज्ञाविधेयैः=वशंवद । उत्तम्भिताः=उठाये गये हुये ।। ४४ ।।

अहं पुनर्दुरात्मना चार्वाकेण विप्रकृतं भवन्तमुपलभ्यार्जुनेन सह त्वरिततरमायातः ।

युधिष्ठिरः—कथं चार्वाकेण रक्षसा वयमेव विप्रलब्धाः ।

भीमसेनः—(सरोषम्) क्वासौ धार्तराष्ट्रसखा पुण्यजनापसदो येनार्यस्य महांश्चित्तविभ्रमः कृतः ।

कृष्णः—निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन । तत्कथय महाराज ! किमस्मात्परं समीहितं संपादयामि ?

युधिष्ठिरः—न किंचिन्न ददाति भगवान्प्रसन्नः । अहं तु पुरुषसाधारण्या बुद्ध्या संतुष्यामि । न खल्वतः परमभ्यर्थयितुं क्षमः । पश्यतु देवः,

क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं
पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः ।
त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भाषसे
किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम् ॥४५॥

मैं तो आपको दुष्ट चार्वाक के द्वारा व्याकुलित किया गया हुआ सुनकर अर्जुन के साथ अतिशीघ्र ही चला आया हूँ ।

युधिष्ठिर—कैसे ? चार्वाक राक्षस के द्वारा हम लोग इस प्रकार ठगे गये ?

भीमसेन—(क्रोध के साथ) कहाँ है वह धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन का मित्र, नीच राक्षस जिसने आर्य को महान् बुद्धि-विभ्रम में डाल दिया था ?

कृष्ण—उस दुष्ट को नकुल ने पकड़ लिया है। तो महाराज ! बतलाइये कि इसके आगे आपका कौनसा अभीष्ट कार्य करूँ ?

युधिष्ठिर—प्रसन्न होने पर भगवान् (आप) कुछ भी नहीं दिया करते हैं, ऐसी बात नहीं है (अभिप्राय यह है कि प्रसन्न होने पर भगवान् सब कुछ दे दिया करते हैं।) किन्तु मैं तो पुरुषों की सामान्य बुद्धि से ही सन्तुष्ट हूँ। इससे अधिक माँगने में मैं समर्थ नहीं हूँ। महाराज देखें—

अन्वयः—क्रोधान्धैः सकलरिपुकुलं हतं ते वयं पञ्च अक्षताः, मम दुर्नयोपजनितः निकारार्णवः पाञ्चाल्या तीर्णः, देवः पुरुषोत्तमः त्वं सुकृतिनं मां आदृतः सन् भाषसे। प्रसन्नात् भगवतः अतः परं अन्यत् किं नाम अहं याचे ? ॥ ४५ ॥

संस्कृत-व्याख्या:—क्रोधान्धैः = क्रोधेन अन्धाः-किंकर्त्तव्यविमूढाः-इति क्रोधान्धाः, तैः, अस्माभिः, सकलरिपुकुलम्=सकलम्-सम्पूर्णम् रिपुकुलम्-शत्रुवंशः, हतम्=विनाशितम्। ते=समरविधातारः-इत्यर्थः, वयम् पञ्च=वयं पञ्चसंख्याकाः युधिष्ठिरादयः, अक्षताः=अव्रणाः-कुशलिनः, स्म इति शेषः। मम=युधिष्ठिरस्य, दुर्नयोपजनितः=दुर्नयेन द्यूतादिरूपया दुष्टनीत्या उपजनितः=उत्पादितः, निकारार्णवः=अपमानसागरः, पाञ्चाल्या=द्रौपद्या, तीर्णः=पारंकृतः। देवः=दिव्यगुणयुक्तः, पुरुषोत्तमः=पुरुषेभ्यः उत्तमः, त्वम्=भवान्, सुकृतिनम्=पुण्यवन्तम्, माम्=युधिष्ठिरम्, आदृतः=सादरः, सन्; भाषसे=वार्तालापं करोषि, प्रसन्नात्=हृष्टात्, भगवतः=श्रीमतः अतः=अस्मात्, परम्=अधिकम्, अन्यत्=इतरत्, किं नाम, अहम्=युधिष्ठिरः, याचे=प्रार्थये ॥ ४५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—क्रोधान्धैः=क्रोधोन्मत्त, हम लोगों ने, सकलम्=सम्पूर्ण, रिपुकुलम्=शत्रुकुल; हतम्=नष्ट कर डाला। ते वयं पञ्च=वे हम पाँचों पाण्डव, अक्षताः=घायल भी नहीं हुये अर्थात् सकुशल रहे। मम=मेरी, दुर्न-

योपजनितः—जुआ खेलना आदि दुष्टनीति से उत्पन्न, निकारार्णवः—अपमान का सागर, पाञ्चाल्या—द्रौपदी के द्वारा, तीर्णः—पारकर लिया गया। देवः—देव, पुरुषोत्तमः—पुरुषश्रेष्ठ, त्वम्—आप, सुकृतिनम्—पुण्यशाली, माम्—मुझ युधिष्ठिर से, आदृतः सन्—आदरयुक्त होते हुये, भाषसे—वार्तालाप कर रहे हैं। प्रसन्नात्—प्रसन्न हुये, भगवतः—भगवान् (आप) से, अतः परम्—इससे अधिक, अन्यत्—और, किंनाम—क्या, अहम्—मैं, याचे—मांगू ? ॥ ४५ ॥

भावार्थः—क्रोधान्ध होकर हम पाण्डवों ने सम्पूर्ण शत्रुकुल का नाश कर दिया। हम पांचो पाण्डव (अथवा पांचो भाई) सकुशल बच गये हैं। जुये आदि से सम्बन्धित मेरी ही दुर्नीति (गलत नीति) के कारण द्रौपदी का भरी सभा में जो अपमान किया गया था उस अपमान-सागर को भी द्रौपदी ने पार कर लिया (अर्थात् उस घोर अपमान का भी बदला शत्रुओं से ले लिया गया)। मेरे द्वारा आदृत होते हुये पुरुषोत्तम आप मुझ भाग्यशाली से इस प्रकार वार्त्तालाप कर रहे हैं, इससे अधिक और प्रसन्नता की बात क्या हो सकती है कि जिसकी याचना प्रसन्न हुये आप से मैं करूँ ? ॥ ४५ ॥

छन्द—प्रस्तुत पद्य में "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द है।

समासः—पुण्यजनापसदः—पुण्यजनेषु—राक्षसेषु अपसदः—नीचः। क्रोधान्धैः—क्रोधेन अन्धाः इति क्रोधान्धाः तैः। रिपुकुलम्—रिपोः कुलम्—इति। दुर्नयोपजनितः—दुर्नयेन उपजनितः—इति। निकारार्णवः—निकारस्य-अपमानस्य अर्णवः—सागरः। पुरुषोत्तमः—"पुरुषेभ्यः उत्तमः" ही समास होगा—"पुरुषेषु उत्तमः" नहीं—"न निर्धारणे" इस निषेध-नियम के आधार पर ॥ ४५ ॥

टिप्पणियां—उपलभ्य—सुनकर, जानकर। पुण्यजनः—राक्षस—"यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी—" इत्यमरः। न किंचित्-न ददाति—कुछ नहीं देता है अर्थात् सब कुछ देता है। अभ्यर्थयितुम्—मांगने के लिये-याचना करने के लिये। क्षमः—समर्थ। पुरुषसाधारण्या—साधारण-मनुष्योचित—साधारण बुद्धि से। क्रोधान्धैः—क्रोध से उपहत, क्रोधोन्मत्त। अक्षताः—व्रणरहित—सकुशल। दुर्नयेन—ग़लत नीति के कारण। उपजनितः—

उत्पन्न-उद्भूत। निकारार्णवः-तिरस्कारका समुद्र। पाञ्चाल्या-द्रौपदी के द्वारा। तीर्णः-पारकर लिया गया। सुकृतिनम्-पुण्यशाली-पुण्यात्मा। आदृतः-आदर के साथ। याचे-मांगू-याचना करूँ ॥ ४५ ॥

तथापि प्रतितरश्चेद्भगवांस्तदिदमस्तु।

अकृपणमरुक्श्रान्तं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं
भवतु भगवन्भक्तिर्द्वैतं विना पुरुषोत्तमे।
दयितभुवनो विद्वद्बन्धुर्गुणेषु विशेषवि-
त्सततसुकृती भूयाद्भूपः प्रसाधितमण्डलः ॥४६॥

फिर भी यदि भगवान् (आप) अत्यधिक प्रसन्न हैं तो यह हो जाये—

अन्वयः—हे भगवन्! जनः अकृपणं अरुक्श्रान्तं पुरुषायुषं जीव्यात्; द्वैतं विना पुरुषोत्तमे भक्तिः भवतु। भूपः दयितभुवनः विद्वद्बन्धुः गुणेषु विशेषवित् सततसुकृती प्रसाधितमण्डलः भूयात् ॥ ४६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे भगवन्!=हे ऐश्वर्यशालिन्!, जनः=लोकः, अकृपणम्=न कृपणं यथा तथा अकृपणम्-कार्पण्यरहितम-दैन्यविहीनमिति भावः, अरुक्श्रान्तम्=न रोगेण परिश्रान्तं यथास्यात्तथा, पुरुषायुषम्=पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम्—शतवर्षं यावत्-"शतायुर्वैपुरुषः" इति श्रुतेः, जीव्यात्=जीवतु। द्वैतम्—द्वयोर्भावः द्विता-द्वित्वम् द्वितैव द्वैतम्, द्वैतं विना=अद्वैतरूपेण, पुरुषोत्तमे=पुरुषेभ्यः उत्तमः—श्रेष्ठः तत्र विष्णाविति यावत्—भगवति-इत्यभिप्रायः, भक्तिः=श्रद्धा-अनुरागो वा, भवतु। भूपः=नृपः-राजा; दयितभुवनः=दयितं-प्रियं भुवनः-लोकः यस्य सः-प्रियप्रजः इति भावः, विद्वद्बन्धुः=विदुषाम्-पण्डितानां-विद्वज्जनानां बन्धुः-सहचरः-उपकारकः इति यावत्; गुणेषु=वैशिष्ट्येषु, विशेषवित्=विशिष्टगुणज्ञः—गुणानुरागी, सततसुकृती=सततं-निरन्तरम् सुकृतं पुण्यं अस्ति अस्येति—सदा पुण्यवानित्यर्थः, प्रसाधितमण्डलः=प्रसाधितम्—वशीकृतं मण्डलम्-राजसमूहं येन सः तथाभूतः—स्वायत्तीकृतराजचक्रः-इत्यर्थः, भूयात्=भवतु ॥ ४६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—हे भगवन् !=हे ऐश्वर्यशालिन् पुरुषोत्तम !; जनः=प्रजा अथवा लोग, अकृपणम्=कार्पण्य अथवा दीनता से रहित, अरुक्श्रान्तम्=रोगों की पीड़ा से रहित अर्थात् रोगरहित होकर, पुरुषायुषम्=पुरुष की आयु अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त, जीव्यात्=जियें। द्वैतम्=द्वैत बुद्धि से, विना=रहित (अर्थात् अद्वैतभावना के साथ), पुरुषोत्तमे=भगवान् में, भक्तिः=श्रद्धा अथवा अनुराग, भवतु=होवे। भूपः=राजा, दयितभुवनः=लोगों अथवा प्रजा से अनुराग (प्रेम) करने वाला; विद्वद्बन्धुः=विद्वज्जनों अथवा विद्वानों का सहायक, गुणेषु=गुणों का, विशेषवित=विशिष्ट ज्ञाता (अर्थात् गुणों से अनुराग करने वाला अथवा गुणों का ग्राहक) सततसुकृती=सदैव पुण्य (पवित्र) कार्यों का करनेवाला, प्रसाधितमण्डलः=पृथ्वीमण्डल को व्यवस्थित करने वाला अथवा राजसमूह को अपने वश में करलेने वाला, भूयात्=होवे ॥ ४६ ॥

भावार्थः—हे भगवन् ! प्रजाजन दीनतारहित तथा नीरोग रहते हुये पुरुष की (सौवर्ष की) आयु पर्यन्त जीवित रहें। लोगों की भगवान् के प्रति द्वैत-रहित भक्ति होवे। राजा प्रजा का अनुरागी, विद्वानों का बन्धु, गुणों के वैशिष्ट्य को भली-भांति समझने वाला अथवा गुणग्राहक तथा निरन्तर पुण्य (पवित्र) (कर्मों का करने वाला) और अपने अधीन राज्यों को वश में रखने वाला होवे ॥ ४६ ॥

छन्दः—उक्त पद्य में "हरिणी" नामक छन्द है। लक्षण—"नसमरसला गः षड्वेदैर्हरिणी मता" ॥ ४६ ॥

समासः—अरुक्श्रान्तम्=न रुजा श्रान्तम्-इति। पुरुषायुषम् = पुरुषस्य आयुषम्। द्वैतम्=द्वयोः भावः द्विता, द्वितैव द्वैतम्। दयितभुवनः-दयितं भुवनं यस्य सः। प्रसाधितमण्डलः=प्रसाधितं मण्डलं येन सः ॥ ४६ ॥

टिप्पणियाँ—जनः=लोक; प्रजा—"प्रजास्यात्सन्ततौ जने" इत्यमरः। जीव्यात्=जिये। दयितम्=प्रिय। सुकृती=पुण्यशाली, पुण्यात्मा। प्रसाधितम्=वश में कर लिया है। व्यवस्थापित। मण्डलम्=राजसमूहको ॥४६॥

अपि च,

अवनिमवनिपालाः पान्तु वृष्टिं विधत्तां
जगति जलधराली शस्यपूर्णास्तु भूमिः।
त्वयि मुरनरकारौ भक्तिरद्वैतयोगा—
द्भवतु ममसुदीर्घंहव्यमश्नन्तु देवाः ॥४७॥

और भी—

अन्वयः——अवनिपालाः अवनिं पान्तु, जलधराली जगति वृष्टिं विधत्ताम्। भूमिः शस्यपूर्णा अस्तु। मुरनरकारौ त्वयि अद्वैतयोगात् भक्तिः भवतु। देवाः मम सुदीर्थं हव्यं अश्नन्तु ॥ ४७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अवनिपालाः=नृपाः, अवनिम्=पृथ्वीम्, पान्तु=रक्षन्तु, जलधराली=मेघपंक्तिः, जगति=संसारे, वृष्टिम्, विधत्ताम्=कुर्वन्तु। भूमिः=पृथ्वी, शस्यपूर्णा=शस्यैः-धान्यैः पूर्णा-समृद्धिमती, अस्तु=भवतु। मुरनरकारौ=मुरनरकयोः—तन्नामकदैत्योः अरौ-शत्रौ, त्वयि, अद्वैतयोगात्=अनन्यमनसा, भक्तिः, भवतु। देवाः=गीर्वाणाः, मम=युधिष्ठिरस्य, सुदीर्घमु=बहुकालपर्यन्तम्, हव्यम्=होमे हुतमाज्यादिकम् अश्नन्तु=भक्षन्तु ॥ ४७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—अवनिपालाः=राजा लोग, अवनिम्=पृथ्वी का, पान्तु=पालन-पोषण करें, जलधराली=मेघों की पंक्ति, जगति=संसार में, वृष्टिम्=वर्षा, विधत्ताम्=करें। भूमिः=पृथ्वी, शस्यपूर्णाः=धनधान्य से परिपूर्ण, अस्तु=होवे। मुरनरकारौ=मुर एवं नरकासुर के शत्रु, त्वयि=आपके प्रति, मेरी, अद्वैतयोगात्=अद्वैतरूप से, भक्तिः=भक्ति, भवतु=होवे। देवाः=देवगण, मम=मुझ युधिष्ठिर की, सुदीर्घम्=बहुतकालपर्यन्त, हव्यम्=हवि का, अश्नन्तु=भोग करते रहें ॥ ४७ ॥

भावार्थः—राजालोग पृथ्वी का पालन-पोषण करें। मेघों की पंक्ति जगत में वृष्टि करती रहे। पृथ्वी धनधान्य से समृद्ध हो। मुर एवं नरकासुर के शत्रु आपके प्रति मेरी अद्वैतरूप से भक्ति होवे। दीर्घकालपर्यन्त देवगण यज्ञादि में मेरे द्वारा आहुति दी गई हवि का भोग करते रहें।

छन्दः—उक्त पद्य में 'मालिनी' छन्द है।

समासः—शस्यपूर्णा=शस्यैः पूर्णा-इति। मुरनरकारी-मुरनरकयोः अरी ॥ ४७ ॥

टिप्पणियाँ—अवनिपालाः=पृथ्वी के पालक-राजा लोग। पान्तु=रक्षा करें—पालन-पोषण करें। जलधरालीः=(जलधर-मेघ, आली-पंक्ति) मेघों की पंक्ति। शस्यपूर्णाः=धनधान्य से समृद्ध। अद्वैतयोगात्=अनन्य मन से। अर्थात् आपके अतिरिक्त मेरे हृदय में किसी अन्य के लिये स्थान ही न हो। हव्यम्=होम में जिन आज्य आदि पदार्थों की आहुति दी जाया करती है उसी को 'हवि' कहा जाता है। सुदीर्घम्=बहुत समय तक। अश्नन्तु=खायें—भोग करते रहें ॥ ४७ ॥

कृष्णः—एवमस्तु।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

[इति षष्ठोऽङ्कः।]

॥ समाप्तमिदं वेणीसंहार नाम नाटकम् ॥

कृष्ण—ऐसा ही हो।

[इसके पश्चात् सब निकल जाते हैं।]

[षष्ठ अङ्क समाप्त हुआ।]

॥ वेणीसंहार नामक नाटक समाप्त हुआ ॥

आचार्य सुरेन्द्रदेवशास्त्रिणा

विरचिता वेणीसंहारस्य 'आशुबोधिनी' व्याख्या समाप्ता।

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

—०—

परिशिष्ट—१

नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

नाटक—

वीरश्रृङ्गारयोरेकं प्रधानं यत्र वर्ण्यते।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

अर्थात् जिसमें वीर अथवा श्रृङ्गार में से किसी एक रस की प्रधानता हो, अन्यरस गौणरूप से वर्णित हों और प्रसिद्ध नायक हो, उसे 'नाटक' कहते हैं।

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥

सा० द०-६।७-१० ॥

नाटक का कथानक रामायणादि इतिहास-प्रसिद्ध होता है। इसमें मुख, प्रतिमुख आदि पांच सन्धियाँ होती हैं। इसमें कम से कम पांच तथा अधिक से अधिक दस अङ्क होते हैं। पुराणादि प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है। श्रृंगार अथवा वीर में से कोई एक-रस उसमें प्रधान रस के रूप में रहता है। अन्य सभी रस अङ्गरूप (गौणरूप) में आते हैं तथा निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का आना अत्युत्तम होता है।

देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम्।
पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥
यस्यात्स्वभावं संत्यज्य सांगोपांगव्यतिक्रमैः।
प्रयुज्यते ज्ञायते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥

नाट्यशास्त्र भरतमुनि-१९।१४६-१४७।

जिसमें देवताओं, ऋषियों, राजाओं अथवा उत्कृष्ट बुद्धिवाले व्यक्तियों के चरित्रों का अनुकरण सब अंगों, उपांगों और-और गतियों को क्रम से व्यवस्थित कर अभिनय द्वारा उपस्थित किया जाता है अर्थात् दर्शकों तक पहुँचाया जाता है, वह 'नाटक' कहलाता है।

नायक—

नेता अथवा नायक नाटक का प्रधानपात्र होता है। नेता शब्द का निर्माण 'नी' धातु से होता है जिसका अर्थ है 'ले चलना'। जो कथा को फल की ओर ले चलता है वही 'नेता' कहलाता है। नाटक के फल का प्राप्तकर्ता अथवा भोक्ता यही हुआ करता है।

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥
दशरूपक—२।१–२॥

नायक का विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर (दक्ष), प्रिय बोलने वाला (प्रियंवद), लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल, कुलीनवंश में उत्पन्न (रूढवंश), मन आदि से स्थिर युवक होना आवश्यक है। साथ ही उसे बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त और शूरवीर, दृढ़, तेजस्वी तथा शास्त्ररीत्या अपने कार्यों का करने वाला और धार्मिक भी होना आवश्यक है।

ये सभी नायक के सामान्य गुण हैं। नायक लोक के लिये एक आदर्श हुआ करता है। अतः उसका उपर्युक्त सामान्य-गुणविशिष्ट होना समुचित ही है।

नेता को 'नाट्यशास्त्र' में चार प्रकार का स्वीकार किया गया है :—
(१) धीरललित (२) धीरप्रशान्त (३) धीरोदात्त और (४) धीरोद्धत।

धीरोदात्त नायक—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥
दशरूपक—२।४-५॥

'धीरोदात्त' कोटि का नायक महान् सत्वसम्पन्न हुआ करता हैं। उसका अन्तःकरण शोक, क्रोध आदि विकारों से अभिभूत नहीं हुआ करता है। वह अतिगम्भीर, क्षमाशील, अविकत्थन (अपनी प्रशंसा स्वयं अपने मुख से न करने वाला), स्थिरचित्त (अचंचलमन वाला), निगूढाहंकार (स्वाभिमानी होने पर भी उसका अभिमान विनम्रता द्वारा दबा हुआ होता है), दृढ़व्रत (अर्थात् जिस बात का प्रण कर लेता है उसे अन्त तक निभाने वाला) होता है।

'वेणीसंहार' का नायक भीम इसी कोटि का नायक है।

नायिका—

नाटकों में नायिका का भी उतना ही महत्व हुआ करता है कि जितना नायक का। वेणीसंहार में 'द्रौपदी' नायिका है। नायिका का लक्षण साहित्यदर्पणकार ने इस प्रकार किया है :—

> अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति।
> नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता॥
> सा० द०–३।५६॥

'नायिका' नायक के सामान्यगुणों से युक्त हुआ करती है। वह तीन प्रकार की होती है :—(१) स्वकीया (विवाहिता), (२) परकीया (अन्या) और (३) साधारण स्त्री। स्वकीया अपनी विवाहिता स्त्री, परकीया-किसी दूसरे की स्त्री अथवा कन्या, तथा साधारणा किसी की भी स्त्री नहीं हुआ करती है।

'वेणीसंहार' की नायिका 'द्रौपदी' अपनी विवाहिता स्त्री है। अतः स्वकीया नायिका है।

पूर्वरंगः—

नाटकीय कथावस्तु के प्रारम्भ होने से पूर्व रङ्गमञ्च के विघ्नों को दूर करने के निमित्त अभिनेताओं द्वारा जो मंगलाचरण आदि किया जाता है उसे 'पूर्वरङ्ग' कहते हैं।

> यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
> कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरंगः स उच्यते॥
> सा० द०–६।२२॥

नान्दीः—

नाटक के प्रारम्भ में देवता, ब्राह्मण अथवा राजाओं आदि की जो आशीर्वाद से युक्त स्तुति की जाती है उसे "नान्दी" कहा जाता है :—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।। सा० द०—६।२४ ।।

सूत्रधार—

नाट्य (अभिनय) के साधनों (उपकरणों) को सूत्र कहा जाता है। इस सूत्र को धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला व्यक्ति ही सूत्रधार कहलाता है :—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ।।

नेपथ्य—

अभिनेतागण जिस स्थान पर उपयुक्त वेषभूषा धारण किया करते हैं उसे 'नेपथ्य' कहा जाता है:—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।।

प्रस्तावना—

जब सूत्रधार नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक के साथ अपने नाटकीय कथानक के निर्देश को बतलाने के लिये विचित्र वाक्यों द्वारा वार्तालाप किया करता है तो उसे 'प्रस्तावना' अथवा 'आमुख' कहा जाता है:—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिता संलापं यत्र कुर्वते ।।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ।।
सा० दर्पण–६।३२ ।।

कंचुकी—

अन्तःपुर में जा सकने योग्य, वृद्ध एवं गुणवान् ब्राह्मण को, जो सभी कार्यों के करने में कुशल होता है, 'कंचुकी' कहते हैं:—

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ।। नाट्यशास्त्र ।।

विदूषकः—

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष, बोली आदि के द्वारा दर्शकों अथवा सामाजिकों को हँसाता है, कलह में प्रेम रखता है तथा अपने हास्य के कार्य को ठीक समझता है उसे 'विदूषक' कहते है। कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम हुआ करते हैं:—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिविदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥

सा० द०-३।४२॥

अङ्क—

जो भावों तथा रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुटित करता है, जहाँ पर नाना प्रकार के विधान हुआ करते हैं, जहां पर एक अर्थ की समाप्ति तथा बीज का उपसंहार हो जाता है किन्तु बिन्दु का सम्बन्ध अंशरूप में बना रहता है, उसे 'अङ्क' कहते हैं:—

अङ्क इति रूढिशब्दो भावं रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः॥

ना० शा०-अ० २०।१४।१६॥

बीज—

प्रारम्भ में जिसका सूक्ष्मरूप में कथन किया जाता है किन्तु जैसे-जैसे व्यापक श्रृंखला आगे बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे इसका भी विस्तार होता जाता है:—

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुबीजं विस्तार्यनेधा॥ दशरूपक-१।१७ पूर्वार्ध॥

बिन्दु—

इसके द्वारा विच्छिन्न कथावस्तु को आगे बढ़ाया जाता है अर्थात् जो बात कारण बनकर बीच की कथा को आगे बढ़ाती है और मुख्य कथा को भी बनाये रखती है उसे बिन्दु कहते हैं।—

अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् ॥
दशरूपक–१।१७–उत्तरार्धं ॥

स्वगत—

जो बात सुनाने योग्य नहीं हुआ करती है उसे 'स्वगत' (मन में) कहा जाता है। इसे 'आत्मगत' भी कहा जाता है :—

अश्राव्य खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।
सा० द०–६।१३७ ॥

प्रकाश—

जो बात सभी को सुनाने योग्य होती है उसे 'प्रकाश' (स्पष्ट) कहा जाता है :—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् ॥ सा० द०–६।१३८ ॥

अपवारित—

अपने मुख को दूसरी ओर करके जब कोई पात्र दूसरे व्यक्ति से गुप्त बात कहता है तब उसे 'अपवारित' (एक ओर होकर) कहा जाता है :—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम् ॥ दशरूपक–१।६६ ॥

जनान्तिक—

हाथ की ओट करके दो पात्रों द्वारा जो वार्त्तालाप किया जाता है उसे 'जनान्तिक' कहते हैं :—

त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्॥
सा० द०–६।१३९ ॥

जब अन्यपात्रों की उपस्थिति में भी दो पात्र परस्पर इस भांति मन्त्रणा करें कि उसे अन्य पात्रों को सुनना अभीष्ट न हो तथा अन्य पात्रों की ओर त्रिपताका (जब सम्पूर्ण अँगुलियां सीधी ऊपर की ओर खड़ी हों, केवल अनामिका अँगुली ही टेढ़ी करली जाय) वाले हाथ से संकेत किया जाए कि उसका वरण किया जा रहा है तो उसे 'जनान्तिक' कहते हैं।

आकाशभाषित—

किं ब्रवीषीत्येवमादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥
दशरूपक–१।६७ ॥

जब कोई पात्र "क्या कहते हो ?" इस प्रकार कहता हुआ किसी अन्य पात्र के न होते हुये भी बातचीत करता है तथा किसी दूसरे पात्र के कथन के विना भी बात को सुनने का अभिनय करके बातचीत करता है उसे "आकाशभाषित" कहते हैं। इसी भाव के निमित्त 'आकाशे' (आकाश में) शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धःस्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

भूत अथवा भावी घटनाओं की सूचना के निमित्त विष्कम्भ अथवा विष्कम्भक का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग का उद्देश्य नाटक में संक्षेप की दृष्टि से किया जाया करता है। अङ्क के प्रारम्भ में इसका प्रयोग किया जाता है। जिस विष्कम्भक में एक अथवा दो मध्यमकोटि के पात्रों का प्रयोग किया जाता है उसे 'शुद्ध विष्कम्भक' कहते हैं। यदि उसमें नीच तथा मध्यम दोनों ही प्रकार के पात्र आते हैं तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहा जाता है।

प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥
सा० द०–६।५७ ॥

प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती हैं। इसमें नीच पात्रों का ही प्रयोग होता है। दो अङ्कों के मध्य में इसकी स्थिति रहा करती है। इसकी अन्य विशेषताएँ विष्कम्भक के ही सदृश हैं।

निम्नलिखित तुलनात्मक विवरण द्वारा 'विष्कम्भक' तथा 'प्रवेशक' की समानता तथा विषमता का परिचय प्राप्त कीजिये:—

"विष्कम्भक तथा प्रवेशक का तुलनात्मक अध्ययन"

विष्कम्भक	प्रवेशक
(१) यह भूत तथा भावी घटनाओं का सूचक हुआ करता है।	यह भी भूत एवं भावी घटनाओं का सूचक हुआ करता है।
(२) इसमें एक अथवा दो मध्यम श्रेणी के पात्र प्रयुक्त होते हैं।	इसमें सभी पात्र निम्नश्रेणी के ही प्रयुक्त होते हैं।
(३) इसमें संस्कृत अथवा शौरसेनी प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाता है।	इसमें निम्नकोटि की प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत भाषा का प्रयोग कभी भी नहीं किया जाता है।
(४) इसका प्रयोग प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में भी किया जा सकता है।	इसका प्रयोग प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में कभी भी नहीं किया जा सकता है।
(५) इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग दो अङ्को के मध्य में भीहोता है।	इसका प्रयोग दो अङ्कों के मध्य में ही किया जा सकता है।

	शुद्ध विष्कम्भक	मिश्रविष्कम्भक	प्रवेशक
(१)	पात्र—मध्यश्रेणी के एक अथवा दो पात्र।	मध्यम तथा नीच श्रेणी के पात्र।	नीच श्रेणी के पात्र।
(२)	भाषा—संस्कृत।	संस्कृत तथा प्राकृत।	प्राकृत

—:०:—

परिशिष्ट—२

छन्द-परिचय

संस्कृत साहित्य में काव्य शब्द से गद्य तथा पद्य दोनों का ही ग्रहण किया जाता है। गद्य का नियमन और अनुशासन जिस शास्त्र के द्वारा होता है उसे व्याकरण कहते हैं और पद्य का अनुशासन तथा नियमन जिस शास्त्र द्वारा किया जाता है उसे छन्दशास्त्र कहते हैं।

पद्य का सम्बन्ध पद (चरण) से है। पद्य की रचना का एक माप होता है तथा उसी के अनुसार उसकी सृष्टि होती है। इसी माप या बन्धन को 'छन्द' कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मात्रा, वर्ण, यति, गति, ह्रस्व, दीर्घ आदि का विचार कर जो रचना की जाती है, उसे छन्द कहते हैं। छन्द का प्रचार अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आता है। संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद छन्दोबद्ध ही है। वेद के ६ अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द) में छन्द भी एक अङ्ग है।

प्रत्येक छन्द में चार चरण अथवा पद होते हैं, इन्हें पाद भी कहा जाता है। छन्द के चतुर्थांश को पाद या चरण कहते हैं। छन्द दो प्रकार के होते हैं: (१) वर्णवृत्त अथवा वर्णिक छन्द और (२) मात्रिक छन्द। जिन छन्दों में वर्णों की गणना की जाती है, उन्हें वर्णिक और जिनमें मात्राओं की गणना की जाती है वे मात्रिक छन्द कहलाते हैं। वर्णिक छन्दों अथवा वर्णवृत्तों को 'वृत्त' कहते हैं, जैसे इन्द्रवज्रा आदि मात्रिक छन्दों को 'जाति' कहते हैं जैसे आर्या आदि।

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं। (१)—समवृत्त—जिनमें चारों पदों अथवा चरणों में वर्णों की संख्या समान होती है। जैसे-इन्द्रवज्रा आदि। अधिकतर वर्णित छन्द इसी कोटि में आते हैं। (२) अर्धसमवृत्त—जिन छन्दों में प्रथम और तृतीय चरणों में तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में समानता होती है। जैसे—पुष्पिताग्रा, वियोगिनी आदि। (३) विषमवृत्त—इनमें चरणों में समानता होती ही नहीं है।

मात्रायें—तीन प्रकार की होती हैं। (१) ह्रस्व (२) दीर्घ और (३) प्लुत। ह्रस्व को लघु कहते हैं। छन्दशास्त्र में इसका चिह्न एक खड़ी रेखा है (।)। इसको एक मात्रा गिना जाता है। दीर्घ-दीर्घ को गुरु भी कहते हैं। छन्दशास्त्र में इसका चिह्न (ऽ) है। इसको दो मात्रा गिना जाता है। प्लुत का प्रयोग मुख्यतः संगीत में अथवा किसी को पुकारने में होता है। इसमें तीन अथवा तीन से अधिक मात्राओं की गणना की जाती है।

अ, इ, उ, ऋ और लृ ये ह्रस्व स्वर हैं। इनमें एक मात्रा होती है। शेष स्वर दीर्घ हैं। इनमें दो-दो मात्राएँ होती हैं। किन्तु पद्य रचना में कहीं-कहीं ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ माने जाते हैं। इससे सम्बन्धित नियम निम्नलिखित हैं :—

(१) संयुक्ताक्षर वर्ण के पूर्व का वर्ण ह्रस्व होने पर भी दीर्घ माना जाता है। यथा-'कल्प' शब्द में यद्यपि 'क' ह्रस्व है किन्तु 'ल्प' संयुक्त वर्ण के पूर्व होने के कारण उसको दीर्घ माना जायगा।

(२) विसर्गयुक्त वर्ण दीर्घ माना जाता है। यथा-'दुःख' में 'दुः' दीर्घ है।

(३) अनुस्वारयुक्त वर्ण भी दीर्घ ही माने जाते हैं। यथा—'हंस' में 'हं' दीर्घ है।

(४) हलन्त वर्ण के पहले का वर्ण भी गुरु या दीर्घ माना जाता है तथा हलन्त अक्षर की मात्रा नहीं मानी जाती है। यथा-भगवन्, राजन् आदि में 'न्' की कोई मात्रा नहीं है तथा उससे पूर्व के वर्ण 'व' तथा 'ज' गुरु अथवा दीर्घ हैं।

(५) यदि शब्द अथवा वाक्य का सर्व प्रथम अक्षर सयुक्त हो तथा उसमें दीर्घ मात्रा लगी हो तो उसे 'गुरु' माना जायगा। और यदि मात्रा न लगी हो तो वह ह्रस्व ही माना जायगा। यथा-'श्रवण' में 'श्र' लघु अथवा ह्रस्व ही है। तथा 'स्वार्थ' में 'स्वा' गुरु अथवा दीर्घ है और 'र्थ' लघु अथवा ह्रस्व है।

(६) कभी-कभी (सदैव नहीं) चरण के अन्त का वर्ण लघु होने पर भी छन्द के नियम में गड़बड़ी न हो इसलिये गुरु मान लिया जाता है। कारण यह होता है कि उसके उच्चारण में गुरुवर्ण के ही समान, लघुवर्ण की अपेक्षा दूना समय लगता है।

सानुस्वाराश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥"

वर्णवृत्त में वृत्तों की गणना के लिये 'गुण' का उपयोग किया जाता है। तीन वर्ण के समुदाय को 'गण' कहते हैं। ये संख्या में आठ होते हैं। लघु गुरु वर्णों के क्रमानुसार उसके निम्न प्रकार हैं :—

SSS	मगण	म	तीनों गुरु वर्ण
ISS	यगण	य	एक ह्रस्व दो गुरु वर्ण
SIS	रगण	र	एक गुरु फिर एक ह्रस्व फिर गुरु वर्ण
IIS	सगण	स	दो ह्रस्व फिर एक गुरु वर्ण
SSI	तगण	त	दो गुरु फिर एक ह्रस्व वर्ण
ISI	जगण	ज	एक ह्रस्व फिर एक गुरु फिर एक ह्रस्व वर्ण
SII	भगण	भ	एक गुरु फिर दो ह्रस्व वर्ण
III	नगण	न	तीनों ह्रस्व वर्ण

लक्षणों में जहाँ पर 'ल' और 'ग' अक्षर आते हैं वहाँ 'ल' से लघु और 'ग' से गुरु माना जाएगा। यदि लौ या गौ हो तो "दो लघु" अथवा "दो गुरु" वर्ण माने जायेंगे।

प्रत्येक छन्द में मात्राओं या वर्णों की नियमित संख्या होने से ही काम नहीं चलता है। उसमें एक प्रकार का प्रवाह होना भी आवश्यक है जिससे पढ़ने में कहीं रुकावट-सी न जान पड़े। इस प्रवाह को ही गति कहते हैं।

इसी प्रकार बहुत से छन्दों में बहुधा चरण के किसी स्थल पर रुकावट, विराम या विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिये नियमित वर्णों या मात्राओं पर बहुत थोड़ी देर के लिये रुकना पड़ता है। इस रुकने की क्रिया को यति, विराम या विश्राम कहते हैं। लक्षणों में इस 'यति' का निर्देश भी यथास्थान कर दिया जाता है।

वेणीसंहार में जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है, उनके लक्षणादि निम्नलिखित हैं—

(१) अनुष्टुप् (श्लोक)—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो ॥

अनुष्टुप के प्रत्येक चरण में ८-८ अक्षर होते हैं। इनमें पाँचवाँ अक्षर सदा लघु और छठवाँ अक्षर सदा गुरु होता है। सप्तम अक्षर, प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में लघु होता है। अन्य अक्षरों में गुरु अथवा लघु का कोई नियम नहीं है। वे कुछ भी हो सकते हैं।

(२) पथ्यावक्त्र—

युजोश्चतुर्थतो जेनपथ्यावक्त्रप्रकीर्तितम् ॥

यह अनुष्टुप् छन्द का ही एक भेद है। जब इसी छन्द के तृतीय और चतुर्थ चरण में चतुर्थ अक्षर के बाद जगण आता है तो पथ्यावक्त्र छन्द होता है।

(३) आर्या—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

यह एक मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम चरण में बहरा, द्वितीय में अठारह, तृतीय में बारह और चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्रायें होती हैं।

(४) द्रुतविलम्बित—

द्रुतविलम्बितमाह नभौभरौ ॥

इसके प्रत्येक चरण में १२-१२ वर्ण होते हैं।

१ नगण, २ भगण, १ रगण = १२ वर्ण

(५) उपजाति—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौग:, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उपजाति के प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं। यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा छन्द होता है

और किसी चरण में उपेन्द्रवज्रा। इन्द्रवज्रा में ११ वर्ण होते हैं—२ तगण+१ जगण+२ गुरु=११। उपेन्द्रवज्रा में भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण+१ तगण+१ जगण+२ गुरु=११ वर्ण होते हैं।

(६) पुष्पिताग्रा—

अयुजि नयुगरेफतो यकारो।
युजिन्य नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा॥

यह एक अर्धसमवृत्त है। इसके प्रथम और तृतीय चरण में १२-१२ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ रगण, १ यगण=१२ वर्ण। द्वितीय और चतुर्थ चरणों में १३-१३ वर्ण होते हैं। १ नगण २ जगण, १ रगण, १ गुरु=१३ वर्ण।

(७) प्रहर्षिणी—

त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १३-१३ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु=१३ वर्ण। इसमें ३-१० पर यति होती है।

(८) मन्दाक्रान्ता—

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगंरम्भौ नतौ ताद् गुरुचेत्।

इसके प्रत्येक चरण में १७-१७ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ भगण, १ नगण, २ तगण, २ गुरु=१७ वर्ण इसमें ४-६;७ पर यति होती है।

(९) मालिनी -

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः॥

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १५-१५ वर्ण होते हैं। २ नगण, १ मगण, २ यगण=१५ वर्ण। इसमें ८-७ पर यति होती है।

(१०) वसन्ततिलका—

उक्ता वसन्त तिलका तभजा जगौगः॥

वसन्ततिलका के प्रत्येक चरण में १४-१४ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ भगण, २ जगण, २ गुरु=१४ वर्ण।

(११) वियोगिनी—(सुन्दरी)—

विषमे ससजा गुरुः समे। सभरा लोऽथ गुर्वियोगिनी॥

इस छन्द में प्रथम एवं तृतीय चरणों में १०-१० वर्ण होते हैं-२ सगण, १ जगण; १ गुरु=१० वर्ण द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में ११-११ वर्ण होते हैं—१ सगण, १ भगण, १ रगण, १ लघु, १ गुरु=११ वर्ण। यह अर्ध-समवृत्त है। इसका दूसरा नाम सुन्दरी भी है।

(१२) शार्दूलविक्रीडित—

सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक चरण में १९-१९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण, १ गुरु=१९ वर्ण। इस छन्द में १२-७ पर यति होती है।

(१३) शिखरिणी—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥

इसके प्रत्येक चरण में १७-१७ वर्ण होते हैं—१ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण, १ लघु और १ गुरु=१७ वर्ण। इसमें ६-११ पर यति होती है।

(१४) स्रग्धरा—

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥

स्रग्धरा के प्रत्येक चरण में २१ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, ३ यगण=२१ वर्ण। इसमें ७-७-७ पर यति होती है।

(१५) हरिणी—

नसमरसलाः गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥

हरिणी छन्द के प्रत्येक चरण में १७ वर्ण होते हैं—१ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु, १ गुरु=१७ वर्ण। इसमें ६-४-७ पर यति होती है।

(१६) पृथ्वी—

जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।

पृथ्वी छन्द के प्रत्येक चरण में १७ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ यगण, १ लघु तथा १ गुरु=१७ वर्ण। इसमें ८ तथा ९ पर यति होती है।

(१७) मञ्जुभाषिणी—

"सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी"।

मञ्जुभाषिणीं छन्द में १३ वर्ण होते हैं––१ सगण, १ जगण, १ सगण, १ जगण, तथा एक गुरु=१३ वर्ण ॥

(१८) औपच्छन्दसिक—

पर्यन्ते यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम् ॥

वियोगिनी छन्द के चरण के अन्त में एक गुरु अक्षर और जोड़ देने से "औपच्छन्दसिक" छन्द बन जाता है। इसके विषम चरण में—२ सगण, १ जगण, तथा दो गुरु होते हैं और समचरण में १ सगण, १ भगण, १ रगण और १ यगण; होते हैं। इस भाँति विषमचरण में ११ तथा समचरण में १२ वर्ण हुआ करते हैं। यथा वेणीसंहार—२।९ ॥

—:०:—

परिशिष्ट–३

वेणीसंहार में आये हुये श्लोकों की अनुक्रमणिका

श्लोकारम्भ	अङ्क	श्लोक सं
अ		
अकलितमहिमानं	५	४०
अकृपणमरुक्श्रान्तं	६	४६
अक्षतस्य गदापाणेः	४	४
अत्रैव किं न विशसेयं	५	३२
अद्यप्रभृति वारीदं	६	२९
अद्यमिथ्याप्रतिज्ञो–	३	४२
अद्यैवावां रणमुपगतो–	४	१५
अन्धोऽनुभूतशत–	५	१३
अन्योन्यास्फालभिन्न–	१	२७
अपिनाप भवेन्मृत्युः	४	९
अप्रियाणि करोत्येषः	५	३१
अपि कर्णं कर्णसुखदां	५	१४
अयं पापो यावन्न	३	४५
अवसानेऽङ्गराजस्य	५	३९
अश्वत्थामा हत इति	३	११
असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि	६	३३
अस्त्रग्रामविधौकृति	४	१२
अस्त्रज्वालावलीढ	३	७
आ		
आचार्यस्यत्रिभुवन	३	२०
आजन्मनो न वितथं	३	२५
आत्मारामा विहित–	१	२३
आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठ–	३	२
आशैशवादनुदिनं	६	३८
इ		
इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं	१	१६
इयमस्मदुपाश्रयैक–	२	१०
उ		
उद्घातक्वणित–विलोल–	२	२९
उपेक्षितानां मन्दानां	३	४३
ऊ		
ऊरु करेणपरिघट्टयतः	६	३५
ए		
एकस्य तावत्पाकोऽयं	३	१४
एकेनापि विनानुजेन	५	७
एतज्जलंजलजनील–	६	३०
एतेऽपितस्य कुपितस्य	३	१०
एह्यस्मदर्थंहततात	३	२९
क		
कप्यमपि न निषिद्धः	३	४०
कर्णक्रोधेनयुष्मद्विजयि	५	१७
कर्णदुःशासनवधात्	६	११
कर्णाननेन्दुस्मरणात्	५	१९
कर्णालिङ्गनदायो वा	५	२४
कर्णेन कर्णसुभगं	५	३८
कर्ता द्यूतच्छलानां	५	२६
कलितभुवना भुक्तै	५	८
कालिन्द्याः पुलिनेषु	१	२

श्लोकारम्भ	अङ्क	श्लोक सं.	श्लोकारम्भ	अङ्क	श्लोक सं.
किं कण्ठे शिथिली	२	९	च		
किं नो व्याप्त दिशां	२	१७	चञ्चद्भुजभ्रमितचण्ड	१	२१
किं भीमाद्गुरुदक्षिणां	३	९	चत्वारो वयमृत्विजः	१	२५
कुरु घनोरु पदानि	२	२१	चूर्णिताशेषकौरव्यः	५	२८
कुन्त्या सह युवामद्य	५	४	ज		
कुर्वन्त्वाप्ता हतानां	५	३६	जन्मेन्दोरमले कुले	६	७
कुसुमाञ्जलिरपरइव	१	५	जात्या काममवध्यो-	३	४१
कृतगुरुमहदादि-	६	४३	जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु	१	१८
कृतमनुमतं दृष्टं वा	३	२४	जृम्भारम्भप्रवितत-	२	८
कृष्टा केशेषु भार्या	५	३०	ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न	६	२०
कृष्टा केशेषु कृष्णा	५	२९	ज्ञेया रहः शङ्कितं	६	३
कृष्टा येनासि राज्ञां	६	४१	ज्वलनः शोकजन्मा	५	२०
कोदण्डज्याकिणाङ्कैः	२	२७	त		
कौरव्यवंशदावेऽस्मिन्	१	१९	तथाभूतां दृष्ट्वा	१	११
क्रोधान्धैः सकलं हतं	६	४५	तद्भीरुत्वं तव- मम पुरः	२	१०
क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्	६	४२	तस्मिन्कौरवभीमयोः	६	१६
क्रोधोद्गूर्णगदस्य- नास्ति	६	१३	तस्मै देहि जलं कृष्णे	६	३२
ग			तस्यैव देहरुधिरोक्षित	६	२१
गते भीष्मे हते द्रोणे	५	२३	तस्यैवपाण्डवपशोः	४	८
गतो येनाद्य त्वं	३	१६	तातं शस्त्रग्रहण- विमुखं-	३	२३
गुप्त्या साक्षान्महानल्पः	२	३	तातस्तव प्रणयवान्	३	३०
गुरूणां बन्धूनां	६	५	तां वत्सलामनभिवाद्य	६	३४
गृहीतं येनासीः	३	१९	तीर्णे भीष्ममहोदधौ	६	१
ग्रहाणां चरितं स्वप्नो	२	१५			

श्लोकारम्भ	अङ्क	श्लोक सं.
तेजस्वी रिपुहतबन्धु	३	२७
त्यक्तप्राजनरश्मि	५	१०
त्यक्त्वोत्थितः सरभसं	६	९
त्रस्तं विनापि-विषयात्	६	४
द		
दग्धुं विश्वं दहन–	३	८
दत्त्वा द्रोणेन पार्थाद	४	२
दत्त्वाभयं सोऽतिरथो	३	२८
दत्त्वा मे करदीकृता	६	१९
दायादान ययोर्वलेन	५	५
दिक्षु व्यूढांघ्रिपाङ्गः	२	१९
दिष्टयार्धश्रुतविप्रलम्भ	२	१३
दुःशासनस्य रुधिरे	३	४९
दुःशासनस्य हृदय–	२	२८
दृष्टा सप्रेम देव्या	१	३
देशः सोऽयमराति–	३	३३
द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुतं	५	३४
ध		
धर्मात्मजं प्रति यमौ	२	२६
धिक्सानुजं कुरुपतिं	३	१३
धृतराष्ट्रस्य तनयान्	१	९
धृतायुधो यावदहं	३	४६
न		
नाहं रक्षो न भूतो	६	३७
निर्लज्जस्य दुरोदर–	६	१७
निर्वाणवैरदहनाः	१	७
निर्वीर्यं गुरुशाप	३	३५
निर्वीर्यं वा सुर्वीर्यं वा	३	३६
निवापाञ्जलिदानेन	३	१८
निषिद्धैरप्येभिर्लुलित	१	१
नूनं तेनाद्य वीरेण	६	६
नोच्चैः सत्यपि	२	१
न्यस्ता न भ्रुकुटिर्न	२	२०
प		
पङ्के वा सैकते वा	६	२
पञ्चानां मन्यसे-ऽस्माकं	६	१०
पदे संदिग्ध एवास्मिन्	६	१४
परित्यक्ते देहे रण–	३	२२
पर्याप्तनेत्रमचिरोदित–	४	१०
पर्यायेण हि दृश्यन्ते	२	१४
पाञ्चाल्या मन्युवह्निः	६	८
पापप्रियस्तव कथं	३	४४
पापेन येन हृदयस्थ	५	२२
पापोऽहमप्रतिकृता–	५	२
पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे	३	२५
पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां	५	३५
पूर्यन्तां सलिलेन	६	१२
प्रत्यक्षमात्तधनुषां	३	२१
प्रत्यक्षं हतबन्धूनां	४	११
प्रत्यक्षं हतबान्धवस्य	५	९

श्लोकारम्भ	अङ्क	श्लोक सं.
प्रत्यग्रहृतानां मांसं	३	२
प्रयत्नपरिबोधितः	३	३४
प्रवृद्धं यद्वैरं मम	१	१०
प्राप्तावेकरथारूढौ	५	२५
प्रालेयमिश्रमकरन्द-	२	७
प्रियमनुजमपश्यंस्तं	६	३६
प्रेमाबद्धस्तिमित-	२	१८
ब		
बालस्य मे प्रकृति	४	५
भ		
भग्नं भीमेन भवतो	२	२४
भवति तनय लक्ष्मीः	५	२१
भवेदभीष्ममद्रोणं	३	२६
भीष्मे द्रोणे च निहते	५	१२
भूमौ क्षिप्तं शरीरं	६	३९
भूमौ निमग्नचक्रः	५	१८
भूयः परिभवक्लान्ति	१	२६
भ्रातुस्ते तनयेन	६	२७
म		
मथ्नामि कौरवशतं	१	१५
मदकलितकरेणु-	४	३
मद्वियोगभयान्तातः	३	१७
मन्थायस्तार्णवाम्भः-	१	२२
मम प्राणधिके	५	१५
मम हि वयसा	६	२४
मया पीतं पीतं तदनु	६	३१
मयि जीवति मत्तान्तः	३	३१
महाप्रलयमारुत	३	४
माव: किमप्यसदृशं	५	३
मामुद्दिश्य त्यजन्	५	१७
य		
यत्तदूर्जितमत्युग्रं	१	१३
यत्सत्यव्रतभङ्ग भीरु	१	२४
यदि शस्त्र मुज्झितं	३	३९
यदि समरमपास्य	३	६
यद्दुर्योधनपक्षपात-	३	५
यद्वैद्युतमिवज्योतिः	१	१४
यन्मोचितस्तव पिता	५	४२
यस्मिश्चिरप्रणय-	२	१२
युक्तो यथेष्टमुपभोग्-	४	६
युष्मच्छासन-लङ्घनोहसि	१	१२
युष्मान् ह्रेपयति	१	१७
योनास्ति तत्र जतु-	६	२३
योयः शास्त्रं बिभर्ति	३	३२
र		
रक्षणीयेन सततं	४	७
रक्षो नाहं न भूतः	६	३७
राज्ञो मानधनस्य	४	१
रिपोरास्तां तावत्	६	४०
रेणुर्बाधां विधत्त	२	२२

श्लोकारम्भ	अङ्क	श्लोक सं.
ल		
लाक्षागृहानल-विषान्न-	१	८
लुह्लिलाशवपाणमत्तिए	३	३
लोलांशुकस्यपवना–	२	२३
व		
विकिर धवलदीर्घा–	५	१६
विस्मृत्यास्मान्श्रुति	६	२५
व्यासोऽयं भगवानमी	४	४४
वृषसेनो न ते पुत्रो	४	१४
श		
शक्ष्यामि नो परिघ–	६	१
शल्यानि व्यपनीय	५	१
शल्येन यथा शल्येन	५	११
शाखारोधस्थगित	६	२६
शोकैः स्त्रीवन्नयन	५	३३
शोचामि शोच्यमपि	५	१६
श्रवणाञ्जलिपुटपेयं	१	४
श्रुत्वावधं मम मृषा	३	१२

श्लोकारम्भ	अङ्क	श्लोक सं.
स		
सकलरिपुजयाशा	५	२७
सकीचकनिषूदनो	६	१८
सत्पक्षा मधुरगिरः	१	६
सत्यादप्यनृतं श्रेयो	३	४८
सः भीरुः शूरो वा	३	३८
सर्वथा कथय ब्रह्मन्	६	१५
सहभृत्यगणं सबान्धवं	२	५
सूतो वा सूतपुत्रो वा	३	३७
स्त्रीणां हि साहचर्यात्	१	२०
स्पृष्य येन शिरोरुहे	३	४७
स्मरति न भवान् पीतं	५	४१
ह		
हतमानुष	३	१
हते जरति गाङ्गेये	२	४
हत्वा पार्थान्सलिलम्	४	१३
हलीहेतुः सत्यं	६	२८
हस्ताकृष्टविलोल	२	२५
हीयमानाः किल	५	६

—: ० :—

परिशिष्ट—४

"वेणीसंहार में आये हुये सुभाषित"

क्रम सं.	सुभाषित	पृष्ठ सं.
१—	अकुशलदर्शनाः स्वप्नादेवतानां प्रशंसया- कुशलपरिणा भवन्ति ।	१७६
२—	अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां- स्वामिभक्तिम् ।।	५४६
—	अनुल्लङ्घनीयः सदाचारः ।	४८८
—	अप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुतलानि श्रूयन्ते ।	१६६
—	अहो मुग्धत्वमबलानाम् ।।	२४४
—	आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।	४८०
—	उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन ।।	४४४
—	उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्वैरवज्ञया अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ।	३५५
—	कालानुरूपं प्रतिविधातव्यम् ।।	४६२
—	कुतस्तस्य विजयादन्यद् यस्य भगवान्- पुराणपुरुषो नारायणः स्वयंमङ्गलान्याशास्ते ।	६३६
१—	को हि नाम भगवता संदिष्टं विकल्पयति ।	५४६
—	गुप्त्या साक्षान्महानकल्पः स्वयमन्यन वा कृतः । करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ।।	१७६
—	ग्रहाणां चरितं स्वप्नो निमित्तान्युपयाचितम् । फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा नबिभ्यति ।	२१०
—	तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं बाहुभ्यांव्रजतिधृतायुधप्ल वाभ्याम् ।।	३२३
—	त्रस्तं विनापि विषयाद्भुविक्र[illegible]स्य चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति ।	५२६

१६—दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥ ३१
१७—न किञ्चिन्न ददाति भगवान प्रसन्नः । ६४०
१८—न घटस्य कूपपाते रज्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या ॥ ४४४
१९—न युक्तमनभिवाद्य गुरुन् गन्तुम् । ४८८
२०—नयुक्तं पराक्रमवतां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुम् । ५०७
२१—न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेण निवेदयितुम् ॥ ५६१
२२—न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम् । ५७४
२३—पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति ॥ ४२४
२४—प्रकृतिर्दुस्त्यजा । ३२६
२५—ब्राह्मणोशोणितं खल्वेतत् । गलं दहद्दहत्प्रविशति ॥ २६१
२६—यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो
भंयमिति युक्तमितोऽन्यतःप्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥ २७६
२७—यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्यति ॥ ५४९
२८—यावत्क्षत्रं तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः । ४६१
२९—यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजगीषु प्रसावताम् ॥ ४४९
३०—यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा
यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । ३०२
३१—वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम् ॥ ३४२
३२—वन्दनीया गुरवः । ४८८
३३—विश्राव्यनामकर्मणोवन्दनीयागुरवः ॥ ४८८
३४—स एव स्निग्धो जनो यः पृष्ठः परुषमपि हितं भणति । २०७
३५—स्त्रीणा हि साहचर्यात् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि ।
मधुराऽपि हि मूर्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली । १४४
३६—स्वपञ्जनःकिनखलुप्रलपति ॥ १७८
-हीयमानाः किल रिपोर्नृपा. संदधते परान् । ४५०

—:०:—